

स्व० पुण्यनारायण माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसाद

संस्थापित

## भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

संस्कृत ग्रन्थाङ्क १३

इस ग्रन्थमालामें प्रकृत संस्कृत अथर्वण दिव्यी, कण्ठक लामिका आदि प्राचीन भाषणोंमें उपलब्ध प्रागैहिक दार्शनिक वैशेषिक आदिशिविक और ऐतिहासिक आदि विविध-विषयक जैन साहित्यका अनुसन्धानार्थ सम्पादन और उसका सूत्र और वनप्रसंग अनुवाद आदिके साथ प्रकाश्य होगा। जैन भाषणोंकी शुद्धि, शिक्षाके लक्ष्य, विविध विद्यालयोंके सम्बन्ध प्रथम और लोकहितकारी जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकाशित होंगे।

ग्रन्थमाला सन्पादक

डॉ० श्रीरामास जैन,  
एम ए० बी एडि

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय,  
एम ए, बी एडि

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोपखीय  
मन्त्री, माण्डवीक शनरीठ  
बुर्गाडुडक, बनारस

मुद्रक—मार्गद भूयस प्रेस, अथ सर्वार प्रेस बनारस

प्रकाशक  
अयोध्या प्रसाद  
गोपखीय

समाधिकार सुरक्षित

विक्रम सं २००

१८ फरवरी सन् १९४४



स्व० पुण्यरत्नोका माता मूर्तिदेवीकी पवित्र स्मृतिमें तत्सुपुत्र साहू शान्तिप्रसाद ५

संस्थापित

## भारतीय ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला

संस्कृत ग्रन्थाङ्क १३

इस ग्रन्थमालामें प्रकृत संस्कृत अथर्ववेद शिखी, कलाह तामिळ भाषि मातृमै माताओंमें  
 उपलब्ध आगमिक शार्ङ्गिक पौराणिक प्राक्सिक और ऐतिहासिक भाषि विविध-विषयक  
 जैन साहित्यक अनुपलब्धसम्बन्ध सम्पादन और उद्घरण सूत्र और पञ्चाङ्गसम्बन्ध  
 अनुवाद भाषिके साथ प्रकल्पन होगा। जैन भाषाकारोंकी सुविधा  
 विद्यालोक-संभव, विविध विद्यालोकके सम्बन्धन प्रय और लोकहितकरती  
 जैन-साहित्य ग्रन्थ भी इसी ग्रन्थमालामें प्रकल्पित होंगे।

ग्रन्थमाला सम्पादक

डॉ० हीरालाल जैन,

एम ए बी लिट्

डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय,

एम ए, बी लिट्

प्रकाशक

अयोध्याप्रसाद गोयक्षीय

मन्त्री भारतीय ज्ञानपीठ

जुगांकुण्ड, बनारस

मुद्रक—मार्गद भूस्व प्रेस, मधु संतर प्रेस बनारस

प्रकाशक  
 अक्षय प्रेस ३  
 बीरगंज २००

संवाधिकार सुरक्षित

प्रथम सं १

१८ फरवरी १९७७

JÑĀNA PITHA MŪRTIDĒVI JAIN GRANTHAMĀLĀ  
SAMSKRIT GRANTHA No 13

---

# SARVĀRTHA SIDDHI

OF

PŪJYAPĀD

the commentary on

ĀCHĀRYA GRIDDHAPIĀĀHA'S  
TATTWĀRTHA SŪTRA



EDITOR

Pt PHOOLCHANDRA SIDDHANT SHASTRY

---

*Published by*

**Bhāratīya Jñānapītha, Kāshi**

---

First Edition }  
1000 Copies }

VAISHAKH VIKRAM SAMVAT 2481  
VIKRAMA SAMVAT 2012  
May 1955

{ Price  
Rs 12/ }

## प्रकाशन-व्यय

- १ ११) अग्र २ X १ = २२ और २- पोष  
७१ पीम = बिल्ल २२ पीट
- २२.२१) अग्र ७ = अग्र ४ पेज  
६ ) अग्र ४ पेज
- ११३।।३)। अग्र ४  
४ ) अग्र ४ पेज
- ५ ) अग्र ४ पेज
- ११३) अग्र ४ पेज  
६ ) अग्र ४ पेज १ प्रति  
१०५) अग्र ४ पेज १ प्रति  
४ २२) अग्र ४ पेज, अग्र ४ पेज १ प्रति

कुल लागत ११५४५३।

१००० प्रति अग्र ४ पेज । लागत एक प्रति १३।।।।

मूल्य १२ रु०

## दो गब्द

( सम्पादनका कारण )

सर्वाधिकारि सम्पादित होकर प्रथम अनेमें अत्यधिक समय लगा है। लगभग आठ नौ वर्ष पूर्व विशेष वाचनके समय मेरे प्दानमें यह आया कि सर्वाधिकारिमें ऐसे कई स्थल हैं जिनमें उक्त मूल भाग माननेमें अनेह हांठा है। किन्तु जब कोई वाक्य, वाक्यांश पर या पर्याय लिपिअक्षरी असावधानी या अन्य कारणसे किसी प्रत्यक्ष मूल भाग काटा है तब फिर उसे जिना आचारके रूपमें करने में अक्षी अक्षयनका सामना करना पड़ता है। सर्वाधिकारिके वाचनके समय भी मेरे सामने यह समस्या थी और इसीके फलस्वरूप इसके सम्पादनकी ओर मेरा मुझपर डुआ था।

यह तो स्पष्ट ही है कि आचार्य पून्यपादने तत्सर्वसुत्र प्रथम अध्यायके 'विशेषास्वामित्व' और 'सर्वस्वामित्व' इन दो सूत्रोंकी व्याख्या पदसंबन्धवागमके आकारसे की है। इसका विचार आगे चलकर प्रत्याख्यानम् इम स्वतन्त्र प्रकरण शिल्पकर करनेवाले हैं। यहाँ केवल यह देखना है कि इन सूत्रोंकी व्याख्यामें कहीं कोई शिथिलता तो नहीं आने पाई और यदि शिथिलताके चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं तो उक्तका कारण क्या है।

'विशेषास्वामित्व'— सूत्रकी व्याख्या करते समय आचर्य पून्यपादने चारों गतियोंके आशयसे सम्मन्वयके स्थायीकरण निदेश किया है। यहाँ विविधनिर्णयों आधिक सम्मन्वयके अभावके समयमें पूर्व उचित स्थितियोंमें यह वाक्य उपलब्ध होता है—

अथ इत्युक्तं मनुष्यः कर्मसुमित्तं एव इत्यन्वयोऽप्यपरापरमन्वयं मन्वयति । अप्यपरापरमन्वयत्पूर्वं विशिष्टं बहुसुप्तोऽपि उच्यते मोगभूमिर्वावर्षात्पुन्यपदेनोत्पद्यते न तिर्यक्यापु मन्वयेत्कीर्त्या तासां च, त्रिकाशमन्वयात् । एव विरजामन्वयपर्याप्तं न च यापर्याप्तिकं श्रय न पर्याप्तकालात् ।

दिगम्बर और श्केताम्बर दोनों परम्पराओंके आगमम इस प्रकारके नियमपर निर्देश है कि सम्मन्वयि मर कर किसी भी गतिके अविशेषोंमें उत्पन्न नहीं होता।

किन्तु श्केताम्बर आगम आचार्यकथा नामके सुत्रमें अंगमें महिज्ञताय तीर्थङ्करकी कथाके प्रसंगसे कथनाया गया है कि महिज्ञताय तीर्थङ्करने अपने पिछले महाकालके मरने में मायाचारके कारण 'श्रीनामकर्म' गोनको निषेध किया जिनसे वे तीर्थङ्करकी पयायने ली हुए। और इसी कारण पीछेके श्केताम्बर तीर्थङ्करावने उक्त नियम का यह सुझावा किया है कि सम्मन्वयि मरकर भी नहीं हाथ पर आहुत्यकी अनेका करा है।

यहाँ हम इस कथाके उत्तरमें पर विचार न कर केवल इतना ही देखना है कि यह भी नामकर्म गोन क्या बल है। क्या यह नौ नोकयायोंमें अविशेष नामक नोकयाय है या इस हाथ आहोपाहका निषेध किया गया

१. सूत्रों अध्यायनम् । २. तत्र त्वं मे महत्पत्रे अक्षयते इमेयं अरयोर्षं इतिव्यामकर्म ग वी विवसिन्तु ।  
पृष्ठा ५ ३१२ ।

## मघार्थसिद्धि

है। जब महाकलाधी पयावमें इस कर्मका रूप होख है तब वे हीपर प्रवृत्ति कर करनेवाले सम्यग्दृष्टि साधु के और सम्यग्दृष्टिके जीवदका रूप नहीं होता पंख कर्मशास्त्रका नियम है। इसलिये यह धेपनेवाला कर्म जीवित नामक नीकपाय तो ही नहीं सकत। रही आहोपाहकी बात से एक तो आहोपाहमें पंख मेर परिलक्षित नहीं होता। कर्माचित एसा मेर मान मी लिया बाय तो कर्मशास्त्रके नियमनुसार अशुभ आहोपाहका रूप प्रसक्त-सकत और आममत्संघल गुहारबानमें होख है यह कहना कठिन है। इसलिये प्रस्तुत प्रकरखमें न तो शाराबनकपाकी इन कपाको आभार माना जा सकता है और न ही इस आभारस र्शेताम्बर वीकाकनोका यह कहना मनीचीन प्रतीत होख है कि सम्यग्दृष्टि बीन मरकर जीवितयोमें नहीं ठरकन होख यह साधुस्य भी अपेक्षा करा है।

इतने विचारक यह जब हम सर्वाथसिद्धिके उक्त कथन पर ध्यान देते हैं तो हमें उधमें स्नेह होख है। उधमें विभावनिधामें ध्यायिक सम्यग्दर्शन न होनेके हेतुकर निर्देश किया गया है। यह तो स्पष्ट है कि जो मनुष्य तियब्राह्मणका रूप कर सम्यग्दृष्टि हा ध्यायिक सम्यग्दर्शनको प्राप्त होख है वह उधम भोगभूमिके पुण्यवेदी तियब्रामें ही उत्पन्न होता है जीवितेरी तियब्रामें नहीं। किन्तु इसके समर्थनमें जो 'ब्रह्मवेदशीयां तासां ध्यायिकसम्मत्तत्त्वं यह मुक्ति दी गर है वह न कबल लपर है अपि तु अनोत्पन्नक मी है।

हम मुक्तिके आभारस पूरे वाक्यका यह अर्थ होता है कि तिर्यक ब्रह्मवेदशाणो किरीमें भूकि ध्यायिक सम्यग्दर्शन सम्भव नहीं है इसलिये ध्यायिक सम्यग्दृष्टि बीन मरकर उधम भोगभूमिके तिर्यक पुण्यमें ही उत्पन्न होते हैं। अथ शोहा शरीरके पूरे सदन पर विचार कीजिए। था प्ररन है एक तखते रही समाधान है। तियब्रानियामें ध्यायिक सम्यग्दर्शन कनो नहीं होख इसका विचार करना है। किन्तु उधके उधमें इतना कहना पयात वा कि कदतिर्यकसाधु मनुष्य यदि ध्यायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है तो वह मरकर उधम भोगभूमिके तिर्यक पुण्यमें ही उत्पन्न होता है पछा नियम है। दहां समर्थनमें ब्रह्मवेदशीयां तासां ध्यायिकसम्मत्तत्त्वं यह हेतु कथनकी क्या आशयकत थी। इसीथा कहते हैं रही प्ररन और रही उत्तर।

मूठरे यहाँ ब्रह्मवेदशीयां यह वाक्य रचना आगम परिषदीके अनुकूल नहीं है अतएव अनोत्पन्नक मी है क्योंकि आगमम तिर्यक तिर्यकनी और मनुष्य मनुष्यनी पक्षे भेद करके व्यवस्था की गई है तथा इन संज्ञाकोअ मूठ आभार भेद जोडकका उदय कलाया गया है।

हमारे सामने यह प्ररन था। हम बहुत अश्लक्ष हम विचारमें थे कि यह वाक्य प्रत्यक्ष मूलममा है वा बाहास्त्रमें उक्त अड पना है। त्वारिक विचारणाक बाद भी इसके निश्चयक मयन आभार इत्यसिद्धि प्रचीन प्रतियों ही थी। तदनुसार हमने उधर भाग्य और बंधुय मातृकी प्रत्याक संकलन कर शंकरसहोअ मुद्रित प्रतियोंके मिलान करना प्रारम्भ किया। परिशामत्वरूप हमारी धारणा यही निकली। यद्यपि तत्र प्रतियोंमें इन वाक्यका अभाव नहीं है पर उनमध कुछ प्रचीन प्रतियों पछी मी थी जिनमें यह वाक्य नहीं उल्लख होत है।

इसी मुठकी व्याख्यामें दूसरा वाक्य ध्यायिक पुनम ब्रह्मवेदक मुद्रित हुआ है। यहाँ मनुष्यनिधोके प्रकरणमें यह वाक्य आता है। कलाया यह गया है कि यथो मनुष्यनिधके ही धीनों सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति उधमें ही अन्त्यात मनुष्यनिधोके नहीं। निरवकल-मनुष्यनिधके ध्यायिक सम्यग्दर्शन मार्क,रकी मुष्मत्तये ही कहा है यह धारित करनेके निध इस वाक्यकी मृति भी गर है।

किन्तु यह ध्ये स्पष्ट ही है कि आगममें 'मनुष्मिनी' पर ऋषिदेवके उदयपाले मनुष्म गतिके बीबके लिए ही आया है। जो लोकमें नारी, महिला या स्त्री आदि शब्दोंके द्वारा व्यक्त होना है आगमके अनुसूचर मनुष्मिनी शब्दका अर्थ उल्लेख मिला है। एसी अक्षरनामें उक्त वाक्यको मूलका मान लेन पर मनुष्मिनी शब्दके दो अर्थ मानने पड़ते हैं। उल्लेख एक अर्थ तो ऋषिदेवका उदयपाला मनुष्म थीय होता ही है और दूसरा अर्थ महिला मानना पड़ता है चाहे उल्लेख ऋषिदेवका उदय हो या न हो।

ऐसी महिलाको भी जिसके ऋषिदेवका उदय होता है मनुष्मिनी कहा जा सकता है और उल्लेख ज्ञापिक धर्मग्रन्थके नियम करनेके लिए वह वाक्य आया है यदि यह कहा जाय तो इस कथनमें कुछ भी तर्काश नहीं प्रतीत होता क्योंकि ऐसा कि हम पहले कह आये हैं कि आगममें मनुष्मिनी शब्द मातृदेवकी गुणवत्तये ही प्रयुक्त हुआ है, अतएव वह केवल अयन अर्थमें ही परिचय है। अन्य आपत्तियोंका निधि-निषेध करना उल्लेख काम नहीं है।

हमने इस वाक्य पर भी पर्याप्त उदाहरण कर एक प्रतियोगमें उल्लेख अनुसन्धान किया है। प्रतियोगके निश्चय करनेसे सात हुआ कि यह वाक्य भी एक प्रतियोगमें नहीं उपलब्ध होगा।

इसी प्रकार एक वाक्य सतर्कसा — इत्यादि युक्तरी न्याय्याके प्रसङ्गते लेख्य प्रकरणमें आता है। यह इस प्रकार है—

ह्यस्मभगाः कुतो न सञ्चन्ते इति चेत् तत्रावस्थितवद्वरपापेक्षया पञ्चैव । अपथा वेपथी भवे चासादने पुरेन्द्रियेषु मोक्षधये सम्मवापेक्षया पञ्चैव ।

प्रकरणे कृत्वा आदि लेख्यावासे स्वसादनसम्बन्धि बीबोंके स्पर्शनका है। तिर्यक और मनुष्म सासादन सम्बन्धि बीब मर कर नरकमें नहीं उदयन होते। जो देवगतिमें जाते हैं या देवगतिमें जाते हैं उनके कृत्वा आदि अयुक्त लेख्यार्थे नहीं होतीं। नरकमें जानेवालाके कृत्वा आदि अयुक्त लेख्यार्थे और सासादनसम्बन्धन दोनों होते हैं। इसी अपेक्षासे वहाँ कृत्वा आदि धीन अयुक्त लेख्यावासे स्वसादनसम्बन्धि बीबोंका स्पर्शन क्रमते कुछ कम पाव बटे चौदह यत्न कुछ कम पार बटे चौदह यत्न और कुछ कम दो बटे चौदह यत्न करा गया है।

यह परस्परसागमका अभिमत है। सर्वाधिकारिमें सत् संख्या और क्षेत्र आदि अनुयोगाद्वाराक निरुत्पन्न इसी अभिमताने किया गया है। कथान्नामसूत्रका अभिमत इससे भिन्न है। उल्लेख मत्तये सासादनसम्बन्धि बीब मर कर एनेन्द्रियोंमें भी उदयन होते हैं। इसलिए इस अपेक्षासे कृत्वा लेख्यार्थमें स्वसादनसम्बन्धि अयुक्त कम बरत बटे चौदह यत्न स्पष्टन मने ही बन जाने परन्तु परस्परसागमके अभिमत से इन लेख्यार्थों में यह स्पर्शन उपलब्ध नहीं होता।

हमारे अमने यह प्रश्न था। सर्वाधिकारिमें अब भी हमारा ध्यान 'ह्यस्मभगाः कुतो न सञ्चन्ते इत्यादि वाक्य पर आता था हम विचारमें पड़ जाते थे। प्रश्न होता था कि यदि सर्वाधिकारिके मतमेदकी चरणा कला ह्य या तो स्वरूपस्वाप उन्हीं इस मतमेदका निर्देश क्यों नहीं किया ? अनक प्रकरणे इस वाक्यके समाधानकी और ध्यान शिष्य पर समुचित समाधानः अभ्यासमें लुप रहना पड़ा। यह विचार अक्षर्य होता था कि यदि सर्वाधिकारिकी प्राचीन प्रतियोगका अभय लिखा जाय तो सम्भव है उनमें यह वाक्य न हो। हमें यह संकेत करते हुए प्रसन्न होती है कि हमारी पारया ठीक निकली। मूर्च्छिते हमें ध्ये तादृशीय प्रतियोग



उपलब्ध हुई तब यह वाक्य नहीं है। इस आधारसे हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि यह वाक्य भी धर्माधिकार नहीं है।

अर्थ प्रथम सर्वाधिकारमूलका मुख्य लक्षणा भरमप्या नित्येने कोश्यापुरसे किना था। वृत्त मुख्य श्री प्रोतीकप्र गोतमकप्र काठारी द्वारा उपाहित होकर आश्यापुरसे हुआ है। तथा सीसरी वार भीमान् वं बंधपर भी कायाप्रवाधाने उपाहित कर इसे प्रकाशित किया है। पण्डितजी ने इसके उपाहित करनेमें पर्याप्त भय किया है और अन्य सरकरवांकी अपेक्षा यह संस्कार अधिक शुद्ध है। फिर भी निम्न महत्त्वपूर्व शस्त्रप्रवाहाकी ओर हमने फलकोश स्थान आकर्षित किया है वे उस संस्कारमें भी मयास्थान आकर्षित हैं।

धर्माधिकारिक नित्ये को टिप्पणियों उद्धृत की गई हैं वे भी कई स्थानों पर प्रामात्यादक हैं। उदाहरणार्थ अश्वमेधकस्याम धर्मशास्त्रमें नाना धीसोत्री अपेक्षा [साक्षात्सम्पन्धियों] उद्धृत फल आशितके असम्पत्तने भागप्रमाथ फलमाया गया है। इस पर टिप्पणी करते हुए टिप्पणकार लिखते हैं—

यं बलिप्रमाथ असम्पत्तनागा इति—यं यं धर्माधिकारका असम्पत्तनागा समस्तप्रवाहात् एकसमय एक स्थाने यं यथा असम्पत्तसमयप्रवाहात्।

इसका अर्थ यह है कि यह धर्माधिकार असम्पत्तनों भाग एक समय शब्दवाला होनेसे एक समय प्रमाथ ही होता है, क्योंकि एक धर्माधिकार असम्पत्तत सम्य होते हैं, अतः उसका असम्पत्तत भाग एक समय ही होगा।

स्वयं है कि यदि यहाँ आत्माओंको एक समय फल इस होय तो वे दूसरों निर्देश एक समय शब्द प्राय ही करते। बीसस्थान काश्यापुरागाइराम आशितके असम्पत्तने भागप्रमाथ फलकोश को स्पष्टीकरण किया है उसका भाव यह है कि कई साधनसम्पत्तियों का विग्रह करके दो समय तक बनाहारक रहे और तीसरे समयमें अन्य साधन सम्पत्तियों का विग्रह करके बनाहारक हुए। इस प्रकार निरंतर धर्माधिकारके असम्पत्ततने भाग बार बीस दा-वा समय तक बनाहारक होते रहे। इतलिय धर्माधिकारके असम्पत्तने भागप्रमाथ काय-कोशका वा से गुणा फल पर बनाहारक मायादत्तसम्पत्तियोंका कुछ फल उपलब्ध होता है।

अधिकार इतलिलिय प्रवियामे यह कहा जाता है कि पौलुके अनेक स्वता पर विरयको रण करनेके लिए अथ प्रत्याके श्वाक गाथा वाकवांश या स्वतन्त्र टिप्पणियां बोद्ध दी जाती हैं और आश्यापुरसे वे प्रत्यक्ष प्राप्त फल जाती हैं। सर्वाधिकारिक यह स्पष्टन बहुत ही बड़ी मात्रामें हुआ है। ऐसे तीन उदाहरण तो हम इस बख्श-इ मारम्ममे ही उद्धृत कर आए हैं। कदा न होगा कि यह किसी टिप्पणकारकी वृत्त है और अपने अपनी दृष्टिसे विरयता स्वयं करनेके लिए पहले वे वाक्य गुणादके स्थाने प्रवियामें लिख जागे और आगे चलकर उस पथे दृष्टी प्रति तैयार फल समय से ही मूल प्रथके रूप फल गये जागे। इनके विषय आगे भी जगे कर वाकवांश या गवापये मिली है जो अधिकार इतलिलिय प्रवियामे उपलब्ध नहीं जातीं और किन्हीं दूर कर देनेसे प्रकाशकी कुछ भी हानि नहीं होती। यहाँ हम कुछ ऐसे उपायार्थ वाक्यश्लोकों को तीन उदाहरण उद्धृत कर रहे हैं जो प्रथम लक्षणांमे थे और इन लक्षणांमेसे अलग करने पड़ें—

१ कुछ प्रवियामें गुणिय अथापक प्रथम धृषकी धृषिमें यत्नं यं गता मन्त्री महत्त्व आवत इत्तर्नः आदि पाठ उपलब्ध होता है। अतः तद्वर्ती मुद्रिय प्रवियामें भी फल प्राप्त प्रकाशित हुआ है। हमारे जानने से

प्रतिपां भी उनमेंने अपिकठर प्रतिपोंमें यद पाठ नहीं ह खीर वृत्तिका दन्ते हुए नद वृत्तिकारका प्रतीत भी नहीं होता, इसलिये इस पाठका ऊपर न देकर नीच टिप्पणीमें लिखा दिया है ।

२ नीचे अध्यायके नीचे सूत्रके मूलपरिपाठक व्याख्यानके अन्तमें केशमुद्रमरकाराम्बामुपध्वन्यसद्वयं मन्त्रसामान्यमद्वेऽन्तर्भवतीति न प्रथमुक्तम् ।' यह पाठ्य मुद्रित प्रतिपोंमें उपलब्ध होता है । किन्तु हमारे सामन क्या इसलिये लिखित प्रतिपां भी उनमें यह पाठ नही पाया जाता । पाठ-रचनाको देखते हुए यह सर्वाधीनिकार का प्रतीत भी नहीं होता । तथा किये परीपहका रत्नचर्चनमें यह करनेके बाद सर्वाधीनिकार पुन उस परीपहके सम्बन्धमें विशेष स्पष्टीकरण करनेकी परिपाटी भी नही लिखाई दर्शा, इसलिये हमने इस वाक्यको मूलमें न देकर टिप्पणीमें अलगसे लिखा दिया है ।

प्रस्तुत संस्करणमें स्वीकृत पाठकी विशयता।

यह हम परत ही निर्देश कर आये ह कि प्रस्तुत संस्करणके पर-न सर्वाधीनिकारके अनेक संस्करण प्रकाशमें आ चुके ह । एही अर्थका म प्रस्तुत संस्करणके सम्बन्धमें हमें यकी पाठको स्वीकार करने या अस्वीकार करनेमें हमारे सामने बड़ी कठिनाई रही ह । लभ्यागत हमने इस बातका ध्यान रखा है कि मुद्रित प्रतिपोंमें जो पाठ उपलब्ध होते हैं । सर्वप्रथम उह ही प्रामुखता से आय । किन्तु इस निमित्त हम सर्वत्र पहलन नहीं कर सके । यदि हमें ज्ञान ठा-सुक्त पाठ काय्य इसलिये लिखित प्रतिपोंमें उपलब्ध हुए थे तर्हे स्वीकार करनेमें हमने संकोच नहीं किया । यहाँ तुलनात्मक रंगना मात्र प्रथम अध्यायक कुछ ऐसे पाठ दे रहे हैं जिनसे उनका महत्व पाठकोके ध्यानमें आ जाय ।—

५	५	पुरानी मुद्रित प्रति	प्रस्तुत संस्करण
१	१	—कृ । एवं व्यस्तजाना—	—यत् व्यस्तं जाना—
६	१	सर्वं परपति इरपतजेनेति	परपति इरपतजेने
१	१	भक्तिमार्ग	भाविमार्ग
१७	४	पुरपाधिय—	पुराकार—
१८	१	—यानामश्रीजानां नामा—	—यानां नामा—
१९	१	—विधिना नामशब्दा—	—विधिना शब्दा—
२	१	तत्त्वं प्रमाणात्म्या	तत्त्वं प्रमाणात्म्याम्
१९	६	—निर्देश । प्रशंसा—	—निर्देशः । च प्रशंसा—
१	२	संक्षेपवचनम् । अपरे	संक्षेपवचनम् । केचित् विलारवचनम् । अपरे
१४	१	द्विविधा सामान्येन तावत्	द्विविधा सामान्येन विशेषेण च । सामान्येन तावत्
४४	५	—संक्षेपभागः	—संक्षेपभागाः
४९	७	—सूत्रः अष्टौ नव चतु—	सूत्रा अष्टौ चतु—
५	१	—संक्षेपभागः सूत्रः । साव्यहन—	—संक्षेपभागः । अक्षयत—
		सम्बन्धविधिः लोकज्ञातसंक्षेपभाग	
		अष्टौ नव चतुर्दश भागा वा देशोनाः	
		सम्बन्धिम्याद्यभाषानिबृत्तिस्यैवचतुर्दशानां	
		सामान्योक्तं स्पर्शनम् । अस्मत्त—	



१६	१	—स्वर्णः उपमानार्थापत्त्यादीना मन्त्रैवास्तर्भावावुक्तस्य	—स्वर्णः । उक्तस्य
१६	१	—ज्ञानमपि प्रति	—ज्ञानमज्ञानेय प्रति
१४	१	एवं प्रसक्त्या आसत्य	एवं एति आसत्य
१७	२	उत्थः । सम-	उत्था । सम-
१७	४	नातिवर्तन्त इति	नातिवर्तन्त इति
११०	१	—गंतं करणमित्यु	—गंतं । करणमन्तःकरणमित्यु
१११	६	पद्यापेति ।	पद्याप्य वेति ।
१११	७	अपैठस्य	अपैठस्य
१११	७	अधुपि अधुपिभेषपि	अधुपिअधुपिभेषपि
११७	३	द्विभित्तः	द्विभित्तः
११७	५	द्विभित्तियु	द्विभित्तियु
१२	५	प्रतीत्या म्यु-	प्रतीत्य म्यु-
१३१	३	ताम्याम् । तयो	ताम्यां विशुद्धप्रतिपाताम्याम् । तयोः
१३४	१	नारूपधिति	नारूपधिति
१४	१	—ज्ञानमकम्बहानं	—ज्ञानं किमगहानं
१४०	८	—प्रवचमद्योगो	—प्रवचः प्रद्योगो

### ३ प्रति परिचय

और भी ऐसी अनेक कई बातें थीं जिनके अरथ हमने कई प्राचीन प्रतियोंके आधारसे इसे पुनः सम्पादित करनेका निश्चय किया इतके लिए हमने अर्द्धशतिकांकी दो ताडपत्रीय प्रतियां, दिल्ली मण्डारसे दो इत्यतिशित प्रतियां और बैंग सिद्धात्मक आधारसे एक इत्यतिशित प्रति प्राप्त थी। मुद्रित सस्करणोंमें से हमारे सामने भी वं कल्पना भरमत्ता प्रिन्टने द्वारा सम्पादित और भी वं बंगीपराजी सोसायटि द्वारा सम्पादित प्रतियां थीं। इस काममें अर्द्धशतिकांकी एक ताडपत्रीय प्रति और दिल्ली मण्डारकी एक इत्यतिशित प्रति विशेष उपयोगी सिद्ध हुई। अन्य प्रतियोंकी अपेक्षा ये अधिक शुद्ध थीं। फिर भी आदर्श प्रतिके रूपमें हम किसी एक को मुख्य मानकर न चल सके। हम यह तो नहीं कह सकते कि सर्वाधिकशुद्ध प्रस्तुत संस्करण एक इतिवृत्त अन्तिम है फिर भी इसे सम्पादित करते समय इस बातका ध्यान अत्यंत रक्ष्य गया है कि जहाँ तक बने इसे अधिक परिशुद्ध और मूलमानी बनाया गया।

प्रतियोंका परिचय देनेके पहले हम इस बातका स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सर्वाधिकशुद्धको सम्पादित हो कर प्रकाशमें आनेमें आश्चर्यकता से अधिक समय लग्य है। इतने लम्बे कालके भीतर हमें अनेक बार यह परिपक्व करना पड़ा है और भी कई आश्चर्य भंग हैं। इस अरथ हम अपने एक अग्रगण्य मुद्रित न रख सके। ऐसे कई उपयोगी वाक्य पत्र हम यहाँ बैठे जिनके न रहने से हमारी बड़ी क्षति हुई है। उन अग्रगण्योंमें प्रतिपरिचय भी था इत्यलिये प्रतियों का जो पूरा परिचय हमने लिख रखा था वह तो इतक समय हमारे सामन नहीं है। वे प्रतियां भी हमारे सामने नहीं हैं जिनके आधारसे हमने यह अर्थ किया है। फिर भी हमारे

मिन भी मुक्त वी क मुकधनिका शास्त्री मूढिनी और वं वरवरीलाककी न्यायाचार्य दिल्ली की सहायते ठक रणानों की प्रतिरोका का परिचय हम उपलब्ध हुआ है वह हम यहाँ दे रहे हैं—

( १ ) का —यह मूढिनीकी लाइवश्रीव प्रति है। लिपि कनाही है। कुल पत्र ११६ हैं। इन्को प्रत्येक पुरमे वक्ति १ आर प्रत्येक पक्तिमें अक्षर लगभग ७१ है। प्रति शुद्ध और अक्षी हासतमें है। सस्वती गच्छ पलाजार गण कुन्दकुम्हारनरक प्रा वसुधनन माद्रपद इत्या प्रतिपत्ता शास्त्रि शक १५५१ विक्रमि सत्तरके नि इन्की लिपि सनात की थी। हमारे खानन उपरिपठ प्रथिबोमे यह सभन अक्षिक प्राचीन थी। इवका संकेदाख्य ता है।

( २ ) ना०—यह मूढिनीकी तात्पर्याय प्रति है। लिपि कनाही है। कुल पत्र १११ हैं। प्रत्येक पत्रमें ६ और प्रत्येक पक्तिमें अक्षर लगभग १७ हैं। प्रति शुद्ध और अक्षी अक्षरवर्गों में है। हमने लिपि रता तथा लिपिसालना निर्येठ नही है। इवका संकेदाक्षर ना है।

३ ) नि १—यह भी साशा हरसुउपय सुगनचन्द्रकीके नये मन्त्रिमें स्थित दि जैन सस्वती मन्त्रार धर्मपुग लिपिकी हस्तलिखित प्रति है। पत्र संख्या २१ है। प्रत्येक पत्रमें १ पक्ति और प्रत्येक पक्तिमें लगभग ३ अक्षर हैं। पत्रकी लम्बाई ११ इंच और चौड़ाई ५ इंच है। चारों ओर एक एक इंच हाथिया दाइकर बीचमें प्रविर्णवि की गद है। कागज पुष्ट है, अक्षर भी बड़ सुन्दर हैं जो बिना किसी कपके आगामीम पद जात है। मन्त्रवर्गमें संख् १७५२ आयाद् सुदि ११ गुणवारअ समाप्त हुआ था। प्रतिके अन्तमें यह प्रसंगित उल्लेख होत्ये है—

प्रथिमत्र विज्ञानेन परित्यक्तमस्त्रि सुत्रं । उद्गुणसुधासमुद्रं वक्ष्ये सर्वं प्रशस्तितम् ॥ १ ॥ अस्वखरे दि पोट्यं मन्दिनात्रजगारे । नगरे नामकीषी लिखीयात्पत्रके ॥ २ ॥ छ ॥ संख् १७५२ बर्ये आयाद् सुदि ११ गुणे निर्यादनात्पत्रकमनाशंपरानापरार्थमिदथाय निश्चितं ।

इवका संकेदाक्षर नि १ है।

( ४ ) दि २—यह भी पूजाक रणानकी हस्तलिखित प्रति है। पत्र संख्या १११ है। प्रत्येक पत्रमें १ पक्ति और प्रत्येक पक्तिमें लगभग ५ अक्षर हैं। मात्र प्रथम और अन्तिम पत्रमें पक्ति संख्या कम है। पत्रकी लम्बाई ११ इंच और चौड़ाई २ इंच है। अगल अक्षम गद इंच अक्ष ऊपरनीमे पीत इंच हाथिया दाइकर प्रविर्णवि की गद है। प्रतिके अन्तमें आप हुए लक्ष्य विहित हाता है कि यह प्रति वी १८७५ आशिन बरि १४ मंगलवारका निगदर ज्ञाप्य हुए थी। लक्ष इत प्रकार है—

संख् १८७५ मंगलमन्त्राग अथिनीमान कृप्यरत तिषी च शुभ अतुदरी भूमिचतरेष लिखित प्रेनिपुगमन्त्र विगणन मातृका स्त्री माह ।

हम प्रतिके अन्तमें लिख हाता है कि यह सम्भवतः १ के आशानम ही लिखी गई होगी। प्रविर्ण भी विगणन की न है अर मन्दिशुप ( मन्दिनी ) विन मन्दिम वैठका या विठकर वेवार हुए है। इवका संकेदाक्षर नि २ है।

हम प्र १७५१ मन्त्र पत्रका लिपि अन्तिमन्त मान आग की है। यह मन्त्र वाचनके समय उच्यमाने की गद है। तथा सुत्रके अन्त में मन्त्राग मन्त्र विगणन अन्तर्वैत विगणनका गांवर्य प्रति भी आनेसे रही है। यह मन्त्र मन्त्रागमानी मन्त्र अर है। यह भीमा इवामग मानधोक्ता अमवाका मन्त्र पर स्थित है

झोर घीना इत्यादि लगभग १२ मील दूर है। प्राचीन स्थलेलोच विदित होता है कि उत्तर प्राचीन नाम सेमोहराव है। बिमलासा सतीका अपभ्रंश नाम है। नगरके चारों ओर परबोय और लण्डर प्राचीनप्राचीन नगरकी हस्तलिखित साक्षी हैं। यहाँका बिमलदर दर्शनीय है। इसमें एक उत्कृष्टीमयन है। जिसमें अनेक प्रत्योकी हस्तलिखित प्राचीन प्रतिमा अब भी मौजूद हैं।

### ४ प्रकाशनमें बिलारिका कारण

सर्वप्रथम इच्छा सम्पादन हमने उत्कृष्ट भाषणे किया था। सम्पादनमें लगनेवाली आकरमक सम्मती हमें स्वयं बुझनी पड़ी थी। एक बार स्वयंके चल निकलने पर हमें प्राया थी कि हम इसे आधुनिक प्रकाशनमें ले आँगे। एक दो आधुनिक संस्करणों इच्छा प्रकाशनके लिए प्रस्तुत भी थीं परन्तु कई प्रतिबंधों। आचारसे मूलका मिलान कर लिखा सेना और अनुवाद करना अति कठिन हम जानते थे उतन कष्टी कर नहीं लेंगे। परिश्रम स्वरूप वह काम आकरमकवाले अधिक पिल्लुवा गया। इसी बीच वि १९११ में श्री पूर्य श्री १५ अ. ७ गवेषणमण्डल की वर्षाकी सेवाओंके प्रति सम्मान प्रकट करनेके लिए श्री गवेषणमण्डल कर्षी जैन प्रथमालाकी स्थापना की गई और सेवा गया कि सर्वांगविक्रिका प्रकाशन इसी प्रथमालाकी ओरसे किया जाय। तदनुसार श्री मागव भूयस प्रेष न यह मुद्रणके लिए दे दी गई। किन्तु प्रेषकी निशाह और प्रथमालाके सामने उत्तरोत्तर पूर्वरे कर्षीके आते रहनेके कारण इसके प्रकाशनमें काफी समय लग गया।

### ५ भारतीय खानपीठ

इस खत किसे यह हम इसके मुद्रणका कार्य पूरा करनेकी स्थितिमें आने दो थे कि कई ऐसी आर्थिक व दृष्टी अङ्गुनमें प्रथमालाके सामने उठ सकी हुई बिनाके प्यानमें रहकर प्रथमालाहाने मेरी सम्मतिसे इच्छा प्रकाशन देकर दिया और मुझे यह आश्चर्य कि इतने कार्यको पूरा करनेका उत्तरदायित्व यदि भारतीय खानपीठ ले लेंगे तो अधिक आचारसे पर यह प्रथम भारतीय खानपीठके सामने ही रहा जाय। प्रथमालाकी इस मनसुबको प्यानमें रहकर मैंने भारतीय खानपीठके सुलोच्य मन्त्री श्रीमान पी अयोप्यमण्डल की गोपनीयसे इस सम्बन्धमें बातचीत की। गोपनीयताके एक ही उत्तर देना कि अपामात्र था दूसरे किसी कारणसे यदि सर्वांगविक्रिके प्रकाशनमें भी ग कर्षी जैन प्रथमाला कठिनार्थ अनुमत्त करती है तो भारतीय खानपीठ उठे तो ही अप्रकाशित स्थितिमें नहीं पड़ा रहने देगा। वह मुद्रण होनेके बाद होय रहे कारणसे तो पूरा कार्यगा ही था ही कर्षी प्रथमालाका इस पर जो ध्यान हुआ है उठे भी वह खानन्द सौय देगा। आचारवातः बातचीतके पहले भारतीय खानपीठसे यह कार्य कर लेना हम बहुत कठिन मामले था कर्षी उच्छे प्रकाशनको भी काम और निरोपण है उत्कृष्ट सर्वांगविक्रिके मुद्रित प्रतीमें हमें बहुत कुछ अर्थोंमें समर्थ था दिशा देता है। किन्तु हमें वहाँ पर संकेत करते हुए प्रथम प्रकाशक होके है कि धर्म कीर्ति बात इसके बीच में बाधक निकल नहीं दूरे। इसमें न केवल श्री गवेषण की के उत्तर अन्तःकरणका परिचय मिला अपि तु भारतीय खानपीठके सम्बन्धमें बिल विद्याल इतिहासका सामग किया जाता है उत्कृष्ट यह एक माकूल उत्तरदाय है।

### ६ अन्य द्वितीयों से

सर्वांगविक्रिका प्रकाशन भारतीय खानपीठसे हुआ है पर देय कर हमारे कतिपय दिनों और आदिदिनोंको किन्तुने इसके प्रकाशनमें प्रथमालाका आर्थिक व दृष्टी प्रकाशकी सामक्य अनुवाद है, अथवा होगा। परन्तु

यह बहुत ही शोच प्रदान है कि हम प्रत्येक प्रकाशन किछ संघाते हो रहा है । उनके देखनेकी बात तो केवल इतनीसी है कि ज्योंसे साहित्यकी भीष्टिके विषय थे वन वा दूसरे प्रकारकी सहाय्य ही है उसका ठीक तरह से उपयोग हो रहा है या नहीं । साधारणतः प्रकृत और आयकताओंकी सुविधाकी दृष्टिसे ही अल्प अल्प संस्थाओंकी स्थापना की जाती है । परन्तु हमें वे सब एक ही महादुःखकी शलाका प्रसाधार्य हैं । अमुक एक अमुक शास्त्रमें लगा और अन्त फल अमुक शास्त्रमें यह महादुःखकी बात नहीं है । महादुःखकी बात तो यह है कि उन महादुःखकी हर एक शलाका प्रशाखा तथा दूसरे अल्प अल्प अपने-अपने स्थानमें उचित कार्य कर रहे हैं या नहीं । नाम रूपा आग्रह जैन परम्पराको न कमी हुए रहा है और न खूब चाहिए । केवल व्यवहारके सम्बन्धन हेतु व्यवसाय गान दिया जाता है । अतएव सर्वाथसिद्धिका प्रकाशन क्या बर्षी प्रथमलासे हुआ क्या मारसोप श्रमपीठन गेना नीचे एक हैं ।

### ७ आमार मदर्शन

कि भी यहाँ कह दृष्टिसे हमें अपने उपयोगियों मित्रों व द्वितीयिकोंके प्रति आमारस्वरूप दो शब्द प्रकृत कर देना अत्यावश्यक प्रकृत होता है । यह एक निश्चित ही बात है कि जैन समाजका ध्यान जैन साहित्यके प्रकाशनकी ओर अभी उठना नहीं गया है किन्तु कि जाना चाहिए था । प्राचीन कालमें मन्दिर प्रविष्ट और शास्त्रोंको लिपिकर करकर सब तत्र प्रविष्टित करना ये दोनों कार्य समान माने ध्यते थे । अभी तक शास्त्रोंकी रक्षा इसी प्रकारसे होती आर है । हमारे पूर्वज आदि उन शास्त्रोंके शब्द ही आह न हैं किन्तु वे शास्त्रोंकी प्रतिलिपि कर कर उनकी रक्षा करना अपना पुनीत कृत्य समझते थे और इस कार्यमें प्रयत्नशील भी रहते थे किन्तु कल्पे सुदृष्ट कार्य प्रारम्भ हुआ है तबसे एक तरहसे समाजने इस ओरसे अपनी आँख ही मूँद ली है । अब प्रतिलिपि करना तो बुर रहा वे उनकी एक एक मुद्रित प्रति निष्ठापर देकर लीहनेमें भी हिचकिचाने लगे हैं । इस मानमें अविद्यात लक्ष्य करनेकी बातको तो छोड़ो वे स्वयंके क पनसे भी यह कार्य सम्भव नहीं करना चाहते हैं जब कि वे इस बन्धन उपयोग दूसरे दिशावर्ती और अस्थायी कार्योंमें करते रहते हैं । उनका एक है कि हमने कहे प्रयोगों हमारे यहाँ समझनेवाला ही जैन है ! हम उनके मन्दिरमें रख कर क्या करेंगे ! यदि इसी तरहसे प्राचीन पुराणोंमें अम लिखा होता तो क्या साहित्यकी रक्षा होना सम्भव था ! यह करना तो कठिन है कि हमने अपना पूरा साहित्य बचा लिया है । यद्यपि जो कुछ भी बचा लिखा गया है वह भी पपल है । मगधान् महावीरकी चर्चा और उनके उदयेसोते कीषा सम्पन्न स्थापित करनेकी अनन्य रखनेवाला एकमात्र खचन यह चाहिए ही है । दुःखित प्रत्येक परम्परा यह कर्तव्य हो जाता है कि वह इतकी संरक्षाके लिए हर एक सम्भव उपाय जानमें लावे ।

प्रथम यह है कि इस ओर भारतीय श्रमपीठके संस्थापक व दूसरे कार्यकर्ताओंका पर्याप्त ध्यान गया है और वे इस बातका विचार किये किना कि इसके प्रकाशन आदि पर पड़नेवाला व्यय बाणित हाया था नहीं, सब प्रकारसे प्राचीन साहित्यके प्रकाशनमें दृष्टावधान है । सर्वाथसिद्धिका भारतीय श्रमपीठके प्रकाशित होना उनकी इसी शुभ माननाका सुष्ठु है इसलिए हमें प्रथम हम नाम शब्दोंमें उनके प्रति आमार मदर्शित करना अपना कर्तव्य मानते हैं । सर्वाथसिद्धिक संस्थापक हमारे नाते तो हमें यह कार्य करना ही है खय ही यहाँ प्रथमलासे सम्बलक उनके नाते भी हमें इसका निवारण करना है ।

भी ग वषीं जैन प्रथमाला एक ऐसी संस्था है जिसे उन्नाबके लक्ष्यप्रतिष्ठ विद्वानोंका प्रत्यक्ष प्रोत्साह है इच्छित सर्वाधिकारिता उक्त द्वारा प्रकाशित हो जाना अतिन कार्य नहीं था फिर भी जो अतिन परिस्थिति उक्तके सामने थी उक्त देखते हुए उन्ने जिस अनुकरणीय मागका भीगवांश किया है इसके लिए हम वषीं प्रथमालाकी प्रकृत समितिके मत भी आमारे प्रदर्शित करना अन्ना अर्थात् मानते हैं।

यहाँ हम उन महापुरुषोंके प्रति भी आमारे प्रदर्शित करना अन्ना कृत्य समस्त है जिन्होंने एक मात्र सहायसिद्धिके प्रकाशनाके प्रति अभिवृत्ति होनेके कारण अपनी उदार सहायता वषीं प्रथमाला को दी थी। देनेवाले महापुरुष ये हैं ...

१ पूज्य श्री ? न आचार्य सर्वधरजी महापुरुषके सनुपदेशक श्रीमान् न लक्ष्मीधरजी वषीं। वषीं श्री न (१५) इस कामके लिए दिल्लीकी पहाड़ी परिसर व विद्यार्थकको उन्नाबके मित्राप य।

२ वषीं प्रथमालाके श्रीगणेश शशु यमलरूप की सहायकार। आपन इस कामके लिए (१६) प्रदान किये हैं।

३ उदारचेला श्रीमान् नेमचंद यमलरूप की सा वशील उन्नानावाद। आपकी वीरी न गजपार्थ हमारे पास सभिसर धनयासार पढ़ने कनाख आर थी आरक्षणमा माह यहाँ थी थी। इकी परिचामलरूप अतिन गजपार्थकी प्रस्थाप वशील अ न ? ) प्रथमालाको प्रदान किय य।

इच्छितलिखित प्रारंभिके प्राप्त करनेमें हमें श्रीमान् व फनालाह की अमलाह दिल्ली व नेमिचन्द्रकी स्योविद्यालय जैन विद्वान् भक्त आय प क मुकेशिनी शास्त्री मूकेशिनी और व दरवापीलाहकी कठिन स्यसाचार्य दिग्गज वृी सहायता मिली है अवश्य इन इनकी भी आभार है।

भारतीय जलार्थक समारथि भी शशुलासर्थ धरुण्ड उक्के प्रकाशनोंका सुन्दर और आकर्षक बनानेमें पयास भक्त करत रहते है। सहायसिद्धिका इस योग्य बनाने में व लक्ष्मी प्रकाशकी सहायता पदुचाननें भी उन्होंने हमें सहायता किया है भक्त एव इन इनकी भी आभार है।

सहायसिद्धिके परिशिष्ट और नियमवर्ती हमारे सहजगी व हीरालाल की श्राद्धिने सवार किये हैं और आभारयक संस्थापनक साथ व इसमें सिय गन है अवश्य हम इनका किना आमारे मानें याहा है।

तथा वशील उन्नाब यकाआम सहायसिद्धि प्रथम रीका है। इसमें प्रमे वा विचार आगमिक श्राद्ध निक आनि सभी पदविदास किया गया है। हमें आटा है कि इस सम्माननें समाजमें इच्छा मान और अधिक फेला।

--पूज्यशब्द सिद्धान्तशास्त्री



## प्रस्तावना

मे सोन हूँ मय स्वभाव का है म कहाँ से आया हूँ मुझे क्या क्या है और उसकी प्राप्ति किस निमित्तोंके सिक्के पर होती है ? जो मनुष्य इन बातोंका विचार नहीं करता वह अपने गन्तव्य स्थानको प्राप्त करनेमें समय नष्ट होता ।

आध्याय य दीर्घविद्वेत्सः पत्रलुङ्गामिदिम् तत्पत्रानके प्रसंगेण यद् वचनं कदा है । यह मनुष्यके कर्तव्यका स्पष्ट बोध कराता है । कर्म क्या विचार ही जीवनका तार है । जो विचार है वे भी अपने कर्मोंका विचार कर प्रवृत्ति करते हैं फिर मनुष्यकी छे क्या ही अलग है ।

मनुष्य प्राचीन कालमें हम पर्यटन करते हैं किन्ती क्रमता भी नहीं की जा सकती । पर्यटन होता है । कप इतके लिए केवल बाह्य परिस्थिति ही एकमात्र कारण है । एक पित्तके दो बालक होते हैं । उनका एक प्रकारसे कालान्तर प्राप्त होता है । एक पाठशालामें उन्हें शिक्षा मिलती है फिर भी उनके बीच स्वभावमें बिल्कुल अन्तर होता है । क्यों ? इच्छा शारीरिक स्वभावके विचार कोई अज्ञान कारण अज्ञान हीना आदि । साधकोंमें इस प्रश्नका गहरा गहन विचार किया है । उक्त रूपमें उन्होंने विचारको यही अनुभव दिया है कि पुरुषका कर्मोंके कारण प्राचीनके जीवनमें इस प्रकारकी विविधता दिखाई देती है ।

विश्वकी विविधताका अन्तर्लोकन कर उन्होंने कहा है कि इस प्राचीनके प्रथम अवस्था निर्गह है । अनादि अज्ञानसे यह प्राणी इस अवस्थाका पात्र बना हुआ है । किन्तु अज्ञानादिमें गिरे हुए इस विच्छाका का मिलना किन्तु दुर्लभ है । इस पर्यायके निकट कर अन्तर्लोकन प्राप्त होना उक्त ही दुर्लभ है । अन्तर्लोकन भी कोई गिनती नहीं । उनमें परिश्रमसे कष्टे हुए अन्तर्लोकन होना इतना दुर्लभ है किन्तु कि अन्तर्लोकन प्राप्त हो जाने पर भी मनुष्यके अन्तर्लोकन प्राप्त होना दुर्लभ है । यदि यह परिश्रम ही हो जाता है तो भी इससे अन्तर्लोकन प्राप्त नहीं क्योंकि एक मनुष्य पर्याय ही यह अवस्था है किसे प्राप्त कर वह अपनी उन्नतिके लक्ष साधन बना सकता है । किन्तु अन्तर्लोकन प्राप्त होना बहुत ही अठिन है । एक अज्ञान द्वारा अन्तर्लोकन इसे इन शब्दोंमें व्यक्त किया है । वे अन्तर्लोकन किसे प्रकार किसे भी पर्यटन पर लगी हुए अन्तर्लोकन गिनती दुर्लभ है इतनी अन्तर्लोकन पर्यायोंमें परिश्रमसे करते हुए इस मनुष्य पर्यायका मिलना दुर्लभ है । अज्ञानसे इसे मनुष्य पर्याय भी किन्तु अन्तर्लोकन है जो भी उसे प्राप्त कर अपने कर्तव्यकार्यमें लक्ष्य प्राप्त करनेके मार्गमें अन्तर्लोकन करना और भी दुर्लभ है ।

मनुष्य होने पर यह प्राणी नहीं मात्र किन्तु मनुष्यका ही अन्तर्लोकन है । कभी यह पुत्र ही और अन्तर्लोकन किन्तु करता है तो कभी अपनी मानसप्रतिभाकी किन्तुमें अन्तर्लोकन प्राप्त करता है । अन्तर्लोकन ही और अन्तर्लोकन मनुष्यका ही अन्तर्लोकन ही होता है । जो अन्तर्लोकन नहीं उन्तर्लोकन किन्तु करता है और जो अन्तर्लोकन है उन्तर्लोकन और अन्तर्लोकन देलता भी नहीं । अन्तर्लोकन है कि यह न केवल पर्यटन दुर्लभ इस मनुष्य पर्यायका गहरी अन्तर्लोकन किन्तु अन्तर्लोकन कर्म क्या भी न होनेसे इस पुत्र अन्तर्लोकन अन्तर्लोकनका पात्र बनना पड़ता है ।

इस स्थितिसे इस प्राचीन उदार शैले से इस प्रकरणके समाधान स्वरूप प्राप्त होने के माग दरखाने हैं जिनमें सम्पूर्ण बुद्धि अत्यन्त सुख है। कुछ दो प्रकारके हैं— एक वह जो यहिक इच्छाओंकी पूर्ति के मार्गदर्शन करता है और दूसरा वह जो बिना और कष्टके मार्गकी अनुपादेय बतला कर आन्तरिक मार्गमें लगाता है। आत्माका हित क्या है? इस प्रकरणका उत्तर यदि हमें संपूर्णमें प्राप्त करना है तो यही कहा जा सकता है कि 'मोक्ष'। अतएव मोक्षप्राप्तिके साधनोंका जिसमें सम्पूर्ण प्रकारसे उपायोंका किया गया है वही शास्त्र सम्पूर्ण सुख कहलानेकी आवश्यकता रखता है।

इस दृष्टिसे जब हम प्राचीन साहित्यको ठकते हैं तो सर्वप्रथम हमारी दृष्टि अहममत्त पर पड़ी है। इसका सीधा सम्बन्ध मगधान महावीरकी बाणीसे है। ऐसी मान्यता है कि बिजने भी सीपहर होते हैं वे अर्थका उपदेश देते हैं और उनके प्रमुख शिष्य, जिन्होंने कि गद्यपर करते हैं, अन्य रूपमें अहममत्तकी रचना करते हैं। यह मुख्य रूपसे बरह जायें— विमालीय विमल होनेके कारण इसे आदर्श कहते हैं और संपूर्ण मुख्य अधिष्ठित गद्यपरों— गद्यपरोंके द्वारा इसकी रचना की जानेसे इसका दूसरा नाम गद्यपरिका भी है।

मगधान महावीरके मोक्ष ज्ञानके बाद तीन अनुभव केवली और पाँच भुक्तकेवली हुए हैं। इनमें अन्तिम भुक्तकेवली अहममत्त है। इन तक यह अहममत्त अपने मूलरूपमें आया है। इसके बाद उत्तरेतर बुद्धिबल और आचार्यादिके सीधा होते ज्ञानसे तथा पुण्यभक्तके किये जानेकी परिचाये न होने से क्रमशः वह विकल्पीन होया गया है। इस प्रकार एक बार जहाँ अंगभुक्तका अभाव हाता जा रहा था वह दूसरी बार सुतपरम्पराके अधिष्ठित ज्ञान रचनेके लिए और उत्तरेतर सीधा सम्बन्ध मगधान महावीरकी बाणीसे बनाये रखनेके लिए प्रयत्न भी होते रहे हैं। अंगभुक्तके बाद दूसरा स्थान अर्धभुक्तका मिलता है। इसका अंगभुक्त भी कहते हैं। इसके मूल भेद है— आचारिक चतुर्निष्ठसिद्धिबल केन्द्रा प्रतिक्रमण अन्तिक कृतकर्म दशकालिक उत्तरेतर, अन्य व्यवहार कल्याणकल्या महाकल्या पुण्यकी, महापुण्यकी और निरिच्छिक। इनमें सबार्थसिद्धिमें उत्तरेतरजन्य और उत्तरेतरिक केवल इन दो का ही उपलब्ध किया है। भी परन्तु सीकाके आधारसे विदित होया है कि इनकी रचना में अन्वयन ही की थी और अंगभुक्तके अस्तित्वकालमें ये उपस्थित थे। किन्तु धीरे धीरे अंगभुक्तके स्थान इनको भी धारण करनेकी शक्तिकाल अवस्थाके न रहनेसे इनका भी अभाव हाया गया। फल यह हुआ कि एक प्रकारसे इन मूलभुक्त अवस्था संचित हो गये। अन्वयपर परम्परामें अब आचार्यांग आदि अंगभुक्त और उत्तरेतरजन्य आदि अर्धभुक्त उपलब्ध हाता है वह किन्तु पाचपी शताब्दिके बादका संकलन है इसलिए वह मूलभुक्तकी दृष्टिसे अक्षय योग्य नहीं माना जा सकता। इस प्रकार अंगभुक्त और अर्धभुक्तके विकल्पीन होनेसे कुछ ६०३ पर्यंत लगे हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि उत्तरेतरमें मगधान महावीरकी बाणीका बहिष्कार या आदर्शांग बाणीका बहिष्कार हमें किसी रूपमें मिलता ही नहीं। अहममत्तकेवलीके कालमें ही उन परम्परों का मार्गमें विमल हो गई थी। परन्तु परन्तु अब मगधान महावीर और उनके पूर्णतः कोर्ण्डोंके आधारका बिना किसी प्रकारके उत्तरेतरके अहममत्त महावीर का उक्त समय निगम परम्परा या मूल संपूर्ण नाममें प्रसिद्ध हुए और बिजने परिचितवत् मगधानका उक्तमें न आचारका प्रथम किये वह उत्तरेतर परम्परा नाममें प्रसिद्ध हुए। इन कारण मूल अंगभुक्त और अर्धभुक्तों का अभाव नहीं किया जा सका किन्तु कालान्तरमें एक आधार हुए हैं बिजने अहममत्तके आधारेसे भुक्तकी रचना करना प्रारंभ किया है। अहममत्त और अर्धभुक्तकी रचना उन प्रयत्नमें सर्वप्रथम ६ आचार्य कुण्ड कुण्ड नाममें लगी लगे हुए हैं किन्तु अन्तिम आचार्य अहममत्त

शैली द्वारा जीवधि तत्त्वों का आरंभ मार्ग के अनुसार आचार्य विचार करते हुए न केवल शैलीयों के स्वरूपहीन मार्गहीन स्वरूप प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष किया है अपितु तबमें बहुत कुछ अंशमें विपरता भी साह है । इस तरह आचार्य आचार्यों द्वारा मूल भूतके अनुरूप भूतका निर्माण कर उतकी रक्षाके अनेक प्रयत्न हुए हैं । अगिला जन परम्परा रचनाकी दृष्टि जिस भूतकी सर्वाध्यायिका की जा सकती है उतकी सन्धेपने विपरण्ड इस प्रकार है—

प्रत्य नाम	कर्ता	रचनाकार
बदन्तशासन	या पुण्ड्रक भूतबधि	विश्वाम्नी दूसरी शासनिय या इसके पूर्व
अपत्यप्रामुख	या शुभकर	धर्मकाशीन
कथाप्रामुखी पृथ्वि	या पतिवृषभ	आचार्य गुणधरके कुछ काक बाद
अस्यय भूत प्रवचनसारप्रामुख	या कुन्दकुन्द	विश्वाम्नी पहली दूसरी शासनिय
पञ्चाशिकायप्रामुख व अर		
प्रामुख		
सूत्राचार ( आचार्य )	या बहकर	या कुन्दकुन्दक समाकालीन
सूत्राशयता	या शिवाय	,
तत्त्व बसुज	या सुहृदिय	या कुन्दकुन्दक समाकालीन या कुछ काक बाद

१. इनके समकालीन विषयमें यह विचार है । कीर्तसेन स्वामीने इन्हें शासन आर्यसंघु और तत्त्वशास्त्रिका विषय लिखा है । इन दोनोंका संबंधांतर पहलाध्यायोंमें उल्लेख पाता है । समकालः य धीरे श्लेषांतर परम्परामें उल्लिखित आर्यसंघु और नागदमित धर्मिक प्रकृति हैं जो व ही जा पतिवृषभके गुण प्रतीत होते हैं । श्रीधर्याज श्लेषांतराध्यायप्रामुखी प्रथमा श्लेषांतरमें आचार्य कीर्तसेनने जिस शिष्योपपन्थिका उल्लेख किया है वह वर्तमान शिष्योपपन्थिकामें अत्र प्रकृत है । यह हो सकता है कि वर्तमान शिष्योपपन्थिकामें उसका कुछ भाग सम्मिश्रित कर लिखा गया हो पर इतने शक्योंकी अति त मिक नहीं होती । पतिवृषभ उगलकिशोरकी मुक्तउत्तरके पुरातनकाल काकबसुकी की प्रस्तावनामें कालिकाशास्त्र भारतकर एक प्रकृतमें प्रकाशित मेरे अंतर्गत अन्तर्गत करते हुए जो वर्तमान शिष्योपपन्थिका विषयी प्रार्थन शिष्योपपन्थिकामें प्रसिद्धता मिक कारणका प्रकृत किया है वह उनका उचित प्रकृत नहीं कहा जा सकता क्योंकि वर्तमान शिष्योपपन्थिकामें अंतर्गत जिस आकारकी बरबा की गई है उसका प्रार्थन शिष्योपपन्थिकामें उल्लेख नहीं है और इस आचार्यसे पहलाध्याय सन्धेय उचित प्रतीत होता है कि वर्तमान शिष्योपपन्थिकामें अत्र से जो शास्त्रकाक गद्यतत्त्व बल अत्र य पतिवृषभक सिद्धि माली जाती है वह भी उचित नहीं है । इनके विषय पहल पहल मिक करत होगा कि इन शास्त्रकाक गद्यतत्त्व उल्लेख प्रार्थन शिष्योपपन्थिकामें भी पाया जाता है तभी यह अत्यन्त सम्भीकीय दृष्टि सन्धेय कि आचार्य पतिवृषभ महाश्रीर शैलीसे हजार वर्षे बाद हुए हैं । तत्त्वकाक अंतर्गत उल्लेखके अनुसार आचार्य पतिवृषभकी महाश्रीर आर्यसंघु और नागदमितक विषय होनेक पते उन्हीं उस समकाल ही मानना चाहिए किम समकाल ही महाश्री आचार्योंके इस मूलबदलके अंतर्गत किया जा ।

२. इन्द्रमित्रक अनेके धृतातराम परतन्त्रशासन पर या कुन्दकुन्दकी श्लेषांतर भी उल्लेख किया है । इस आचार्यके अंतर्गतशासन रचनात्मक प्रकृत शासनिक भी पूरा उदरता है । अधिपतर विचारक १८३ वर्षे

इसके ध्यान भी भुतरदाके अनेक प्रयत्न हुए हैं। स्वताम्बर अंगभुतल्ल संकलन उन प्रयत्नोंमेंसे एक है। यह विष्णुकी ६३ शतिकाव्यम्में उद्धृत होकर पुस्तकबद्ध हुआ था।

## १ सप्तार्थसूत्र

इनमेंसे प्रकृतम साक्षात्सूत्रका विचार करना है। यह जैन दर्शनका प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें जैनाचार और जैन व्यवहारके सभी पहलुओं पर सूत्र शैलीमें विचार किया गया है। यह सुनिश्चित है कि जैन आगमभूतकी मुख्य भाषा प्राकृत रही है तथा इसके आधारसे आगतीय आचार्योंने अथवा जगदाचार्य भूत विविध रूपों में लिखा है यह भी प्रायः प्राकृत भाषामें ही लिखा गया है। प्राकृत भाषाके जो विविध रूपान्तर उपलब्ध होते हैं उनमें इस आचार्यकी पुष्टि होती है कि यह अगस्त्य महावीर और उनके आगे पीछे बहुत काल तक बोलचालकी भाषा रही है। प्राचीन जिनके कि प्राचीन महात्त्वपूर्ण वीर साहित्य उपलब्ध होता है, प्राकृतका ही एक मेरु है। पारम्परिक जैन और गौडीयकी प्रकृति अनुसारके उनकी भाषामें उपलब्ध जैन की रही हैं। परिव्यामस्वरूप इन्होंने अधिकतर साहित्य रचनाका काम बनतीकी भाषा प्राकृतमें ही किया है। किन्तु धीरे धीरे भारतपर्यन्त ब्राह्मण धर्मके प्राच्य होनेसे और उनकी साहित्यिक भाषा उन्नत होनेसे वेदों और जैनोका संस्कृत भाषामें ही अपना उपयोगी साहित्य लिखनेके लिए बाध्य हुआ है। यही कारण है कि सप्तार्थसूत्र अथवा महात्त्वपूर्ण प्राच्यकी रचना करते समय यह संस्कृत भाषामें लिखा गया है। जैन परम्पराके उपलब्ध साहित्यमें संस्कृत भाषामें रचा गया यह सर्वा प्रथम ग्रन्थ है। इसके पहले केवल संस्कृत भाषामें जैन साहित्यकी रचना हुई हो इसका कोई निश्चित आधार उपलब्ध नहीं है। सप्तार्थसूत्र काव्यमय सूत्रग्रन्थ होकर ही इसमें प्रथमका उल्लेख होने का संकलन हुआ है। इस कारण इसे जैन परम्पराके सभी सम्प्रदायोंमें समान रूपसे अपनाया है। दार्शनिक अंगत्वं यह सूत्र कथावि निर्णय ही आध्यात्मिक अंगत्वं में ही इसका कुछ कम ध्यान नहीं हुआ है। इस दृष्टिकोणसे वैदिकमय गीताका इसाचार्योंमें साहित्यिक और सुगमभाषाकी सुगमभाषा अथवा महात्त्व है वही महात्त्व जैन परम्परामें सप्तार्थसूत्रका माना जाता है। अधिकतर जैन इसका प्रतिदिन पाठ करते हैं और कुछ अग्रणी पुरुषोंकी को। इत्यादि पर्यन्त जिनमें इसके एक एक अध्याय पर प्रतिदिन प्रयत्न होते हैं किन्तु आम जनता यही कहनाके साथ प्रयत्न करती है। इसके सम्बन्धमें स्मार्ति है कि वा कोई पदार्थ होनेका एक बार पाठ करना है उसे एक उपपाठका पत्र मिलना है।

## १ नाम

प्रस्तुत सूत्र ग्रन्थका मुख्य नाम 'सप्तार्थ' है। इस नामका उल्लेख करनेवाले इसके टीकाकार मुख्य हैं। उनकी प्रथम टीका महाभारतमें प्रत्येक अध्यायकी अन्तर्गत सूत्रके पुस्तिकामें यह नाम आता है—

इति सप्तार्थसूत्री सप्तार्थसिद्धिस्तथापि अध्यायः समाप्तः ।

को पत्रकारके यह ही प्रयत्नोंमें स्थान प्राप्त है किन्तु यह विचारका अंगकी परम्परा जिन ग्रन्थमें आई है तथा यह विद्याका उपाय काव्योपाय है। पदपर्यायवाचक आदिक उचितता ६३३ पर्यन्त हुए ही का हममें कोई प्रयत्न नहीं है।

१ इत्याध्यायपरिष्कारने सप्तार्थे बहिर्य सति ।  
 कर्म स्यादुपवाचय्य भाषितं सुविपुत्रैः ।

## सप्त धासिद्धि

इसके अन्तमें प्रथमा सूचक तीन श्लोक आते हैं। उनमें भी प्रस्तुत टीकाके तत्पार्यवृत्ति कह कर प्रस्तुत ग्रन्थकी तत्पार्य<sup>१</sup> इस नामसे धारणा की गई है। तत्पार्यगतिक और तत्पार्यरलोकयार्तिककी भी वही स्थिति है। इन दोनों टीका ग्रन्थोंके प्रथम मंगल श्लोकमें और प्रत्येक अध्यायकी समाप्ति सूचक पुष्पिकामें मूल ग्रन्थके इसी नामका उल्लेख मिलता है।

तत्पार्य सात है—बीष अशीष आराध कथ, संभर, निर्भय और मोक्ष। सम्मन्दर्शनके विषयरूपसे इन सात तत्पार्योंका प्रस्तुत सूत्र ग्रन्थमें विस्तारके साथ निरूपण किया गया है। भाव्य पक्षसे है कि इसी कारणसे इसका तत्पार्य यह नाम प्रसिद्धिका प्राप्त हुआ है।

लाकमें 'तत्पार्य एक नाम तत्पार्यसूत्र भी प्रचलित है। इस नामका उल्लेख वीरसेन स्वामीने अपनी 'वचसा' नामकी प्रसिद्ध टीकामें किया है। छिद्वेलेन गण्डि भी अपनी टीकामें कुछ अध्यायोंकी समाप्ति सूचक पुष्पिकामें<sup>२</sup> इस नामका उल्लेख करते हैं। इसमें बीषादि सात तत्पार्योंका सूत्र शैलीमें विवेचन किया गया है इससे इसका सूत्र नाम तत्पार्यसूत्र पक्का जान पड़ता है। किन्तु पिछले नामसे इस नाममें सूत्र पर अधिक होने से सम्भव है कि ये दोनों नाम एक ही हों। केवल प्रयोगकी दृष्टिसे कहीं इसका केवल तत्पार्य<sup>३</sup> इस नामसे और कहीं तत्पार्यसूत्र इस नामसे उल्लेख किया जाता रहा हो। किसी वस्तुका जो नाम होता है उसके एकदेशका उल्लेख करने में उस वस्तुका बोध करनेकी परिपाटी पुरानी है। बहुत सम्भव है कि इसी कारण इसका 'तत्पार्य' यह नाम भी प्रसिद्धिमान आया हो। छिद्वेलेन गण्डिने<sup>३</sup> इसका तत्पार्यसूत्र और तत्पार्य इन दोनों नामोंके द्वारा उल्लेख किया है। इससे भी ये दोनों नाम एक ही हैं इस धार्यकी पुष्टि होती है।

इसका एक नाम मोक्षशास्त्र भी है। मोक्षशास्त्र इस नामका उल्लेख प्राचीन टीकाकारों या अन्य किसीने किया है ऐसा हमारे देखनेमें नहीं आया। तथापि लोकमें इस नामकी अधिक प्रसिद्धि देखी जाती है। तत्पार्य सूत्रका प्रसिद्ध मोक्षशास्त्रके अन्वेषणसे होकर इसका इस मोक्षके उपदेशके साथ होना है। जान पड़ता है कि यह नाम इस कारणसे अधिक प्रसिद्धिका प्राप्त हुआ है।

धार्मिकसिद्धिके सब इसकी दृष्टि महत्त्वपूर्ण टीका तत्पार्यमाध्य माना जाता है। इसकी उन्वयानिष्ठानं पर श्लोक आता है—

'तत्पार्याधिगमार्थं बहुषं संभर बहुप्रणयम् ।

बहवामि सिध्यन्तिमिममर्हन्मन्त्रोत्तमस्य ॥ २ ॥

अर्थात् बहुत अर्थवाले और अर्हत्त्वपनके एक देशके उपदेशसे तत्पार्याधिगम नामके इस लघु ग्रन्थका मैं सिध्यन्ति शिष्टसिद्धिके कथन करता हूँ।

तत्पार्यमाध्यके अन्वेषणसे प्रशस्त उपदेश ही होती है। उसमें भी तत्पार्याधिगम इस नामका उल्लेख किया है। इस आधारसे यह कहा जाता है कि इसका मुख्य नाम तत्पार्याधिगम है।

१ 'तद गिद्धिपिज्ञाद्विपयवासिद्वयवचसुषे जि बहवपरिवात्मकिया' परत्वापरत्वे च कावस्य इति इत्यकारो षदन्विषे। बीषव्याज कावतुकोगहाः ५ २११ ।

२ इति तत्पार्यसूत्रं भाष्यमनुजे मन्त्रानुपारिण्वा तत्पार्यटीकायां भाष्यमतिपार्यपरः, बहोऽन्वयः समाप्तः।

३ वेदो विद्वेलेन गण्डि टीका अध्याय एक और सूत्रकी अन्तिम पुष्पिका ।

किन्तु इस आचार्यके होते हुए भी मूल सूत्र ग्रन्थका यह नाम है इसमें हमें उद्देश है, क्योंकि एक तो वे उपाधनिकके श्लोक और भाष्यके अन्तमें पाई जानेवाली प्रशस्ति मूल सूत्र ग्रन्थके अंग न होकर भाष्यके अंग हैं और भाष्य सूत्ररचनाके बाद की वृत्ति है। दूसरे तत्त्वार्थसूत्रके साथ जो भाष्य की स्वतन्त्र प्रति उपलब्ध होती है उसमें प्रत्येक अध्याय की समाप्ति सूत्रक पुष्पिकके यह निर्दिष्ट नहीं होगा कि वाचक उभास्वाति तत्त्वार्थ भाष्यके तत्त्वार्थाधिगमसे मिन मानते हैं। प्रथम अध्यायके अन्तमें यह जानेवाली पुष्पिकका स्वरूप इस प्रकार है—

इति तत्त्वार्थाधिगमेऽद्वयवचनसंग्रहे प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

आचार्यवतः यदि किसी स्वतन्त्र ग्रन्थके अध्याय की समाप्ति सूत्रक पुष्पिक लिखी जाती है तो उसमें केवल मूल ग्रन्थका नामोद्देश्य कर अध्यायकी समाप्तिकी सूचना दी जाती है और यदि टीकाके साथ अध्यायकी समाप्तिकी सूत्रक पुष्पिका लिखी जाती है तो उसमें मूल ग्रन्थका नामोद्देश्य करनेके बाद अथवा बिना किये ही टीकाका नामोद्देश्य कर अध्याय की समाप्तिकी सूत्रक पुष्पिक लिखी जाती है। उदाहरणार्थ केवल तत्त्वार्थसूत्रके अध्यायकी समाप्तिकी सूत्रक पुष्पिक इस प्रकार उपलब्ध होती है—

इति तत्त्वार्थसूत्र प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

उपा टीकाके साथ तत्त्वार्थसूत्रकी समाप्तिकी सूत्रक पुष्पिकाका स्वरूप इस प्रकार है—

इति तत्त्वार्थसूत्री सर्वाधिकारिसंज्ञकानां प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ।

यहां पूर्ववाद स्वामीने तत्त्वार्थसूत्रका स्वतन्त्र नामोद्देश्य किया बिना केवल अपनी तत्त्वार्थ पर लिखी गई वृत्तिक उसके नामके साथ उपलब्ध किया है। इससे इस बातका स्पष्ट ज्ञान होख है कि तत्त्वार्थ नामका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है और उस पर लिखा गया यह वृत्तिग्रन्थ है। बहुत संभव है कि प्रत्येक अध्यायकी समाप्ति सूत्रक पुष्पिक लिखते समय यही विधि वाचक उभास्वातिके सामन रखी है। इस बात से तत्त्वार्थके स्वतन्त्र ग्रन्थ मानकर उसके अधिगम करनेवाले भाष्यके तत्त्वार्थाधिगम अद्वयवचनसंग्रह कह रहे हैं। स्पष्ट है कि तत्त्वार्थाधिगम वह नाम तत्त्वार्थसूत्रका न होकर वाचक उभास्वातिसूत्रके उक्त भाष्यका है।

## २ दो सूत्र पाठ

प्रस्तुत ग्रन्थके दो सूत्र पाठ उपलब्ध होते हैं—एक शिवाम्बर परम्परा मान्य और दूसरा श्वेताम्बर परम्परा मान्य। सर्वाधिकारि और तत्त्वार्थभाष्यकी रचना होनेके पूर्व मूल सूत्रपाठका क्या स्वरूप था, इसका विचार बधास्यान सम आगे करेंगे। यहाँ इन दोनों सूत्र पाठोंका सामान्य परिचय कराना मुख्य प्रयोजन है।

शिवाम्बर परम्पराके अनुसार दोनों अध्यायोंकी सूत्र संख्या इस प्रकार है—

$$११ + ११ + ११ + ४२ + ४२ + २७ + ११ + २६ + ४७ + १ = १५७ ।$$

श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार वही अध्यायोंकी सूत्र संख्या इस प्रकार है—

$$११ + ५२ + १८ + ११ + ४४ + ०६ + १४ + २६ + ४८ + ० = १४४ ।$$

प्रथम अध्यायमें ऐसे पाँच स्थल मुख्य हैं जहाँ दोनों सूत्र पाठोंमें मौलिक अन्तर दिखाई देता है। प्रथम स्थल मतिज्ञानके चार भेदोंका प्रतिपादक सूत्र है। इतने शिवाम्बर परम्परा 'अवाक' पाठके और श्वेताम्बर परम्परा

१—नेत्रो रत्नमकी संज्ञा अयमवचनी केन्द्रमवचनी अथ श्वेताम्बर संख्या द्वारा प्रकाशित तत्त्वार्थभाष्य प्रति ।

'अद्यय' पाठको स्वीकार करती है। प्रथमचतुर्षु पं मुक्तशालाभी श्वेताम्बर परम्परामान्य तत्त्वार्थयूक्तका विवेचन करते हुए भी मुख्यरूपसे 'अद्यय' पाठको ही स्वीकार करते हैं। दूसरा स्थल मतिशान्ते विपन्नमृत ११ पद्यार्थका प्रतिपादक स्थ है। इसमें दिगम्बर परम्परा शिष्यके बाद 'अग्निवृत्तामुक्त-' पाठको और श्वेताम्बर परम्परा 'अग्निभिरावर्तितम्-' पाठको स्वीकार करती है। यहाँ पाठ भेदके कारण अद्यय स्थ है। तीसरा स्थल 'त्रिविधोऽद्ययि' स्थ है। इसे श्वेताम्बर परम्परा एक मानती है जब कि सर्वायंसिद्धिमें यह 'मन्त्रप्रत्ययोऽग्निर्देव नारायणाम्' रूपकी उपनिषद्भाष्य ग्रंथ है। चौथा स्थल अथविज्ञानके द्वितीय भेदका प्रतिपादक स्थ है। इसमें दिगम्बर परम्परा क्षुपोष्ठाग्निमित्तल पाठको और श्वेताम्बर परम्परा 'बदोक्तग्निमित्तल' पाठको स्वीकार करती है। पाँचवाँ स्थल सात नवीका प्रतिपादक स्थ है। यहाँ दिगम्बर परम्परा वातो नवीको मूल मानकर उनका यमा रूपसे उल्लेख करती है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परा मूल नय पाँच मानती है और नैगम व शब्दनपके धर्मताः दो व तीन भेदका स्वतन्त्र स्थ द्वारा उल्लेख करती है। साधारणतः दिगम्बर और श्वेताम्बर परम्परामें मूल नय सात माने गये हैं और आगम साहित्यमें इनका मूल नयके रूपमें उल्लेख भी किया है। पर यहाँ यमादि विशेषमें नवी नय किट विशेषको स्वीकार करण है इत्यत्र किन्तु किमा व्युत्पत्ति है यहाँ बहुधा नैगमादि पाँच नवीका भी उल्लेख किया जाता है। बहुत सम्भव है कि इस परिष्कटीको देखकर वाचक उमात्पाठिने पाँच नव मूल माने ही तो कोट आश्चर्य नहीं।

दूसरे अध्यायमें एष नां स्थल है। प्रथम स्थल पारिवायिक मार्गका प्रतिपादक स्थ है। इसमें पारिवायिक मार्गके तीन नाम गिनानेके बाद श्वेताम्बर परम्परा आदि पद्यको स्वीकार करती है जब कि दिगम्बर परम्परा इस स्वीकार नहीं करती। यहाँ भीबका स्वयत्त क्या है यह फलताते हुए पारिवायिक मार्गका उपवेद किया है। दिगम्बर परम्परा अन्य द्रव्य साधारण पारिवायिक मार्गकी यहाँ मुख्य रूपसे गवना नहीं करती और श्वेताम्बर परम्परा करती है यही यहाँ उसके आदि पद्य देनेका प्रयोजन है। दूसरा स्थल स्थावरकायिक बीजोंके भेदका प्रतिपादक स्थ है। आगमिक प रचयोंके अनुसार स्थावरोंके पाँच भेद होनेसे परम्परायें स्वीकार करती हैं और दिगम्बर परम्परा इसी परिष्कटीके अनुसार यहाँ पाँच भेद स्वीकार करती है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें अग्निजायिक और वायुजायिक बीजोंको गतिवत् मानकर इनका उल्लेख बतोंके रूप किया है। इस कारण कद सूत्रोंकी रचनामें अन्तर आया है। तीसरा स्थल उद्योगोः स्फूर्तिरित्यु' स्थ है। श्वेताम्बर परम्परा इस स्थल स्थ मानती है जब कि दिगम्बर परम्परा इस स्थल रूपसे स्वीकार नहीं करती। उल्लेख करते उद्योगोंके विपन्नता धमगत प्रतिक्रमण करना वांछनीय नहीं क्योंकि प्रत्येक ज्ञानका प्रिय प्रथम अध्यायमें दिग्वा आये हैं। चौथे स्थल 'एकमयाऽविषया' स्थ है। गतिका प्रकरण होनेमें दिगम्बर परम्परा इस स्थलको इसी रूपमें स्वीकार करती है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा एक समयको विशेष मानकर यहाँ पुस्तिका एक बचनान्तका प्रयोग करती है। पाँचवाँ स्थल कल्पता प्रतिक्रमण स्थ है। इसमें दिगम्बर परम्परा 'पौव परका और श्वेताम्बर परम्परा 'पौव' पाँच स्वीकार करती है। छठा स्थल कैवल्यमयि स्थ है। इसे दिगम्बर परम्परा स्थ मानती है और श्वेताम्बर परम्परा नहीं मानती। यहाँ निमित्तक तमी लघुओं की उत्पत्तिके कारणोंका विचार सूत्रोंमें किया गया है फिर भी श्वेताम्बर परम्परा इसे मूल रूपमें स्वीकार नहीं करती और इसे तत्त्वार्थमायना अष्ट मान लेती है। सातवाँ

एक आहारक शरीरका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिग्गम्भ परम्पराने 'प्रमत्तसंयतस्वैव' पाठके स्थानमें श्वेतान्तर परम्परा 'चतुर्दशपूर्वधारस्वैव' पाठ स्वीकार करती है। आठवाँ 'रथस्य' 'शेषाभिवेदाः' सूत्र है। इसे दिग्गम्भ परम्परा स्वतन्त्र सूत्र मानती है जब कि श्वेतान्तर परम्परा इसे परिशेष न्यायका आश्रय लेकर सूत्र माननेसे इन्कार करती है। नौवाँ स्थल अन्नपक्वम् आयुषासौंक्ष्ण्यं प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिग्गम्भ परम्पराने 'चरमदेहोत्पद्युष' पाठके स्थानमें श्वेतान्तर परम्परा 'चरमदेहोत्पद्युष' पाठको स्वीकार करती है।

दसरे अध्यायमें ऐसे तीन स्थल हैं। प्रथम स्थल पहला सूत्र है। इसमें 'अधोऽधः' के अनन्तर श्वेतान्तर परम्परा 'दृशुयय' पाठको अधिक स्वीकार करती है। दूसरा स्थल दूसरा सूत्र है। इसमें आये हुए 'नारदः' पदको श्वेतान्तर परम्परा स्वीकार न कर 'तासु नरकाः' स्वतन्त्र सूत्र मानती है। यहाँ इन द्विविध्यादि चार सूत्रोंमें नारदोंकी अक्षस्तयाका चित्रण किया गया है। किन्तु श्वेतान्तर परम्पराने अनुसार यह एक नरक—आवासस्थानोंकी अक्षस्तयाका चित्रण हो जाता है। तीसरा स्थल म्यात्रके सूत्रके आगे २१ सूत्रोंकी स्वीकृति और अस्वीकृति है। इनके दिग्गम्भ परम्परा सूत्र स्वयं स्वीकार करती है किन्तु श्वेतान्तर परम्परा इन्हें सूत्र नहीं मानती।

बीसवें अध्यायमें ऐसे कई स्थल हैं। प्रथम मत्तमेदका स्थल दूसरा सूत्र है। इस सूत्रको दिग्गम्भ परम्परा 'आदित्यक्रियु पीठान्तोत्थेऽथ' इस रूपमें और श्वेतान्तर परम्परा 'सृष्टीव पीठोत्थेऽथ' इस रूपमें स्वीकार करती है। श्वेतान्तर आदित्यके ज्योतिषियोंके एक पीठ रथा करी है। इसीसे यह सूत्र विपदक मत्तमेद हुआ है और इसी कारण श्वेतान्तर परम्पराने सातवें नम्बरका पीठा—उत्थेऽथ' स्वतन्त्र सूत्र माना है। दूसरा स्थल शेष कल्पोंमें मनीचाराका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेतान्तर परम्परा इयोर्द्वयोः पदको अधिक रूपमें स्वीकार करती है। इसके फलस्वरूप उसे अन्नतद्विचार कल्पोंको ही मानकर चलना पड़ता है। तीसरा स्थल कल्पोंका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिग्गम्भ परम्पराने सोसह और श्वेतान्तर परम्पराने चारह कल्पोंका नामोत्प्रेषण किया है। चौथा स्थल लौकान्तिक देवोंकी संख्याका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिग्गम्भ परम्पराने आठ प्रक्षरके और श्वेतान्तर परम्पराने नौ प्रक्षरके लौकान्तिक देव गिनाये हैं। इतना होते हुए भी तत्पार्यमात्मने वे आठ प्रक्षरके ही रह जाते हैं। औपपादिकमनुष्मेन्मः इत्यादि सूत्रके आगे इस अध्यायमें दोनो परम्पराने सूत्रपाठमें पदाति अन्तर हैं। एक अनेक सूत्र श्वेतान्तर परम्परामान्य सूत्रपाठमें स्थान पाते हैं किन्तु दिग्गम्भ परम्पराने खवा अभाव है। कुछ ऐसे भी सूत्र हैं जिनके विषयमें दिग्गम्भ परम्परा एक पाठ स्वीकार करती है और श्वेतान्तर परम्परा दूसरा पाठ। इस सब अन्तरके कई कारण हैं। एक तो कल्पोंकी संख्यामें अन्तरको स्वीकार करनेसे ऐसा हुआ है। दूसरे मन्वन्तरीय और ज्योतिषी देवों की रिचयित्क प्रतिपादनमें श्वेतान्तर परम्पराने भिन्न रत्न स्वीकार किया है, इससे ऐसा हुआ है। लौकान्तिक देवोंकी रिचयित्का प्रतिपादक सूत्र भी इस परम्पराने स्वीकार नहीं किया है।

पौनर्वे अध्यायमें ऐसे कई स्थल हैं। प्रथम स्थल 'प्रप्यायि' और 'बीचार्थ' के दो सूत्र हैं। दिग्गम्भ परम्परा इन्हें दो सूत्र मानती है जब कि श्वेतान्तर परम्परा इनका एक सूत्र रूपमें विलेन करती है। दूसरा स्थल धमादि ब्रह्मोंके प्रदरों की संख्याका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिग्गम्भ परम्परा धर्म अधर्म और एक बीचके प्रदेहोंकी एक साथ परिचयना करती है किन्तु श्वेतान्तर परम्परा बीचके प्रतिपादक सूत्रको स्वतन्त्र मानकर चलती है। तीसरा स्थल 'उत्पद्युषस्य' सूत्र है। श्वेतान्तर परम्परा इस सूत्र रूपमें स्वीकार नहीं करती। चौथा



रथन पुत्रल (का कन्य हाने पर वे किस रूपमें परिग्रहमान करते हैं) इस बातका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेताम्बर परम्परा 'यम पक्षो अधिक स्वीकार करती है। लघुपारयत्त' सिंगमर और श्वेताम्बर दोनों ही परम्परायें 'इषधिक गुणधन' का अन्वेष हीन गुणबालके साथ कन्य होता है' इस मतसे सहमत हैं किन्तु सूत्र रचनाम और उसके आधारों संगति विद्वान्मते श्वेताम्बर परम्परा अपनी इस आग्नििक परिपाटीका त्याग कर देती है। पौत्रर्षों स्थल का लक्ष्यप्रतिपादक सूत्र है। श्वेताम्बर परम्परा इस सूत्र द्वारा का लक्ष्यके अस्तित्वमें मतभेद स्वीकार करती है। तन्मते श्वेताम्बर आगम आदित्यमें अलक्ष्यके स्थानमें 'अद्यात्मय' का उल्लेख किया है और इसे प्रशस्तान्तक क्षम न मान कर पयान क्षम स्वीकार किया है। छुटर्षों रथन परिग्रहामकर प्रतिपादक सूत्र है। दिगम्बर परम्परा वद्वारा परिग्रहाम 'केशल इन सूत्रका स्वीकार करती है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा इसके साथ हीन क्षम्य सूत्र स्वीकार करती है।

छुटर्षों अप्यापमे पत्र दृश्यत है। प्रथम स्थल सूत्रय सूत्र है। इस दिगम्बर परम्परा एक और श्वेताम्बर परम्परा दो मत्र मानती है। दूसरा स्थल इन्द्रियकयकास्त क्रिया' इत्यादि सूत्र है। दिगम्बर परम्पराने इस इषी रूपमें स्वीकार किया है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा इसके स्थानमें अम्लकगोपनिर्वृत्तियाः यद् पाठ स्वीकार करती है। तीसरा स्थल आतावेदीयक आसदका प्रविशदक सूत्र है। इसमें दिगम्बर परम्परा भूतस्त्वयुक्तभदानस्यगर्भमादिभोग' इस पाठका स्वीकार करती है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परा इसके स्थानमें भूतस्त्वयुक्तया हाने स्यगर्भमादि भोग' तथा पाठ स्वीकार करती है। चौथा स्थल आदिभोगके आसदका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेताम्बर परम्परा तीन पदक का 'आल' पदको अधिक स्वीकार करती है। पौत्रर्षों स्थल नरकायुके आसदका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेताम्बर परम्परा मध्यम 'च' पदको अधिक स्वीकार करती है। छुटर्षों स्थल मनुष्यायुके आसदक प्रतिपादक सूत्र है। इसमें दिगम्बर परम्परा दो सूत्र मानती है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परा उन दोनोंको एक मानकर चलती है। छुटर्षों ही नहीं किन्तु बर 'स्वमाभमाद' क स्थानमें स्वमाभमाद'कार्त्त' पाठ स्वीकार करती है। अतएव रथन द्वायुक्त आसदके प्रतिपादक सूत्र है। इन सूत्रोंमें दिगम्बर परम्पराने लक्ष्यकर्त्त च लक्षका स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार किया है किन्तु श्वेताम्बर परम्परा इस सूत्र रूपम स्वीकार करनसे द्विक्रि पाती है। आठवाँ स्थल शुभ नामक आसदका प्रविशदक सूत्र है। इसमें दिगम्बर परम्परा ल' पदको अधिक स्वीकार करती है। नौवाँ स्थल लोपदूर प्रवृत्तिके आसदका प्रविशदक सूत्र है। इसमें श्वेताम्बर परम्परा लक्ष्यकर्त्त'के स्थानमें लक्ष्यकर्त्त' पाठ स्वीकार करती है। दसवाँ स्थल लक्ष्यकर्त्तके आसदका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें लक्ष्यकर्त्त'के स्थानमें श्वेताम्बर परम्परा लक्ष्यकर्त्त' पाठ स्वीकार करती है।

गर्भों अप्यापमे पत्र दृश्यत है। प्रथम स्थल पौत्र लक्ष्योर्षी लक्ष्य-स्थान मावनाश्रीक प्रविशदक पांच मत्र है। इसे दिगम्बर परम्परा सूत्र रूपमें स्वीकार करती है और श्वेताम्बर परम्परा नहीं। दूसरा स्थल दिगम्बरानि हानुष सूत्र है। इसमें श्वेताम्बर परम्परा 'अमुत्र पदक का 'च' पदका अधिक स्वीकार करती है। तीसरा स्थल ईश्वरी-हानुष मत्र है। इसमें मध्यम दिगम्बर परम्परा 'च' बर अधिक स्वीकार करती है। चौथा स्थल अतएव हानुष मत्र है। इसमें लक्ष्यकर्त्त' पदका और श्वेताम्बर परम्परा 'च' पाठका स्वीकार करती है। दसवाँ स्थल लक्ष्यकर्त्त'के स्थानमें लक्ष्यकर्त्त' प्रविशदक सूत्र है। इसमें दिगम्बर परम्परा 'प्रारथानस्य' पाठका और श्वेताम्बर परम्परा 'लक्ष्यकर्त्त' स्वीकार करती है। छुटर्षों स्थल अदिगम्बरानि के पांच अर्थपाठोंका प्रतिपादक सूत्र है। इस सूत्रके स्थानमें श्वेताम्बर परम्परा अदिगम्बरानि है।

आठवें अध्यायमें ऐसे छह स्थल हैं। प्रथम स्थल वृष्य सूत्र है। श्वेतस्मर परम्परा इसे दो सूत्र मानकर चलती है। वृष्य स्थल शनावरणके पाँच मेलोंका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें त्रिगम्बर परम्परा इनके पाँच मेलोंका नाम निर्देश करती है किन्तु श्वेतस्मर परम्परा 'न्रत्यादीनाम्' इतना कहकर ही छोड़ देती है। तीसरा स्थल शनावरणके नामोंका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेतस्मर परम्परा पाँच त्रिगम्बरोंके नामोंके साथ वैज्ञानिक षड्भुजिका काहती है। चौथा स्थल माहनीयके नामोंका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें नामोंके क्रमक प्रतिपादनमें दोनों परम्पराओंमें अलग अलग सरथी स्वीकार की है। पाँचवाँ अन्तयनक नामोंका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें त्रिगम्बर परम्परा पाँच नामोंका निर्देश करती है और श्वेतस्मर परम्परा 'यनादीनाम्' इतना कहकर छोड़ देती है। छठवाँ स्थल पुष्य और पाप प्रकृतियोंके प्रतिपादक दो सूत्र हैं। यहाँ श्वेतस्मर परम्परा एक तो पुष्य प्रकृतियोंमें सम्मन्वय शरय, रति और पुरुषवेद इनकी भी परिगहाना की है। वृषरे पापप्रकृतियोंका प्रतिपादक सूत्र नहीं कहा है।

नौवें अध्यायमें एक छह स्थल है। प्रथम स्थल दस धनोका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें त्रिगम्बर परम्परा उद्यम पदका नाम आदिका विशेष्य मानकर चलती है और श्वेतस्मर परम्परा धर्मका विशेष्य मानकर चलती है, फिर भी वह उद्यम पदका पाठ 'धर्म' पदके साथ अन्तमें न करके सूत्रके प्रारम्भमें ही करती है। वृष्य स्थल पाँच चारिभौका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें त्रिगम्बर परम्परा 'शक्ति' पदको अधिक स्वीकार करती है। तीसरा स्थल ध्यानका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें अन्तर्मुद्रात् के स्थानमें श्वेतस्मर परम्परा 'आ मुद्रात्' पाठ स्वीकार कर उसे स्वतन्त्र सूत्र मानती है। चौथा स्थल आर्तध्यानके प्रतिपादक सूत्र है। इनमें श्वेतस्मर परम्परामें एक तो 'मनोऽस्य' और 'अमनोऽस्य' के स्थानमें बहुवचनपाठ पाठ स्वीकार किया है। वृषरे 'केनाकाश' सूत्रको 'विपरित मनोऽस्य'के पहले रखा है। पाँचवाँ स्थल धर्मध्यानका प्रतिपादक सूत्र है। इसमें श्वेतस्मर परम्परा 'अप्रमत्संक्षय' इतना पाठ अधिक स्वीकार कर 'अपमान्तवीर्याकप ययोः' यह सूत्र स्वतन्त्र मानती है। छठवाँ स्थल एनाभके इच्छा सूत्र है। इसमें 'दरिद्रविचारे' के स्थानमें श्वेतस्मर परम्परा 'अवितर्के' पाठ स्वीकार करती है।

दसवें अध्यायमें ऐसे तीन स्थल हैं। प्रथम स्थल वृष्या सूत्र है। श्वेतस्मर परम्परा इस का सूत्र मानकर चलती है। वृष्य स्थल तीसरा और चौथा सूत्र है। श्वेतस्मर परम्परा एक तो इन दो सूत्रोंको एक मानती है। वृषरे 'मन्त्रानाम्' के स्थानमें 'मन्त्रानाम्नात्' पाठ स्वीकार करती है। तीसरा स्थल 'पूर्वप्रयोगात्' इत्यादि सूत्र है। इस सूत्रके अन्तमें श्वेतस्मर परम्परा 'उद्यति' इतना पाठ अधिक स्वीकार करती है। तथा इस सूत्रके आगे कहे गए दो सूत्रोंका वह स्वीकार नहीं करती।

इन पाठ मेलोंके अतिरिक्त दसवें अध्यायमें छोटे भाटे और भी बहुतेरे फरक हुए हैं किन्तु विशेष महत्त्व न होनेसे यहाँ हमने उनका उल्लेख नहीं किया है।

### ३ सूत्र पाठोंमें मतभेद

यहाँ हमने त्रिगम्बर और श्वेतस्मर परम्परागत्य बिन सूत्रपाठोंके अंतरका उल्लेख किया है वह उपाध्विधि और उपाध्विधिमन्त्रान् सूत्र पाठको ध्यान में रखकर ही किया है। यदि हम इन सूत्र पाठोंके भीतर जाते हैं तो हमें वह मतभेद और भी अधिक दिखाई देता है। फिर भी यह बात उपाध्विधिमन्त्रान् सूत्र पाठ पर लागू नहीं होती। उपाध्विधिकारके धामने जो पाठ रखा है और ऊर्ध्वने निर्यान करके बिले सूत्रकारका माना है उक्त

अपलकतीं धमी शिवाम्बर टीकाकार प्राया उरीका आचार मानकर चल हैं। किन्तु तत्प्राथम्यात्प्रमाण्य सूत्रप्रवृत्ती रिपति इसके सर्वथा निरा है। हरिभद्रस्मरी और विद्वत्केन गणिते उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये आचारस्य आर्यानी टीकाएँ सिली आचरन हैं और इन दोनों आचारानोंने तत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये अथ तत्प्राथम्यात्प्रमाण्य सूत्र पाठकी रक्षा करनेका भी प्रयत्न किया है। किन्तु उनके सामने ही सूत्र पाठमें इतने अधिक पाठभेद और अर्थभेद हो गये थे किनअ उपलब्ध करना उन्हें आचरनक ही गवा। उदाहरणके लिए यहाँ हम पौषमें अम्प्यापके नित्याचरिपत्तान्यकराणि' सूत्रको उपरिचय करते हैं। विद्वत्केन गणिते इस सूत्रकी व्याख्या करते हुए अनेक अन्तर्गतोंकर उपलब्ध किया है। उनके सामने इस सूत्रके जो प्रमुख मतभेद थे वे इस प्रकार हैं—

१ एक पाठके अनुसार 'नित्याचरिपत्तान्यकराणि' एक सूत्र न होकर दो सूत्र हैं। प्रथम 'नित्याचरिपत्तानि' और दूसरा 'अकराणि'। धर्मादिक चार प्रथम अक्षरी हैं यह विद्वत् करनेके लिए 'अकराणि' स्वतन्त्र सूत्र माना गया है।

२ दूसरे पाठके अनुसार 'नित्याचरिपत्तान्यकराणि' सूत्र है। इसके अनुसार 'नित्याचरिपत्त— परके अन्तमें स्वतन्त्र विमर्शित देनेकी अपेक्ष आकरयकदा नहीं। तीनों पर उल्लिखित होने चाहिए।

३ तीसरा मत है कि सूत्र तो 'नित्याचरिपत्तान्यकराणि' ही है। किन्तु इसमें 'नित्या' पर स्वतन्त्र न होकर 'अचरिपत्त' परका विशेषण है। इस अन्तके अनुसार प्रथम परकर 'नित्या' अचरिपत्तानि 'नित्याचरिपत्तानि' यह विभक्त होगा।

४ इनके सिवा यहाँ दो भवैष्य और उपलब्ध किया है। किन्तु वे केवल अर्थविपक्ष ही मतभेद हैं इत्युक्ति उनकी यहाँ हमने अलगसे करना नहीं की है।

आगे चलकर तो ये मतभेद और भी बढ़ हैं। मन्मथस्मरि यहाँ हम उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये उक्त अर्थिपत्त प्रतिके कुछ पाठभेद उपरिचय करते हैं किनअ परिचय श्रीमान् पण्डित बुगुलकिशोरजी मुख्यायने अनेकप्रकार यदं तीन विभक्त एकमे दिया है। यह अर्थ पण्डितजीके पाठ श्रीमान् पण्डित नारायणजी प्रसीने मेकी थी।

इस प्रतिके आलोचन करतेते यह तो स्पष्ट बाहिर होच है कि यह किसी श्रेयाम्बर आचार्यकी कृति है, क्योंकि इसमें शिवाम्बर आचार्योंने अथ, उपराना और सूत्रबचनचौर इत्यादि शब्दों द्वारा सम्बोधित किया गया है। इत्युक्ति इस प्रतिके जो पाठभेद ना अधिक सूत्र उपलब्ध होते हैं वे आधे महत्त्व रखते हैं। प्रतिके पूजे आनेवाला अधिक सूत्र ये हैं—

तेजस्रमपि ५, धर्मा रंधा टीकाकारादिमापत्रा मापनीति च २, उत्प्राथम्यात्प्रमाण्येदनीपपाठानुयायकस्य ताप्या २३ स विविधा ४२ अम्प्यात् ५ २१ धर्मादिकाराधमापात् ७।

उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये सूत्र अर्थी स्वीकार नहीं करते। चाब ही उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये मुख्य टीकाकार हरिभद्रस्मरी और विद्वत्केनगी भी इन्हें सूत्र नहीं मानते फिर भी टिप्पण्यकरते इन्हें सूत्र माना है। यदि हम इनके सूत्र होने और न होनेके मतभेदकी जल्दी थोड़ी देरको मुशा भी दें तो भी इनके अन्तमें पना आनेवाला 'उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये' सूत्र किसी भी अर्थिपत्तानि नहीं मुशाथ था उपलब्ध। उत्प्राथम्यात्प्रमाण्ये तो इत्युक्ति उपलब्ध है ही नहीं अथ श्रेयाम्बर आचार्योंने भी इत्युक्ति उपलब्ध नहीं किया है। फिर भी टिप्पण्यकार किसी उपरने आचारसे इतने सूत्र मानते हैं। इतना ही नहीं वे इतने मूल सूत्रकारकी ही कृति मानकर चलते हैं।

यह जो कुछ सूत्रमेदकी शरत्था । अब इसके एक पाठोदको वेत्तिष्ठ । दिगम्बर परम्पराके अनुसार हीरे अप्यायमें छाय क्षेत्रीक प्रतिपादक सूत्रके आदिमें 'तप' पठ उपलब्ध नहीं होय किन्तु तापार्थगत्यमान्य उक्त सूत्रके प्रारम्भमें 'तप' पद उपलब्ध होय है । फिर भी टिप्पणकार यहाँ तापार्थगत्य गाय पाठको स्वीकार न कर दिगम्बर परम्परागत्य पाठको स्वीकार करते हैं ।

यहाँ देखना यह है कि जब तत्पार्थस्य और तत्पार्थगत्य एक ही व्यक्तिकी श्रुति भी और शैव्याम्बर आप्तार्थ ह्य तत्पत्तौ भस्मीमाति समस्तये च तप सूत्रपाठके विषयमें इतना गद्यादक्यां हुआ और जातकर उग अक्षरयामें अब कि तापार्थगत्य उग द्वारा स्वीकृत पाठको सुनिश्चित कर देया है । हम तो इस उगस्य मतमेदको देखते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि तत्पार्थगत्यगत्य सूत्रपाठ स्वीकृत हानके पदले शयव्याम्बर परम्परा गाय सूत्रपाठ निश्चित करनेके लिए छोटे पद अनेक प्रयत्न हुए हैं और ये प्रयत्न वीछे तक गी स्वीकृत होते रहे हैं । यही कारण है कि धाचक उगात्वाति द्वारा तापार्थगत्य लिखकर सूत्रपाठके सुनिश्चित कर देने पर गी उगे यह मामला नहीं मिल सकी चा दिगम्बर परम्परामें तत्पार्थसिद्धि और उग द्वारा स्वीकृत सूत्र पाठको मिली है ।

## २—सर्वाथसिद्धि

### १ नामकी सार्थकता

उपलब्ध साहित्यमें सर्वाथसिद्धि प्रथम टीका है जो तत्पार्थस्य पर लिखी गई है । प्रत्येक अप्यायके अन्तमें स्वयं आप्तार्थ सूत्रपाठने तागा त सूत्रक पुष्टिका दी है । उसमें इकाका नाम सर्वाथसिद्धि क्षान्ताते हुए इस श्रुतिप्रथम रूपसे स्वीकार किया है । इसकी प्रशंसामें टीकाके अन्तमें ये लिखते हैं—

एषांपचार्यसुप्रमासुमनोमिशयैः ।  
 सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिद्वयात्तन्नामा तापार्थसिद्धिरिति मन्ना प्रथमा ॥

जो आप स्वयं और मोक्षसुखके हस्तुक हैं ये अनेक शाखा स्वीकार्य अग्रगण्य खरत और अजन पुराणों द्वारा रच गये सर्वाथसिद्धि इस नामों प्रख्यात हुए तत्पार्थसिद्धि निरूप्य गत। पूर्णक पाठ्य करे ।

ये पुनः लिखते हैं—

तापार्थसिद्धिसिद्धिर्ना विदित्वात्तत्ताः ।  
 इतने कृत परममिच्छिसुखायत्तं ।  
 मन्नामरहबरसुगुत्तु किमिति वाच्यम् ॥

जब पदाधिके जानकार जो इत तापार्थसिद्धिको प्रगमलित सुगत हैं और पदो हैं मन्ना उद्दोन परत सिद्धिसुखकी अग्रगतको अपन दाबमें ही कर लिखा है । फिर उन्हें यत्नवती और इन्द्रक सुत्रक विषयमें तो कहना ही क्या है ?

सर्वाथसिद्धि इस नामक रचनेका प्रयोजन यह है कि इसके मन्ना करके गत प्रचारक अपोदी अगता सब अपोमि अथ मोक्षसुखकी प्राप्ति शली है । यह कथन आस्तुकिच। निष्णुण भी नहीं है क्योंकि हममें तापार्थसिद्धिके अथ प्रयोजन कायमान किया गया है यह सब पुस्तकयाम प्रथागत्य अथ पुस्तकयाम कायक है ।

भारतीय परम्परा अनेक वर्तनीका चण दिया है । किन्तु उन सब सूत्रोंमें अथ पुस्तकयाम प्रात प्रथान करण रहा है । सर्वाथसिद्धि सूत्रमीमाणादर्थनेका प्रारम्भ इस लक्षण बने है—

१ इति सर्वाथसिद्धिसंज्ञकाया तत्पार्थसिद्धौ प्रथमोऽप्यायः समाप्तः ।

‘श्रीं अथातो जमविद्ययासा ॥ १ ॥

आर इसके बाद वे धर्मका स्वरूप निर्देश कर उसके धारणोंका विचार करते हैं।

यही रिचति पञ्चम महर्षिकी है। उन्हींके शारीरिक मीमांसादर्शनको इस सूत्रसे प्रारम्भ किया है—

‘अथातो ब्रह्मविद्यासा ॥ १ ॥’

अथ न्यायदर्शनके सूत्रोंको देखिए। उसके प्रबोधा गौतम महर्षि लिखते हैं कि ‘प्रमाद्य, प्रमेय, संशय, प्रबोका इत्यान्त विद्वान्त, अथयत्, सर्वं निर्याय वाद्य, अल्प, विद्यया हेत्वात्मात् कुल आति और निम्नस्वान् इनका व्यवधान होनेसे निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है ॥ १ ॥’ सूत्र इस प्रकार है—

प्रमाद्यप्रमेयसंशयप्रबोका इत्यान्त विद्वान्तावयवतर्कनियन्तवाद् अल्पविद्यया हेत्वात्मात् प्रकृत्यातिनिम्नस्वान्तातो व्यवधानाच्चिदप्यसाधिगम ॥ १ ॥

योगिकदर्शनके प्रबोधा महर्षि कथारने भी यह वृत्ति धारने रखी है। वे प्रारम्भमें लिखते हैं—

अथातो वर्तन्त्यात्मव्यवस्थाम् ॥ १ ॥’

अपिच श्रुतिकी रिचति इसके कुछ भिन्न नहीं हैं। उन्होंने भी अत्यन्त पुरुषार्थको ही मुख्य माना है। वे अल्प दर्शनका प्रारम्भ इन शब्दों द्वारा करते हैं—

‘अथ त्रिभिश्चतुस्तत्त्वान्तविद्युत्तत्त्वान्तपुरुषार्थः ॥ १ ॥

योगदर्शनका प्रारम्भ तो और भी मन्वेहायी शब्दों द्वारा हुआ है। महर्षि पतञ्जलि करते हैं—‘अथ योगस्य अनुष्ठानम् करते हैं ॥ १ ॥ योगका अर्थ है चित्तवृत्तिक निरोध ॥ १ ॥ चित्तवृत्तिक निरोध होनेपर ही दृष्टाका अपने स्वभावमें अक्षरवान् होता है ॥ १ ॥ इस विषयके प्रत्यक्षतक उनके सूत्र देखिए—

‘अथ योगसुखस्य ॥ १ ॥ योगविकृतवृत्तिभिर्योः ॥ २ ॥ तदा ह्यधुः स्वल्पेभ्यस्त्यानम् ॥ ३ ॥

इन शब्दों का अर्थ हमारी वृत्ति जैन दर्शनके एक प्रथम तत्त्वार्थसूत्र पर आती है तो हमें वहाँ भी उर्ध्व तत्त्वके दर्शन होते हैं। इसका प्रारम्भ करते हुए आचार्य गृह्यपिण्ड लिखते हैं—

सम्यग्दर्शनज्ञानधर्मिण्यपि सोऽधुनाः ॥ १ ॥

यह है मारलीच दर्शनोंके प्रबोधनका अर्थ। इसलिपि पुरुषवाद स्वामीका यह कहना सर्वथा उचित है कि ‘श्रेय मनुष्य धर्ममार्गसे इस तत्त्वार्थवृत्तिको पहुँचे और सुनते हैं मानो उन्होंने परम त्रिदशसुखरूपी असूतको अपने हाथमें ही कर लिया है। फिर अक्षरकी और इनके सुत्रोंके विषयमें तो कहना ही क्या है। इससे इसका सर्वोपरितोत्र, अर्थ न्याय तत्त्वक है।

## २ रचनारहीली

इस कह आते हैं कि सर्वार्थसिद्धि कीका प्रथम वे और टीकाकारने इसे वृत्ति कहा है। जिसमें इसके पदोंका व्याप्य लक्ष्य पदनाके तात्त्विक प्रत्यक्ष परका विवचन किया जाता है उसे वृत्ति करते हैं। वृत्तिका यह अर्थ नार्थनिर्दिष्टमें अद्यतना धरित हाता है। एतदा शायरही और पद दो विवका हयमें व्यापकान नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ-तात्त्विकके अर्थ-यत् १ एत १ में कैमल तात्त्विक या ‘अर्थ पर न रणकर ‘तत्त्वार्थ’, पद कमी एता है

इसका विचित्र दर्शनान्तर्गच्छ निर्देश करते हुए उन्होंने ब्रिंठ विराहवास किया है इसीसे श्रुतिधारकी रचना शैलीका स्पष्ट आभास मिल जाता है। ये सूत्रगत मन्त्रेक परका साक्षात्पञ्च विचार करते हुए भाग बढ़ते हैं। सूत्रपाठमें कहाँ आगमसे विराध दिखाए देता है वहाँ से सूत्रपाठकी पयावत् रचा करते हुए बड़े कौशलस उचकी सञ्चालि विडलाते हैं। अस्याय ४ सूत्र २६ और सूत्र २२ में उनके इस कौशलके और भी स्पष्ट दर्शन हात हैं। सूत्र २६ में 'नक्षत्रैवेकैषु' न कहकर 'नक्षत्रसु मेषयक्षु' कहा है। प्रत्येक आगमाम्नायीस यह बात छिपी हुई नहीं है कि नौ मेषयक्षके विधा अनुदिश शक नौ विमान और हैं। किन्तु मूल सूत्रमें नौ अनुदिशोंका उल्लेख नहीं किया है। आचार्य पूर्यपादसे यह रहस्य किया नहीं रखा। ये सूत्रधारकी मनसासे माप लेते हैं और 'नव' पदको समकित न रखनेका कारण कतशाते हुए ये स्पष्ट घोसया करते हैं कि यहाँ पर नौ अनुदिशोंका प्रहय करनेके लिए 'नव' पदका प्रयक् रूपस निर्देश किया है। २१ में सूत्रकी व्याख्याक समय भी उनके सामने यही समस्या उपस्थित होती है। आगममें बूसे कल्प एक पीतलेस्याका चारहने कल्पक पक्षेस्याका और आगे शुक्लेस्याका निर्देश किया है। आगमकी इस व्यवस्थाके अनुसार एक सूत्रकी संगति किताना बहुत कल्पित है। किन्तु वे पक्षे प्रयोग पर बिल साहसे आगम और सूत्रपाठ दोनोंकी रचा करते हैं उस इच्छते हुए हमारा मतक मडास उनके चरखोंमें मुझे किना नहीं रहता।

प्राचीनीय म्याकरय पा पाठसक महामात्र प्रसिद्ध है। इसमें म्याकरय केसे नीरस और कठिन विराधका पैली सरस और सरल पदाकिस विवेचन किया गया है कि उते ह्यममें कनेके बाद होइनकी भी नहीं चाहता। यह तो हम आगे चउकर देखेंगे कि सर्वाथिदिधरने सर्वाथिदिध लिखते समय उचका कितना उपयोग किया है। यहाँ केवल यही ध्यानना है कि इसमें न केवल उचका मरपुर उपयोग हुआ है अपि तु उच अष्टी उर पनाकर उची शैली में इसका निर्माण भी हुआ है। और आश्चर्य यह कि इह व्याकरयका ग्रन्थ और यह दर्शनका ग्रन्थ फिर भी रचनारमें कहीं भी शिथिलिख नहीं आन पाद है। सर्वाथिदिधकी रचना शैलीको हम समकित नहींके गच्छीस प्रवादकी उपमा दे सकते हैं जो विर और मशाठ मासके आगे एक रूपमें सरस पदका ही रखा है रचना कहीं बह जानता ही नहीं।

आचार्य पूर्यपादने इसम केवल भाय साष्टरका ही ध्यान नहीं रखा है अपि तु आगमिक परम्पराका भी पूरी तरह निवाह किया है। प्रथम अस्यायका सातवें और आठवें सभ इसका प्राञ्जल उपाहरय है। इन सूत्रों की व्याख्या का आलोचन करते समय उन्होंने किञ्चन मासों का कितना महय अभाव किया था इस बातका उचका ही पया लग जाता है। इस फल इन यह दृढापूर्वक कहना काहर करते हैं कि उन्होंने सर्वाथिदिध लिखक यहाँ एक आर संकृत साहित्यकी भाँटि की है यहाँ उन्होंने परम्पराका माय हुए आगमिक साहित्यकी रचाका रोम भी सम्पादित किया है।

निवाह रूपमें सर्वाथिदिधकी रचनाशैलीक विरय में सक्षेपमें यही कहा था उचका है कि यह एम्मे प्रथम की विरगच्छी शैलीमें लिपी गए है जिसका बाउक उमासाविप्रथवि सभी सर्वाथिदिधके म्याकार्ये सर्तिक्कार्ये और टीकाकारोंका उचका अनुसरण कनक छिप काय हाता पदा है।

३ पात्रभद्र और अथाभतरस्यास

सर्वाथिदिध लिखते समय आचार्य पूर्यपादक सामने सर्वाथिदिध पर लिखा गया अन्व बाह टीका ग्रन्थ का मापनका था इसका हा स्वयं उन्होंने उल्लेख नहीं किया है किन्तु सर्वाथिदिध फनेहलना अक्षय कहा था कनय ४

है कि वह लिखते समय उनके सामने एक दो छोटे मोटे टीकाग्रन्थ अक्षरय के और उनमें एक दो स्थलों पर महत्वपूर्ण पाठोदक मी था। ऐसे पाठोदकोषी परचा आचार्य पूर्यपादने वो स्थलों पर श्री है। प्रथम स्थल है प्रथम आप्यानका १६ वाँ सूत्र और दूसरा स्थल है दुसरे आप्यानका ५३ वाँ सूत्र।

१ प्रथम आप्यानका १६ वाँ सूत्र इस प्रकार है—

‘बहुवहुषिषिमाभिःसुतातुसमुवात्वा सेतराव्याम् ॥ १६ ॥’

इसमें चिप्रके बाद अतिशुद्ध पाठ है। किन्तु इस पर आचार्य पूर्यपाद सुचित करते हैं कि अपरोक्ष चिप्रमि-सुत इति पाठः। अर्थात् अन्य आचार्योंके मतमें चिप्रके बाद अतिःसुतके स्थान पर निःसुत पाठ है।

सर्वानामने हमारे सामने दिगम्बर और शैव्यान्तर बितने मी तत्कार्यसूत्रके टीकाग्रन्थ और सूत्रपाठ उप स्थित हैं उनमेंसे किसीमें मी वह दूसरा पाठ उपलब्ध नहीं होया इसलिये यह ले कदा ही नहीं था उक्त कि इनमेंसे किसी एक टीकाग्रन्थ या सूत्रपाठके आधारसे आचार्य पूर्यपादने इस मतोदका उल्लेख किया है। तत्कार्यमाध्यम्यर काचक उमात्यदिने अक्षरय ही सर्वाथसिद्धिमान्य ‘अनि सुत’ पदको स्वीकार न कर उनके स्थानमें ‘अनिमित्त’ पाठ स्वीकार किया है। इत्येति यह मी शंका नहीं होती कि आचार्य पूर्यपादके सामने तत्कार्यमाध्यम्य या तत्कार्यमाध्यम्य सूत्रपाठ या और उन्होंने इस पाठात्तर काय उक्तों और ह्याय किया है। सम्भव मही दिखाई देता है कि सर्वाथसिद्धि टीका लिखते समय उनके सामने वो टीका टिप्पणियाँ उपरिगत थीं उनमेंसे किसीमें मी दूसरा पाठ था होगा और उन्हीं आधारसे आचार्य पूर्यपादने उक्त पाठोदका यहाँ उल्लेख किया है। इतना ही नहीं किन्तु किसी टीकाग्रन्थमें उक्तकी सति मी किताबें गई होगी। मही करके है कि आचार्य पूर्यपाद केवल पाठोदका उल्लेख करते ही नहीं रह गये। किन्तु इस पाठको स्वीकार कर क्षेत्रपर उक्तकी ध्यायना दूसरे आचार्य किस प्रकार करते हैं इस बातका मी उन्होंने वे एवं बर्णपणित इत्यादि कथय काय उल्लेख किया है।

० दूसरे आप्यानका ५३ वाँ सूत्र इस प्रकार है—

शीपपाषिकारतोत्तमवेहसंबवेपवपापुपेत्तमवत्वात्तुवा ॥ ५३ ॥

इसमें ‘वामोत्तमवेह’ पाठ है। इससे यह भ्रम होता है कि क्या परमशरीरी समी उत्तम देहवाले होते हैं या श्रेष्ठ कोरं। यदि समी उत्तम देहवाले होते हैं तो उत्तम पाठके क्षेत्रकी क्या आधारमक्या है। और यदि कोरं कोर उत्तम देहवाले होते हैं तो फिर क्या यह माना जाय कि वो परमशरीरी उत्तम देहवाले होते हैं केवल वे ही अन परत्वं आकुचाले होते हैं अन्य परमशरीरी नहीं। बहुत सम्भव है कि इसी शेषका परिहार करनेके लिये किसीने ‘वामवेह’ पाठ स्वीकार किया होगा। यह मी सम्भव है कि आचार्य पदविष्णुने ही ‘वामवेह’ पाठ स्वीकार किया हो। वो कुछ मी हो। पूर्यपाद आचार्यके सामने दोनों पाठ थे और उन्होंने ‘वामोत्तमवेह’ पाठको धृष्ट कारका मानकर स्वीकर कर लिया और ‘वामवेह’ पाठका पाठात्तरके रूपमें उल्लेख कर दिया।

तत्कार्यमाध्यम्यर वो सूत्रपाठ इस समय उपलब्ध होता है उसमें ‘वामवेहोत्तमपुष्य’ पाठ है। इस पाठके कुछ विद्वान् यह शंका करते हैं कि बहुत सम्भव है कि आचार्य पूर्यपादके सामने तत्कार्यमाध्यम्य या हो और उनके आधारसे उन्होंने सर्वाथसिद्धिमें इस पाठात्तरका उल्लेख किया हो किन्तु हमें उनके इस कथनमें कुछ मी संशय मही दिखाई देता। कारण एक तो तत्कार्यमाध्यम्य ‘वामवेह’ पाठ ही नहीं है। उसमें ‘वामवेहोत्तमपुष्य’ पाठ अक्षरय ही उपलब्ध होया है किन्तु इस पाठके विषयमें मी उक्तकी रिपति सु बली है। आचार्य सिद्धेने

प्रणीत आचार्यमण्डली टीका में इस प्रसंगको उठाया है और आत्म में यही कहा है कि हम नहीं कह सकते कि इस ग्रन्थमें वस्तुस्थिति क्या है।

दूसरे यदि आचार्य पूज्यपादके सामने उपनिषद्ग्रन्थ पाठ उपरिपठ होता तो वे 'चरमवेद' इति वा गद के स्थानमें 'चरमवेदोत्तमपुराण इति वा पाठः' ऐसा उल्लेख करते, क्योंकि उन्हें 'चरमोत्तमवेद' इस पाठके स्थानमें वृषय पाठ क्या उपलब्ध होता है इसका निर्वाण करना था। ऐसी अवस्थामें आचार्य पाठान्तरका मूल करनी वे उल्लेख नहीं करते।

स्पष्ट है कि 'विप्रतिपत्त' के समान यह पाठान्तर भी आचार्य पूज्यपादको दूसरे टीका ग्रन्थोंमें उपलब्ध हुआ होगा और उसी आधारसे उन्होंने यहाँ उल्लेख उल्लेख किया है।

१ आचार्यन्तर्गता एक उदाहरण हम रचना शैलीके प्रसंगसे आध्याय ४ सूत्र १२ का उल्लेख करते समय दे आये हैं। वहाँ हमने यह संकेत किया ही है कि उक्त सूत्रमें पूरे आगमिक अथवा वैदिक शैली न देख आचार्य पूज्यपादने सूत्र और आगम दोनोंका सुन्दरता पूरक निर्वाह किया है। यह प्रथम आचार्यन्तर्गता उदाहरण है।

४ द्वितीय उदाहरण स्वरूप हम ६वें अध्यायका ११ वां सूत्र उपरिपठ करते हैं। इसमें वेदनीय निमित्त ११ परीपद किन्के कही गई हैं। इस विषयको अधिक स्पष्ट करनेके लिए हम योही विस्तारके साथ चरणा करना इस मार्गमें।

परीपदोंका विचार दृष्टमें गुणस्थानसे किया जाया है, क्योंकि सामान्य पदका मारम्भ यद्यपि होता है, अतः इस गुणस्थानमें सब परीपद होते हैं यह तो ठीक ही है क्योंकि इस गुणस्थानमें प्रमादका उद्भव रहता है और प्रमादके उद्भवमें सुधादिबन्ध विफल और उनके परिहारके लिए विषयवृत्तिका उक्त आरस इत्युक्त भगव्यन्तमें लगानके लिए प्रवृत्त होना यह दोनों कार्य बन जाते हैं। तथा साथमें गुणस्थानकी स्थिति प्रमाद परित्त हाकर भी इसके निग्रह नहीं है, क्योंकि इन दोनों गुणस्थानोंमें प्रमाद और अप्रमादबन्ध ही भेद है। यद्यपि विकल्प और उपन्यून प्रवृत्तिका नाम दृष्टवा गुणस्थान है और उनके निरोधका नाम व्यतर्ता गुणस्थान है। तथापि इन दोनों गुणस्थानोंकी धारा इतनी अधिक बहाववाली है किन्ते उनमें परीपद भी उनके अथवा परिपदोंका ठीक तरह विभाजन न होकर ये कार्य मिलकर दोनोंके मानने पड़ते हैं। अतः गुणस्थान उक्त बन्धीयकी उदाहरण होती है आगे

१ यद्यपि वाचक उमास्वामिने 'श्रीरूपवृत्त' सूत्रके अर्थक पदका व्याख्यान करते हुए 'उत्तमपुराण' पदका स्वतन्त्र व्याख्यान किया है और बादमें उपसंहार करत हुए उन्होंने 'उत्तमपुराण' पदकी छोड़कर शब्दको ही अन्वय का गुणको बतलाया है, इसलिए इस परत यह निष्कर्ष निकला जा सकता है कि 'चरमोत्तमपुराण' पदके समान केवल 'चरमवेद' पद भी उन्हें स्वयं ही रह रहा है और बहुत धम्मक है कि आचार्य पूज्यपाद ने इसी आचार्य पाठान्तरका सूचन किया हो। किन्तु यहाँ दृष्टना यह है कि वाचक उमास्वामिने स्वयं सूचकार होते हुए आध्याय में वा पाठ किन्तु आचार्य स्वयंकर किये हैं। अब उनका यह निरूपण या कि उत्तमपुराण भी अन्वयार्थ का गुणक होत है यह उपसंहार करत हुए अन्वयार्थ का गुण भी प्रकट करना था। किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। इससे स्पष्ट जटिल होता है कि वाचक उमास्वामिने भी जो पाठ उपलब्ध हुए होंगे और उन्होंने अन्वयार्थ का व्याख्यान करना उचित समझा होगा। इस आधारसे वे सूचकार तो किन्ती दाखलमें ही ही नहीं सकत।



महाँ इच्छित्य मह कदा वा लब्धत्वा हे कि वेदनीयके निमित्तसे ओ सुधादिबन्ध केनकार्यं छुटनें गुहारपानमें होय हे नह जागे कथनपि सम्भव नहीं । विचारकर देखत पर ब्रह्म तो देखी ही प्रतीत होती हे और हे मी नह केती ही क्यकि अग्रमत्तवत् आदि गुहारपानोंमें नह बीधकी न तो वाद्यप्रवृत्ति होती हे और न अद्यप्रवृत्तिके अमुक्त परिचाम ही होत हैं तब बहाँ सुधादि परिपहोका उन्नाय मानना कर्होवक अवित हे नह विना र्वाय हो श्याय हे । इच्छित्य महों नह देवता हे कि आरके गुहारपानोंमें इन परीपहोका उन्नाय कित इच्छिते माना गया हे ।

किती मी परार्थक विचार यो इच्छितोस किता बाद्य हे—एक तो कार्यकी इच्छिते और दूसरे कारवकी इच्छिते । परीपह का कार्य क्या हे और उनके कारण क्या हैं इह विषयका साक्षात्प्राप्त व्याप्रेह शास्त्रोंमें किता हे । परीपह तथा उनके अन्तर कार्य हे—बाधाके कारण उपस्थित होनेपर उनमें अर्थ हुए आने विचक्रे रोकना तथा स्वभाव प्यन आदि आकरयक आर्योंमें लगे रहना । परिपह और उनके अर्थके इह स्वरूपको ध्यानमें रखकर विचार करने पर कृत होय हे कि एक प्रमत्तवत् गुहारपान ही ऐसा हे किमें बाधाके कारण उपस्थित होनेपर उनमें अर्थ बाध हे और उनसे विचक्रेके रोक्नके लिए यह बीध उपयगीता होय हे । किन्तु आरके गुहारपानोंकी रियाते इच्छिते मित्त हे । बहाँ बाध कारको उत्तर मी उनमें विचक्रेके अन्तर मी प्रवेश नहीं होय । इत्था ही नहीं, कुछ बागे चलकर तो यह रियाते उत्पन्न हो जाती हे कि बहाँ न तो बाध कारण ही उपस्थित होते हैं और न विचक्रे ही रोय गती हे । इच्छित्य इन गुहारपानोंमें केवल अन्तरंग कारणको ध्यानमें रखकर ही परीपहोका निर्येह किता गया हे । कारण मी तो प्रकारके होत हे—एक बाध कारण और दूसरे अन्तरङ्ग कारण । बाध कारको उपस्थित होनेक तो बार्द नियम नहीं हे । किन्तीके उत्तरी प्राप्ति सम्भव मी हे और किन्तीके नहीं मी । परन्तु अन्तरङ्ग कारण उनके पये जात हैं । मरी कारण हे कि दिव्यकर और श्रेयाम्बर दोनों परन्तुइहोके प्रयोंमें परीपहोका विचार करत छमय मुख्यकपठ अन्तरङ्ग कारकोका ही निर्येह किता हे । इसीसे उत्तकायेंसूत्रमें ने अन्तरंग कारण उन्नायका, वेदनीय, इत्यनोद्नीय चारिभनोद्नीय और अन्तरंगके उदयक्य अहे हैं, अन्तरूप नहीं ।

कुल परीपह २० हे । इनमेंसे मत्र और अज्ञान परीपह अनाकयके उत्तमें होतें हैं । अनाकयका उदय लीक्षनोह गुहारपानतक होय हे, इच्छित्य इनका उन्नाय लीक्षनोह गुहारपान तक करा हे । किन्तु इत्था नह अभिप्राय नहीं कि मत्र और अज्ञानके निर्मलसे अंश विकल्प प्रमत्तवत् बीधके हो सकय हे क्या नह अग्रमत्तवत् आदि गुहारपानोंमें मी होय हे । आरके गुहारपानोंमें इह प्रकारके विकल्पके न होनेपर मी बहाँ केवल अग्रमत्तवत् उदय पाया श्याय हे, इच्छित्य बहाँ इन परीपहोका उन्नाय करा हे ।

अद्वयपरपह दशनमोद्नीयके उत्तमें और अज्ञान परीपह अन्तरंगके उत्तमें होतें हैं । यह बात किती मी कर्मशास्त्रक अन्त्याधीन दिदी हूह नहीं हे कि दर्शनमोद्नीयक उदय अभिषेके अभिक अग्रमत्तवत् गुहारपान तक ही होय हे इच्छित्य अद्वय परीपहका अज्ञान अभिषेके अभिक इसी गुहारपान तक करा नह लब्धत्वा हे और अन्तरंगक उदय धीलानाह गुहारपानतक होय हे, इच्छित्य अज्ञान परीपहका उन्नाय महों तक करा हे । किन्तु अग्रमत्तमें ये दोनों परीपह मी प्रमत्तवत् गुहारपान तक ही आने चारित्य । आगे इनका उन्नाय दर्शनमोद्नीयके उत्त और अन्तरंगके उत्तकी अयेजा ही करा हे ।

मन्त्रमें परों इन बातका विचार कर लेय मी इह हे कि तापर्यंग्यकार आकार्य पर्यपिच्छु वाहराम्भयन बीधक तक परीपहोका उन्नाय चलाते हुए उन्ने अद्वयपत्तनाम शब्दका कार्य क्या अभिप्रेत रहा होगा । हमें

यह तो सिल ही चुके हैं कि 'दर्शनमोहनीयका उदय अमनचर्यवत्गुणस्वान एक ही होता है, इसलिए अदर्शन परीपहका सन्नाह अमनचर्यवत् गुणस्वानसे आगे कथमपि नहीं माना जा सकता। एही अन्वयार्थमें बादरखाम्पय का अर्थ रक्षक कथय मुक्त भीष ही हो सकता है। यही कारण है कि सर्वाधिकारमें इस पक्षी व्याख्या करते हुए यह कहा है कि 'यह गुणस्वान विशेषका प्रवृत्त नहीं है। तो क्या है? साधक निर्देश है। इससे प्रमत्त भावि संवर्तीका प्रवृत्त होता है'।

किन्तु तत्त्वार्थमाध्यमे 'बादरखाम्पराये सर्वे'। इस सूत्रकी व्याख्या इन शब्दोंमें की है— बादरखाम्पराय संवत्से सर्वे ह्यधिकारिणः परीपहः सम्भवति। अर्थात् भादरखाम्पराय सप्तके सब अर्थात् बादर परीपह ही सम्भव है। तत्त्वार्थमाध्यमे मुख्य व्याख्याकार विद्यसेनगण्डि हैं। वे तत्त्वार्थमाध्यमे उक्त शब्दाकी व्याख्या इन शब्दोंमें करते हैं—

बादरः रक्षकः सम्पराय व्यापस्तदुदयो दम्बाती बादरसम्परायः संवत्। स च मोहप्रकृती करिचतु फलमवधिपुपसमकः। करिचत् सपत्नीति सपकः। तत्र सर्वेपि ह्यधिकारिणः सुदादीनां परीपहायामवसनात्वात् सम्भवः।

सिद्धके कथय रक्षक होता है यह बादरसम्पराय उदय कहलता है। उनमेंसे कोई मोहनीयका उपशम करता है इसलिए उपशमक कहलता है और कोई ध्वज करता है इसलिए सपक कहलता है। इसके सभी अर्थों का अर्थ परीपहोंका सन्नाह सम्भव है।

इस व्याख्यानसे स्पष्ट है कि विद्यसेनगण्डिके अग्रिमाम्पे तत्त्वार्थमाध्यकार साधक उमास्वातिके यहाँ बादरखाम्पराय पक्षे नीला गुणस्वान ही इष्ट है। प्रकृतसुख पर सुखलालकीने तत्त्वार्थसूत्रकी व्याख्यामें यही अर्थ स्वीकार किया है। वे लिखते हैं— जिससे संवत्सय—कथयका बादर अर्थात् विशेषकयमें संभव हो पड़े न वरसंपराय नामक बोधें गुणस्वानमें अर्थ परीपह होत है। इसका अर्थ यह है कि परीपहोंके कारव्यमूढ सभी कर्म नहीं होते हैं।

'बादरखाम्पराय' पदकी ये दो व्याख्याएँ हैं जो प्रमत्त सर्वाधिकार और तत्त्वार्थमाध्यमें उपलब्ध होती हैं। सर्वाधिकारकी व्याख्याके अनुसार 'बादरखाम्पराय पद गुणस्वान विशेषका सूत्रक न होकर अर्थ परक निर्देश होनेसे दर्शनमोहनीयके उदयमें अदर्शन परीपह होता है इस अर्थकी रक्षित भैठ जाती है। किन्तु तत्त्वार्थमाध्यकी व्याख्याके स्वीकार करने पर एक नर अज्ञान ठठ लकी होती है। दर्शनमोहनीयका सत्त उपशान्तमोह गुणस्वान एक रहता है इसलिए यह कहा जा सकता है कि उन्होंने दर्शनमोहनीयके उत्पत्ती अथवा बादरखाम्पराय नामक नीचे गुणस्वान एक अदर्शन परीपह कहा होगा। किन्तु इस मतको स्वीकार करने पर जो नर आपत्तिवा और सामन आती हैं। प्रथम तो यह कि यदि उन्होंने दर्शनमोहनीयके उत्पत्ती अथवा अदर्शन परीपहका सन्नाह स्वीकार किया है तो उक्त सन्नाह व्यापत्तें गुणस्वान एक करना चाहिए। दूसरी यह कि वे 'सुखिपसका विशेषण— इत्यादि सूत्रकी व्याख्या करते हुए यह करते हैं कि 'पञ्चत्वात्मपि कर्मप्रकृतीनामुदय पक्षे परीपहाः प्रभु संभवति। अर्थात् पक्ष कर्मप्रकृतिपक्षके उदयसे ये परीपह उत्पन्न होते हैं। जो पूर्वोक्त अर्थके स्वीकार करनेपर

१ नेत्र गुणस्वानविशेषप्रवृत्तम्। किं तद्धि? अर्थनिर्देश। तत्र प्रमत्तानीनां संवत्तादीनां प्रवृत्तम्। स प ३ सू १२।

इस कथनकी सङ्घति नहीं बैठती बिलखाई देती । क्योंकि एक ओर तो दरानमोदनीयके उलझकी अपेक्षा अवरगन परीपदके नीचे गुणस्वान तक स्वीकार करना और दूसरी ओर सब परीपदोंको पांच कमोंके उदरकम कार्य करना के परस्पर विरोधी होने कथन कहां तक सुष्ठिसुष्ठ है वह विचारणीय हो जाता है । स्पष्ट है कि विद्वेतेन गश्चिषी टीक्षके अनुसर कृत्यायामाम्यक कथन न केवल रहसिध है अपि तु यह मूल सूत्रकारके अग्रिमार्थके प्रतिकूल भी है क्योंकि मूल सूत्रकारने इन परीपदोंका उद्भाव कमोंके उदरकी मुस्तद्वेष ही स्वीकार किया है । अन्वया के अदर्शन परीपदका उद्भाव और चारित्रमोदके निमित्ते होनेवाले नाम्ब आदि परीपदोंका उद्भाव उपरान्तमोह नामक ग्वाचने गुणस्वान तक अकर्म करते ।

नाम्ब अरति की निरथा, आश्लेष, याचना और सुकार-मुस्तकार के साथ परीपद चारित्रमोदनीयके अरपमे होते हैं । सामान्यतः चारित्रमोदनीयका उदय यद्यपि सूत्रमस्यम्ययसिद्ध नामक दसवें गुणस्वान तक होता है इच्छिए इन साथ परीपदोंका उद्भाव इसमें गुणस्वान तक करना चाहिए था एसी शंका की था एसी है परन्तु इनका दसवें गुणस्वान तक उद्भाव न कल्लानेके दो कारण हैं । प्रथम तो वह कि चारित्रमोदनीयके अशान्तरमे श्लेष मान और माम्यक तथा नौ कोकययोंका उदय नीचे गुणस्वानके अमुक माग तक ही होता है, इच्छिए इन परीपदोंका उद्भाव नीचे गुणस्वान तक करा है । दूसरा वह कि इसमें गुणस्वानमे यद्यपि चारित्रमोदनीयका उदय होता है अवरय पर एक सोम कर्मका ही उदय होता है और वह भी अतिप्रथम, इच्छिए इनका उद्भाव इसमें गुणस्वान तक न करकर मात्र नीचे गुणस्वान तक करा है ।

तथा सुधा पिपास शीत, तप्य दंशमद्यक चर्मा दुग्धा बध, रोग, सुशस्पर्श और मला के म्यार परीपद बेदनीय कमोंके उदयमें होते हैं । बेदनीय कमोंका उदय किन्ते भी होता है इच्छिए, इनका उद्भाव यहाँ तक करा है ।

इस प्रकार अग्रमसंभव आदि गुणस्वानोंमें सूत्रकारने जो परीपदों उद्भाव करा है उसमें उनकी इति अरथको ध्यानमें रखकर ज्ञेयन करनेकी ही थी है और इसीलिए सर्वार्थसिद्धिकार आचार्य पूर्य पारने पहले सूत्रकारकी इच्छिये 'एकत्रय त्रिने' इस सत्रकम आश्रमान किया है । अन्तर जब उन्होंने देखा कि कुछ अर्थ ध्यान अन्व उपारथा मनुष्योंके समान केवलीके अरथपरक परीपदोंके उल्लेखका विपरीत करने मूल प्यास आदि यथाशौचादी प्रतिपादन करने लगे हैं तो उन्होंने यह बल्लानेके लिए कि केवलीके अर्थकममे ग्यारह परीपद नहीं होते न समित' पात्र अन्वहार कर उस सूत्रके सूत्र अर्थ फलित किया है । इसमें न तो उनकी साम्यव्यक्ति इच्छि रही है और न ही उन्होंने योद्ध मरोधकर उल्लेख अर्थ किया है । साम्यव्यक्तिइच्छि तो उनमें है जो तब इस इच्छियेवले देखते हैं । आचार्योंमें मत्भेद हुए हैं और हैं पर सब मत्भेदोंको साम्यव्यक्ति इच्छि केव शौचना कर्तव्य समित है यह समझने और अनुभव करनेकी बात है । आचार्य पूर्यपद यदि साम्यव्यक्ति इच्छियेवले होते तो वे ऐश प्रवजन न कर सूत्र ही अरथकर्म कर सकते थे । किन्तु उन्होंने अपनी रितिको किन्तुव रख रखा है । उक्तता देखा अर्थ तो एक मात्र यही उदाहरण उनकी चारित्रिक प्रामादिकत्वकी कवीटी बन उक्तता है । यह आचार्यवर्यासक सूत्र उदाहरण है । इसके विषय आचार्यवर्यासके एक दो उदाहरण और भी उपलब्ध किने जा सकते हैं पर विरोध प्रयोक्त न होनेसे उनका यहाँ हमने निर्देश नहीं किया है ।

इस प्रकार इन चार उदाहरणोंसे इस अलक्ष्य उदय ही पता लग जाता है कि आचार्य पूर्यपदने मूल सूत्रपद और पाठान्तोंकी रक्षाक किन्तु अर्थिक यथास उक्त है ।

### ४ सर्वाथसिद्धि और तत्त्वार्थमाध्य

ऐसा होते हुए भी आचार्य पूम्पपादके ऊपर यह आरोप<sup>१</sup> किया जाता है कि उन्होंने उन्हें उपलब्ध हुए सूत्रपाठमें सुधार और श्रद्धिकर सर्वाथसिद्धिकी रचना की है। सर्वाथसिद्धि किस अलक्षी रचना है और तत्त्वार्थमाध्य किस अलक्षक यह तो हम आगे बतलकर देखेंगे। यहाँ केवल मुलन्यतमक दृष्टिसे इन दोनोंके अन्त स्वरूपधर पर्यालोचन करना है।

सूत्रपाठ—उर्ध्व प्रथम इम सूत्रपाठको लेते हैं। सर्वाथसिद्धिमान्य सूत्रपाठसे तत्त्वार्थमाध्यमान्य सूत्रपाठमें शब्दोंके हेरफेरसे या शब्दोंके पद्यसे बढ़ानेसे छोटे मोटे अन्तर<sup>२</sup> तो पतात हुए हैं किन्तु उन अन्तर ऊहापहद यहाँ नहीं करना है। जिनमें मौलिक अन्तर हुआ है ऐसे सूत्र हीन हैं। प्रथम स्वर्गोंकी सम्भावना प्रतिपादक सूत्र, दूसरे ध्यानकुमार आदिमें प्रतीकारका प्रतिपादक सूत्र और तीसरे अलक्षको स्वरूप इत्य माननेवाला सूत्र।

स्वर्गके प्रतिपादक सूत्रमें मौलिक अन्तर यह हुआ है कि सर्वाथसिद्धिमान्य सूत्रपाठमें २६ शब्दोंकी परिगणना की गई है और तत्त्वार्थमाध्य मान्य सूत्रपाठमें १२ शब्दोंकी परिगणना की गई है। इस पर आरोप यह किया जाता है कि 'जब सर्वाथसिद्धिमान्य सूत्रपाठमें शब्दोपपन्न देवोंके भेद<sup>३</sup> बतल करलाये हैं और नामोंकी परिगणना करते समय वे सोलह परिगणित किये गये हैं तब यह माननेके लिए पतात आचार हो जाता है कि या तो आचार्य पूम्पपादने या इनके पूर्ववर्ती अन्य किसी आचार्यने इस सूत्रमें भया-बढ़ाकर उसे वर्तमान रूप दिख दे जब कि तत्त्वार्थमाध्यमान्य सूत्रपाठकी स्थिति इसके उर्ध्वथा मिथ है। इसलिए बहुत सम्भव है कि तत्त्वार्थमाध्यमान्य सूत्रपाठ मूल हो और उसमें सुधारकर उत्तरकाष्ठमें सर्वाथसिद्धि मान्य सूत्रपाठ निर्मित हुआ हो<sup>४</sup>।'

यहाँ सर्वप्रथम यह विचार करना है कि क्या ठक सूत्रक आचार्यसे यह निष्कर्ष निकलता था सकता है कि तत्त्वार्थमाध्यमान्य सूत्रपाठ मूल है और उसे सुधारकर या बढ़ाकर सर्वाथसिद्धिमान्य सूत्रपाठ निर्मित हुआ है। यह तो स्पष्ट है कि किसी एक पाठमें परिवर्तन किया गया है पर वह परिवर्तन किस पाठमें किया जाना सम्भव है यही विचारणीय है। जैसा कि हम देखते हैं कि बिगम्बर परम्पराके अनुसार सर्वत्र शब्दोपपन्न देवोंके भेद बतल और अन्य सोलह गिन्याए गये हैं। शब्द शब्दोपपन्न देवोंके आचार्यरचयनकी विशेष संज्ञा है। यदि शब्दोपपन्न देव बतल प्रकाशके हाकर मी उनके आवासरथान लोलह प्रकाशक माने गये हैं तो इसमें शपाकी दोन ही बात है। और इस आचार्यसे यह कैसे कहा था सकता है कि सर्वाथसिद्धिमान्य सूत्रपाठमें सुधार किया गया है। यदि सुधार करना ही इस इत्या तो शब्दोपपन्न ४ सूत्र हीनमें भी बतल के स्थानमें सोलह किया था सकता था। प्रस्तुत इस परसे तो यही कहा था सकता है कि पूम्पपाद स्वामीको जैसा पाठ मिला परम्पराक ठकीकी उन्होंने बयास्त रचा की है। दूसरी और जब हम तत्त्वार्थमाध्यमान्य पाठकी धोर प्पान देते हैं तब भी इस सूत्रके आचार्यसे किसी निष्कर्ष पर पहुँचना सम्भव प्रतीत नहीं होता। कारण कि यहाँ मी इस सूत्रमें भया-बढ़ीका ऐसा प्रकृत करण नहीं मिलता किन्तु यह कहा था सके कि ठक सूत्रमें परिवर्तन किया गया है। दोनों ही परम्पराओंके आचार्य अपनी अपनी परम्पराकी मान्यतापर हट्ट हैं इसलिए इस आचार्यसे यही कहा था सकता है कि जितने उत्तरकाष्ठमें रचना की होगी ठकीके धार सूत्रोंमें सुधार करना सम्भव है।

१. इको ५ सुकशास्त्रकी तत्त्वार्थसूत्रकी सूक्तिका ५ म ५ म २२।

२. इको दो सूत्रपाठ प्रकाश, परिशिद्ध १ और उसके द्विपद्य। ३. इको ध ४ सू ३।

४. इस आरोपके लिए इको ५ सुकशास्त्रकी तत्त्वार्थसूत्र प्रस्तावना म ५ म २२।

दूसरी छानकुमार आदिने प्रविचारका प्रविवादक सूत्र है। दोनोंमें इस सूत्रकी स्थिति इस प्रकार है।

शेषा एतद्रूपशब्दमनःप्रतीचारः । सर्वा ।

शेषाः सर्वाण्यशब्दमनःप्रतीचाराः । ह्योर्ह्रौः । व मा ।

हम देखते हैं कि उत्तार्यामप्यके अनुस्वर इस सूत्र 'ह्योर्ह्रौः' इत्यादि पद अपि है अतः कि सर्वायसिद्धि में इसका सर्वा अन्वय है। इसके पहले होना ही परम्पराओंमें 'प्रतीचारः आ एतान्नाय' यह सूत्र आता है। इस हाय शीघ्र और एतान्नाय एक प्रतीचारका विधान किया गया है। आगे सर्वायसिद्धिके अनुस्वर चौरस और उत्तार्यामप्यके अनुस्वर दस कल्प शेष रहते हैं जिनमें यह सूत्र प्रतीचारका विधान करता है। प्रकृतमें देखना यह है कि सर्वायसिद्धि और उत्तार्यामप्य इन दोनोंमें इसकी संगति किस प्रकार बिगड़ गई है। यह तो स्पष्ट है कि सर्वायसिद्धिमें 'ह्योर्ह्रौः' पद न होनेसे आचार्य पूज्यपादको इसकी व्याख्या करनेमें कष्ट बढिना ही नहीं गई। उन्होंने तो आर्यके अनुस्वर इसकी व्याख्या करके चुड़ी पा ली। किन्तु उत्तार्यामप्यकारकी स्थिति इससे सर्वाय भिन्न है। उनके ध्यान ह्योर्ह्रौः पदके कारण इसकी व्याख्या करते समय यह समझ रही है कि प्रतीचारके विषय चार और कल्प दस होनेसे इसकी संगति कैसे बिगड़ गई। पक्षस्वरूप उन्हें आर्यके चार अक्षरोंके या मानकर इस सूत्रकी व्याख्या करनेके शिष्ट बाध होना पड़ा है। उन्होंने किसी प्रकार व्याख्या करनेका तो प्रयत्न किया पर इतने जो अतीव्र उद्यम होती है वह कथमपि दूर नहीं की जा सकी है। इसके पहले एक सूत्रके अन्तरले वे द्विविधोपश्लेषः सूत्र कह आते हैं और इन केदाकर स्पष्टीकरण इस सूत्रके भाष्यमें किया है। प्रकृतमें 'पञ्चोत्त-निमित्तः पदं सीदिय। यह प्रथम अस्यापके २२ वें सूत्रमें आता है। इसके पहले एक सूत्रके अन्तरले वे द्विविधोपश्लेषः सूत्र कह आते हैं और इन केदाकर स्पष्टीकरण इस सूत्रके भाष्यमें किया है। प्रकृतमें 'पञ्चोत्त-निमित्तः पदं आप ह्युप पञ्च पद हाय उनकर संकेत इसी भाष्यकी ओर है। ये इस पद हाय कहना चाहते हैं कि दूसरे द्विध निमित्तकर संकेत हमने द्विविधोपश्लेषः सूत्रके भाष्यमें किया है उक्त निमित्तले शेष शीघ्रोंके द्वय प्रकारका अक्षयिज्ञान होता है। किन्तु उक्त अक्षयिज्ञान अतः कि सूत्र रचना पहले ही चुकी थी और भाष्य बादमें लिखा गया है भाष्यकारकी स्थिति उन्हेहजनक हो जाती है। और मानना पड़ता है कि उत्तार्यामप्यकार याचक उमास्थादिने प्राचीन सूत्रपाठमें सुधार करनेका प्रयत्न किया है।

सीमा कल्पके अस्तित्वको स्वीकार करनेवाला सूत्र है। यह सर्वायसिद्धि और उत्तार्यामप्यमें इस प्रकार उल्लिखित है—

कल्पम । एता ।

कापरकल्पके । व मा ।

हम हाय काशको द्रव्यरूपने स्वीकार किया गया है। किन्तु उत्तार्यामप्यकार पक्षा करते हुए भी द्रव्य आचार्योंके मतमें काशको द्रव्यरूपने स्वीकार करते हैं स्पष्ट नहीं। यही कारण है कि उन्होंने उत्तार्यामप्यमें नये नये द्रव्योंका उल्लेख किया है यहाँ यहाँ पंच अतिप्रयोग' ही उल्लेख किया है और लोकको पंच

अधिकारवात्मक बतलाया है। श्वेतान्तर आगम आदिष्वपि एव त्रय्योका निर्देश किया है अथर्व और एक स्थान पर तो तत्त्वार्थमाध्यकार भी एव त्रय्योका उल्लेख करते हैं परन्तु इन्से वे अलक्ष्य त्रय्य मानते ही हैं यह नहीं कहा जा सकता। अथर्व यह है कि श्वेतान्तर आगम आदिष्वपि यहाँ भी एव त्रय्योका नामनिर्देश किया है दहाँ अलक्ष्यके लिए 'अद्भुतममय' शब्द प्रयुक्त हुआ है काक शब्द नहीं और अद्भुतममय शब्दका अर्थ यहाँ पर्याय ही लिया गया है प्रोशात्मक त्रय्य नहीं। तत्त्वार्थमाध्यकारने भी इसी परिपाटीका निर्वाह किया है। उन्होंने तत्त्वार्थमाध्यकारके किन सूत्रोंमें काक शब्द आया है यहाँ तो उनकी व्याख्या करते हुए काक शब्दका ही उपयोग किया है किन्तु किन सूत्रोंमें 'काक' शब्द नहीं आया है और यहाँ 'काक' का उल्लेख करना उन्होंने आभार्यक समझा तो 'काक' शब्दका प्रयोग न कर 'अद्भुतममय' शब्दका ही प्रयोग किया है।

तत्त्वार्थमाध्यकार और उक्त मान्य सूत्रपाठकी ये दो शिथिलियाँ हैं जो हमें इस निष्कर्षपर पहुँचानेमें सहायता करती हैं कि मारम्भमें या काकम् इस प्रकारके सूत्रका ही निर्माण हुआ होगा किन्तु बादमें यह बदलकर 'अद्भुतममयके' यह रूप ले लेया है।

यहाँ प्रथमसे सूत्र रचनाकी शैलीके विषयमें भी दो शब्द करना है। सर्वाधिकारिण्यम् सूत्रपाठको देखते हुए तो यह कहा जा सकता है कि परिशोपन्यायसे उद्यमं कोर भी अत नहीं करी गई है। यह यीथी सूत्र और उनका पद्योकी व्याख्या करते हुए आगे बढ़ती है। इसके विपरीत दूसरी ओर जब हम तत्त्वार्थमाध्यकार देखते हैं तो उद्यम हमें कोर एक निश्चित शैलीक दर्शन नहीं होते हैं। वहीं वे परिशोपन्यायका स्वीकार करते हैं और करी नहीं। जैसे शपथो संसृज्जन्म और 'अद्भुतमः पापस्य ये दो सूत्र परिशोपन्यायसे नहीं कहे जाने चाहिए वे फिर भी उन्होंने इनको स्वतन्त्र सूत्र मान लिया है और शपथिश्चः तथा 'अतोऽप्यन्त्यायम् इनको ब्याह दिया। ऐसी अद्भुतममें यह कहना कि आशय पूर्वपादने तत्त्वार्थमाध्यकारको देखकर इन्हें स्वतन्त्र सूत्रोका रूप दिया है मुक्तिबुद्ध प्रतीत नहीं होया। परन्तु तत्त्वार्थमाध्यकार अपनेको एसी शिथिलमें नहीं रख सकें विलम्ब उनके विषयमें कोर निश्चित रेखा लानी जा सके। एक दूसरे अध्ययन के शरीर प्रकृतशुको ही सीबिय। उद्यमं पत्रिदिक शरीरकी उद्यमिके दोनों प्रकार तो सूत्रोंमें दिना दिये किन्तु अब ठेकश शरीरका प्रथम आया ता उद्यमं उद्यमिके प्रकारको सूत्रमें दिखलाना उद्धान आभार्यक नहीं समझा। क्या इस प्रकृत्याका दलते हुए यह कहा जा सकता है कि यह अर्थगति मूलसूत्रकारको बचिकर प्रतीत रही होगी। तत्त्वार्थमाध्यकार अन्य सूत्रोंमें भी पत्नी अर्थगतिर्या दील पढ़ती है। आध अध्ययनमें लौकान्तिक शरीर प्रतियात्क सूत्र आता है। उद्यमं लौकान्तिक शरीरको अर्थगतिर्या करते समय नौ भद्र दर्शाये है किन्तु तत्त्वार्थमाध्यकारने 'एव सारस्वतवत्प्राग्भविष्या देवाः इन शब्दों द्वारा वे आठ ही रह गये हैं।

ये भी उद्ये उदाहरण हैं या तत्त्वार्थमाध्यकारने सूत्रपाठकी शिथिलमें सन्देह उत्पन्न करते हैं और यह माननेके लिए बाध्य करते हैं कि बहुत सम्भव है कि सर्वाधिकारिण्यम् सूत्रपाठ पुराना है और उद्यमं पद्यिक परिशर्तन कर तत्त्वार्थमाध्यकारने सूत्रपाठकी रचना की गई है।

#### ४ पांचापर्ययिचार—

निम्न प्रकारके पद्यमें सर्वाधिकारिण्य और तत्त्वार्थमाध्यकारकी शिथिल बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। तथापि कुछ अत्युपयोगी विषयों पर प्रकाश टाकना आभार्यक प्रतीत होया है। क्योंकि अन्तमें हमें यह

१ परत्वं परद्रव्याचरोपात् । अ १ सू ३५ ।

२ अ ५ सू १ ।

देखा है कि इनकी रचनापी आनुपूर्वी क्या है । एवं प्रकृतिको विशेष स्फुट करनेके लिए सर्व प्रथम हम समान स्थलोंका उदाहरण करेंगे और उसके बाद उन स्थलोंको स्पर्श करेंगे जिससे इनके पौर्वापर्यके ऊपर प्रकाश पड़ता है क्योंकि सत्रप्रथम हमें यह दिखाना है कि इन दोनों प्राचीनी स्थिति देखी है कि किसी एकका सामने रखकर दूसरा खिंचा गया है और अन्तमें यह विचार करना है कि यह अनुसरणकी प्रकृति किसमें स्वीकार की गई है ।

सर्वप्रथम प्रथम आश्रयका प्रथम सूत्र ही सीधिये । इसमें सर्वाथसिद्धिमें यह वाक्य आता है—  
 पतया स्वकणं ब्रह्मणो विधानतरेच पुरस्तात्स्वस्वरेच निर्देश्यमः ।

यही वाक्य तत्त्वार्थमायम मुक्त शब्दोंके द्वैत के साथ इन शब्दों द्वारा स्फुट किया गया है—  
 तं पुरस्तात्स्वस्वरेचो विधानतरेच विस्तीर्योपदेश्यमः ।

आगे भी यह वाक्य अस्त तक देखनेको मिलता है । क्या —

सर्वाथसिद्धि

तत्त्वस्वरूप ब्रह्ममात्रो जीवादिः ११ ।  
 प्रथमसंयोगानुसंग्यसिद्धयामसिद्धयश्च  
 प्रथमम् । १,२ ।  
 तत्त्वार्थसंज्ञानं सम्पन्नार्थमितिमुक्तम् । अथ  
 कि तत्त्वमित्यत्र इहमाह — उत्पत्तिकाम् १,३ ।  
 तद्यथा—नामजीवः स्थापनाजीवो ब्रह्मजीवो  
 मात्तरीच इति चतुर्था जीवतत्त्वार्थो स्पष्टत १२ ।  
 अहङ्गुणविश्रुतार्थमितिमुक्तम् । सांख्यमिति  
 स्थाप्यमाका स्थापना । १,२ ।  
 किङ्करोऽप्य विद्यायः ? ब्रह्मविद्यापत्रम् । अथो  
 ब्रह्मर मन्त्रमार्थपर इतरो वा धुमकेवकी  
 आराधनापश्यति । तत्र तत्रानुच चरमदिया परमा  
 पिन्व इत्यनुचरमिति ब्रह्मण्य अर्थेत् आगम  
 र्दत्त । तत्र प्रत्यक्षसिद्धिवाणीसदोपचार  
 मन्मायम् मन्त्र मन्त्राद्यप्यैतैरेवपिप्रायश्चित्तैरेव  
 परैः पुनरुचरमिब्रह्मण्यप्रत्यक्षमन्त्रमन्त्रमन्त्रम् ।  
 तन्मात्रम्, तन्मात्रम् । आराधयिः पुनरापयिः  
 कात्त र्थं ब्रह्म पुनरिब्रह्मण्यपुनरापयि इत्ये  
 कादिपत्त र्दत्तम् । ११ ।

तत्त्वार्थमायम

तत्त्वामि जीवादीनि ब्रह्मणो । १,१ ।  
 तदेवं प्रथमसंयोगमित्येदमुक्त्यासिद्धयामिष्यति  
 सचकं तत्त्वार्थसंज्ञानं सम्पन्नार्थमिति । १,२ ।  
 तत्त्वार्थसंज्ञानं सम्पन्नार्थमितिमुक्तम् । तत्र  
 कि तत्त्वमिति । अत्रोत्पत्ते— उत्पत्तिकाम् १३ ।  
 तद्यथा नामजीव स्थापनाजीवो ब्रह्मजीवो  
 मात्तरीच इति । १५ ।  
 यः अहङ्गुणविश्रुतार्थमितिमुक्तम् । स्थाप्यते  
 जीव इति स स्थापनाजीवः । १,४ ।  
 किङ्कृतः प्रतिबिम्ब इति ? अत्रोत्पत्ते—ब्रह्मविदो  
 प ह्यैविष्यम् । अत्रोत्पत्तिः सार्थीः सार्थीतिभिः  
 परत्रपमिरदितिः तत्त्वार्थमायाम् परमद्यसत्त्व च  
 प्रत्यक्षमितिप्रापतकत्तय सार्थीकरतममन्त्रार्थोऽनुमाया-  
 बुक्तं अत्रोत्पत्तिप्यैरित्यत्रोत्पत्तिरत्तमातिरापत्तुवि  
 सापत्तैगय्यधैरत्तं तत्रोत्पत्तिम् । तत्त्वस्वरूपतयो  
 तिभिःतत्त्वार्थमितिमुक्तम् । परमप्रत्यक्षम्, इमतिरात्त  
 मितरापयिः अत्रोत्पत्तिमन्त्रार्थोऽनुमायात्तं । तत्त्वार्थ-  
 यामनुमायात्तं अत्रोत्पत्तिरत्तमातिरापत्तुवि । १,१ ।

यह हमने इन तिप्पत्तों पर करनेके लिए चन्द्र उदाहरण ही उदाहरण किया है । आगे उन स्थलोंको स्पर्श  
 करेंगे कि वे तत्त्वार्थमायम-इत्तौत्पत्तिना तद्व्य करतमे उदाहरण करते हैं ।

प्रस्तावना प० मुखलासबीने सर्वाधिकारी और उत्साहमान्य इनमेंसे पहले क्रम और बादमें क्रम शिक्षा तथा इच्छा विचार करते हुए 'शैली' आधिकारिक और साम्प्रदायिकता इन तीन उपप्रकरणों द्वारा इस विषय पर प्रकाश डाला है और इन आधारोंसे उत्साहमान्यको प्रथम उद्देश्य प्रवृत्त किया है।

प्रस्तावना प० मुखलासबीके कथनानुसार हम मान लें कि सर्वाधिकारी शैली उत्साहमान्यकी शैलीकी आवेष्टा कियेप विच्छिन्न और बिरोध परिशीलित है। साथ ही वह भी मान लें कि सर्वाधिकारिमें व्याकरणकी दृष्टिसे अर्थविक्रमके स्पष्ट दर्शन होते हैं। तथापि इन आधारोंसे उत्साहमान्यको परिकेकी और सर्वाधिकारिकको बदली रचना खोजित करनेका प्रवृत्त करना अनुचित प्रतीत नहीं होता। आचार्य पूज्यपदका व्याकरणके ऊपर लिखा गया केन्द्र व्याकरण प्रविष्ट है। उन्होंने न्यायके ऊपर भी प्रत्यरचना की थी यह भी बतला दीकाके उत्सोक्तों विहित होता है। ऐसी अवस्थामें उनके द्वारा रची गई सर्वाधिकारिमें इन विषयोंका विचार और स्पष्ट विवेचन होना स्वभाविक है। किन्तु वाचक समावृत्तिकी रिपति इसके सर्वथा भिन्न है। वे मुसलतया प्रागमिक विद्वान थे। उनकी अथ एक बिल्ली रचनाएँ उपलब्ध हुई हैं वे आगम परिपाटीको खिच हुए ही हैं। यही कारण है कि उन्होंने उत्साहमान्यमें व्याकरण और दर्शन विषयका विशेष उल्लेख नहीं किया है।

उनका तीसरा आक्षेप साम्प्रदायिकताका है। पण्डितकीने सर्वाधिकारिमें प्रतिपादित ऐसे चार विषय बुने हैं किन्तमें उन्हें साम्प्रदायिकता की गन्ध आती है। वे लिखते हैं कि 'असत्त्व' केविक्रमलाहार अनेककर और कीमोक्ष जैसे विषयोंके शीघ्र मत्तके का रूप बारा करनेके बाद और इन बातों पर साम्प्रदायिक आग्रह बंध जानके बाद ही सर्वाधिकारि लिखी गई है, जब कि साम्प्रदायिक अस्मितेशका यह उल्लेख दिलाई नहीं देता।

महत्तमें इस विषय पर विचार करनेके पहले पण्डितकी ऐसा लिखनेका कारण क्यों करते हैं इस बातका विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

मगवान महावीर स्वामीके श्रुतिश्लोक करनेपर जो पाँच भुक्तेश्वरी हुए हैं उनमें अन्तिम भद्रबाहु थे। इनके समयमें उत्तर भारतमें बारह वर्षका दुर्मिष पड़ा था। इस समयमें भद्रबाहु वृद्धिपकी प्रवृत्त कर गये थे। इन दुर्मिषका उल्लेख श्वेताम्बर परम्परा मी करती है और वायुसंघके समुद्रके नवमीका अक्षर विस्तर बानेकी बात स्वीकार करती है। उस समय भद्रबाहुके मुख्य शिष्य मौर्य चन्द्रगुप्त मी उनका साथ गए थे और वहाँ पहुँचते पहुँचते वायु कीरा हो बानसे भद्रबाहुने वही समाधि ली थी। किन्तु कुछ वायु भाष्यकार कियेप अनुसंधान पटना ही कर गये थे और अज्ञानसे परिस्थितिपदा उन्होंने एक स्वीकार कर लिया था। जिसके बिन परम्परामें श्वेताम्बर संघकी उत्पत्ति मानी जाती है। जब बारह वर्षका दुर्मिष समाप्त हुआ तब वायु पुनः पटना लौट आया। श्वेताम्बर परम्पराके अनुसार भद्रबाहु उस समय नवमसकी उत्पत्ति में थे और बारह वर्षकी कियेप उत्पन्नकर्ता करनेमें सगे हुए थे। वायुसंघके भद्रबाहुको पटना हुआथा किन्तु वे नहीं आये कियेप उन्हें वनवास करनेकी वचनकी दी गई और किसी प्रकार उन्हें शिष्य अनुशासको पदानेक शिष्ट कार्य कर लिया गया। श्वेताम्बरने अंगबान उन्हींके प्राप्त किया है। यदि श्वेताम्बर सम्प्रदायका इस कथनका सत्य मानकर अपने तब मी श्वेताम्बर सम्प्रदायका अपनी परम्पराकी श्रुतिश्लोक स्वीकार करने और पटना वाचनयमें भद्रबाहुका सम्मिलित न होना वे दो बातें ऐसी हैं जो उस समय केवलसेम हुए किसी बड़ भारी विरोध का संकेत करती हैं। स्पष्ट है कि उस समयकी वाचनको अस्मित केवलसेमका अस्मितनिरास प्राप्त नहीं था और बालान्तयमें वा अंगकारित्य संश्लेषित और अस्मित हुआ है वह वाचनवायुको केवल परम्परामें प्रतिष्ठित करनेकी दृष्टिसे हो हुआ है। इस समय का श्वेताम्बर अंग साहित्य



उपसम्भ है वह लगभग भगवान् महावीरके मोक्ष गमनके एक इबारतके बादका ही संकलन है। चौपनेकी बात है कि जब भद्रबाहुके कालमें ही प्रथम वाचना हुई थी तब उसे उठी समय पुस्तकभङ्ग करके उधारी रखा क्यों नहीं की गई? बटनानुसंगे विदित होता है कि उस समय श्वेताम्बर संघके मीठर ही चीज मतभेद रखा होगा और एक दल यह कहता होगा कि संभवतःकी स्थितिमें भी श्रंगलालित्वमें परिवर्तन करना उचित नहीं है। बहुत संभव है कि यदि उस समय श्वेताम्बर श्रंग साहित्य संकलित होकर पुस्तकभङ्ग किया जाय तो उसका वर्तमान में रूप ही कुछ दृश्य ही होता।

यद्यपि श्वेताम्बर श्रंगसाहित्यमें ऐसे भी उल्लेख दृष्टिगोचर होते हैं जो नमनवाके समर्थक हैं। किन्तु हम उल्लेखोंको उधारी प्रामाणिकताकी कसौटी नहीं माना था उक्तवा। वस्तुतः वे परिस्थितिकर स्वीकार किये गए हैं। प्रशासक पं० सुलालाजी इस स्थितिसे अनभिज्ञ हों देखी बात नहीं है। वे जानते हुए भी कितनी कसरत कर रहे स्वयंकी दृष्टिगोचर करनेके फलमें हैं और वह धोषित करनेकर प्रयत्न करते हैं कि श्वेताम्बर श्रंगमुक्तमें अथेत्तकत्व समर्थक वाक्य ही भगवान् महावीरकी परम्पराके पूरे अतिनिमित्तके सूत्रक है।<sup>१</sup>

यह अर्थ है कि भगवत् परम्परामें अथेत्तकत्व और अथेत्तकत्व दोनोंको रचाना रहा है और यह भी उक्त है कि अथेत्तकत्व उन्मत्त धर्म और अथेत्तकत्व अपवाद धर्म माना गया है। हमें विद्यमान परम्पराके साहित्यमें भी पक्ष उल्लेख उपलब्ध होते हैं जिनसे इस तथ्यकी पुष्टि होती है। किन्तु वहाँ अथेत्तकत्वके व्यत्यय मुनिधर्मसे है और अथेत्तकत्वके व्यत्यय परम्पराधर्म या भावकधर्मसे है। भावकधर्म मुनिधर्मका अपवादधर्म है। यहाँ परम्परा धर्म प्रकाशकी दिशा अत्यन्त स्पष्ट और अत्रिभक्त परिहार कर मुनि होय है वहाँ उक्त सब प्रकारके परिहरना परिहार करना भी आवश्यक होता है। श्वेताम्बर श्रंग मुक्त और प्रकृतिक साहित्यमें बल और पात्रके स्वीकार करनेको भी संयतन वाचन माना गया है किन्तु धर्मका खचन यह हो सकता है जो शरीर की सुविधाके लिए आवश्यक न होकर मात्र प्राणिपीडा परिहारके लिए स्वीकार किया जाता है। किन्तु बल और पात्र प्राणिपीडा परिहारके लिए स्वीकार किये जाते हैं यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होय है, क्योंकि इन वाचनोंत उक्त धर्म दृष्टिगोचर नहीं होय। दूसरे हैं उक्त कार्यका अनिर्धार श्रंग मानकर बलन पर गमनवा और प्राणिपात्रत्वका विधान करना नहीं बन सकता है। किन्तु हम देखते हैं कि श्वेताम्बर आयाममें अथेत्तकत्व और प्राणिपात्रत्वकी भी विधान है अतः बल और पात्र उन्मत्तके मतेसे संयतके उपकरण नहीं हो सकते। एक कारण उन्मत्त और अपवादलिंगकी भी जाती है। यह कहा जाय है कि नमनवा और प्राणिपात्र उन्मत्त लिंग है किन्तु इतना अपवाद भी जाना जाय और अपवादरूपमें ही बल और पात्र स्वीकार किये जाते हैं। हम मानते हैं कि प्रत्येक उन्मत्तका अपवाद होगा है और यह अन्वयथा भगवत् परम्परामें भी स्वीकार की है। तनी यह बड़े मुनिधर्म और परम्पराधर्म इन दो भेदों का निर्देश करता है। मुनिधर्म उन्मत्त लिंग है और परम्पराधर्म इतना अपवाद है। इतलिय बल और पात्रका स्वीकार मुनि अपवादका श्रंग नहीं बन सकता है।

१ सचरत इतक अन्तर हीक श्रंगभङ्गकी बात गङ्गाचतु पं० सुलालाजी भी स्वीकार करते हैं। वे लिखते हैं 'अनुवाद बाद धर्ममें पुनः धुर्मभङ्ग हुआ किन्तुमें रचिह या सचरत इतका रहा महा मयभद् भी नाम दाय हो गया।' श्रंग वाचनसूत्र प्रस्तावना पृ० ३ ।

२ प्रशासक पं० सुलालाजीके श्रंगों का नाम। श्रंगों वाचनसूत्र प्रस्तावना पृ० २१ ।

मने ही मुनिपक्षके समय ऐसी परिस्थिति रही है जिससे उस समय ठकर मारतमें जो खसु रूढ़ गए थे उन्हें बल और पात्र स्वीकार करने पड़े थे। इतना ही नहीं उन्हें अरखबरा एख भी स्वीकार करना पड़ा था। किन्तु उन्हें साधुका चिन्ह मान लेना मुनि मार्गके विरुद्ध है। यह हम पहले ही कल्ला थाप हैं कि जो कमबोरीबरा कला रिकमो स्वीकार करते हैं वे भावक होते हैं। उनके परिवारम मुनिचमके अनुकूल नहीं हो सकते।

इस स्थितिमें होते हुए भी आग्रहेश श्वेतान्तर अंगभुतमें एक पात्राधिके साधुके अंग मानकर उनके किनकप्य और स्थविरकल्प ये हो भेद कर दिए गए हैं। इस अरथ प्रशासक प सुखसाक भी जो भी उठकी पुष्टिके लिए साध्य होना पड़ा है। अन्यथा उन्हें जिन कल्पोंके निर्देशमें साम्प्रदायिकताकी गन्ध छाती है उन्हें वे न केवल धारितक दृष्टिसे स्वीकार करते अपितु वे परिस्थितिकर अनया परम्परांम हुए एक बहुत बड़ी गलतीका परिहारकर आगेका पय प्रशस्त करनेमें सहायक होते।

यह हम पहले कहेत कर थाप हैं कि पण्डितकी ने सर्वाधिकारसे एसी चार घते जुनी हैं किन्कर निर्देश वे साम्प्रदायिक कोटिका मानते हैं। सर्वाधिकारमें निर्वापक रूपसे अल चलका विधान किया गया है जब कि लक्षार्थमाप्यमें अर्थविशेषके रूपमें उठकर उठनेका है। सर्वाधिकार केवलिकबहाहार और की मुक्तिका नियमकर नाम्पत्रे स्वीकार करती है जब कि लक्षार्थमाप्य परीपरोके प्रसंगते नाम्पत्रे स्वीकार कर कर, पात्र और की तीयकरका भी विधान करता है। सर्वाधिकार और लक्षार्थमाप्यकी यह स्थिति है जिस अरथ पण्डित कीने सर्वाधिकारके नियममें अपना ठक प्रकरकर मत बनाया है और इस आचारस लक्षार्थमाप्यके सर्वाधिकारके प्राचीन विद्व करनेका प्रबल किया है। इस नियममें पण्डितकीका अग्रिमत् है कि 'साम्प्रदायिक अभिनिवेश क्य जानेके बाद ही सर्वाधिकार लिखी गई थी जब कि लक्षार्थमाप्यमें एते अभिनिवेशका सर्वथा अभाव है।

यह तो हम पहले ही कल्ला थापे हैं कि जैन परम्परामें साधुकीने एक और पात्र किं परिस्थितिमें स्वीकार किये थे और यह भी उल्लेख कर थाप हैं कि श्वेतान्तर अंगभुतकी रचना पौषकी शक्यिके यह हुए है। अतएव यह भी सुनिश्चित है कि लक्षार्थमाप्य उठके बाद ही किसी समय लिखा गया होगा क्योंकि पण्डितकीके ही शक्यीमें 'उन्होंने ( लक्षार्थमाप्यकारने ) लक्षार्थकी रचनाके आचाररूप किं अंग अनेंगभुतका अचलमन किया था यह पूर्वाक्य स्थविरकल्पे मान्य था।' इस अभिप्रायसे ठक कथनकी पुष्टि होती है।

अपारणतः यह मतभेद श्वेतान्तीय अंगभुतके पुत्रकाहू हो जानेके बाद ही उपररूपमें प्रकट होने लगा था क्योंकि जैनपरम्पराके कहे जानेवाले अंगभुत जिस महाराष्ट्रीय साहित्यमें उठकर मुक्ति और कीमुक्ति अत नियमका सम्प्रवेश हान्य पुगानी परम्पराके ही नष्ट अत करनेवाली घटना थी। इस कालमें एक और बर्त साम्प्रदायिक अभिनिवेशम आकर ठक शक्यीका विधान किया जाने लगा था बर्त वृत्तकी आर साहित्यिकदृष्टि उठकर नियम करना और एशनमार्हतीयक रूपकर बाधक कलान्त अविचार हो गया था। सर्वाधिकारकारने यह कार्य किया है और दृढ़वाके थाप किया है। कल्ला ठक कालमें साहित्यक परदर्शी रक्षाकर मार उनर था और उन्होंने लक्षार्थ मुन्दरप्यक निवार भी किया है।

एसी अरथामें हमें लक्षार्थिक और लक्षार्थमाप्यक पौर्वायका विचार अन्य प्रमाणीके आचार न करना चाहिये। शैलीभर अर्थविकार और साम्प्रदायिकताके आधारके इतका निर्देश करना गीप है। अतः आरपु अन्य प्रमाणीके प्रकाशमें इस लक्षार्थका नियम किं अय।

इस समय उत्सर्गमाध्य पर मुख्यतः प्रथम दो टीकाएँ उपलब्ध होती हैं—प्रथम हरिभद्रजी टीका और दूसरी सिद्धसेन गणेशजी टीका। आचार्य हरिभद्र और सिद्धसेन गणेश समाख्येयन या कुछ आगे पीछेके होते हुए भी यह अक्षरार्थके देखने बादमें हुए हैं। इत्यादी ही नहीं सिद्धसेन गणेशने ये यह अक्षरार्थके देखकी इतिवृत्तोंका मतभेद उपयोग भी किया है वह उनकी टीकाके देखनेसे भी विरहित होता है। किन्तु प्रभावचतुर्षु व मुख्यतः यह इस महत्से सम्बन्धित होते हुए भी दूर चले जाते हैं। वे उत्सर्गमाध्यकी भूमिका पृ. ६९ में लिखते हैं—

‘किन्ती किन्ती रसल पर एक ही सूत्रके माध्य का विवरण करते हुए वे पौष छद्म मत्वात्मक निदिष्ट करते हैं, इससे ऐसा अनुमान करनेका कारण मिलता है कि जब सिद्धसेन गणेश रबी एवं उनके सामने क्रमसे क्रम उत्सर्ग पर रबी हुए पौष टीकाएँ होनी चाहिए; जो सर्वाधिकारिता आदि प्रसिद्ध दार्शनिक तीन व्याख्याओंसे जुड़ी होगी पया माध्यम पदार्थ है क्योंकि सार्वभौमिक और श्लोकवार्तिककी रचनाके पहले ही सिद्धसेनीय इतिवृत्त रचा गया बहुत सम्भव है कि सिद्धसेन उनसे पहले यह रबी गद्य हो तो भी इसकी रचनाके बीचमें इत्यादी क्रमसे क्रम आसता है ही कि सिद्धसेन को सार्वभौमिक और श्लोकवार्तिकका परिचय मिलनेका प्रयोग ही न आया।’

यहाँ हमें उर्ध्व प्रथम परिचयकी इस संकल्पकी आशोचना करनी है और इसके बाद देवता है कि क्या सिद्धसेनगणेशकी टीका सार्वभौमिकता आशोदन किये किन्तु किसी गर्व थी।

परिचयकीने सर्ष प्रथम सिद्धसेन गणेशकी आख्याय पौष सूत्र तीनकी टीकाके आचारस उत्सर्गमाध्य पर लिखी यह पौष छद्म स्वतन्त्र टीकाओंका अनुमान किया है इस आचारस हम इसे ठीक मान लेते हैं। तथापि इससे यह निष्कर्ष किं निराशा का अर्थ है कि सिद्धसेन गणेशने उत्सर्गमाध्यकी आशोदन किये किन्तु ही अपनी टीका लिखी थी। इससे तो केवल इत्यादी पया लगता है कि उनके सामने और भी यह टीकाएँ थी जो ‘नित्या हरियलम्परुणसि सूत्रके कर पाठ प्रस्तुत करती थी। यह स्वतन्त्र विषय है और इस पर स्वतन्त्ररूपसे ही विचार करना चाहिए कि सिद्धसेन गणेशके सामने उत्सर्गमाध्य पर अपनी टीका लिखते समय उत्सर्गमाध्यिक या या नहीं और उत्सर्ग हमें प्रसंगवशित इसी अर्थका विचार करना है।

हमें उम्मेद नहीं कि सिद्धसेन गणेश बहुतभूत विद्वान् थे। उन्होंने अपनी टीकामें उत्सर्गमाध्यके अनेक पाठान्तो, मत मत्वात्मके प्रयोग, आचार्यों और प्रभावचतुर्षु अक्षरार्थ किया है किन्तु अनेक पठित्वात्मिक तथ्यों पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रसंगसे वे यह अक्षरार्थके देखके सिद्धिनिश्चय और उत्सर्गमाध्यिककी भी नहीं भूले हैं। आप्यय १ सूत्र १ को टीकामें सिद्धिनिश्चयका उल्लेख करते हुए वे लिखते हैं—

सर्वं कार्यकारणसम्बन्धः समवायपरिणामनिमित्तनिर्बन्धकारित्वस्य। सिद्धिनिश्चयस्यैवपरिणामो बोधनीयो विद्यमानिना रूपवहात्परिणामि ।

यह अक्षरार्थके देखके उत्सर्गमाध्यकारित्वमें सिद्धिनिश्चय सम्बन्धम इत्येवमभाष्यक प्रत्य है और उभमें सिद्धि परिका प्रभाव भी उत्सर्गमाध्य होगा है। इस निश्चयत शंका है कि यह उल्लेख इसी सिद्धिनिश्चयका है।

इसने उत्सर्गमाध्यिकके साथ भी सिद्धसेन गणेशकी उक्त टीकाका तुलनात्मक अध्ययन किया है। इसत

१ हरिभद्रजी टीका तीन खण्डकीने सूरी की है तथा प्रभावचतुर्षु व मुख्यतः वे उत्सर्गमाध्यकी भूमिका पृ. ६२ में लिखते हैं और टीकाके इत्येवसे यह मत समीचीन प्रतीत होता है।

जि इस निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सिद्धसेन गणिके सामने उत्तारार्थभाष्य पर अपनी प्रसिद्ध टीका लिखते समय उत्तारार्थवार्तिक अर्थात् या। तुलनाके लिए हेमिए—

अर्थवशात् विमल्लिपरिग्रामो मवति । तद्यथा—उत्थासि देवदत्तस्य गृहान्यामन्त्रवस्तैमिति । देवदत्त  
मिति गम्यते ।

—उत्तारार्थवार्तिक अ १ सू ७ ।

अथवशात्च विमल्लिपरिग्रामः उत्तरेषुंहासि देवदत्तस्यामन्त्रवस्तैमिति ।

—सि० टी उत्थामिका श्लोक ६ की टीका ।

‘इसी प्रथम समानता सूत्रक और भी वाक्य उपलब्ध होते हैं—विनका निर्देश व फणानन्दभी शास्त्रीने अपनेकान्त कर ३ क्रिया ११ में सिद्धसेनक सामने उत्तारार्थवार्तिक और उत्तरवार्तिक’ शेषमें किया है। इन समानता सूत्रक वाक्यों काविरिक्त सिद्धसेन गणिकी टीकामें कुछ एम भी उल्लेख मिलते हैं जिनके आधारसे उत्तरी रियति उत्तारार्थवार्तिकके बाद रिदर होनेमें शिष्टाय तदायता मिलती है। यथा—उत्तरार्थवार्तिकमें नरकयुक्ते अरयोषी व्याख्या करते हुए यह वाक्य आता है—

‘बह्दारम्भाः परिग्रहा यस्य स बह्दारम्भपरिग्रहः

इती वाक्ये सिद्धसेन गणिके मतमेरके साथ इन शब्दोंमें व्यक्त करते हैं—

अपर मुचय—बह्दारम्भाः परिग्रहा यस्यासी बह्दारम्भपरिग्रहः ।

इस पक्षी व्याख्या उत्तरार्थवार्तिकमें भी उपलब्ध होती है। इसलिये इससमे यह कहा जा सकता है कि सिद्धसेन गणिके यह मतमेर उत्तारार्थवार्तिकको सत्यमें एकर एक किया होगा। किन्तु उत्तारार्थवार्तिकमें उक्त परक विद्ये गए विमल्लि पूर्वोक्त विमल्लि मौलिक अग्रह है। उत्तारार्थवार्तिकमें यह विमल्लि इस प्रकार उपलब्ध आता है—

बह्व अरम्भपरिग्रहा यस्य स बह्दारम्भपरिग्रहः ।

किन्तु सिद्धसेन गणिकी टीका इस विषयमें उत्तारार्थवार्तिकका अद्यतनता बताती है उत्तारार्थवार्तिकका नहीं। अतएव इतरके यह माननक लिये एम हाता पढ़ता है कि सिद्धसेन गणिके एकर अपर पक्षे उत्तारार्थवार्तिक कर अविद्येते रहे हैं।

सिद्धसेन गणिकी टीकामें एम और भी पाठ<sup>१</sup> या मतमेरक उत्तारार्थवार्तिकमें आते हैं या उत्तारार्थवार्तिकका अपर एताय बना है।

इसमें इस बातके एक हात हुए भी कि सिद्धसेन गणिके सामने उत्तारार्थवार्तिकपर अपनी टीका लिखते समय उत्तारार्थवार्तिक उत्तरवार्तिक या एतौ उत्तारार्थवार्तिकको उत्तरवार्तिक निर्दिष्ट करना है और इतक लिय एमें उत्तारार्थवार्तिकक अपर उत्तारार्थवार्तिकका उत्तरवार्तिक विचार करना है।

प्रायः यह तो सभी मनीषियोंने स्वीकार किया है कि तत्त्वार्थवार्तिक सर्वाथसिद्धिको पचा कर लिखा गया है और इस बातके भी स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि तत्त्वार्थमाप्य तत्त्वार्थवार्तिकके पहलेकी रचना होनी चाहिए। इसके लिए हम अन्वय प्रमाण खोजनेकी आवश्यकता नहीं है किन्तु स्वयं तत्त्वार्थवार्तिक इसका स्पष्टी है। सर्वप्रथम तत्त्वार्थवार्तिककी उत्पत्तिको ही लीजिए। तत्त्वार्थसूत्रकी रचना किस निमित्तसे हुई है इस विषयमें सर्वाथसिद्धि और तत्त्वार्थमाप्यमें ध्यात्वामेव है। सर्वाथसिद्धिमें स्वीकार किया गया है कि कोई मध्य मुनिवैश्वी समामि बैठे हुए आवापवर्षसे प्रश्न करता है कि मगन्न। आत्माका हित क्या है। आचार्यवर्ष उत्तर देते हैं कि 'मां च। यह पुनः प्रश्न करता है कि इसकी प्राप्तिकर उत्पन्न क्या है और इसीके उत्तर स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी रचना हुई है। किन्तु तत्त्वार्थमाप्यमें यह उत्पत्तिको वृत्ते प्रकृतसे निर्दिष्टकी गई है।<sup>१</sup> यहां कल्याण है कि इस श्लोकमें मोक्षमार्गके बिना हितकर उपदेश होना दुर्लभ है इसलिए मोक्षमार्गके उपदेश करते हैं। अब इन दोनों उत्पत्तिको प्रकाशमें तत्त्वार्थवार्तिक की उत्पत्तिको पढ़िये। देखनेसे विदित होय कि कि इसमें करते सर्वाथसिद्धि<sup>२</sup> और तत्त्वार्थमाप्य<sup>३</sup> इन दोनोंकी उत्पत्तिको स्पष्टतः निर्देश किया है। यही नहीं इसमें तत्त्वार्थमाप्यकी उत्पत्तिको निर्देश अपने<sup>४</sup> पहले प्रारम्भ किया है। स्पष्ट है कि तत्त्वार्थवार्तिककर सर्वाथसिद्धिकी उत्पत्तिको विगमन परम्परासम्मत मानते रहे और तत्त्वार्थमाप्यकी उत्पत्तिको अन्वयकी। यह उत्पत्तिको बात हुई।

आगे सूत्रपाठको देखिए—तत्त्वार्थमाप्यकारने तीसरे अध्यायके प्रथम सूत्रमें 'पृथुत्वा' पाठ आधिक स्वीकार किया है। श्रेयान्तर आगम साहित्यमें इस अर्थको व्यक्त करनेके लिए 'ब्रह्माज्ञप्ता पाठ उपलब्ध होता है। तत्त्वार्थमाप्यकारने भी इस पदकी व्याख्या करते हुए 'ब्रह्माज्ञप्तासहितया' पद द्वारा तत्त्वार्थस्वीकारका किया है। यह पाठ सर्वाथसिद्धिमाप्य सूत्रपाठमें नहीं है। तत्त्वार्थवार्तिककारकी न केवल इस पर दृष्टि पड़ती है अपितु इससे आगे हाथी होते हैं और यह अतलानेकर प्रयत्न करते हैं कि सूत्रमें 'पृथुत्वा' पाठ असम्मत है।

आचार्यवर्ष सर्वाथसिद्धि मान्य सूत्रपाठसे तत्त्वार्थमाप्यमाप्य सूत्र पाठमें अपनी परिवर्तन हुआ है पर तत्त्वार्थवार्तिककर उन सब सूत्र पाठोंकी परवा नहीं करते। वे प्रायः तत्त्वार्थमाप्यके ऐसे ही सूत्रपाठका विगमन व्यक्त करते हैं जिनसे स्वीकार करने पर स्पष्ट आगम विरोध दिखाई देता है। जैसे अध्यायमें 'शेषः एतत्—इत्यादि सूत्र आता है। तत्त्वार्थमाप्यके अनुसार इस सूत्रके अन्तमें इषोर्द्वयोः इत्यत्र पाठ आधिक उपलब्ध हाथ है। यह अक्षरकोरकी सूत्रमदिति इस पाठ पर पड़ती है और वे आपत्ति विरोध कल्ला कर इस आधिक पाठका स्वीकार करण्य मान्य नहीं करत। इसी प्रकार पंचम अध्यायमें बन्धेभिरुपै पारिव्यामिकी च' सूत्र आता है। किन्तु तत्त्वार्थमाप्यमें इसका परिवर्तित रूप इस प्रकार उपलब्ध होय है—बन्धे समाधिकी परिव्यामिकी।

यह स्पष्ट है कि आगममें कल्पकी च प्यवस्था निर्दिष्ट की गई है उसके साथ इस सूत्रमें आपत्ति हुए। सम<sup>१</sup> शब्दका मंग नहीं देता। तत्त्वार्थवार्तिककरकी दृष्टि यह बात भी क्षिपि नहीं पड़ती, इसलिए आगमसे विरोध होनेके आगम के स्पष्ट शब्दोंमें इसकी आगमासिद्धता योगित करते हैं। यही दशा तत्त्वार्थमाप्यमें आपत्ति हुए पंचम अध्यायके अन्तिम तीन श्लोकों होती है। वे सूत्र हैं—

अनादितरिमात्र ॥३३॥ कल्पिष्यादिसाम् ॥३४॥ योगोपयोगी चीयसु ॥३५॥

१ इत्या सर्वाथसिद्धि पृ १।

२ इत्या तत्त्वार्थमाप्य तत्त्वार्थवार्तिक दशोक्त ३।

३ तत्त्वार्थवार्तिक तत्त्वार्थवार्तिक पृ १।

४ तत्त्वार्थवार्तिक तत्त्वार्थवार्तिक पृ ३।

इन सूत्रोंमें परियायको अनादि और सादि ये दो मोह करके पुत्रल और बीबके परियायको सादि कहा है । धाय ही ४२ वें सूत्रके माध्यमें धर्म अर्धर्म, आन्ध्र और बीबके परियायको अनादि कहा है । इस पर तत्कार्य शक्तिमें आपत्ति करते हुए, कहा है— अन्ध्रमे धर्माधर्मकाहाकायेयु धर्मादिः परिधानः आविमान् बीबपुत्रायेयु बद्रन्ति तदयुक्तम् ।

अर्थात् अन्ध लोग धर्म, अधर्म काल और आन्ध्रयमें परियायको अनादि करते हैं तथा बीब और पुत्रलमें उसे सादि करते हैं किन्तु उनका ऐसा कहना असुक्त है ।

इसी प्रकार अध्याय १ सूत्र १५ व २१, अध्याय २ सूत्र ७, २ व ३३ अध्याय ४ सूत्र ८; अध्याय ५ सूत्र २-३ अध्याय ६ सूत्र १८ और अध्याय ८ सूत्र ६ के तत्कार्यशक्तिके दत्तनेसे भी विहित होता है कि अक्षरसङ्घ टेबके सामने तत्कार्यमाप्य अक्षरस्य वा ।

अपत्ति इस विषयमें कुछ मतभेद है । डा अगरीशुचन्द्रजीने अपनेअस्त बर्ष ३ किरण ४ में इस आशयका एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने बतलाया है कि अक्षरसङ्घके सामने उभास्वादिभ्य तत्कार्यमाप्य उपस्थित वा । किन्तु उनके इस मतको भी वं सुगुलकिशोरजी मुस्तार स्वीकार नहीं करते ।<sup>१</sup> भी वं कैलाशचन्द्र जी शक्तीका भी मही मत है ।<sup>२</sup>

हमारा विचार है कि वाचक उभास्वादिने तत्कार्यमाप्यमें जो सूत्रपाठ स्वीकार किया है वह तत्कार्यमाप्य लिखनेके पूर्व अक्षरस्थित वा इस विषयका योग्य कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता । आचार्य पूम्पपादन और विद्यसेन गयिने अपनी टीकाओंमें अगह अगह सूत्रपाठ सम्बन्धी जिस मतभेदकी<sup>३</sup> चर्चा की है उक्तच सम्बन्ध भी तत्कार्यमाप्य मान्य सूत्रपाठसे नहीं है । ऐसी अक्षरस्थामें यह मानना कि मद्र अक्षरसङ्घके सामने वाचक उभास्वादिभ्य तत्कार्य माप्य नहीं वा, हमें विचित्र प्रतीत होता है । तत्कार्यसूत्र पर लिखी गई दिगम्बर और श्वेताम्बर समस्त टीकाओं के अक्षरसङ्घसे केवल हम इतना निरन्तर कर सकते हैं कि जिस महान् आश्चर्यके तत्कार्यसूत्रकी रचना की है उन्होंने तत्कार्यसूत्र पर कोई माप्य वा वृत्ति प्रत्य नहीं लिख्य वा । तत्कार्यसूत्रमें सूत्र विषयक जो विविध मतभेद दिखाए देते हैं वे इतने प्रमाणा ह । यह बात स्पष्ट है कि आचार्य पूम्पपादके काल तक वे मतभेद बहुत ही स्वल्पमात्रामें रहे हैं । किन्तु मूल सूत्रपाठ धर्माधिपिदि इय दिगम्बर परम्परा मान्य हो जाने से हृषी और इल्की कलपती प्रतिक्रिया हुए और मूल सूत्रपाठको विकलाकृति दे ही गईं । परियाय स्वल्प सूत्रपाठके स्वरूपके विषयमें न केवल मतभेद बढ़ने लगा अपि तु स्वतन्त्र सूत्रपाठके रिपर करनेका भी माय आपत्त हुआ । इन सारे घटना क्रम व तत्पक्षोंके आधारात् हमारा ये मही विचार पुष्ट हाय है कि स्वयं वाचक उभास्वादिने अपने तत्कार्य माप्यमान्य सूत्रपाठको अस्तिम रूप दिया होगा और आगे यह पाठभेद सम्बन्धी मतभेद ठम रूप धारण न करे इत्थिण उन्होंने ही ठस पर अपना प्रसिद्ध तत्कार्यधिगम माप्य लिखा होगा । यह ठीक है कि वाचक उभास्वादिभ्य परने अन्ध श्वेताम्बर आचार्योंने मूल तत्कार्यसूत्रमें काट काँट पावू का टी बो<sup>४</sup> और वाचक उभास्वादिने उक्तच वाग्म्य मित्रा है । यदि वं सुगुलकिशोरजी मुस्तार इही अग्निप्रयत्नको ध्यानमें रखकर इस मतच्य प्रस्थापन करते हैं कि तत्कार्यमाप्य

१ इन्को अक्षरकाल बर्ष ३ किरण ४ ११ व १२ ।  
 २ दन्ध वं कैलाशचन्द्रजीका तत्कार्यसूत्र प्रस्तावना पृ ३ आदि ।  
 ३ देखो सर्वाधिपिदिध १ सू १६ व १७ २ सू २३ तथा मित्रमेवकी टीकाध १ सू ४ अ० २ सू ३ आदि ।  
 ४ इन्को वाग्म्य प्रस्तावनाका 'सूत्रपाठोंमें मतभेद' प्रकरण ।

मान्य सूत्रपाठ वाचक उपासार्थिकों की पूर्ण उपरिबद्ध या तो यह कथन कुछ क्रममें सम्भव हो सकता है पर इच्छे तत्त्वार्थसिद्धिकारके सामने तत्त्वार्थमान्य उपरिबद्ध वा इच्छे मत पर रचनात्र भी आँच नहीं आती क्योंकि तत्त्वार्थ सार्थिकों केवल तत्त्वार्थमान्य मान्य सूत्रविषयक मतमेहोक्त्वा ही उल्लेख नहीं है अपि तु कुछ ऐसे मतोंका भी उल्लेख है किन्तु वीषा सम्बन्ध तत्त्वार्थमान्यते है।

इस प्रकार इन प्रमायोंके प्रकाशमें यह मान लेने पर भी कि तत्त्वार्थमान्य तत्त्वार्थसार्थिकोंके पहले कभी लिखा गया है फिर भी यह कथन लिखा गया है वह विचारणीय हो जाता है। इसका हमें कई दृष्टियोंसे परीक्षा करना है। पर्यालोचनके विषय ये हैं— १. अन्य टीकाओंके उल्लेख, २. सूत्रोपलेश और ३. अर्थविकार।

१. अन्य टीकाओंके उल्लेख—अभी तक प्रचलित परम्पराके अनुसार व्यापारवृत्ता यह माना जाता है कि दिगम्बर परम्परामान्य सूत्रपाठ की प्रथम टीका तत्त्वार्थसिद्धि है और श्वेताम्बर परम्परामान्य तत्त्वार्थ सूत्रकी प्रथम टीका तत्त्वार्थमान्य है। तत्त्वार्थमान्यके विषयमें तो कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि यह तत्त्वार्थसूत्र-सूत्रकी ही मूल हृति है। और इस व्यापार से वे यह निष्कर्ष प्रकृत करते हैं कि व्यापारान् पूर्वपरान्ते मूल सूत्रपाठमें सुधार करने के तत्त्वार्थसिद्धिमान्य सूत्रपाठकी रचना की है जो व्यापार दिगम्बर परम्परामें प्रकृतित है। किन्तु इन टीकाओंकी और अन्य प्रमायोंके जो उल्लेख सामने आ रहे हैं उनसे यह विषय बहुत कुछ विचारणीय हो जाता है। पहले हम तत्त्वार्थसिद्धिमें हो पाठमेहोक्त्वा उल्लेख कर आते हैं। उनमेंसे कुछ पाठमेहोक्त्वा सूत्रोपलेशके व्यापारके ही मूल सिद्धि प्राप्त हो भी प्रथम पाठमेहोक्त्वा देखते हुए यह अनुमान करना जरूर हो जाता है कि तत्त्वार्थसिद्धिकारके सामने कोई छोटा-मोटा टीका ग्रन्थ आवरण या। अन्यथा वे पाठ विषयक मतमेहोक्त्वा स्पष्ट करते हुए यह न करते— व पूर्व वर्णपरिचय इत्यादि।

तत्त्वार्थसिद्धिके अन्वयार्थ सूत्र व्यापार विकारके लिखते समय यह ध्यान ठठाना गया है कि 'इति पूर्वोक्तं' ही ग्रन्थ करते हैं, इच्छेय सुह प्रयोगका उपदेश अहित नहीं होता।' आगे इसका समाधान करते हुए तत्त्वार्थसिद्धिकार करते हैं कि 'इच्छेयका व्यापार अस्तिभाव नहीं समझे। आगे अल्लेख निरर्थक किया जानेवाला है उक्तकी घोषणा न कर बहो इच्छेयकारके पूर्व ग्रन्थ कर दें।

इसी प्रकार एक ध्यान इस व्यापारके ३० वें सूत्रका विवरण लिखते समय भी ठठाना गया है। वहाँ कहा गया है कि 'गुण नर संज्ञा अन्य उपासार्थिके प्रयोगे उल्लेखित है आर्यत्वं मतमें तो केवल ग्रन्थ और पर्यापन्न ही निरर्थक किया है। अतः तत्त्व दो ही सिद्ध होते हैं और इनके अन्वयसे प्रत्यासिद्ध और पर्यासिद्ध ये नव भी दो ही करते हैं। यदि गुण नामका कोई पदार्थ है तो उक्तके विषय करनेवाला एक तीसरा नव अवश्य हन्य आदि। पर तीसरा नव नहीं है अतः गुण नामका कोई तीसरा पदार्थ सिद्ध नहीं होता है और इच्छेय गुणवत्त्ववत्त्वग्रन्थ नर सूत्र भी पठित नहीं होता। आगे इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि 'यद अत नरि है, क्योंकि अर्यत्त्ववत्त्वग्रन्थ आदि ग्रन्थोंमें गुणवत्त्व उल्लेख किया गया है। और इच्छेय आगे 'वर्णं कि अदत्त्ववत्त्व ग्रन्थवत्त्व किर्तुया गुणाः पर वाक्य आया है।

तात्त्वार्थसिद्धिके ये दो उल्लेख हैं किन्ते अन्य हृति तथा ग्रन्थान्तरकी सूचना मिलती है। प्रथम उल्लेखले हम जानते हैं कि तत्त्वार्थसिद्धिकारके सामने तत्त्वार्थसूत्रपर लिखी गई कोई एक हृति थी किन्तु तत्त्वार्थसिद्धिकारके

१. हेमोर्ध्वं सुगन्धान्तरादीं तत्त्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना।

२. सुतो वदन्वत्त्वग्रन्थ नरुत्त्ववत्त्वग्रन्थवत्त्वग्रन्थ इति केन्द्र १ म अस्तिव्यापारविकारवत्त्वग्रन्थ।

रूपाधि' सूत्रका विवरण लिखते समय पाँच द्वयोंका विधान किया गया था और बिलकूल धार्मिकता तथा तत्त्वार्थबार्तिककारके आनेसे यहाँ किटलाया है। तथा वृत्ते रक्षेत्सखे इत अन्वय अनुमान किया था एकत्र है कि तत्त्वार्थबार्तिककारके सामने एक वृत्त अर्थात्प्रबन्धनहृदय या अर्थात्प्रबन्धन नामका स्पष्ट प्रत्यक्ष अन्वय था जो न केवल लक्षणोत्तीर्ण लिख गया था अपितु उसमें 'त्रय्यात्रया भिर्युवा गुया यह सूत्र भी मौजूद था और सम्भवतः उसे तत्त्वार्थबार्तिककार अति प्राचीन भी मानते रहे तभी तो प्रकृतमें गुब्बके समर्थनमें उन्होंने उक्त उल्लेख किया है।

यह अर्थात्प्रबन्धनहृदय या अर्थात्प्रबन्धन क्या है यह प्रश्न बहुत गम्भीर है। इत्थम् उल्लेख तत्त्वार्थमाप्यन्तर पात्रक समास्तादिने मी किया है। वे लिखते हैं कि मैं 'अर्थात्प्रबन्धनके एकदेशके संग्रहरूप और बहुत अर्थवाले तत्त्वार्थविभाग नामके लघुग्रन्थका शिष्योकी हित्बुद्धिसे कथन करता हूँ। इसी प्रकार अमृतचन्द्र आचार्यने भी समयप्रामुखी टीकामें<sup>१</sup> समयप्रामुख्यके अर्थात्प्रबन्धनका अन्वय कहा है। इन दोनों स्थलोंपर आधारितः अर्थात्प्रबन्धन या अर्थात्प्रबन्धनके द्वावर्गांगका बोध होया है। किन्तु जब यह अर्थक देव अर्थात्प्रबन्धनहृदय या अर्थात्प्रबन्धन नामके स्पष्ट ग्रन्थ उल्लेख करते हैं। इतना ही नहीं वे उसके एक बन्धनका उद्धृत भी करते हैं जो तत्त्वार्थवृत्तके सूत्रके बिलकूल मिलता हुआ है उस यह प्रश्न अन्वय होया है कि क्या एका ओर महान् ग्रन्थ रहा है जिसमें समय जैतिष्ठान्तका रहस्य अन्वयित था और बिलकूल उल्लेख करना उसके लिए अनिवाय था। जो इसी ही एक बात स्पष्ट है कि तत्त्वार्थबार्तिककारके सामने तत्त्वार्थकी उपलब्ध टीकाओंके अतिरिक्त कोई अन्य हृदि अन्वय रही है जो तत्त्वार्थबार्तिक और तत्त्वार्थमाप्यन्त मिला थी और बहुत सम्भव है कि उसी वृत्तिक उल्लेख उन्होंने तत्त्वार्थबार्तिकमें किया है।

इसी प्रसंगसे हमने विद्वेन गणिकी टीकाका भी आलोचना किया है। इस सम्बन्धमें हम पहले ही कह आये हैं कि विद्वेन गणिकी टीका अनेक सूत्र विषयक मत मतान्तों और उल्लेखोंके लिए हुए है। उक्त गणिकीके परांलोचन करने पर यह भी निर्दिष्ट होता है कि उनका ध्येय न केवल तत्त्वार्थबार्तिक, तत्त्वार्थमाप्यन्त और तत्त्वार्थवृत्त या अपितु तत्त्वार्थवृत्त पर लिखी गई यह पुगनी और मी अनेक टीकाएँ उनके सामने रखी हैं। यह अनुमान प्रामुख्यत्वे सुल्लालादीका भी है बिलकूल निर्देश हम पहले कर आये हैं।

तत्त्वार्थबार्तिक, तत्त्वार्थवृत्त और विद्वेन गणिकी टीकाके ये उल्लेख हैं किन्तु हमें तत्त्वार्थवृत्त विषयक अन्य अनेक छोटी बड़ी टीकाओं के अस्तित्वका आभास मिलता है। तत्त्वार्थ विचारणीय यह है कि ये सब टीका प्रत्यक्ष किन्तु अपात्रके लिख गए होंगे। तत्त्वार्थबार्तिक और तत्त्वार्थवृत्तके किन्तु उल्लेख है वे तो स्पष्ट होंगे यह स्पष्ट ही है। मात्र विचार उनका करना है किन्तु उल्लेख विद्वेन गणिकेन किया है। यह तो हम स्पष्ट देखते हैं कि तत्त्वार्थमाप्यन्तके अन्वय माप्यन्तशुद्धी सूत्रग्रन्थके स्वरूप और अन्वय एक तरहसे निर्दिष्ट है। था त्रिपिरादीकी अन्वयबन्धनके जोड़ बहुत धारा उत्पन्न होते हैं वे तत्त्वार्थमाप्यन्त मी धारा करते हैं<sup>२</sup>। किन्तु इन लोगों के अन्वय तत्त्वार्थमाप्यन्त सम्मत सूत्रग्रन्थमें तत्त्वार्थमाप्यन्तकी उपरिचयमें पाठान्तर या अन्वयान्तरकी कल्पना करना

- १ 'तत्त्वार्थविभागार्थं बद्धम् अर्थात् लघुग्रन्थम् ।  
अथवा मी शिष्यहितमिममहृदयनकरुणम् ३२२४
- २ प्राग्जगद्भारवाहन्तबन्धनाथबन्धनम् ग ९, टीका ।
- ३ वृत्त अन्वय ६ सूत्र ३ व ४ का तत्त्वार्थमाप्यन्त ।



सम्मान नहीं है। ऐसी अवस्थामें ही टीका ग्रन्थोंके भी सर्वापेक्षिदि और राचवातिकमें उल्लिखित टीका ग्रन्थोंके समान स्वतन्त्र ही मानना पड़ता है। विद्वाने गणिते मन्त्रमेंसेके बरवाते हुए अथ मन्त्रोंका अर्थ रूपमें उल्लेख किया है उसमें ही इसी तत्परकी पुष्टि होती है। वे सब टीकाग्रन्थ का और किन्तु आचार्योंकी इति है यह तो हम निरालम्बपूर्वक नहीं कह सकते हैं। बहुत सम्मान है कि वे सब या उनमेंसे कुछ तत्पार्यमाध्यके भी पहले लिखे गए हैं और उनके संस्कृत शब्दोंमें आचार्य रहें। यदि यह अनुमान सही है तबले कि सही होनाकी अपेक्षा सम्मानना है तो यही करना पड़ता है कि तत्पार्यमाध्य उस कालकी रचना है क्योंकि मूल तत्पार्यमाध्य पर अनेक टीका पिप्पुक्षिया प्रचलित हो चुकी थी और तबमेंसे एक सर्वापेक्षिदि भी है।

२. सूत्राद्वैत—साधारणतः किसी विषयको स्पष्ट करने उसकी सूचना देने या अगले सूत्रकी तत्पार्यमाध्य बोधनेके लिए टीकाकार अनेके या पीछेके सूत्रका उल्लेख करते हैं। यह परिपटी सर्वापेक्षिदि और तत्पार्यमाध्यमें भी विष्णुसूत्रके अन्तर्गत है। किन्तु आगेका या पीछेके सूत्रका उल्लेख करते समय इन टीका ग्रन्थोंमें उन्हीं सूत्रपाठका उल्लेख किया जाता है जो उन्हें समझ होते हैं। उदाहरण—सर्वापेक्षिदिअने अन्तर्गत एकके इककीस नमस्कृत सूत्र 'भवप्रणवोऽपि चिन्नेकवास्तव्याम्' इस रूपमें स्वीकार किया है अतएव वे चौथे अन्तर्गतके प्रथम सूत्रकी तत्पार्यमाध्य लिखते समय इस सूत्रका इसी रूपमें उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार तत्पार्यमाध्यकायन इस सूत्रको 'भवप्रणवोऽपि चिन्नेकवास्तव्याम्' इस रूपमें स्वीकार किया है इत्यदि वे चौथे अन्तर्गतके प्रथम सूत्रकी तत्पार्यमाध्य इस ही रूपमें उल्लेख करते हैं। साधारणतः ये टीकाकार कहीं पूरे सूत्रको उद्धृत करते हैं और कहीं उसके एक हिस्सेको। पर कितने अंशको उद्धृत करते हैं यह अपनी ही पूरा होना है। ऐसा स्पष्ट नहीं भी नहीं दिखता है कि कितने एक अंशको उद्धृत करते हुए भी वे उसमेंसे सम्बन्धित प्रारम्भ के किसी पदको छोड़ देते हैं।

ऐसी अवस्थामें हम तो यही अनुमान करते हैं कि इन दोनों टीका ग्रन्थोंमें अथ उद्धृत शब्द ही मिलेगा किन्तु इनकी स्थितिमें अन्वेषण करना पड़ेगा। इस दृष्टिसे हमने सर्वापेक्षिदि और तत्पार्यमाध्यका कौटिल्य पदालोकन किया है। किन्तु हम यह स्वीकार करना पड़ता है कि तत्पार्यमाध्यमें एक स्थल पर ऐसा स्वतन्त्र अवसर हुआ है जो इसकी स्थितिमें अन्वेषण करना पड़ेगा। यह स्वतन्त्र अवस्था १ सूत्र २ का माध्य लिखते समय हुआ है।

मतिरान और मुक्तानके किराका प्रतिपादन करनेवाला सर्वापेक्षिदिग्रन्थ सूत्र इस प्रकार है—

‘मतिमुक्तबोधित्वान्तो इत्येवसर्वपक्षिणु ।

परी सूत्र तत्पार्यमाध्यमें इस रूपमें उद्धृत होना है—

‘मतिमुक्तबोधित्वान्तः सर्वपक्षिणुसर्वपक्षिणु ।

तत्पार्यमाध्यमें सर्वापेक्षिदिग्रन्थ सूत्र पाठकी अपेक्षा ‘सर्व’ पदके विद्योत्पत्त्यन्त अथ पर अपेक्षा स्वीकार किया गया है। किन्तु अब वे ही तत्पार्यमाध्यकार इस सूत्रके उद्धरणमें अन्तर्गत १ सूत्र २ के माध्यमें उद्धृत करते हैं तब उद्धृत रूप तत्पार्यमाध्यग्रन्थ सूत्रका से लेना है। तथा—

‘सर्वपक्षिणु—मतिमुक्तबोधित्वान्तः सर्वपक्षिणुसर्वपक्षिणु इति

कदाचित् कहा गया कि इस उद्धरणमें लिपिकारकी अज्ञानवशतीवरा ‘सर्व’ पर छूट गया होगा किन्तु यह कदापि ठीक नहीं है, क्योंकि अपनी टीकामें विद्वाने गणिते और हरिभद्राने भी तत्पार्यमाध्यके इस अंशको इसी

रूपमें स्वीकार किया है। प्रश्न यह है कि जब तत्त्वार्थमाध्यकारने उक्त सूत्रका उक्तार्थ 'सर्वत्रयम्पञ्चसर्वापयवित्तु स्वीकार किया तो अन्वयत्र उसे उद्भूत करते समझ वे उसके सर्व परको क्यों छोड़ गए। पदका विस्मरण हो जानेसे एव्य हुआ होगा यह बात किना कारणके कुछ नयी-गुली प्रतीत नहीं होती। यह खे हम मान लेते हैं कि प्रमादबरा या जान बूझकर उन्होंने ऐसा नहीं किया होगा फिर भी यदि विस्मरण होनेसे ही यह व्यक्तय माना जाय तो इसका कोई कारण आवश्यक होना चाहिए। इमारा तो क्याल है कि तत्त्वार्थमाध्य शिक्षते समय उनके सामने सर्वापयवित्ति मान्य सूत्रपाठ आवश्यक रहा है और हमने क्या पाठ स्वीकार किया है इसका विशेष विचार किये किना उन्होंने अनायास उसके सामने होनेसे सर्वापयवित्तिमान्य सूत्रपाठका अर्थ यहाँ उद्भूत कर दिया है। यह भी हो सकता है कि अध्याय १ सूत्र २ का माध्य शिक्षते समय एक वे यह निश्चय न कर सके हों कि क्या इसमें सर्व परको द्रव्य परका विशेषण जानना आवश्यक होगा या नो पुराना सूत्रपाठ है उसे अपने मूलरूपमें ही खने दिया जाय और धम्म है कि पंचा कुछ निश्चय न कर सकनेके कारण यहाँ उद्भूत पुराने पाठको ही उद्भूत कर लिया हो। हम यह तो मानते हैं कि तत्त्वार्थमाध्य प्रारम्भ करनेके पहले ही वे तत्त्वार्थसूत्रका स्वरूप निश्चित कर चुके थे फिर भी किसी खास सूत्रके विषयमें शंकास्पद बन रहना और तत्त्वार्थमाध्य शिक्षते समय उठमें परिवर्तन करना सम्भव है। यह कुछ भी हो इस उद्देश्यके इतना निश्चय करनेके लिए तो कल मिलाव ही है कि तत्त्वार्थमाध्य शिक्षते समय बाचक उमास्वातिके सामने सर्वापयवित्तिमान्य सूत्रपाठ आवश्यक होना चाहिए।

१ अर्थविकास—इसी प्रकार इन दोनोंके विष्णुप्रतिष्ठायाग और कर्मा कर्मा कर्तुके विषयमें तत्त्वार्थमाध्यमें अर्थ विकसितके स्पष्ट दर्शन होनेसे भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। उदाहरणार्थ—इसमें अध्यायमें 'बर्मास्तिज्ञाना-मायाते' सूत्र घोषा है। इसके पहले यह बतला जाने है कि मुक्त भीन अमुक्त अमुक्त अर्थसे ऊपर सोचके अन्त एक थावा है। प्रश्न होता है कि यह इसके अर्थ क्यों नहीं आया है और इसीके उपरस्वरूप इस सूत्रकी रचना हुई है। किन्तु यदि धीकको छोड़ कर केवल सूत्रका अर्थ किना थाय तो यहाँ आकर बचना पड़वा है और मन्में यह शक की ही पड़ती है कि बर्मास्तिज्ञानय न होनेसे आचार्य क्या बतलाना चाहते हैं। सूत्रपाठकी यह रिशति बाचक उमास्वातिके प्यानमें आह और उन्होंने इस रिशतिके साध करनेकी इतिवृत्ति ही उसे सूत्र न मानकर माध्यका अर्थ कहाया है। यह क्रिया स्पष्टतः स्पष्टमें की गई जान पड़ती है। इसी प्रकार इसी अध्यायके सर्वापयवित्तिमान्य सूत्रके सूत्रको लांभिए। इसके पहले मोहनीय आदि कर्मोंके अभावसे केवलज्ञानकी उत्पत्तिके विषय किना गया है। किन्तु इनका अभाव क्यों होता है इसका समुचित उत्तर उस सूत्र नही मिलवा और न ही सर्वापयवित्तिकार इस प्रश्नको स्पष्ट करते हैं। किन्तु बाचक उमास्वातिके यह बुद्धि सतकृती है। फलस्वरूप वे सर्वापयवित्तिमान्य 'बर्मास्तिज्ञानमायवित्तिमान्य कर्माकर्माविष्णोकी मोहाः इत सूत्रके पूर्वार्थको स्वतन्त्र और उत्तरार्थका स्वतन्त्र सूत्र मानकर इस कमीकी पूर्ति करते हैं। सर्वापयवित्तिमान्य कि इत्यत्र सम्भव केवल अर्थवित्तिमान्यः पदके अर्थ बोझा गया है यहाँ बाचक उमास्वाति इसे पूर्वसूत्र और उत्तरसूत्र दोनोंके लिए बतलाते हैं।

ऐसी ही एक बात नो विशेष प्यान देने घोष्य है पूर्वार्थके अध्यायके अन्तके उपरार्थके प्रतिपादक सूत्रके प्रकृति आती है। प्रकरण परल और अपरलका है। ये दोनों कितने प्रकारके होते हैं इसका निर्देश सर्वापयवित्ति और तत्त्वार्थमाध्य दोनोंमें किया है। सर्वापयवित्तिमान्य इनका प्रकार बतलाते हुए कहा है—परत्वापरल अर्थवित्ति कर्माकर्माते न सः। किन्तु तत्त्वार्थमाध्यमें ये दो भेद तो बतलाये ही गए हैं। साथ ही यहाँ प्रतीपादक परत्वापरलका स्वतन्त्ररूपमें और प्रदृश्य किया है। बाचक उमास्वाति करते हैं—परत्वापरल विविध-वर्षसाहस अर्थवित्ति कर्माकर्माते इति।

हटना ही नहीं। इन देखते हैं कि इस सम्बन्धमें तत्त्वार्थमाध्यिका तत्त्वार्थमाध्यिका ही अनुसरण करते हैं। उन्होंने पहले उपकारके परिशोधक सूत्रका व्याख्यान करते हुए पक्ष धार अपरपक्षके इन तीन भेदोंका उल्लेख इन शब्दोंमें किया है—

‘वेदप्रशंसानाम्बन्धिमित्यपरापरत्वात्परस्परव्यभिक्तिश्च ? न कस्मैपकात्परस्परत्वात्’ ।

अतएव क्या इससे यह अनुमान करनेमें सहायता नहीं मिलती कि किस प्रकार इस उदाहरणमें तत्त्वार्थमाध्यिक उपरार्थव्यभिक्तिकारके धामने यह इस कथनकी पुष्टि होती है उन्हीं प्रकार तत्त्वार्थमाध्यिक सर्वार्थसिद्धिके बादकी रचना है इस कथनकी भी पुष्टि होती है।

सब है कि पौर्वापर्यकी दृष्टिसे विचार करने पर तत्त्वार्थमाध्यिका रचनाकाल सर्वार्थसिद्धिके रचे जानेके बाद स्थिर होता है और जब स्थितियोंका विचार करने पर यह ठीक भी प्रतीत होता है।

### ६ सर्वार्थसिद्धिमें अन्य साहित्यके सम्बन्ध

सर्वार्थसिद्धि लिखते समय आचार्य पुरुषपादके धामने जो विपुल सहाय उपरिपठ या उल्लेख अवलम्बन लेकर उन्होंने इस महान् शोध सम्बन्धी शोधिका की है। उक्त प्रमुख रचना भिन्ने दिया था क्योंकि यह है पदसंग्रहायम् ।

पदसंग्रहायम् - यह वह महान् ग्रन्थि है जिसे बादशाह काशीका शोधका करता मिला है। आचार्य गुणभक्त और गुरुशान्ति आचार्य धामनेके परस्परमें वैदिक तथा उक्त कालमें शोध रहे बादशाह काशीके एकदशक अन्त्यास कर इस महान् शोध की रचना की थी। इनके बीचस्थान पुरुषपादकथ, कथस्वामित्, वेदना, नगया और महाकथ इन कई शब्दोंमें बादशाह काशीका संकलन किया गया है। इत्यदि एते पदसंग्रहायम् करते हैं। सर्वार्थ सिद्धिकारके धामने यह महान् शोध उपरिपठ या और उन्होंने इसका भरपूर उपयोग भी किया है यह बात तत्त्वार्थ सूत्र अध्याय एक सूत्र आठकी सर्वार्थसिद्धि दोषके देखनेसे स्पष्ट बात होती है। इसमें एक संक्षेप शोध, स्मरण, कथ अन्त, माय और अन्तर्दृष्टि इन आठ अनुयोगोंके द्वारा बौद्ध गुरुस्थान और बौद्ध मार्गवाचकों का अन्ते बीच उल्लेख किस प्रकार विचार किया गया है। यह धनाद्यत ही पाठशोधक धामने पदसंग्रहायम्के बीचस्थान काव्यकी ओर आह्वान करता है। बीचस्थान काव्यका दूसरा सूत्र है—

‘पक्षो ह्येति बोधधर्मं बीचसमासात् मन्मन्त्राद्वाप्य उक्त इत्यदि बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं मन्त्रि ।

इसमें बौद्ध गुरुस्थानोंके सिद्ध ‘बीचसमास’ शब्दका प्रयोग हुआ है ; सर्वार्थसिद्धिकारके धामने यह सूत्र था। उन्होंने भी गुरुस्थानोंके सिद्धे ‘बीचसमास’ शब्दका उपयोग किया है। तथा—

‘द्वेषामेव बीचसमासात् मन्मन्त्राद्वाप्य उक्त इत्यदि बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं बोधधर्मं मन्त्रि ।

आगे सर्वार्थसिद्धिमें बीचस्थानका किस प्रकार अनुसरण किया गया है इसका आगेभी लक्षिक द्वारा स्पष्ट शान कीजिए—

**जीवम्याम सत्प्रकपथा**

संप्रकपथाए बुबिरी विरयो-भोदेय घोदे  
सेय ॥ ८ ॥

भोदेय अल्पि मिप्याहृष्टी ॥ ९ ॥ सम्प्रकस  
भ्याहृष्टी ॥ १ ॥ ..

भादेसेय गदिपापुबादेय अल्पि विरयगदी  
तिरिक्कगदी मरुसगदी ब्रवगदी सिद्धगदी वेदि  
॥ ४ ॥ खेरुवा अरुद्राष्टु अल्पि मिप्याहृष्टी  
सम्प्रकसम्माहृष्टी सम्मामिप्याहृष्टी अर्सेअरुद्राष्टुहृष्टि  
ति ॥ २२ ॥ तिरिक्का पंचमु द्वायमु अल्पि  
मिप्याहृष्टी.....संभवात्संभवा ति ॥ २६ ॥ मरु  
स्ता भोदसमु गुयद्वायोसु अल्पि मिप्याहृष्टी.....  
अभोगिकेवसि ति ॥ २७ ॥ एवा अदुमु द्वायोसु अल्पि  
मिप्याहृष्टी.....अर्सेअसमाहृष्टि ति ॥ २८ ॥

ईदिपापुबादय अल्पि पूरुदिपा बीरुदिपा  
तोरुदिपा अरुदिपा पंचिदिपा अर्चिदिपा वेदि  
॥ ३३ ॥ पूरुदिपा बीरुदिपा तीरुदिपा अर्चिदिपा  
अर्चिदिपापंचिदिपा एकमि केव मिप्याहृष्टिद्वयो  
॥ ३६ ॥ पंचिदिपा असचिदिपापंचिदिपाप्यहृष्टि जाव  
अर्चिदिपापंचि ति ॥ ३७ ॥

कापापुबादय अल्पि पुबविकाह्या आठकाह्या  
तठकाह्या आठकाह्या अल्पकाह्या तमकाह्या  
एकाह्या अदि ॥ ३९ ॥ पुबविकाह्या.....अल्प-  
काह्या एकमि केव मिप्याहृष्टिद्वयो ॥ ४३ ॥  
तमकाह्या बीरुदिपाप्यहृष्टि जाव अभोगिकेवसि  
ति ॥ ४४ ॥

**सर्वायंसिद्धि सत्प्रकपथा**

तत्र सत्प्रकपथा द्विदिपा-सामाम्यम विरोपय ॥

सामाम्येय अस्ति मिप्याहृष्टि सासादनमय्य  
एदिरिन्वेवमादि ।

विरोपेय गल्पमुबादन नरकर्ता सर्वांमु पृथि-  
वीनु आधामि अन्वारी गुदास्थानामि अस्ति । तिय  
याती लाम्बेय संवत्संप्रकपथापिकामि अस्ति ।  
मनुष्यगती अनुदशापि अस्ति । इवगता नारकपण ।

ईदिपापुबादेन एकेन्द्रियापि अनुदिन्द्रियपयं  
स्तेषु एकमेव मिप्याहृष्टिपानम् । एकेन्द्रियपु अनु  
दशापि अस्ति ।

कापापुबादन बुबिरीकापापिचनम्यठिकापाप्येनु  
एकमेव मिप्याहृष्टिपानम् । असकायानु अनुदशापि  
अस्ति ।

आयन परम्यगमे इत दिगयमे वो कल्पदाय ई कि शाहादनकम्यएदि मर कर एकेन्द्रिमे म तल्प हाते ई ।  
अययययत इती मत्का कनर्म करता ई । किनु परम्ययामने अमिप्याचनुनार वो काशाननम्यएदि मर कर  
एकेन्द्रिमे म तल्प हाते ई उनका एकेन्द्रिमे म तल्प होमेके प्रथम कल्पमे नियमन मिप्याहृष्टि गुणरथान हा अत्य  
ई । एही कायद दे कि बीपरथान सत्प्रकपथाके सर्वांमे एकेन्द्रिमे के एक मिप्याहृष्टि गुणरथानका निर्देश द्विपा  
गय ई । उक्त तुमनास एव दे कि सर्वांयसिद्धि-कारने भी एकमेव इती मत्का अनुकम्य अिच दे ।

जीवस्थान संख्याप्रकरण

शोच्ये मिथ्यादृष्टी इत्यप्रमाद्यैव केवदिया ?  
 अर्थवा ॥ सासादनस्यगृह्यते इत्युक्ति जाव संज्ञासंज्ञदा  
 ति इत्यप्रमाद्यैव केवदिया ? प्रविशोचमारम धर्मसं-  
 खदिमागः । ..... ॥ १ ॥ पञ्चतर्कानां इत्यप्रमाद्यैव  
 केवदिया ? काठिपुत्र ॥ ७ ॥ आपमत्तसंज्ञानां  
 इत्यप्रमाद्यैव केवदिया ? संज्ञेया ॥ ८ ॥ अत्रुच  
 मृगसागगा इत्यप्रमाद्यैव केवदिया ? पञ्चस्य  
 एका वा दो तिक्वि वा उक्तस्यैव अत्रुचरत् ॥ ९ ॥  
 अत्र पञ्च संज्ञेया ॥ १ ॥ अत्रुचत् त्वा भयोगि-  
 क्तवती इत्यप्रमाद्यैव केवदिया ? पञ्चस्य एको वा  
 दो वा तिक्वि वा उक्तस्यैव अत्रुचरत् ॥ ११ ॥  
 अत्र पञ्च संज्ञेया ॥ १२ ॥ सयोगिक्तवती इत्य-  
 प्रमाद्यैव केवदिया ? पञ्चस्य एको वा दो वा  
 तिक्वि वा उक्तस्यैव अत्रुचरत् ॥ १३ ॥ अत्र  
 पञ्च सप्तसप्तपुत्र ॥ १४ ॥

सर्वाथसिद्धि संख्याप्रकरण

सामान्येन तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्ता  
 नन्ताः । सासादनस्यगृह्यते इत्युक्तिमिथ्यादृष्टयोऽ  
 संपत्सम्बन्धवत् संवतान्पतारव पञ्चोपमासंज्ञ-  
 यमागप्रसिताः । प्रमत्तसंयताः काठिपुत्रसंख्याः ।  
 ..... ध्यमत्तसंयताः संक्षेपाः । अत्र उच्यते  
 मन्त्रा प्रवेशन एको वा द्वी वा त्रयो वा । उत्कर्षेव  
 अत्रुचरत् । स्वकाशेव समुदिता संज्ञेयाः ।  
 अत्र अत्रुच अयोगिकेवदित्वा प्रवेशन एको वा  
 द्वी वा त्रयो वा । उत्कर्षेवाशोचरत्संख्याः ।  
 स्वकाशेव समुदिताः संज्ञेयाः । सयोगिकेवदित्वा  
 प्रवेशन एको वा द्वी वा त्रयो वा । उत्कर्षेवाशोचर  
 रत्संख्याः । स्वकाशेव समुदिताः अत्रुचरत्संख्या  
 संज्ञेयाः ।

यहाँ हमने जीवस्थानके स्तु और संख्या प्रकरणके कुछ श्लोकों टुलना की है। एवं प्रत्येकाश्लोकी एवं टुलना विन्यासविभक्त्यावन्ने लिए हुए है। स्पष्ट है कि सर्वाथसिद्धिकारने 'घत्संख्या- इत्यादि एतुकी प्रथमवा जीवस्थानके आठ अनुपयोगशास्त्रोंके सामने रखकर की है। सर्वाथसिद्धि शिखते सम्यक् पूर्वप्रश्न स्वामीके सामने करत जीवस्थान ही उपरिष्ठ नहीं वा किन्तु जीवस्थानकी श्रुतिअथ व पृथगे लप्य भी उनके सामने रहे हैं। इसके लिए उत्तरार्थप्रश्नके प्रथम आश्रयके निर्देशवाचिण्य- इत्यादि एतुकी सर्वाथसिद्धि टीका देखिए। इतमें सम्बन्धकी उत्पत्तिके अर्थको निर्देश जीवस्थान श्रुतिअथ अनुपयोगशास्त्रके आचारसे किया है। तथा उपराम आदि सम्बन्धोंके आचार निर्देश सुदृष्टकरके आचारसे किया है।

या सुवद्वयवका आदि- वैतपरम्पराके मुत्तर आचार्योंमें समप्रमाणक बितने आचार्य हुए हैं उनमें आचार्य कुन्दकुम्भना नाम प्रमुक्तस्ये लिखा गया है। कुछ तन्त्रोंके आचारपर कहा जाता है कि इन्हें विवेक क्षेत्रमें विशद सीमन्त्र सीधेकरके छात्रात् ध्यान और उपदेश भववत्त साम निष्ठा वा और इन्हें आरव्याधि प्राप्त थी। इन्होंने वैततलजानकी स्पष्ट शिक्षाअ प्रविष्टान कर समग्र वैतपरम्पराको प्रमाथित किया है। वैत तलजान अक्षिस्तालम्बका समर्थक है और उपरकी प्राप्तिअ एकमात्र मार्ग स्वाक्यात्मन है इत तन्त्रोंके अर्थके सामने बितने सुवर शस्त्रोंमें इन्होंने रखा है उत्पत्ती टुलना अन्त कितीसे नहीं की वा कष्टी है। वे वैतपरम्परामें विवेक प्रकाशमान तृषं वे किन्ते शरीर दियाये आसोकित हुई हैं। योगप्रारम्भमें एक गाथा आई है 'विद्यमं इन्होंने अपनेकी मुक्तैवती मन्त्राशुअ गमक शिष्य पोषित किया है। समप्रमाणत्वाअ मारम्भ करते हुए

१ 'आरव्याधिविवाची अत्रुचसुख्यादिउक्तवन्तुत् । सुवद्याधि मर्यादु गमनगुक भववत्तो अत्रुच ।

के करते हैं कि मैं भुवनेश्वरीके हाथ को गये समयप्राप्तका कथन करता हूँ। उनके ये बचन आकस्मिक नहीं हो सकते। बहुत सम्भव है कि उन्हें महत्प्रयत्न भुवनेश्वरीके उत्पन्नानका लाभ मिला हो क्योंकि इनके हाथ निर्मित साहित्यमें जो विशेषता है वह आकस्मिक नहीं हो सकती। राज पात्रके स्वीकारकी परधाने वैनपरम्पराके उत्पन्नानको बहुत अधिक प्रोत्साहित किया है। एकमात्र इनके हाथ रचित साहित्यकी पूर्णपरम्परा ही एंजी प्रकाशकिया है जो इस अन्वेषणका विन्दुपर कर सन्मार्गप्र प्रकाश करती है। एक बार आत्मा और परनिरपेक्ष अतमीय भावोंको जाकर अन्व सबको पराँतक कि आत्मानमें जायमान निमित्तिक भावोंको भी पर कहना और दूसरी ओर बन्धनवाक्ये स्वीकारका व्यक्तित्वात्मिका माग बतलाया इसे तत्त्वज्ञानकी कोरी विद्यम्बवाक सिद्धा और क्या कहा जा सकता है। इमार जो बहु विरधय है कि प्रत्येक व्यक्तिकी स्वतन्त्र सदाकी उद्योग्या करनेवाला और ईश्वरवादके नियम हाथ निमित्तकी प्रधानताको अस्वीकार करनेवाला धर्म मोक्षमार्गमें निमित्तरूपसे बन्धनवाक्ये स्वीकारका कमी भी प्रतिपादन नहीं कर सकता। आचार्य कुन्दकुन्दने यदि किसी तत्त्वको स्पष्ट किया है तो वह एकमात्र परी हो सकता है। कुछ विद्वान् धम्मते हैं कि उन्हें नाम्बध एकात्र आग्रह या और उनके यह ही वैनपरम्परामें इसपर विशेष ध्यान दिया जाने लगा था। किन्तु मायूम होय है कि वे इस उपासना हाथ वैनदर्शनकी विद्या ही बदल बना करते हैं। वैनदर्शनमें बलका विचार एकमात्र व्यक्तित्वात्मिकाके आचारपर ही किया गया है अतएव उसकी प्रातिभ्र माग स्वावलम्बनक सिद्धा और क्या हो सकता है। एक व्यक्ति हाथ अन्व पदार्थोंका स्वीकार उसकी पञ्चशय और कथयके धरय ही होता है। यह नहीं हो सकता कि जोर व्यक्ति बल और पात्रको भी स्वीकार करे और वह परिग्रहीन माना जाय। स्पष्ट है कि आचार्य कुन्दकुन्दने नाम्बकी पोषणा कर उसी मागका प्रतिपादन किया है जिसे अनन्त तीर्थद्वर अनादि अज्ञात दिसलात आय हैं। देय महान् आचार्यकी कृतिरूपसे इस समय समयप्राप्त प्रबचनमार पञ्चास्तिकाय नियममार, हाथ अनुप्रेषा और अष्टप्राप्त उपलभ्य होते हैं। कहा जाय है कि मूलाचार ( आचार्यग ) भी उनकी ही अनुपम कृति है। किन्तु यह प्रश्न कमी विचारार्थान है और इसपर ऐतिहासिक व साहित्यिक तत्त्वोंके आचारध विशेष प्रकाश टाकनकी आवश्यकता है। आचार्य कुन्दकुन्दके समाने तो इनका साहित्य या ही आचार्य पूम्पपादने भी इसका उपयोग क्या है यह बात सर्वाधिकारिके आलापनस मनीर्मोति विरित होती है। आचार्य पूम्पपादने ऐसी १ गाथायें उद्भूत की हैं जिनमेंसे एक गाथा पञ्चास्तिकार्यमें, एक गाथा नियमस्यार्यमें, तीन गाथायें प्रबचनस्यार्यमें और पाँच गाथायें अष्टय अनुप्रेषाम उपलभ्य जाती हैं। वे गाथायें उन प्रश्नोंके किस प्रकारकी ह यह इनने उन उन स्थलों पर लिख्यार्यमें दिसलाया ही है।

**मूलाचार**—दिगम्बर परम्परामें स्वीकृत मूलाचार मुनि आचारका प्रतिगदक सर्वप्रथम ग्रन्थ है। कमी एक इसके कर्ता आचार्य कहेकर माने जाते हैं। इनारे उद्याप्यापी व हीपञ्चाल की राजकीन 'कहेकर आचार्य'का अर्थ 'बर्तक एलाचार्य' काके इसके कर्तारूपसे आचार्य कुन्दकुन्दकी अनुमानित किया है। उनके इत विरयक २-३ लेख इती काके अनेअन्तमें प्रकाशित हुए हैं जो मन्नीय हैं और विचारकी नर विद्या प्रस्तुत करते हैं। भीरलेन स्थामीने पञ्चला दीकामें इत्था 'आचार्यग' नामध उपलभ्य कर इसकी एक गाथा उद्भूत की है। यहाँ आचार्य पूम्पपादने भी इसकी दो गाथायें उभापयिद्धिमें की हैं।

**पञ्चसंग्रह**—दिगम्बर परम्परामें पञ्चसंग्रहका बहुत बड़ा स्थान है। इसके नाम्बधमें इनने शब्दात्मक ग्रन्थ अतिवाकी मूक्तिक में प्रकाश बाले हुए यह सम्मार्दना प्रकट की है कि इत्था संकलन श्केष्टात्मक पञ्चसंग्रहक कता

पञ्चमिन्द्रियके पहले हो चुका था'। इसकी दो गथायें आचार्य पूम्पयदाने सर्वार्थसिद्धिमें भी उद्धृत की हैं। इससे चिह्नित होता है कि बहुत सम्भव है कि दिगम्बर परम्परागत प्राकृत पञ्चमन्द्रिय संकलन आचार्य पूम्पयदानके पूर्व हुआ हो। इसी एक यह प्रथम उपलब्ध होकर भी मन्त्रशुद्धि नहीं आ सका है। आचार्य अमित्यादिने इसीके आधारे संस्कृत पञ्चमन्द्रिय संकलन किया है।

पाणिनीयव्याकरण-आचार्य पूम्पयदाने स्वयं जैनेन्द्र व्याकरण लिखा है और उसपर न्यासके लेखक ने स्वयं यह भी प्रसिद्धि है। इसलिए यह शंका होती है कि सर्वार्थसिद्धिमें उन्होंने स्वनिर्मित जैनेन्द्रके सूत्रोंका ही उल्लेख किया होगा। सर्वार्थसिद्धिके सम्पादनके समय यह प्रश्न हमारे धाम्नी या और इस दृष्टिसे हमने सर्वार्थसिद्धिको देखा भी। किन्तु हमने व्याकरणके जो सूत्रोत्प्रेषण उपलब्ध होते हैं उनको देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि इस विषयमें उक्त पंथा और आग्रह नहीं था कि केवल स्वनिर्मित जैनेन्द्रके ही सूत्र उद्धृत किये जायें। जो तो सर्वार्थसिद्धिमें सूत्रोत्प्रेषणका बहुत ही कम प्रयोग आया है, पर जो तीन स्थानोंपर बिच रूपमें वे उल्लिखित किये गये हैं उनके स्वकण्ठसे उद्धृत होना चिह्नित होता है कि इस काममें पाणिनीय और जैनेन्द्र दोनों व्याकरणाका उपयोग हुआ है। यथा—

सर्वाग्रहण इम आध्याय ४ सूत्र १६ की सर्वार्थसिद्धि टीकामें दो सूत्रोंका उल्लेख देखते हैं। उनमेंसे प्रथम है 'तदस्मिन्नहस्तीति। और दूसरा है 'तस्य निवासा'। इनमेंसे प्रथम सूत्र पाणिनीय व्याकरणमें तदस्मिन्नहस्तीति इति उच्यते। ४, २ १०।' इस रूपमें और जैनेन्द्रव्याकरणमें तदस्मिन्नहस्तीति देवाः श्वैः ४, १, १४।' इस रूपमें उपलब्ध होता है इसलिए इस परसे यह कर्तव्य म्निष्ठ है कि यहाँपर आचार्य पूम्पयदाने पाणिनीयके सत्रम आश्रय किया है या जैनेन्द्रके सूत्रका। दूसरा सूत्र पाणिनीय व्याकरणमें तस्य निवासाः। ४, २ १६।' इति रूपमें और जैनेन्द्रव्याकरणमें तस्य निवासावृत्तमसौ। ३, २, १६। इस रूपमें उपलब्ध होता है। स्पष्ट है कि यहाँ आचार्य पूम्पयदाने पाणिनीय व्याकरणके सूत्रका उल्लेख किया है।

अध्याय ३ सूत्र १ की सर्वार्थसिद्धि टीकामें विशेषार्थ विशेषेणति सूत्र उल्लिखित है। जैनेन्द्रव्याकरणमें यह इती रूपमें कर्माक ३, २, २१ पर अंकित है और इसके स्थानपर पाणिनीय व्याकरणका सूत्र है विशेषार्थ विशेषेण बहुवचनम्। स्पष्ट है कि यहाँ पर आचार्य पूम्पयदाने स्वनिर्मित व्याकरणके सूत्रका ही उल्लेख किया है।

यह दो सूत्र यहाँ हुईं। अब एक अन्य प्रमाणको देखिए—अध्याय ३ सूत्र ४ की टीकामें आचार्य पूम्पयदाने 'नेत्रके त्वः यह पर उल्लिखित किया है। किन्तु जैनेन्द्रव्याकरणमें नित्य शब्दको टिप्पण करनेवाला न तो कोई सूत्र है और न ही 'त्व' प्रत्ययका निर्देश है। यहाँ 'त्व' प्रत्ययके स्थानमें 'न' प्रत्यय है। इससे चिह्नित होता है कि यह शब्द आचार्य पूम्पयदाने कालाकालके वार्तिक 'त्वप्तेज् न इति वक्ष्यन्त्। ४, १, १४।' को ध्यानमें रखकर कहा है। आचार्य अमकण्ठिनने अपनी दृष्टिमें आग्रह ही 'नेत्रम् वच इति वक्ष्यन्त्। यह वार्तिक कनाया है। किन्तु यह आग्रही रचना है।

इन उक्तोंके मन्त्रशुद्धिमें यह स्पष्ट हो जाता है कि आचार्य पूम्पयदाने अपनी सर्वार्थसिद्धि टीकामें जैनेन्द्र व्याकरणके समान पाणिनीय व्याकरणका भी उपयोग किया है और यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जैनेन्द्रव्याकरणकी

१ इसको अन्वयान्त्र जैन पुस्तक प्रकाशक मन्वराज आगरासे प्रकाशित सप्तमिन्द्रिय की भूमिका पृष्ठ २३ से २९ तक।

रचना होनेके अनन्तर ही उन्होंने सर्वाथिद्वि टीका लिखी थी। अध्याय १ सूत्र ४ की सर्वाथिद्वि टीकामें आचार्य पूज्यपादने पञ्चमी विमर्शिके लिए 'का' व्हाका प्रयोग किया है। आचार्य पूज्यपादने अपने तैनेत्रव्याकरणमें 'विमर्श' शब्दके अन्वयमें 'आ' और त्त्वोंमें 'प्' जोड़कर क्रमसे पाठों विमर्शिकीथी वा, इप् मा, अप्, अ, वा, र्प् में सात उदाहरणें निहित की हैं। इस विषयसे का यह पञ्चमी विमर्शिका संश्लेष है। यह भी एक ऐसा प्रमाण है जो इस बातसे सूचित करता है कि सर्वाथिद्वि लिखे जानेके पहले तैनेत्रव्याकरणकी रचना हो गई थी।

**कात्यायनवार्तिक**—पाणिनीयके व्याकरण का श्रोत्र कात्यायन महर्षिने वार्तिक लिखे हैं। अध्याय १ सूत्र १६ की सर्वाथिद्वि टीकामें आचार्य पूज्यपादने शब्द कहकर उनके 'अथवाच्यमयमैतुनेषवापाम्'। इति वार्तिकसे उद्धृत किया है। यह पाणिनिके ७, १ ५२ पर कात्यायनका पक्षता वार्तिक है।

**पातञ्जल महाभाष्य**—वैदिक परम्परामें पातञ्जलि श्रुति एक महान् विद्वान् हो गए हैं। इस समय पाणिनीयके व्याकरण पर जो पातञ्जल महाभाष्य उपलब्ध होता है वह इन्हीं की अमर कृति है। योगदर्शनके लेखक भी यही हैं। यह इच्छे स्पष्ट है—

वागेन चित्तस्य पदम वाचां मर्द्ध शरीरस्य च ब्रह्मचरम् ।

योऽन्तरोत् तं प्रबर्त्तुमीनां पतञ्जलिं प्राञ्जलिरात्मतोगमि ।'

किन्हींने योगके द्वारा चित्तके मलको, व्याकरणके द्वारा बचनोंके मलको और वैद्यकद्वारा शरीरके मलको दूर किया है उन मुनिवोंमें भेद पातञ्जलि श्रुतिके समक्ष में नतमस्तक होता है।

पातञ्जलि श्रुतिके अवस्थित काशके विषयमें मतभेद है। तबसे ये किन्तमपूर्व द्वितीय शताब्दसे पहले नहीं हुए हैं इतना निश्चित है। इस समय हमारे सामने पातञ्जल महाभाष्य और सर्वाथिद्वि उपस्थित हैं। इन दोनोंका दृष्टान्तात्मक अध्ययन करनेसे विदित होता है कि आचार्य पूज्यपादके साहित्य पर और काशके सर्वाथिद्वि पर पातञ्जल महाभाष्यकी गहरी छाप पड़ी है। दोनोंका अवलोकन करनेसे विदित होता है कि सर्वाथिद्विके ऐसे अनेक स्थल हैं जो पातञ्जल महाभाष्यके आश्रयसे उजाये गये हैं। इस बातसे स्पष्ट करनेसे लिए आगेकी दृष्टान्त पर इति आलिय—

**पातञ्जल महाभाष्य**

अतन्तरस्य विचित्रां भवति प्रतिषेधो वति ।  
 बहवा हि शब्दत् एकावां भवन्ति । तद्यथा  
 इन्द्र शब्दः पुकृत्तः पुरन्दर ।  
 अनुवृत्ता अन्येति  
 अल्पेभ संख्यावाची । तद्यथा एको ही बहव  
 इति ।  
 बहुतेहमे बहुः सूय इति ।

**सर्वाथिद्वि**

अतन्तरस्य विचित्रां भवति प्रतिषेधा वा ।  
 सन्वयि प्रकृतिरेह इतिवच्चवाभात् पर्यायस्य  
 त्वत् । वया—इन्द्र शब्दः पुरन्दर इति ।  
 वया अनुवृत्ता कम्पा इति ।  
 संख्यावाची वया—एका इति बहव इति ।  
 बहुतेहमे बहुः सूय इति ।



पाठशाला महाभाष्य

सिद्धि विधिरात्ममात्रो ज्ञापकमा भवति ।  
एहि मन्थे एयेन वास्तवीति

मन्थिभ्यमासीत् । पुत्रो जयिभ्यमाय्य आसीत् ।

अयं गणवर्षा शम्भुप्रयोगः । अथ संश्रयान्निष्ठा-  
मीति शब्दः प्रमुञ्चते उच्चैर्भोगोत्प्लावत्वात्स्वात्स्व द्विती-  
यस्य च तृतीयस्य च प्रयोगेण च मन्थितव्यं उच्चैर्भो-  
गमप्रयोगः ।

एकत्र च तन्मुञ्च ईशाब्देऽसमर्पस्तत्समुद्रावरच  
कम्पका समथः । एकत्र च कम्पको कम्पनेऽसमर्पस्त  
तन्मुद्रावरच रज्जु समर्था भवति ।

इमात्रीभिद्रवादि क्वाक्किष्वात्तन्मेव विवचि-  
ताति भवन्ति । तद्यथा इहं मे अहि सुष्टु परवति  
अयं मे कर्षः सुष्टु गृह्योतीति ।

क्वक्किष् पारतन्मे विवचिताति भवन्ति—  
अन्वगावया सुष्टु परवामि । अनेन कर्षेण सुष्टु  
गृह्यामि ।

भुवात्ती तपरम्भवे मन्थमन्थिभित्तपोत्पत्संभवान्  
कम्पमश्नत् ।

अथपथैव विप्रश्नं समुद्रायाः समस्तार्थः ।

इन्द्रनिर्देवाथ भिमिच्छामाथे भिष्वादिपु ब्रह्मणत् ।  
इन्द्रनिर्देवाथ भिमिच्छामाथे इच्छाः । वाक्त् ब्रूवादि  
मित् कन्वमिति वाक्त्तुति । किं प्रवाञ्जन्म् ?  
भिष्वादिपु ब्रह्मणत् । भिष्वादिपुत्ति चिम् इरयते  
भिष्वा ब्रामपन्ति कर्तीत्तर्भित्त्वात्सवन्ति इति ।

अ इच्छया भित्तैता च एव मनुष्याः मेधात्पूर्वकारी  
अवन्ति स परवति ।

तद्यथा त्पत्तं एतं सङ्गं उच्चमिन्नुपवते मृदा  
ह्यमिति गन्धे ।

कम्पका हि वाक्त्तयत्ते वाक्त्तं च कम्पकीर्त्तं हि ।

रत्नकरपञ्चक— इह दिगम्बर परम्परा एव प्रविष्ट मन्थ है । इत्येव धर्मके लक्ष्येण व्याख्यान कर  
च धर्मकी लक्ष्यधर्तन लक्ष्यजन और लक्ष्यकारिजलक्ष्य कदा चर पौष अस्याधोमं इन तीनों रत्नोंक क्रमते  
विषयन किम्प गण है इति एव इत्येव लक्ष्येण करत्तं करत्तं है । किन्तु लक्ष्य कारिजलक्ष्य प्रविष्टम करते लक्ष्य लक्ष्य  
कारिजला उरुगणाय करत्तं इत्येव मुक्तयथा दिक्त्तवारिज (भाक्त्तवार) का ही विष्टाके लक्ष्य निष्पद्य

सर्वाद्यसिद्धि

सिद्ध विधिरात्ममात्रो नियमार्थः ।

एहि मन्थे एयेन वास्तसि न हि वास्तवि  
पावस्ते पितैति ।

विरवहरवात्मस्य पुत्रो जयिता । माधि कम्प  
मासीदिति ।

अथवा अर्थात्त्वार्थः अन्वप्रयोगः तन्निष्पत्त्या  
एवमेव गतामन्वत्पयापयत्तन्प्रयोगोऽनर्थकः ।

भवति हि कर्त्तव्यत्वेऽं तन्मुत्पन्नत्वात्ते समर्थः ।

स्वातन्त्र्यविषया च इरवत् । इह न अहि  
सुष्टु परवति । अयं मे कर्षः सुष्टु गृह्योति ।

श्लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविषया इरवत् ।  
अनेनाम्ना सुष्टु परवामि । अनेन कर्षेण सुष्टु  
गृह्योमीति ।

भुवात्ती तपरम्भवे मन्थमन्थिभित्तपोत्पत्संभवान् ।

अथपथैव विप्रश्नं समुद्रायाः समस्तार्थः ।

भिमिच्छामाथे भिष्वादिपु ब्रह्मणत् इह । अथ  
करीपात्तिरन्वत्पयति ।

...स इच्छया सम्प्राप्त भित्तैते । एवमिहापि  
ए एव मनुष्याः मेधात्पूर्वकारी स परवति ।

तद्यथा त्पत्तं एतं सङ्गं उच्चमिन्नुपवते एकी  
मृत्तमिति गन्धे ।

कम्पयो हि वाक्त्तयत्ते वाक्त्तं च कम्पकीर्त्तन्म् ।

किया गया है इसलिये इसे रत्नकरण्डकभाष्यभाष्य भी कहते हैं। साधारणतः इसके कलाके सम्बन्धमें प्रतिक्रिया है कि यह दिगम्बर परम्पराके प्रसिद्ध आचार्य तन्त्रन्तम्ल स्वामीजी अमर कृत है। अग्नी एक किन्तु प्राचीन उपलोक मिलते हैं उनसे इसी तथ्यकी पुष्टि होती है १। स्वयं प्रभावका आचार्य किन्तुने कि इस पर विस्तृत संश्लेष टीका लिखी है इसे स्वामी सम्बन्धमन्त्री ही कृति मानते हैं। जैसा कि इसके प्रत्येक आध्यायके अन्तमें पाहें आनेवाला पुष्पिकासे विरहित होता है १। ऐसी अवस्थामें आचार्य पुष्पिकाके खाने तर्जार्थसिद्धि लिखते समय रत्नकरण्डक अक्षरय होना चाहिए। आगे हम इन दोनों ग्रन्थोंके कुछ ऐसे उल्लेख उपरिष्ठ करते हैं जिससे इस विषयके अनुमान करनेमें सहायता मिलती है। उपलोक इस प्रकार हैं—

१ रत्नकरण्डकमें अथवा स्वरूप इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है—

‘अभिसम्पिक्तता विरतिविषयत्वोपाद् अतः अथति ॥ ३ ॥ ७

इसी शालके तर्जार्थसिद्धिमें इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है—

अथमभिसम्पिक्ततो निवसः ७-१ ।

रत्नकरण्डकमें अथर्ववेदके य पाँच नाम दिए हैं— पापोपदेश, हिंसादन, अपमान दुःश्रुति और प्रमादचर्चा। तर्जार्थसिद्धिमें भी ये ही पाँच नाम परिलिखित होते हैं। इतना ही नहीं इनके कुछ शब्दोंके विषयमें भी अपूर्व शब्दात्म्य इतिगोचर होता है। यथा—

तिर्थाङ्गेशावशिष्याहिसारस्मभस्तम्भादीनाम् ।

कथाप्रसंगाप्रसवः स्मरण्यः पाप उपदेशः ॥ रत्न ३

तिर्थाङ्गेशावशिष्याव्यवहारस्मादिषु पापसंयुक्तं वचनं पापोपदेशः । अर्थात् ७ १ ।

शिवित्तकिल्लद्वहपवचनस्मिं विपुर्लं वनस्पतिवृक्षेभूम् ।

शरत्वं सारशामपि च प्रमादचर्चा प्रमादयन्ते ॥ रत्न ३, ३४ ।

प्रयोगनमन्तरं च वृथादिपक्षेभूम् मङ्गलसंज्ञिकसेवनाद्यवयवकर्म प्रमादात्परितद् । अर्थात् ३१ ।

इन दोनों ग्रंथोंमें भोगोपभोगप्रत या उपभोगपरिभोगप्रतके निरूपणमें जो अर्थ और शब्दात्म्य इतिगोचर होता है वह तो और भी विक्षेप्य है। दोनोंमें भोग और उपभोगके प्रकार दिक्कलाकर प्रथमात् अनुपात् और अन्तिमके व्याख्या उपदेश दिया गया है। मात्र रत्नकरण्डक इनके विधा अनुपदेशके व्याख्या निर्देश विशेषरूपसे किया गया है। रत्नकरण्डकके उपलोक इस प्रकार हैं—

असह्यिपरिहरचार्यं चैवं विहितं प्रमादपरिहृतये ।

अथ च अर्जुनीवं विनाशरथी शरत्समुपचार्यः ॥ ३, ३८ ॥

अल्पप्रसवभुविनातन्मूषकमज्जांश्च नृश्वैरुचि ।

वचनैस्तमित्यकुसुमं केतकमित्येवमवहेयम् ॥ ३, ३९ ॥

वद्विष्टं तद् अतवेद्यत्तुपसेव्यमंतव्यि अद्यात् ॥ ३, ४ ॥

१ देखो प तुगलमिहोरी द्वारा सम्पादित और श्री मन्दि कथञ्च प्रन्वसाहा वरार्थसे प्रकाशित रत्नकरण्डक भाष्यभाष्यकी प्रस्तावना पृ ६ से पृ १२ तक ।

२ इति प्रमादप्रतिनिधितया स्मन्तमत्रस्वामिशिवितोपत्तकमन्वचनार्थेभवां प्रममः परीचद् १ ।

इसी विषयके सर्वापेक्षितमें दुनिष्ण—

मनु भीमं मघत मवा परिहर्तव्यं ब्रह्मवादीब्रह्मवेत्तया । केवलमनु मनुष्यादीनि मन्त्रैरसूचकव्यभि  
बहुजनपुत्रैरेवाभ्यासकल्पयन्परिवेष्टाह्विय परिहर्तव्यमि बहुधातावककथात् । धातवाह्वानरवादिपश्वाबुधेभ्यमतो-  
म्यपिहृदिमि बभिक्षिहर्तव्यं कवयसु... । ७ २२ ।

इधन विद्वत्तय साम्प्रते हाते हुए मी इन दोनो मंत्रोंमें कुछ विशेषता है । प्रथम विशेषता तो यह है कि  
रत्नकरणमें शेषक शब्दका अर्थ 'सङ्कल्पित' किया है और सर्वापेक्षित में 'पत्र' । तथा दूसरी विशेषता  
यह है कि रत्नकरणमें आठ मूलगुणोंका रत्नरत्न रूपसे उल्लेख किया है जबकि सर्वापेक्षितमें इनकी यत्किञ्चित् मी  
पत्रा नहीं की है । इतिहास शंका होती है कि यदि सर्वापेक्षित रत्नकरणके बादकी रचना मानी जाय तो  
उसमें यह अन्तर नहीं दिखाई देना चाहिए । शेषक शब्दके अर्थको हम छोड़ सकते हैं, तब मी आठ  
मूलगुणोंके निरर्थक और अनिर्दिष्टक मंत्र बहुधा ही महत्त्व रखता है । पाठक भिन्ने मी प्राचीनकालकी और  
आर्यो देखेंगे कि पूर्वकालमें आठ मूलगुणोंका उल्लेख श्रावणके कर्मोंमें अज्ञाते नहीं किया जाता था । सर्वप्रथम  
यह उल्लेख रत्नकरणमें ही दिखाई देता है ।

भीमान् वा ईयाशाखवी रत्नकरणके भी स्वामी समस्तमन्त्रकी कृति माननेमें उन्नेह करते हैं । उनका  
यह विचार कर्मका सुपन अर्थ यह है कि बादियबद्धिने अपने पारवनापचरितमें 'देशगतके कर्ता स्वामी  
उन्नेहमन्त्र उल्लेख करनेके बाद पहले 'दिग्' पदवाच केनेत्र म्याकरणके कर्ता आचार्य पूष्यपादका उल्लेख किया  
है और इतक बाद रत्नकरणके कर्ताका उल्लेख करते हुए उन्हें 'योगीन्द्र' नामसे सम्बोधित किया है । डा ए०  
ज्याल है कि म 'शारीर' स्वामी समस्तमन्त्र मित्र होने चाहिए जो कि आचार्य पूष्यपादके बादके प्रत्येक होते हैं ।  
यह ज्ञात है कि बादियबद्धिने अपने पारवनापचरितमें आचार्य पूष्यपादके बाद आचार्य योगीन्द्रका उल्लेख किया  
है और उन्नेह रत्नकरणका निमात्र कहा है । इसकी पुष्टिमें उन्होंने और मी कई प्रमाण दिए हैं पर उन्नेम सुपन  
प्रमाण नहीं है ।

भीमान् वं बुगजकिणोर भी मुम्बयने माधिकपत्र प्रत्यमासावे प्रबद्धित होनेवाले सटीक रत्नकरण  
भाषाचार की प्रमाणनामै रत्नकरणकी अन्त पवीक्षा करते यह सम्पादना प्रकट की है कि कित कर्ममें इत  
समय बाद उपलब्ध होता है वह उल्लेख मूलरूप नहीं है । शिष्यवर्गों और शिष्यवर्गोंकी अक्षयवानी यह कई  
प्रमाण रत्नाक मूलके संग्रह का गण है । इमाय अनुमान है कि अष्ट मूलगुणोंका प्रतिपादक यह श्लोक मी इही  
प्रकार मूलका संग्रह बना है । कथमि सुफार ल आठ मूल गुणोंके प्रतिपादक श्लोकको प्रथित नहीं मानते ।  
उन्होंने इत्या आर्य गाल कारय लो नहीं दिया । केवल उपसंहार करते हुए इतना ही कहा है कि 'इतके न खनेते  
अथवा सो चाहिए कि बादियचार निरक मन्त्रमें व्यवहारीके मूल गुणोंका उल्लेख न होनेसे मन्त्रमें एक प्रकारकी  
भारी मुक्ति यह आर्य विचारी स्वामी समस्तमन्त्र श्रेष्ठ अनुपवी मन्त्रवादीके कमी आया नहीं की था उल्लेखी की' ।

हम यह लो मानते हैं कि केवल बादियार लूरीक उल्लेखके आधारमें यह लो नहीं माना जा सकता कि  
रत्नकरणके स्वामी समस्तमन्त्रकी कृति नहीं है क्योंकि उन्होंने आचार्योका उल्लेख सर्वथा अज्ञातमें

१) देवी कमिचन्द्र संपत्ताकाम प्रकाशित आर्षेमायचरित भाग १ श्लोक १७ १५ और १६ ।  
२) देवी प्रजापता पूष १५ म पूष २३ तक । ३) देवी प्रजापता पू २१ ।

आधारते नहीं किया है। यथा—वे अध्याय १ श्लोक २ में रत्नकलाञ्जलि उल्लेख करनेके बाद २९ वें श्लोकमें सम्यक्त्वके कर्ताकर स्मरण करते हैं। यह भी सम्भव है कि किसी लिपिकरक्षी अक्षयपानीवश रत्नकलाञ्जलि उल्लेख करनेवाला पार्वनामजलिअ त्वागी स एव योगीन्द्रः श्लोक 'अचिन्त्यमहिमा देव' इस श्लोकके बाद लिपिबद्ध हो गया हो। मुद्रित प्रतिये वे श्लोक इस रूपमें पाये जाते हैं—

स्वामिनश्चरत्तं तस्य कस्य नो विस्मयाच्चरम् ।  
 देवतामस्य सर्वज्ञो देवतायादि मद्रस्यते ॥ १ १००  
 अचिन्त्यमहिमा देवः सोमिबन्धो द्विर्दिव्या ।  
 शम्भोरच देव सिद्धयन्ति साधुर्त्वं प्रतिबन्धिता ॥ १, १००  
 त्वागी स एव योगीन्द्रो देवाकल्पमुखावह ।  
 अस्मिन्ने मन्वसायापि विद्ये रत्नकलाञ्जलिः ॥ १ १२४

किन्तु इनमेंसे १६ अक्षरोंकाश्लेख श्लोकमें १० अक्षरोंकाश्लेख श्लोकके बाद पढ़ने पर 'त्वागी स एव योगीन्द्रो' इस पद द्वारा स्वामी समन्तभद्रका ही बोध होता है और सम्भव है कि बादिराज सुरिने रत्नकलाञ्जलि कर्तृत्व प्रकट करनेके अग्रिमपक्षसे पुनः यह श्लोक कहा हो। किन्तु दूसरे प्रमाणोंके प्रकाशमें इस सम्भावना द्वारा रत्नकलाञ्जलि स्वामी समन्तभद्रकर्तृक मान लेने पर भी उसमें आठ मूलगुणोंका उल्लेख अथर्वय ही विचारणीय हो जाता है। इस विषयमें इन्हाय तो कहा है कि जिस क्षणमें भादकके पादिक नष्टिक और सापक वे तीन में किये गए और इस आधारसे भादकचार के प्रतिघटन करनेका प्रारम्भ हुआ ठीकी कालमें आठ मूलगुणोंका वर्गीकरण हो कर उन्हें भादकचारमें स्थान मिला है। रत्नकलाञ्जलिमें कुछ ऐसे श्लोक हैं जिनसे उक्त संकलन दूसरे भादकचारोंमें हुए विकास करनेके बहुत परलोक माना जा सकता है। अतएव सम्भव है कि रत्नकलाञ्जलिमें आठ मूलगुणोंका उल्लेख प्रकृत हो। रत्नकलाञ्जलिमें जिस स्थान पर यह आठ मूलगुणोंका प्रतिघटन श्लोक संकलित है उस देखते हुए तो यह सम्भावना और भी अधिक बढ़ जाती है। इसके पहले स्वामी समन्तभद्र अतीचारोंके साथ पांच अक्षरोंका कथन कर आये हैं और आगे वे मयत शीतलताका अतीचारोंके साथ कथन करनेवाले हैं। इनके बीचमें यह श्लोक आया है जो अप्रासंगिक है।

युक्तपदपुरासक स्वामी समन्तभद्रकी रत्नकलाञ्जलि समान अन्वयत अमर हृति बनाया मुक्तपदपुरासक है। इसमें भीर जिनकी श्रुति करते हुए मुक्तिपूर्वक उनके शासनकी स्थापना भी गई है। इसके एक स्थल पर वे करते हैं कि जो शीतोपहार आदिके द्वारा देवीका आराधना कर मुक्त पावते हैं और विद्वि मानते हैं उनके आप गुप्त नहीं हो। श्लोक इस प्रकार है—

श्रीशोपहारदिभिरात्मबुधैर्देवाश्च किंकाराज्य मुक्तमिन्द्रहः ।  
 सिद्धयन्ति शोपापचपापेनका मुक्तं च तेषां त्वयु परं वपम् ॥

अब इसके प्रकाशमें तार्थिकीयके इस स्थलको पढ़िये—  
 तेन श्रीशोपिपदपुर्णैर्देवैस्तारुचत्तारापनादौ विवर्तिता यवन्ति । अ १ म् २ की टीका ।  
 इस स्थलनामे विहित होता है कि आचार्य पूज्यकाके समय मुक्तपदपुरासक उक्त कथन उतरियत था।

शाश्वतशास्त्राचार्य पूम्पपादके पूर्व श्रावण स्वामी समन्तमन्त्रके वाच्य विक्रमकी चौथी शताब्दि के मध्यमें विद्वान् विचार एक बहुत बड़ा आचार्य हो गए हैं किन्तु उन्हेल विद्वान् आचार्योंने मड़े आदरके साथ किया है। इनके ज्ञान रचित सम्पत्तिके प्रत्य प्रसिद्ध हैं। इनके शाश्वतशास्त्राचार्य सर्वाथसिद्धि की नाम विद्यालयके नामसे ही जानते हैं। आचार्य पूम्पपादन वर्ष ७ सूत्र १३ की सर्वाथसिद्धि की नाम विद्यालयके नामसे ही जानते हैं। इनकी विद्वान्शाश्वतशास्त्राचार्य विद्या गया अब पढ़ता है।

इसी प्रकार सर्वाथसिद्धि कुछ एसी ग पाठों पर और वाच्य उद्धृत हैं किन्तुसे कुछके श्लोकान् इन सभी एक ही एक श्लोक निर्वाचन नहीं कर लेंगे हैं और कुछ ग्रंथ हैं जो सर्वाथसिद्धि के ग्रन्थों से संकलित हुए या रचे गये ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं। वहाँ इनने ऊर्ध्व प्रयोग परिलक्ष्य दिया है जो निरवस्था आचार्य पूम्पपादके ग्रन्थों में ही होते हैं।

७ मङ्गलाचरण

सर्वाथसिद्धिके प्रारम्भ पर मङ्गल श्लोक आता है—

‘मोक्षमार्गस्य मेतारं मत्तारं कर्मसुखात् ।  
अत्तारं विद्वत्प्रज्ञायां ज्ञाने तद्गुरुत्वात्पथम् ॥’

यहाँ विचार इस बातका करना है कि पर मङ्गल श्लोक लक्ष्यसूत्रका अंग है या सर्वाथसिद्धिका। कुछ विद्वानोंका मत इस लक्ष्यसूत्रका अंग माननेके पक्षमें है। वे इसके समर्पणमें इन गुरुओंके उचित्य करते हैं—

एक जो लक्ष्यसूत्रकी इच्छितलिखित अविच्छन्न जो प्राचीन इतिवृत्त उपलब्ध होगी हैं उनके प्रारम्भमें वह मङ्गल श्लोक उपलब्ध होता है और वृद्धे आचार्य विद्यालयने अपनी आत्मपरीक्षामें इसे सूत्रपरम्परा कहकर इच्छा व्यक्त किया है। पद्य—

किं पुनस्वस्तरमेदिधो गुणस्त्रोणं शास्त्रादीं सूत्रकारा मातृरिति विगद्यते ।’

आचार्य विद्यालय इच्छा ही कहकर नहीं रह गए। वे आत्मपरीक्षा का उपसहार करते हुए पुनः कहते हैं—

श्रीमत्सत्त्वापर्यायाद्गुरुत्वात्तद्विद्वान्निवेदिच्छोन्नयत्न  
प्रोत्थानात्सम्पन्नं सत्त्वमजमिदिद्वाङ्गकारैः कृतं चत् ।  
श्लोक लक्ष्यसूत्राय मथितसुपुत्रं स्वामिमीमांसितं तत्  
विद्यालयने स्वग्रन्थात्तद्विद्वान्निवेदिच्छोन्नयत्न ॥११३॥

ग्रन्थ उर्ध्वके उद्धरणके स्थानमूल श्रीमत्सत्त्वापर्यायाद्गुरुत्वात्तद्विद्वान्निवेदिच्छोन्नयत्न उपर्युक्त उपर्युक्त रचनेके प्रारम्भ का ही महान् मोक्षपत्रके प्रसिद्ध करनेवाले और लक्ष्यसूत्रके विद्य लक्ष्यके शास्त्रकारोंने समस्त कर्मसूत्रके मेहनत करनेके अभिप्रायसे रचा है और किन्तु स्वामीने मीमांसना की है उर्ध्व श्लोकके अर्थ वाच्यार्थकी सिद्धिके लिए विद्यालयने अपनी शक्तिके अनुसार किसी प्रकार निकमया किया है।

इसी बातके उर्ध्वने इन शब्दोंमें पुनः बुराया है—

१. वेत्तो भारतीय विद्या भगा ३ पृष्ठ ११। २. वृद्धो विद्वान्निवेदिच्छोन्नयत्न। ३. वेत्तो पुराण श्रीर वाच्यसूत्रं, प्रस्तावना ३ १३१।

“इति तत्त्वायशास्त्रादी मुनीन्द्रस्तोत्रगोचरा ।  
सम्बोधासपरीक्षेयं विद्यावृत्तिवृत्तय ॥ १२४ ॥”

इस प्रकार तत्त्वार्थशास्त्रके प्रारम्भमें मुनीन्द्रके स्तोत्रकी विषयवृत्त यह आतपरीक्षा विचारको दूर करनेके लिए रखी गई है ।

आतपरीक्षाके ये उपलक्ष्य अर्थदिग्ध हैं । इनसे विदित होता है कि आचार्य विद्यानन्द उक्त मंगल श्लोकको तत्त्वार्थवृत्तके कर्ताका मानते रहे हैं ।

किन्तु इस मंगल श्लोकके रचयिता तत्त्वार्थवृत्तकार आचार्य एददपिच्छ नहीं हैं इसके समर्थनमें ये सुक्तिर्षो उपरिपल की जाती हैं—

१—यदि इस मंगल श्लोकके रचयिता तत्त्वार्थवृत्तके निर्माता स्वयं एददपिच्छ आचार्य होते और तत्त्वार्थवृत्तके धाम यह मंगल श्लोक आचार्य पूम्पदादको उपलक्ष्य हुआ होता तो ये इसपर अपनी व्याख्या अक्षरय सिलते । उते किना व्याख्याके ये सर्वार्थसिद्धिका अंग न बनाते ।

२—आचार्य पूम्पदाद तत्त्वार्थसिद्धिकी प्रारम्भिक उत्पानिन्ना ह्राय यह स्पष्टतः सूचित करते हैं कि किसी मन्मके अनुयेधपर आचार्य एददपिच्छके मुक्त से सर्वप्रथम ‘सम्बन्धुशान्ताभचारिणीयि भोचमार्ग’ यह वृत्त प्रकट हुआ । इससे विदित होता है कि उन्हें मंगलाभरण करनेका प्रसंग ही उपरिपल नहीं हुआ ।

३—तत्त्वार्थवृत्तकार यह अक्षरकलेब भी इस मंगल श्लोकको तत्त्वार्थवृत्तका अंग नहीं मानते । अन्यथा ये इसकी व्याख्या अक्षरय करते और उस उपनिन्द्याको स्वीकार न करते बिलक्य निर्देय आचार्य पूम्पदादने सर्वार्थसिद्धिके प्रारम्भमें किया है । तत्त्वार्थवृत्तके व्याख्याकारकी दृष्टिसे आचार्य विद्यानन्दकी रियति यह अक्षरकलेबसे भिन्न नहीं है । उन्होंने भी तत्त्वार्थशास्त्रविक्रमे इस मंगल श्लोककी व्याख्या नहीं की है । इतना ही नहीं इन दोनों आचार्योंने अपने मन्मप्रयोगके प्रारम्भमें उक्तका अक्षरय भी नहीं किया है ।

ये दो मत है जो किसी एक निर्धारपर पहुँचनेमें अक्षरय नहीं करते । फिर भी हम वृद्धे मलक आचार्योपे अर्थिक तत्त्वपूर्ण मानते हैं और इच्छति एतने सिद्धित तत्त्वार्थवृत्तकी प्रस्तावनामें मंगलकी चरबा करते हुए यह मत व्यक्त किया है—

इतने तत्त्वार्थवृत्तके प्रारम्भमें भोचमार्गस्य केदार यह मंगलाभरण नहीं दिया है, क्योंकि इन्द्रय अक्ष भी यह ज्ञात है कि यह आचार्य एददपिच्छकी रचना नहीं है । यह सर्वार्थसिद्धिके प्रारम्भमें पाया जाता है, इच्छति इन्द्रय उपलक्ष्य पर सर्वार्थसिद्धि वृत्तिका ही अंग मान्य बना चाहिए । यद्यपि आचार्य विद्यानन्द इसका उपलक्ष्य ‘शास्त्रादीश्लोकभ्याः साहुः’ इस रूपसे करते हैं पर इसकी पुष्टिमें अभी कार्य दृष्टय प्रथम प्रमाय नहीं मिला है । यदि यह तत्त्वार्थवृत्तका अर्थिन्नाय अंग होय तो इन्द्रय आचार्य पूम्पदाद और अक्षरकलेब अक्षरय ही रीथ सिलते । अभी तो केवल इन्द्रय ही कहा जा सकय है कि आचार्य विद्यानन्द इस तत्त्वार्थवृत्तके कर्ताया मंगलाभरण मानते रहे हैं ।

### ३ तत्त्वार्थमूत्रकार

#### १ पुरानी परम्परा

शास्त्रकी प्रस्तावना और अर्थनन्दका अर्थन वृत्त ही मूलवृत्त रियत है । प्राचीनकालमें सभी शास्त्रकार शास्त्रके प्रारम्भमें या अन्तमें अपने नाम, कुल, जाति, बन्धुव्ययान आदिअ अन्तेज नहीं

कहते थे क्योंकि वे उस शास्त्रके अपनेको प्रेषणता नहीं मानते थे। उनका मुख्य कार्य परम्परासे प्राप्त मन्त्रादि  
 वादशांग वाचीको संक्षिप्त, विस्तृत या भाष्यस्वरित कर संकलित कर देना मात्र ही था। वे यह अच्छी तरहसे  
 जानते थे कि किसी शास्त्रके स्वयं अथवा नाम आदि देनेसे उसकी उर्ध्वमाहात्म्य या प्रामाण्यिकता नहीं बढ़ती। अधिकतर  
 शास्त्रोंमें दश-स्वतन्त्र किन्तुनेकेने देया कहा है। यह किन्तुनेका उपदेश है, उपदेशकेने बिना प्रथम कथ्य है  
 उस प्रथम हम कहते हैं। इन पद्योंके अन्तर्गतके सायं नूनका प्रतिपाद्य विषय बर्णित होता है। पर क्यों ?  
 इसलिए कि जिससे यह बोध हो कि यह किसी व्यक्तिविशेषका अभिप्राय न होकर सर्वज्ञदेवकी वाची या उसका  
 वाद है। वस्तुतः किसी शास्त्रके आर्योपदेशा अथवा न होकर भीत्याग सर्वक होते हैं। अथवा गवाचर तो  
 उनके आर्योपदेशके अन्तर्गत उनकी वाचीका प्रत्यक्षमें संकलनमात्र करते हैं। नही संकलन परम्परासे अन्त  
 नाम आचार्यके अन्तः विषय होकर अनेक प्रकीर्णक शास्त्रोंको बन्ध देता है। पूर्वकालीन आचार्य इस उपायके  
 उभय पीठिसे सम्प्रते थे और इसलिए वे नाम अपने ध्यायेसे मुक्त कर द्वादशांगवाचीके संकलनमें लग जाते  
 थे। आचार्य पुण्यरत्न आचार्य यूलबलि, आचार्य गुणधर, आचार्य यतिवृषभ, आचार्य कुन्दकुन्द, स्वामीकमन्तक,  
 आचार्य विद्यादेव विद्याक और आचार्य पूज्यराज प्रथमि एसे अनेक आचार्य हुए हैं किन्हींने इस मार्गका अनुसरण  
 किया है और मगवाच पीपकरकी वाचीका संकलनकर उसे लोक कल्याणके हेतु अर्पित किया है। इतना ही  
 क्यों आचार्य पूज्यराज भी उन्होंने से एक हैं किन्हींने तत्त्वार्थसूत्र जैसे प्रपञ्चके अन्तर्गत सम्प्र भुक्त  
 आचार्यके संकलनकर नाम प्रस्तापनेके ध्यायेसे अपनेको मुक्त रखा है। प्राचीन कालमें यह परिपटी भिन्नी  
 अधिक व्यापक थी, सुतन्त्र आचार्योंका उनके प्रति उन्मा ही अधिक आरार था।

इस समय सुतन्त्र अनेक आचार्योंके जीवन परिचय और उनके कार्योंके सम्पूर्ण इतिहासको संकलित करनेमें  
 जो अतिमार्ग आते हैं उक्त करण मही है। इसे हम अतिनाई शक्यते इस अर्थमें पुनरुचते हैं, क्योंकि यह काव  
 परिप्रायिक तन्त्रोंके संकलनका होनेसे इस अन्तर अधिक कर दिया जाता है कि कौन आचार्य किस अर्थमें  
 हुए हैं, उनका गृहस्थिक जीवन क्या था और उनके अन्तर्गतनीय कार्य कौन कौनसे हैं आदि।

प्रथममें हम तत्त्वार्थसूत्रके रचयिताके सम्बन्धमें विचार करना है। तत्त्वार्थसूत्रका संकलन आचार्य  
 इतिसे भिन्ना अधिक सुतन्त्र और आचार्यक हुआ है उनके रचयिताके विषयमें उन्मा ही अधिक विचार है।  
 अन्तर्गतकी अन्तर्गतमें हुए दोनों परम्पराओंके अन्तर्गत इस विचारके और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है।  
 परन्तु विचार से रचयिताके नामादिके विषयमें ही और मुख्य विचार उनके अस्तित्व कालके विषयमें है। पर  
 हम सर्वप्रथम उन अन्तर्गत प्रमादोंको अन्तर्गत करि किन्ते तत्त्वार्थसूत्रके रचयिताके निर्णय करनेमें उन्माय  
 मिलती है और इसके बाद विचारके अन्तर्गत तन्त्रपर प्रकाश मालिगे।

० तत्त्वार्थसूत्रकार आचार्य धृष्टपितृक

पर से हम आगे बढ़ कर देखें कि आचार्य पूज्यराजने विविध विषयों पर विद्यास व्युत्पत्ति लिखा है।  
 फिर भी उन्होंने कहीं भी अपने नामका उल्लेख नहीं किया है। इतना ही नहीं वे तत्त्वार्थसूत्र पर अपनी उर्ध्व-

१ अथिनी लक्षु सम्प्रदायके नाममात्रक गाथा ० । २ 'यस्यो विद्योवदेतो सम्प्रदायकृत गाथा  
 १५ । ३ 'परिप्रायिकी ह्यस्यो मायासुतेसु बं किन्ते अर्थि'। सा यह अर्थि बार्कसिसेय प मन्त्राहुस्त ३  
 बोधवाहुत गाथा ११ । ४ 'किन्तुपरनाधिकार्य मन्त्राहुतेवेदि गुणियं धर्म'। मन्त्राहुत गाथा ३२ । ५ 'इसो  
 सुत' , प १ मू २ ।

विभिन्न वीक्ष्य विस्तृत समय नी ही मार्गका अनुसरण करते हैं। वे इल्की उत्पानिकामें यहाँ तक खे निर्देश करते हैं कि कोई मध्य कित्ती आश्रममें मुनियोंकी समामें बैठे हुए आचार्यवर्गके समीप बाकर किन धरित प्रश्न करता है और उसीके फलस्वरूप तत्कार्यवृत्तकी रचना होती है। फिर भी वे उन आचार्य आदिके नामाधिकके विषयमें मौन रखते हैं। क्यों ? हमें तो इस उपायमानसे बड़ी विदित होता है कि आचार्य पूज्यपादको परम्परासे तत्कार्यवृत्तके कर्ता आदिके विषयमें हरपम्पृत खानकारी होते हुए भी स्वकर्तृत्वकी माननाका परिहार करनेके अभिप्रायसे वे नामाधिकके उक्त कथे पत्रमें नहीं पड़े। मद्र अकलांकदेवने भी ही मार्गका अनुसरण किया है। वे भी तत्कार्यवृत्तके प्रारम्भमें उही उत्पानिकामें स्वीकार करते हैं। यिक्का उल्लेख वर्तमानिकिके प्रारम्भमें आचार्य पूज्यपादने किया है। इस लिए इन उल्लेखोंसे इस तथ्य पर पहुँचने पर भी कि इन आचार्योंको तत्कार्यवृत्तके कर्ता न मादिककी कुछ कुछ खानकारी आवश्यक रही है, इससे इस बातका पता नहीं लगता कि आशिर वे आचार्य कौन वे किन्हींने मध्य बीविके कल्पकार्य पर महान् प्रयास किया है।

इन समयमें कि भारतीय परम्परा मुस्कताः केन परम्परामें नामाधिकके उल्लेख न करनेकी यह परिपटी विक्रम ४ थी, ५ थी शताब्दि तक बराबर चलती रही है। और कुछ आचार्योंने इसे इसके बाद भी अपनाया है। इसके बाद कई कार्योंसे इस नीतिमें परिवर्तन होने लगता है और शास्त्रकार शास्त्रक प्रारम्भमें या अन्तमें अपने नामादिका उल्लेख करने लगते हैं। इतना ही नहीं वे अन्य प्रकारसे अपने पूर्ववर्ती शास्त्रकारोंका भी उल्लेख करने लगते हैं। अतएव हमें तत्कार्यवृत्तके रचयिताका ठीक तरहसे निर्णय करनेके लिए उत्तरकालकी खदित्यका ही आसोपन करना होगा। अतः आर्य परसे उत्तरकालकी उन अज्ञान्त प्रामाण्योंके देलें जो इस विषय पर प्रकाश डालते हैं—

१—भुतपर आचार्योंकी परम्परामें आचार्य वीरसेन महान् वीकाकार हो गये हैं। इन्होंने पदल्लङ्घायम पर प्रथिह पकता दीका राक सम्प्र ७३८ में पूरी की थी। उनकी यह टीका अनेक उल्लेखों और ऐतिहासिक तर्कोंके लिये हुए है। तत्कार्यवृत्तके अनेक स्थानोंके उल्लेखोंसे इस टीकामें उद्घृत किया है। इतना ही नहीं श्रीकस्थान काल अनुबोगाडारमें ही तत्कार्यवृत्तकारके नामोउल्लेखके साथ ही तत्कार्यवृत्तके एक स्थानोंके उद्घृत करते हैं। वे करते हैं—

‘यह गिहपिङ्गाहृदिपप्यवासिहृत्तत्त्वसुप्त कि वर्तमानपरिब्रामिकिनाः परत्वापरत्वे च काकस्य इदि दप्यकाको परम्पदी। मुद्रित पृष्ठ ३१६।

इस उल्लेखमें तत्कार्यवृत्तके स्वतः गृहपिङ्गानारिके द्वारा प्रकाशित कहा गया है।

२—आचार्य विद्यानाथ भी महान् भुतपर आचार्य थे। इन्होंने अष्टछष्टी, विद्याभक्तवैराग्य, आत्मपरीक्षा, प्रमादपरीक्षा पत्रपरीक्षा, सन्मत्तासनपरीक्षा और तत्कार्यवृत्तकोकथार्थिक आदि अनेक शास्त्रोंका प्रथपन कर केन भुलकी नीहृदि की है। इनका वास्तव्य काल ई सन ७७५ (शक सं ६९७) से ई सन् ८५० (शक सं ७६९) तक माना जाता है। वे तत्कार्यवृत्तकोकथार्थिक मुद्रित पृष्ठ ३ में लिखते हैं—

एतेन गृहपिङ्गाचार्यपर्यन्तमुक्तिवृत्तेष्वेव अभिचारता मिरस्ता ।।

१ वेको आचार्य वे इरवारीकाककी द्वारा सम्पादित और बीरसेनमन्त्रिसे प्रकाशित आत्मपरीक्षाकी प्रस्तावना पृष्ठ ५ ।



इस हाथ आचार्य विद्यानन्द यह सूचित करते हैं कि मयदान महावीरके शस्त्रमें जो सूत्रकार हुए हैं उनमें अन्तिम सूत्रकार एतदृश्य आचार्य थे ।

यद्यपि यह उल्लेख तत्त्वार्थसूत्रकार आचार्य एतदृश्यके ही सूचित करता है फिर भी पं० सुकलान्तको इस विषयमें सन्देह करते हैं और उन्होंने यह सन्देह स्वकिसित तत्त्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना पृष्ठ १०६-१०७ में प्रकृत किया है । उनका यह सन्देह विशेषतः उक्तार्थित है इत्यस्य यहाँ हमें प्रथमतः इसका इसी दृष्टिसे विचार करना है ।

परिहृतबीजक लक्ष्मी है कि 'पूर्वोक्त सूत्रयः कथं तत्त्वार्थाधिगत शास्त्रम् मोक्षमार्गविषयक सूत्र सर्वत्र नीत्यगमप्रतीयते इति मनुष्ये तिर्यकत्वेनास्ती अतुमान चर्चामि आचार्य । इति अनुमान चर्चामि मोक्षमार्ग विषयक सूत्र पद्य है, तत्र च नीतयग प्रतीयतम यह अर्थ है और सूत्रत्व यह हेतु है । इस हेतुमें स्मिन्निवार शेषक निरसन करते हुए विद्यानन्दने 'एतेन' इत्यादि कथन किया है । स्मिन्निवार शेष पक्षसे निम्न स्वस्वमें उल्लेखित होय है । पद्य तो मोक्षमार्गविषयक प्रत्यय तत्त्वार्थसूत्र ही है इसके स्मिन्निवारका विषयभूत माना जानेवाला एतद्विषयार्थपर्यन्त सुनिर्णय सूत्र यह विद्यानन्दकी दृष्टिमें उमास्वातिके पद्यभूत मोक्षमार्गविषयक प्रथम सूत्रसे भिन्न ही जाना चाहिये, यह बात स्वावधिपाके अम्बालीको शब्द ही समझानी पड़े ऐसी है ।'

परिहृतबीजके इस उक्तार्थित बखान का सार इतना ही है कि आचार्य विद्यानन्दने यहाँ पर जिस एतदृश्यक आचार्यपर्यन्त सुनिश्चयक उल्लेख किया है वह उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रसे भिन्न ही है ।

यहाँ तक परिहृतबीजक यह प्रकृत्य है उक्तमें हमें अपमानाधिकृत्यका शोषरोप नहीं करना है किन्तु परिहृतबीजके उक्त अनुमान प्रसंगसे आचार्य विद्यानन्दके हाथ उठाये गये आचार्य पर उक्तिगत करते तो हमारा विचार है कि वे एतद्विषय आचार्यके सूत्रसे तत्त्वार्थित उमास्वातिके तत्त्वार्थसूत्रको भिन्न तिर्यक करनेका प्रयत्न नहीं करते ।

आचार्य विद्यानन्द हाथ उठाया गया वह आचार्य पर उक्ति है शेषाधिक, प्रत्ययभूत, सुठकेवली और अन्तिम एतदृश्यके सूत्र कथनको स्वचित मानकर स्मिन्निवारको उक्त मानना । एतत् है कि इतमें इस अन्तिमप्रसंगसे एतदृश्यक आचार्यक तत्त्वार्थसूत्र ही उचित है, क्योंकि यहाँपर यह स्वकर्तृकत्वसे सर्वत्र नीतयगप्रतीयत सूत्रसे कर्थाधिक (कर्ता एतद्विषयार्थपर्यन्त) भिन्न मान लिया गया है । प्रकृतमें इस विषयको इन उक्तों हाथ उक्त करनेसे विशेष अननुक होया । प्रत्यय अनुमानमें प्रकृत सूत्र पद्य है, सर्वत्र नीतयग प्रतीयत अर्थ है, सूत्रत्व हेतु है, सर्वत्र नीतयग प्रतीयत शेष सूत्र अर्थ है और इत्यस्य आदिभ्य सूत्र विषय है । इस अनुमान हाथ तत्त्वार्थसूत्रको सूत्रत्व हेतु हाथ सर्वत्र नीतयग कर्तृक तिर्यक किया गया है । इसके तिर्यक है कि यहाँ आचार्य विद्यानन्द तत्त्वार्थसूत्रको एतद्विषयार्थपर्यन्त मानकर सूत्र तिर्यक नहीं कर रहे हैं । सूत्ररत्नी दृष्टिसे, यह एतद्विषयार्थपर्यन्त उचित है इस बातका, वे भूल करते हैं । वे करते हैं कि वह सर्वत्र नीतयग प्रतीयत है, इत्यस्य सूत्र है ।

फिर भी यदि कोई यह कह कि यह तत्त्वार्थसूत्र सर्वत्र नीतयगप्रतीयत शेषक एतद्विषयार्थपर्यन्त उचित है तो ऐसी अन्तिममें सर्वत्र नीतयग प्रतीयत तत्त्वार्थसूत्र कर्थाधिक भिन्न एतद्विषयार्थपर्यन्त प्रतीयत तत्त्वार्थसूत्र पूर्वके अनुमानमें तत्त्वार्थसूत्र मध्यगदि रत्नी तत्वीक समान विषय कोटिमें बला बाधना और इतमें सूत्रत्व हेतुके रत्नीकार करनेसे हेतु स्मिन्निवार हो अन्तिम । आचार्य विद्यानन्द इतमें स्मिन्निवार शेषक उक्तयान्न का उक्तय शेष करते हुए परित्यागक शेष वह उक्तय कथन करत है—

‘गद्यापिपत्रकेकनुब्रह्मकेवलमिन्द्रवसुपूर्वभरसूत्रेण स्वर्बसगमतेष्वमिन्धार इति चेत् ? न तस्मात्प्रयत्नः  
तर्कबन्धनरामप्रयत्नकञ्चिद्वैरहज्ञप्रियतार्यं मन्वपरवैर्बैर्प्रतिभिति बध्नात् । एतेन पृथक्पृथक्चार्यपत्रमुनिमुत्रेण  
ममिन्धारता विरस्ता ।

यहाँ स्वनिर्मित मानकर गद्यापिपत्र प्रत्येकनुब्रह्म, मुत्केवली और अमिन्द्रवसुपूर्वके सूत्रके साथ ममिन्धार  
दिखाया गया है । तत्कार्यसूत्रके पृथक्पृथक्चार्यं प्रतीय मानने पर भी यह ममिन्धार होय आया है क्योंकि  
पूर्वोक्त अनुमानमें साम्य पृथक्पृथक्चार्यका तत्कार्यसूत्र न होकर सर्वत्र भीतरग प्रतीय तत्कार्यसूत्र साम्य है ।  
इसलिए पृथक्पृथक्चार्यका तत्कार्यसूत्र स्वयम्बिकर होनेसे विपक्ष उद्घटा है । हम यह तो मानते हैं कि तत्कार्यसूत्र  
एक है सो नहीं पर कर्तके मेदसे वे हो उपनरित कर लिये गए हैं । एक यह जो सर्वत्र भीतरगप्रतीय है और  
इस्य यह जो पृथक्पृथक्चार्यप्रतीय है । इसलिए कि प्रकर गद्यापिपत्र आदिके सूत्रके साथ आनेवासे ममिन्धार  
सोपत्र बारण करना इह मा उली प्रकर केवल पृथक्पृथक्चार्यं प्रतीय माननेसे जो ममिन्धार होय आया या  
उत्पन्न बारण करना भी आवश्यक था और इसलिए ‘एतेन’ इत्यादि वाक्य द्वारा उक्त दोपत्र बारण किया  
गया है ।

इस प्रकार हम बोलते हैं कि आचार्य विद्यानन्द भी वीरधनस्वामीके ध्यान इसी मत्के अनुकर्ता प्रतीय होते  
हैं कि तत्कार्यसूत्रके रचयित आचार्य पृथक्पृथक्चार्य ही हैं । योजी देखते यदि इस तर्काभित पद्धतिके कुछ भी  
दिया जाय और परिष्कृतके मत्के ही मुख्यतः ही जाय तब भी आचार्य विद्यानन्द एतेन इत्यादि वाक्य द्वारा  
तत्कार्यसूत्रके कर्ता पृथक्पृथक्के ही सूचित कर रहे हैं इस मत्के माननेमें कोई बाधा नहीं आती क्योंकि आचार्य  
विद्यानन्दने पूर्वोक्त अनुमान द्वारा पृथक्पृथक्चार्यके तत्कार्यसूत्रके तो सूत्र छिद्र कर ही दिया था किन्तु इससे पूर्व  
कहीं अन्य आचार्योंकी रचनाके सूत्र छिद्र करना फिर भी होय था बिसे उन्होंने पृथक्पृथक्चार्यपर्यन्त अपात्  
पृथक्पृथक्चार्य हैं अन्तमें बिनके ऐसे अन्य गद्यापिपत्र आदि मुनिमुत्रके साथ आनेवासे ममिन्धार बारण कर  
सूत्र छिद्र कर दिया है । यहाँ अत्युपलब्धिबिहान बहुशीघ्र ध्यातके स्वीकार कर लेनेसे यह अभिप्राय प्रकृत  
हो जाता है ।

व्यत्यय यह है कि पृथक्पृथक्चार्यके कोई सूत्रमय है इसे तो पं मुखलाहली भी स्वीकार करते हैं । उन्हें  
केवल प्रसूत तत्कार्यसूत्रके उत्पन्न माननेमें विचार है । किन्तु अन्य ऐतिहासिक तथ्योंसे जब वे तत्कार्यसूत्रके कर्ता  
छिद्र होते हैं ऐसी अन्वयमें आचार्य विद्यानन्दके उक्त वाक्यका वही अर्थ समत प्रतीय होया है जो हमने किया है ।

१-आचार्य पृथक्पृथक्का बहुमानके साथ उसके वादिराजद्विने भी अपने पारर्चनाचरितमें किया है ।  
उत्पत्ता वे वही वादिराज द्वि हैं किन्तों एकीमात्रकोच मतोचरित अकुरपचरित और न्यायनिम्नपविचरत  
तिला है । इनके कियमें कहा जाया है—

‘ वादिराजमु शास्त्रिकोको वादिराजमु शक्तिर्मिन्द्र ।

वादिराजमु अपत्रकृतले वादिराजमु मन्वसहायः ।’

वे पारर्चनाचरितमें आचार्य पृथक्पृथक्का इन शब्दों द्वारा उल्लेख करते हैं—

‘ अनुब्रह्मगुणसम्पार्थ पृथक्पृथक् मतोऽपिम तम् ।

पञ्चोत्तमिण वे मया विर्वावावोत्पदिप्यवः ।’

उन महान् गुरुओंके आकर श्रद्धाविन्दुकी मैं नमस्कार करता हूँ जो निर्वाणको उदककर पहुँचानेकी इच्छा रखने वाले मान्यके लिए पत्थरोंका काम करते हैं।

यद्यपि सादिगजसूत्रिने यहाँ पर आचार्य श्रद्धाविन्दुके किसी अन्यका नामोल्लेख नहीं किया है तथापि यहाँ वे उन्हीं शास्त्रसंशोधक स्वरूप कर रहे हैं जिन्होंने माध्वनामोपयोगी साहित्यको सृष्टि कर संसारका हित किया है। सादिगजसूत्रिकी दृष्टिमें आचार्य श्रद्धाविन्दु उनमें सर्व प्रथम हैं।

इनमेंसे प्रथम दो उल्लेख किष्किणी गौरी शताब्दिके और अन्तिम उल्लेख प्यारखी शताब्दिके हैं। इन्होंने मान्यम पढ़ता है कि हम बात तक जैन परम्परामें शताब्दिसूत्रके कर्ता आचार्य श्रद्धाविन्दु हैं एकमात्र यही मान्यम प्रचलित थी।

### ३. मान्य मत

किन्तु हम मत्वके विरुद्ध तीन बार मत और भिन्नते हैं किन्की यहाँ चरचा कर लेना प्रासंगिक है।

१-श्वेताम्बर तत्त्वार्थमार्ग्यके अन्तमें एक प्रशस्त उपलब्ध होती है। उसमें कहा गया है कि 'किन्के दीक्षागुरु प्यारख संग के चारक योगन्दिके ज्ञानका थ और प्रगुद बाबकनुक्य शिष्यकी थ बाबनाकी अपेक्षा किन्के गुरु मूठ मयक ज्ञानकार्य और प्रगुद महाबाचक मुण्डपाद थे जो गोरसे कौमीपथि थ और जो स्वाति निज और बार्थ मायके पुत्र थे किन्क कम ज्यमोविकामे हुभा या और जो उष्णानगर शाब्दके थे, उन उमात्वाति बाबकन गुरगगगत प्राप्त हुए भए आहहचनको मत्ती प्रकार धारण करके तथा युधगम द्वारा इत्युक्ति कुचित साक्षरोंके बन्धन प्रथितिकी अनुकम्पकण वह तत्त्वार्थमिगम नामक शाब्द विहार करते हुए कुसुमपुर नामके महानगरमें तथा है। जो इस तत्त्वार्थमिगमको जानेसा और उसमें कथित मार्गक अनुसरण करेगा वह अस्माकथ गुरु मयक परमार्थको हीम ही प्राप्त करेगा'।

इसी प्रकार तत्त्वार्थमार्ग्यके प्रारम्भमें जो ११ उद्धानिका क्रियाएँ उपलब्ध होती हैं उनमेंसे २२ वीं क्रियामें कहा गया है कि आहहचनक एकराके संमद रूप और बहुत अपेक्षसे इस तत्त्वार्थमिगम नामके लिये प्रायसा ही शिष्यके हित्यप करता है।

महागुरु वं ज्ञानालयी उवानिकाकी इस क्रिया और अन्तिम प्रशस्तिके विशेष महत्त्व देते हैं<sup>१</sup>। वे हैं मूल उद्धारकी मानकर अन्त हैं<sup>२</sup>।

इसके विना ज्ञानोपलक्षणकार और तत्त्वार्थमार्ग्यकार इनका अमिश्रित चिह्न करनेके लिए दो मुक्तियों काय है—

क 'साहित्यिक क्रियाओंमें और कुछ उवानोंपर मान्यमें भी कथ्यमि, 'वक्षयाम' आदि प्रथम पुराणा निर्देश है और इन निर्देशों की दूर प्रतिके अनुसार ही चरमें सूत्रमें कथन किया गया है; इससे तत्र और अन्य शक्तिको एककी हृति सामनेमें कन्द मही रहता।

ख श्रद्धे अन्तक भाषणा इग धाने पर एक अत मनस उल्लेख है और वह यह है कि किसी भी रथनपर

१. इला तत्त्वार्थमार्ग्यके अन्तमें वार्ड ज्ञानशाली प्रशस्ति। २. देवा उपक द्वारा लिखित तत्त्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना।

सूत्रका अर्थ करनेमें शब्दोंकी लीलागती नहीं हुई, कहीं भी सूत्रका अर्थ करनेमें शब्द या विद्वान् करनेमें नहीं आया इसी प्रकार सूत्रको किसी वृत्तीय व्याख्याका मनमें रखकर सूत्रका अर्थ नहीं किया गया और न कहीं सूत्रका पठमेरफ ही अक्षरमन्त्र लिया गया है।<sup>१</sup>

१ नाभ्युदयी प्रेमीका लक्षणग यही मत है। इन विषयका उनका अन्तिम लेख भारतीय विद्याक शूर्वीय भागमें प्रकाशित हुआ है। इन्होंने तत्सायवृत्त और तत्सायभाष्यको प्रतिप्रकर्तुक विद्द करते समय १० मुद्रालोक कीभी उक्त सीमां सुक्तियोंको ही कुछ शब्दोंके हेतुके साथ उद्धरित किया है। मात्र इन शर्तों विद्वानोंके मतोंमें यदि कुछ अन्तर प्रतीत होता है तो इत्या ही कि १० मुद्रालोककी व्याजक उमास्वातिका अक्षर शब्दोम्बरपरम्पराका और प्रेमी की पाप्नीय परम्पराका मानते हैं।

२ अक्षरशब्दोम्बराका पन्द्रागिरि परंत परबुद्ध एष शिलालय पाप आते हैं किन्में एदविष्य उमास्वातिका तत्सार्थवृत्तका क्या कहा गया है। इन शिलालेखोंमें ४, ४१, ४३, ४७ और ४९ में शिलालेखोंमें एदविष्य विषयवृत्त काय मात्र उमास्वातिका उक्तग है और १०५ व १०६ में शिलालेखोंमें उद्वे तत्सार्थवृत्तका क्या कहा गया है। १० दानों शिलालेख १० शिलालेखकी मध्यजुद्ध<sup>२</sup> क्रमशः एक सं० १३२० और एक सं० १३५५ क माने आते हैं। शिलालेख १५५ का उद्धरण इस प्रकार है—

‘अंमालुमास्वविराव अर्थवृत्तवृत्तमुद्र प्रकटीककार ।  
 पद्मुक्तिमार्गावरायादतामी पाथपमार्थं भवति मज्जात्मा ॥१६॥  
 तस्यैव शिष्योऽत्रनि गृहविषयद्विप्रौषमंगुष्य वसाहविषयः ।  
 ययुक्तिरवाति भवति ज्ञाक मुक्तय गणमाहमममममम ॥१७॥

श्लोकोंके अर्थवत् भीधान् उन्मारादिने तत्सार्थवृत्तको प्रका विद्या वा मोक्षनामके आचरणमें उक्त हुए मत्रा अनेक विष उक्त पाथपना काम दया है। एदविष्य इ शूर्वीय नाम विनया एषश्री उमास्वातिका एक शिष्य पावकविष्य, ४। विनके सुक्तिर मुक्तगमाके मारन करनेक विष आभूषणोषा काम देत है।

शिलालेख १०६ में इसी पालना इस प्रकार लिखित किया गया है —

ययुक्तिरवाति भवति ज्ञाक मुक्तय गणमाहमममम ॥१६॥  
 तस्यैव शिष्योऽत्रनि गृहविषयद्विप्रौषमंगुष्य वसाहविषयः ।  
 ययुक्तिरवाति भवति ज्ञाक मुक्तय गणमाहमममम ॥१७॥

एतदवृत्त पर विभिन्न स्थानोंमें प्राप्ति पदी टीकाने ल करने शिषी एद है ल इनमें विद्वान् १३ से उक्त शिलालेखोंमें सुक्तिर मुक्तग माके मारन करने ही कनरी टीका है किन्में उमास्वातिका उक्त गण मुक्तिरवाति गण भी लिखा है।

१ वं मुद्रालोक अर्थके तत्सार्थवृत्तकी उमास्वातिका १३ १३ । २ एतां अक्षरशब्दोम्बरा अक्षरशब्दोम्बरा अक्षरशब्दोम्बरा अक्षरशब्दोम्बरा १ । ३ एतां वं अक्षरशब्दोम्बरा अक्षरशब्दोम्बरा अक्षरशब्दोम्बरा १ ११ ।

५ सुश्लक्ष्णोत्तरी सुखर कर्ता विपयक इती मत्को प्रमाण मानकर पसते हैं । उन्होंने परब्रह्मको उपासनादिप्र ही न्यमान्तर कहा है ।

३. विपयक पश्यतमें मूल तत्त्वार्थसूत्रको वा यातयो उपलभ्य होती हैं, उनके अन्तमें एक रसोक आता है—  
'तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृह्यन्निर्द्वीपलक्षितम् ।

बन्ध गणीग्रसंदातमुमास्वात्मिसुनीरवरम् ॥'

इसमें परब्रह्मके उपलक्षित उमास्वामी सुनीरवरको तत्त्वार्थसूत्रकर्ता कर्ता कलाकर उन्हें पश्यन्तर कहा गया है ।

४. नगर व्याप्त्युक्तेके एक शि शाल्लोमें यह उक्तोत्तर उपलभ्य होय है—

तत्त्वार्थसूत्रकर्तारमुमास्वात्मिसुनीरवरम् ।

सुतकेवक्षिद्द्वीतीयं बन्धेर्ध्वं गुह्यमन्दिरम् ॥

इसमें तत्त्वार्थसूत्रके कर्ताप्र नाम उमास्वाति कलाया है और उन्हें सुतकेवक्षिद्द्वीतीय तथा गुह्यमन्दिर कहा गया है ।

५ आचार्य कुन्दकुन्दने तत्त्वार्थसूत्रकी रचना की है एषा मी उक्तोत्तर बेलनेमें आता है वो तत्त्वार्थसूत्रकी अन्ततम टीका अर्थात्सूत्रतिलक है । तत्त्वार्थसूत्रके एक रसेवान्तर टिप्पणकार मी इस मन्त्रे परिचित थे, उन्होंने अपने टिप्पणमें इस मन्त्र उक्तोत्तर कर अपने सम्प्रदानको धारणान करनेका प्रयत्न किया है ।<sup>१</sup>

### ४ समीक्षा

इस प्रकार वे लोच अन्त्य मत हैं किन्तु तत्त्वार्थसूत्रके कर्ता कौन हैं इस बातका विचार किया गया है । इनमेंसे प्रारम्भके तत्त्वार्थभाष्यके उक्तोत्तरको छोड़कर हीय सब उक्तोत्तर लगभग १३ बी शताब्दिसे पूर्वके नहीं हैं और मुख्यतया वे परब्रह्म और उमास्वाति इन दो नामोंकी ओर ही कियी न कियी रूपमें इरादा करते हैं । एक अन्तिम मत कि आचार्य कुन्दकुन्द तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता हैं अन्तर ही किलदस्य समय है किन्तु आचार्य कुन्द कुन्दकी परब्रह्म इस नामसे उपाति होनेके कारण ही यह मत प्रसिद्धिमें आया है ऐसा प्रतीत होय है<sup>२</sup> । मुख्य मत दो ही हैं वो यहाँ विचारणीय हैं । प्रथम यह कि आचार्य परब्रह्म तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता हैं और दूसरा यह कि वाचक उमास्वातिने तत्त्वार्थसूत्रकी रचना की है ।

वाचकवाचः इम पसते तत्त्वार्थसूत्र' इस नामके विषयमें विचार करते हुए 'सूत्रपाठोंमें मतमेव' प्रकारको लिखते हुए और 'प्रेक्षापर्यविचार' प्रकारका भाव सर्वापेक्षित्ति व तत्त्वार्थभाष्य की तुलना करते हुए कई महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाल आये हैं किन्तु धारणा इस प्रकार है—

१. वाचक उमास्वातिने तत्त्वार्थविभाग शास्त्रीकी रचना की थी । किन्तु यह नाम तत्त्वार्थसूत्रका न हो कर तत्त्वार्थभाष्यका है ।

१. देवी मा प्र से प्रकथित रत्नकरणककी प्रस्तावना पृष्ठ १७५ ।

२. वं केदारचन्द्रकीका तत्त्वार्थसूत्र प्रस्तावना पृ १० ।

३. इसके लिए देवी हमारे द्वारा लिखे गए तत्त्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना ।

४. देवी प्रकाशनागरकी डा पृ ५७० उपासकी सूचिका ।

२ सूत्रपाठोंमें मत्तमेक्षा उल्लेख करते समय यह धिक् करके प्यलाया गया है कि यदि तत्पार्थक्य और तत्पार्थक्यके कर्ता एक ही व्यक्ति होते और श्वेताम्बर आचार्य इस तथ्यको समझते होते तो श्वेताम्बर सूत्रपाठमें किन्ना अधिक मत्तमेख उपलब्ध होता है यह नहीं होना चाहिए था ।

३ सर्वाथविद्धि और तत्पार्थक्यके पौर्वापर्यका विचार करते समय हम कठला आये हैं कि बाचक उमा त्वातिके तत्पार्थक्यके लिखे जानेके पहले ही तत्पार्थक्य पर अनेक टीका टिप्पणियाँ प्रचलित हो गई थीं । नही हमने एक ऐसे सूत्रकर्म मी उल्लेख किया है जो सर्वाथविद्धिमान् सूत्रपाठमें सम्बन्ध रखता है और जिसे बाचक उमात्वातिके अपने तत्पार्थक्यमें उद्धृत किया है । अर्थविकारकी दृष्टिसे विचार करते हुए ऐसे प्रकरणमें यह मी कलहाया गया है कि सर्वाथविद्धि और तत्पार्थक्यको सामने रख कर विचार करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ऐसे कह प्रयोग हैं जो तत्पार्थक्यका सर्वाथविद्धिके वादकी रचना उद्भवत हैं । और यह धिक् करते समय हमने एक उदाहरण यह मी दिया है कि कालके उपरान्त प्रकरणमें परस्परतत्पार्थक्यके सर्वाथविद्धिके केवल दो ही मेद क्रिये गये हैं जब कि तत्पार्थक्यमें ने तीन उपलब्ध हाव हैं ।

इच्छिए इन व सूत्रे सध्यासे यह स्पष्ट हा जाने पर मी कि पाचक उमात्वाति आध सूत्रकार नहीं होने चाहिए, इस निपयक अन्तिम निपयके लिए कुछ अन्य बातों पर मी दृष्टिगत करना है ।

किन्ती मी रचयिताके सम्प्रदाय आदिष्व निपय करनेके लिए उस द्वारा रचित शास्त्र ही मुख्य प्रमाण होता है । किन्ती मी शास्त्रमें कुछ एत सीव हावत हैं जो उस शास्त्रके रचनाकाल व शास्त्रकारके सम्प्रदाय आदि पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं । तत्पार्थक्यकारके समप्रदिकका विचार करते समय प्रशास्त्रु पं मुखजालखीने मी इस सर्विको अपनया है । किन्तु यहाँ उन्होंने तत्पार्थक्य और तत्पार्थक्य इन दोनोंको एककर्तृक मानकर इस बातका विचार करनेका प्रयत्न किया है । इससे बहुत बड़ा गुनाहा हुआ है । अतः इस बातका विचार केवल तत्पार्थक्य सूत्रको और उसमें मी तत्पार्थक्यके उन सूत्रोंको सामने रखकर ही होना चाहिए जो तत्पार्थक्यमें दोनों सम्प्रदायोंको मान्य हैं । इससे निपयक समीचा द्वारा किन्ती एक निपय पर पहुँचनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है ।

चार सूत्र—यह तो स्पष्ट है कि तत्पार्थक्यके दो सूत्रपाठ हो जाने पर मी अधिकतर सूत्र एत हैं जो दोनों सम्प्रदायोंका मान्य हैं और उनमें मी कुछ एत सूत्र अपन मूलरूपमें रह आये हैं किन्ते रचयिताकी रीति आदि पर प्रकाश पड़ता है । यहाँ हम इस विचारणाम एत सूत्रांसे मुफ्त नार सूत्रोंको उपरिपत करते हैं—  
प्रथम तीवकर प्रवृत्तिके रचक अरशांश प्रतिपादक सूत्र वृष्य वाइए पटीप्योका प्रतिपादक दृष, तीवरा केवली किन्ते म्यारह पटीपहाके सत्रावध प्रतिपादक सूत्र और चौथा एक तीवके एक साथ किन्ते पटीपद होत हैं इत्थ प्रतिपादक सूत्र ।

१ तीवकर प्रवृत्तिके रचके किन्त करण्य हैं इत्थ उल्लेख हावो परम्यवाओंके मूल आगम करत है । दिगम्बर परम्यके कपस, निगबिचयम वे ही घोलाइ करण्य उल्लिखित हैं जो लगमग तत्पार्थक्यमें उठी रूपमें स्वीकार क्रिये गय है । तुलनाके त्रिए दक्षिण—

एतौकिशु-इर्बिनयमप्रवृत्ता इच्छितेभक्तिवार्त्, अर्त् इच्छन्तीपयोगवेगी इच्छितेभक्तिवार्त् । तावुयमाधि वैपाव्यकरयमहाचार्य, सुप्रवचनम च्छात्रवदयकावरिहाथिम गामनामप्रवचनकच्छत्व, मति तीवकरण्य ए

—तत्पार्थक्य ७ १७ ।

१ देवो पं मुखजाव जी इतर विगिन तत्पार्थक्यकी मत्तवना ए न आदि ।

पुस्तकविमुक्त्याय विद्यार्थसंपन्नताय सीलम्बदेसु शिदिचारदाय आवासयसु अपरिहीन्याय आचरण  
 परिशुद्ध्याय कश्चित्तगतसंपन्नताय सभा कामे तथा एवं साहस्य पानुनपरिचागदाय साहस्य समवेत्संभार्याय  
 साहस्य वेजनाय इतिगुणतुष्ट्याय अरहंतमतीय बहुमुद्रमतीय पचयय मतीय पचयय कचकुसदाय पचयय प्यमान्याय  
 अमितयत्त अमितयत्त पायोबभोगुत्तुष्ट्याय इत्यदेदि सोषसेदि कारयेदि बीवा तित्पवरयात्मगोर्दं कर्म संघति ।

—संघसामिन् कचम ७ सु ११ ।

किन्तु श्वेताम्बर परम्परा १६ के स्थानमें २ अक्षरों का स्वीकार करती है । यहाँ शब्दपरमकथा नामक  
 श्रंगके आश्रयें अप्यात्मं न कारयौश्च निर्देश इन शब्दोंमें किया है—

अश्वत्थ-सिद्धि पचयय गुह-धर-बहुसुप्य एवंस्तीम्तु ।  
 कचमुद्रया य लेमि अमितकलं पायोबभोगो य ॥ १ ॥  
 संसपयिच्छप आचरस्य य सीलम्बप्य निरह्यार ।  
 उच्यते तदधिकदाय वेदाचरणे समग्री ॥ १ ॥  
 अयुक्तायागह्यं सुयमती पचयय पमाचयया ।  
 पुण्यं कारयेदि तित्पवरत्तं अहर् बीवो ॥ १ ॥

यहाँ उक्तप्रमाणों का शब्दों में अर्थ है—प्रथम शब्द तो १६ संख्याका निर्देश और दूसरी शब्द  
 शब्दार्थ है । इस विषयमें उक्तप्रमाणों का उक्त शब्द विगम्य परम्परके किन्तु अधिक नबरीक है उक्तना श्वेताम्बर  
 परम्परके नबरीक नहीं है ।

१ विगम्य और श्वेताम्बर शोभा परम्परमें २२ परीपदोंके स्वीकार करती है । उक्तप्रमाणों में इनका  
 प्रतिपादन करनेवाला जो शब्द है उसमें एक परीपदका नाम नाम्य है । देखना यह है कि यहाँ उक्तप्रमाणोंके  
 नाम्य शब्दों ही का स्वीकार किया है । क्या इस शब्दका स्वीकार श्वेताम्बर परम्परके अनुसार आगम समत  
 हो सकता है । श्वेताम्बर परम्परके आगमोंमें 'नाम्य परीपदके स्थानमें 'अथ अथेत्' परीपदका उल्लेख मिलता  
 है' का उक्त प्रमाणोंके अन्तर्गत है । क्याकि अथेत् शब्दमें 'नन्' समाप्त होनेसे उक्त प्रमाणोंके अनुसार इस शब्दके  
 अन्तर्गत अभाव और अन्तर्गत ये दोनों ही अर्थ पण्डित हो जाते हैं । पन्तु इस प्रकार नाम्य' शब्दसे इन दोनों  
 अर्थोंमें पण्डित नहीं किया जा सकता है । नम यह एकत्र शब्द है और इस शब्दका 'अथेत् आकरशब्दे रचित'  
 एकमात्र नहीं अर्थ होता है । स्पष्ट है कि यह २२ परीपदोंके प्रतिपादन करनेवाला शब्द भी किन्तु अधिक  
 विगम्य परम्परके नबरीक है उक्तना श्वेताम्बर परम्परके नबरीक नहीं है ।

२ आदि परीपदोंमें एक नाम एक शब्द किन्तु परीपद हो सकते हैं इसका विचार करते हुए श्वेताम्बर  
 आगम आदित्य(प्याम्पामर्गति य ८)में कथाया है कि स्वयं और आठ प्रकारके कर्मोंका रूप करनेवाले शब्दोंके २२  
 परीपद होते हैं । पन्तु केवल शब्द एक नाम ही परीपदोंका ही अर्थ करता है । दो कौमसे परीपद कम हो जाते  
 हैं इस बातका उल्लेख करते हुए यहाँ उक्तप्रमाणों है कि बिल समय पर शब्द शीत परीपदका अर्थ करता है उक्त  
 गाल ८० उक्त परीपदका अर्थ नहीं करता और बिल समय उक्त परीपदका अर्थ करता है उक्त समय वह शीत

परीपहल बेदन नहीं करता। इस प्रकार एक परीपह तो यह कम हो जाता है। तथा जिस समय चर्चा परीपहल बेदन करता है उस समय निपचा परीपहल बेदन नहीं करता और जिस समय निपचा परीपहल बेदन करता है उस समय चर्चा परीपहल बेदन नहीं करता। इस प्रकार एक परीपह यह कम हो जाता है। कुछ बीस परीपह रहते हैं किन्तु बेदन यह भीच पकड़ाव करता है।'

किन्तु तत्कार्यमूलमें परीपहोंके पकड़ाव बेदन करनेकी अधिकतम अधिक संख्या १६ निश्चित करी गई है। यहाँ हमें अधिकसंगत क्या है इसका विचार नहीं करना है। बतलाना केवल इतना ही है कि तत्कार्यमूलकारका इस प्रकारका निर्देश भी रहेताम्बर आगम परम्पराका अनुसरण नहीं करता।

३. जिनके त्बारह परीपह होते हैं इस सूचना विस्तारके साथ विचार हम पाठभेद और अध्यान्तल्यास प्रकरयमें कर आवे हैं। यहाँ हमने तत्कार्यमूलकारकी दृष्टिको स्पष्ट करते हुए बतलाया है कि परीपहोंके प्रसंगसे सूत्रकारकी दृष्टि मुख्यतया अन्तरंग कार्योंके विवेचन करनेकी रही है। वे किस कर्मके उपायमें कितने परीपह होते हैं इतना कहकर अधिकारी भेदस अलग अलग परीपहोंकी संख्याका निर्देश करते हैं। पर इसका यह अर्थ नहीं कि अन्तरंग कार्योंके अनुसर यहाँ कितने परीपहोंका उल्लेख ठाहोंने किया है यहाँ उतने परीपहोंका उद्भाव न नियमस मानते ही हैं। उन्होंने परीपह प्रकरणके अन्तिम सूत्रमें परीपहोंका कर्मके अनुसर भी अलगसे विधान किया है। वे कहते हैं कि यद्यपि कुल परीपह बारह हैं तथापि एक भीन्के पकड़ाव एकसे लेकर उन्नास तक परीपह हो सकते हैं स्पष्ट है कि इस अन्तिम सूत्रके प्रकाशमें यह अर्थ नहीं प्रकृत किया जा सकता है कि किस प्रकार तत्कार्यमूलकारने अधिकारी भेदसे कहाँ कितने परीपह होते हैं इस बातका विधान किया है उसी प्रकार उन्हें सर्वत्र उनका कार्य भी इष्ट है। इसका तो केवल इतना ही अर्थ है कि अन्तरंग कार्योंके अनुसर सर्वत्र परीपहोंकी सम्पादना स्वीकार कर लेने पर भी यदि उन परीपहोंके जो अन्य बाह्य निमित्त हैं वे नहीं मिलते तो एक भी परीपह नहीं होते। तभी तो सूत्रकार १ परीपहसे लेकर १६ परीपह तक होने का विवरण कथन करते हैं। यथा किन्ही प्रपवसयत साधुके सन कर्मोंका उदय होनेसे सब परीपह सम्भव हैं पर उनके परीपहोंके बाह्य निमित्त एक भी नहीं हैं तब उन्हें एक भी परीपहल बेदन न होगा। यदि एक परीपहल बाह्य निमित्त है तो एक परीपहका बेदन होगा और अधिक परीपहोंके बाह्य निमित्त उपरिपत हैं तो अधिक परीपहोंका बेदन होगा। वास्तव यह है कि केवल अन्तरंग कार्योंके उद्भावसे परीपहोंका वेदन कार्य नहीं मान्य हो सकता। स्पष्ट है कि तत्कार्यमूलकारकी दृष्टि केवल अन्तरंग कार्योंके उद्भावस उनका कार्यको स्वीकार करनेकी नहीं है। उन्होंने तो मात्र अन्तरंग कार्योंकी दृष्टिसे सर्वत्र उनका उल्लेखमात्र किया है।

इस दृष्टिसे हमने रहेताम्बर आगम साहित्यका आलाइन किया है। किन्तु यहाँ तत्कार्यमूलकारकी दृष्टिसे सर्वथा भिन्न दृष्टि अपनाइ गई प्रकृत होती है। यहाँ यहाँ कितने परीपह सम्भव हैं उनसेस विगची परीपहोंको छोड़कर सन्के बेदनकी बात स्वीकार की गई है। यहाँ यह स्वीकार ही नहीं किया गया है कि काह एकका बेदन करता है कोह हो का और कोह अधिकतम अधिक इतनेका बेदन करता है। यहाँ तो एक मात्र परीपहल माना गया है कि जो स्वतः या आठ कर्मोंका पन्च करते हैं उनके सब परीपह सम्भव हैं परन्तु वे एक साथ बेदन मात्र भीतका करते हैं। जो द्वादश कर्मका पन्च करते हैं उनके बीस परीपह सम्भव हैं परन्तु वे एक साथ बेदन मात्र बारहका करते हैं। जो बीसतय द्वादश एक कर्मका पन्च करते हैं उनका भी बीस परीपह सम्भव हैं परन्तु वे



एक राय वेदन मात्र धारण ही करते हैं। जो एक कमरु कप कर्मवाते उपयोगी भिन्न हैं उनके परीपह तो ग्यारह सम्मन हैं परन्तु वे एक क्षम वेदन मात्र नौकर करते हैं। उषा जो अक्षयक उपयोगी भिन्न हैं उनके भी परीपह तो सयोगी भिन्ने समान ग्यारह ही सम्मन हैं परन्तु वे एक राय वेदन मात्र नौका करते हैं।

इत्थसिद्ध यहाँ भी उत्तार्थसूत्र और श्वेताम्बर आगम अद्वैत्यक गुणनारमक द्रव्यमन्त्रे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'एकवचन भिन्ने' सूत्रका विधान करते हुए भी उत्तार्थसूत्रकार बितने अधिक दिग्गम परम्पराके नजदीक हैं उठने श्वेताम्बर परम्पराक नजदीक नहीं।

यह है उत्तार्थसूत्रके कुछ सूत्रोंका परीक्षण बितसे भी हमें इस बातके निर्णय करनेम सहायक मिलती है कि उत्तार्थसूत्रकार याचक उमास्वामिसे विभक्त होने चाहिए।

किन्तु दिग्गम परम्परामें उमास्वामि या उमास्वामी नामके कोई आचार्य हुए हैं इस बातका सूचक कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। अथवा नेलगोहाके शिक्षाकाल या दूसरे बितने भी प्रमाण मिलते हैं वे सब उन उल्लेखोंसे जो उत्तार्थसूत्रके आचार्य परब्रह्मिन्सुकी हृति प्रकट करते हैं बरके हैं, अतएव हम मामलेमें उनका उल्लेख बिलगत नहीं किया था लफटा।

सिद्धसेनोप टीका—५ गुणल्लासकीने अपने उत्तार्थसूत्रकी प्रस्तावनामें सिद्धसेन गण्ड और हरिप्रसरद्वी की टीकाएँ एक जो उल्लेख उल्लिखित करे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि उत्तार्थसूत्रकार और उनके भाष्यकार एक ही व्यक्ति हैं किन्तु वे अलगल अलगलएव हैं। उमास्वामि सिद्धसेन गण्ड की टीकामें अपने अन्वयके अन्तम जो पुष्पिका उल्लिखित होती है उसमें आने हुए उमास्वामिवाचककेपञ्चसूत्रभाष्ये पदको पहिलवही भाष्यकार और सूत्रकार एक व्यक्ति हैं उस पदमें लगाने का प्रयत्न करते हैं किन्तु इस पदका सीधा अर्थ है—उमास्वामि याचक द्वारा कृतया हुआ सूत्रभाष्य। यहाँ उमास्वामिवाचककोपठ पदका सम्बन्ध सूत्रसे न होकर उसके भाष्यसे है। पृष्ठ प्रमाण पहिलवहीने ६ वें अध्यायके २२ वें सूत्रकी सिद्धसेनीय टीकाका उल्लिखित किया है। किन्तु यह प्रमाण भी अक्षरालएव है क्योंकि सिद्धसेन गण्डकी टीकाकी जो प्राचीन प्रतिर्ण उल्लिखित होती हैं उनमें 'एकवचनसूत्रसम्बन्धसम्बन्धोक्तम्' पाठके स्थानमें 'एकवचन सूत्रसम्बन्धसम्बन्धोक्तम्' पाठ भी उल्लिखित होता है। बहुत सम्भव है कि किशो निपिप्ररने उत्तार्थसूत्रका याचक उमास्वामि कसु ल दिसवाने के अधिप्रायसे 'एकवचन' संशोधन कर एकवचन पाठ कृतया ही और बादमें यह पाठ कल पड़ा है।

आचार्यद्वयः इतने स्पष्टक मासे सिद्धसेन गण्डकी टीकाका आशोडन किया है इत्थसिद्ध इस आचार्यसे हम यह तो मान लेते हैं कि उसमें कुछ पद भी उल्लेख मिलते हैं जो उत्तार्थसूत्र और उत्तार्थसूत्रके इनको एक-कर्मक सिद्ध करते हैं। उनमेंसे प्रथम उल्लेख प्रथम अध्यायके 'मन्त्र परीपह सूत्रकी सिद्धसेनीय टीका है। यहाँ पर सिद्धसेन गण्ड उत्तार्थसूत्रके 'सूत्रसम्बन्धसम्बन्धोक्तम्' प्रथम हृतीसे आसित अंशकी व्याख्या करते हुए करते हैं।

मन्त्रकार एव हिंसा अन्तर्गत विमन्त्र सूत्रकारभाष्यकारबीचमाह—हास्तीति सूत्रकार हृति शेषः। अथवा पर्यायनेहाएँ कर्पाविका मेव इत्यन्व सूत्रकारपर्यायमन्त्रकारभाष्यकारपर्याय इत्यन्व सूत्रकारपर्यायः हास्तीति।

१ अन्वयसम्बन्धित हा ५। २ देखो उनके उत्तार्थसूत्रकी मस्तावना पृष्ठ १० की टिप्पणी १।

३ देखो सिद्धसेनीय टीका पर ६ पृ ११ पृ २२३ की टिप्पणी।

इसमें बतलाया गया कि 'प्रयत्नरत्ने अपनेसे सूत्रकार और माध्यकार इस तरह दो भागोंमें विभक्तकर 'शास्त्रि' ऐसा कहा है। इत्यदि यहाँपर 'शास्त्रि' क्रियाके साथ उसके कर्ताका बोध करनेके लिए 'सूत्रकार' पर जोड़ लेना चाहिए। अथवा पर्यायीके नेत्र पर्यायीके मित्र मान लेना चाहिए। अतः एक ही प्रत्यकारकी सूत्रकार पर्याय मिल्न है और माध्यकार पर्याय मिल्न है अतः सूत्रकार पर्याय कही है ऐसा सम्भव कर लेना चाहिए।

एसा ही एक दूसरा उल्लेख अध्याय दोके 'विरयभोगमन्वयम्' सूत्रकी विद्वत्सनीय टीकामें मिलता है। इसमें सूत्रकारसे माध्यकारसे अभिन्न बतलाया गया है। उल्लेख इस प्रकार है—

सूत्रकाराद्विभक्तोऽपि हि माध्यकारो विभागमादर्शयति ध्युविद्युति—(पर्याय) नयसमाभवात् ।'

इस प्रकार यद्यपि इन उल्लेखोंसे यह निश्चित होता है कि विद्वत्संन गण्डि तत्पार्थसूत्रकार और तत्पार्थ माध्यकार इन दोनों व्यक्तियोंको एक मानते रहे हैं पर इतने मात्र यह नहीं माना जा सकता कि यह उनका निश्चित मत था। उन्होंने अपनी टीकामें कुछ ऐसा भी अभिप्राय व्यक्त किया है जिसके आधारसे विचार करने पर सूत्रकारसे माध्यकार मिल्न विद्वत् होते हैं। इसके लिए अध्याय आठके 'मत्पार्थीनाम् सूत्रकी टीका देखनी चाहिए।

यहाँ पर विद्वत्संन गण्डिके सामने यह प्रश्न है कि क्या अन्य आचार्य 'मतिभ्रुवावाचिमनःपर्ययकेवद्यानाम् सूत्र मानते हैं तब सूत्रकार वास्तविक रूप 'मत्पार्थीनाम्' माना जाय या अन्य आचार्य जिस प्रकार उसका पाठ करते हैं वैसा माना जाय। इस शकका समाधान करते हुए पहले तो उन्होंने हेतुओंका आशय लिया है किन्तु इतने मात्रसे स्वयं फलप्राप्त होता न देख वे करते हैं कि यत माध्यकारने भी इस सूत्रका इसी प्रकार अर्थ किया अतः 'मत्पार्थीनाम्' ही सूत्र होना चाहिए। उनका समस्त प्रसंगके स्पष्ट करनेवाला टीकाबचन इस प्रकार है—

'अतः तु मतिपर्यय पञ्चपि पदसि मतिभ्रुवावाचिमनःपर्ययकेवद्यानामिति । एवं 'जापार्थक' पाठो षड्वचने । ततोऽभ्यन्तरसूत्र पञ्चाविनेहा ज्ञानत्वरथादय इत्यवचनमेव । निश्चिंताय स्वकपतः प्रथमाभ्याप यत्कम् तत्वात् । अत आदिशब्द एव च युक्तः । माध्यकारोऽप्यवमेव सूत्राधमाश्वयत ।

यहाँ विशेष ध्यान देने योग्य 'माध्यकारसे' इत्यादि बचन है। इस बचनमें माध्यकारका सम्भव सीधा मत्पार्थीनाम् सूत्रकी रचनाके साथ स्थापित न कर उसके अर्थके साथ स्थापित किया गया है। इसमें विद्वत्संन ही कि बहाँपर विद्वत्संन गण्डि सूत्रकारसे माध्यकारसे मिल्न मान रहे हैं, अन्यथा वे किसी अपेक्षासे सूत्रकार और माध्यकारमें अभिन्नता स्थापित कर पंथी भाषावाच्य समर्थन करते जिससे माध्यकारसे अभिन्न सूत्रकारसे ही मत्पार्थीनाम् सूत्र रचा है इस बातका दृढ़ताके साथ समर्थन होता।

यहाँ तक हमारा मत है इन पूर्वोक्त उल्लेखोंके आधारसे हम एक मात्र इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल तत्पार्थसूत्रकार और तत्पार्थमाध्यकार अभिन्न व्यक्ति हैं इस विषयमें विद्वत्संन गण्डिकी स्थिति संशयापन्न रही है क्योंकि कहीं वे तत्पार्थसूत्रकार और तत्पार्थमाध्यकार इनका एक व्यक्ति मान लते हैं और कहीं दो। इस स्थितिसे देखते हुए मात्रम ऐसा देना है कि विद्वत्संन गण्डिके काल तक तत्पार्थमाध्यकार ही मूल तत्पार्थसूत्रकार हैं यह मान्यता दृढ़मूल नहीं हो पाई थी। यही कारण है कि विद्वत्संन गण्डि किसी एक मतका निरन्तरपूर्वक प्रतिपादन करनेमें अक्षमर्य रहे।

पण्डितजी—इस प्रकार सिद्धसेन गणिकी टीकाके आधारसे वाचक उमास्वाति तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता हैं इस बातके अनिश्चित हो जान पर भी यहाँ हमें प्रस्तावचतुर्षु सुब्रह्मशास्त्रिकी पृथक्पत्रयक प्रमासौद्ध अलागसे परमार्थ कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है। इस विषयमें उन्होंने किन चीजें प्रमासौद्धके उपरिबल किया है उनका हम पहले पृष्ठ ६२ में निवेश कर आये हैं। उनमेंसे पहला प्रमाण उपनिषत्का २२ वीं कारिका और तत्त्वार्थभाष्यके अन्तमें पाई जानेवाली प्रशस्ति है। इन दोनों स्थानोंमें उपनिषत्कारिकामें वर पाषाणियम नामक लघुग्रन्थके करनेकी प्रशिक्षा भी गई है और अन्तिम प्रशस्तिमें वाचक उमास्वातिने तत्त्वार्थ विगम शास्त्र रचा यह कहा गया है। पण्डितजी इस आधारसे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि तत्त्वार्थसूत्र के कर्ता वाचक उमास्वाति ही हैं। किन्तु हम यह पहले (पृष्ठ १७ में) ही सिद्ध करके बताया आये हैं कि तत्पाषाणियम यह नाम तत्त्वार्थसूत्रका न होकर तत्त्वार्थभाष्यका है। स्वयं वाचक उमास्वाति तत्त्वार्थविगमके एक न फलकर उसे ग्रन्थ या शास्त्र<sup>१</sup> शब्द द्वारा सम्बोधित करते हैं और आगे तत्त्वार्थविगमके रचनेका प्रयोजन पृष्ठ १२ वीं उपनिषत्कारिकामें करते हैं कि चिन वचन महोदधि दुर्यमधन्यमाप्पार<sup>२</sup> होनेसे उसका समझना कठिन है। ऐतिहासिकोंसे यह क्षिपी हुई बात नहीं है कि यहाँ वाचक उमास्वातिने आगम ग्रन्थके चिन मान्योका उल्लेख किया है वे विक्रमकी ७ वीं शताब्दिकी रचना हैं<sup>३</sup>। अब कि इनके भी पूर्व तत्त्वार्थसूत्र पर सर्वार्थसिद्धि प्रथम अनेक टीकार्रों मिली थी। ऐसी अवस्थामें २१ वीं उपनिषत्कारिका और अन्तिम प्रशस्तिके आधारसे वाचक उमास्वातिके मूल तत्त्वार्थसूत्रका कर्ता सिद्ध करना ठोस कार्य नहीं रहता।

पण्डितजी का भी दूसरी दृष्टिमें कहा गया है कि तत्त्वार्थभाष्यके आलोचनसे ऐसा लगता है कि तत्त्वार्थभाष्यमें सूत्रका अर्थ करनेमें कहीं भी सीधेबासी नहीं की गई है आदि। यहाँ विचार इस प्रकार करना है कि क्या तत्त्वार्थभाष्यकी बेसी निमित्त है बेसी कि पण्डितजी उसके विषयमें उद्योगवा करते हैं। इस दृष्टिसे हमने भी तत्त्वार्थभाष्यका आलोचन किया है किन्तु हमें उसमें ऐसे अनेक स्थल दिखाई देते हैं जिनके कारण इस दृष्टिसे तत्त्वार्थभाष्यकी स्थिति सन्देहास्पद प्रतीत होती है। यथा—

१ तत्त्वार्थसूत्रमें सम्प्रदर्शनीसे सम्प्रदर्शिके भिन्न नहीं माना गया है। यहाँ अर्थात् ७ सूत्र २३ में एत सम्प्रदर्शनश्लोकों भी सम्प्रदर्शिके कहा गया है जिसके शंका आदि दोष सम्भव होते हैं। किन्तु इसके विपरीत तत्त्वार्थभाष्यमें सम्प्रदर्शनी और सम्प्रदर्शिके इन दोनों परीको स्वतन्त्र व्याख्या करके सम्प्रदर्शनीसे सम्प्रदर्शिके भिन्न कहाया गया है। यहाँ कहा गया है कि जिसके आभिनियोगिक जान होता है वह सम्प्रदर्शनी कहलाता है और जिसके केवलज्ञान होता है वह सम्प्रदर्शिके कहालाता है<sup>४</sup>। स्पष्ट है कि यहाँ पर तत्त्वार्थभाष्यकार तत्त्वार्थसूत्रका अनुतरण नहीं करते और सम्प्रदर्शिके तत्त्वार्थसूत्रके बिल्कुल अपनी वा व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हैं। एक स्थल (अ १६ ८) में वे बिल बातकी स्वीकार करते हैं दूसरे (अ ७ सू २६) में वे उसे छोड़ देते हैं।

२ तत्त्वार्थसूत्रमें मति स्मृति और चहा आदि मतिज्ञानके वर्णनवाची नाम है। किन्तु तत्त्वार्थभाष्यकार

१ सूत्रों उल्लेखिका कारिका २१ व अन्तिम प्रशस्ति तत्त्वार्थभाष्य ।

२ महोदधिमाहात्म्यके दस्य दुर्यमधन्यमात्पारम्भ । क इच्छे प्रयासं चित्तवचनमहोदधिः कर्तव्यम् ।

३ देजो न कजाशचक्र जीके तत्त्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना पृ १२ ।

४ सूत्रों तत्त्वार्थसूत्र अ १ सू ८ का तत्त्वार्थभाष्य ।

हूँ पर्यायवाची नाम न मानकर मति। स्मृति' इत्यादि सूत्रके आचार्य मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान आदिको स्वतन्त्र ज्ञान मानते हैं।<sup>१</sup> सिद्धरत्न गणितने भी तत्कार्यभाष्यके आचार्य इनको स्वतन्त्र ज्ञान मानकर उनकी व्याख्या की है। यह कहना कि सामान्य मतिज्ञान व्यापक है और विशेष मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान आदि उसके व्याप्य हैं कुछ धुसुकीक नही प्रतीत होता, क्योंकि मतिज्ञान वर्तमान अर्थको विषय करता है इस तत्पक्ष जब स्वयं तत्कार्यभाष्यकार स्वीकार करते हैं वेही आचार्यमें मति, स्मृति आदि नाम मतिज्ञानके पर्यायवाची ही हो सकते हैं तानान्तर नहीं। तथा दिग्दर्शक और श्वेताम्बर परम्पराके आगमोंमें इन्हें मतिज्ञानके पर्यायवाची ही कहा है। स्पष्ट है कि यहाँ पर भी तत्कार्यभाष्यकारकी व्याख्या मूल सूत्रका अनुत्पत्त्य नहीं करती।

३. तत्कार्यभाष्यकारने आप्याय १ सूत्र 'क्षेत्रकर्मणोः' इत्यादि सूत्रकी व्याख्या करते हुए<sup>२</sup> शब्द, समिहक और पूर्वमूठ इन तीनको मूल नय मान लिया है जब कि वे ही प्रथम आप्यायमें उस छत्र पाठको स्वीकार करते हैं जिसमें मूल नयोंमें केवल एक शब्दनय स्वीकार किया गया है। स्पष्टतः उनका १ वें आप्यायमें शब्दाधिक तीन नयोंको मूलकरते स्वीकार करना और प्रथम आप्यायमें एक शब्दनयको मूल मानना परस्पर विरुद्ध है।

४. श्वेताम्बर तत्कार्यसूत्र आप्याय २ सूत्र ५२ में 'अरमदेहीचमपुत्रय' पाठ स्वीकार किया गया है। तत्कार्यभाष्यकारने प्रारम्भमें इस पदको मानकर ही उसको व्याख्या की है। किन्तु बादमें वे उक्तमपुत्रय पदका त्याग कर देते हैं और मात्र 'अरमदेह' पदको स्वीकार कर उक्त छत्र उपसंहार करते हैं। इससे विदित होता है कि तत्कार्यभाष्यकारको इस सूत्रके कुछ हेरफेरके खय दो पाठ मिले होंगे। जिनमेंसे एक पाठको उन्होंने मुख्य मानकर उसका प्रथम व्याख्यान किया। किन्तु उसको स्वीकार करनेपर जो आपत्ति आती है उसे देखकर उपसंहारके धन्य उन्होंने दूसरे पाठका स्वीकार कर लिया। स्पष्ट है कि इससे तत्कार्यभाष्यकार ही तत्कार्यसूत्रकार हैं इस मान्यताको बढ़ा भक्ता लगता है।

५. तत्कार्यसूत्र आप्याय ४ सूत्र ४ में प्रत्येक देशनिकायक इत्यादिक २ मेद गिनाय है। किन्तु तत्कार्यभाष्यकार इन इस भेदोंके उल्लेखके साथ अर्थात्परिचित नामका त्यागहर्षा मेत् और स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार इसी आप्यायके २६वें सूत्रमें लौकान्तिक देशोंके स्वरस्वत आदिक नी मेद गिनाय है किन्तु तत्कार्यभाष्यकार अपने आप्यायमें यहाँ नीके स्थानमें आठ मेद ही स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं—'मेद सारस्वताद्वयोऽप्यधिषा ह्वा ऋषोक्तस्य पूर्वोक्तस्यपि विष्णु मन्त्रिर्षि भवन्ति यथावकम्'।

ये ऐसे प्रमाण हैं जो पण्डितजी की पूर्वोक्त मान्यताके विरुद्ध करते हैं। स्पष्ट है कि पण्डितजीकी उक्त मान्यताके आचारण भी तत्कार्यभाष्यकारको तत्कार्यसूत्रका कर्ता नहीं माना जा सकता।<sup>३</sup>

६. मुल्लत्तानजीकी तीवरी मान्यता है कि प्रारम्भिक कारिकाओंमें और कुछ स्थानोंपर आप्याय बह्वयामि बह्वयाम आदि प्रथम पुस्तकी त्रिधाभाष्य निर्देश है आदि इत्यतिथ तत्कार्यभाष्यकार और तत्कार्यभाष्यकार एक ही व्यक्ति हैं। किन्तु पण्डितजी की यह कोइ पुष्ट दलील नहीं है। अन्तर दीकारार मूलकारण

१. देखो आप्याय १ सूत्र १३का तत्कार्यभाष्य। २. शब्दाद्वय प्रथ।

३. श्री १ साधकदाहुर जी शार्दीक ग्रन्थ निबन्धनाभास्कर भाग १३ पिरख १ में 'ब्रह्मा भाष्य स्योपलब्धं च उक्तके कर्ता पारम्पर्येण है इत्यर्थकम् एक जग्य सुत्रित करता है। इसमें भी इस विषयपर सुन्दर प्रकाश पड़ता है।

गद्यरूप स्थानित कर इस प्रकारकी क्रियाओंका प्रयोग करते हैं। उदाहरणके लिए देखो अन्धाय १ सूत्र १ की सर्वाधिकारिका टीका' अध्याय ८ सूत्र १ की उपानिका तत्त्वार्थवार्तिक' अध्याय ८ सूत्र १ की उपानिका हरिमयकी टीका' अध्याय १ सूत्र १ की उपानिका विद्वत्सं गणिकी टीका। परा विद्वत्सं गणिकी करते हैं 'सम्पत्ति गणिकी मोक्ष तं पदपाम'। यथा केवलजगत्संस्तुतिमन्त्रस्य यथास्तुतिपदभूत् मन्त्रसि मन्त्रिभ्यस्ति अतः केवलज्ञोत्पत्ति मत्र जगत् पदपाम। इतिहास इस आधारले भी तत्त्वार्थभाष्यकार वाचक उपास्याति तत्त्वार्थसूत्रके कर्ता नहीं सिद्ध होते।

श्रुतेस्ताम्बर पञ्चायसियी—श्रुतेस्ताम्बर पञ्चायसियोंके देखनेसे भी इस विमर्शकी पुष्टि होती है। इनमें एवते [गर्ता कृत्यस्य स्वधिकारको और नन्दिसूत्रकी पञ्चायसि है। किन्तु -नमें समय नहीं दिया है। समय गद्यस्य पदुत दीर्घार्थ पञ्चायसियामे है। कजा बावा है कि नन्दिसूत्र पञ्चायसि वि सं ५१० में संकलित हुई थी। 'नम उपास्याति य उनके मुद्रकोक नाम नहीं हैं।

विद्वदे कालकी रथी गर पञ्चायसिबामसे पञ्चपत्रुरिद्धत तु पमाकाल भ्रनद्वर्तप स्वव एक है। इसकी रचना विक्रमकी पेशेरी सरीम दुर अनुमानित की गयी है। इसमें उपास्यातिना नाम हरिमय और विनयके कर आया है पर हरिमयने उपास्यातिके तत्त्वार्थभाष्य पर टीका लिखी है। ये विक्रमकी ८ थी ६ थी सदीके विद्वान् ६ अलाप्य आचार्यकी क्रम परम्पराकी दृष्टिसे इस पञ्चायसिओ विशेष प्रमाण मही माना जा सकता है। हममें वि सं ७२ में वाचक उपास्यातिकी अन्वयित स्वीकार की गई है।

पर्वतगार गणिकृत तामाण्ड्य पञ्चायसि वि सं १६४६ में लिखी गई थी। इसमें विनयके बाद शिष्यवम, त्रयान्द और गणिकरता उद्देश्य करनेके पञ्च उपास्यातिना नाम निर्देश किया है और इनका समय वि०सं ७२ पतितार है। पद्यि इहाने अन्वयवार्तिकके पदुत और पतिस्वर नामक दो शिष्योंमेंसे अतिस्वरके शिष्य उपास्यातिना गणिकर इन प्रथम उपास्यातिको तत्त्वार्थसूत्रका कजा होनेकी सम्मानना की है। किन्तु उनकी गद सम्मानना भ्रनकण है। कारण कि नन्दिसूत्र पञ्चायसिकी २६ थीं गद्यामें हरिबगुप्त साहू च बंधे। पद आया है। विनय हरिकगार्थम साहित्य कणिकर है। माधुन पद्वय है पर्वतगार गणिकने नामकी अशिक गणिक दंगकर इतिहासस्थानमें भ्रनत इन्हे ही तत्त्वार्थसूत्रका कजा हानकी आशंका की है। व सुवत्तासमीन भी इस आशंकाका भ्रनसूत्रक बननाय है।

विनयिकर गणिक अन्ना लाक्यकण्य वि सं १७ ८ में पूरा किया था। ये उपास्याति का पुन प्रथम आचार्य बाबासे ६ और विनय तवा पुर्वनिपक सीव उनकी अन्वयित स्वीकार करते हैं। इन्होंने अपनी पञ्चायसिमें उपास्यातिक गननाका निर्देश नहीं किया है।

पर्वतगार गणिक (वि सं १७२६) ने भी पञ्चायसिगद्यस्यमें उपास्यातिक भ्रनत किया है। हममें तम्परा निर्देश करने हुए वाचकतात्पर्य वि सं ११६ (वि सं ७२) स्वीकार किया है।

१ पञ्चायसि अन्वयवार्तिक विनयकण्य तु आधिकारिक निर्देशनामः । २ अन्वयवार्तिक अन्वय वचाचरमदे ।  
 ३ अन्वय वृत्ति वचन । एतत्कोशविद्वत्स्य य वाम ।  
 ४ देवा उक्तका तत्त्वार्थसूत्र मन्त्राणां सूत्र २ ।  
 ५ य करोति इत्यस्मिन् सुविद्वत्स्य विनय इत्या तामाण्ड्य की वद्वत्स्यसुवच क्रमम आगामे सुविद्वत्स्य हुई है।

रुषेताम्बर परम्पराकी ये पद्यावलियाँ हैं किन्तमें उमास्वातिका निर्देश किया है। यद्यपि ये पद्यावलियाँ अपेक्षा  
 हल अर्वाचीन हैं और ननमें कुछ मतभेद है तथापि इनमें सर्वथा नियन्त्रण मानना उचित नहीं है। इनमें  
 निर्दिष्ट वस्तुके आभारसे निम्नलिखित तथ्य प्रसिद्ध होते हैं—

१ वाचक उमास्वाति युगप्रधान आचार्य थे। वे वि सं ७२०के आसपास हुए हैं। बहुत सम्भव  
 है कि इसी कालमें नन्दिद्यूत पद्यावली और कल्पद्यूत स्फुरितवलिमें इनकी परम्पराका किसी भी प्रकारका उल्लेख  
 नहीं किया है।

२ यद्यपि रविवर्चन गद्यिने किन्तु गद्यिके पूर्व वाचक उमास्वातिकका उल्लेख किया है परन्तु समयकी  
 दृष्टिसे रविवर्चन गद्यिने उन्हें किन्तुगद्यिकके बादका ही मतलामा है अतः उक्त सब पद्यावलिमें एकमत होकर  
 स्वीकार किये गये वास्तव्य कालका विचार करते हुए अन्य प्रमाणाँके प्रकाशमें अधिक सम्भव यही विचार दिख  
 है कि ये किन्तु गद्यिके बाद ही हुए हैं।

३ एक प्रशस्ति तत्पार्यमाप्यके अन्तमें भी उपलब्ध होती है जिसमें वाचक उमास्वातिने स्वर्णको  
 तत्पार्यभागम शास्त्रका रचयित्व कहा है। किन्तु इसमें समयाधिकका कुछ निर्देश न होनेसे वह प्रशस्ति समन  
 सम्पत्की पूर्वोक्त तत्पत्की पूरक ही प्रतीत होती है।

यह तो हम अनेक प्रमाणाँके आभारसे पहले ही स्वीकार कर आये हैं कि वाचक उमास्वातिने तत्पार्यमाप्य  
 की रचना की और तत्पार्यमाप्यमें स्वीकृत तत्पार्यवृत्तके पाठको संस्कारित कर अंतिम रूप दिया, इत्यतिष्ठ इत  
 रूपमें इन तत्पत्की स्वीकार कर लेने पर भी वाचक उमास्वाति मूल तत्पार्यवृत्तके कर्ता नहीं ठहरते और इत्या  
 ऐस मानना अनुचित भी नहीं है क्योंकि किन्तुकी आठवीं शताब्दिके पूर्व ६ की शताब्दिके प्रारम्भमें  
 या इसके कुछ काल पूर्व तत्पार्यवृत्त पर अर्वाचीनिकी दीक्षा मिली या पुत्री यी तथा अनेक दीक्षा टिप्पणियाँ  
 प्रकाशित हो चुकी थी।

यद्यपि धर्मसागर गद्दी बलिस्वर्के शिष्य स्वातिने तत्पार्यवृत्तकी रचना की, ऐसी शंका करते  
 हैं किन्तु यह उनका निर्दिष्ट मत नहीं है। केवल सम्भवना मात्र है। जैसा कि उनके इन शब्दोंसे प्रकट  
 है। तथा—तस्य बलिस्वर्कस्य शिष्यः स्वातिः तत्पार्याद्बो प्रत्याप्तुं तच्छ्रुत्वा एव समाप्यते। अतएव इते विशेष  
 महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

यहाँ तक हमने पूर्व मतोंकी समीक्षा की। मात्र एक प्रमुख मत शेष रहता है किन्तु पर यहाँ तीन  
 दृष्टिकोसे विचार करना है—माम परम्परा और समय।

माम—यह हम प्रारम्भमें ही उद्देश्योंके साथ लिख आये हैं कि आचार्य वीरसेन और आचार्य विद्यानाथ  
 तत्पार्यवृत्तके कर्ताका नाम आचार्य पद्मकिन्धु बोधित करते हैं और ये उल्लेख अपेक्षाकृत प्राचीन हैं। किन्तु इन  
 उल्लेखों को छोड़कर दिगम्बर परम्परामें अन्य जितने उल्लेख मिलते हैं उनमें पद्मकिन्धुका उल्लेख या वृष्य नाम  
 मान कर नानास्मया लिखा है देती है। इनमेंसे कुछ प्रमुख उल्लेखोंका निर्देश हम अन्य मतों शीघ्रके अन्तर्गत  
 कर आये हैं। इसी तरहका एक प्रमुख मत नन्दितपत्री पद्यावलीका है। नन्दितपत्री से पद्यावलिमें उपलब्ध  
 होती है—एक संस्कृत पद्यावली और दूसरी प्राकृत पद्यावली। इनमेंसे संस्कृत पद्यावलिमें आचार्य उमास्वातिको  
 तत्पार्यवृत्तका कर्ता कहा गया है।

पहले देखा पर ही कि कस्तूरधरके फठके नामके विषयमें इतना मतभेद होनेका कारण क्या है और उनका ठीक नाम क्या है ?

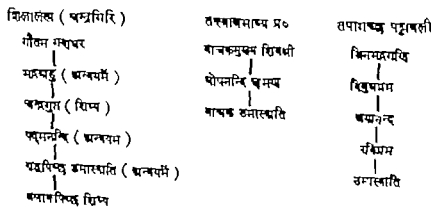
पहले हम धर्मशास्त्रोक्तमें पाये जानेवाले शिलालेख १ ५ और १ ८ के उद्धरण उपरिष्ठ कर आये हैं। वे शिलालेख क्रमशः शक ७ ११२ और ११५५ के अनुमानित किये गए हैं। शक से १ ३७ और १ ८५ क भी वे शिलालेख यहाँ उपलब्ध होते हैं जो जैन शिलालेख समूह भाग १ में क्रमशः ४७ और ४ नम्बर पर दर्ज हैं। ४७ नं के शिलालेखमें कहा गया है—

‘श्री गौतम गणधरके अन्वयमें निर्दिष्टके प्रमुख आचार्य पद्मनन्दी हुए किन्का वृषय नाम श्रेयङ्कुन्द था। फिर उनके अन्वयमें गृ पिप्पु अपर नामवाले उगमस्वप्ति आचार्य हुए। इनके शिष्य क्ल्वाकपिप्पु थे और क्ल्वाकपिप्पुके शिष्य गुणान्दि थे।

नं ४०के शिलालेखमें कहा गया है कि गौतम गणधरके चार पौत्रपौ मुक्तेश्वरी म्हाबाहु और उनके शिष्य चन्द्रगुप्त हुए। इसके बाद उनके अन्वयमें पद्मनन्दी हुए। इनका वृषय नाम श्रेयङ्कुन्द था। फिर इनके अन्वयमें पट्टपिप्पु उमास्वप्ति आचार्य हुए। इनके शिष्य क्ल्वाकपिप्पु थे। इस प्रकार महान् आचार्योंकी परम्परामें क्रमशः आचार्य सम्प्रदाय हुए।

नं १ ३ और १ ८ के शिलालेखोंमें, किन्का उल्लेख हम पहले कर आये हैं, लगभग यही बात कही गई है। अन्तर केवल इतना ही कि इन दोनों शिलालेखोंमें पट्टपिप्पु उमास्वप्तिसे तत्पार्यसूत्र का उल्लेख किया गया है और शिलालेख नं ४७ व ४ में उल्लेखके रूपमें उनका उल्लेख नहीं किया है।

पहले पर हम सर्व प्रथम दिगम्बर परम्पराके एक उल्लेखके आधारसे, तत्पार्यसूत्रके अन्तर्में कई उल्लेखवाली प्रशस्तिके आधारसे और धर्मशास्त्र गणधर उपागण्ड्य पद्मकलीके आधारसे परम्परा के देना चाहते हैं। यथा—



इस प्रकार वे तीन परम्परायें हमारे सामने हैं। इनमेंसे उपागण्ड्य पद्मकलीके विषयमें तो इतना ही कहना है कि धर्मशास्त्र गणधर नाममें उपागण्ड्यसूत्र प्रशस्तिके उल्लेख हुए जो धर्म उपागण्ड्यके आधारों की परम्पराके जाम उमास्वप्तिना उद्भव किया है या इतना अन्वय केवल मुद्रमथान आचार्यके रूपमें उमास्वप्ति। इनके

वाक्य का लक्ष्य वाक्य स्वीकार करना मात्र है। बिनामय गणितके नियमों में भी यही बात है। ये दोनों वाक्यवाच्य परम्पराके आचार्य नहीं हैं और न ऐसा समझाकर गलति ही मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने वाक्यवाच्य परम्पराका स्वरूप निर्देश करते हुए बीच में इनका युगप्रधान आचार्यके रूपमें उल्लेख मात्र किया है इसलिए इसे और इसका अर्थ पाठ जानेवाली भाँड़व मतभेदका लिए हुए अन्य प्रशस्तियोंको छोड़ कर इनका ध्यान मुख्य परम्पराके रखती हैं— एक भ्रमवाक्यसंग्रहमें पाये जाने शिवालेखोंकी परम्परा और दूसरी वाक्यार्थमात्रके अन्तमें पाए जानेवाली प्रशस्तिकी परम्परा।

देखनेसे विदित होता है कि इन दोनों उल्लेखोंमें शनोंकी न केवल गुणपरम्परा मिश्र-मिश्र है अपितु दोनोंके उपपद या नामान्तर भी मिश्र भिन्न हैं। भ्रमवाक्यसंग्रहके शिवालेखोंकी परम्परा जब कि वाक्यार्थवाच्यके प्रदक्षिण उमास्थाति घोषित करती है एसी अक्षर्याम तथाधमात्रकी प्रशस्ति उन्हें वाचक उमास्थाति इस नामसे सम्बोधित करती है, इसलिए इन आचार्यों द्वारा तो यही विचार बढ होता है कि प्रदक्षिण उमास्थातिसे वाचक उमास्थाति मिश्र आचार्य होने चाहिए।

इस प्रकार इतने विवेचनसे इन दोनों आचार्यके अलग अलग विद्वद् हो जानपर यहाँ यह देखना है कि प्रदक्षिण उमास्थाति इस नामसे क्यों तक ठप्य है क्योंकि इस नामके नियमों में यह उल्लेख उल्लेख मिलते हैं। श्री इनका केवल प्रदक्षिण कहा गया है और श्री प्रदक्षिण उपपदुक्त उमास्थाती या उमास्थाति कहा गया है। श्री प्रदक्षिण उमास्थातिका दूसरा नाम अक्षर्याम गया है या श्री केवल उमास्थाति नाम आया है। यद्यपि इनमें से एक नाम अलग अलग प्रतीत होता है। जैसे उमास्थातिसे उमास्थामी नाम मिश्र है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि पहले इनमेंसे श्री एक नाम रहा होगा और बादमें 'म' के स्थानमें 'त' या 'ठ' के स्थानमें 'म' लिखा अन्तमें ये उमा नाम चल पड़े होंगे। इस प्रकार उमास्थाति या उमास्थामी नामका श्री प्रदक्षिण इस प्रकार नामके साथ उल्लेख मिलनेसे और कहा इनमेंसे किसी एकका उल्लेख मिलनेसे इस सम्बन्धमें भी यह कहा जा सकता है कि इस तरह पूरे या अपूर्ण नामके लिखनेकी भी परम्परा रही है और हा सकता है कि उची परम्पराके अनुसार विविध प्रकारसे इन नामोंका उल्लेख किया जाने लगा होगा।

यहाँ हम इन उल्लेखोंके अन्तर्गत उल्लेख करते हैं। फिर भी देखना यह है कि एक आचार्य नन्दिलेख तथा कुन्दकुन्दकी परम्परामें हुए और दूसरे अथवा परम्परामें हुए और इनके समर्थन काही अन्तर है फिर भी दोनों का एक ही शास्त्रके रचनासे सम्बन्ध और एक ही नाम यह स्थिति उत्पन्न हुई है। यह करना तो कन्या नहीं कि श्लेषात्मक परम्परामें हुए वाचक उमास्थाति इस नामका उल्लेख प्रदक्षिणके अपना उमास्थाति यह नाम भी रखा होगा, क्योंकि पद्यालिका व दूसरे प्रकाशक देखनेसे विदित होता है कि प्रदक्षिण आचार्य कुन्दकुन्दके साथ हुए है। जब कि वाचक उमास्थाति का अर्थ उल्लेख इसके बहुत बाद आया है। अर्थ ही यह करना भी नहीं

१ विवेक कल्याणामुद्रणम अक्षर्यामके अन्तर्गत एक श्लोक आया है जिसमें कुन्दकुन्द आचार्य और उमास्थाति दोनोंको वाचक कहा गया है और अक्षर्याम के अन्तिम भागमें देखनेसे यह भी विदित होता है कि विगम्बर परम्परामें भी 'वाचक उपपद' उल्लेखित होता था। किन्तु विवेक कल्याणामुद्रणका प्रमाण अक्षर्यामके बहुत अर्धवीन है और केवल इस अक्षर्यामसे वाक्यार्थमात्रके वाचक उमास्थातिकी और अक्षर्यामके शिवालेखोंके प्रदक्षिण उमास्थातिकी एक ही भाषा का सकता है। दोनों में अक्षर्यामकी ही वाक्यार्थमात्रकी अक्षर्यामके प्रतिष्ठामें उद्धृत प. अक्षर्यामकी ही उत्पत्ताका पत्र।



फलय है कि पदविष्णु उमास्वाति इत नामको देखकर वाचक उमास्वातिने अपना 'उमास्वाति यह नाम रखा होगा क्योंकि तत्पार्थमात्मक अन्तमें जो प्रशस्ति उपलब्ध होती है उतमें वाचक उमास्वातिकर उमास्वाति' नाम क्यों रखा गया इच्छा करके दिया है। उतमें कृतज्ञाप्य गया है कि इनके पिताका नाम 'श्वाति वा श्रीर सिद्धसेन गण्डिने इस प्रशस्तिको स्थापना करते हुए यह भी लिखा है कि इनकी माताका नाम उमा' था<sup>१</sup>। इसलिए इनका उमास्वाति यह नाम पड़ा है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि यह प्रशस्ति श्वर में गढ़ी गई होगी क्योंकि तत्पार्थमात्मक दीक्षाकर सिद्धसेन गण्डिने इसका उल्लेख ही नहीं किया थापचान भी किया है और देखा करके उन्होंने उत तत्पार्थमात्मक अंग प्रसिद्ध किया है। इस विषयमें हम पं मुञ्जालालजीके इस मतमें सहमत हैं कि यह स्वयं तत्पार्थमात्मक वाचक उमास्वातिकी ही वृत्ति है।

प्रसंगसे यहाँ पर हम एक बात यह कहना चाहते हैं कि अधिकतर विद्वान् यहाँ किसी प्रशस्ति पद्यकी या शिलालेख आदिसे अपना मत नहीं मिलता यहाँ उत सर्वथा अप्रामाणिक या बाली धारित करते हैं। किन्तु उनमें यह प्रवृत्ति बिच रूपा नहीं करी जा सकती। कारण कि प्राचीन कालमें इतिहासके संकलनके साधन प्रायः सीमित थे। अधिकतर इतिहासके संकलन करनेवालाका कबकोके कार अवलम्बित रचना पद्य या और किसे प्रामाणिक आचारसे जो बात होया था वह उसका अंकन करता था। इसलिए वह जो सम्मत् है कि किसी शिलालेख आदिमें कोई नाम समय या घटना थीं कर्ममें निरूप्य हो गईं हो और किसी शिलालेख आदिमें वह कुछ अक्षरमें निरूप्य हुईं हैं। पर साम्प्रदायिक आमिनिवेशका किसे गये उल्लेखोंको छोड़कर निरूप्य करनेवालेका उद्देश्य क्या बूझ कर उते अक्षरमें निरूप्य करनेका नहीं रहता या इतना सुनिश्चित है। प्रसिद्ध बरहा दीक्षाके इतिहास आचार्य शीरसेनने इस अक्षरमें एक बहुत अक्षरी निवारणविधि उपस्थित की है। उन्हें मगवान् महावीरकी आयु ७२ वर्ष की थी एक यह मत प्राप्त हुआ और मगवान् महावीरकी आयु ७१ वर्ष १ माह ५ दिनकी थी एक यह मत प्राप्त हुआ इसलिए उनके खमने प्रश्न था कि इनमेंसे किसे प्रमाय्य माना जाय। इतने प्रश्नके उत्तररूपमें वे यह सुझाव लिखते हैं वह न केवल हृदयमहारी है अपितु अनुकरणीय भी है। वे करते हैं कि 'इन दोनोंमेंसे कौन ठीक है और कौन ठीक नहीं है इस विषयमें एताचार्यका शिष्य मैं शीरसेन अपना मुख नहीं खोलता, क्योंकि इन दोनोंमेंसे किसी एकको मानने पर कोई खयाल नहीं उत्पन्न होता। किन्तु इन दोनोंमेंसे कोई एक मत ठीक मान्य चाहिए जो प्राप्त कर उतका कथन करना चाहिए"।

वे यहाँ यह तो करते हैं कि उचित आचारों पर जो ठीक प्रतीत हो उस प्रसुक्ता ही व्यव पर एकको सर्वथा बाली और दूसरेको सर्वथा सत्य धारित करनेका प्रयत्न करना ठीक नहीं है।

इत प्रासंगिक कथनसे स्पष्ट है कि तत्पार्थमात्मक विषयमें विद्वान् परम्परामें जो शिलालेख व उद्धरण आदि मिलते हैं वे भी आधार हैं और श्लेषात्मक परम्परामें जो उल्लेख मिलते हैं वे भी आधार हैं। इसलिए किसी एक को प्रामाणिक और अन्को अप्रामाणिक घोषित करना हमारा कार्य नहीं है किन्तु अन्य प्रामाणिक प्रमाणों में उनको स्थिति स्पष्ट करना इतना ही हमारा कार्य है। और इस कार्यका निर्वाह करते हुए प्रत्याकरणमें विविध स्थलों पर स्पष्ट किसे गये उतका आधारस हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि श्लेषात्मक परम्परामें तत्पार्थमात्मक

१ कौमीयविद्या स्थापितकथने- । २ अक्षर्यासुतेमैति गोत्रं च नाम्ना वनेति मनुस्मृत्याम् ।

३ देवीयं मुञ्जालालजीके तत्पार्थमात्मक उमास्वाति पृ ४ । ४ अक्षरबद्धा सुस्तक १ पृ ८१ ।

शास्त्रके रचयिताका नाम तो वाचक उमास्वाति ही है किन्तु किन्होंने प्रारम्भमें तत्त्वार्थसूत्रकी रचना की और बाद आचार्य कुन्दकुन्दकी परम्परामें हुए हैं उनका नाम यद्विष्णु उमास्वाति, यद्विष्णु उमास्वामी, उमास्वाति या उमास्वामी यह कुछ भी न होकर मात्र यद्विष्णुआचार्य इतना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता यद्विष्णु आचार्य हैं इस तथ्यको व्यक्त करनेवाला उल्लेख ६ वीं श्लोकमें है। तथा लगभग इसी कालमें श्वेतम्बर परम्परामें भी यह मान्यता प्रचलित हुई मान पड़ती है जैसा कि सिद्धसेन गणिके शंकरसद कुसु उल्लेखोंमें प्रतीत होता है, कि तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता वाचक उमास्वाति ही तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता हैं। अतः माघमें पढ़या है कि इन दोनों मान्यत्वआने मिलकर एक नए मान्यत्वको जन्म दिया और उपरकाणमें यद्विष्णु और उमास्वाति ये स्वतन्त्र दो आचार्योंके दो नाम मिलकर एक नाम बन और आगे चलकर यद्विष्णु उमास्वाति इस नामसे तत्त्वार्थसूत्रके रचयिताका उल्लेख किया जाने लगा। हमें भ्रमवशेषगोत्रके शिकारहोसकें या अन्यत्र जो एक आचार्यके लिए इन नामोंका या यद्विष्णुको उपरान्त मानकर उमास्वाति नामका धरहरा होया हुआ दिखाई देया है उसमें शरस सही है।

तत्त्वार्थसूत्रके रचयिताका नाम यद्विष्णु आचार्य होना चाहिए और वाचक उमास्वाति इनसे भिन्न हैं इस मतको संक्षेपमें इन तर्कों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है—

- १ तत्त्वार्थसूत्रकी रचनाके लिय आचार्य यद्विष्णुका नाम बुझना आवश्यक नहीं हो सकता।
- २ आचार्य श्वेतसेन और विद्यानन्दने तत्त्वार्थसूत्रके रचयिताका नाम यद्विष्णुआचार्य ही व्यक्त किया है और ये उल्लेख अन्य प्रमाणोंसे प्राचीन हैं।
- ३ श्वेत म्बर परम्परामें तत्त्वार्थसूत्रके रचयिता जो आचार्य हुए हैं उनका नाम वाचक उमास्वाति है यद्विष्णु उमास्वाति नहीं। अतः यद्विष्णु उमास्वाति यह नाम यद्विष्णु और उमास्वाति इन दोनों नामोंके मिलावट बना है ऐसा प्रतीत होता है।
- ४ यद्विष्णुआचार्य कुन्दकुन्द आचार्यके आश्रयमें हुए हैं और वाचक उमास्वातिकी परम्परा दूसरी है इसलिए ये स्वतन्त्र दो आचार्य होने चाहिए, एक नहीं।
- ५ यद्विष्णुआचार्य और वाचक उमास्वाति इन दोनोंके मिलावट कालमें भी बड़ा भ्रम है, इसलिए भी ये एक नहीं हो सकते।

परम्परामें—तत्त्वार्थसूत्रके कर्ता किन्तु परम्परामें ये इस विषयमें नामनिर्णयक उक्त निर्ययके आभा स ही बहुत कुछ सिद्ध समाप्त हो गया है, नकीकि किन तथ्योंके प्रकाशमें उनका आशय यद्विष्णु यह नाम निश्चित होया है उनकी आभारसे ये एक मात्र दिगम्बर परम्परामें उल्लेखित हैं। आचार्य कुन्दकुन्दके ये वाचात् शिष्य हो या न भी नहीं पर ये हुए हैं उनकी बंधपरम्परामें यह बात पूर्वमें ही गई बंधपरम्परा और अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है। आचार्य कुन्दकुन्दके पञ्चासित्थयामें यह गाथा आयी है—

एवं सप्तमस्यस्यै उपास्यन्तु वाचकस्यै ।

गुणपरब्रह्मस्यै वा वाचकं भवति सत्त्वगुणैः ॥

अब इस गाथाके प्रकाशमें तत्त्वार्थसूत्रके इन श्लोकोंके देखिये—

सद् ब्रह्मब्रह्मस्य ॥ ५ ॥ २३ ॥ उपास्यन्तु वाचकस्यै वाच ॥ ५, ३ ॥ गुणपरब्रह्मद् ब्रह्मस्यै ३८०

इसके सिद्धय तत्त्वार्थसूत्रम और भी बहुतसे एस बचन हैं किन्तु आशय कुन्दकुन्दके बचनोंके साथ

शारिङ्क और वस्तुगत साम्य दिखाई देता है। तथा तत्पार्थक्यमें 'नान्य' शक्ति शब्दोंका व्यवहार हुआ है। इसके उसके कर्ता विगमन परम्परा के ही परी निद होला है।

समय—नामके समान आचार्य पद्मपुष्पके समयका प्रश्न भी बहुत अधिक विचारशील है। उपारखत बिन उल्लेखका इनके समयपर धीमा प्रकाश पड़ता है एव व उल्लेख हमारे सामने हैं। प्रथम नन्दिसंघकी यज्ञकलीका उल्लेख और वृष्ण विद्वानपापकम उदय इनके समयकी सूचना देनेवाला उल्लेख।

१ नन्दिसंघकी यह कली नन्दिसंघके सम्प्रामोकेस प्रारम्भ होती है और यह इतिव्यत एंटीकैरीके आचार्यके नैतिकशा-उपनसकर क्रिया चार व ७८ में बिन कसमें उदय त हुन है उसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

- १ म्भद्रबाहु द्वितीय (४) २ गुणियुग (२६) ३ माघनन्दि (३४) ४ बिनचन्द्र (४) ५ कुन्दकुन्दनाथ (४) ६ उमास्वामी (१ १) ७ शोहाचार्य (१६२) ८ पश कीर्ति (१५२) ९ यशोवन्दी (२११) १ देववन्दी (२५८) ११ बभनन्दी (३ ८ १२ गुणवन्दी (३५८) १३ यमनन्दी (३५४) १४ कुमाजन्दी (३८४) १५ साकवन्द (३ ३) १६ प्रमानन्द (६५९) १७ नैमिषन्द्र (६७) १८ मानुनन्दी (४८७) १९ सिहन्वी (५०८) २ भी म्भुनन्दी ५ ५) २१ नीजन्दी (५११) २२ उबनन्दी (५११) २३ नाशिकवन्दी (५८५) २४ मयवन्द (६ १) २५ शारिङ्क (६ ७) २६ मेरुर्षि (६४२)।

गुणियुग यह अर्द्धलिखित पुष्य नाम है। इन्होंने अन्य संघके साथ बिन नन्दिसंघकी स्थापना की थी उसके पहले पद्मपर आचार्य माघनन्दि य। इस दिशाके उमास्वामी (पद्मपिण्ड) नन्दिसंघके पद्मपर बैठनेवाले शोध आचार्य ठहरे हैं। पश्चि पहावलीमें के कर्मांक ६ पर सूचित किये गये हैं पर म्भद्रबाहु त्रितीय और अर्द्धलिखित बाह्यकर ही नन्दिसंघके आचार्योंकी गणना कर्त्तनी चाहिए। इतिव्यत वहाँ हमने उमास्वामी (पद्म पिण्ड) का कर्मांक सूचित किया है इस पहावलीके अनुसार ये कीर नि० सं ५७१ में हुए थे।

२ विद्वानसंघके यह श्लोक उदय मिलता है—

'सर्वसंघके चैव संस्था च विसृष्टी ।  
उमास्वामिमुनिजातः कुन्दकुन्दस्यचैव च ॥

इसका भाव है कि कीर नि सं ७७ में उमास्वामी मुनि हुए तथा उभी समय कुन्दकुन्द आचार्य हुए। यह हम अन्य प्रमाणोंको देखें—

१ इन्द्रविन्दके मुलावद्ययमें पहले ६८३ वर्षकी भुवधर आचार्योंको परम्परा हो है। और इसके बाद अग पृक्ति एकदेशवती बिनवधर श्रीवध और अर्द्धलिखित नामास्तेषा कर नन्दिसंघ आदि संघोंकी स्थापना करनेके अर्द्धलिखित नाम आता है। और इसके बाद माघनन्दि परवन पुष्पन्त और भूलावलिष्य उल्लेख करनेके बाद आचार्य परम्परा कुन्दकुन्दका नाम आता है। यह व निरिक्त है कि आचार्य पद्मपिण्ड आचार्य कुन्दकुन्दके बाद हुए हैं। इतिव्यत यह इस दिशाके विचार किया जाय और भुवधर आचार्योंके ६८३ वर्षमें आगेके आचार्यों

१ देवा तत्पार्थक्य य ३ वृ ९। २ पावकपुरावाके कर्ता रामचन्द्रने अपनी परम्परा की है। उनमें भी १ आचार्यों तक बड़ी कन वरिष्ठार किया गया है। और इनो भी वृष्ण नामका बाह्यकर आचार्योंके नाममें कथनाता देयी जाती है। ये सबनेको नन्दिसंघका ही घोषित करते हैं। देखो नैतिकशास्त्र पाठक भाग १ विरच ४ पृष्ठ ५११।

का संगमन १० वर्ष मान कर बोड़ा बाय दो बीर नि ० से ७८३ वर्षके आसपास आचार्य पदपिण्ड हुए यह कहा जा सकता है ।

२ भयवैश्यालके शिखालेख नं १५ में मी<sup>३</sup> भुठपर आचार्योंकी परम्पराका निर्देश कर और उसके बाद कुम्भ, विनीत हलभर द्युनेत्र, अचल मेरुपीर सर्वश, सर्वगुप्त, महिपर, धनपाल महावीर और धीर इन नामोंका उल्लेख कर कुन्दकुन्द और वायार्यशुभके कृता पदपिण्ड उमास्वयिन्ना नाम आया है । किन्तु इनमें एक दो भुठपर आचार्योंकी परम्पराका अल निर्देश नहीं किया है । दूसरे भुठपर व दूसरे आचार्योंके क्रमिक नामनिर्देशका भी उल्लेख नहीं रखा है । अतः इस आचार्य आचार्य पदपिण्डके समयके सम्बन्धमें कुछ भी अनुमान नही किया जा सकता ।

३ भुठपर आचार्योंकी परम्पराका निर्देश पत्रिका<sup>३</sup> आदिपुराण<sup>४</sup> नन्दिसंपत्ती पञ्चतन्त्री<sup>५</sup> और विशालप्रकृति<sup>६</sup> आदिमें भी किया है । किन्तु य ६८३ वर्षकी परम्पराका निर्देश करने तक ही सीमित है । अतः इनके आचार्यके कितने एक निष्कर्ष पर पहुँचना कठिन है । इन आचार्योंके मत पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि आचार्य पदपिण्डके समयके सम्बन्धमें इन आचार्योंका क्या अभिमत है ? और हम इस सम्बन्धमें इनके अभिमतका ज्ञान किना केवल इन्द्रनन्दि भुवावतारके आचार्य भुवचारियोंकी ६८३ वर्षकी परम्पराके बाद आचार्य पदपिण्डकी अवस्थितिका इन आचार्योंके मतसे माननेके लिये प्रयत्न नहीं है ।

इस प्रकार पूर्वोक्त विवेचनसे हमारे सामने मुख्य तीन मत आते हैं जिनसे हमें आचार्य पदपिण्डके समयको सूचना मिलती है । प्रथम नन्दिसंपत्ती पञ्चतन्त्री अनुसार उनका समय विक्रम ( ५०१ - ५० ) ११ ठहरता है । दूसरे विशुवज्जनशोधमें उद्धृत श्लोकके अनुसार यह विक्रम ( ७० - ५० ) १ ठरता है और तीसरे इन्द्रनन्दि भुवावतारके अनुसार यह वि ० ( ७८३ - ५० ) १११ अनुमानित किया जा सकता है ।

भयवैश्यालके शिखालेखोंमें आचार्य पदपिण्डके शिष्यका नाम आचार्य महाशक्तिपिण्ड<sup>७</sup> आया है और नन्दिसंपत्ती पञ्चतन्त्रीमें बलाशक्तिपिण्डके स्थानमें सोहाचार्यका नाम आया है । किन्तु इत्यादि जो यह समझना हा सकता है कि पञ्चतन्त्रीमें उन आचार्योंके नामोंका उल्लेख है जो उनके बाद यह पर आखीन हुए और शिखालेखोंमें इत्यादि विचार न कर उनका नामांशक किया है जो उनके प्रमुख शिष्य थे । और इस आचार्य यहाँ तककी पञ्चतन्त्रीका ठीक मी मान लिया जाय तब मी उनके समयके सम्बन्धमें पञ्चतन्त्रीके कालका दूसरे उल्लेखोंमें निर्दिष्ट कालके साथ जा इतना अन्तर दिखाए देता है उसका इस जैसे किना बाय यह विचारणीय विषय हा आया है ।

यहाँ हम अन्य पौराण्य व पारत्राय विद्वानोंके मतोंका विचार करहाय नहीं करेंगे क्योंकि उन विद्वानोंने अधिकतर तत्प्रायसुत्र और उत्तरायणाय इनको एककर्तृक मान कर अपने अपने मतका निर्देश किया है । किन्तु सुविचारित मतके रूपमें हा ए एन उना देके मतको अक्षर ही उल्लिखित करना चाहेंगे । पर्यपि उहायारके बाद उन्होंने अपना यह मत आचार्य कुन्दकुन्दके समयके सम्बन्धमें निर्दिष्ट किया है किन्तु नन्दिसंपत्ती पञ्चतन्त्री व दूसरे प्रमायोंके अनुसार आचार्य पदपिण्ड आचार्य कुन्दकुन्दके शिष्य होनेके कारण उससे इनके समयके ऊपर मी

१ पृ. ० म. शिखालेख प्रथममाहासे प्रकाशित ६६ शिखालेखसंग्रह भाग १ पृ. १६२ आदि ।  
 २ पृ. ० पत्रिका पृ. १५ १६ । ३ पृ. ० आदिपुराण पत्र २ पृ. १३० स. । ४ पृ. ० ६६ म. शिखालेखसंग्रह  
 किरण ५ पृ. ०१ । ५ पृ. ० प्रिण्डोकप्रकृत महाविचार ३ भाग १०३ १०३१ । ६ पृ. ० मा म मा  
 से प्रकाशित ६६ शिखालेख संग्रह भाग १ शिखालेख नं ७, ७२ पत्र ५ आदि ।

सनातनीय प्रकृत्य पदार्थ है। ये सब मन्तव्यों और विद्वानोंके मर्दान्क उद्घोषोंके बाद बिल निष्कर्ष पर पहुँचे हैं यह यह है—

इतनी लम्बी चर्चा करनेके बाद हम इस तथ्य पर पहुँचते हैं कि परम्पराके अनुसार इनका (आचार्य कुन्दकुन्दके) अस्तित्व किता इतनी पूर्व प्रथम शताब्दिके मध्यसे लेकर ईसवी प्रथम शताब्दिके मध्यके मीटर आता है। पद्मपत्रागम इसी दिव्य शताब्दिके मध्यकाके पूर्व खिला था पुत्र या इसलिए इस इतिहासे उनका अस्तित्व किता इतनी दिव्य शताब्दिके मध्यके आसपास आता है। मर्दान्कके ताम्रपत्रके अनुसार आचार्य कुन्दकुन्दकी अस्तित्व सीमा इतनी मूर्खीय शताब्दिके मध्यके पूर्व मानी जा सकती है। इसके साथ ही साथ ये शायद पद्मपत्रके सम्बन्ध समझनीय तथा कुलक लक्षक थ। इससे यह प्रकृत्य इतना है कि आचार्य कुन्दकुन्द ऊपर उल्टा गढ़ प्रथम या शताब्दिके मध्य में। मैं इन सबके विचारकर इस तथ्य पर पहुँचा हूँ कि कुन्दकुन्द इसी प्रथम शताब्दिके मध्य में है।<sup>१</sup>

यह तथ्य है कि आचार्य कुन्दकुन्दके समयके सम्बन्धमें या ए एन उपाध्येने सूचित किया है। नन्द सभ्यता पद्मपत्रकी अस्तित्व समझनी सीमा लगभग नहीं है, इसलिए इन सब आचार्योंके सम्बन्धमें सबके यह कहा जा सकता है कि आचार्य पद्मपत्रके समय इसी प्रथम शताब्दिके मध्य आचार्य कुन्दकुन्दके बाद हाना चाहिए, क्योंकि पद्मपत्रकी या दूसरे शिलालेखोंमें आचार्य कुन्दकुन्दके बाद ही इनका नाम आता है और सम्भव है इन दोनोंके मध्य गुप्त शिल्पका सम्बन्ध रहा है। नन्दसभ्यता पद्मपत्रकी अनुसार ये आचार्य कुन्दकुन्दके उत्तराधिकारी हैं यह तो स्पष्ट ही है।

### ५ तत्पार्यसूत्रके निर्माणका हेतु

लोकमें यह क्या प्रसिद्ध है कि 'किन्हीं एक मन्त्रोंमें भोक्तृमार्गोन्मोही शास्त्रके निर्मात्राका विचार कर तदनुसार इतनेकाका अस्तित्व मीमांसका यह सब कर हीसाल पर शिक्त दिया। इसके बाद वेदकारके निर्मित उनके बाद चले गये पर जबकि निर्मित पद्मपत्रके आचार्य नहीं आये और उन्होंने सीमास पर लिखे हुए पत्रको अपूर्ण देखकर उनके प्रारम्भमें 'सम्यक्' पद जोड़ दिया। जब वह मन्त्र वाहरत लौट और उनके प्रारम्भमें 'सम्यक्' पद जुड़ा हुआ देखा तो यह आश्चर्य करने लगा। उसने पहले सम्यक्के इसका कारण पूछा और ठीक करके जानकर यह सोचता हुआ पद्मपत्रके आचार्यके पास पहुँचा और उन पर अपने अग्निमानके स्पष्ट कर उनके शास्त्रके रचनेकी प्रार्थना करने लगा। तदनुसार आचार्य महाशयने तत्पार्यसूत्रकी रचना की।<sup>२</sup>

यहाँ देखा यह है कि यह क्या लोकमें प्रचलित किता हुई? क्या इतनी प्रामाणिकता का कोई विश्वस्त आचार है या यह क्षेत्र मनुकृत्यके प्रेरित अर्थात्सुत्रको उद्घोषनामत्र है? आगे ही तत्पत्रके संयोगीय विचार किया जाय है—

१ सुलतामरः। सुविने तत्पार्यसूत्रिके प्रारम्भमें लिखा है कि किन्हीं समय आचार्य उमास्वामी (पद्मपत्रके) आश्रममें बैठे हुए थे। उस समय हैयाक नामक मन्त्रने यहाँ आकर उनसे प्रश्न किया—मयन्तु। आत्माके लिए

१ मन्त्रपत्रकारकी प्रस्तावना पृ १२के आचारसे। २ इस कथाका आधार १३ शताब्दिके मध्य काकाल में सुवि रचित तत्पार्यसूत्रकी कन्नड़ी टीका शाय हीली है। इसमें आश्रमका नाम सिद्धय दिया है। वेदो पं वेदशास्त्रकी तत्पार्यसूत्रकी प्रस्तावना पृ ११।

विकसरी क्या है ? मम्मके पेया प्रश्न करनेपर आचार्यवर्षने मगलपूर्वक उत्तर दिया— मोक्ष । यह मुनिकर हैकफने पुन पूछा—उत्कन्न स्वरूप क्या है और उसकी प्राप्तिश्च उपाय क्या है ? उत्तरस्वरूप आचार्यवर्षने मोक्षक स्वरूप कतला कर कहा कि यद्यपि मोक्षक स्वरूप इस प्रकार है तथापि प्रयाहीबन इसे अन्यथा प्रकमरते मानते हैं । इतना ही नहीं किन्तु इसके मार्गके विषयमें भी वे विवाद करते हैं । कोर्द चारित्रशुद्धि ज्ञानको मोक्ष मार्ग मानते हैं, कोर्द अद्वैतानुभवको मोक्षमार्ग मानते हैं और कोर्द ज्ञाननिरपेक्ष चारित्रको मोक्षमार्ग मानते हैं । किन्तु जिस प्रकार औपनिषे केवल ज्ञान, दर्शन या प्रयोगसे योगकी निश्चि नहीं हो सकती उसी प्रकार केवल दर्शन, केवल ज्ञान या केवल चारित्रसे मोक्षकी प्राप्ति नहीं हो सकती । मम्मने पूछा थे फिर किस प्रकार उसकी प्राप्तिहोती है ? इसीके उत्तर स्वरूप आचार्यवर्षने सम्बन्धज्ञानचारित्राधि मोक्षमार्गः यह सूत्र रचा है और परिखाम स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी रचना हुई है ।

२ सर्वार्थसिद्धि और तत्त्वार्थवार्तिकम भी यही उत्पत्तिश्च ही है । भुतव्यगर खुरिने यह उत्पत्तिश्च उपचार्यसिद्धिसे ही ली है । अन्तर केवल इतना है कि जिस मम्मने आकर आचार्य पदविच्छेदसे प्रश्न किया है उसे सर्वार्थसिद्धिमें 'कश्चिद् मम्म' कहा गया है और भुतव्यगर खुरि उसके नामका उल्लेख करते हैं । कह नहीं सकते उन्होंने ठव मम्मका यह नाम किन भोतोंसे प्राप्त किया ।

वशापासूत्रकी इन प्रसिद्ध टीकाओंके उल्लेखोंसे लोककथाके इस भागका ये समर्पन होख है कि तत्त्वार्थसूत्र की रचना किसी मम्मके निमित्तसे हुई । किन्तु यह खत नहीं होख कि पहले उस मम्मने 'वशापज्ञानचारित्राधि' सूत्र रचा और बादमें उसमें सुभाकर मम्मकी प्रार्थना पर सूत्रकमने वशापसूत्रकी रचना की । इच्छिष्य इन उल्लेखोंसे कथाके सवाशक समर्पन न होने पर भी किसी संशयक यह शाधार है यह माननेमें कोर्द आपत्ति नहीं दिखाई देती ।

## ४ आचार्य पूज्यपाद

### १ महत्ता

भारतीय परम्परामें जो लक्ष्यप्रतिष्ठ उत्पन्नशा शास्त्रकार हुए हैं उनमें आचार्य पूज्यपादका नाम प्रमुकरूपसे लिया गया है । इन्हें प्रतिष्ठा और विद्वत्ता दोनोंका समान रूपसे बरदान प्राप्त था । जैन परम्परामें आचार्य समन्तमूर्ध और समन्तिके कर्ता आचार्य सिद्धकनके बाद आदित्यिक बगनूमें यदि किसीको उत्पन्नस्थान पर विद्वत्ताया था सकता है तो वे आचार्य पूज्यपाद ही हा सकते हैं । इन्होंने अपने पीछे का साहित्य छोड़ा है उत्कन्न प्रभाव दिगम्बर और शकेश्वर दोनों परम्परामें समानरूपसे दिखाई देखा है । यही कारण है कि उत्तरकालकी प्रायः अधिकांश आदित्यकनके व इतिहास मन्सीने इनकी महत्ता विद्वत्ता और पुरुकता स्वीकार करते हुए इनके परखोंमें अद्वैतके सुमन अर्पित किये हैं । आदिपुगणके कर्ता आचार्य बिनकन इन्हें कविमोंमें तीसकर मानते हुए इनकी स्तुति करते हैं—

कर्तृना तीर्थहरोः किन्तरी तत्र कथयते ।

विदुषा वादमहत्त्वमि तीर्थ वर्य कथीमवम् ॥ १ ५९ ॥

जो कविमोंमें तीर्थहरोके समान थे और बिनका कथनरूपी तीर्थ सिद्धान्तोंके पथनमपथ घानेवाला है इन देश आपान् देवनन्दि आपायकी स्तुति करनेमें मला कीन समर्थ है ।

यह तो इन आगे चलकर कल्पानकाल है कि जिस प्रकार इन्होंने अपनी अनुनन इतिजें हाग मोक्षमार्ग का प्रकाश किया है उसी प्रकार इन्होंने शम्भुशास्त्र पर भी विद्वत्की अपनी रचनाएँ भेंट की हैं । कदा ता यत्

एक थाता है कि शरीरशास्त्र जैसे लोकोपयोगी विषयको भी इन्होंने अपनी प्रतिभाका विषय बनाया था। तभी यह शान्तार्थिके कला आचार्य शुभचन्द्र इनके उक्त गुणांश स्थापना करते हुए करते हैं—

अपानुर्बन्धि यद्वाचः कायवाक्चित्तसम्बन्धम् ।  
कस्यद्वमङ्गिनी साज्यं देवमन्त्री नमस्तये ॥ १, १५ ॥

किन्तु शिवाचार्यविरचित ग्रन्थियोंके शरीर बचन और चित्तके सभी प्रकारके मन्त्रको पूर करनेमें समर्थ है उन देवमन्त्री आचार्यको मैं प्रशाम करता हूँ।

आचार्य गुरुनन्दिने इनके व्याकरण सूर्योक्त आश्रय लेकर अनेक प्रक्रियाकी रचना की है। वे इसका महत्साधारण करते हुए करते हैं—

नमः श्रीगुरुपादस्य आचार्यं बहुपद्मम् ।  
यदेपात्र उद्वन्धय यथात्पारित न तज्यवचित् ॥

इन्होंने लक्षणशास्त्रकी रचना की मैं उन आचार्य पूज्यपादको प्रशाम करता हूँ। उनके इस लक्षणशास्त्र को महत्साधारण इतिहास यह है कि जो इसमें है वही अन्यत्र है और जो इसमें नहीं है वह अन्यत्र भी नहीं है।

उनकी धार उनके साहित्यकी यह लुप्तियरन्ध्र नहीं समाप्त नहीं होती। अन्धकार, बादिपत्र, भद्राक्ष शुभचन्द्र और पद्मप्रम आदि अनेक ऐसे आचार्य हुए हैं जो इस गुण शायकी परम्पराको सीमित रखनेके लिए अपने पूर्ववर्ती आचार्यके पक्षियों पर चले हैं। अग्निप्राय यह है कि आचार्य पूज्यपाद साहित्य जगत्में कभी न अगत हान गलत प्रकाशमान सूर्य भ चित्तके आलोचने इतनी शिष्टाये सदा आलोकित होती रहेगी।

ये हैं वे लक्षणशास्त्रकी प्रसृत वृत्ति सर्वाधिकारिता रक्षित आचार्य पूज्यपाद किन्तु सर्वोपरि परिचय हमें यहाँ प्राप्त करना है। उनमें जो उनका पूरा नाम दिया है, वे किंतु अपने अतिरिक्त भ उनका भी एक परिचय क्या है उनकी रचनाये कोन कोन हैं और उनका वास्तव्य अथवा न गुण-शिल्प परन्तु क्या है आदि विषय निम्नलिखित हैं किन्तु वही हम क्रमशः परिचय प्राप्त करनेका उपक्रम करेंगे। सर्व प्रथम नामको ही लीजिए—

नाम

शिवाचार्यों तथा दूसरे प्रमाणांश विदित होता है कि इनका गुरुके हाथ दिया हुआ शीषानाम देवमन्दि था, बुद्धिकी प्रगल्भाक कारण इन्हें किन्तुबुद्धि करते भ और देवके हाथ इनके करण सुगत पूर गये भ इतलिये ये पूज्यपाद इस नामसे भी साकमें प्रख्यात भ। इस अर्थको स्पष्ट करनेके लिये उद्धृत ये हैं—

गाम्यजातिगुण्ठा किञ्च देवमन्त्री बुद्ध्या पुनर्बिपुलका स किन्तुबुद्धिः ।  
अणुवचन इति च्युतं पुण्यं प्रचलक सा पूजितः परमुग बनदेशागिः ॥

अणुवचनगोष्ठा वि भं १ २ वि सं १३१ ।

इनके पूज्यपाद और किन्तुबुद्धि इन नामोंकी वाच्यताका पाल करनेके लिये वही के नं १०८ के एक दूसरे शिवाचार्यके शिल्प—

१ अणुवचनगोष्ठा एक सं १ ८५ के शिवाचार्य ( जो हमसे पूर्ववर्ती है ) से भी इस लक्षणशास्त्रमें शोभा है।

श्रीपुरुषपादोद्भवधर्मरामवस्तुतः सुरापीरवरपुष्पपादः ।  
 पद्मीपद्मपुष्पगुणमिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुद्भवानि ॥  
 अतद्विरवबुद्धिरयमत्र योगिनिः कृतहृत्पनामवभुविभ्रतुपुष्पके ।  
 विनयद् वभूव पद्मवङ्गपापहृत्प विनेत्रबुद्धिरिति साधुवर्षित ॥

ये दोनों श्लोक वि सं ११५५ क शिलासेलके हैं। इनमें कहा गया है कि आचार्य पुरुषपादने धर्म ग्रन्थका उद्धार किया था, इससे आपके चरवा इन्नों द्वारा पूजे गये थे। इनके पुरुषपाद इस नामसे सम्बोधित किये जानेका यही कारण है। इनमें वैदुष्य आदि अनेक गुण थे किन्तु स्थापन आत्र भी उनके द्वारा रचे गये शास्त्र कर रहे हैं। ये किन्तु देवके समान विद्वान्बुद्धिके पारक थे कृतहृत्प ये और कामदेवकी भीतनेवाले थे इसलिय योगी जन इन्हें विनेत्रबुद्धि इस नामसे सम्बोधित करते थे।

इन शिलासेलोंमें व अन्यत्र और भी ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध होते हैं किन्तु इनके इन तीन नामोंकी धार्यकृत स्थिति होती है।

आदिपुराणका एक उद्धरण हम पहले दे आये हैं। उसके तथा आदिराज सूरिके एक उल्लेखसे विदित होता है कि इनका एक नाम 'देव' भी था। माध्यम पद्धति है कि इनका दीक्षानाम 'देवन्दि' होनेसे उनके उचित रूप देव इस पद द्वारा उक्त आचार्योंने इनका नामोहनल किया है। अतएव यह कोर स्वतन्त्र नाम न होकर 'देवन्दि' इस नामका ही उचित रूप प्रतीय होता है।

३ रूप

संघोंको उत्पत्तिकर इतिहास इन्द्रनन्दिने अपने पुत्रावधारमें दिया है। ये लिखते हैं कि जब श्री नोबनके मुनि मिलकर आर्हांगनिमित्त और धारण प्रखरय आदि विद्युत् क्रियाके पालनेवाले आचार्य अर्द्धवर्षी की देखरेखमें सुगमतिक्रमवा कर रहे थे उस समय युगके अन्तिम दिन सुगमतिक्रमवा करते हुए आचार्य अर्द्धवर्षीने आये हुए मुनिधमाबसे पूछा कि क्या समी पतिजन आ गये हैं। इसपर पतिजनोंने उत्तर दिया कि अपने-अपने एकस संघके साथ हम आ गये हैं। उन पतिजनाके इस उत्तर को सुनकर उन्होंने ध्यान किया कि यह कतिफल है। इसमें आगे पतिजन गणपदपाठके भेदसे रहेंगे उदास भावसे नहीं रहेंगे और एव्य विचार कर उन्होंने जो गुणसे आये थे उनमेंसे किन्हींको नन्दि संघ ही और किन्हीं को वीर संघ ही। जो अशोकनामिकासे आये थे उनमेंसे किन्हींको 'अपवर्षित' संघ ही और किन्हीं को 'देव' संघ ही। जो पंचस्युके निवासी बर्ष आये थे उनमेंसे किन्हीं को 'सेन' संघ ही और किन्हीं को 'भद्र' संघ ही। जो शाहमही महादुमसे आये थे उनमेंसे किन्हींको 'गुणवर' संघ ही और किन्हीं को 'गुप्त' संघ ही और जो लणकेतर मुनिके मूलसे आये थे उनमेंसे किन्हींको 'सिंह' संघ ही और किन्हींको 'जन्त' संघ ही।

इससे विदित होता है कि जो मूलसंघ पहले संघमें व गण-गण्यके भेदसे रहित होकर एक रूपमें पला आ रहा था वह यहाँ आकर अनेक भागोंमें विभक्त हो-गया। यह छे नाम/ संघोंकी उत्पत्तिकी कथा है। अब किये यहाँ पर नन्दिसंघ कहा गया है उसकी कथनाको देखिए—

१ देखो अथर्ववेदको धातु शिलासख वं १ और नन्दिसंघ की पद्धतकी।  
 २ पार्वनाथ चरित सर्ग १, श्लोक १८।



सुमन्त्राचार्य अपने पाण्डवपुराणमें अपनी सुवर्णलीला\* उपरोक्त करते हुए लिखते हैं—

श्रीसुवर्णसंघर्षोत्तमं नमिर्त्तवस्तस्मिन् कथ्यन्तमरगण्योऽभिरम्बा ।

तस्मान्नवपूर्वपदराचरी श्रीमाधवस्य वरदेवस्य च ॥२॥

इसमें कहा गया है कि नन्दिस्य कलाकार गद्य मूलसंघके अन्तर्गत है । उसमें पूर्वके एकदेश हाता और मनुष्यों व देवोंके पृथ्वीय माधवन्दी आचार्य हुए ।

इतना कहनेके बाद इस सुवर्णलीले माधवन्दीके बाद ४ भिन्नपत्र, ५ पद्मनन्दी ( इनके मतमें पद्मनन्दीके चार अन्य नाम थे—कुन्दकुन्द्य कफ्मीय एलाचार्य और श्रद्धपुण्ड्र ) ६ तथापुण्ड्रके कर्ता उमास्ताति ७ साहाचार्य ८ यशःकीर्ति, ९ यशानन्दी और १० देवन्दीके नाम विवेक हैं । ये सब नाम इसी क्रमसे नन्दिसंघके पद्यावलीमें भी मिलते हैं । आगे इस सुवर्णलीलेके बाद १२ ब्रह्मन्दीका नाम आता है । जब कि नन्दिसंघके पद्यावलीमें ११ कम्पन्दी और १२ यशानन्दी इन दो नामोंके बाद १३ ब्रह्मन्दीका नाम आता है ।

यद्यपि इससे आगेकी दोनोंकी आचार्य परम्परा कवी-कवीन मिलती हुई है । परन्तु विशेष प्रयोजन न होनेसे उसे हम यहाँ नहीं दे रहे हैं । प्रकृतमें इन आचार्योंसे हमें इतना ही सूचित करना है कि आचार्य पूष्यपाद मूलसंघके अन्तर्गत नन्दिसंघ कलाकार गणके पदाधीश थे । तथा अन्य प्रमाणासे यह भी विरहित होता है कि इनका गण्ड 'सरस्वती' इस नामसे प्रख्यात था । हमारे प्रसिद्ध आचार्य कुन्दकुन्द्य और श्रद्धपुण्ड्र ( उमास्ताति ) इसी परम्पराके पूर्ववर्ती आचार्य थे यह भी इससे विरहित होता है ।

#### ४ श्रीवत्स परिचय

आचार्य पूष्यपाद कोन थे उनके माता पिताका नाम क्या था ये किन्तु कुलमें कबसे थे इन सब बातोंका परिचय श्रीमान् ५ नाभूपमवी प्रेमीने देवन्दि और उनका शैलेन्द्र आकरण शेषमें दिया है<sup>१</sup> । उन्होंने यह परिचय कनवी मायामें लिखे गये पूष्यपादचरिते के आधारेसे लिखा है । इसके शैलक प्रक्रम्य कवि थे । श्रीमान् ५ कृष्णकिशोरकी मुख्यायके शैलक यह भी<sup>२</sup> विरहित होता है कि उनका यह जीवनचरित यशस्विक्रमे में भी लिखा हुआ है । किन्तु इन दोनोंमें कहीं एक साम्य और वैषम्य है यह इससे विरहित नहीं होता । प्रेमीकीके शब्दोंमें कथा संक्षेपमें इस प्रकार है—

'कर्त्तारक देशके 'कोले' नामक ग्रामके माधवमह नामक ब्राह्मण और श्रीदेवी ब्राह्मणीसे पूष्यपादका जन्म हुआ । कोविदिपीठेन बालकको त्रिलोकपुत्र्य कलाया । इस कबरा उसका जन्म पूष्यपाद रक्ता गया । माधवमहने अपनी दाँके कदमसे जैनधर्म स्वीकार कर लिया । मङ्गीके कालका नाम पाकिनि था । उसे भी उन्होंने जैनी करनेसे कहा । परन्तु प्रतियोगके अन्तर्गत वह जैनी न होकर मुहूर्त्तुद्वय नाममें वैष्णव संन्यासी हो गया । पूष्यपादकी कमलिनी नवमक छोटी बहिन हुए वह गुणवन्त था स्पष्टी गर् और शुभमङ्गको उसके नागाशुन नामक पुत्र हुआ ।

१ इत्यः शैलमिह्रान्तमाकर माग १ किरण ७ पृ ५१ ।

२ इत्यो जैनमिह्रान्त माकर माग १ किरण ७ पृ ४३ में उक्तं न सुमन्त्राचार्यो पद्यावली ।

३ इत्यो जैन साहित्य और इतिहास पृ १९३ । ४ इत्यो शैलकचरितके मू मका ।

पूज्यपादने एक क्रांतिमें एक सौंपक मुँहमें पँडे हुए म्हाकरो देखा । इस उन्हे बैयम्न हो गया झार बे अन धाडु बन गये ।

पाणिनि अपना व्याकरण रच रहे थे । वह पूय न हो पाया था कि उन्होंने अपना मन्त्रकाल निकट आया पानकर पूज्यपादसे कहा कि इस तुम पूय कर दो । उन्होंने पूरा कर्म स्वीकार कर लिया ।

पाणिनि पुष्पानवरा मरकर खर हुए । एक बार उसन पूज्यपादका इत्यकर पूरुमर किया । इस पर पूज्यपादन कहा विद्वानर रफला, म तुम्हारे व्याकरणाके पूय कर ईगा । इसके बाद उन्होंने पाणिनि व्याकरणको पूय कर दिया ।

इसके पहले व हैनेन्द्र व्याकरण अहस्प्रतिशालाउख और बहाक ज्योतिषक कर ग्रन्थ रच चुके थ ।

गुणमहके मर जानेसे नागार्जुन अतिथय इगिरी इ' गया । पूज्यपादन उस परमाकीर्ण एक मंत्र दिया और सिद्ध करनेकी विधि भी बताया दी । उसके प्रभावसे पद्मावतीने नागार्जुनके निकट प्रकट होकर उसे सिद्धिरसकी मन्यपति बताया दी ।

इस सिद्धिरससे नागार्जुन सोना बनने लगा । उसके गर्भ का परिवार करनेके लिए पूज्यपादने एक मामूली मन्यपतिसे कई बह सिद्धरस बना दिया । नागार्जुन जब पत्नीको सुवर्णमय बनाने लगा तब भर्येन्द्र पद्मावतीने उसे दोष्य और बिनालय बनानेका कहा । तदनुसार उसन एक बिनालय बनवाया और पार्षनायकी प्रतिष्ठा स्थापित की ।

पूज्यपाद पैरुमें गगनगामी होप लगाकर बिदेहदेवकी बाया करते थे । उस समय उनका शिष्य ब्रह्मन्वीन अपने ध्यायितेस हागडा कके प्रविष्ट संपकी स्थापना की ।

नागार्जुन अनेक मन्त्र तब तथा स्थािर सिद्ध करके बहुत ही प्रिये हा गया । एक बार दा सुन्धी शिष्य आर धे गान-नाचनेमें कुशल थी । नागार्जुन उन पर माहित हा गया । व परी रदन सगी और कुछ समय बाद ही उसकी रतगुटिका लेकर पत्नी की ।

पूज्यपाद मुनि बहुत समय तक योगाभ्यास करते रहे । फिर एक वर्षविमानमें बैठकर उन्होंने अनक तीर्थो की यात्रा की । मार्गम एक जगह उनकी दृष्टि मर हा गई थी, सो उन्होंने एक शान्त्यक बनाकर ज्यो की रणो क ली । इसके बाद उन्होंने अपने प्राममें आकर समाधिपूरक नग्न किया ।

भी मातीबन्ध गौतमचन्द्र काठायी कबटनकारान तथाथीश्रद्धिक एक आरतम क-क राधा उग्यदन किया इ जो सोनापुरसे प्रकाशित हुए है । उनमें उन्होंने कुछ सुकिर्षो देकर हम कपाके व्याकरण मन्त्रकी अंशका पद्यमन्त्र निद करनका प्रयत्न किया है । किन्तु अथ कि अन्य सप्येस सिद्ध है कि पाणिनि व्याकरणरुद कत। पाणिनि श्रुति पूज्यपादर बहुत परन हा गय ई इत्या ही नहा पाणिनि व्याकरण पर आ कनशापनका पारिक और फाजलिका महाभाष्य प्रसिद्ध है वद भी पूज्यपादक कह उल्लिख्यो परन निगय था युवा था । अतएव केवल इत कपाके आधार पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि आचार्य पूज्यपाद पारिक मनयमें हुए है और उन्होंने उनक आर्य व्याकरणको पूय किया था । कपा में आर भी एभी अनेक पत्राओ का उल्लेख है किन्तु अतिशयोक्तिपूरु कहा जा सकता है । किन्तु एक बात स्पष्ट है कि आचार्य पूज्यपाद पाणिनि व्याकरण उनक पारिक और महाभाष्यके मर्मन थ । एगम एग मार्गम परदा है कि व मार्गम कुपमें उत्पन्न हुए हीग आर अपने श्रीदन्वानके मार्गममें वे अन्य धर्मक माननका रहे हीग । अत इम कपमें जा उनके निग, माया

यं कुल आदिभ्यः परिवच्य दिव्य है यह कदाचित् ठीक भी हो। जो कुछ भी हो तत्काल इस कथाके आधारसे हम इतना कह सकते हैं कि पूरुषपाद आद्यस्य कुलमें उत्पन्न हुए थे। उनके पिताका नाम माधवमह और माता का नाम श्रीदेवी था। वे 'कश्यपे' नामक मानके रहनेवाले थे और उनका जन्म नाम पूरुषपाद था। उन्होंने निवारण कर कच नाम ही धर्मधर्म स्वीकार कर लिया था और आगे चलकर उन्होंने सौंसे मुँहमें मैटक तकपण्य हुआ देख मुनिदीक्षा ले ली थी। उन्होंने अपने जीवन कालमें गगनगामी लेपके प्रभावसे कई बार विदेशदेशकी यात्रा की थी। भवराजशासकके एक शिलालेखका आधारसे यह भी कहा जा सकता है कि जिस बलसे उनके परब पोरघाते में उसके स्पर्शसे लोहा भी घटना बन जाता था<sup>१</sup>। उनके परबप्यारसे पवित्र हुई भूमिमें परबको घटना माननाका धर्म था यह बातका उल्लेख तो कथा लेखकने भी किया है। एक बार तीर्थयात्रा करते समय उनकी दृष्टि किमिनाच्छ्रमसे गई थी। जिस उम्हाने शान्त्वद्वयका निर्माण कर दूर किया था। किन्तु इस घटनाका उनके ऊपर पण्य प्रभाव पड़ा जिससे उन्होंने तीर्थयात्रासे लौटकर धर्माधि ले ली थी।

५. स्वरचित साहित्य

आचार्य पूरुषपादने अपने जीवन कालमें सर्वाचार्यसिद्धि चर्चित जिस साहित्यका निर्माण किया था उसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१ सर्वाचार्यसिद्धि— इसका विस्तृत परिचय हम पहले दे आये हैं।<sup>२</sup>

२ समाधिपठनम् इसमें कुलमिला कर १५ श्लोक हैं। विषय आध्यात्म है। अन्यत्र नाम समाधिपठनम् है। इसकी रचना स्वर्ण आचार्य पूरुषपादने इसके अन्तिम श्लोकमें की है। एक ही प्रकारके श्लोकके शब्द १०८५ क शिलालेख '४' में इसका नाम समाधिपठनम् दिया है। बृहदे बनारसे मुद्रित होनेवाले प्रथम मुद्रकमें भी शिष्यस्य चर्चित यह कथा है और उसके अन्तमें एक प्रशस्ति श्लोक उद्धृत है जिसमें श्लेषरूप से इसका नाम समाधिपठनम् सूचित किया गया है। माक्षेय पक्षता है कि इसी अर्थसे इसका बृहद नाम समाधिपठनम् प्रसिद्ध हुआ है।

यद्यपि यह प्रथम आचार्य पूरुषपादको रक्तान्त्व कृति है पर अन्तःपरीक्षयसे विदित होता है कि आचार्य मुन्दमुन्द द्वारा निर्मित आगमको आगमशास्त्र कर उन्होंने इसकी रचना की है। उदाहरणस्वरूप निबन्धकारों यह गाथा आती है—

विपमार्थं च वि सु चह परमार्थं चो व गिष्वात् कर् ।

आचार्य पश्यन्ति सर्वं सोढं इति चिन्तय चासी ॥ ६७ ॥

आज इसका गुणना समाधिपठनके इस श्लोकसे श्रीविद्य—

बद्धमाद्य च शुद्धाति गुरीतं तर्पय गुणः ॥

आचार्य सर्वथा सर्वं तत्पदार्थसमस्तम् ॥ ३ ॥

१ अन्तःपरीक्षयमुनिरश्वितीचर्चित्क्रीयादिहृद्विजयवर्गमपुत्राणाः ।

बन्नात्कीनत्रकसंभारुमभाषककाद्यधर्मं द्विष तथा कर्मदीचकार ॥

२ इत्यादिगाथाया २ ३३ आदि ।

यदि सूक्ष्मछाते अथलोकन कर देखा जाय तो माझम पढ़ता है कि प्रारम्भ ही इच्छा मोक्षप्राप्तको सामने रख कर हुआ है और लगभग मोक्षप्राप्तके समय विषयको स्वीकार कर इच्छा रचना की गई है। मोक्षप्राप्तकी प्रथम गाथा यह है—

आचार्यं अप्यायं उच्यते च य मन्त्रियकर्मभेद ।

चतुश्च य परदत्तं क्षमो यमो तस्म देवस्त ॥ १ ॥

अप इस्के प्रकाशमें समाहितकर्म प्रथम मंगलरसोक देखिए—

वेना मातृपुत्र्यवार्थं परलोके च आपरम् ।

अथयानन्तबोधाय तस्मै सिद्धायमे तम ॥ १ ॥

अप मोक्षप्राप्तकी एक वृत्ती गाथा लीजिए—

अं मया विरहवे कर्म तं य आचारि चम्बहा ।

आचार्यो विरहवे च तं तस्मा अं पमि केच इ ॥

इसी विषयको समाहितकर्ममें ठीक इन्हीं शब्दोंमें स्पष्ट किया गया है—

यस्मया दृश्यते कर्म तत्र आचारि सर्वथा ।

आत्मन्य दृश्यते कर्म ततः केन प्रबन्धितम् ॥ १८ ॥

इचना ही नहीं समाहितकर्म लिखते समय आचार्य पूज्यवादके सामने आचार्य कुन्दकुन्दकर समयप्राप्त व अन्य भुक्त भी उपस्थित था यह इसके अथलोकनते स्पष्टतः विनिश्चित होता है। आचार्य कुन्दकुन्दन अस्मन्तर परियामोंके बिना केवल बादसिंग माझनागमें उपयोगी नहीं है यह नकलाते हुए समयप्राप्तमें करा है—

पारसद्वीक्षितायि च गिरिक्षितायि च बहुष्पपारायि ।

यिषु कर्त्ति मूढा विगमिये मोक्षयमगो सि ॥ ४ ८ ॥

अ उ होदि माक्षममयो विगो अं देहविम्ममा अरिहम् ।

क्षिरी मुदुत्तु इत्यवयव्यचरितायि सर्वति ॥ ४ ९ ॥

इनी तपको आचार्य पूज्यवादे समाहितकर्म इन शब्दोंमें स्पष्ट किया है—

जिह्व हृदाभित हरे बर र्व आत्मनो भव ।

न मुदयन्ते मयात्तदमात्त य सिद्धकृताग्रहा ॥

आनिर्देहाभिता हरा बर पृथायनो भवः ।

न मुदयन्ते भवत्तमात्तं न जातिहृताग्रहा ॥

इसमें क्या भी कष्ट नहीं है कि जो तपक अन्न आत्मकार्यमें उपयुक्त होना चाहिए उनके लिए यह मोक्षमार्गके अनुष्ठानमें प्रवृत्तकर्मक स्थान है। इसमें आत्मक अविद्याना अन्वयान्म और परमात्मा के तीन भेद काके किंत प्रकार यह तीन अविद्यान्तरके तपक द्वारा अस्तगतकर्म फलपर परमात्माका प्राप्त करण है इच्छा तपक और हृदयमाही बलितामें विवेचन किया गया है।

४ इच्छोपदेश इसमें कुल भिन्नाकर ५१ श्लोक हैं। तिरर अस्मन्तन्मोचन है। प्रपत्ता नाम इच्छो परोक्ष है यह तपक आचार्य पूज्यवादे इसके अन्तिम रत्नाङ्गन तपक किया है।

इच्छा निर्माण करते हुए अर्चार्थ पूर्यपात्रके नामत एकमात्र यही इष्टि रही है कि किसी प्रकार यह संशयि धारणा अपने स्वरूपको पहिचाने और देह क्रिय तथा उनके क्रमोंको अपना कार्य व मानकर आत्म क्रयमें सावधान होनेका प्रयत्न कर । समकालान्ततन्त्र स्वाध्याय करते समय हमें इस भावके पद पर पर ध्यान इति है और इतलिय हम कह सकते है कि समयप्रान्त आरिहके विषयको आत्मसात् करके ही इच्छा निर्माण किया गया है । तुलनाके लिए देखिए—

एगो मे धामम् । आदा आदर्भमवबन्धयो ।  
 सेना मे बाधिरा भावा सम्भ संभोगवबन्धवा ॥ समयाप्राभ्य  
 एकोऽर्थ निर्ममः दृष्टो शानी भोगिन्द्रगोचरः ।  
 बाध्याः संभोगजाः भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वेषा ॥ १० ॥ इष्टोपदेश  
 रणे वीर्यति कर्म मु बदि कर्म विरागाद्यपत्तो ।  
 एगो जिष्वाद्यपसो तम्हा कम्मसु मा रज्ज ॥ समबप्राभ्य  
 बन्धये मुन्धये बंधः समसो निर्ममः अमात् ।  
 तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विधिन्धयत् ॥ १६ ॥ इष्टोपदेश

रज्जकरइकमें एक श्लोक आता है जिसमें कहा गया है कि बनेके प्रभावके कूल मी देव हो जाया है और अयमके प्रभावसे देवतो मी कूरर होते देव बही लगती । धया—

रवापि दबोऽपि देवः रवा ज्ञापते कर्मकिस्विपात् ।

कपि नाम मवेदस्या सप्रवृ धर्माच्छरीरियात् ॥ १ २३ ॥

इष्टावश्याम यही शब्द था नहीं है पर इनका अनुकृत्य कर्मत हुए आचार्यवर्ग कहते हैं—

बर्ं मर्ं पद्ं देवं नामैर्बैत भारकम् ।

क्यावात्पस्वयोर्मेवः प्रथिपाद्यवतोर्मेहात् ॥ ३ ॥

साधकक लिए आत्मसाधनामें इतल बही सहायता मिलती है ।

४ इष्टमक्ति—भक्तिया इष्टाव अधिक है । फिर भी ये मुख्यकर्मत इष्ट मानी जाती है । भीमान् प पनाज्ञानकी योगिन सम्पादित कर क्रियाकलाप' नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया है । यह संग्रह प्रथ है । इलके प्रथम अध्यायके कुछ प्रकरवाक्य संग्रह स्वयं परिशुद्धिर्बान किया है । शेष संग्रह मात्रात हाता है प्राचीन है । तम्बव है इलके संग्रहकार परिशुद्धि प्रभावान्तर है । इल्लो न ही इलके अनेक उपयोगी विषयों पर दीक्षा लिनी है । ये परिशुद्धि ध और इनका नाम प्रभावान्तर था । इलकी सूचना नन्दोरवर भक्तिके अन्तत प्रकरण समाप्तिकी पुष्पिता निगत मनय स्वय इल्लाने थी है ।<sup>१</sup> इलमें सत्र मक्तिपा व इल्ले प्रकरवाक्य संग्रह स्वयं इलका किया हुआ है या क्रियाकलापरा था वर्तमान स्वरुप निशा है यह सादका काम है यह हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते , क्योंकि एक था न स्वयं धानी बीने इलकी व्यवस्थित सूचना थी । धोनीकी बदि इलकी प्रकृतनामें यह तलानेकी दृष्य

१ इलो क्रियाकलाप प्रभावाना पृ ३ ; २ 'इति परिशुद्धिप्रभावान्तरविरचितो क्रियाकलापटीकाया धक्ति विवरण' प्रथमः परिशुद्धिः समाप्तः । ३ इतना अकरव है कि इलके 'वैश्वानरान्तिकप्रथिमकम्' नामक प्रकरवाक्ये अन्तमे एक अण उपलभ्य हाता है जिन्में १०१० तं य मित है । अतएव इससे पूर्वका यह संग्रह है यह कहा जान कता है । इलो क्रियाकलाप पृ ३३ ।

करते कि उन्होंने बितनी प्रतियोगीके आभारसे इनका सम्पादन किया है वे कहाँकी हैं और उनका लेखन कहा क्या है तो इन बातके निरापण करनेमें बड़ी सहायता मिलती कि यह समझ कितना पुराना है। दूसरे इसमें ऐसे कई उपयोगी विषयोंका संग्रह है किन्तु उन पर परिष्कृत प्रमाचन्द्रकी टीका न होनेसे वे उनके सामने ये इस बातको स्वीकार करनेमें संशय होता है। उदाहरणार्थ प्राकृतनिर्वाणमण्डि जो लोकमें निर्वाणकाण्डके नामसे प्रसिद्ध है इसमें संग्रहित है पर इस पर उनकी टीका नहीं है। जब कि वह दूसरी मण्डियोंके मन्त्रमें रचित है। खेनीबीने मुद्रित क्रियाकलापके सम्बन्धमें अपनी भूमिकामें रचित स्पष्ट तो की है पर उसके पृथ प्रकाश नहीं पड़ा।

इसमें बितनी मण्डियाँ संग्रहित हैं उनमेंसे प्रथम परिच्छेदमें सिद्धिमण्डि भुतमण्डि, चारित्रमण्डि योगिमण्डि आचार्यमण्डि निराणामण्डि और नन्दीश्वरमण्डि ये सात मण्डियाँ संग्रहित हैं। इनमेंसे नन्दीश्वरमण्डि कबल संस्कृतमें है शेष सब मण्डियाँ संस्कृत और प्राकृत दोनोंमें हैं। मात्र प्राकृत निर्वाणमण्डिकी संस्कृत टीका नहीं है। इसके आगे दूसरे प्रकरणमें और भी अनेक मण्डियाँ संग्रहित हैं और इन पर भी परिष्कृत प्रमाचन्द्रकी संस्कृत टीका है। इतना अवश्य है कि उनमें जो लघु मण्डियाँ हैं उनपर टीका नहीं है।

इन मण्डियोंके सम्बन्धमें परिष्कृत प्रमाचन्द्र प्राकृत सिद्धिमण्डिके अन्तमें सूचना करते हैं कि सब संस्कृत मण्डियाँ पादपूरुष स्थामीकी कथा हूँ और प्राकृत मण्डियाँ आचार्य कुन्दकुन्दकी कथा हूँ। क्या—

संस्कृतः सर्वा मन्त्राः पादपूरुषस्थामिहृताः प्राकृतवास्तु कुन्दकुन्दाचार्यहृताः । क्रियाकलापे पृष्ठ ११० ।

ये सब मण्डियाँ एक आचार्यकी कृति हैं या अनेककी यह तो निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। बिन परिष्कृत प्रमाचन्द्रने इनकी टीका लिखी है वे सम्भवतः परिष्कृतप्रद आचार्यके बाद और वि सं १०२४ के पहले कमी हुए हैं अतएव इस आचार्यसे इतना ही कहा जा सकता है कि ये वि सं १४ वीं शताब्दिके पूर्वकमी लिखी गई हैं। किन्तु इस कथनसे यह निश्चय नहीं होता कि परिष्कृत प्रमाचन्द्र इनमेंसे बिन संस्कृत और प्राकृत मण्डियोंके कथने पादपूरुष स्थामी और कुन्दकुन्द आचार्यकी मानते रहे। उनके मतसे ये पादपूरुष स्थामी हीन थे यह भी स्पष्ट नहीं होता।

१ पद्यसाहस की खेनीने क्रियाकलापकी प्रख्यातनामें लिखा है कि 'सिद्धिमण्डि, भुतिमण्डि चारित्रमण्डि, योगिमण्डि आचार्यमण्डि निर्वाणमण्डि और नन्दीश्वरमण्डि ये सात संस्कृत मण्डियाँ पादपूरुष स्थामी हृत हैं और प्राकृत सिद्धिमण्डि प्राकृत भुतमण्डि प्राकृत चारित्रमण्डि प्राकृत योगिमण्डि और प्राकृत आचार्य मण्डि ये पाँच मण्डियाँ कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत हैं। किन्तु उन्होंने पक्ष माननेका जो कारण उपरिष्ठ किया है वह समुचित नहीं कहा जा सकता। परिष्कृत प्रमाचन्द्रने तो केवल इतना ही कहा है कि सब संस्कृत मण्डियाँ पादपूरुष स्थामी हृत हैं और सब प्राकृत मण्डियाँ कुन्दकुन्द आचार्य हृत हैं और वह भी उन्होंने प्राकृत सिद्धिमण्डिकी व्याख्या करते हुए उसके अन्तमें कहा है। परन्तु क्रियाकलापमें बिच कथने इन मण्डियोंका संग्रह है उध बेखत हुए प्राकृत सिद्धिमण्डि का कर्मांक वृत्त है। सम्भव है कि खेनीबीने नन्दीश्वरमण्डि पर परिच्छेदकी सम्यक्ति देखकर यह अनुमान किया हो। जो कुछ भी हो परिष्कृत प्रमाचन्द्रके कथनमें ये मण्डियाँ पादपूरुष स्थामी हृत और कुन्दकुन्दाचार्यहृत मानी जाती थी इतना स्पष्ट है। बिद्वानोंका अनुमान है कि ये पादपूरुष स्थामी आचार्य पूरुषवाद ही होने चाहिए क्योंकि एक तो इस नामके अन्य कोई आचार्य नहीं हुए हैं। दूसरे इन मण्डियोंका अग्रविष्ट प्रसार और गम्भीर शंकी इस बातको सूचित करती है।

१ परिष्कृत प्रमाचन्द्रने अतएवप्रमाणके दो रत्न क थामी टीकाके उद्धरण किया है। इनो क्रियाकलाप प्रस्तावना पृ १ । २. देखो क्रियापृ ३ पृ ८८ । ३. इनो जैन साहित्य की इतिहास पृ १११ ।

इन सब शक्तियोंमें उनके नामानुसार विषयस्य विवेचन किया गया है। मुनिजन तथा श्रेयी पुरुषस्य वैकलिक आदि प्रतिक्रमणके समय निश्चित क्रमसे इनका प्रयोग करते आ रहे हैं जो आशिक्षणसे वर्तमान अज्ञानमें भी प्राप्त है।

४ जैनैन्द्र व्याकरण - आचार्य पूम्पवादकी अत्यन्त मूलिक कृति उनका जैनैन्द्र व्याकरण है। इसका जैनैन्द्र यह नाम क्यों पड़ा? क्या स्वयं आचार्य पूम्पवादको यह नाम इस या इसका निर्धार करना तो कठिन है। परन्तु प्राचीन अक्षरसे यह इसी नामसे सम्बन्धित होता था रहा है यह अनुसंधानके कर्ता पं. शोषकेके इस उपसंहारसे स्पष्ट है—

‘इन्द्रवचनः कर्माकारस्तापितोऽभिधाक्यात्मताः।

पाणिन्मरुतैरेन्द्रा जपन्परी च इन्द्रिकाः ॥ चतुष्टय

यह पाँच व्याकरणोंमें विभक्त है और सूत्र संख्या लगभग १ है। इसकी एकते कहीं विशेषता संज्ञा स्थापन है। पाणिनीय व्याकरणमें भिन्न उदाहरणों के लिए कई अक्षरोंके संकेत अल्पित किये गये हैं उनके लिए इसमें स्थापनसे धम लिया गया है। दुर्लभाके लिए त्रैलोक्य—

पाणिनीय व्याकरण	जैनैन्द्र व्याकरण
ह्रस्व धीर्, षुल	म ही, प
सचर्षा	रब
अनुनासिक	र
गुण	ए
वृद्धि	पे
विद्या	त
प्रातिपदिक	सु
लोप	घ

मंशानादन और रचना विशेषके कारण इसमें सूत्र स्थापनके भी बहुत कम-बहुत पर होते हैं। यथा—

पाणिनीय व्याकरण	जैनैन्द्र व्याकरण
अरो मरि सचर्षे	अरोऽुमरि म्ने
इमां पमां पाम मोग	इहो पमां ममि धम्
सुप्रपाठपठार्थं सचञ्चम्	मरपाठञ्चै म्चम्
कथामोऽनुकारार्थकमुल	आकामोऽनु प्रवीपः

इसका प्रथम सूत्र है ‘सिद्धिरेन्द्रम्यात्। इसकी व्याख्या करते हुए गोमन्थमूर्तिने शम्भुगर्भवन्दिकामें जो कुछ कहा है उम्मा माय यह है—‘शब्दोंकी सिद्धि और ममि अनेकानेका आशय मनेसे हास्य है क्योंकि उक्त शब्दोंमें नाशित्य निगम्य अभिप्राय और विशेषण-विशेषणधर्मोंकी विशेषता होती है। इस सूत्रका अर्थिकार इन शब्दोंकी परिभाषा तक जानना चाहिए। यदि अनेकानेका अर्थिकार अन्ततः न माना जाय तो कौन आदि है और कौन अन्त है किन्तु विशेषण अर्थिकार है और किन्तु अर्थिकार अर्थिकार है यह सब कुछ न बने।

## प्रस्तावना

वैयाकरणोंका स्त्रोतशब्द प्रसिद्ध है। वे शब्दको नित्य मानकर वास्तु आदिके संबोधने मात्र उक्त रूप मानते हैं, उक्ति उत्पत्ति नहीं, जब कि स्थिति ऐसी नहीं है, क्योंकि अकार आदि वर्ण और भट, पर आदि शब्द अकाररूप में मरे हुए नहीं हैं और न वे अकाररूपके गुण ही हैं। वे तो वास्तु आदिके निमित्तके शब्द बनायाओं विविध संयोगरूप उत्पन्न होते हैं और अकाररूपमें विघटित हो जाते हैं। अतः वैयाकरणोंके मन्वयानुसार सर्वथा नित्य नहीं माने जा सकते। पुराण प्रथमकी अपेक्षा बहोसे नित्य सिद्ध होते हैं वहाँ वे पर्यायकी अपेक्षा अनित्य भी सिद्ध होते हैं। स्थिति है कि इस भावको स्पष्ट करनेके लिए आचार्य पूम्पपादने 'सिद्धिरनेकानुक्त' यह प्रथम सूत्र लिखा है। व्याकरणमें शब्दोंकी किस प्रकार सिद्धि की गई है या उसे संशयों व प्रत्यक्ष आदि अस्पष्ट कि गये हैं वे सर्वथा वेधे ही नहीं हैं किन्तु मायाकी स्थितिके स्पष्ट करनेके लिए माना गया वह एक प्रकार है और यही कारण है कि अनेक वैयाकरणोंने रूप सिद्धिके लिए अक्षय-अक्षय संशयों व प्रक्रिया स्वीकार की है। ऐसी स्थितिके होते हुए भी अनेक विद्वानोंमें अत्युक्त प्रत्यक्ष और अत्युक्त प्रकारके कल्पसिद्धिके प्रति आग्रह देना जात है। सम्भव है इस ऐकान्तिक आग्रहके निषेध करनेके लिए भी आचार्य पूम्पपादने 'सिद्धिरनेकानुक्त' सूत्र लिख रचना की हो।

आचार्य पूम्पपादने अपने अनेक व्याकरणम भूतबलि औरच, परोमन् प्रमाणम्, समन्तम् और सिद्धयेन इन चार आचार्योंके मतोंका उल्लेख किया है। अभी तककी आन्तरीके आधार पर यह तो निःसन्देह कहा जा सकता है कि इनका कोई व्याकरण नहीं है। या ही इन आचार्योंके जिन वैकल्पिक मतोंका उल्लेख उनके कल्पसिद्धि की गई है वे मत भी कोई नये नहीं हैं। क्योंकि जैसा कि हम आगे चलकर बतलानेवाले हैं पाणिनि व्याकरणमें भी वैकल्पिक उन्की सिद्धि इतिगोचर होती है। इच्छिए प्रश्न होता है कि जब कि आचार्य पूम्पपादके सामने पाणिनि व्याकरण था और उसमें वे प्रयोग अक्षय्य होते थे ऐसी अपर्याय उन्हीं अक्षय्य इन आचार्योंके मतके रूपमें इनका उल्लेख क्यों किया। प्रश्न गम्भीर है और सम्भव है कि अक्षय्यरूपमें सबसे कुछ ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश पड़े। तत्काल हमारी समझमें इच्छा यह धारण प्रतीय होता है कि अतः प्रकाश पाणिनि श्रुतिने अपने व्याकरणमें उन्के अक्षय्य एक रचे गये वाचिकमें उल्लेख होनेवाले मत्तक उन्के रचयिताके नामके साथ या 'अन्तर आदि पर हाय उल्लेख किया है उसी प्रकार आचार्य पूम्पपादने अपने जैनेय व्याकरणमें उन्के अक्षय्य एक रचे गये अक्षय्यमें उल्लेख होनेवाले मत्तक उन्के रचयिताके नामके साथ उल्लेख किया है। मत्तक विवरण इस प्रकार है—

**भूतबलि**—आचार्य भूतबलिके मत्तक प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है—**उद्गमः** । ३, ७, ८ । भूतबलिके मतानुसार उमा शब्दोन्त द्विगु समावस ल' प्रत्यय होता है यह इस सूत्रका आशय है। इच्छे 'त्रिसमिकः प्रयोगक स्थानमें हैसमल प्रयोग विकल्पक सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार 'तन्व्य संस्वरत्' । ३, ७, ८ । अतः 'वर्षादुप च ३, ४, ८' । ये दो सूत्र सूत्र हैं या भूतबलि आचार्यके वैकल्पिक मत्तक प्रतिपादन करते हैं। इनमें से प्रथम सूत्र हाय 'शिरःशब्द' इच्छेः लः वीरःशब्दोन्तः आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं तथा दूसरे सूत्र हाय शिबर्षः आदि प्रयोग सिद्ध होते हैं। अनेक व्याकरणमें ये वैकल्पिक कर्त्तृ भूतबलि आचार्यके मतके माने गये हैं।

इन वैकल्पिक आचार्योंके निर्देश पाणिनिने भी किया है किन्तु वहाँ किम आचार्यके मत्तक ये कर्त्तृ हाय हैं यह नहीं बतलाया है। इन तीन सूत्रोंके स्थानमें अक्षय्य पाणिनिके 'शिरःशब्द' । ३, ७, ८, शब्द संस्वरत् । ३, ७, ८ । अतः वर्षादुप च ३, ४, ८ । ये तीनों सूत्र आते हैं।



**श्रीदत्त**—आचार्य श्रीदत्ते मत्स्य प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है 'गुणे श्रीदत्तस्वर्षिणाम् । १, ७, ३० । श्रीदत्त आचार्यके मतमें गुणद्वयका पञ्चमी विनाश होती है। पञ्चम यह करने कीलिंगमें नहीं होता। यह इस सूत्रका भाव है। इसके अनुसार शानेन मुक्तः के स्थानमें श्रीदत्त आचार्यके मतमें शानाम्मुक्तः प्रयोग सिद्ध किया गया है। इसके स्थानमें पाणिनि व्याकरणमें विनाया गुणेश्चिणाम् । १, ३ ११ । सूत्र उपलब्ध होता है।

**पशोमद्**—आचार्य पशोमद्के मत्स्य प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है 'कृत्विपुत्रो पशोम्यस्य । २, १ २६ । इ वृत् और मूम् पाठसे पशोमद् आचार्यके मतानुसार 'न्यम् प्रत्यय होता है। तदनुसार 'कृत्विपुत्र', 'पृत्विपुत्र और मूम् ये वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होते हैं। इसके स्थानमें पाणिनि व्याकरणमें 'सुजेर्निमाया । ३, १, ११३ । तथा विनाया कृत्विपु । ३, १ ११ । ये ही सूत्र उपलब्ध होते हैं।

**प्रमाचन्द्र**—आचार्य प्रमाचन्द्रके मत्स्य प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है शत्रुः कृति प्रमाचन्द्रस्य । ४ ३ १८ । शत्रि पर उपलब्ध खते हुए कृन्त पर खते प्रमाचन्द्रके मतमें गुम् का आगम होता है। तदनुसार चञ्चिचर वैकल्पिक प्रयोग सिद्ध होता है। इसके स्थानमें पाणिनि व्याकरणका सूत्र है शत्रुः कृति विनाया । ६ ३, ७२ ।

**समन्तमद्**—आचार्य समन्तमद्के चार मत्वका प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है—कनुहर्ष समन्तमद्स्य । ५ ७ १० । सिद्धने चार सूत्र आचार्य समन्तमद्के मतसे कर गये हैं वह इस सूत्रमें कृतहाय गया है। ये चार सूत्र हैं—'मयो हा । ५ ४ ११९ । शरकोप्रति । २ ४ ११७ । इको यमा यमि चम् । २, ४ १३८ । तथा म्यो मरि स्ते । २ ४ १३६ । इनके स्थानमें क्रमशः पाणिनिके सूत्र हैं—'हयो शौड्यतरस्याम् । ८, ४ ६२ । शरकोप्रति । ८ ४, ६१ । इतो यमा यमि शायः । ८, ४, ६४ । तथा शयो मरि सभ्ये । ८ ४ ६५ ।

प्रथम सूत्रके अनुसार पञ्चम शप् सेऽनर रहते हुए 'इ को पूर्वसर्वा' होता है। यथा—'सुचार्यसति । द्वितीय सूत्रके अनुसार पञ्चम शप् से पर रहते हुए 'घ' के स्थानमें 'ङ' होता है। यथा—'पदङ्बभामाः ।' तृतीय सूत्रके अनुसार इङ् से पर नञ्का यम् पर खते हुए लोप हाया है। यथा—'छप्पा' इस शब्दमें दो नञ्कार हैं और इनके समासमें एक तीसरा नञ्कार और प्राप्त हुआ। किन्तु इस सूत्रके निम्नानुसार शौड्यके एक नञ्कारका लोप हाकर शम्भ्य वह प्रयोग ही शेष रहया है। चतुर्थ सूत्रके अनुसार इङ् से पर शरुक् सर्वा शप् पर रहते हुए लोप होता है। यथा—'मिचाम्' यहाँ एक तीसरे नञ्कारका लोप हो गया है। इस प्रकार ये चार वैकल्पिक सर्वा आचार्य समन्तमद्के मतमें होते हैं। अब कि पाणिनि व्याकरणमें ये चार अन्यतरके मतमें माने गये हैं।

**विद्वत्स्य**—आचार्य विद्वत्स्यके मत्वका प्रतिपादन करनेवाला सूत्र है—'नेतेः विद्वत्स्यस्य । ३ १० । किन्तु पाठान पर म् प्रत्ययके स्थानमें आदेशभूत 'अत्' को विद्वत्स्यके मत्वानुसार र्त् का आगम होता है वह इस सूत्रका भाव है। यथा—'विद्वत्ते'। अंतर्गत प्रयोगमें दकारके बाद और अकारके पूर्व 'र्त् का आगम होकर यह वैकल्पिक प्रयोग बना है। इस सूत्रके स्थानमें पाणिनि व्याकरणका 'नेजेर्निमाया । ७, १ ० । सूत्र उपलब्ध होता है।

इस म्यकारका लौमदेश्चिणाम् इत्यादिन पत्रिकामें एक परिवर्धित रूप उपलब्ध हाया है। किन्तु वह उक्तका बादका परिवर्धित रूप है ऐसा करनेक प्रमाचौक आचार्यके प्रेमीजीने सिद्ध किया है। इसका असली पाठ ये

नहीं है जो आचार्य अमरदेव कृत महाकविमें उपलब्ध होता है। इस व्याकरणका कुछ विशेषताओंका हमने उल्लेख किया ही है। और भी कई विशेषताएँ हैं जिनका कारण इसका अपना स्वतंत्र स्थान है।

उल्लेखोंके शत होता है कि आचार्य पूम्पयदेव उक्त पाँच ग्रन्थोंके सिवा कई ग्रन्थों पर अन्य अनेक ग्रन्थ लिखे थे। विवरण इस प्रकार है—

६—७ अनेक और शब्दावतार स्यास—शिमोगा जिला के नगरतहसीलके ४६ वें शिखारसम इन शतका उल्लेख है कि आचार्य पूम्पयदेवे एक ही अपने व्याकरण पर 'अनेक' नामक पाठ लिखा था और दूसरा पाणिनि व्याकरण पर 'शब्दावतार' नामक स्यास लिखा था। यथा—

'स्यास अनेकस्यसं सकलपुत्रुर्तुं पाणिनीयस्य भूयो  
स्यासं शब्दावतारं मनुजतद्विहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा ।  
पस्तत्प्रायस्य टीकां स्वरचण्डिकां तां मात्स्यीं पूम्पयाद्  
स्वामी भूपाक्षस्यः स्वपरद्विपक्षःपुस्तकसोपकृत ॥

ये दोनों अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। इसके लिए प्राचीन शास्त्रकारोंमें विशेष अनुसंधानकी आवश्यकता है।

८ शास्त्रपद्यक—हम पहले आचार्य पूम्पयदेकी कथा दे चुके हैं। उक्त लेखके इनके कथाये हुए एक शब्दपद्यक का उल्लेख किया है। एक शास्त्रपद्यक त्रियाकशासनं भी संश्लेषित है। इस पर वं प्रभावचन्द्रकी संस्कृत टीका है। शास्त्रपद्यके प्रारम्भमें वं प्रभावचन्द्रकीने जो उरणिकर ही है उतमें कयासेपद्यक चन्द्रप्य शक्ति मतका समर्पन करते हुए करते हैं कि श्री पादपूज्य स्वामीका चन्द्रविमलरसाधि हा गद् भी जिस दूर करनेके लिए वे रचित करते हुए करते हैं 'चन्द्राण'। इसका अन्तमें जो श्लोक आया है उतमें 'चरि प्रसन्नं कु' इत्यादिपदद्वारा भी यही मान व्यक्त होता है। उक्त विवृत होता है कि सम्भव है अतमें अन्तमें पूम्पयदे आचार्यकी दृष्टि विमलरसाधि हा गद् हा और उक्त दूर करनेके लिए उन्होंने ही शास्त्रपद्यक लिखा हा। यदि यह अनुमान ठीक हा तो शास्त्रपद्यक अन्तकी यह कृति मानी जा सकती है जो सम्भवतः उन कृतियोंके अन्तमें निरणी गद् होगी।

९ सारसग्रह—आचार्य पूम्पयदेव एक 'सारसग्रह' नामक ग्रन्थका मा निमाया किया था एवं पदसारे एक उल्लेखित शत होता है। यथा—

'सारसग्रहेऽप्युक्तं पूम्पयदे—अनन्तरवत्पुत्रमकृत्वा चन्द्रमुनेऽनन्तरमपराधाधिगम कर्त्तव्यं प्रातःकालेपुत्रा  
निरवधप्रयोगो वय इति ।

सर्वाधीनिकमें आचार्य पूम्पयदेने जो नवग्रह लक्ष्य दिशा है इनमें हम लक्ष्यमें पद्य कुछ वाक्य है इसलिए यह मानना पारत काण्य है कि यह ग्रन्थ आचार्य पूम्पयदेकी ही कृति होनी चाहिए।

१ विचित्रसाक्षात्कार—इस शतका कित्त करनेवा न भी कई प्रमाण मिलते हैं कि आचार्य पूम्पयदेने देवक विजय पर भी कई अनुसंधान ग्रन्थ लिखा था। यथा—

१ आचार्य शुभचन्द्रागा रचित शान्तापद एक इलाकका उल्लेख इन पदों पर आय है। उतमें उनका बचने का बचनमय काय विचित्रमय मान कायनपरा दूर करनेपरा का गत है।

१ इस प्रयोग की कृतिपदी का उल्लेख 'चरिच' विजय शान्तापद काव्यक विचित्रमयी इत विविध ज्ञानसाधिका और हिनियम नामक ग्रन्थ दक्षिण।



सनाभमस्यके सामने सर्वार्थसिद्धि का अर्थ हो उपस्थित होनी चाहिए ; तुलनाके लिए देखिए—

सर्वार्थसिद्धि अ १ सू १५ में चारवा मतिज्ञान का लक्षण इन शब्दोंमें दिया है—

‘आबल्लेय क्खाल्लेरेअविम्मरयकारणम् ।’

विशेषावरकभाष्यमें इन्हीं शब्दोंको बुझयते हुए कहा गया है—

‘आबल्लेरे य लं पुसरत्तुमारयं चारवा हा उ त गा २४१ ॥

चन्द्र इन्द्रिय अपान्यकारी है यह अज्ञाते हुए सर्वार्थसिद्धि अ १ सू १६ में कहा गया है—

सत्तोक्कप्राप्यकारीति ।

यही बात विशेषावरकभाष्यमें इन शब्दोंमें स्पष्ट की गई है—

लौकिकमपत्तविसर्गं मयोक्त्वं ॥ गा० २ १ ०

सर्वार्थसिद्धि अ १ सू २ में यह शंका की गई है कि प्रथम सम्पत्त्वामी उदासिके समय दोनों जनों उत्पत्ति एक साथ होती है इसलिए भूतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है यह नहीं कहा जा सकता । यथा—

आह प्रथमसत्त्वकत्वोत्पत्तौ सुगणज्ञानपरिणामात्ममतिपूर्वकत्वं भूतत्व नोत्पद्यत इति ।

अब इसके प्रकाशमें विशेषावरकभाष्यकी इस भाषाको देखिए—

यायावद्याय्याधि य समकासाह अभी महसुपाह ।

तो न सुर्व महसुर्व महसाह वा सुपज्ञात् ॥ गा १ ७ ॥

इस प्रकार यद्यपि इस तुलनासे यह वा बात होता है कि विनमर गथि सनाभमया ( वि सं ६६६ ) सामने आचार्य पूम्पयादकी सर्वार्थसिद्धि उपस्थित थी हागी पर इससे इनके वाक्यत्व अज्ञ पर विशेष प्रकाश ; पड़ता । इसके लिए आगेके प्रमाण देखिए—

१ शक सवत् १८८ ( वि सं ५२१ ) में लिखे गये मकय ( कुर्ग ) के सम्प्रपत्र में गगनरीय २ अधिनीतके उपलेखके साथ कुन्दकुन्दान्दय और देशीय गणके मुनिपौत्री परम्परा दी गई है । दूसरे प्रमाणोंमें भी विदित होता है कि यद्य अधिनीतके पुत्रक नाम बुर्कियत या और ये आचार्य पूम्पयादके शिष्य थे ।<sup>१</sup> २ बुर्कियतका सम्प्रपत्र वि० सं ५१८ के लगभग माना जाता है, अतः इस आचार्य यह कहा जा सकता है आचार्य पूम्पयाद ५वीं शताब्दिके उत्तरार्ध और विक्रमकी ६वीं शताब्दिके पूर्वार्धके मध्य कालमें होने चाहिए ।

२ वि सं २६ में धन देवसेनके इरानदारके एक उपलेखसे भी इस तथ्यकी पुष्टि होती है । इससे यह कहा है कि श्री पूम्पयादके एक शिष्य ब्रह्मनन्दी ये किन्होंने विक्रम सं ५२९में अहिह उपकी स्थापना की । इरानदारके उपलेख इस प्रकार है—

सिधियुज्जवापत्तीसो शक्तिइसंभन्स कारगो बुद्धो ।

यामेय बज्जव्यरी पाहुइवरी महत्सपो ॥

पंचसप् सप्तमीस विहमरायस्स धरयपत्तम् ।

शक्तिपमहुरा कारी शक्तिइसंभो महामाहा ॥

इस पहले नन्दितंपकी पहावतीका उपलब्ध कर प्राप्त है । उसमें दधनर्दी ( पूम्पयाद ) का समय वि सं २५८ सं १ ८ तक दिया है और इनके बाद ब्रह्मनन्दी तथा गुणनन्दीका नामनिर्देश करने के बाद ब्रह्मनन्दी नामोल्लेख किया है । साथ ही इन पहले पाठइसुगणके भाषिणा इमबन्धायायमा गुणवतीका भी उपलब्ध ।

आये हैं। इसमें भी नन्दिसंघके छत्र आचार्योंका नन्दिसंघकी पहाड़की अनुधार नाम नियोज किया है। किन्तु इसमें देवनागरीके बाद गुणनन्दके नामका उल्लेख करते ब्रह्मनन्दका नाम दिया है। यहाँ यद्यपि हम यह मान लें कि इन दोनोंमें यह मतभेद बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। क्योंकि पर्व परमपदक अनुधार जिन्हें ब्रह्मनन्दे आचार्यों की परम्परा मिली उन्होंने उक्त क्रमसे उनका नाम निर्देश किया है और एसी श्याम, एकदि नाम छूट जाना या इस्तेर हो आना स्वभाविक है। पर छत्र बड़ा प्रश्न आचार्यपूज्यवादके समपन्न है। मध्यके लक्षणमें किन आचार्योंका नाम निर्देश है उनमें पूज्यवादक नाम नहीं आता तथा अविनीतके पुत्र मुक्तिवत्के वे विद्यागुरु य इत्यस्य एषा माध्यम वेत्ता है कि नन्दिसंघकी पहाड़कीमें आचार्य देवनागरी और ब्रह्मनन्दके सम्पर्क अथवा नन्दिसंघ और गुणनन्दि ये दो नाम आते हैं। गुणनन्दि यह नाम तो मध्यके लक्षणमें भी है और सम्भव है कि मध्यके लक्षणमें ब्रह्मनन्द नाम देवनागरी लिया है वे नन्दिसंघकी पहाड़कीमें अथवा देवनागरी उल्लिखित किये गये हैं। यदि यह अनुमान ठीक हो तो इधरे दो समसाम्ये सुलभ आती हैं। एक तो इधरे इत अनुमानकी पुष्टि हो जाती है कि नन्दिसंघकी पहाड़कीमें आचार्य पूज्यवादके पूर्वकी कुछ आचार्यों के नाम छूट गये हैं। दूसरे नन्दिसंघकी पहाड़कीमें आचार्य पूज्यवादके बाद किन दो आचार्योंका नाम उल्लेख किया है उन्हें मध्यके लक्षणमें उल्लिखित नामोंके अनुधार आचार्य पूज्यवादके पूर्वकी मान जानेसे दर्शनधरके उल्लेखानुसार ब्रह्मनन्द आचार्य पूज्यवादके अनन्तर उल्लेखकर्ता ठहर आते हैं। और इस तरह उनके समकक्ष निर्वाचन करनेमें जो अठिनार प्रतीत होती है वह इधर हो जाती है। इस प्रकार इन सब तथ्योंको देखते हुए यहाँ कहा जा सकता है कि आचार्य पूज्यवाद विक्रम ३ की शताब्दिके उत्तरार्धसे लेकर ३ की शताब्दिके पूर्वार्धके सम्प्रकाशकर्ता होने चाहिए। श्रीमान् पण्डित नाथूरामजी प्रसाद प्रयत्नपूर्वक विद्वानोंका भी लगभग यही मत है।<sup>१</sup>

१ इन्ही बीच साहित्य और इतिहास पृ ११५ आदि। ऐसीप्रति आचार्य पूज्यवादके समपन्न विचार करने समय इन का अज्ञानता बाल्यी पाठके मतका विचारकर जो निष्कर्ष निकला है उससे हम सहमत हैं।

# विषयानुक्रमिका

## प्रथम अध्याय

मंगलाचरण	१
उत्पत्त्यसूत्रकी उत्पत्तिका	२
अ त्वात्प्र हित मोक्ष है यह कलाते हुए मोक्ष का स्वरूप निर्देश	२
विभिन्न प्रवादिनोंके द्वारा माने गये मोक्षके स्वरूपका उद्घाटन और निराकरण	२
मोक्ष प्राप्तिके उपायमें विभिन्न प्रवादिनोंका भिन्नवाद और विशेष्यार्थ द्वारा इस उक्त स्पष्टीकरण	१४
मोक्षमार्गका स्वरूपनिर्देश	५
सम्पत् शब्दकी निरुक्ति सम्पत्तान और सम्पत्कारिकाका स्वरूप और 'सम्पत् विशेष्यार्थकी सार्थकता	५
दर्शन ज्ञान और पारिव्रज्य निरुक्ति कर्त्ता और करणके एक होने की व्यापत्तिका परिहार	९
सूत्रमें सर्वप्रथम दर्शन, अनन्तर ज्ञान और उसके अन्तर्में पारिव्रज्य शब्द रखनेका समर्थन	९
'मार्ग' इस प्रकार एकत्रचन निर्देशकी सार्थकता का व्याख्यानका उद्देश्य-निर्देश	७
तत्त्व शब्दकी निरुक्ति	८
अर्थ शब्दकी निरुक्ति	८
उत्पत्त्यकी निरुक्ति पूर्वक सम्पत्दर्शनका स्वरूप	८
'द्वय' शब्दका अर्थ आत्मोक्त है फिर अज्ञान अर्थ कैसे संभव है इस शंकाका समाधान	८
अर्थ-अज्ञान या तत्त्व अज्ञानकी सम्पत्दर्शनका लक्षण मानने पर प्राप्त होनेवाली व्यापत्तियोंके परिहारार्थ तत्त्व और अर्थ दोनों परीकी उपयोगिता	८
सम्पत्दर्शनके लक्षण और भीतरगत इन दो भेदोंका स्वरूप	१०

विशेष्यार्थद्वारा प्रकृत विषयका स्पष्टीकरण	१	१९
सम्पत्दर्शनकी उत्पत्तिके दो प्रकार		१९
निसर्ग और अधिगम शब्दका अर्थ		१९
निसर्ग सम्पत्दर्शनमें अधिगम होता है या नहीं, इस शंकाका समाधान		१९
'अभिगमाधिगममाहा' इस सूत्रमें आये हुए 'त्त्वं' पदकी सार्थकता		१९
साध तत्त्वोंका नाम निर्देश		१७
साधों तत्त्वोंके स्वरूपका प्रकियादन कर उनके क्रमिक पाठकी सार्थकताका निरूपण पुष्प और पापको महत्कार नष्ट पदार्थ क्यों नहीं कहलाते इस शंकाका समाधान		१५
मानवाची उत्पत्त शब्दका अर्थसाधक बीजादि पदोंके साथ समानाधिकरणाका विचार विशेष्यके सिंग और संस्थाके अनुसार प्रकृतमें विशेष्यका भी वही सिंग और संस्था होनी चाहिये, इस आक्षेपका परिहार		१६
नामादि चार भिन्नोक्तोंका प्रतिपादन		१७
नामादि चारों निदेशोंका स्वरूप		१७
चारों निदेशोंके द्वारा भीतरगतका निरूपण	१७	१८
नामादि निदेशोक्तिकी उपयोगिता		१८
नामादि चारों सूत्रोंमें प्रयुक्त हुए 'त्त्वं' पदकी सार्थकता		१८
विशेष्यार्थद्वारा विशेष्यविषयका स्पष्टीकरण		१८
प्रमाद्य और लक्षण निर्देश		९
प्रमाद्यके स्वरूप और परार्थ से दो भेद तथा उनका स्वरूप		९
सूत्रमें नयपदके पूर्व प्रमाद्य पर रखनेका कारण		२
मयका स्वरूप उद्घाटित और विज्ञान देशका निर्देश		२०

नये मूल भेदोंका स्वरूपनिरूपण व उनका विवरण	२	२१
बीबाबि लक्ष्मि के अधिगमके उपायमूल अथ अनुयोगद्वाराका निरूपण		२१
निर्देश स्वामित्वादि लक्ष्यों अनुयोगद्वाराका स्वरूप		२२
निर्देश अनुयोगद्वारते सम्बन्धार्थनका निरूपण		२२
सम्बन्धार्थनके स्वामित्वका सामान्यके निरूपण		२
सम्बन्धार्थनके स्वामित्वका विशेषकी अपेक्षा निरूपण करते हुए गतिमार्गवाके अनुवादते प्रतिपादन	२२	२१
इतिहासमार्गवाके द्वारा सम्बन्धार्थनके स्वामित्वका वर्णन		२४
अथवादि रोप मार्गवाओके द्वारा सम्बन्धार्थनके स्वामित्वका निरूपण	२४	२५
सम्बन्धार्थनके सम्बन्ध और अथवा शक्तोंका प्रतिपादन	२५	२७
सम्बन्धार्थनके सम्बन्ध और अथवा अथि अथवाका निरूपण		२७
सम्बन्धार्थनके औपनिषदादि भेदोंकी स्थिति का प्रकल्प	२७-२८	
विधान अनुयोगकी अपेक्षा सम्बन्धार्थनके भेदोंका प्रतिपादन	२८	२९
लक्षाधिकारके उपायमूल अथ संबंधादि अथ अनुयोगद्वाराका निरूपण		२१
अथ संबंधादि अथ अनुयोगोंका स्वरूप		२९
निर्देश व स्वामित्वादिके अथ संबंधादिको प्रथम करनेका क्रम	२९	३
१ सत्यप्रकृत्या	३	३३
सत् अनुयोगद्वाराकी अपेक्षा बीच लक्षण निरूपण		३
बीच लक्षणके विशेष परिज्ञानके लिए बीदह मार्गवाओका प्रतिपादन		३
सत्यप्रकृत्याके सामान्य और विशेष भेदोंके द्वारा बीच लक्षण निरूपण		३१
बीदह मार्गवाओमें संभव गुणत्वानोंका प्रकल्प		३१ ३३

२ सत्या प्रकृत्या	३४-४०
बीदह गुणत्वानोंकी अपेक्षा बीच लक्षण का निरूपण	३४
गतिमार्गवाकी अपेक्षा चारों गतिमें संभवका निरूपण	३४ ३५
इतिहासमार्गवाकी अपेक्षा बीचसंबन्धका निरूपण	३५ ३६
अथमार्गवाकी अपेक्षा	३६
योगमार्गवाकी अपेक्षा	३६
वेदमार्गवाकी अपेक्षा	३६ ३७
अथमार्गवाकी अपेक्षा	३७
ज्ञानमार्गवाकी अपेक्षा	३७ ३८
संभव मार्गवाकी अपेक्षा	३८
दर्शनमार्गवाकी अपेक्षा	३८ ३९
तेरनामार्गवाकी अपेक्षा बीचसंबन्धका निरूपण	३९
मन्त्रमार्गवाकी अपेक्षा	३९
सम्बन्धमार्गवाकी अपेक्षा	३९ ४०
संविमार्गवाकी अपेक्षा	४०
आहारमार्गवाकी अपेक्षा	४०
३ क्षेत्रप्रकृत्या	४१ ४३
सामान्यके बीदोंके क्षेत्रका निरूपण	४१
गतिमार्गवाकी अपेक्षा बीचोंके क्षेत्रका निरूपण	४१
इतिहास मार्गवाकी	४१
अथमार्गवाकी	४१
योगमार्गवाकी	४१ ४२
वेदमार्गवाकी	४२
अथमार्गवाकी	४२
ज्ञानमार्गवाकी	४२
संभवमार्गवाकी	४२ ४३
दर्शनमार्गवाकी	४३
तेरनामार्गवाकी	४३
मन्त्रमार्गवाकी	४३
सम्बन्धमार्गवाकी	४३ ४४
संविमार्गवाकी	४४
आहारमार्गवाकी	४४
विशेषार्थके द्वारा क्षेत्रप्रकृत्या का स्वीकरण	४४ ४५
४ स्थान प्रकृत्या	४५ ४६
गुणत्वानोंकी अपेक्षा बीचोंके स्थानका निरूपण	४६

गतिमार्गशास्त्री	,	"	"	४४	४८
इन्द्रियमार्गशास्त्री	,	"	"	४८	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	४९	
योगमार्गशास्त्री	"	"	"	४९	
वेदमार्गशास्त्री	,	"	"	४९	५
कायमार्गशास्त्री	,	"	"	५१	
ज्ञानमार्गशास्त्री	,	"	"	५१	
संयममार्गशास्त्री	"	"	"	५१	
दयानमार्गशास्त्री	,	"	"	५१	
संशयमार्गशास्त्री	,	"	"	५१	५१
सम्पत्सम्पत्शास्त्री	"	"	"	५१	५१
संशयमार्गशास्त्री	,	"	"	५४	
आहारमार्गशास्त्री	"	"	"	५४	

३. शास्त्र प्रकरण

गुणरथानोमे	अथवा	बीबीके	अलक्ष	पण	५५	५६
गतिमार्गशास्त्री	,	"	"	"	५६	५८
इन्द्रियमार्गशास्त्री	"	"	"	"	५८	
कायमार्गशास्त्री	,	"	"	"	५९	
योगमार्गशास्त्री	"	"	"	"	५९-६०	
वेदमार्गशास्त्री	,	"	"	"	६०	६१
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	६१	
ज्ञानमार्गशास्त्री	,	"	"	"	६१	
संयममार्गशास्त्री	"	"	"	"	६१	
दयानमार्गशास्त्री	,	"	"	"	६१	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	६१-६२	
सम्पत्सम्पत्शास्त्री	"	"	"	"	६१-६४	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	६४	
आहारमार्गशास्त्री	"	"	"	"	६४	

४. अन्तर प्रकरण

वा	गुणरथानोमे	बीबीके	अन्तर	कर्म	६५	६७
गतिमार्गशास्त्री	अथवा	"	"	"	६७	
इन्द्रियमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७०	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७१-७२	
योगमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७२	
वेदमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७२-७६	

कायमार्गशास्त्री	अथवा	बीबीके	अन्तर	कर्म	७४	७५
ज्ञानमार्गशास्त्री	,	"	"	"	७५	७६
संयममार्गशास्त्री	"	"	"	"	७६	७७
दयानमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७७	७८
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	७८	८०
सम्पत्सम्पत्शास्त्री	"	"	"	"	८०	८२
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८२	८३
आहारमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८३-८४	

७. भाष्य प्रकरण

बीबीके	गुणरथानोमे	बीबीके	भाष्य	प्रकरण	८४	८५
गतिमार्गशास्त्री	,	"	"	"	८६	
इन्द्रियमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
योगमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
वेदमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
ज्ञानमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
संयममार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
दयानमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
सम्पत्सम्पत्शास्त्री	"	"	"	"	८६	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	
आहारमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८६	

८. अन्तर प्रकरण

बीबीके	गुणरथानोमे	बीबीके	अन्तर	कर्म	८६	८७
गतिमार्गशास्त्री	अथवा	"	"	"	८७	
इन्द्रियमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
योगमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
वेदमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
कायमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
ज्ञानमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
संयममार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
दयानमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	
सम्पत्सम्पत्शास्त्री	"	"	"	"	८७	
संशयमार्गशास्त्री	"	"	"	"	८७	



सम्पन्नमार्गवाची	, , ,	६०
सम्पन्नमार्गवाची	, , ,	६२
उत्तरीमार्गवाची	, , ,	६२
आहारमार्गवाची	, , ,	६३
सम्पन्नानके पाँच भेद		६३
सम्पन्नानके पाँच भेदोंका स्वरूप	६३-६५	
मतिगानाधिक्रमण पाठ रत्नेश्वर करण		६५
य पाँचों ज्ञान हो प्रमादकर है हर बातक		
विद्वेष		६६
कर्मिकों और इन्द्रियकी प्रमादात्पण		
नियन्त्रण	६६-६७	
ज्ञानके कलका निरूपण	६७-६८	
विद्यार्थ्य द्वारा कर्मिकों और इन्द्रियकी		
प्रमाद्य मानने पर उठनबाध धारणा		
स्वीकारण और उनका परिहार	६६-६७	
परमज्ञानका प्रविष्टारण	६७-६८	
परमज्ञान स्वरूप	"	
सम्पन्नानका प्रतिपादन	६८-६९	
प्रत्यक्ष स्वरूप	६९-७०	
विमलज्ञानकी प्रमादात्पण नियन्त्रण	७०-७१	
इन्द्रिय-स्पर्शरहित ज्ञानको प्रत्यक्ष		
माननेमें योग	७१-७२	
मतिज्ञानके पर्यायवाची नामोंका प्रतिपादन	७२-७३	
मति स्वरूप और विन्यास नामोंकी		
नियन्त्रिण व स्वरूप	७३-७४	
मतिज्ञानकी उत्पत्तिका विहित	७४-७५	
इन्द्रिय और अविन्द्रियका स्वरूप	७५-७६	
कृ परमो सर्वज्ञता	७६	
मतिज्ञानके भेद	७६-७७	
असम्यक् आदिवा स्वरूप	७७-७८	
असम्यक् आदि विषयभूत वस्तुओं के भेद	७८-७९	
बहुभूतिका स्वरूप	७९-८०	
बहु और बहुविधों अस्मर	८०-८१	
कर्म और विद्यार्थ्ये अस्मर	८१-८२	
विद्वेषन गुण अस्मरकी मूल्य और	८२-८३	
स्वरूप अर्थ	८३-८४	
बुद्धिस्वरूप और अस्मरके भेद	८४-८५	

बहु आदि अर्थ के अस्मर आदि होते हैं	११२
अर्थ पर देनेकी स्वार्थकता	११३
स्पर्शन का अस्मर ही होता है	११६
स्पर्शन अस्मरका अर्थ	११६
व्यञ्जनाभेद और अर्थानुक्रममें भेद	११७
स्पर्शनाभेद बहु और मनसे नहीं होता	११८
आगत और मुक्तिसे जड़ और मनकी	
अप्राप्त्यकारिताकी स्थिति	११८-११९
भुक्तज्ञानका स्वरूप और इसके भेद	११९
मत्सुपूर्वक भुक्तज्ञानके माननेमें आनेवाली	
आपत्तियोंका परिहार	१२०
भुक्त नयमेव कर्षणित् अनादिनिबन्ध और	
कर्षणित् आदि है	१२१
भुक्त पूर्वक भी भुक्तमान उदाहरण होता है इस	
आशङ्कका समाधान	१२२
भुक्तके भेद व उनका कारण	१२३
विद्योपाय द्वारा भुक्तज्ञानका स्वीकारण	१२४
भवप्रत्यक्ष अर्थविज्ञानके स्वामी	१२५
भवप्रत्यक्ष करनेका कारण	१२६
चक्षुराद्य निमित्तक अर्थविज्ञानके स्वामी	१२७
अर्थ चक्षुराद्य सुद मेद व उनका स्वरूप	१२७
मनःपर्यवसानके भेद और स्वरूप	१२८
सुप्तमति और विपुलमति का अर्थ	१२८
मनःपर्यवसान मतिज्ञान नहीं है	१२९
इन ज्ञानों ज्ञानोंका क्षेत्र और कालकी	
अभिज्ञान विषय	१३०
सुप्तमति और विपुलमति मनःपर्यव	
संभवे अस्मर	१३१
विपुल और अस्मरका अर्थ	१३१
विपुल और अस्मरका अर्थ द्वारा ज्ञानों ज्ञानों	
में अस्मरका विद्यार्थ्य कथन	१३२
अर्थविज्ञान और मनःपर्यवसानके विद्यार्थ्य	१३३
विपुल आदि का ज्ञानों ज्ञानोंमें अस्मर	
का विद्यार्थ्य स्वीकारण	१३४
मतिज्ञान और अस्मरका अर्थ	१३५
मतिज्ञानकी अस्मरि ज्ञानमें मनः पर्यव	
सती है	१३६



ईन्द्रिय आदि शब्दोक्त अथ	१७३	उम्हर्तुन गर्भ और उपवाद परका अर्थ	१८७
ईन्द्रिय आदि की शैली प्राग्य	१७३	चौपथी सात मानिवा किन्के कितनी होती है	१८८
इन्द्रियो की संख्या	१७४	पानिचोकि मेर	१८०
इन्द्रियोंम क्रमोन्द्रियोका प्रदण नरी होय	१७४	सबिल आनि पदोका अर्थ	१८७
इन्द्रि तिक वा अरु	१७४	तृ पन्थी कार्यकथ	१८७
इन्द्रियक वा अरु	१७५	योनि और अन्तमें अन्तर	१८७
निर्वात और उरक्षणका अथ व इनक मर	१७५	किम भीपके योनि होती है इच्छा कुलाख	१८७
भक्षत्रियक वा अरु	१७५	गर्भ अन्तक स्वामी	१८९
सन्धि और उरयोगका अर्थ	१७५	अस्यु आदि पन्थोका अर्थ	१८९
उरयोगका इन्द्रिय करनेका कारण	१७५	उपवाद अन्तके स्वामी	१९१
बाब इन्द्रियाक विषय	१७८	सम्भर्तुन अन्तक स्वामी	१९१
अमनान और मायमनन काय		अन्तके स्वामियोके प्रतिवादक लीनों सूत्र	
दशार्थोकी सिद्धि	१७८	निषमायक है	१९०
मनका विषय	१७९	शरीरक बाब अरु	१९१
धुल शब्दक वा अर्थ	१७९	शरीरक आदि पदोका अर्थ	१९१
अमनानि पपल त्रीनांक एक इन्द्रियकारी क	१८०	अशरीरों उत्तरात्तर भूकम्पना	१९१
एतल इन्द्रियकी उपपिका काय	१८०	तत्रमसे पूर्व तान शरीर उत्तरात्तर प्रसूतोकी	
कृमि आदि त्रीनांक वा आदि इन्द्रियो इना है	१८०	अपका अर्थमनागुण है	१९१
किम अन्त इन्द्रियो बर्ती है उनका नामनिर्देश	१८०	गुणकारका प्रमाणा	१९२
संकी त्रीनाका अर्थ	१८१	अन्तक वा शरीर अन्तगुण है	१९३
सम्भर्तुन पर इनकी कार्यकथ	१८१	अन्तक आर कामल शरीरकी अग्रनीपालना	१९३
विषयगतिस त्रीनाकी गतिका कारण	१८२	प्रतीपात परका अर्थ	१९३
विषय अन्त व पाग शरिका अथ	१८२	वेदिकिक और आहारक शरीरका अग्रनीपालत	
गतिका विषय	१८३	क्यों नरी कथ	१९३
अन्त शब्दका अर्थ	१८३	अन्तक और कार्यकथ अन्तगुण	१९४
गतिगती कायकथ	१८३	अ पन्थी अयकथ	१९४
बाब और दशविषयका विधान	१८४	अन्तक अन्त कामकके स्वामी	१९४
विषय शब्दका अर्थ	१८४	एक त्रीनांक एक पाप अन्तक शरीरोकी संख्या	१९५
अन्तका शैक्षण सूत्रका कायकथ	१८४	कामल शरीरका निरुपमागना	१९५
अन्त त्रीनाकी गति का निरुपमागना	१८५	अन्तगुण पन्था अथ	१९५
निरुपमागना मरुत निरुपमागना अन्त		अन्तक शरीर की निरुपमागना के विषय अथ	
अन्तक अर्थ लो निर्दिष्ट अर्थ	१८५	अन्तक वसे नरी कथ	१९५
अन्तकशरीर गतिका अर्थ निर्देश	१८५	अन्तक शरीर विषयक अन्तक अन्तक अन्तक	१९५
अन्तक शरीरका अर्थ निर्देश	१८५	अन्तक शरीर विषय अन्तक अन्तक अन्तक	१९५
अन्तक अर्थ निर्देश	१८५	अन्तक शरीर विषय अन्तक अन्तक अन्तक	१९५
अन्तक अर्थ	१८५	अन्तक शरीर विषय अन्तक अन्तक अन्तक	१९५

सबभरतीर भी अविशयवय हाता ह	११०
आहारकरतीरकी विशेषता श्रीर रचामी	११८
शुभ आदि पदोंका अर्थ	१६८
आहारकरतीरकी उरपीका प्रवीकन	१६८
नारक आर मम्पूँवनाके बरका बर्यन	१११
नारक शब्दका अर्थ	१६६
देतोंके बेइका बखन	१११
शेव आबोंक बरका बखन	१
किगके दो भेद व उनका अर्थ	२
की आदि शब्दोंकी व्युत्पत्ति	२
अनरकमन्वन्मुक्त ब्राह्मोंका निरूपण	१११
औपपादिक आदि पदोंका अर्थ	२१
पाठान्ताका निर्देश	२०

### तीसरा अध्याय

नारककी सात भूमियाँ व उनका आचार	११
अनप्रमा आदि नामोंकी धार्मिकता	११
भूमि' पदकी धार्मिकता	११
भूमि तीन बावणवय और आचार इनमें	
आचार आषयमात्र	१०४
सप्त पदकी मायकता	१४
विशेषाद्य द्वारा अर्थोक्तका विशेष स्पष्टीकरण	१०४
भूमिबोधे बरकों ( विसों ) की संख्या	१५
भूमियोंमें नरक प्रहाराका विचार	१५
नारक निरन्तर अष्टमतरकरया आदि बाह	
दोन ही इन्द्रका विचार	१६
निर शब्द का अर्थ	१६
किंत भूमिमें तीन तरया है इतका विचार	१७
कामनर्य और मायनर्यका बाह	१७
नारकियाक देहका विचार व देहकी उच्चार	१७
नारकियोंके तीर वेदनाका कारण	१७
नरकोंम उभुता व शीलका विचार	१७
नारकी मन्वाकल अष्टम विक्रम करत है श्रीर	
अष्टम निमित्त जोइत है	१
नारकी आषयमें हु लक कारण हात है	१८
परपर हुअ उचन बरनेके कारणोंका निर्देश	१८

नारकियोंकी विधियाते ही लणपर, बरदी	
आदि कनेते हैं	२०८
रंमिरी भूमि तक अमुरोंके विभिन्नमे हु लकी	
उत्पात्त	२१
अमुर शब्दका अर्थ	२६
अमुरोंके अन्विणर विशेषाद्यी धार्मिकता	६
कुछ अन्वयकीय आदि देव ही दुःखमें निमित्त	
होते है इतका निर्देश	२६
सूत्रमें आये हुए 'अ' पदकी धार्मिकता	१६
नारकियोंके अक्षलमर्य न होनेका कारण	१६
नारकियोंकी उल्लूक भाषु	२१
'अस्तानाम्' पद की धार्मिकता	२१
तिर्यंशोक पदका अर्थ	२१
हीनों और मयुत्रोंक सुखम सुखम नामोंका निर्देश	२११
हीनों और मयुत्रोंके अन्त नामोंका निर्देश	२११
हीनों और मयुत्रोंका विष्काम और अ कृति	२११
सूत्रमें आये हुए प्रत्येक पदकी साधकता	२११
अमृत्वपदकी अन्विणर और अन्वय	६१२
अमृत्वपद नाम पदकका अर्थ	२१२
अमृत्वपदकी अन्विणर कदा है और कदा किंत	
रूप है इतका विचार	२१२
विशेषाद्य द्वारा मन्वाकल और सुख पर्यंत	
का बखन	११
सात अर्थों की संख्या	२११
मरत आदि संशयों अन्विणरक और	
अनादि हैं	२११
तीन धेप कदा पर है इतका विचार	२११
सात अर्थों का विभाग करदेनाके लक्ष बुधाकन	
पर्यंत	२१४
ये कत कदा ग कदा तक येन हुए हैं	११४
दिनान्तर आदि नाम अन्विणरक और	
अनादि हैं	२१४
दिनान्तर आदि का विचार पर्यंत कनेका	
कारण	११४
तीन परत अष्टम कदा तक अन्विणर है व उनकी	
उच्चार भाग अन्विणर कदा है इतका विचार	२१४
पर्यंत का रंग	११६

पर्वतो की विद्येयता व विस्तार	२१६
'ज' पर्वको व्यर्थक्य	२१६
पर्वतः पर ताम्बाव	२१६
प्रथम व्याख्याका भावनाम व विस्तार	२१६
प्रथम तात्त्विकता अथवागद	२१५
प्रथम तात्त्विकता कर्मका ताम्बाव	२१७
प्रथम व्याख्याके फलके अथवाशोध प्रमाणा	२१७
व अशुद्धता कर्मलोकी अचार्यका प्रमाणा	२१७
अथ तात्त्विक व कर्मलोका प्रमाणा	२१७
कर्मलोका म विचार करकेव्यती सुद वेदिनी व	
अन्य परिवार और आयु	२१८
कर्मलोकी कर्मिकाके बीचमें कर्म हुए प्रमाणाका	
प्रमाणा व रग	२१८
मुख्य कर्मलोके परिवार कर्मलोमें रहनेवाले	
अथ देव	१८
पूर्वको क्षेत्रों में बहनेवाली चौदह व द्वा	२१८
पूर्व समुद्रकी जानेवाली कर्मिका	२१९
पश्चिम समुद्रकी जानेवाली कर्मिका	२१९
कर्म नदी किन्ना तात्त्विकके फल धोरके द्वाराके	
निकली है इत्यादि विचार	२१९
गङ्गा और सिन्धु आदि नदियों की परिवार	
नदियाँ	२२
सुमे गङ्गा और सिन्धु दोनों पर्वोंके रखने	
की व्यर्थक्य	२२
मरुत क्षेत्रका विस्तार	२२१
विदेह नर्मदा आगेके पर्वतो व क्षेत्रों का	
विस्तार	२२१
उत्तरेके क्षेत्र व पर्वतोके विस्तारका प्रमाणा	२२२
मरुत और पुरुषव क्षेत्रमें कर्मका अतिवर्तन	२२२
यह परिवर्तन क्षेत्रका न होकर बहकि बीनोंका	
होया है	२२२
गङ्गा परिवर्तन अनुभव आयु और प्रमाणादि	
हूठ होय है	२२२
अनुभव आदि शब्दोंका अर्थ	२२३
कर्मके दो भेद और इनमेंसे प्रत्येकेके सुद	
कर भेद	२३
कालके दोनों भेदोंकी अर्थ वीर्य	२२३

सुम्भयुगमा आदि कर्मोका प्रमाणा आदि	२२३
रूप भूमिवाँ अथवास्थ है	२२४
हिनवत आदि मनुष्योंकी आयु	२२४
हिनवत आदि क्षेत्रोंमें कर्मका फल प्रवर्तय है	
व बहकि मनुष्योंका रंग व आहार आदि	
किन्ना प्रकारका है	२२५
दक्षिणके क्षेत्रोंके तमाम उत्तरेके क्षेत्रोंका	
वर्णन है	२२६
विदेहमें कर्मका प्रमाणा	२२६
विदेहमें कर्म मनुष्योंकी उँचारी, आहार	
और आयु का विचार	२२५
पूर्वका प्रमाणा	२२६
मरुतक्षेत्रके विष्कम्भका शोषणवि विचार	२२६
कर्मलोकीके बाद कर्मका सुद है और	
तरनन्तर कर्मका शोषण है इत्यादि निर्देश	२२६
कर्मलोकीके इतिहासके क्षेत्रादिका विचार	२२६
कर्मलोकीके इतिहासके और उत्तर इन	
दो भागोंमें विभाजित करनेवाला दो	
इत्यादि पर्वत	२२७
कर्मलोकीके शोषणके दो भेद	२२७
कर्मलोकीके शोषणके दो भेद	
और दो भेद कर्मका आदि	२२७
कर्मलोकीके शोषणके दो भेद व पर्वतोंका	
उत्थान व विष्कम्भ	२२७
कर्मलोकीके शोषणके उत्तरपर कर्मलोकीके	२२७
कर्मलोकीके शोषणके बाद कर्मका सुद व	
उत्तर विचार	२२७
पुष्कराक्षमें क्षेत्रादिका विचार	२२७
पुष्कराक्षमें इत्यादि पर्वत व पुष्कर वृक्ष	
आदि निर्देश	२२८
पुष्कराक्ष अथवा	२२८
मानुष्योत्तर पर्वतके पर्वके मनुष्य है	२२८
मानुष्योत्तर पर्वतका विशेष वर्णन	२२८
मानुष्योत्तर पर्वतकी लंबाई कर आदिवासी	
मनुष्य ही नहीं था उनके	२२९
मनुष्योंके भेद	२२९
आर्यशाब्दका अर्थ और आर्योंके भेद	२२९

श्लेषोंके भेद व उनके क्रिये वर्णनके प्रयोगे अन्तर्हीनोका वर्णन	२१
शब्द, यका आदि कर्मभूमिभ श्लेष हैं इस बातका निर्देश	२११
कर्मभूमि क्यों क्यों है	२११
भोगभूमि क्यों क्यों है	२१२
कर्म शब्दका अर्थ	१२
कर्मभूमि और भोगभूमि बनेका कारण	२१२
मनुष्योंकी उत्कृष्ट और अधम स्थिति	२१३
पशुके तीन भेद और उनका प्रमाण खाने की विधि	२१३
उदारव्यगारका प्रमाण	२१४
श्रीप-समुद्रोकी गहना	२१४
आडाव्यगारका प्रमाण	
आदाव्यगारके किन किनकी गिनती होती है इसका विचार	२१४
विषयोंकी उत्कृष्ट और अधम स्थिति	२१४
विषयभोगिभ शब्दका अर्थ	२१५
<b>चौथा अध्याय</b>	
इशोक चार भेद	२१६
देव शब्दका अर्थ	२१६
निश्चय शब्दका अर्थ	२१६
आदिक तीन त्रिकाणोंमें अथवा विचार	२१७
इशक्तिवाच्यमें अन्तर्हीनोका निर्देश	२१८
अज्ञानरूप पर देनेकी व्यवस्था	२१८
इशक्तिवाच्यमें अन्तर्हीनोका आभविर्देश	२१८
इन्द्र आदि शब्दोंका अर्थ	२१९
स्वप्न और उद्योगिचोमी किन्ने अन्तर्हीन है इसका विचार	२१९
प्रथम ही त्रिकाणोंमें इश्रोंका विचार	२२
प्रत्येक निश्चयके पश्चात्तर भद्रीके इश्रोंके नाम	२२
अज्ञान अन्तर्हीन प्रतीकारका विचार	२२१
अज्ञान अन्तर्हीन प्रतीकारका विचार	२२१
प्रतीकार पर देनेकी आवश्यकता	२२१
अज्ञान अन्तर्हीन इश्रोंमें प्रतीकार नहीं है इस बातका निर्देश	२२२

महानवाच्योके इस भेद	२४३
महानवाची शब्दका अर्थ	२४३
अक्षरकुमार आदि नामोंमें कुमार परकी कार्यकला	२४३
महानवाच्योका निश्चय स्थान	२४३
व्यन्तरोके अर्थ भेद	२४३
व्यन्तर शब्दका अर्थ	२४३
व्यन्तरोका निश्चयस्थान	२४३
व्योतिष्पिकोंके पाँच भेद	२४४
व्योतिष्क पदकी कार्यकला	२४४
सुखान्तरमत्तों परके वृषक देनेका कारण	२४४
व्योतिष्पिकोंका पूरे विवरणके अथ निश्चयस्थान	२४४
मनुष्य अशोकमें व्योतिष्पिकोंकी निरन्तर भेद प्रवृत्तिका	२४५
व्योतिष्क विमानोंके गमन करनेका कारण	४५
व्योतिष्कदेव भेद पर्यन्त किन्ती दूर रहकर प्रवृत्तिका करते हैं	२४५
गतिमान् व्योतिष्कोंके निमित्तसे काजका विभाग होता है	२४६
आत्मके दो भेद व व्यपहार कात्मका स्वरूप	२४६
मनुष्य कात्मक व्यपहार व्योतिष्क विमान अन्तरिपथ है	२४७
ईशानिकोंके अर्थवत्त्व अन्तर्हीन अर्थिहार शब्द	२४८
विमान शब्दका अर्थ व उसके भद्रीका विचार	२४८
ईशानिकोंका ही भेद	२४८
ईशानिक देव ऊपर ऊपर निश्चय करते हैं	२४८
किन्तु अथ विमानोंमें वे शब्द रहने हैं इसका विचार	२४९
शोकम आदि शब्दके व्यवहारका कारण	४९
भेद पर्यन्तरी उपाह व अज्ञानरूप परिमाण	२५
अज्ञानका आदि शब्दोंकी आवश्यकता	२५
भोगमें कलाका अज्ञान विना कहा पर दे इसका निर्देश	२५१
नरुष परके वृषक देनेका कारण	२५१
इश्रोंमें अज्ञानरूप स्थिति प्रमाणादिहृत्त विज्ञानका	२५१
भक्ति आदि शब्दोंका अर्थ	२५२
भक्ति देनेके अर्थवत्त्व किन्ती उपाह है आदि का विचार	२५२

बैसाहिक देवोंमें खेरपाका विचार	२५३
सुभार्यकी आगमने संगति बिडालेका उपक्रम	२५४
प्रेमिकके पूर्व तक कल्प संज्ञा	२५
बौद्धात्मिक देवोंका विवास स्थान	२५५
लोकान्तरिक शब्दकी सार्थकता	२५५
बौद्धात्मिकोंके आठ भेदों के नाम	५२
फिस हिराममें फिस नामवासे लोकान्तरिक खते हैं इत्यत्र विचार	२५५
'घ' शब्दके समुच्चित श्रम्य लोकान्तरिकोंका निर्देश	२५४
विजयादिकमें हितचरम देव होत हैं	२५६
आदि परत सर्वाथसिद्धिके प्रह्वान होनेका कारण	२५७
द्विचरम शब्दका अर्थ	२५७
सिर्व्योनिस्त किनका प्रह्वान होता है इसका विचार	२५७
सिर्व्य सब शोकमें खत हैं अतः उनका चंग नहीं कहा	२५८
भक्तवचनसियों का अचान्त भेदों की उत्कृष्ट जातु	२५८
सौधर्म और वेदान्त कल्पमें उत्कृष्ट जातु	२५८
आयिक यह आधिकार बचन है इस बातका निर्देश	२५३
सातानुसार और माहेन्द्र कल्पमें उत्कृष्ट जातु	२५३
शय बारह कवियों में उत्कृष्ट जातु	२५३
तु पत्नी सार्थकता	२५३
कहाराजित बिमाली में उत्कृष्ट जातु	२५
सर्वाथसिद्धी परका पूषक प्रह्वान करनेका कारण	२५७
सौधर्म और पशान कल्पमें अल्प जातु	२५९
शय राकमें अल्प जातुका विचार	२५९
द्वितावादित करके में अल्प जातु	२५९
प्रथम करके अल्प जातु	२५९
भक्तवचनसियों में अल्प जातु	२५९
रक्तमती में अल्प जातु	२५९
रक्तमती में अल्प जातु	२५९
रक्तमतीमें अल्प जातु	२५९
रक्तमतीमें अल्प जातु	२५९
लोकान्तरिक देवों में जातुका विचार	२५९

## पाँचवां अध्याय

अधीवकाव इन्द्रोंका निर्देश	२६५
अधय शब्द देवकी सार्थकता	६५
अधीव यह पनादिक प्रम्योंकी खमान्व संज्ञा है	२६६
वे पनादिक इन्द्र है इस बातका निर्देश	२६६
प्रम्य परकी समुच्चित	२६६
ये पनादिक प्रम्यत्व नामक खमान्वके योगसे प्रम्य नहीं हैं इत बात समुच्चित विचार	२६६
'गुणसमुदायो प्रम्यम्' ऐसा माननेमें भी आशय	२६७
प्रम्य परकी समुच्चित और उक्तकी सिद्धि	२६७
प्रम्याधि' मनुष्यन देनेका अर्थ व प्रम्य विशेषताओंका निर्देश	२६७
बीज भी प्रम्य है इस बातका निर्देश	२६८
नैवादिश्लोके द्वारा माने गये प्रम्याके अस्तमान्व की सिद्धि	२६६
इन्द्रोंकी विशेषता	२७
नित्य आदि प्रत्येक परकी व्याख्या	२७०
पुत्ररक्त प्रम्य कृती है इसका विचार	२७१
रूप परका अर्थ	२७१
आकार परान्त एक एक प्रम्य है इसका विचार	२७२
धर्ममें प्रम्य परके प्रह्वान करनेकी साधकता	२७२
पनादिक प्रम्य निष्क्रिय है	२७२
निष्क्रिय शब्दका अर्थ	२७२
पनादिक प्रम्य निष्क्रिय होने पर भी उनमें अपाश्रयिकी सिद्धि	२७३
उत्तरके वा मेर	२७३
निष्क्रिय पनादिक प्रम्य गति आदिके हेतु	२७३
केत ह इत्यत्र विचार	२७३
अर्थ अर्थमें और एक बीजक प्रह्वान	२७४
अल्पसंपर्क तीन मेर	२७४
प्रह्वान शब्दका अर्थ	२७४
धर्म और अधर्म प्रम्य लोकान्तरप्रम्यायी हैं	२७४
धीव शरीरप्रतिष्ठाया शोकर भी लोकान्तर समुदाय के समय लोकान्तरप्रम्यायी होता है	२७४
आकारक प्रह्वानका विचार	२७५
अनन्त शब्दका अर्थ	२७५
पुत्ररक्तिक प्रह्वानका विचार	२७५

‘ब’ पक्षी चार्पक्य	२७५
अनस्यके तीन भेद	२७५
असंख्यारूपदेशी लोकमें अनन्तान्त प्रदेशी स्वरूप कैसे समान है इत्यत्र विचार	२७५
अनुके दो भादि प्रत्यय नहीं होते	२७६
सब ऋषोका जाकाकारमें अलगहाइ व आधापयेविचार	२७७
लोक शब्दका अर्थ	२७८
आकारके दो भेद और उनका अर्थ	२७८
लोकलोक विभागाका अर्थ	२७८
धर्म और अधर्म इत्ये जाकाकारी हैं	२७८
पुद्गल इत्ये जाकाकार एक प्रत्यय आदिमें रहते हैं	२७९
मूर्त पुद्गल एकत्र कैसे रहते हैं इत्यत्र विचार	२७९
जीव जाकाकार असंख्यवभागा आदिमें रहत हैं	२८०
सगुणी अनन्तान्त जीव अर्थअपेक्षमाग आदिमें कैसे रहते हैं इत्यत्र विचार	२८०
जीवके असंख्यवभागा आदिमें रहनेका कारण	२८१
धर्म और अधर्म इत्येका उपकार	२८१
गति स्थिति और उपग्रह पक्षका अर्थ	२८१
उपग्रह पक्षी चार्पक्य	२८२
गति और स्थितिके धर्म और अधर्म इत्येका उपकार	२८२
उपग्रह माननेका कारण	२८२
गति और स्थितिके प्रतिफल न होनेका कारण	२८३
धर्म और अधर्म इत्येकी सिद्धि	२८३
जाकाकार उपकार	२८४
निष्क्रिय धर्मोदि इत्येका आकार कैसे अलगहाइ देता है इत्यत्र विचार	२८४
दो स्वरुपोंके परस्पर एकदमेसे आकारके अर्थ अर्थ समझी जानी नहीं होती	२८४
सब पुद्गल परस्पर अलगहाइ देते हैं तो भी आकारके अलगहाइदानकी इति नहीं होती इस बातका समर्थन	२८४
पुद्गलकोका उपकार	२८५
अर्थस्थ शरीरके पुद्गलपनेकी सिद्धि	२८५
बचनके दो भेद और उनका स्वरुप व पुद्गल पनेकी सिद्धि	२८५

मनके दो भेद और उनका स्वरुप व पुद्गल पनेकी सिद्धि	२८७
मन इत्येका स्वरुप नहीं है इत्येकी समुक्ति सिद्धि	२८७
माया और अपान शब्दका अर्थ	२८८
मन, माया और अपानके पुद्गलपनेकी सिद्धि	२८८
आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि	२८८
पुद्गलकोके अर्थ उपकार	२८८
सुख, दुःख आदि शब्दोंका अर्थ	२८८
उपग्रह पक्षी चार्पक्य	२८९
जीवोका उपकार	२८९
जाकाकार उपकार	२९१
वर्तना शब्दका अर्थ	२९१
अज्ञ इत्ये किनाशान नहीं है इत्येका समर्थन	२९१
अज्ञके अस्तित्वकी सिद्धि	२९२
परिग्रह पक्षका अर्थ	२९२
किना पक्षका अर्थ	२९२
परल और अपरलका विचार	२९२
वर्तनासे पूषण परिशामादिके ग्रहण करनेका प्रयोग	२९२
पुद्गलका अर्थ	२९३
स्पर्श आदि पदोंका अर्थ व उनके भेद	२९३
‘रुचिः’ पुद्गलाः सृजेते इत्ये भी इस सृजेते अर्थका कारण	२९५
पुद्गलका व्यजन पयोधोका निर्देश	२९६
शब्दके दो भेद व उनका विरोध विचार	२९६
अर्थके दो भेद व उनका विरोध विचार	२९६
शरीरके दो भेद व उनका विचार	२९६
स्वोत्पत्तिके दो भेद व उनका विचार	२९६
संख्यानका अर्थ भेदोंके साथ विचार	२९६
भेदके द्वय भेद व उनका विचार	२९६
धर्म आदि शेषका स्वरुप निर्देश	२९६
पुद्गलके भेद	२९७
अज्ञ शब्दका अर्थ	२९७
स्वरुप शब्दका अर्थ	२९७
स्वरुपोंकी उत्पत्तिका इति	२९८
भर और शेष परलका अर्थ	२९८
बहुबचन निर्देशकी चार्पक्य	२९८



भक्तकी उत्पत्तिक्रम दैव	२११
'मदरुभाटोम्या' इस सूत्रमें मेरु पर्वक ग्रहण करनेका प्रयोजन	२१४
अध्यायुप वायुप कस होता है इसका विचार	२१४
द्रव्यका अणुय	१
सन्की व्याख्या	१
उदाय आदि पदोंका अर्थ	१
मुक्त पर किं अर्थमें ग्रहण किया है इसका विचार	१
निम्न पदकी व्याख्या	१ १
गुरुवता और गीबलासे अनेकान्यकी सिद्धि	१ २
पुत्रहोके बन्धका कारण	१ ७
असम्प गुणबाहोंका बन्ध नहीं होता	१ ५
गुणसाम्यमें सहयोगका बन्ध नहीं होता	१ ५
गुणभेदसम्में सहयोगका भी बन्ध होता है पर कदाकालके लिए सूत्रमें सहयोग पदका ग्रहण किया है	१ ५
हा अधिक गुणबाहोंका बन्ध होगा है	१ ६
बन्धके प्रकटोंका विरोध विवेचन	१ ६
बन्ध होने पर अधिक गुणबाहो पारिव्याप्तिक होते हैं	१ ७
द्रव्यका अणुय	१ ४
एक द्रव्यके दूतरे द्रव्यसे मिल होनेके अरसकी समुचित सिद्धि	१ १
कस भी द्रव्य है	१ ११
कालमें द्रव्यने की सिद्धि	१ ११
वास्तव्यको अणुय करनेका अरस	१ १२
विरोधार्थ हाय कालका विचार	१ १३
अणुयका पक्षांश असम्प समक रूप है इसकी सिद्धि	१ १५
गुणका अणुय	१ १५
गुणका लक्षण पदार्थोंमें न अणुय द्रव्यकी व्यक्त्या	१ १६
परिणाम का अणुय	१ १
परिणामक वा मेरु और तनकी सिद्धि	१ १७

## छठवाँ अध्याय

भोगका स्वल्प	११८
कर्म शुद्धका अर्थ	११८
भोगके मेरु	११८
कर्म वचन और मनोयोगका स्वल्प	११८
आलसका स्वल्प	११९
पुरुवाक्य और वायाक्य	११९
ये आदि तीनों योग शुभ और अशुभ इन दो भागोंमें विभक्त हैं	११९
शुभयोगका स्वल्प	११९
अशुभ योगका स्वल्प	१२
पुम्प और पाप पदकी व्याख्या	१२०
सम्पद्यकिक धार ईर्ष्यापत्र आलस किंकर शान है	१२०
आलसके स्वामीके दो मेरु	१२
कथाय दाम्यका अर्थ	१२
संनयन दाम्यका अर्थ	१२१
ईर्ष्या दाम्यका अर्थ	१२१
धाम्यायिक आलसके मेरु	१२१
पक्षीय क्रियाओंका विरोध विवेचन	१२१
किं करवासे आलसमें विरोधता होती है इसका विवेक	१२३
ठीक न ब आदि पदोंकी व्याख्या	१२३
अधिकरवाक हा मेरु	१२४
बीबाधिकरवाक मेरु	१२४
संनयन आ ब प्रत्येक पदकी व्याख्या	१२४
बीबाधिकरवाकके १ ८ मेरोंका नामोल्लेख	१२४
'ब' पदकी व्याख्या	१२४
पक्षीबाधिकरवाकके मनु	१२४
नित्य आदि पदोंका अर्थ	१२४
'पर' पदकी लार्थकता	१२४
निर्देयता आदिके उक्त मेरोंकी व्याख्या	१२७
जानावरक और दानावरकका अर्थ	१२७
प्रयोग आदि प्रत्येक पदका अर्थ	१२७
आवाहन और अणुयते अन्तर	१२८

एक परसे शून और शूननका प्रमाण कैसे होता है	
इसका विचार	१२८
प्रयोगादि शानावरण और दृष्टानावरण दोनोंके	
आसनोंके हेतु कैसे हैं इसका विचार	१२८
असातावर्षीयके आसन	१२८
गुग्गु आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१ ८
शोभादिक गुग्गुके प्रकार होकर भी उनके असंग	
से ग्रहण करनेका कारण	१२९
यदि गुग्गुआदिक असाता वेदनीयके आसन हैं तो	
कैरोलपट्टन आदि क्यों करते हैं इसका	
उपलब्ध विचार	१२९
सातावर्षीयके आसन	१३०
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१३१
'इति' पदकी कार्यप्रता	१३१
दरानमोहके आसन	१३१
केवली आदि पदोंकी व्याख्या	१३२
वीर्यहरण अर्थात्वायुका निरूपण	१३२
चारिकमोहके आसन	१३२
अग्राय आदि पदोंकी व्याख्या	१३२
चारिकमोहके आसनोंका विस्तारसे निरूपण	१३३
नरकामुके आसन	१३३
नरकामुके आसनोंका विस्तारसे निरूपण	१३३
विर्यच्छुके आसन	१३४
विषाहायुके आसनोंका विस्तारसे निरूपण	१३४
मनुष्यायुके आसन	१३४
मनुष्यायुके आसनोंका विस्तारसे निरूपण	१३४
मनुष्यायुके आसन	१३४
बारों आयुषाके आसन	१३५
'व' पदकी कार्यप्रता	१३५
दवायुके आसन	१३५
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१३५
दवायुके आसन	१३५
उत्पत्त्येक 'ज' पूषक वृत्त कानेका प्रयोग	१३५
अष्टम नामकके आसन	१३५
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१३७
अष्टम नामकके आसनोंका विस्तारसे कथन	१३७

शुभनामकके आसन	१३७
'व' पदकी कार्यप्रता	१३७
शुभनामकके आसनोंका विस्तारसे कथन	१३७
लीपकर प्रकृतिके आसन	१३८
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१३८
लीपकोरके आसन	१३९
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१३९
उपचयोके आसन	१४
सुशगत प्रत्येक पदकी व्याख्या	१४०
अन्तरात्र कर्मके आसन	१४
उत्पद्योय आदि प्रतिनिधित कर्मके आसनोंका	
कथन करनेसे आनेवाले योगका परिहार	१४१

सातवाँ अध्याय

अष्टकी व्याख्या	१४२
हिंसादि परिशाम विरोध अभूष हैं उनसे दूर	
होना कैसे सम्भव है इस रक्षणाका परिहार	१४२
हिंसा आदि पदोंके कर्मसे रक्षनेका प्रयोग	१४२
रात्रिमोहन निद्राया अथ अज्ञाते नहीं करने	
का कारण	१४३
अथक वा मेद	१४४
प्रत्येक पदकी व्याख्या	१४४
अथकी स्थिरताके छिप पाँच पाप भावनायाँ	
अधिकार सूत्र	१४४
अहिंसा अथकी पाँच भावनायें	१४५
अनन्यताकी पाँच भावनायें	१४५
अनुशीलनोपाय पदका अर्थ	१४५
अर्थात् अथकी पाँच भावनायें	१४५
अर्थके पदकी व्याख्या	१४५
अर्थचर्य अथकी पाँच भावनायें	१४५
परिग्रहस्याग अथकी पाँच भावनायें	१४५
हिंसादिद्वयें अथकी अर्थ अथकी अर्थ अथकी अर्थ	१४५
हिंसादिद्वयें अथकी अर्थ अथकी अर्थ अथकी अर्थ	१४५
विस्तारसे विवेचन	१४५
हिंसादिद्वयें अथकी अर्थ अथकी अर्थ अथकी अर्थ	१४५
हिंसादिद्वयें अथकी अर्थ अथकी अर्थ अथकी अर्थ	१४५
अथकी अर्थ अथकी अर्थ अथकी अर्थ	१४५

मैत्री आदि	दकी व्याख्या	१४८
सविग और बैरतपके द्विपू जगत् और कायके		
स्वभावका विचार		१४९
सोकप्र आकार		१५०
काल और कायके स्वभावका द्विपू प्रकार		
विचार करे		१५१
द्विवाक्री व्याख्या		१५१
प्रमत्तयोगप्रकी धर्मकथ		१५१
प्राज्ञोका विद्योग न होने पर भी द्विवा होती है		
इस बातका उल्लेख		१५१
अमृतकी व्याख्या		१५२
अमृत और अमृत परकी व्याख्या		१५२
द्विवाकर नवन ही अमृत है इस बातका सुझाव		१५२
स्तेयकी व्याख्या		१५२
आरुण परका अर्थ		१५२
कर्म और लोकर्मका प्रत्ये स्तेय कर्मा नहीं है		
इसका विचार		१५२
मिथुके प्रमत्त करते समय रम्याहारमें प्रवेश		
करनेसे कोयी कर्मा नहीं होती इसका विचार		१५३
अमृतकी व्याख्या		१५३
मिथुन परका अर्थ		१५३
एक कर्म मैथुन कर्मा नहीं है इसका सुझाव		१५३
ब्रह्म परकी व्याख्या		१५४
परिग्रहकी व्याख्या		१५४
मूर्च्छा परका अर्थ		१५४
मूर्च्छा परसे बालदि प्रक्षेपकन मूर्च्छाका प्रत्ये		
कर्मा नहीं किया इस बातका सुझाव		१५४
मूर्च्छाके परिग्रह मानने पर ब्रह्म परका परिग्रह		
कैसे है इस बातका विचार		१५४
व्रतिका स्वरूप		१५५
शल्प परकी व्याख्या न उसके भेद		१५५
शल्पके तीनो भेदोंकी व्याख्या		१५५
निःशरपको भेदी करनेका प्रयोग		१५५
बलीक दो भेद		१५६
अगार परका अर्थ		१५६
मुनिके श्रद्ध अगार आदिमें रहने पर अमृत		
पना प्राप्त होता है और परस्परके परस्पर		

देने पर अनपारिपना प्राप्त होता है इस		
संकाश परिहार		१५७
अगारीके पूरे आ नहीं होनेसे यह भेदी कैसे है		
इस बातका विचार		१५७
अगारीकी व्याख्या		१५८
अगारीके भ्रष्टोंको अगु करनेका प्रयोग		१५८
अगारी किस प्रकारकी द्विवाकर त्यागी होता है		१५८
अद्विवा आदि पाँचों अगुप्रतीकी व्याख्या		१५८
अगारी अल्प किन गुणोंसे समरह होता है		
इसका विचार		१५९
दिनिकप्रतिवर्तकी व्याख्या		१५९
देशभिरति प्रतीकी व्याख्या		१५९
अनर्बदप्रका अर्थ		१५९
अनपदप्रके पाँच भेद और उनकी व्याख्या		१६०
सामयिक को व्याख्या		१६०
प्रोपब व सत्रवाच शम्भका अर्थ		१६०
प्रोपबोपवाचकी व्याख्या		१६१
उपयोगपरिभोगकी व्याख्या		१६१
मयु आदिके समप्रयोजन त्यागका उपदेश		१६१
केलकी आदिके पूछ व स्याचारवा ननस्वठिके		
उपयोगन त्यागका उपदेश		१६१
पान बाहन आदिके परिग्रह करनेका उपदेश		१६१
अतिथि परकी व्याख्या		१६२
अतिथिर्विभागके चार भेद		१६२
पुत्रत्वका सम्बन्धना कर्म		१६२
मन्थ परकी व्याख्या		१६२
उल्लोचना परका अर्थ		१६३
सूत्रमें 'बोधित' पर रखनेका कारण		१६३
उल्लोचना आत्मवच नहीं है इस बातका समर्थन		१६३
सम्बन्धिके पाँच अतीचार		१६४
मदवा और संतर्पमें अन्तर		१६४
सम्बन्धनके आठ अंग होने पर पाँच अती		
चार ही क्यों कहे इसका कारण		१६४
व्रतों और शीघ्रमें पाँच पाँच अतीचारोंका		
वतकानेवाका अतिकार सूत्र		१६५
अद्विवाप्रवचके पाँच अतिचार		१६५
कथ आदि प्रत्येक परकी व्याख्या		१६५

संघानुव्रतके पाँच अतीचार	१११
मिथ्योपदेश आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१११
अन्वयानुव्रतके पाँच अतीचार	११०
स्तेनप्रयोग आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	११०
स्वप्नसन्तोष व्रतके पाँच अतीचार	११०
परिव्राट्करण्य आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	११०
परिग्रहपरिभ्रम्य व्रतके पाँच अतीचार	११०
विश्वरामव्रतके पाँच अतीचार	१११
अर्धम्यतिक्रम आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१११
वैराग्यव्रतके पाँच अतीचार	१११
आनयन आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१११
अनर्थप्राप्तिकिरणव्रतके पाँच अतीचार	१११
कन्दर्प आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१११
सामायिकके पाँच अतीचार	१०
योगसुप्रखिपान आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१०
योगवापदानके पाँच अतीचार	१०
अप्रवर्णवैदित्य आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१०
भोगोपभोगपरिसंस्मानव्रतके पाँच अतीचार	१०१
अभिषेक आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१०१
अभिसिद्धिभोगा शीघ्रके पाँच अतीचार	१०१
अभिषेकनिषेध आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१०१
सम्बोधनाके पाँच अतीचार	१०१
बीभिक्षा आदि प्रत्येक पदकी व्याख्या	१०१
दान पदकी व्याख्या	१०१
अनुग्रह पदका अर्थ	१०१
स्वोपकार क्या है और स्वोपकार क्या है इसका	
सुज्ञान	१०१
'र' शब्दका अर्थ	१०१
दानमें किटाक्षता कामके कारण	१०१
विधि व विशेष शब्दका अर्थ	१०१
विधिविशेष आदि का सुज्ञान	१०१
अर्थक हेतु	१०१
प्रसाद पदकी व्याख्या	१०१
मिथ्याकरणके दो भेद और उनकी व्याख्या	१०१

## आठवाँ अध्याय

परोपदेशनिमित्त मिथ्यदर्शनके चार भेद पाँच	
भेद व उनका सुज्ञान	१०१
क्रियावादी आदिके अन्तर्गत भेद	१०१
अभिव्यक्तिके चार भेद	१०१
कथनके २५ भेद	१०१
मनोयोग आदिके अन्तर्गत भेद	१०१
प्रसादके अनेक भेद	१०१
किस गुणस्थानमें कितने व कितने हेतु हैं इसका	
विचार	१०१
अर्थकी व्याख्या	१०१
'सकामत्वात्' पद देनेका प्रयोजन	१०१
'वीचः' पद देनेका प्रयोजन	१०१
'कर्मणो योग्यात्' इस प्रकार निर्देश करनेका	
प्रयोजन	१०१
द्वान्तपूर्वक कर्मरूप परिक्रमणक समर्थन	१०१
'स' पदकी व्याख्या	१०१
अर्थका चार भेद	१०१
प्रकृति आदि प्रत्येक पदकी द्वान्तपूर्वक	
व्याख्या	१०१
प्रकृति और प्रदेशकक कारण काग है	
तथा स्वतंत्रता और अनुभाग अर्थका	
कारण कायन है इस बातका निर्देश	१०१
प्रकृतिकक अर्थ मन्	१०१
आचरण पदकी व्याख्या	१०१
वेदनीय आदि प्रत्येक पदकी व्युत्पत्ति	१०१
प्रकृतिकक काट मेंसे का अन्तर्गत मन्	१०१
कारणकके पाँच भेद	१०१
अर्थके मनःपर्यय और कैवल्यका शक्ति	
किस अर्थका है	१०१
मन् और अर्थक विचारका कारण	१०१
द्वान्तपूर्वक मन् मन्	१०१
मिथ्या आदि पाँचोंकी व्याख्या	१०१
अर्थक का भेद	१०१
कर्म व और अर्थके पाँचोंकी व्याख्या	१०१
मादकायक २० मन्	१०१
दर्शनमादनीयक तीन मेंसे का कारण व उनकी	
व्याख्या	१०१

भारिभ मोहनीके छव मेदीकी व्याख्या	३८२
धायुर्कर्मके चार मेर	३८८
धायु व्यापराक्षर चारख व चारों धायुर्कर्मकी व्याख्या	३८८
नामकर्मके चारान्तर भेद	३८८
गति व ठगके मेदीकी व्याख्या	३८९
भक्ति व ठगके मेदीकी व्याख्या	३८९
शरीर नामकर्म व ठगके मेदीकी व्याख्या	३८९
आह्वाणपत्र व ठगके मेदीकी व्याख्या	३८९
निर्माद्य व ठगके मेदीकी व्याख्या	३८९
कथनकी व्याख्या	३९०
संघटकी व्याख्या	३९०
संरक्षान व ठगके छह मेदीकी व्याख्या	३९०
उद्वेग व ठगके छह मेदीकी व्याख्या	३९०
स्वर्गादिषु की व्याख्या	३९०
आनुपूर्व्य व ठगके चार मेदीकी व्याख्या	३९०
पूर्वोक्त मेदीके सिवा अन्य मेदीकी व्याख्या	३९१
गात्र कर्मके द्वा मेर	३९३
उपच व नीच गोत्रकी व्याख्या	३९४
अम्भराज कर्मके पाँच भेद	३९४
दानान्तरण आदिके कार्य	३९४
आदिक्त तोन कर्म व अम्भराज कर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९५
इन कर्मके उन्मूलन विधित्तन्त्रका स्वामी	३९५
माहनीय कर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९६
माहनीयक उन्मूलन विधित्तन्त्रका स्वामी	३९६
नाम चार गात्रकर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९६
इन कर्मके उन्मूलन विधित्तन्त्रका स्वामी	३९६
धायुर्कर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९६
आनुपूर्व्यके उन्मूलन विधित्तन्त्रका स्वामी	३९६
वर्नीय कर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९७
नाम चार गात्रकर्मका उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९७
इन कर्मके उन्मूलन विधित्तन्त्र	३९७
अनुमानकर्मकी व्याख्या	३९७
विवाहकी व्याख्या	३९८
अनुमत्त दो भेद	३९८
अनुमत्तकी द्वा प्रकार प्रवृत्ति	३९८

मूल प्रवृत्तियोंका स्वमुखसे अनुभव	३९८
कुछ कर्मोंके छोड़कर उत्तर प्रवृत्तियोंका परमुखसे भी अनुभव होता है	३९८
अपने कर्मके मामानुसार अनुभव होता है	३९९
कर्मकर्मके बाद निर्वाण होती है	३९९
निर्कर्मकी व्याख्या व उसके मेदीकी व्याख्या	३९९
'च' परकी व्याख्या	३९९
विशेषार्थ द्वारा अनुमानकर्मका विशेष विवरण	४
प्रदेशकर्मकी व्याख्या	४ १
पुत्रक प्रवृत्तियाँ	४ ४
पुत्र्य प्रवृत्तियोंके नाम	४ ४
पाप प्रवृत्तियाँ	४ ४
पाप प्रवृत्तियोंके नाम	४ ४

### नौवाँ अध्याय

संवरका स्वरूप	४ ९
संवरके दो मेर व उनके लक्षण	४ ९
किंतु गुणस्वान्तमें किंतु निमित्तसे किंतुनी प्रवृत्तियोंका संवर होता है	४ ९
संवरके हेतु	४ ९
शुक्ति तमिति धर्म, अनुभवेद्या और परीपद	
वचनका स्वरूप	४ ९
वृत्तमें आये हुए 'सः' परकी व्याख्या	४ ९
संवर चार निर्वाणके हेतुमूल उपपन्न निर्वृत	४ ९
उपपन्न धर्ममें अन्तर्भाव होता है फिर भी ठगके अन्तर्गत करनेका कारण	४ १०
उप अनुभव स्वर्गादिका कारण होता है भी निर्वाणका कारण कैसे है इस संकाय	
समाधान	४ १
शुक्तिका स्वरूप	४ ११
निम्न परकी व्याख्या	४ ११
अन्तर्गत परकी व्याख्या	४ ११
शुक्ति संकाय कारण कैसे है इस बातका निर्देश	४ ११
तमिति वचन भेद	४ ११
तमिति संकाय हेतु कैसे है इस बातका निर्देश	४ ११
वचन दो भेद	४ १२

गुप्त खमिति और धर्मके संवरका हेतु		बादशाहमरायशब्दका अर्थ	४११
कहनेका प्रयोजन	४१२	किन्तु चारित्र्यमें सब परीपद सम्मिल हैं इस	
जानादि इस धर्मोक्त स्वरूप	४१२	बात का निर्देश	४११
सब और मायासमिद्धिमें अन्तरका रूपन	४१०	जानाकरके क उदयमें जो हा परीपद बात है	
ये सब धर्म संवरके कारण कैसे हैं इसका विचार	४११	उनका निर्देश	४१२
अनुप्रेषणके बारह भेद	४१३	जानाकरके उदयमें प्रका परीपद कैसे होता	
अनित्यदि बारह अनुप्रेषणोंके विन्तकन		है इसका विचार	४१२
करनेकी प्रक्रिया	४१३	दर्शनमोह और अन्तरायक उदयमें जो परीपद	
निर्बन्धके दो भेद व उनकी व्याख्या	४१०	हाने हैं उनका निर्देश	४१२
ये अनुप्रेषणों संवरका कारण कैसे हैं		चारित्र्यमोह के उदयमें जो परीपद होते हैं	
इसका विचार	४१६	उनका निर्देश	४१३
अनुप्रेषणोंके संवरके हेतुओंके म धर्म		निपद्यापरीपद चारित्र्यमोहके उदयमें कैल	
रखनेका प्रयोजन	४१६	होता है इसका विचार	४१४
परीपदको निरूपक व प्रभावजन	४१४	वेदनीयके उदयमें जो परीपद होत है इसका	
परीपदका संवर और निर्बन्धका कारण कैसे		विचार	४१४
है इसका विचार	४१६	एक जीव क एक साथ कितन परीपद बात है	
परीपदोंके नाम	४२	इसका विचार	४१४
सुधादि बाह्य परिपदोंको किस प्रकार भीतना		एक जीव के एक क्षण उभित परीपद क्यों	
चाहिए इसका प्रथम रूपक विचार	४१	होते हैं इसका विचार	४१४
पूर्वोक्त विधिते परीपदोंको सहन करनेसे संवर		प्रका और अज्ञान परीपद एक साथ कैसे हात	
होता है इसका निर्देश	४२१	है इसका विचार	४१५
सूक्ष्मसागराव और सुदृग्म भीतराग के		चारित्र्यक पांच भेद	४१६
बीज परीपद हात है इस बातका निर्देश	४२०	चारित्र्यका अन्तगते प्रदय करनेका प्रयाजन	४१६
सूक्ष्मसागराव भीतके मोहोदयनिमित्तक परीपद		सामाधिकचारित्र्यके दो भेद और उनकी	
क्यों नहीं होते इस बातका परिदार	४२०	व्याख्या	४१६
पूर्वोक्त भीतों के ये बीज परीपद किस अर्थका		देशाभ्यासनाचारित्र्यका स्वरूप	४१६
से होते हैं इस बात का विचार	४२०	परिहार्यशुद्धि चारित्र्यका स्वरूप	४१६
जिनके अन्तर परीपद होते हैं इस बातका		सूक्ष्मसागराव चारित्र्यका स्वरूप	४१६
निर्देश	४१६	अद्यावत्त चारित्र्यका स्वरूप व अर्थ शब्द	
जिनके अन्तर परीपद होते हैं इस बातका		की व्याख्या	४१६
निर्देश	४२६	अद्यावत्तका दूनप नाम प्रयाजन है इस	
न खमिति पद के अर्थानुसार की सूचना	४२६	बात का समुचित निर्देश	४१७
बादशाहमराय के सब परीपद हाने हैं इस		हात शब्द की कार्यवत्ता	४१७
बातका निर्देश	४११	सामाधिक चारित्र्यके आनुपूर्वी कथनकी	
		कार्यवत्ता	४१७

बाह्य तपके ब्रह्म मेह	४३८	बाह्यके दो स्थान मोहके हेतु हैं	४४९
अनशन आदि की व्याख्या न ठहरे कथनका प्रयोजन	४३८	पर शब्दसे अन्तके दो स्थानोंका ग्रहण कैंठे होय है इस बातका निर्देश	४४९
परिग्रह और अन्नसेवा में क्या अन्तर है इस अन्तर निर्देश	४३९	आर्तस्थानके प्रथम भेदका अर्थ	४४९
बाह्य तप करनेका प्रयोजन	४३९	आमनोह परकी व्याख्या	४४९
अन्तःतपके ब्रह्म मेह	४३९	आर्तस्थान द्वितीय भेदका अर्थ	४४९
प्राप्यभूत आदि की व्याख्या	४३९	ब्रह्मा नामक आर्तस्थानका अर्थ	४४९
आत्मके जोड़कर शेष तौच अन्तःतप तपोंके अन्तःतप मेह	४३९	केवल परकी व्याख्या	४४९
प्राप्यभूतके जो मेह	४४	निदान नामक आर्तस्थानका अर्थ	४४९
आमनोचन आदि नौ भेदोंकी व्याख्या	४४	चारों प्रकारके आर्तस्थानके स्वामी	४४९
विषय तपके चार भेद	४४१	अविद्य आदि पदोंकी व्याख्या	४४९
अनविद्य आदि चार भेदोंकी व्याख्या	४४१	अविद्य आदि तीनके आदिसे तीन स्थान होते हैं किन्तु निदान प्रसक्तस्थानके नहीं	४४९
बैशाख तपके इस भेद	४४२	होता। इस बातका निर्देश	४४९
वैशाख तपके इस भेदका अर्थ	४४२	रौद्रस्थानके चार भेद न स्वामी	४४९
आचार्य आदि पदोंकी व्याख्या	४४२	इस स्थानके रौद्रस्थान कैंठे होता है इस बातका विचार	४४९
स्वाध्याय तपके तौच भेद	४४३	स्थानके रौद्रस्थान न होनेका अर्थ	४४९
वाचन्य आदि पदोंकी व्याख्या न प्रयोजन	४४३	ब्रह्मस्थानके चार भेद	४४३
सुत्सर्गा तपके दो भेद	४४३	विषय परकी निश्चित	४४९
सुत्सर्गा परकी निश्चित न भेदनिर्देश	४४३	आत्मविषय आदि पदोंकी व्याख्या	४४९
बाह्य तपके प्रकार	४४३	ब्रह्मस्थानके चारों भेदोंके स्वामी	४४९
अन्तःतपके प्रकार	४४३	विशेषण द्वारा कर्मोंके तप न उदीरणाका विशेष निश्चयन	४४९
सुत्सर्गा तपका प्रयोजन	४४३	आदिसे दो शुद्धस्थान प्रविष्टके होते हैं	४४३
स्थानका प्रयोजन स्वरूप न काक परिभाषा	४४४	पूर्वविद्य परका अर्थ	४४३
आदिसे तीन संज्ञान तपमें है इस बातका निर्देश	४४४	भेदों आदिस्थानके पूर्व ब्रह्मस्थान होय है और अर्थमें शुद्धस्थान होता है इस बातका निर्देश	४४३
स्थानके धारण से हीनों हैं पर मोहका साधन प्रथम संज्ञान ही है इस बातका निर्देश	४४४	अन्तके दो शुद्धस्थान कर्मोंके होते हैं	४४३
एकाग्रचित्तान्तिरोध परकी व्याख्या	४४४	शुद्धस्थानके चार भेदोंके नाम	४४३
चित्तान्तिरोधके स्थान करनेसे आनेवाले शोकका परिहार	४४४	शुद्धस्थानके चार भेदों के स्वामी	४४४
आत्मके चार भेद	४४५	आदिसे दो शुद्धस्थानों में विशेषतया कथन	४४४
आर्त आदि पदोंकी व्याख्या	४४५	एक भय परका तात्पर्य	४४४
चारों प्रकारके स्थानोंमें प्रत्येकके दो दो भेद नहीं हैं इस बातका निर्देश	४४५	तमरा शुद्धस्थान अविचार है इस बातका निर्देश	४४५

चित्तके सम्पन्न धर्म	४२२
बीचार पदकी व्याख्या	४२२
धर्म भ्रजन योग और संकल्पित पदकी व्याख्या	४२५
धर्मसंक्रान्तिका उदाहरण	४२५
भ्रजनसंक्रान्तिका प्रकार	४२५
योगसंक्रान्तिका प्रकार	४२५
मुनि धूमकत्ववितर्क बीचारका ध्यान किस लिए और कब करता है इस बातका निर्देश	४२६
मुनि पक्षकवितर्कका ध्यान किस लिए और कब करता है इस बातका निर्देश	४२६
मुनि स्वप्ननिष्ठाप्रतिपाठि ध्यान किसलिए और कब करता है इस बातका निर्देश	४२६
मुनि व्युत्थिप्रक्रियानिर्वाह ध्यान किसलिए और कब करता है इस बातका निर्देश	४२७
साक्षात् मोक्षका कारण क्या है इस बातका निर्देश	४२७
साक्षात् मोक्षका कारण मिलाने पर मुनि मुक्त होता है इस बातका निर्देश	४२७
दोनों प्रकारका लप संवरके साथ निर्बंधका मी कारण है इस बातका समर्थन	४२७
किसके किन्तों निर्बंध हाथी है	४२८
आपिच्छी मेरवे उचरोचर असंस्मात्पुत्री	
निर्बंधका विशेष सुझाव	४२
निर्बंधों के पाँच भेद	४२
पुलाक आदि पदोंकी व्याख्या	४३
ये पुलाकादि पाँचों किस अपेक्षासे निर्बंध कहलाते हैं इसका कारण	४३
निर्बंधों में अंशम आदि की अपेक्षा भेद कथन	४३१
संयमकी अपेक्षा भेद कथन	४३१
भुक्तकी अपेक्षा भेद कथन	४३१
प्रतिवेन्द्याकी अपेक्षा भेद कथन	४३१
तीर्थकी अपेक्षा भेद कथन	४३२
निष्कृती अपेक्षा भेद कथन	४३२
देशकी अपेक्षा भेदकथन	४३२

उपपादकी अपेक्षा भेदकथन	४३२
स्थानकी अपेक्षा भेदकथन	४३२

दसवाँ अध्याय

केवलज्ञानकी उत्पत्तिके हेतु और कर्मोपपन्न कर्मविरोध	४३५
मोक्षवात् पदको अलग रखनेका कारण	४३५
मोक्षका चर परते क्यों और किस क्रमसे होता है इस बातका निर्देश	४३५
धीरुपयाय धीरके शेष शानापरकादि कर्मोंका क्षय कब और किस क्रमसे होता है इस बातका निर्देश	४३५
कारणपूर्वक मोक्षका स्वरूप	४३६
कर्मके अभावके दो भेद	४३६
किन कर्मोंका अवनवाप्य अभाव होता है इस बातका निर्देश	४३६
अनवाप्य अभाव किस क्रमसे होता है इस बातका निर्देश	४३६
अन्य किस माते क अभावसे मोक्ष होता है इस बातका निर्देश	४३६
ममत्व पदको ग्रहण करनेका कारण	४३८
मोक्षमें किन माताका अभाव नहीं होता इस बातका निर्देश	४३८
मोक्षमें अनन्त धीर आदिकर सत्तावसुधयन मुक्त धीरोंके आकारका शीका-समाधानपूर्वक प्रतिपादन	४३८
मुक्त धीर लाक्षणकार प्रमाणा क्यों नहीं होता इस बातका निर्देश	४३८
मुक्त धीरक ऊपर कोकाल समनका विरोध	४३८
ऊपर कोकाल समनमें हेतुधो क विरोध	४३८
उदात्तो द्वारा हेतुधो का समर्थन	४३
हेतुपूर्वक दृश्यात्म विरोध स्पष्टीकरण	४३
ऊपर कोकालम धारासमन न करनेका कारण	४३१
मुक्त जीवों में अंश आदि की अभाव भेदकथन	४३१
भेद कथनम दो नवीका अवनवाप्य	४३१



शेखरी अनेद्या भेदकथन	४७१	शरणाहन्त्री अपेक्षा भेदकथन	४७२
कालकी अपेक्षा भेदकथन	४७१	अन्तरकी अपेक्षा भेदकथन	४७१
गतिर्था अपेक्षा भेदकथन	४७२	तथ्याकी अपेक्षा भेदकथन	४७१
सिद्धकी अपेक्षा भेदकथन	४७२	शेखादिकी अपेक्षा अल्पबहुत्व	४७१
संयुक्ती अपेक्षा भेदकथन	४७२	धर्मायसिद्धि इत नामकी धर्मकथा और	
परिष्करी अपेक्षा भेदकथन	४७२	महत्त्वप्रयोगान्त	४७२
प्रत्येक बुद्धवैषित्यकी अपेक्षा भेदकथन	४७२	बीर भिन्नकी स्थिति	४७४
मानकी अपेक्षा भेदकथन	४७२		

## त्रिपणियोंमें उल्लिखित ग्रन्थोंकी संकेत सूची

संकेत	ग्रन्थनाम	संकेत	ग्रन्थनाम
अने मा	अनेअन्त नाममात्रा	प्र चार्त्तिकाल	प्रभावचार्त्तिकालांतर
अ	अन्य प्रति	प्रवचन अ	प्रवचनसार क्षेत्र
आ नि	आचार्याग निमुक्ति	प्रच अथ	प्रसारतथाह भाष्य स्मोमवती टीका
आ	आय प्रति	अ अथ	अथ अथुपेक्षा
गो क	गाम्मदखर कर्मग्रन्थ	मु	मुक्ति प्रति (धर्मायसिद्धि)
गो बी	गाम्मदखर बीषकाग्र	मूला	} मूलाचार
अनेअ	अनेअ अभाकरस्य	मूलाभा	
त	तद्वपचीय प्रति १	मुक्त्यनु	मुक्त्यनुशासन
तथा	तथायैवार्त्तिक	योगमा	योगभाष्य
ि १	त्रिपत्नी प्रति १	यो सु	योगसूत्र
ि २	त्रिपत्नी प्रति २	रत्न	रत्नकरचक्र
अथ प्र अ	अथा प्रति अमगावती	वा भा	बार्हस्पत्य भाष्य
ना	ताद्वपचीय प्रति २	नि भा	विद्योपावरचक्र भाष्य
म्बा मा	व्यायभाष्य	दि म	त्रिमुक्तिमार्ग
भाष्यार्थ मुदी	भाष्यार्थ टीका	सम्प्रति	सम्प्रतिचक्र
अथ सु	अथसूत्र	स प्रा	} समयप्राप्त
रि अ	परिभाष्यमुद्रेश्वर	स	
प सु	परिहासुत्र	सो	सर्वायसिद्धि
पा	पातञ्जल महाभाष्य	त्रिहा	त्रिहाचार्याभा
पा म मा	पातञ्जल भाष्य	सौम्य	सौम्यगानन्द
पा पा सु	पातञ्जल भाष्य	ता बी	योग्यश्रीमुदी
पथ	पातञ्जल भाष्य ( २३ )		

अ अथाप  
 ब बथ  
 २ २  
 रनो रनो  
 २ २



नमः श्रीपरमात्मने श्रीरत्नगण्य  
श्रीगुरुद्विष्वङ्गाचार्यविरचितस्य तत्त्वार्थसूत्रस्य  
श्रीपूज्यपादाचार्यविरचिता तत्त्वार्थशृष्टि

## सर्वार्थसिद्धिः

१७७८५

### प्रथमोऽध्याय

मोक्षमागम्य नतार भेत्तार ममभूताम् ।

ज्ञातार विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलक्षण्ये ॥ १ ॥

वदिषद्भूय्य प्रत्यासन्ननिष्ठ प्रज्ञावान् स्वहितमुपलिप्सुविविक्ते परमरम्य भव्य  
विश्रामास्पद क्वचिदाश्रमपथे मुनिपरिपण्मध्य सन्निपण्ण भूतमिव मोक्षमागमवाग्वि  
वपुषा निरूपयन्त युवत्यागमकुशलं परहितप्रतिपादनकषायमायनिपथ्य निग्रन्या ५  
वयंमुपसद्य सविनय परिपृच्छति स्म । भगवन् किं नु दनु आत्मने हितं स्यादिति ?  
माह मोक्ष इति । स एव पुन प्रत्याह वि स्वरूपोऽसौ मोक्षः मद्वास्य प्राप्त्युपाय  
? आचार्य आह—निर्गवणपनिर्गकृतकममलकलङ्कस्यागरीरस्यात्मनो चिन्त्यस्वा

वा माक्षमागंके नहा हे, कमरूपी पवर्तोंके भन्तपाल हे और विश्वतत्त्वोंके ज्ञाता हे उनकी में  
के समान गुणोंकी प्राप्ति के लिये बन्ना करछा हूँ ॥ १ ॥ १०

अपन हितस्य चाहनयासा काइ एक मुदिमान् निरुक्त भव्य था । यह अत्यन्त रमणीय भव्य  
रिंके विश्रामके योग्य स्थिती एकदन्त आश्रमम गया । यहाँ उनन मुनियोंके समामें बैठ हुए अपन  
; पिना ही मात्र अपन शरीरके आहृतमे माना मूर्तिमान् माक्षमागक्य निरूपण करनेपाले, मुक्ति तथा  
त्ममं बुझाउ, इमर जीषाके हितस्य मुग्यरूपसे प्रतिपादन करनेपाले और आप पुर्णोंके द्वारा मघनीय १५  
न निरुक्त आचार्यक पाम आकर विनयके साथ पूछा— भगवन् ! आत्मास्य हित क्या हे ?

आपायन उक्त दिया— आत्मास्य हित मास्य ह ।

भण्यन फिर पूछा— माक्षस्य क्या स्वरूप हे और उसकी प्राप्तिस्य उपाय क्या ह ?

आपायने क्या दि—त्रय चान्ता कममन कमक आर गारका अरनम गपया जुसा कर इना

(१) हि तत्र वाचने-या च । हि तत्र वाचने-१७७८, १७७८ ।

भाषिकज्ञानाधिगुणमव्यावाद्यसुखमात्यन्तिकमवस्थान्तरमाक्ष' इति ।

तस्याप्यन्तपरोक्षत्वाच्छेषस्था' प्रवादिनस्तीक्ष्णकरम्मन्यास्तस्य स्वरूपमस्युशन्ती भिर्वाग्भिर्युक्ताभासनिषेधनाभिरयथैव परिकल्पयन्ति अतन्व पुरुषस्य स्वरूपम् तज्ज्य ज्ञेयाकारपरिच्छेदपराङ्मुखैर्माक्ष' इति । तत्सव्यसदयेव, निराकारत्वोदिति । बुद्ध्यादिवैश्यापिकगुणोच्छेद पुरुषस्य माक्ष' इति । तदपि परिकल्पनमसदयेव विशेषलक्षणशून्यस्यावस्तुत्वात् । प्रवीपनिर्वाणकल्पमात्मनिर्वाणम्' इति च । तस्य स्वरूपविधाणनत्यता तैरेवाहृत्य निरूपिता । इत्ययमावि । तस्य स्वरूपमनवद्यमुत्तरत्र वक्ष्याम ।

हे एव उक्तं चो अभिनव स्वामाषिक ज्ञानादि गुणरूप और अव्यावाद्य सुखरूप स्वया विलक्षण अवस्था कल्पम होती है उसे माक्ष कहते हैं ।'

• बुकि ऐसा मोक्ष अवस्थ परोक्ष है, अतः अपनको तीर्यकर माननेवाले अस्यज्ज्ञानी प्रवाही जोग मोक्षके स्वरूपको स्पष्ट नहीं करनेवाले और असत्य मुक्तिरूप बचनेके द्वारा उसका स्वरूप सर्वथा अन्य प्रकारसे बतलाते हैं । यथा—

( १ सांख्य ) पुरुषका स्वरूप चैतन्य है जो ज्ञेयके ज्ञानसे रहित है । किन्तु ऐसा चैतन्य सत्स्वरूप होकर भी असत् ही है, क्योंकि ऐसा मानन पर उसका कोई प्रकार अर्थात् स्वरूप नहीं प्राप्त होता ।

( २ वैशेषिक ) बुद्धि आदि विशेष गुणोंका अस्त्वा हो जाना ही आत्माका मोक्ष है । किन्तु यह कल्पना भी असमोचीन है, क्योंकि विशेष लक्षणसे रहित वस्तु नहीं होती ।

( ३ बौद्ध ) जिस प्रकार वीरक बुझ जाता है उसी प्रकार आत्माको सन्तानका विच्छेद होना ही मोक्ष है । किन्तु जैसे गड़हूके सींग केवल कल्पनाके विषय होते हैं स्वरूपसत् नहीं वैसे ही इस प्रकारका माक्ष भी केवल कल्पनाका विषय है स्वरूपसत् नहीं । यह बात स्वयं ऊर्ध्वीक कथनसे सिद्ध हो जाती है । इत्यादि ।

इस मोक्षका निर्दोष स्वरूप आगे ( वसुधैव कुटुम्बकम् ) कहेंगे ।

( १ ) मोक्ष-त-आ अ दि ३, दि २ । ( २ ) 'चैतन्यं पुरुषस्य स्वरूपमिति'—योगसू ११३ 'तथा इन्द्र स्वरूपेऽवस्थानम्—योगसू ११३ ( ३ ) स्वरूपमिति त-आ त ( ४ ) मुखम् । तद्-अ-अ च ( ५ )—त्वात् अरविषाण वत् । ब्रह्म-अ-अ ( ६ ) भावानामस्तविषेपगुणानामत्यन्तोच्छ्रितिमोक्ष ।—अ-अ-अ ५ ३१५ । ( ७ ) इति च । । तर्थापि दि ३ अ । ( ८ ) 'यस्मिन् न चातिर्न जग न मृत्युर्न ध्यायते तापियतंप्रयोज । नेच्छाविषय प्रियविभू योः श्रेयं पर नीत्यक्रमन्त्यं तद् । बीयो यथा विबुधियभ्युद्योते मेवावलि गच्छति नात्परिहम् । शिखं न कान्तिविशिष्टं न काञ्चित् स्नेहक्यात् केवलमेति शान्तिम् ।—सौन्दर्य ३११०-११ । 'पूरीपत्येव निर्दोषं विमोक्षतस्य वेदस ।—अ-कार्तिक-अ-अ ११११ । ( ९ )—वालुबलकस्या-आ-अ, दि १ दि ३-अ अ ।

तत्राप्युपाय प्रत्यपि ते विसयदन्ते—'ज्ञानादेव चारित्रनिरपेक्षासत्प्राप्ति, श्रद्धा नमात्रादेव वा ज्ञाननिरपेक्षाच्चारित्रमात्रादेव' इति च । व्याध्यभिभूतस्य तद्विनिवृत्त्युपायभूतमेवजविषयव्यस्तज्ञानादिसाधनत्वाभाववद् व्यस्त ज्ञानादिर्मोक्षप्राप्त्युपायो न भवति ।

इसी प्रकार वे प्रवर्षी लोग उसकी प्रातिके उपायोंके विषयमें भी विचार करते हैं । कोई मानते हैं कि ( १ ) चारित्रके बिना केवल ज्ञानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । दूसरे मानते हैं कि ( २ ) केवल भ्रजानसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । तथा अन्य मानते हैं कि ( ३ ) ज्ञानके बिना केवल चारित्रसे मोक्षकी प्राप्ति होती है । परन्तु जिस प्रकार रोगके दूर करनेकी धरायभूत दवाइका मात्र ज्ञान, भ्रजान या आचरण रोगीके रोगके दूर करनेका उपाय नहीं है उसी प्रकार जुड़े जुड़े ज्ञान आदि मोक्षकी प्रातिके उपाय नहीं हैं ।

विशेषार्थ—अब तक जो कुछ बतलया है यह तत्त्वार्थसूत्र और उसके प्रथम सूत्रकी उत्पानिक मात्र है । इसमें सर्व प्रथम बतलाया है कि किस निमित्तसे इसकी रचना हुई । आशय यह है कि कोई एक मध्य आत्माके हितकी खोजमें था । इसके लिये वह किसी एकान्त रम्य आश्रममें गया और वहाँ मुनिवर्षी समाजमें बैठे हुए निश्चिन्तावर्षसे प्ररन किया । इस परमे इस तत्त्वार्थसूत्रकी रचना हुई है । तत्त्वार्थ राजवार्षिकके प्रारम्भमें जो उत्पानिक ही है उससे भी इसी बातकी पुष्टि होती है । किन्तु वहाँ प्रथम सूत्रनिर्देश करनेके बाद एक दूसरे मतका भी उल्लेख किया है । वहाँ बतलया है कि तत्त्वार्थसूत्रकी रचनाके सम्बन्धमें अन्य लोग इस प्रकारसे व्याख्यान करते हैं कि 'इधर पुरुषोंकी एक उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही है, अतः सिद्धान्तकी प्रक्रियाके प्ररन करनेके लिये मोक्षमार्गके निर्देशके सम्बन्धसे आनुषी क्रमसे शास्त्रीकी रचनाका प्रारम्भ करते हुए "सम्बन्धज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" यह सूत्र कहा है । वहाँ शिष्य और आचार्यका सम्बन्ध विवक्षित नहीं है । किन्तु आचार्यकी इच्छा संसारसागरमें निमग्न प्राणियोंके उद्धार करनेकी हुई । परन्तु मोक्षमार्गके उपदेशक विना उनके हितका उपदेश नहीं किया जा सकता, अतः मोक्षमार्गके व्याख्यानकी इच्छासे यह सूत्र कहा ।' मानस होता है कि इस उल्लेख द्वारा राजवार्षिकप्ररन तत्त्वार्थाधिगममाप्यकी उत्पानिकनिर्देश किया है । तत्त्वार्थाधिगम माप्यमें इसी आशयकी उत्पानिक पाई जाती है । मुत्तसागरसूरिन भी अपनी मुत्तसागरीमें यही बतलया है कि किसी शिष्यके प्ररनके अनुरोधसे आचार्यवर्षने तत्त्वार्थसूत्रकी रचना की । वहाँ शिष्यका नाम श्रेयस दिया है । इससे मानस होता है कि सभावसिद्धिके यह मान्यता मुख्य है कि शिष्यके प्ररनके निमित्तसे तत्त्वार्थसूत्रकी रचना हुई है । आग उत्पानिकमें मोक्षकी पर्षा आजने स योद्धेमें मोक्षवत्त्वकी मीमांसा की गई है । जैनमान्यता तो यह है कि कम और आत्माके संयमसे संसार

( १ ) - इत् । एवं व्यस्तज्ञानादि- दि ३, दि ३ सु ।

- हाथ है। अतः कम, भाषकम और नोकरके आत्मा से अलग हो जाने पर जो आत्माकी अपने ज्ञानादि गुणरूप स्वाभाविक अद्वयता प्राप्त होती है उसे मोक्ष कहते हैं। किन्तु अन्य प्रयासी लोग इस प्रकारसे मोक्षवचनका विशेषण करनेमें असमर्थ रहें। पृथग्वाद् स्वामीन उक्त्यायसूत्रके कर्ता गूढविच्छ आचार्यके सुरमम मम तीन उपाहरण उपस्थित करते हैं जिनके द्वारा मोक्षवचनका गूढ वरीकस स्वरूप उपस्थित
- ५ किया गया है। इनकी मीमांसा करते हुए मय प्रथम सांख्यमतकी मीमांसा की गई है। यद्यपि सांख्योक्त आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इन तीन प्रकारके सुखोंका संग्रह लिये दूर हो जाना मोक्ष माना है तथापि वे आत्माके स्वरूपको धैर्यमानते हुए भी उस ज्ञान रहित मानते हैं। उनका मान्यता है कि ज्ञानमय प्रकृतिक है ता भी संसर्गस्य पुरुष अपनेको ज्ञानवान् अनुभव करता है और प्रकृति अस्तव्यस्त अनुभव करती है। इसीसे यहाँ सांख्योक्त मोक्ष वचनकी आलोचना न करके पुरुष
- ० वचनकी आलोचना की गई है और उसे असत् पतलाया गया है। दूसरा मत वैशेषिकोंका है। वैशेषिकोंने ज्ञानादि विनाय गुणोंका आधार यद्यपि आत्माको माना है तथापि वे आत्मासे उनके अलग हो जानका उमकी मुक्ति मानते हैं। उनका यहाँ मतलाया है कि मुक्ति आदि विशेष गुणोंकी उत्पत्ति आत्मा आर मनक मयाग रूप असमयायी कारणम होती है। मोक्ष अपत्यामे यू कि आत्मा और मनका संयोग नहीं रहता अतः यहाँ विशेष गुणोंका मयाग हो जाता है। उनके यहाँ सभी व्यापक इन्द्रियोंके विनाय गुण भणिक मान गये हैं, इन्द्रिय वे मात्रम ज्ञानादि विशेष गुणोंका अभाव ज्ञानमें कोई आपत्ति नहीं ममस्त। अथ यदि राग द्वेष आदिके तरह मुक्तपर्याय आत्माका ज्ञानादि गुणोंम भी रहित मान लिया जाय ता आत्मा स्वतंत्र प्रदाय नहीं उठरता क्योंकि जिसका किसी भी प्रकारका विशेष लक्षण नहीं पाया जाता वह पशु ही नहीं। यही मयप दे कि इनकी मान्यताका भी अमत् पतलाया गया है। तीसरा मत बौद्धोंका है। बौद्धोंके यहाँ मारविनाय और निरूपविनाय ये दो प्रकारके निपाग मान गये हैं। नायविनाय
- ० विनायक कपन अविनाय कृपा आदि रूप आश्रयोंका ही नाश होता है, शुद्ध चित्तमनःति राय रह जाती है। किन्तु निरूपविनाय निपागमं चित्तमनःति भी नष्ट हो जाती है। यहाँ मोक्षक इस दुमरभेदका प्यानम रगकर हमकी मीमांसा की गई है। इस मयकमपम बौद्धोंका कथना है कि शीघ्रकृत गुण्य इनपर जिस प्रकार का इतर मय गये पाए आग पीठ नहीं जाती किन्तु यही ज्ञान् हो जाता है। उनी प्रकार आमादी मन्तान का अन्य दाजाना ही उमका माभ है। इसके बाद आत्माकी मन्तान मनी गल्ली,
- ५ यह मनी मन्त हो जाता है। बौद्धोंके इस मयकमे मीमांसा करत हुए आचार्यने मन्तलाया है कि उनका मय कथना अमत् ही है। इस प्रकार पादमं मात्र मयकी मीमांसा करत आचार्य न मन्त में उमक करतमयका मीमांसा का है। इस मयकम मं कथन इनका ही मयना है कि अविनाय विनाय मयका मन्त ज्ञान मन्त और आदिम इनम म एक एकट द्वारा ही मयकी मिति मन्ते है। मय मयक मय मय आर मय वैमिद इन मयन मयकज्ञान का मयको ही मुक्तिका
- ३५ मय मयन मान है। अविनाय का मयमयका मय मयका मयकज्ञान है। एक मय भी मयक मय है का मयक मय मयका है। मयकम मयका मयन मयन मानता है। मय मय मयक मयक

किं तर्हि ? तत् त्रितय समुदितमित्याह—

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्षमार्गं ॥ १ ॥

सम्यगित्यव्युत्पन्न शब्दो व्युत्पन्नो वा । अञ्चते क्वी समञ्चतीति सम्यगिति ।  
श्रुत्याय प्रशंसा । स प्रत्येक परिसमाप्यते । सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञानं सम्यक्चारित्र्यमिति ।  
एतेषां स्वरूप लक्षणतो विधानतश्च पुरस्ताद्विस्तरेण निर्देक्ष्याम । उद्देशमात्रं त्विवमुच्यते— ५

भावानां याथात्म्यप्रतिपत्तिविषयश्रद्धानसंग्रहाय दक्षानस्य सम्यग्विज्ञेपणम् । येन यत्र  
प्रकारेण जीवादेव पदार्था व्यवस्थितास्तेन तत्रावगमं सम्यग्ज्ञानम् । विमोहसंशयविषयय  
निवृत्त्ययं सम्यग्विज्ञेपणम् । ससारकारणनिवृत्तिं प्रत्यागूणस्य ज्ञानवत् कर्मादाननिमित्तं  
त्रियोपरमं सम्यक्चारित्र्यम् । अज्ञानपूर्वकाचरणनिवृत्त्ययं सम्यग्विज्ञेपणम् ।

और पकड़ता जा रहा है । हरिकीर्तन या रामकीर्तन इनका प्रकरणसर है । किन्तु जिस प्रकार रोगका १०  
निवारण केवल दवाइय दशन आदि एक एक कारणसे नहीं हो सकता । वही प्रकार मोक्षकी प्राप्ति भी  
एक एकसे द्वारा नहीं हो सकती । तो फिर मोक्षकी प्राप्तिका उपाय क्या है । यह प्रश्न छेप रहता है ।  
इसी प्रश्नका उत्तर देनेकेलिये आचार्य ने प्रथम सूत्र रखा है ।

तो मोक्षकी प्राप्तिका उपाय क्या है ? ये तीनों मिलकर मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है अथ इसी  
वाक्यके पदसन्नेके लिये आचार्य आगेका सूत्र कहते हैं— १५

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य ये तीनों मिलकर मोक्षका मार्ग है ॥ १ ॥

'सम्यक्' शब्द अव्युत्पन्न अर्थात् ऐतदिक और व्युत्पन्न अर्थात् व्याकरणसिद्ध है । जब यह  
व्याकरणसे सिद्ध किया जाता है तब सम् उपसर्ग पूर्वक अञ्च् पातुसे क्वि प्रत्यय करने पर 'सम्यक्' शब्द  
बनता है । संस्कृतमें इसकी व्युत्पत्ति 'समञ्चति इति सम्यक्' इस प्रकार होती है । प्रकृतमें इसका अर्थ  
प्रशंसा है । इसे श्रुत ज्ञान और चारित्र्य इनमेंसे प्रत्येक शब्दक साथ छोड़ लेना चाहिये । यथा— २०  
सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य । लक्षण और भेदक साथ इनका स्वरूप विस्तारसे आगे  
कहेंगे । नाममात्र यहां कहते हैं—पदार्थोंक यथार्थ ज्ञानमूलक अज्ञानका सम्यक् करनेके लिये दर्शनक  
पहले सम्यक् विज्ञेपण दिया है । जिस जिस प्रकारम जीवादिक पशय अवस्थित हैं उम उम प्रकारसे  
उनका जानना सम्यग्ज्ञान है । ज्ञानक पहले सम्यक् विज्ञेपण विमोह (अनध्ययसाय) संशय और  
विषयय ज्ञानोंक निराकरण करनेके लिये दिया है । जे ज्ञानी पुन्य संसारक कारणोंक दूर करनेक लिय  
उपय है उसक कर्मोंक ग्रहण करनेमें निमित्तमूत क्रियाक त्यागको सम्यक्चारित्र्य कहते हैं । चारित्र्यक  
पहले 'सम्यक्' विज्ञेपण अज्ञानपूर्वक आचरणक निराकरण करनेक लिय दिया है । ५

(१)—निदि । कात्या— द्वि १ । (२)—चने । पशार्थना याया—३ ।

(३) ज्ञानम् । अथम्यत्माय तं—मु । (४)—ज्ञाननिदि तत्रिगा— ६ ३ ।

पश्यति दृश्यतेऽनेन दृष्टिमात्र वा दर्शनम् । जानाति ज्ञायतेऽनेन ज्ञातिमात्र वा ज्ञानम् । धरति चर्यतेऽनेन धरणमात्र वा धारित्रम् । नन्वेव स एव कर्ता स एव करणमित्यायातम् । तच्च विरुद्धम् । सत्य स्वपरिणामपरिणामिनोर्भेदविवक्षायां तथाऽभिधानात् । यथाऽग्निर्दहती घन दाहपरिणामेन । उक्त कर्त्रादिसौघनभाव पर्यायपर्यायिणोरेकत्वाने

५ कत्व प्रत्यनकान्तोपपत्तौ स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्यविवक्षोपपत्तौरेकस्मिन्नप्यर्थे न विरुध्यते । अग्नौ दहनादिक्रियायां कर्त्रादिमाघनभाववत् ।

ज्ञानग्रहणमादौ याम्य, दर्शनस्य तत्पूर्वकत्वात् अल्पान्तरत्वाच्च । नतद्युक्त, युगपदुत्पत्ते । यदाऽस्य दर्शनमोहम्योपशमात्क्षयात्क्षयोपशमाद्वा आत्मा सम्मगदशनपर्या-

दर्शन, ज्ञान और धारित्रक व्युत्पत्त्यर्थ—

१० दर्शन शब्दक व्युत्पत्तिरूप्य अर्थ है—धरति धरयतेऽनेन दृष्टिमात्र वा दर्शनम् = जो दृक्ता है, जिसके द्वारा देखा जाय या देखनामात्र ।

ज्ञान शब्दक व्युत्पत्तिरूप्य अर्थ है—जानाति ज्ञायते अनेन ज्ञातिमात्र वा ज्ञानम् = जो जानता है, जिसके द्वारा जाना जाय या जाननामात्र ।

धारित्र शब्दक व्युत्पत्तिरूप्य अर्थ है—धरति धर्यतेऽनेन धरणमात्र वा धारित्रम् = जो धारण करता है, जिसके द्वारा धारण किया जाय या धारण करनामात्र ।

१५ शंका—दर्शन आदि शब्दोंकी इस प्रकार व्युत्पत्ति करने पर कर्ता और करण एक हो जाता है किन्तु यह बात विरुद्ध है ?

समाधान—यद्यपि यह कहना सही है तथापि स्वपरिणाम और परिणामीमें भेदकी विवक्षा होनेपर तब प्रकरसे कथन किया गया है । जैसे 'अग्नि दाह परिणामके द्वारा इधनको जलसी है' यह

२० कथन भेद विवक्षाके होनेपर ही बनता है ।

यहां पू कि पर्याय और पर्यायीमें एकत्व और अनेकत्वके प्रति अनेकान्त है, अतः स्वातन्त्र्य और पारतन्त्र्य विवक्षाके होनेसे एक ही पदार्थमें पूर्वोक्त कर्ता आदि साधनभाव बिरोधको प्राप्त नहीं होता । जैसे कि अग्निमें दहन आदि क्रियाकी अपेक्षा कर्ता आदि साधनभाव वन जाता है, वैसे ही मकृतमें जानना चाहिये ।

२५ शंका—सूत्रमें पहले ज्ञानक ग्रहण करना उचित है, क्योंकि एक तो दर्शन ज्ञानपूर्वक होता है और दूसरे ज्ञानमें दर्शन शब्दकी अपेक्षा कम अक्षर है ?

( १ )—यद्यम् । स्वयं पश्य—सु० ।—यद्यम् । यस्मादिति पश्य—दि १. दि १ ।

( २ )—स्वतेऽनेनेति दृष्टि—सु । ( १ ) ज्ञानिमात्रं सु । ज्ञानमात्रं दि १ ।

( ४ )—रिषम् । उक्त कर्ता—वा. तदा न० ( ३ ) कर्त्रादिति वा—सु । ( ५ ) धरणमात्रम् ।—अ १११३५ ।

येणाविर्भवति तदव तस्य मत्यज्ञानश्रुताज्ञाननिवृत्तिपूर्वक मतिज्ञान श्रुतज्ञान चाविर्भवति धनपटलविगमे सवितु प्रतापप्रकाशाभिव्यक्तिवत् । अत्याञ्जरादभ्यहित पूव निपतति । कथमभ्यहितत्व ? ज्ञानस्य सम्यग्व्यपदेशहेतुत्वात् । चारित्र्यात्पूव ज्ञान प्रयुवत तत्पूर्वकत्वान्चारित्रस्य ।

सवकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष । तत्प्राप्त्युपाया मार्ग । मार्ग इति शैबवचननिर्देश समस्तस्यै ५ मार्गभावज्ञापनाय । तेन व्यस्तस्य मार्गत्वनिवृत्ति कता भवति । अत्र सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रमित्येतत् त्रितय समुदित मोक्षस्य साक्षा मार्गो वेदितव्यः ।

समाधान—यह कहना मुक्त नहीं कि दर्शन ज्ञानपूर्वक होता है इसलिये सूत्रमें ज्ञानको पहल प्रहण करना चाहिये, क्योंकि दर्शन और ज्ञान एक साथ उत्पन्न होते हैं । जैसे मेघ फलके दूर हो जान पर सूर्यके प्रताप और प्रकाश एक साथ व्यक्त होते हैं, वही प्रकार जिस समय दर्शनमोक्षनीयत्व उपशम, १० क्षय और क्षयोपशम होनेसे आत्माकी सम्यग्दर्शन पर्याय व्यक्त होती है वही समय उसके मत्यज्ञान और भुक्तज्ञानका निराकरण होकर भविकान और भुक्तज्ञान प्रकट होते हैं ।

अब जो यह कहा गया है कि दर्शनकी अपेक्षा ज्ञानमें कम अक्षर हैं अतः उसे सूत्रमें सर्व प्रथम प्रहण करना चाहिये सो यह कहना भी मुक्त नहीं है, क्योंकि ऐसा निष्पत्ति है कि सूत्रमें अक्षर अक्षर वाले शब्दसे पूर्य शब्द पहले रखा जाता है, अतः पहले ज्ञान शब्दको न रत्नकर दर्शन शब्दको रखा है । १५

शब्द—सम्यग्दर्शन पूर्य क्यों है ?

समाधान—क्यों कि सम्यग्दर्शन से ज्ञानमें समीचीनता आती है ।

चारित्र के पहले ज्ञानका प्रयोग किया है, क्योंकि चारित्र ज्ञानपूर्वक होता है ।

सब कर्मोंका सुधा होना मोक्ष है और उसकी प्राप्तिका उपाय मार्ग है । सूत्रमें 'मार्गः' इस प्रकार दो एक पचन रूपसे निर्देश किया है वह, सब मिटकर मोक्षमार्ग है, इस बातके अतन के लिये १० किया है । इससे प्रत्येक में मार्गपन्थ है इस बातका निराकरण हो जाता है । अतः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिटकर मोक्षका साक्षात् मार्ग है ऐसा जानना चाहिये ।

बिदोषार्थ—पूव प्रच्छिन्नानुसार इस सूत्रमें मोक्षमार्गका निर्देश किया गया है । सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिटकर मोक्ष का साक्षात् मार्ग है यह इस सूत्र का तात्पर्य है । इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सवार्थसिद्धि में मुख्यतया पांच बिदोषवाच्यों पर प्रकाश डाला गया है १५ जो निम्न प्रकार हैं—

(१)—उक्तविरामे स—आत्मा, च दि १ दि २१ (२) सम्यग्दर्शन च पूर्वं निपतीति ।—ना म०ध्या ३५११३५ ।

(३) समस्तमार्ग—आ दि १ दि २१



सत्रादावुद्दिष्टस्य सम्यग्दर्शनस्य लक्षणनिर्देशाथमिदमुच्यते—

सत्त्वार्थभद्रान सम्यग्दर्शनम् ॥ २ ॥

तत्त्वशब्दो भावसामान्यवाची । कथम् ? तदिति सर्वनामपदम् । सवनाम च सामान्ये वतते । तस्य भावस्तत्त्वम् । तस्य कस्य । योऽर्थो यथावस्थितस्तथा तस्य भवन ५ मित्यर्थं । अर्थत इत्यर्थो निश्चीयत इति यावत् । तत्त्वेनार्थस्त्वत्त्वार्थं । अथवा भावेन

( १ ) दर्शन आदिक पहले 'सम्यक्' विशेषण देनेकर करण ।

( २ ) दर्शन आदि शब्दों का व्युत्पत्त्यर्थं ।

( ३ ) एक ही पदार्थ अपेक्षामेवसे कर्ता और करण कैसे होता है इसका निर्देश ।

( ४ ) सूत्रमें सर्व प्रथम दर्शन, तदनन्तर ज्ञान और अन्तमें चरित्र शब्द क्यों रखे हैं इसका कारण ।

( ५ ) सूत्रम 'मोक्षमाता' यह एक कथन रहने का कारण ।

१ वीसवी विशेषता का झुझसा करते हुए जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि जैन शासन में पर्याय पर्यायीमें सर्वथा भेद न मानकर कर्षणित् भेद और कर्षणित् अभेद माना गया है इस छिन्न अभेद विवक्षा का होन पर कृता साधन बन जाता है और भेद विवक्षा के होनपर करण साधन बन जाता है । आशय यह है कि जब अभेद विवक्षित होता है तब आत्मा स्वयं ज्ञानादि रूप प्राप्त होता है और जब भेद विवक्षित होता है तब आत्मासे ज्ञान आदि भिन्न प्राप्त होते हैं । चौथी विशेषताका सुझासा करते हुए आ यह लिखा है कि जिस समय दर्शनमोक्षका उपक्रम, क्षय और क्षयोपशय होकर आत्माकी सम्यग्दर्शन पर्याय ब्यक्त होती है उसी समय उसके मत्स्यज्ञान और भुताज्ञान का निष्करण होकर मतिज्ञान और भुतज्ञान प्रकट होते हैं । सो यह आपेक्षिक कथन है । वैस तो दर्शनमोक्षनीयका क्षय २० सम्यग्दर्शि ही करता है मिथ्यादर्शि नहीं, अतः दर्शन मोक्षनीयके क्षयके समय मत्स्यज्ञान और भुताज्ञान के सङ्गाप का प्ररन ही उपस्थित नहीं होता, क्योंकि कि दर्शनमोक्षनीयकी क्षणणाक समय इस जीपके मतिज्ञान और भुतज्ञान ही पायं जाते हैं । इसी प्रकार जो सम्यग्दर्शि जीप बहकसम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसको भी यही व्रम जान लेना चाहिये । दोष ब्याप्यान मुगम है ।

अप आदिमें कह गय सम्यग्दर्शन के सङ्गाप का कथन करन के लिय अनाग्र सूत्र करते हैं—

२१ अपन अपन स्वरूपक अनुसार पदार्थों का जो भद्रान होता है वह सम्यग्दर्शन है ॥ २ ॥

तत्त्व शब्द भाव सामान्य का बाधक है, क्योंकि कि 'तत्' यह सवनाम पद है और सवनाम सामान्य अपनं रहता है अतः उसका भाव तत्त्व कहलया । यहाँ 'तत्' पदम कोई भी पदार्थ लिया गया है । आशय यह है कि जो पदार्थ जिस रूपम अवस्थित है वसय उसका ज्ञान यही यहाँ तत्त्व शब्दका अर्थ है ।

३० अथ शब्द का व्युत्पत्तिसम्य अर्थ है— अर्थते निर्गपीयत इत्यथ.—जा निश्चय किया जाता है ।

( १ ) कि 'तत्त्व' शब्द 'तद्भावात्' । वा म य्य २ २१ ( २ ) अर्थते वा प्रि १ ।

भाववतोऽभिधाम्, तद्व्यतिरेकात् । तत्त्वमेवायस्तत्त्वार्थ । तत्त्वाथम्य श्रद्धान तत्त्वार्थ  
श्रद्धान सम्यग्दर्शन प्रत्येकव्यम् । तत्त्वाथम्य वक्ष्यमाणो जीवादि ।

वृक्षेराशोभायत्वात् श्रद्धानाभगतित्त्वात्पद्यते ? घातूनामनेकायत्वाददोष । प्रसिद्धार्थ  
त्याग कुत इति चे-मोक्षमागप्रकरणात् । तत्त्वार्थश्रद्धान ह्यारमपरिणामो मोक्षसाधन  
युज्यते, मध्यजीवविषयत्वात् । आलोकस्तु वक्षुरादिनिमित्त सवमसारिणीवसाधारण ५  
त्वात् मोक्षमार्गो युक्त ।

अथश्रद्धानमिति चत्सर्वार्थप्रसङ्ग । तत्त्वश्रद्धानमिति चेद्भावमात्रप्रसङ्ग ।  
'सत्ताद्रव्यस्वगुणरसकमत्वादि तत्त्वम्' इति कैदित्कल्प्यत इति । तत्त्वमकत्वमिति वा

यहाँ तत्त्व और अथ इन दोनों शब्दों के संयोग से तत्त्वार्थ शब्द बना है जो 'तत्त्वेन अथ-  
तत्त्वार्थः' एसा समास करन पर प्राप्त होता है । १०

अथया भावद्वारा भावपालक पदार्थ का कथन किया जाता है, क्योंकि भाव भावधाने से  
अलग नहीं पाया जाता । यही हालत में इसका समास होगा 'तत्त्वमथ अर्थः तत्त्वार्थः' ।

संका—इतना शब्द 'तत्त्वि' धातु से बना है जिसका अर्थ आलोक है, अतः इससे श्रद्धानरूप  
अर्थ का ज्ञान नहीं हो सकता है ?

समाधान—धातुओं के अनङ्ग अर्थ होते हैं, अतः 'तत्त्वि' धातु का श्रद्धान रूप अर्थ करन में १५  
काई दोष नहीं है ।

संका—यहाँ 'तत्त्वि' धातु का प्रसिद्ध अर्थ क्यों छोड़ दिया है ?

समाधान—मात्रमाग का प्रकरण होन से ।

तत्त्वार्थों का श्रद्धानरूप जो आत्मा का परिणाम होता है वह तो मोक्ष का साधन बन जाता  
है क्योंकि यह अर्थों के ही पाया जाता है, किन्तु आलोक चक्षु आदि के निमित्त से जाना है जो २०  
साधारण रूप से सब संसारी जीवों के पाया जाता है अतः उसे मोक्षमार्ग मानना युक्त नहीं ।

संका—मूल में 'तत्त्वाथश्रद्धानम्' के स्थान में 'अथश्रद्धानम्' इतना कहना पपाय है ?

समाधान—इससे अथ शब्द के घन, प्रयोजन और अभिप्रेय आदि जितन भा अर्थ हैं उन  
सबके महत्त्व का प्रमग जाना है जो युक्त नहीं है, अतः 'अथश्रद्धानम्' कथन इतना नहीं कहा है ।

संका—अथ 'तत्त्वश्रद्धानम्' इतना ही महत्त्व करना चाहिये ? २५

समाधान—इससे कबल भावमात्र के महत्त्व का प्रमग प्राप्त होता है । किन्तु ही साग  
( वैशिष्टिक ) तत्त्व पद से मत्ता इत्याथ गुणरस और कर्मत्व इत्यादि का महत्त्व करत है । अथ यदि  
मूल में 'तत्त्वश्रद्धानम्' इतना ही रहन दिया जाता है तो इससे इन सबका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन  
प्राप्त होता है जो युक्त नहीं है ।

अथवा तत्त्व शब्द एकवचनार्था है इतलिय मूल में कबल तत्त्व पद के स्थान में 'अथ शब्द है' ३०  
इस प्रकार शर्तकार करन का प्रमग प्राप्त होता है । 'यह सब शब्द में अत्यन्त अग पुनःकथन ही है'

सर्वैक्यग्रहणप्रसङ्गः । पुरुष एवेद सर्वम्' इत्यादि कैश्चित्कल्प्यत इति । एवं सति दृष्टेष्ट विरोधः । तस्मादभ्यभिचारार्थं मुभयोऽरुपादानम् । तत् द्विविधं सरागवीतरागविषयभेदात् प्रथममवधानानुसम्प्राप्तिस्तद्व्याप्तिरभिष्यक्तिलक्षणं प्रथमम् । आत्मविशुद्धिमात्रमितरत् ।

पेसा किन्ही न माना भी है । इस तरह इस प्रकार भी सूत्र में केवल 'तस्वभदानम्' रखना ५ युक्त प्रतीत नहीं होता ।

किन्तु पेसा मानने पर प्रत्यक्ष और अनुमान से विरोध आता है, अतः इन सब दोषों के दूर करने के लिये सूत्र में 'तस्व' और 'अर्थ' इन दोनों पदों का ग्रहण किया है ।

सम्यग्दर्शन दो प्रकार का है—सराग सम्यग्दर्शन और वीतराग-सम्यग्दर्शन । प्रथम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि की अभिव्यक्ति छहणवाला सराग सम्यग्दर्शन है और आत्मा की १० विद्युद्धिमात्र वीतराग सम्यग्दर्शन है ।

विरोधार्थ—इस सूत्र में सम्यग्दर्शन के लक्षण का निर्देश करते हुए वदलाया है कि जीपादि पदार्थों के भदान को सम्यग्दर्शन कहते हैं । इस सूत्र की व्याख्या करते हुए टीका में मुख्यतया चार बातों का सुझावा किया है । वे चार बातें ये हैं—

- (१) तस्व और अर्थ शब्दों के निरन्तर्यका निर्देश करते तस्वार्थ शब्द कैसे निरूपण हुआ है ।
- (२) 'दक्षि' भातुका अर्थ भदान करना क्यों किया गया है ।
- (३) तस्व और अर्थ इन दोनों पदों को स्वीकार करनेसे क्या लाभ है ।
- (४) सम्यग्दर्शनके कियने भेद है और उनका क्या स्वरूप है ।

प्रकृतमें यद्यपि 'तत्' सर्वनाम पद है और 'स्व' प्रत्यय भाव अर्थमें होता है अतः 'तस्व' शब्द भाव सामान्यका वाचक है और अर्थपद द्रव्यवाची है । तथापि अर्थ शब्दके २० धन प्रयोजन, अभिबन्ध, निवृत्ति, विषय, प्रकार आदि धनक अर्थ पाय जाते हैं अतः इन सबका भदान करना सम्यग्दर्शन न कहलावे, इसलिये तो सूत्रकारने सूत्रमें क्यस अर्थपद नहीं रखा है । और इसी प्रकार विभिन्न मतोंमें तस्व शब्दक भी अनेक अर्थ प्रसिद्ध हैं । वैशेषिक लोग 'तस्व' पदस सत्ता, द्रव्यत्व, गुणत्व और कमत्वका ग्रहण करते हैं । उनके यहाँ सामान्य और विशय य २५ दानां स्वतन्त्र पदार्थ माने गये हैं । अप यदि सूत्रमें क्यस 'तस्व' पद रखा जाता है तो सत्ता, द्रव्यत्व गुणत्व और कमत्व इनका भदान करना भी सम्यग्दर्शन समझ जा सकता है जो युक्त नहीं है इसलिये सूत्रकारने सूत्रमें केवल तस्वपद नहीं रखा है । इसी प्रकार परमब्रह्मवादिवादिनां नाना तत्त्वोंका न मानकर एक ही तस्व माना है । उनका मतस यह जग एक पुरुषरूप ही है । इसलिये इस हिमापन्न विषय करनेपर 'तस्व' पद एक तस्ववाची प्राप्त होता है जो युक्त नहीं है, इसलिये भी सूत्रकारने सूत्रमें क्यस तस्वपद नहीं रखा है । यहाँ तस्ववाचसे जीपादिक व सय पदार्थ लिय गये हैं ३० किन्तु भाग पाय सूत्रमें यणन किया है । इनका भदान करना सम्यग्दर्शन है यह इस सूत्रका

तात्पर्य है। यद्यपि सम्यग्ज्ञानमें ध्यान-रूप ही जिसका अर्थ आलोक होता है तथापि यहाँ इसका  
 अर्थान्तरण किया गया है क्योंकि ध्यानका आलोक अर्थ लेनपर बहुत आधिक निमित्तसे होनेके  
 कारण वह साधारणतः सब संसारी जीवोंके प्रायः जाता है, अतः प्रकृतमें वह उपयोगी नहीं ठहरता।  
 किन्तु तत्त्वार्थ विषयक अर्थान्तरणमें भी किसी किसी आसन्न मन्त्रके हा प्रायः जाता है जो प्रकृतमें  
 उपयोगी है अतः यहाँ ध्यानका अर्थ आलोक न करके अर्थान्तरण किया है। आशय यह है कि इसका ५  
 अर्थ आत्मिक साक्षात्कार नहीं कर सकते, क्योंकि इन्द्रिय और मनकी सहायतासे होनेवाला जिसना  
 भी साधोपसमिक ज्ञान है साधारण होनेसे रूपा पदार्थोंको ही जान सकता है। यतः आत्मा अरूपी  
 है अतः उसका साधोपसमिक ज्ञानके द्वारा साक्षात्कार नहीं हो सकता। किन्तु इसका अर्थ आत्म-  
 अनुसार आत्मिक अर्थान्तरण करते हैं। उनका अर्थान्तरण विषयक समस्त अनुभव आत्मिक अर्थान्तरण  
 प्रत्यक्ष ज्ञानाभित नहीं। यही कारण है कि प्रकृतमें ध्यानका अर्थ अर्थान्तरण किया है। सम्यग्दर्शनके १०  
 सराग और धीतराग ऐस दो भेद हैं। य मन्त्र पात्रकी अपेक्षासे किये गये हैं। सरागी जीवके जो  
 सम्यग्दर्शन होता है वह सराग सम्यग्दर्शन कहलाता है और धीतरागी जीवके जो सम्यग्दर्शन होता  
 है वह धीतराग सम्यग्दर्शन कहलाता है। किन्तु इससे सम्यग्दर्शनको सराग और धीतराग मानना  
 उचित नहीं है। क्योंकि सम्यग्दर्शन स्वयं न तो सराग ही होता है और न धीतराग ही। सरागता  
 और धीतरागताका सम्बन्ध तो कृपायके सद्भाव और असद्भावसे है। तथापि जिसके राग और १५  
 द्वेषरूप मनुष्य पाई जाती है उसके सम्यग्दर्शनजन्य आत्मविरुद्धि प्रकृत तो हो जाती है पर वह  
 स्पष्टता छिन्नित नहीं होती। वास्तव मनुष्यमें रागाग्र या द्वेषांशकी प्रधानता बनी रहती है। अतः सरागी  
 जीवके सम्यग्दर्शनको सराग सम्यग्दर्शन कहा है और धीतरागी जीवके सम्यग्दर्शनको धीतराग  
 सम्यग्दर्शन कहा है। उपराम आधिके भेदसे सम्यग्दर्शनके तीन भेद बतलाये हैं। इमेंसे वेदक  
 मन्त्रदर्शन ता सराग अवस्थामें ही प्रायः जाता है, किन्तु शेष दो सम्यग्दर्शन सराग और धीतराग २०  
 दोनों अवस्थाधामें प्रायः जाते हैं। राजबार्तिकमें एक आधिक सम्यग्दर्शनको ही धीतराग सम्यग्दर्शन  
 कहाया है। सो यह आपत्तिक कथन है। चारित्र्यमोहनीयक अर्थसे होनेवाली धीतरागता आधिक  
 सम्यग्दर्शनके सद्भावमें ही होती है, अन्यत्र नहीं। यही सत्य है कि राजबार्तिकमें आधिक  
 सम्यग्दर्शनको ही धीतराग सम्यग्दर्शन लिखा है। किन्तु कृपायोंकी उपरामजन्य धीतरागता उपराम  
 सम्यग्दर्शनके सद्भावमें भी प्रकृत होती हुई बनी जाती है। इससे अन्यत्र इसे भी धीतराग सम्यग्दर्शन २५  
 बतलाया है। प्रशम, संभग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये चार ऐसे चिन्ह हैं जो सरागताक रहते  
 हुए भी सम्यग्दर्शनके सद्भावके सापेक्ष हैं, अतः यहाँ सराग सम्यग्दर्शनके सद्भावमें इन चिन्होंको प्रसु  
 खता दी गई है। किन्तु धीतराग सम्यग्दर्शनमें आत्माकी परिणतिमें निमित्तता प्राई जाती है। यहाँ  
 रागांशका सत्त्वा अभाव हो जाता है, अतः यहाँ धीतराग सम्यग्दर्शनको आत्माकी विरुद्धिरूपसे

अथ न सम्यग्दर्शन जीवान्पिपदार्यविषय<sup>१</sup> यथमुत्पद्यत इत्यत आह—

समिसर्गादधिगमाया ॥ ३ ॥

निमग स्वभाव इत्यर्थ । अधिगमोर्षाविबोध । तयोर्हेतुत्वेन निर्देश । कस्या ? प्रियाया । का च क्रिया । उत्पद्यत इत्यध्याह्नियते सापम्कारत्वात् सूत्राणाम् । तदेतं  
५ सम्यग्दर्शन निमर्गाधिगमाद्वात्पद्यत इति ।

अत्राह—निसगजे सम्यग्दर्शनेऽर्थाधिगम स्याद्वा न या ? यद्यस्ति तदपि अधिगम  
अमव नार्थान्तरम् । अथ नास्ति कथमनवधुदृष्टस्यस्यार्थध्रुवानमिति ? नैप दाप ।  
उभयत्र सम्यग्दर्शने अन्तरङ्गो हेतुस्तुत्यो दर्शनमोहस्मोपशम क्षय क्षयोपशमो वा ।  
सम्मिन्सति यद्वाह्योपदेशादुते प्रादुर्भवति तन्नसर्गिणम् । यत्परोपदेशपूर्वकं जीवाद्यधि

१ लक्षित क्रिया गया ह । रागादिकी तीव्रताफ न होना प्रशमभाय है । संसारसे भीतरूप परिक्रामका  
होना अधिगमाय ह । सब जीवोंमें क्यामाय रचना अनुकम्पा है और 'जीवादि पदार्थ हैं' पसी  
सुखिका होना आस्तिक्य है ।

जीवादि पदार्थोंको विषय करनेवाला यह सम्यग्दर्शन किम प्रकार उत्पन्न होता है । अब  
इस बातके बतलानेके लिये आगका सूत्र कद्रो है—

१५ यह (सम्यग्दर्शन) निरर्गसे अर्थात् परिणाममात्रसे और अधिगमसे अर्थात् उप  
दृष्टके निमित्तत्वं उत्पन्न होता है ॥ ३ ॥

निसगया अथ गत्याय हे और अधिगमका अर्थ पदार्थका ज्ञान है । सूत्रमें इन दोनोंका  
द्वयुत्पत्तं निरूपण किया ह ।

प्रश्न—इस दोनोंका किनके हेतुरूपसे निर्देश किया है ?

समाधान—क्रिया के ।

प्रश्न—यह कौन सी क्रिया ह ?

समाधान—'उत्पन्न होता ह' यह क्रिया है । यद्यपि इसका उल्लेख सूत्रमें नहीं किया है

तथापि इसका अभ्याहार कर लेना चाहिये, क्योंकि सूत्र उपलकार स्थित होते हैं ।

यह सम्यग्दर्शन निरर्गमें और अधिगमसे उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य ह ।

२५ प्रश्न—निसगत्र सम्यग्दर्शनमें पदार्थोंका ज्ञान होता है या नहीं । यदि होता है तो यह  
सी अधिगमत्र ही हुआ उससे भिन्न नहीं । यदि नहीं होता है तो अमन पदार्थोंको नहीं जाना है  
बस उनका अज्ञान कैसे हो सकया है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं क्योंकि दोनों सम्यग्दर्शनोंमें दर्शनमोहनीयका उपशम  
सुय या क्षयोपरामरूप अन्तरङ्ग कारण समान है । इसके रहने हुए जो बाह्य उपदेशक विना होता

(१)—यय क्त्वं—आ दि १ दि २ । (२) तत्रेव गन्—आ० दि १ दि २, अ ।

गमनिमित्तं तदुत्तरम् । इत्यनयोरयं मद ।

तद्ग्रहणं विमथम् ? अनन्तरनिर्देशायम् । अनन्तरं सम्यग्दर्शनं तद्विस्थानेन निर्दिश्यते । इतरथा मोक्षमार्गोऽपि प्रकृतस्तस्याभिसम्बन्धः स्यात् । ननु च अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा ? इत्यनन्तरस्य सम्यग्दर्शनस्य ग्रहणं सिद्धमिति च प्रत्यासत्तेः प्रधानं वक्ष्यते इति मोक्षमार्ग एव सम्बन्ध्यते । तस्मात्तद्वचनं क्रियते । ५

हे वह नैसर्गिक सम्यग्दर्शन है और जो बाह्य उपदेशों के द्वारा जीवादि पदार्थों के ज्ञान के निमित्तसे होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है । यही इन दोनोंमें भेद है ।

शंका—सूत्रमें 'तत्' पदका ग्रहण किसलिये किया है ?

समाधान—इस सूत्रसे पूर्व सूत्रमें जिसका ग्रहण किया है उसका निर्देश करनके लिये यहाँ 'तत्' पदका ग्रहण किया है । अनन्तरवर्ती सूत्रमें सम्यग्दर्शन का ही उल्लेख किया है या यहाँ 'तत्' इस पद द्वारा निर्दिष्ट किया गया है । यदि 'तत्' पद न दते तो मोक्षमार्गका प्रकरण होनेसे उसका यहाँ ग्रहण हो जाता ।

शंका—अगस्त सूत्रमें जो विधि नियम किया जाता है वह अल्पबहिरूचि पूर्वका ही समझा जाता है । इस नियमके अनुसार अनन्तरवर्ती सूत्रमें कहे गये सम्यग्दर्शनका ग्रहण व्यथा सिद्ध है, अतः सूत्रमें 'तत्' पद इनकी आवश्यकता नहीं है ? १४

समाधान—नहीं, क्योंकि 'समीपवर्तीसं प्रधानं ब्रह्मवाच्यं होता है' इस नियमके अनुसार यहाँ मोक्षमार्गका ही ग्रहण होता है । किन्तु यह बात स्पष्ट नहीं है अतः सूत्रमें 'तत्' पद दिया है ।

विश्लेषण—इस सूत्रमें सम्यग्दर्शनका उत्पत्तिक निमित्तापर विचार किया गया है । आगममें पाँच लक्षियोंमें एक दर्शनाद्यधियं यत्कालाद् इति । जिस जीवको वर्तमान पर्यायमें या पूर्व पर्यायमें कर्मा भी जीवादि पदार्थों विषयके उपदेश नहीं मिला है उसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं हो सकती । किन्तु जिस जीवको इन प्रकारके उपदेशका निमित्त मिल गया है उस वत्काल या कालान्तरमें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है । यहाँ इसी अपभ्रंशसे सम्यग्दर्शनके दो भेद किये गये हैं । जो सम्यग्दर्शन उपदेशके निमित्तसे होता है वह अधिगमज सम्यग्दर्शन है और जो बिना उपदेशके होता है वह निमगज सम्यग्दर्शन है यह इस सूत्रका भाव है । यद्यपि अधिगम शब्दका अर्थ ज्ञान है तथापि प्रकृतमें इसमें अर्थ परोपदेशपूर्वक ज्ञानपात्रा ज्ञान ज्ञाना आश्रित्य । इसीसे निमग ज्ञानका अर्थ परोपदेशके बिना फलित हो जाता है । यद्यपि इन दोनों सम्यग्दर्शनोंका दर्शनमाहनायका उपदेश अर्थ और श्रयोपशमरूप अन्तरङ्ग कारण समान है तथापि बाह्य उपदेश और अनुपदेशकी १५

(१)—मित्तं म्यात् तदु-मु० । (२) अनन्तरस्य विधित्वा मति प्रकृत्या भति ।—पा० म० मा ५०

३ १ । परि० म० पृ २८ । (३) मित्तं म्यात्-दि १ दि २ भा०, अ० ।

तस्वार्थश्चिदान् सम्यग्दर्शनमित्युक्तम् । अथ किं तत्त्वमित्यत इदमाह—

जीवाजीवास्त्रयत्रयमधरनिर्जरा मोक्षास्तत्त्वम् ॥ ४ ॥

तत्र चेतनालक्षणो जीव । सा' च ज्ञानात्मिवादानेकधा भिद्यते । तद्विषययुक्तलक्षणो  
त्राय । शुभाशुभकर्मणिगमद्वाररूप आस्त्रव । आत्मकर्मणोरन्वोऽन्यप्रदेशानुप्रवेशारमको  
वध । आस्त्रवनिरोधलक्षण सधर । एकदेशकर्मसक्षयलक्षणा निर्जरा । कृत्स्नकम  
वियोगलक्षणो मोक्ष । एषां प्रपञ्च उत्तरत्र वक्ष्यते । सर्वम्य फलस्यास्माधीनत्वादादौ  
जीवग्रहणम् । तदुपकारायत्वात्तन्तरमजीवाभिधानम् । तदुभयविषयत्वात्तदनन्तरमा  
स्त्रवग्रहणम् । तत्पूर्ववत्त्वात्तदनन्तर बन्धाभिधानम् । सवृतस्य बन्धाभावात्तत्प्रसनीक-

अपत्ता इन वानोंमें भइ है । यहाँ यह दाह्य छलम होती है कि ध्यायिक सम्यग्दर्शन जब कि केवली  
आर मुक्तकवलीक पात्रमूखमें ही होता है तब उसमें सम्यग्दर्शनका निश्चयज भव न घटकर कयल  
अभिगमज यही भेद घट सकता है, फिर क्या कारण है कि टीकामें अन्तरंग कारणोंका निर्देश करते  
ममय उपद्रम और इयोपरामक साथ क्षयका भी निर्देश किया है । सो इन संकाहा यह समाधान  
है कि बूमर और तीमरे नरकसे आकर जो जीव सीर्यकर होते हैं उनके लिये ध्यायिक सम्यग्दर्शनकी  
प्राप्तिमें परोपदेशकी आवश्यकता नहीं होती किन्तु परोपदेशक बिना ही उनके ध्यायिक सम्यग्दर्शनकी  
प्राप्ति होती हुई दली जाती है अतः ध्यायिक सम्यग्दर्शनमें भी निस्सर्गज आर अभिगमज ये दो भेद  
घट जाते हैं । यही सच है कि प्रकृतमें तीनों प्रकारके सम्यग्दर्शनोंको निस्सर्गज आर अभिगमजक  
भइस दो वा प्रकारका वतलाया है ।

जीवादि पदार्थों का अद्धान करना सम्यग्दर्शन है यह पहले कह आया है । अथ तस्व कान  
कान है इन बात क धरसान क लिय आग का सूत्र कहे है—

जीव, अजीव, आस्त्रव, पंच, संवर, निर्मरा और मोक्ष ये तस्व है ॥ ४ ॥

इनमें स जीव का सक्षण धनना है आ ज्ञानाविक क भइ से अनक प्रकार की है । जीव से  
विपगत सक्षणपासा अजीव है । शुभ आर अशुभ कर्मों क आन क द्वार रूप आस्त्रव है ।  
आमा आर कम क प्रदशों का परस्पर मिल जाला पण्ड है । आस्त्रव का राकता संवर है । कर्मों का  
एकदम नृदा हाना निजरा है आर सध कर्मों का आत्मा में अलग हो जाना मास है । इनका  
विस्तार सं वलन आग करेंग ।

गप पत्र जाय का मिश्रा है अतः सूत्र क प्रारम्भ में जीव का अहण किया है । अर्थात् जीव  
का अघर्मी है यह विस्तारन क लिय जाय क पात्र अजीव का कथन किया है । आस्त्रव जीव आर  
अजीव शानों का विषय कर्मा है अतः इन शानों क याद आस्त्रव का प्रथम किया है । पंच आस्त्रव

(१)—श्रीर । न प-आ दि० २ । (२) विवभाग मु ।

प्रतिपत्त्यर्थं' तदनन्तरं सवरवचनम् । सवरे सति निजरोपपत्तौस्तदन्तिके निजरावचनम् ।  
अन्ते प्राप्यत्वा मोक्षस्यान्ते वचनम् ।

इह पुण्यपापग्रहणं कर्त्तव्यं, नव पदार्था' इत्यन्यैरप्युक्तत्वात् । न कर्त्तव्यं  
आत्मवे वधे चातर्भावात् । यद्यवमात्मधादिग्रहणमनघक, जीवाजीवयोरन्त  
र्भावात् । नानर्थकम् । इह मोक्षः प्रकृतः । साध्वर्थ्यं निर्दोष्यम् । स च ससार ४  
पूर्वकः । ससारस्य प्रधानहेतुरात्मवो वधश्च । मोक्षस्य प्रधानहेतुः सवरो निजरा च ।  
अतः प्रधानहेतुहेतुमत्फलनिवसनार्थत्वात्पृथगुपदेशः कृतः । दृश्यते हि सामान्येज्जन्तुभूत  
स्यापि विशेषस्यै पृथगुपादानं प्रयोजनार्थम् । क्षत्रिया आमाता सूरवर्माजिपि' इति ।

पूर्वक होता है इस लिय आत्मव के वाद बन्ध का कथन किया है । संबुद्ध जीव के बन्ध नहीं होता,  
अतः संवर बन्ध का उखटा हुआ इस बात का ज्ञान कराने के लिये बन्ध के बाध संवर का कथन १०  
किया है । संवर के होन पर निबंरा होती है इस लिय संवर के पास निजरा रखी है । मोक्ष अन्त में  
प्राप्त होता है इस लिय उसका अन्त में कथन किया है ।

शंका—सूत्र में पुण्य और पाप का ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि पदार्थ नौ हैं एसा दूसर  
आचार्या न भी कथन किया है ?

समाधान—पुण्य और पाप का ग्रहण नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनका आत्मव और बन्ध १५  
में अन्तर्भाव हो जाता है ।

शंका—यदि ऐसा है तो सूत्र में अलग से आत्मव आदि का ग्रहण करना निरर्थक है, क्योंकि  
उनका सीव और असीव में अन्तर्भाव हो जाता है ?

समाधान—आत्मव आदि का ग्रहण करना निरर्थक नहीं है । क्योंकि यहाँ मोक्ष का प्रकरण  
है इस लिय घसका कथन करना आवश्यक है । वह संसार पूर्वक होता है और संसार क प्रधान २०  
कारण आत्मव और बन्ध हैं तथा मोक्ष क प्रधान कारण संवर और निजरा हैं अतः प्रधान हेतु,  
हेतुमत्फल और उनक फल के लिलालन क लिय अलग अलग बरदाश किया है । इत्या भी जाता है  
कि क्षिती पितृय का सामान्य म अन्तर्भाव हो जाता है तो भा प्रयोजन क अनुसार उसका अलग से  
ग्रहण किया जाता है । जैसे क्षत्रिय आय है और मूर्खमा भी । यहाँ यद्यपि सूरबमा का क्षत्रियां में  
अन्तर्भाव हो जाता है तो भा प्रयोजन क अनुसार उसका अलग से ग्रहण किया है । इर्वा प्रकार २५  
ग्रहण में ज्ञानना चाहिये ।

(१)—एव संवर—आ दि० १, दि० २ अ० । (२)—इमं च बन्ध—मु० । (३) पुण्यकुम्भायः ।

(४)—एवैः पदार्थ—मु (५)—एवैः पदार्थानां वृत्त—मु० ।



तत्त्वज्ञानो भाववाचीत्युक्त । स कथं जीवादिभिर्द्रव्यवचने सामानाधिकरण्यां प्रतिपद्यते ? अव्यतिरेकात्तदभावाध्यारोपाच्च सामानाधिकरण्यां भवति । यथा 'उपयोग एवार्त्ता' इति । यद्येव तत्तल्लिङ्गसङ्घपानुवृत्ति प्राप्नोति ? "विशेषणविशेष्यसम्बन्ध सत्त्वपि शास्त्राद्विद्वेष्यवक्षसा उपात्तलिङ्गसङ्घपाध्यतिक्रमो न भवति । अयं क्रम आदि ५ सूत्रस्य योजय ।

शंका—तस्य शब्द भाववाची ह यह पहले कह भाय है इस क्षिमे उसका उपस्थापी जीवादि सङ्घा क साथ समानाधिकरण कैसे हो सकता है ?

समाधान—एक तो भाव द्रव्य से अलग नहीं पाया जाता दूसर भाग में द्रव्य का अव्यारोप कर लिया जाता है इस क्षिप समानाधिकरण बन जाता है । जैसे, 'उपयोग ही आत्मा है' इस वचन १० म गुणवापी उपयोग शब्द के साथ द्रव्यवापी आत्मा शब्द का समानाधिकरण है उसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिये ।

शंका—यदि पसा ह ता विशय का ओ ङिग और संख्या है वही विशय को भी प्राप्त हावे है ?

समाधान—व्याकरण का पसा नियम ह कि विशयण विशय्य सम्बन्ध के रहते हुए मा शब्द १५ शक्ति की अपेक्षा जिसन जो ङिग और संख्या प्राप्त कर सी है उसका वक्षपन नहीं होता । अता यहाँ विशय्य चार विगणय क ङिग और संख्या क जुड़ जुड़ रहने पर भी कोई दोष नहीं ह । यह क्रम प्रथम सूत्र म भी लगा सना चाहिये ।

विशयण—इस सूत्र म सात वर्णों का निर्देश किया गया ह । इसकी व्याख्या करते हुए मुख्यतया पाँच बातों पर प्रकाश डाला गया है । जो निम्न प्रकार हैं—

- २० ( १ ) जापादि सात वर्णों का स्वरूप निर्देश ।  
 ( २ ) सूत्र में जीष, अजीष इस क्रम से सात वर्णों क निरूप करन कीमायकता ।  
 ( ३ ) पुण्य और पाप को घृषकू तत्त्व नहीं मानन का कारण ।  
 ( ४ ) भाववापी शर्त्ता का उपस्थापी शर्त्ता क साथ कैसे सामानाधिकरण बनता है इसकी सिद्धि ।
- २५ ( ५ ) विगणय और विगय्य में समान विग और समान संख्या क्यों आवश्यक नहीं हमरा निर्देश ।

नीमरी वाल का गुलासा करते हुए जा लिखा है उसका आशय यह ह कि जीष की शुभाशुभ प्रवृत्ति क आधार म वैषनवान क्रमों में अनुभाग क अशुभार पुण्य पाप का विभाग हाता है इस

(१) भाष्यार्थिका अर्थवर्णितवृत्तवाच प्रवृत्ते उपनिषदस्य विनम्रस्य तन्निर्देश इति । पा० १८-१२३ । अ-न-१ । य गुणवचना तात्पर्य इत्ययं निरूपयन् अनुवचनम् । पा० म० भा० ४/१/१४/६ ।

एवमेवामुद्दिष्टानां सम्यग्दर्शनादीनां जीवादीनां च सव्यवहारविशेषव्यभिचार-  
निवृत्त्ययमाह—

नामस्थापनाद्रव्यभाषतस्तन्न्यास ॥ ५ ॥

अतद्गुणेषु वस्तुनि सव्यवहारार्थं पुरुषकारान्तिव्युज्यमानं संज्ञाकर्म नाम । काष्ठ-  
पुस्तचित्रकर्मक्षनिक्षेपादिषु सोऽयमिति स्थाप्यमाना स्थापना । गुणगुणान्वा द्रुत गत गुण ५  
द्रोष्यते गुणाद्रोष्यतीति वा द्रव्यम् । वर्तमानतत्पर्यायोपलक्षित द्रव्य भाव । तद्यथा  
नामजीव स्थापनाजीवो द्रव्यजीवो भावजीव इति चतुर्धा जीवशब्दार्थो न्यस्यते । जीवन  
गुणमनपेक्ष्य यस्य तस्यचिन्ताम त्रियमाण नामजीव । अक्षानिक्षपादिषु जीव इति वा

लिये आत्म्य और तब में इनका अन्तर्भाव किया गया है । पौष्टवी बात का झुझासा करते हुए जो  
यह लिखा है कि विशोपण विगण्य सम्बन्ध के रहते हुए भी शब्द शक्ति की अपेक्षा जिसने जो क्षिण १०  
और संख्या प्राप्त कर ली है उसका उल्लंघन नहीं होता । जो इसका यह आशय है कि एक तो जिस  
शब्द का जो क्षिण है वह नहीं बदलता । उदाहरणार्थ 'ज्ञानं आत्मा' इस प्रयोग में ज्ञान शब्द नपुंसक  
क्षिण और आत्मा शब्द पुल्लिङ्ग रहते हुए भी इनमें वचन नहीं होता । इन दोनों शब्दों का विशोपण  
विशेष्य रूप से अब भी प्रयोग किया जायगा तब वह इसी प्रकार ही किया जायगा । दूसरे प्रयोग  
के समय जिस शब्द ने जो संख्या प्राप्त कर ली है उसमें भी वचन नहीं होता । जैसे 'साधोःकाय तप- १५  
मुते' इस प्रयोग में विशोपण विशेष्य सम्बन्ध के रहते हुए भी 'कार्यम्' एक वचन है और 'तप-मुते'  
द्विवचन है । इसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिये । शप कथन सुगम है ।

इस प्रकार पहले जो सम्पादन आदि और जावादि पत्राय कहें उनका शब्द प्रयोग करते  
समय जो गड़बड़ी होती है उसको दूर करने के लिये आगे का सूत्र करते हैं—

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाष रूप से उनका अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि और जीव २०  
आदि का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है ॥ ५ ॥

संज्ञा के अनुसार गुण रहित वस्तु में व्यवहार के लिये अपनी इच्छा से की गई संज्ञाको नाम  
कहते हैं । अक्ष कर्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म आदि अक्षानिक्षेप आदि में 'यह यह है' इस प्रकार स्थापित  
करने को स्थापना कहते हैं । जो गुणां के द्वारा प्राप्त हुआ था या गुणां को प्राप्त हुआ था  
अथवा जो गुणां के द्वारा प्राप्त किया जायगा या गुणां को प्राप्त होगा उसे द्रव्य कहते हैं । वर्तमान २५  
पर्याय से युक्त द्रव्य को भाष कहते हैं । झुझासा इस प्रकार है—नाम जीव स्थापना जीव, द्रव्य जाव  
और भाष जीव इस प्रकार जीव पदार्थ का न्यास चार प्रकार से किया जाता है । जीविय गुण की  
अपेक्षा न करके जिस चिन्ता का 'जीव' एवम् नाम रखना नाम जीव है । अक्षानिक्षेप आदि में यह

मनुष्यजीव इति वा व्यवस्थाप्यमान स्थापनाजीव । द्रव्यजीवो द्विविध आगम द्रव्यजीवो नोआगमद्रव्यजीवश्चेति । तत्र जीवप्राभूतज्ञायी मनुष्यजीवप्रभूतज्ञायी वा अनुपयुक्त आत्मा आगमद्रव्यजीव । नोआगमद्रव्यजीवस्त्रेधा व्यवतिष्ठते शायक-शरीर भावि नद्रव्यतिरिक्तमदात् । तत्र ज्ञातुयच्छरीर त्रिकालगोचर तज् ज्ञायक शरीरम् । सामान्यापक्षया नोआगमभाविजीवो नास्ति जीवनसामान्यस्य सदाऽपि विद्यमानत्वात् । विशेषापक्षया त्वस्ति । गत्यन्तर जीवो व्यवस्थितो मनुष्यभव प्राप्ति प्रत्यभिमुखो मनुष्यभाविजीव । उद्रव्यतिरिक्त कमनोकमविकल्प । भावजीवो द्विविध आगमभावजीवा नोआगमभावजीवश्चेति । तत्र जीवप्राभूतविणयोपयोगा विष्टा मनुष्यजीवप्राभूतविणयोपयोगयुक्तो वा आत्मा आगमभावजीव । जीवनपर्यायिण मनुष्यजीवत्वपर्यायिण वा समाविष्ट आत्मा नोआगमभावजीव । एवमितरेषामपि पदार्थानां नामान्निक्षेपविधिर्नियोज्य । स किमर्थं ? अप्रकृतनिराकरणाय प्रकृतनि

‘जीव है’ या ‘मनुष्य जीव है’ एसा स्थापित करना स्थापना जीव है । द्रव्य जीव के दो भेद हैं—आगम द्रव्य जीव और नो आगम द्रव्य जीव । इनमें से जो जीव विषयक या मनुष्य जीव विषयक ज्ञान का जानता है किन्तु ज्ञानमान में पसक उपयोग स रहित है वह आगम द्रव्य जीव है । नोआगम द्रव्य जीव के तीन भेद हैं—ज्ञायक शरीर, भावी और तद्रव्यतिरिक्त । ज्ञाता के शरीर को ज्ञायक शरीर कहते हैं । जीवन सामान्य की अपेक्षा ‘नोआगम भावी जीव’ यह भेद नहीं बनता, क्योंकि जीव में जीवत्व सदा पाया जाता है । हों पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा ‘नोआगम भावी जीव’ यह भेद बन जाता है क्योंकि जो जीव दूसरी गति में विद्यमान है वह जब मनुष्य भव को प्राप्त करने के लिये मनुष्य होता है तब वह मनुष्य भावि जीव कहलाता है । तद्रव्यतिरिक्त के दो भेद हैं कम और नाकम । भाव जीव के दो भेद हैं—आगम भाव जीव और नोआगम भाव जीव । इनमें से जो आत्मा जीव विषयक ज्ञान का जानता है और उमक उपयोग से युक्त है अथवा मनुष्य जीवविषयक ज्ञान का जानता है और उमक उपयोग से युक्त है वह आगम भाव जीव कहलाता है । तथा जीवन पर्याय या मनुष्य जीवन पर्याय से युक्त आत्मा नोआगम भाव जीव कहलाता है । इसी प्रकार अज्ञातदि अन्य पदार्थों की भी मागादि निरूप विधि लगा लेना चाहिये ।

२५. संज्ञा—निरूप विधि का फलन किम लिय किया जाता है ?

समाधान—अप्रकृत का निराकरण करके के लिये आग प्रकृत का निरूपण करने के लिये इसका फलन किया जाता है । तात्पर्य यह है कि किम शब्द का क्या अर्थ है यह निरूप विधि के द्वारा विचार से समझाया जाता है ।

रूपणाम च । निक्षेपविधिना<sup>१</sup> श्वाचार्यं प्रस्तीयते । तच्छब्दग्रहण किमर्थम् ? सर्वसङ्ग्रह  
हार्थम् । अस्ति हि तच्छब्दे सम्यग्दर्शनादीना प्रधानानामेव यासेनाभिसम्बन्ध स्यात्  
तद्विषयभावेनोपगृहीताना जीवादीना अप्रधानानां न स्यात् । तच्छब्दग्रहणे पुन क्रियमाणे  
सति सामर्थ्यात्प्रधानानामप्रधानानां च ग्रहण सिद्धं भवति ।

एव नामानिभि प्रस्तीर्णानामधिष्ठाना तस्वाधिगम कुत ? इत्यत इदमुच्यते— ५

संज्ञा—सूत्र में 'तत्' पद का ग्रहण किस लिये किया है ?

समाधान—सब का सग्रह करन के लिये सूत्र में 'तत्' पद का ग्रहण किया है । यदि सूत्र में  
तत् पद न रखा जाय तो प्रधान भूत सम्यग्दर्शनादिक का ही न्यास के साथ सम्बन्ध होता । सम्य  
ग्दर्शनादिक के विषय रूप से ग्रहण किये गये अप्रधानभूत जीवादिक का न्यास के साथ सम्बन्ध न  
होता । परन्तु सूत्र में 'तत्' पद के ग्रहण कर जन पर सामर्थ्य से प्रधान और अप्रधान सब का १०  
ग्रहण बन जाता है ।

विशेषार्थ—नि उपसर्ग पूर्वक सिप् घाटु से निक्षेप शब्द बना है । निक्षेप का अर्थ 'रखना' है ।  
न्यास शब्द का भी यही अर्थ है । आशय यह है कि एक-एक शब्द का जोर में और शब्द में अनेक  
अर्थों में प्रयोग किया जाता है । यह प्रयोग कहाँ किस अर्थ में किया गया है इस बात को बतलाना  
ही निक्षेप विधि का काम है । यां तो भाष्यशक्तानुसार निक्षेप के अनेक भेद किये जा सकते हैं । १५  
शास्त्रों में भी उस विधिभेद मन्वा का खल्ल दहन में आता है । किन्तु मुख्यतया यहाँ इसके पाग  
मद किये गये हैं—नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव । इनका लक्षण और उद्यन्त द्वारा कथन टीका में  
किया ही है । आशय यह है कि जैसे टीका में एक श्रीव शब्द का नाम निक्षेप की अपेक्षा भिन्न अर्थ  
बतलाया है, स्थापना निक्षेप की अपेक्षा भिन्न अर्थ बतलाया है, द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा भिन्न अर्थ  
बतलाया है और भाव निक्षेप की अपेक्षा भिन्न अर्थ बतलाया है । उन्हीं प्रकार प्रत्येक शब्द का २०  
नामादि निक्षेप विधि के अनुसार पूर्वक दृश्यक अर्थ होता है । इससे अप्रकृत अर्थ का निराकरण  
होकर प्रकृत अर्थ का ग्रहण हो जाता है जिससे व्यवहार करन में किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं  
होती । इससे बच्चा और माता दोनों ही एक दूसरे के आशय को सही प्रकार समझ जाते हैं । मध्य का  
हार्थ समझने के लिये भी इस विधि का ज्ञान होना अत्यन्त आवश्यक है । जैन परम्परा में इसका  
बड़ा भारी महत्त्व माना गया है । इसी बात को ध्यान में रख कर यहाँ निक्षेप विधि का निर्देश २५  
किया गया है ।

इस प्रकार नामादिक के द्वारा विस्तार का प्राप्त हुए और अधिष्ठत जीवादिक य सम्यग्दर्शन  
नादिक के स्वरूप का ज्ञान किमक जरिय होता है इस बात के बतलाने के लिये भाग का सूत्र  
किये हैं—

### प्रमाणनयैरधिगम ॥ ६ ॥

नामादिनिक्षपविधिनोपक्षिप्ताना जीवादीनां तत्त्व प्रमाणाभ्यां नयस्त्वाधिगम्यत ॥

प्रमाणनया वक्ष्यमाणलक्षणविकल्पा । तत्र प्रमाण द्विविध स्वाथ पराथ च । तत्र स्वाथ प्रमाण

श्रुतवज्जम् । श्रुत पुन स्वाथ भवति पराथ च । ज्ञानरमक स्वार्थ वचनारमक परार्थम् ।

५ तद्विकल्पा नया । अत्राह—नयशब्दस्य अस्वात्तत्त्वात्पूर्वनिपात पाप्नोति ? नय दोष ।

अभ्यहित्वात्प्रमाणस्य पूर्वनिपात । अभ्यहितत्व च सवतो वसीय । कुतोऽभ्यहितत्वम् ?

नयपुरुषण्यभययोनित्वात् । एव ह्युक्त “प्रगृह्य प्रमाणत परिणतिविशेषादर्थविभारण नय”

इति । सकलविषयत्वाच्च प्रमाणस्य । तथा चोक्त—“सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकल्पा

देशो नयपीन इति ॥ नयो द्विविधो ब्रह्मायिक पर्यायायिकश्च । पर्यायाधि

१० कनयनं भावतत्त्वमधिगन्तव्यम् । हस्तरपां श्रियाणां ब्रह्माधिकनयन सामान्यात्मकत्वात् ।

प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है । ॥ ६ ॥

जिन जीवादि पदार्थों का नाम आदि निक्षप विधि क द्वारा विस्तार से कथन किया है

उनका स्वरूप प्रमाण आर नयों क द्वारा जाना जाता है । प्रमाण आर नयों क लक्षण आर भद

भाग कहेंगे । प्रमाण क दो भद हैं—स्वाथ और पराथ । श्रुतज्ञान को छोड़ कर शेष सब ज्ञान

१५ स्वाथ प्रमाण हैं । परन्तु श्रुतज्ञान स्वाथ और परार्थ दोनों प्रकार का है । ज्ञानात्मक प्रमाण को

स्वाथ प्रमाण कहत है और वचनारमक प्रमाण पराथ प्रमाण कहलाता है । इनक भद नय हैं ।

शंका—नय शब्द में थोड़ा अक्षर है इसलिये सूत्र में उसे पहल रखना चाहिये ?

समाधान—यह कोई शय नहीं क्या कि प्रमाण भद है अतः उसे पहल रखा है । ‘श्रेष्ठता

मयम बलवती हाती है’ ऐसा नियम है ।

शंका—प्रमाण भद क्या है ?

समाधान—ज्याकि प्रमाण में ही नयप्ररूपणा की उत्पत्ति हुई है अतः प्रमाण भद है ।

आगम में ऐसा कहा है कि यस्तु का प्रमाण न जान कर अनन्तर किसी एक अपरथा द्वारा पदार्थ का

निश्चय करना नय है ।

दूसर प्रमाण समझ का विषय करता है । आगम में भा इम प्रकार फटा है कि ‘सकलादेश

२ प्रमाण का विषय है आर विकलादेश नयका विषय है । इमलिये भी प्रमाण भेद है ।

नय क दो भद हैं—श्रयायिक आर पर्यायायिक । पर्यायायिक नयका विषय भाषनिरूप है और

(१) नय प्रमाण नयै-मु । (२) भाषिण-आ दि १ दि २ । (३) नयम् । भ-मु० ।

(४) श्रयाय परापरता श्रयाय ११ श्रयाय परापरता ।-समति १२० । (५)-कन नयपूर्व-मु ।

(६)-नय परापरता-मु । (७)-नय नाम पाना-नय-स-मु० ।

द्रव्यमय प्रयोजनमम्बत्यसी द्रव्याधिक । पर्यायोऽथ प्रयाजनमस्त्वयसी पर्यायाधिक ।  
तत्सव समुत्ति प्रमाणनाधिगन्तव्यम् ।

जोप तीन को त्र्याधिक नय प्रहरण करता है, क्या कि त्र्याधिक नय सामान्यरूप है । त्रव्य जिसका प्रयोजन है वह त्र्याधिकनय है और पथाय जिसका प्रयोजन है वह पथायाधिक नय है । तथा त्रव्य और पथाय ये सब मिल कर प्रमाण के विषय हैं ।

विगोपाथ—इस सूत्र में ज्ञान के प्रमाण और नय ऐसे भेद करके उनके द्वारा जीवादि पदार्थों का ज्ञान होता है यह बतलाया गया है । इसकी व्याख्या करते हुए टीका में सुम्यतया चार वाता पर प्रकाश डाला गया है—

(१) ज्ञान के पाँच भेदों में से किस ज्ञान का प्रमाण और नय इनमें से किम में अन्तर्भाव होता है ।

(२) नय शब्द में अल्प अक्षर होने पर भी सूत्र में प्रमाण शब्द पहले रखने का कारण । १०

(३) नय के भेद करके चार निष्कर्षों में से कान निष्पे किम नय का विषय है इसका विचार ।

(४) प्रमाण के विषय की चन्ना ।

प्रथम वात का सुल्लासा करते हुए जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है कि ज्ञान के पाँच भेदों में से भूत ज्ञान के सिवा चार ज्ञान केवल ज्ञानरूप तो माने ही गये हैं । साथ ही यह बिलक रहित है इस लिये उनका अन्तर्भाव प्रमाण ज्ञान में ही होता है । किन्तु भूत ज्ञान ज्ञान और बचन १५ उभय रूप माना गया है । साथ ही यह सबितर्क मां है इस लिये इसका प्रमाणज्ञान और नयज्ञान ऐम हो भेद हो सकते हैं । यहाँ यह प्रकाश का जा सकती है कि भूत ज्ञान यह जोप ज्ञानों के समान ज्ञान का ही एक भेद है तो फिर इसे ज्ञान और बचन उभय रूप क्या बतलाया है । सो इसका यह समाधान है कि आगम त्रव्य भुन का अन्तर्भाव भूतम किया जाता है इस लिये त्रव्य भूतको भा उपचारसे अत ज्ञान कह लिया गया है । २

दूसरी वात का सुल्लासा करते हुए प्रमाण की भेदा में यह हनु गिये हैं । प्रथम हनु वा यह किया है कि नय प्ररूपणा की उत्पत्ति प्रमाण ज्ञान से होती है अतः प्रमाण भेद है । इसका आशय यह है कि जो पदार्थ प्रमाण के विषय हो गये हैं उन्हीं में नय की प्रवृत्ति व्यवहार का कारण माना गया है अन्य में नहीं अतः प्रमाण भेद है । दूसरा हनु यह किया है कि सकलाद्भ प्रमाण के आधीन है और विकलाद्भ नय के आधीन है अतः प्रमाण भेद है । सो इसका यह आशय है कि प्रमाण २५ समुदाय को विषय करता है और नय अवयव को विषय करता है अतः प्रमाण भेद है । जो बचन कासादिक की अपवा अमदृष्टि की प्रपानता से या जमदोपचार से प्रमाण के द्वारा स्वीकृत अन्तर्भाव समानक वस्तु का एक माय कथन करता है उसे सकलाद्भ कहते हैं । और जो बचन कासादिक की अपवा अमदृष्टि की प्रपानता से या भ्रोपचार से नय के द्वारा स्वीकृत अन्तु धम का क्रम से कथन करता है उसे विकलाद्भ कहते हैं । इनमें से प्रमाण सकलाद्भशी होता है और नय विकला ३०

एव प्रमाणनपरधिगताना जीवादीनां पुनरप्यधिगमोपायान्तरप्रदणनाममाह—

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानत ॥ ७ ॥

निर्देश स्वरूपमिधानम् । स्वामित्वमाधिपत्यम् । साधनमुत्पत्तिनिमित्तम् । अधि-  
करणमधिष्ठानम् । स्थिति कालपरिच्छेदः । विधान प्रकार । तत्र सम्यग्दर्शन किमिति  
प्रश्ने सत्त्वार्थश्रद्धानमिति निर्देशो नामादिर्वा । कस्यैर्युक्ते सामान्यन जीवस्य । विशेषेण  
गत्यनुवादेन नरकगती सर्वासु पृथिवीषु नारकाणा पर्याप्तकानामौपशमिक क्षायोपशमिक

वशा अतः प्रमाण भेद माना गया है यह उक्त कथन का वास्तव्य है ।

तीसरी बात का सुझसा करते हुए नय के द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक ऐसे दो भेद करके जो  
नामादि तीन निशेषों को द्रव्यार्थिक नयका और भाव निशेष को पर्यायार्थिक नय का विषय बतलाया  
है सो इसका यह अभिप्राय है कि नाम, स्थापना और रूप ये तीनों निशेष सामान्य रूप हैं अतः  
इन्हें द्रव्यार्थिक नय का विषय बतलाया है और भाव निशेष पर्याय रूप है अतः इस पर्यायार्थिक  
नय का विषय बतलाया है । यहाँ इतना बिशेष जानना कि नाम को माहृद्य सामान्यात्मक मान बिना  
शब्द व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती है इस छिये नाम निशेष द्रव्यार्थिक नय का विषय है और  
जिसकी जिसमें स्थापना की जाती है उनमें एकत्वका अव्यवसाय किय बिना स्थापना नहीं बन सकती  
है, इस लिये स्थापना द्रव्यार्थिक नयका विषय है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार प्रमाण्य और नय के द्वारा जान गये जीवादि पदार्थों के जानन के दूसरे उपाय  
पतलान के छिये भाग का सूत्र करते हैं—

निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन आदि  
विषयों का ज्ञान होता है ।

किन्ती वस्तु के स्वरूप का कथन करना निर्देश है । स्वामित्व का अर्थ आधिपत्य है । जिस  
निमित्त से वस्तु उत्पन्न होती है वह साधन है । अधिकरण या आधार अधिकरण है । विधान काल  
तक वस्तु रहती है वह स्थिति है और विधान का अर्थ प्रकार या भेद है ।

'सम्यग्दर्शन क्या है' यह प्रश्न हुआ इस पर 'जीवादि पदार्थों का ज्ञान करना सम्यग्दर्शन  
है' ऐसा कथन करना निर्देश है या नामार्थिक के द्वारा सम्यग्दर्शन का कथन करना निर्देश है ।

सम्यग्दर्शन किसके हाता है ?

सामान्य से जीव के हाता है और बिशेष को अवका गति मागला के अनुयाय से नरकगति  
में सब पृथिवियों में पशान्ठ नागदिवों के आपन्नमिठ और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ।

(१)—विश्व। नरकप्रदान ४-मु० ।

चास्ति । प्रथमायां पृथिव्यां पर्याप्तपार्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । तिर्यग्गतौ तिरस्कृतां पर्याप्तकानामौपशमिकमस्ति । क्षायिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तपार्याप्तकानामस्ति । तिरस्कृता क्षायिकं नास्ति । औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तकानामवनापर्याप्तकानाम् । मनुष्यगती मनुष्याणां पर्याप्तपार्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् । मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति ५ पर्याप्तकानामवनापर्याप्तकानाम् । देवगतीं देवानां पर्याप्तपार्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति । औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेन्नचारित्रमोहोपशमेन सह मुताप्रति । भवनवासिद्वयन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मदानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं

पक्षा पृथिवी में पयात्तक और अपयात्तक नारकिया के औपशमिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ।

१०

तिर्यग् गति में पर्याप्तक तिर्यकोक औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है । क्षायिक और क्षायोपशमिक पयात्तक और अपयात्तक दोनों प्रकार के तिर्यकांक होता है । तिर्यक्ती के क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता । औपशमिक और क्षायोपशमिक पयात्तक तिर्यक्ती के ही होता है अपयात्तक तिर्यक्ती के नहीं ।

मनुष्य गति में क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पयात्तक और अपयात्तक दोनों प्रकार १५ के मनुष्यों के होता है । औपशमिक सम्यग्दर्शन पयात्तक ही होता है अपयात्तक मनुष्यके नहीं । मनुष्यनियों के तीनों ही सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु य पयात्तक मनुष्यनी के ही होते हैं अपयात्तक मनुष्यनी के नहीं ।

द्वर्गगति में पयात्तक और अपयात्तक दोनों प्रकारके दर्वाके तीनों ही सम्यग्दर्शन होते हैं ।

दर्वा—अपर्याप्तक दर्वा के औपशमिक सम्यग्दर्शन कैसे होता है ?

२०

समाधान—जो मनुष्य चरित्रमोहनीय का उपशम करके या करते हुए उपशमभोगी में मर कर दृक् होते हैं उन दर्वा के अपयात्तक अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है ।

भवनवासी, मन्तर और श्रोतिपी दर्वा के, इन ताना की दर्वागताओं के, तथा सौधर्म और

(१) नास्ति । इत इच्छुके मनुष्या कमभूमिज एव दशनमादधपनाप्रत्यक्ष मवति । क्षायोपशमिकमप्यस्ति । तिर्यग्गतीं तिरस्कृतां पृथिवीं पर्याप्तपार्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । तिरस्कृता क्षायिकं नास्ति । औपशमिकं क्षायोपशमिकं च पर्याप्तपार्याप्तकानामवनापर्याप्तकानाम् । मनुष्यगतीं मनुष्याणां पर्याप्तपार्याप्तकानां क्षायिकं क्षायोपशमिकं चास्ति । औपशमिकं पर्याप्तकानामेव नापर्याप्तकानाम् । मानुषीणां त्रितयमप्यस्ति । पर्याप्तकानामवनापर्याप्तकानाम् । देवगतीं देवानां पर्याप्तपार्याप्तकानां त्रितयमप्यस्ति । औपशमिकमपर्याप्तकानां कथमिति चेन्नचारित्रमोहोपशमेन सह मुताप्रति । भवनवासिद्वयन्तरज्योतिष्काणां देवानां देवीनां च सौधर्मदानकल्पवासिनीनां च क्षायिकं पुनश्चपरवेनेव । देव-मु । (१)-गतीं क्षामन्वन देवा-मु । (२) प्रति । तिर्यगेण मन्वन-मु० ।



नास्ति । तेषां पर्याप्तकानामौपशमिक क्षायोपशमिकं चास्ति ।

- इन्द्रियानुवादेन पञ्चेन्द्रियाणां सन्निनां त्रितयमप्यस्ति नेतरेषाम् । कायानुवादेन त्रसकायिकानां त्रितयमप्यस्ति नेतरेषाम् । योगानुवादेन त्रयाणां योगानां त्रितयमप्यस्ति । अयोगिना क्षायिकमेव । वेदानुवादेन त्रिवेदानां त्रितयमप्यस्ति । अपगतवेदानामौपशमिक  
 ५ क्षायिकं चास्ति । कृपायानुवादेन षतुष्कृपायाणां त्रितयमप्यस्ति । अकृपायाणामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति । ज्ञानानुवादेन आभिनिबोधिकश्रुतावधिमतपर्ययज्ञानिनां त्रितयमप्यस्ति । केवलज्ञानिनां क्षायिकमेव । सयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनस्य तानां त्रितयमप्यस्ति । परिहारविधुद्विसमत्तानामौपशमिकं नास्ति इतरत् त्रितयमप्यस्ति । सूक्ष्मसाम्परायणस्य तात्स्यतानामौपशमिकं क्षायिकं चास्ति । सयतासंयतानां असंयतानां  
 १ च त्रितयमप्यस्ति । दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनाचक्षुदर्शनावधिदर्शनिनां त्रितयमप्यस्ति ।

पज्ञान रूप में रूपम हुई दृशांगनाभा के क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं होता शप दो होते हैं सो वे भी पर्याप्तक अवस्था में ही होते हैं ।

इन्द्रिय मार्गभाके अनुवाद्से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं । अन्य जावोंके कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं होता ।

- १५ कायमार्गभाके अनुवाद्से त्रसकायिक जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं । अन्य कायभाके जीवोंके कोई भी सम्यग्दर्शन नहीं होता ।

पागमार्गभाके अनुवाद्से तीनों योगभाके जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु अयोगी जीवोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है ।

- २ वेदमार्गभाके अनुवाद्से तीनों वेदभाके जीवोंके तीना ही सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु अपगतवेदी जीवोंके औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यग्दर्शन होते हैं ।

कृपामार्गभाके अनुवाद्से चारों कृपावर्जित जीवोंके तीनों ही सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु कृपापरहित जीवोंके औपशमिक और क्षायिक ये दो सम्यग्दर्शन होते हैं ।

ज्ञानमार्गभाके अनुवाद्से आभिनिबोधिक ज्ञानी, मृतज्ञानी, अपधिज्ञानी और मनपरयज्ञानी जीवोंके तीनों ही सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु कबलज्ञानी जीवोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है ।

- ४ संयम मार्गभाके अनुवाद्से सामायिक और छद्मोपस्थापना संयत जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं । परिहारविधुद्विसमत्ताके आपशमिक सम्यग्दर्शन नहीं होता शप दो होते हैं ।

सूक्ष्मसाम्परायणिकसंयत और पथाख्यातसंयत जीवोंके आपशमिक और क्षायिक सम्यग्दर्शन होत हैं । संयतासंयत और असंयत जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं ।

- ३ ज्ञानमार्गभाके अनुवाद्से पञ्चदर्शनभाके अवसुदर्शनभाके और अपधिदर्शनभाके जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु कबल दर्शनभाके जीवोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है ।

भेदलक्षणानिना क्षायिकमेव । लक्ष्यानुषादन पक्षेक्ष्याना त्रितयमप्यस्ति ।  
अलेक्ष्यानां क्षायिकमेव । भव्यानुषादन भव्यानां त्रितयमप्यस्ति नामव्यानाम् ।  
सम्यक्त्वानुषादेन मत्र यत्सम्यग्दशन तत्र तदेव ज्ञेयम् । सज्ञानुषादेन सजिना  
त्रितयमप्यस्ति नासजिनाम् । तदुभयव्यपदेशरहितानां क्षायिकमेव । आहारानुषादेन  
आहारकाणां त्रितयमप्यस्ति । अनाहारकाणां छप्रस्थाना त्रितयमप्यस्ति केचलिनां ५  
समुद्घातगतानां क्षायिकमेव ।

क्षेद्यामागणाके अनुवादसे अहाँ क्षेद्यावाले जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं किन्तु क्षेद्यारहित  
जीवोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन ही होता है ।

मन्य मागणाके अनुवादसे मन्य जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं । अमन्योंके कोई भी  
सम्यग्दर्शन नहीं होता । १०

सम्यक्त्व मागणाके अनुवादसे अहाँ जो सम्यग्दर्शन है वहाँ वही जानना ।

संज्ञा मागणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंके तीनों सम्यग्दर्शन हैं । असंज्ञियोंके कोई भी  
सम्यग्दर्शन नहीं है । तथा संज्ञी और असंज्ञी इस मंडासे रहित जीवोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन  
है होता है ।

आहारक मार्गणाके अनुवादसे आहारकोंके तीनों सम्यग्दर्शन होते हैं । अनाहारक छप्रस्थाके १५  
भी वानां सम्यग्दर्शन होते हैं । किन्तु समुद्रावगत केबळी अनाहारकोंके एक क्षायिक सम्यग्दर्शन ही  
होता है ।

विशेषण—पदार्थोंके विवेचन करनेकी प्राचीन दो परम्पराएँ रही हैं—निर्वेद आदि वह  
अधिकारों द्वारा विवेचन करनेकी एक परम्परा और सदादि आठ अधिकारों द्वारा विवेचन करनेकी  
बृहती परम्परा । यहाँ उत्पत्तिसूत्रके कर्ता गृह्यसिद्ध आचार्यने ज्यों आर ज्यों सूत्रों द्वारा इन्हीं दो २०  
परम्पराओंका निर्वेद किया है । यहाँ टीकामें निर्वेद आदिके स्वरूपका कथन करके उन द्वारा  
सम्यग्दर्शनका विचार किया गया है । उसमें भी स्वामित्वकी अपेक्षा जो कथन किया है उसका माय  
समाप्तनेके लिय यहाँ मुख्य बातोंका उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है । इन बातोंको ध्यानमें  
रखनेसे चारों गतियोंमें किस अवस्थामें कहाँ कौन सम्यग्दर्शन होता है इसका निष्पन्न करनेमें  
सहायता मिलती है । ये बातें ये हैं—

१—क्षायिक सम्यग्दर्शनका प्रस्थापक कमभूमिका ममुष्य ही होता है । किन्तु पसा जीव २५  
कृतघ्न्यबद्ध सम्यग्दर्शि पा क्षायिक सम्यग्दर्शि हो जानेके बाद मरकर चारों गतियोंमें अम्म  
सं चकता है ।

२—नरकमें एक जीव प्रथम नरकमें ही जाता है । दूसर आदि नरकोंमें कोई भी सम्यग्दर्शि  
मरकर नहीं चलता होता । ३०

साधनं द्विविधं अम्यन्तरं वाह्यं च । अम्यन्तरं दर्शनमोहस्योपशमं क्षयक्षयोपशमो वा । वाह्यं नारकाणां प्राक्त्वतुष्यार्थां सम्यग्दर्शनस्य साधनं केषाञ्चिच्चजातिस्मरणं केषाञ्चिच्चद्रमश्रवणं केषाञ्चिच्चद्वेदनाभिभवः । चतुर्थीमारम्यं वा सप्तम्या

३—तिर्यचिमें व मनुष्योंमें उक्त जीव उक्त मोगभूमिक पुरुषवेदी तिर्यचोंमें व मनुष्योंमें ही

४. उत्पन्न हो सकता है ।

४—तिर्यच, मनुष्य और देवगतिके जीवदियोंमें कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता ।

५—मघनत्रिकमें भी कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता ।

६—उपशम सम्यग्दृष्टि जीव मरकर देवोंमें ही उत्पन्न होता है । उसमें भी उपशमभेजिमं

१० स्थित उपशम सम्यग्दृष्टिका ही मरण सम्भव है अन्यथा नहीं ।

७—कृतकृत्यवेदक सम्यग्दर्शन क्षयोपशम सम्यग्दर्शनका एक भव है । इसके सिवा दूसरे प्रकारके क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीव मरकर देव और मनुष्यगतिमें ही जन्म करते हैं नरक और तिर्यचगतिमें नहीं । ऐसे जीव यदि तिर्यचगति और मनुष्यगतिके होते हैं तो वे देवोंमें उत्पन्न होते हैं । यदि नरकगति और तिर्यचगतिके होते हैं तो वे मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं ।

१५. ८—सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नपुंसक देवियोंमें उत्पन्न होता हुआ भी प्रथम नरकके नपुंसक देवियोंमें ही उत्पन्न होता है । मनुष्यगति और तिर्यचगतिके नपुंसकदेवियोंमें नहीं उत्पन्न होता ।

य एसी चार्ते हैं जिनको ध्यानमें रक्त्नेसे किस गतिकी किस अवस्थामें कौन सम्यग्दर्शन होता है इसका पता लग जाता है जिसका स्पष्ट उल्लेख गूळ टीकामें किया ही है । एक बातका उल्लेख कर देना और भावश्यक प्रतीत होता है वह यह कि गति मार्गणाके अन्तर्गत भेद यद्यपि भाषावेदकी प्रधानतासे किय गये हैं त्रय्य वेदकी प्रधानतासे नहीं, इसलिये यहाँ सर्वत्र भाषावेदी श्रियांका ही ग्रहण किया गया है । यद्यपि त्रय्यवेदियोंमें सम्यग्दृष्टि मरकर नहीं उत्पन्न होता यह बात अन्य प्रमाणासे जानी जाती है । इस प्रकार किस गतिकी किस अवस्थामें कौन सम्यग्दर्शन होता है इसका विचार किया । शप माताणाओंमें कहाँ कितने सम्यग्दर्शन हैं और कहाँ नहीं इसका विचार सुगम है, इसलिये यहाँ हमने श्रुतासा नहीं किया ।

२५. साधन दो प्रकार हैं—अम्यन्तर और वाह्य । दर्शनमोहनीयका उपशम, क्षय या क्षयोपशम अम्यन्तर साधन है । वाह्य साधन निम्न प्रकार है—नारकियांके पाप मरकसे पहले तक अर्थात् तीस मरक तक किन्हीं जातिस्मरण, किन्हीं धमभजन और किन्हीं वेदानाभिभव से सम्य-

(१) इग निषमके अनुकार श्रीवाराणसी देहिमण्डपुत्रपीठ दरपादि नम्परकी गाथामें मन्वरत्नोंके ध्यानमें मन्वरत्नों पाठ मनीषीन प्रतीत होता है ।

नारकाणां जातिस्मरणं वदनाभिभवस्य । तिरश्चां केपाञ्चिज्जातिस्मरणं केपाञ्चिद्व  
मथवणं केपाञ्चिज्जिनविम्बदशनम् । मनुष्याणामपि तथैव । देवानां केपाञ्चिज्जाति  
स्मरणं केपाञ्चिद्वर्मथवणं केपाञ्चिज्जिनमहिमदशनं केपाञ्चिद्देषद्विषशनम् । एवं  
प्रागानतात् । आनतप्राणतारणाभ्युसदेवानां देवद्विदर्शनं मुक्त्वाऽप्यत्रितपमप्यस्ति ।  
नवप्रवेयकवासिना केपाञ्चिज्जातिस्मरणं केपाञ्चिद्वर्मथवणम् । अनुदिशानुत्तरविमान ५  
वासिनामिय कल्पना न सम्भवति, प्रागेव गृहीतसम्यक्त्वाना तत्रोत्पत्तेः ।

अधिकरणं द्विविधं अम्यन्तरं वाच्यं च । अम्यन्तरं स्वस्वामिसम्बन्धाद् एव  
आत्मा विवक्षात् भारकप्रवृत्तेः । वाच्यं सोकनाडी । सा कियती ? एकरज्जुविष्कम्भा  
चतुदशरज्जुवायामा ।

स्थितिगौपशमिबस्य नवयोत्कृष्टां चान्तमी हूर्तिकी । क्षायिकस्य ससारिणो १०

वर्तनं उत्पन्नं होता है । पाथसे लकर सातवें तक किन्हीके जातिस्मरण और किन्हीके वदनाभि  
भवसे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है ।

दिवसोंमें किन्हीके जातिस्मरण, किन्हीके धर्मप्रवण, और किन्हीके जिनविम्बदशनसे सम्यग्ज्ञान  
उत्पन्न होता है । मनुष्योंके भी इसी प्रकार जानना चाहिये ।

देषोंमें किन्हीके जातिस्मरण, किन्हीके धर्मप्रवण, किन्हीके जिनमहिमावर्तन, और किन्हीके वृ १५  
द्विदर्शनसे सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है । यह व्यवस्था आनत कल्पसे पूर्वतक जानना चाहिये ।  
आनत प्राणत, आरण्य और अभ्युत कल्पके देवोंके देवद्विदर्शनको छोड़कर रोप तीन साधन पाये  
जाते हैं । नी प्रैवयकम निवास करनेवाले देवोंके सम्यग्ज्ञानका साधन किन्हीके जातिस्मरण और  
किन्हीके धर्मप्रवण है । अनुग्रिप्त और अनुत्तरविमानोंमें रहनेवाले देवोंके यह कल्पना नहीं है, क्योंकि  
वहाँ सम्पददृष्टि जीव ही उत्पन्न होत है । २०

अधिकरण दो प्रकारका है—अम्यन्तर और वाच्य । अम्यन्तर अधिकरण—जिस सम्यग्ज्ञानका  
जो स्वामी है वहाँ उसका अम्यन्तर अधिकरण है । यद्यपि सम्बन्धमें पट्टी और अधिकरणमें सप्तमी  
बिमर्षि होती है फिर भी विष्काक अनुसार कारककी प्रवृत्ति होती है, अतः पट्टी बिमर्षि द्वारा पहल  
जो स्वामित्वका कथन किया है उसका स्वानयें सप्तमी बिमर्षि करनेसे अधिकरणका कथन  
हो जाता है । २५

वाच्य अधिकरणको छोड़नाही है ।

संका—यह कियती बड़ी है ?

समाधान—एक रामु चौड़ी और चौदह रामु लम्बी है ।

आपराधिक सम्यग्ज्ञानकी अपनय और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तमुहूर्त है । क्षायिक सम्यग्

जघनान्तर्मीह्रितिकी । उत्कृष्टा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सास्तमुहूर्ताष्टवपहीनपूर्वकाटिद्वया  
धिकानि । मुक्तस्य सान्निपर्यवसाना । क्षायोपशमिकस्य जघन्याज्जन्तर्मीह्रितिकी उत्कृष्टा  
षट्षष्टिसागरोपमाणि ।

विधान सामान्यादेक सम्यग्दर्शनम् । द्वितयं निसर्गजाधिगमजमेदात् । त्रितय

५ औपशमिकक्षायिकक्षायोपशमिकमेदात् । एय सुरुक्ष्मया विकल्पा शब्दत । असुरुक्ष्म्येया

अनकी संसारी जीवके लघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति आठ वर्ष और अन्तमुहूर्तकम  
दो पूर्वकोटि अधिक तटीस सागर है । मुक्त जीवके साहि—अनन्त है । क्षायोपशमिक सम्यग्  
दर्शनकी लघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट स्थिति अष्टासठ सागर है ।

भङ्गी अपक्षा सम्यग्दर्शन सामान्यसे एक है । निसर्गज और अधिगमजक भेदसे दो प्रकार

१० का है । औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकके भेदसे तीन प्रकारका है । ज्ञानकी  
अपक्षा संख्यात प्रकारका है तथा अज्ञान करनेवालोंकी अपेक्षा असंख्यात प्रकारका और अज्ञान करने

(१)—गमजमेदात् । एवं मु ।

(२) क्षायिक सम्यग्दर्शि ठली मगमें तीसरे मगमें या चौथे मगमें मोक्ष जाता है । जो चौथे मगमें मोक्ष  
जाता है वह पहले भोगभूमि में उसके बाद देव पर्यवर्तमें कम छेकर और अन्तमें मनुष्य होकर मोक्ष जाता है ।  
जो तीसरे मगमें मोक्ष जाता है वह पहले नरकमें या देवपर्यवर्तमें कम छेकर और अन्तमें मनुष्य होकर मोक्ष  
जाता है । यहाँ तीन और चार मगमें क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके मगका भी ग्रहण कर लिया है । छठारी  
जीवके क्षायिक सम्यग्दर्शनकी वह उत्कृष्ट स्थिति तीन मगकी अपेक्षा कलकर है । प्रथम और अन्तके दो मग  
मनुष्य पर्यवर्तके किय गये हैं और दूसरा मग देव पर्यवर्त किय गया है । इन तीनों मगोंकी उत्कृष्ट स्थिति को  
पूर्व कोटि अधिक तटीस सागर होती है । किन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति आठ वर्ष और अन्तमुहूर्तके  
परके नहीं हो सकती इस किय उत्कृष्ट मगमें से इतना कम कम करके क्षायिक सम्यग्दर्शनकी उत्कृष्ट स्थिति  
आठ वर्ष अन्तमुहूर्त कम दो पूर्व काटि वर्ष अधिक तटीस सागर कलकर है ।

(३) कृदाक्षममें क्षायोपशमिकसम्यग्दर्शनका उत्कृष्ट काळ छपाठ सागर इस प्रकार बटित करके कलकथा  
है—एक जीव उत्तम सम्यक्त्वक वरक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर दोप शुष्मान्ध व्यासुके कम शीत सागरकी  
भासु वाले देवामें उत्पन्न हुआ । फिर मनुष्यों में उत्पन्न होकर पुनः मनुष्यासुके कम बार्ल सागर  
की भासुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । फिर मनुष्यगतिम जाकर धुम्पमाग मनुष्यासुके तथा रघनमाह की  
सम्पत् पर्यन्त भाग भागी जानेवाली मनुष्यासुके कम चौबीस सागर की भासुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । यहाँ  
से फिर मनुष्य गतिमें जाकर बड़ा वेदक सम्यक्त्वके लक्षमें अन्तमुहूर्त रह जाने पर दर्शनमोहकी शक्यता प्रारम्भ  
करके इतहास्य वेदक सम्यग्दर्शि हो गया । वह जीव जब इतहास्यवेदके अन्तिम समयमें स्थित होता है तब  
क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन का उत्कृष्ट काळ छपाठ सागर प्राप्त होता है ।

अनन्ताश्च भवन्ति श्रद्धाश्रद्धात्तद्व्यभेदात् । एवमपि निर्देशादिविधिज्ञानचारित्र्यमोर्जीवा  
जीवादिषु चागमानुसारेण योजयितव्यम् ।

किमेतरेव जीवादीनामधिगमो भवति उक्त अयोज्यधिगमोपायोऽस्तीति  
परिपृष्टोऽस्तीत्याह—

सत्संख्याज्ञेप्रसर्गमकालान्तरभावाद्यप्यनुत्थे ॥ ८ ॥

५

सदित्यस्तित्वनिर्देशः । स प्रशंसाविषु वतमानो नेह गृह्यते । संख्या भेदगणना ।  
क्षेत्रं निवासो वर्तमानकालविषयः । तदेव स्पर्शनं त्रिकालगोचरम् । कालो द्विविधः  
मुख्यो व्यावहारिकश्च । तयोस्तत्र निर्णयो वक्ष्यते । अन्तरं विरहकालः । भाव-  
औपशमिकादिकक्षणः । अत्यवहुत्वमन्योऽन्यापक्षया विशेषप्रतिपत्तिः । एतद्वच सम्यग्दर्शन-  
नादीनां जीवादीनां चाधिगमो वेदितव्यः । ननु च निर्देशादेव सर्वग्रहणं सिद्धम् । विधान १०  
ग्रहणात्संख्यागतिः । अधिकरणग्रहणात्क्षेत्रस्पर्शनावबोधः । स्थितिग्रहणात्कालसंज्ञा ।

योग्य पदार्थोक्ती अपेक्षा अनन्त प्रकारका है ।

इसी प्रकार यह निर्देश आदि त्रिभिः ज्ञान और चारित्र्यं तथा जीव और अजीव आदि  
पदार्थोंमें आगमके अनुसार छगा लेना चाहिये ।

क्या इन उपर्युक्त कारणोंसे ही जीवादि पदार्थोंका ज्ञान होता है या और दूसर भी ज्ञानके १५  
रूप हैं इस प्रकार ऐसा प्रश्न करनेपर दूसरे रूपाय हैं यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अत्यवहुत्वसे भी सम्यग्दर्शन  
आदि विषयोंका ज्ञान होता है ॥८॥

‘सत् अस्तित्वका सूचक है । यह प्रशंसा आदि अनन्त अर्थोंमें रहता है पर इनका  
यहां ग्रहण नहीं किया है । संख्यासे भेदोंकी गणना की है । वर्तमानकाल विषयक निवासको क्षेत्र २०  
कहते हैं । त्रिकाल विषयक निवासको स्पर्शन कहते हैं । अल वा प्रकारका है—मुख्य और व्याव-  
हारिक । इनका निर्णय आगे करेंगे । विरहकालको अन्तर कहते हैं । भावसे औपशमिक आदि भावों  
का ग्रहण किया गया है और एक दूसरकी अपेक्षा न्यूनताधिकता ज्ञान करनेको अत्यवहुत्व कहते हैं ।  
इन सत् आदिके द्वारा सम्यग्दर्शनादिक और आवादि पदार्थोंका ज्ञान होता है ऐसा यहां जानना  
चाहिये ।

२५

संज्ञा—निर्देशसे ही ‘सत्’का ग्रहण हो जाता है । विधानके ग्रहण करनेसे संख्याका ज्ञान हो  
जाता है । अधिकरणकं ग्रहण करनेमें क्षेत्र और स्पर्शनका ज्ञान हो जाता है । स्थितिकं ग्रहण करनेसे

भावो नामादिषु सङ्गृहीत एव । पुनरेषा किमर्थं ग्रहणमिति । सत्य, सिद्धम् । विनया  
 षयवशात्तत्त्वदेशनाविकल्प । कश्चित्सङ्क्षपरुचयः' केचित् विस्तररुचय अपरे  
 नातिसङ्क्षेपेण नातिविस्तरेण प्रतिपाद्या । सर्वसत्वानुग्रहार्थो हि सता प्रयास इति  
 अधिगमाभ्युपायमदोद्देशः कृत । इतरथा हि प्रमाणनयरधिगम ' इत्यनेनव  
 ५ सिद्धत्वादितरेषा ग्रहणमनयक स्यात् ।

तत्र जीवद्रव्यगधिकरण सदाद्यनुयोगद्वारनिरूपणं त्रिपत् । जीवास्तुदसु  
 गुणस्थानेषु व्यवस्थिता । मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असयत  
 सम्यग्दृष्टिः सयतासंयत प्रमत्तसयत अप्रमत्तसंयत अपूर्वकरणस्थाने उपशमक क्षपक  
 अनिवृत्तिवादरसाम्परायस्थाने उपशमक क्षपक सूक्ष्मसाम्परायस्थाने उपशमक क्षपक  
 १ उपशान्तकपायवीतरागछद्मस्य क्षीणकपायवीतरागछद्मस्य सयोगकेवली अयोगकेवली  
 चेति । एतेषामव जीवसमासार्थं निरूपणार्थं चतुर्दश मागणास्थानानि ज्ञानानि । गती  
 न्द्रियकाययोगवैकपायज्ञानसयमवदानसेव्याभ्यसम्पन्नत्वसंज्ञाऽऽहारका इति ।

कालका संग्रह हो जाता है । भावका नामाधिकमें संग्रह हो ही गया है किन्तु इनका अलगसे किस  
 ढंगसे ग्रहण किया है ?

- १५ समाधान—यह बात सही है कि निर्देश आदिके द्वारा 'सत्' आदिकी सिद्धि हो जाती है तो  
 भी शिष्योंके अभिप्रायानुसार सत्वदेशनामें मेह पाया जाता है । किन्तु ही शिष्य संक्षेपरुचिबल्ले  
 होते हैं । किन्तु ही शिष्य विस्तार रुचिबल्ले होते हैं और दूसरे शिष्य न हो अतिसंक्षेप कथन करनेसे  
 समझते हैं और न अति विस्तृत कथन करनेसे समझते हैं । किन्तु सञ्जनाका प्रयास सब  
 अर्थोंका उपकार करना है इसलिये यहाँ अलगसे ज्ञानक उपायके सर्वोका निर्देश किया है ।  
 २० अन्यथा 'प्रमाणनयरधिगमः' इतनेसे ही काम चला जाता दूसरे उपायोंका ग्रहण करना  
 निष्फल होता ।

अथ जीव द्रव्यकी अपेक्षा 'सत्' आदि अनुयोगद्वारोंका कथन करते हैं यथा—जीव चौदह  
 गुणस्थानोंमें स्थित हैं । मिथ्यादृष्टिः, सासादनसम्यग्दृष्टिः, सम्यग्मिथ्यादृष्टिः, अमयतसम्यग्दृष्टिः  
 संयतासंयत प्रमत्तसंयत अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपक, अनिवृत्ति  
 २५ भावरसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशमक और क्षपक, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती उपशमक और  
 क्षपक, उपशान्तकपाय वीतराग छद्मस्य क्षीणकपाय वीतराग छद्मस्य सयोगकेवली और अयोग-  
 केवली । इन चौदह जीवसमासोंके निरूपण करनेकेलिये चौदह मागणास्थान खानने चाहिये ।

तत्र सत्त्वरूपणा द्विविधा सामान्येन विशेषेण च । सामान्येन अस्ति मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टिरित्येवमादि । विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ सर्वाणु पृथिवीषु आद्यानि षस्वाणि गुणम्यानानि सन्ति । तिर्यगती तान्यव सयतासयतस्थानाधिकानि सन्ति । मनुष्यगती चतुर्दशापि सन्ति । दम्भगती नारकषत् । इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियादिषु चतुरिन्द्रियपदन्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । पञ्चेन्द्रियेषु चतुर्वंशापि सन्ति । कायानुवादेन पृथिवीकायादिवनस्पतिभायान्तेषु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । त्रसकापेषु षट्दशापि सन्ति । योगानुवादेन त्रिषु योगेषु त्रयोदश गुणस्थानानि भवन्ति । तत पर अयोगभेदली । वेदानुवादेन त्रिषु वेदेषु मिथ्यादृष्टिघातनिवृत्तिवादरान्तानि सन्ति । अपगतवेदेषु अनिवृत्तिवादराध्ययोगकेवल्यतानि । कपायानुवादेन श्लोघमानमायानु मिथ्यादृष्टिघादीनि अनिवृत्तिवादरस्थानान्तानि सन्ति । लोभकपाये तान्यव सूक्ष्मसाम्पराय १८

यथा-गति, इन्द्रिय, काय योग, वेद, कपाय, ज्ञान, संयम, इन्द्र, लेख्या, मज्य, सम्यक्त्य, मंजा और आहारक ।

इनमेंसे सामान्य और विशपकी अपेक्षा सत्त्वरूपणा दो प्रकारकी है । मिथ्यादृष्टि है, सासादन सम्यग्दृष्टि है इत्यादिरूपसे कथन करना सामान्यकी अपेक्षा सत्त्वरूपणा है ।

विशपकी अपेक्षा गति मागणाक अनुवादेसे नरक गतिमें सब पृथिवियोंमें प्रारम्भके चार गुणस्थान हैं । तिर्यगगतिमें ४ ही चार गुणस्थान हैं किन्तु संयतासयत एक गुणस्थान और है । मनुष्यगतिमें चौदह ही गुणस्थान हैं और वेदगतिसमें नारकियोंक समान चार गुणस्थान हैं ।

इन्द्रिय मागणाक अनुवादेसे एकन्द्रियां से लेकर पञ्चेन्द्रिय तकके जीपोंमें एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है । पञ्चेन्द्रियोंमें चौदह ही गुणस्थान हैं ।

कायमागणाक अनुवादेसे पृथिवी काय से लेकर वनस्पति तकके जीपों में एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है । प्रसकापिकोंमें चौदह ही गुणस्थान हैं ।

योग मागणाक अनुवादेसे तीना योगोंमें लेख गुणस्थान हैं और इन्द्र काय अयोगकयला गुणस्थान है ।

वेदानुवादेसे तीन वेदोंमें लेख गुणस्थान हैं और इन्द्र काय अयोगकयला गुणस्थान है । अपगतवेदिया में अनिवृत्तिवादरसे लेकर अयोगकयली तक छह गुणस्थान हैं ।

कपाय मागणाक अनुवादेसे श्लोघ, मान और माया कपायम मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्ति वादर तक नौ गुणस्थान हैं । लोभकपायमें ४ ही नौ गुणस्थान हैं किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय एक गुण



स्थानाधिकारिणः । अक्षयय उपशान्तकषाय क्षीणकषाय सयोगकेवली अयोगकेवली' भेदि । ज्ञानानुवादेन मत्पज्ञानश्रुताज्ञानविभङ्गज्ञानेषु मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि रक्षास्ति । आभिनिबोधिकयुक्तावधिज्ञानेषु असंयतसम्यग्दृष्टिधादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । मनःपर्ययज्ञान प्रमत्तसंयतादयः क्षीणकषायान्ता सन्ति । केवलज्ञाने सयोगोऽप्यो गच्छ । संयमानुवादेन संयता प्रमत्तादयोऽयोगकेवल्यन्ता । सामाधिक्येदोपस्थापनाशुद्धि संयता प्रमत्तादयोऽनिवृत्तिस्थानान्ता । परिहारविशुद्धिसंयता प्रमत्तादयः प्रमत्तादयः प्रमत्तादयः । सूक्ष्मसाम्प्रदायशुद्धिसंयता एकस्मिन्नेव सूक्ष्मसाम्प्रदायस्थाने । यथाख्यातविहारशुद्धिसंयता उपशान्तकषायादयोऽयोगकेवल्यन्ता । संयतासंयता एकस्मिन्नेव संयतासंयतस्थाने । असंयता आधेयु चतुषु गुणस्थानेषु । वृत्तानुवादेन चक्षुर्दर्शनाचक्षुर्दर्शनयोर्मिथ्यादृष्टिधादीनि क्षीणकषायान्तानि सन्ति । अवधिदर्शने असंयतसम्यग्दृष्टिधादीनि क्षीणकषायान्तानि । केवलदर्शने सयोगकेवली अयोगकेवली च । लेख्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेख्यासु मिथ्या दृष्टिधादीनि असंयतसम्यग्दृष्टिधन्तानि सन्ति । तेजःपद्मलेखयामिथ्यादृष्टिधादीनि

स्थान और हैं । उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय, सयोगी और अयोगी के चार गुणस्थान क्याबरहित हैं । ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्पज्ञान श्रुताज्ञान और विभंगज्ञानमें मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के दो गुणस्थान हैं । आभिनिबोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानमें असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषायतक नौ गुणस्थान हैं । मनःपर्ययज्ञानमें प्रमत्तसंयतसे लेकर क्षीणकषाय तक छः गुणस्थान हैं । केवलज्ञानमें सयोग और अयोग के दो गुणस्थान हैं ।

संयम मार्गणाके अनुवादसे प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक संयत जीव होते हैं । सामाधिक्य संयत और वृत्तोपस्थापनशुद्धिसंयत जीव प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिपृष्टि गुणस्थान तक होते हैं । परिहारविशुद्धिसंयत जीव प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें होते हैं । सूक्ष्मसाम्प्रदायशुद्धिसंयत जीव एक सूक्ष्मसाम्प्रदाय गुणस्थानमें होते हैं । यथाख्यात विहारशुद्धिसंयत जीव उपशान्तकषाय गुणस्थानसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक होते हैं । संयतासंयत जीव एक संयतासंयत गुणस्थानमें होते हैं । असंयत जीव प्रारम्भके चार गुणस्थानोंमें होते हैं ।

वृत्त मार्गणाके अनुवादसे चक्षुर्दर्शन और अचक्षुर्दर्शनमें मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय तक चार गुणस्थान हैं । अवधिदर्शनमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय तक नौ गुणस्थान हैं । केवलदर्शनमें सयोगकेवली और अयोगकेवली के दो गुणस्थान हैं ।

संयम मार्गणाके अनुवादसे कृष्ण, नील और कपोत लेख्यामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत

(१)-वही च । ज्ञान-ता म । (२)-दृष्टिभारित । तन्मिथ्यादृष्टिसे रिपनकारकामिप्राप्य ज्ञानस्यम् ।

अप्रमत्तस्थानात्तानि । शुक्ललेस्याया मिथ्यादृष्ट्यादीनि सयोगकेवल्यन्तानि । अलेस्या  
 अयोगकेवलिन । मध्यानुवादेन मध्येषु चतुर्दशापि सन्ति । अमध्या आद्य एव म्याने ।  
 सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अयोगकेवल्यन्तानि  
 सन्ति । क्षायोपशमिकसम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि अप्रमत्तान्तानि । औपशमिक  
 सम्यक्त्वे असंयतसम्यग्दृष्ट्यादीनि उपशान्तकपायान्तानि । सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्य ५  
 किमध्यादृष्टिमिथ्यादृष्टिश्च स्वे स्वे स्थाने । सज्ञानुवादेन सजिसु द्वादश गुणस्थानानि  
 क्षीणकपायान्तानि । असजिसु एकमेव मिथ्यादृष्टिस्थानम् । तदुभयव्यपदेशरहित सयोग  
 केवली अयोगकेवली च । आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्ट्यादीनि केवल्यन्तानि ।  
 अनाहारकेषु विप्रहृगत्यापक्षेषु त्रीणि गुणस्थानानि मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिः  
 संयतसम्यग्दृष्टिश्च । समुद्रघातगत सयोगकेवली अयोगकेवली च । सिद्धा परमेष्ठिन १०  
 अतीतगुणस्थाना । उक्ता सत्प्रस्थाणा ।

सम्यग्दृष्टि एक चार गुणस्थान हैं । पीठ और पद्मक्षेत्र्यामें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक  
 सात गुणस्थान हैं । शुक्ललेस्यामें मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली तक तेरह गुणस्थान हैं । किन्तु  
 अयोगकेवली जीव लक्ष्या रहित हैं ।

मन्व मार्गणाक अनुवादासे मध्यामं चौदह ही गुणस्थान हैं । किन्तु अमन्व पहले ही गुणस्थान १५  
 में पाय जाते हैं ।

सम्यक्त्व मागणाक अनुवादासे क्षायिकसम्यक्त्वम असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगकेवली तक  
 ग्यारह गुणस्थान हैं । क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक चार  
 गुणस्थान हैं । औपशमिक सम्यक्त्वम असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपायतक आठ गुणस्थान  
 हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि चार मिथ्यादृष्टि अपने अपने गुणस्थान में होते हैं । २०

संज्ञामार्गणाके अनुवादासे मज्जिमोक्ष क्षीणकपायतक चारह गुणस्थान हैं । असंज्ञिमोक्षे एक  
 ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है । मंझी और अंसही इस संज्ञासे रहित जीव सयोगकेवली और अयोग-  
 केवली इन दो गुणस्थानवास्तु होते हैं ।

आहार मार्गणाक अनुवादासे आहारकर्म मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर सयोगकेवली तक  
 तेरह गुणस्थान होते हैं । विप्रहृगतिको प्राप्त अनाहारकर्म में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और ५  
 असंयतसम्यग्दृष्टि य तीन गुणस्थान होते हैं । तथा समुद्रघातगत सयोगकेवली चार अयोगकेवली  
 जीव भी अनाहारक हात हैं ।

सिद्ध परमेशी गुणस्थानात्तानि हैं ।

इम प्रकार मन्वमार्गणाका कथन समाप्त हुआ ।

सहस्राप्ररूपणोच्यते । सा द्विविधा सामान्येन विशेषण च । सामान्यत तावत् जीवा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ता । सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽस्यतसम्यग्दृष्टय संयतासयताश्च पत्योपमासंख्येयभागप्रमिता । प्रमत्तसयता कोटीपृथक्त्वसंख्या । पृथक्त्वमित्यागमसंज्ञा तिसृणां कोटीनामुपरि नवानामघ । अप्रमत्तसयता संख्यया । चत्वार उपशमका प्रवेशेन एको वा द्वीवात्रयो वा । उत्कर्षेण चतुःपञ्चाशत् । स्वकालेन समुदिता संख्यया । चत्वार क्षपका अयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन एको वा द्वीवात्रयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्या । स्वकालेन समुदिता संख्येया । सयोगकेवलिन प्रवेशेन एको वा द्वी वा तयो वा । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसंख्या । स्वकालेन समुदिता शतसहस्रपृथक्त्वसंख्या ।

१० विशेषेण गत्यनुधादन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारका मिथ्यादृष्टयोऽस्येया श्रेण्य प्रतरासंख्येयभागप्रमिता । द्वितीयादिष्व्या सप्तम्या मिथ्यादृष्टय श्रप्य

अब संख्या प्ररूपणाका कथन करते हैं । सामान्य और विशेषकी अपेक्षा यह दो प्रकारकी है । सामान्यकी सपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अस्यत सम्यग्दृष्टि आर संयतासंयत इनमेंसे प्रत्येक गुणम्बानवासे जीव पर्यके अर्त्तक्यातर्वे भागप्रमाण हैं ।

११ प्रमत्तसयतोंकी संख्या कोटिपृथक्त्व है । पृथक्त्व यह आगमिक संज्ञा है । इससे तीनसे ऊपर और नाके नीचे मन्थकी किसी संख्याका बोध होता है । अप्रमत्तसयत जीव संख्यात हैं । चारों उपशमक गुणस्थानवासे जीव प्रवराकी अपेक्षा एक दो या तीन हैं, उत्कृष्टरूपसे जीवन हैं आर अपन काष्के द्वारा संचित हुए एक जीव संख्यात हैं । चारों क्षपक और अयोगकेवली प्रवराकी अपेक्षा एक दो या तीन हैं, उत्कृष्टरूपसे एकसौ आठ हैं और अपने काष्के द्वारा संचित हुए एक जीव संख्यात हैं ।

२० सयोगकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा एक, दो या तीन हैं, उत्कृष्टरूपसे एकसौ आठ हैं और अपने काष्के द्वारा संचित हुए एक जीव सत्त्वपृथक्त्व हैं ।

विशेषकी अपेक्षा गति मार्गणाके अनुवादसे नरकगतिये पहली पृथिवी में मिथ्यादृष्टि नारकी अर्त्तक्यात जगभेगीप्रमाण हैं जो जगभेगियां जगप्रतरके अर्त्तक्यातर्वे भागप्रमाण हैं । दूसरी पृथि

(१) द्विविधा । सामान्येन तावत्—मु०

(२) सत उच्च लब्धी और एक प्रवेशप्रमाण चौकी भाषाघ प्रवेश वक्तिको जगभेगि करत हैं । एही जगप्रतरके अर्त्तक्यातर्वे जगप्रमाण जगभेगियोग मिलत प्रवेश होते हैं उतने प्रथम नरकके मिथ्यादृष्टि नारकी हैं यह एक कथनना कारण है ।

(३) जगभेगिद्वर्तिका जगप्रतर करत हैं ।

सख्ययभागप्रमिता । स चासख्येयभाग असख्येया योजनकोटीकोटय । सर्वासु पृथिवीषु सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिध्यादृष्टयोऽस्यतसम्यग्दृष्टमद्वय पत्योपमासम्येयभागप्रमिता । त्रियगती तिररुषां" मध्ये मिध्यादृष्टयोजनान्ता । सासादनसम्यग्दृष्टपादय सयतासयतान्ता पत्योपमासम्येयभागप्रमिता । मनुष्यगती मनुष्या मिध्यादृष्टय" श्र प्य सख्ययभागप्रमिता । स चासख्येयभाग असख्येया योजनकोटीकोटय । सासादनसम्यग्दृष्टपादय नयतामयतान्ता सम्यया । प्रमत्तादीनां सामा'योक्ता सख्या । देवगती देवा मिध्यादृष्टयोऽसम्येया श्र णय म्तरासम्येयभागप्रमिता । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यक्त-मिध्यादृष्टपसयतसम्यग्दृष्टय" पत्योपमामस्येयभागप्रमिता । इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रिया

धीसे लक्ष सातवीं पृथिवीतक प्रत्यक पृथिवीमं मिध्यादृष्टि नारकी जगभेगीक अमंग्यातवें भाग-प्रमाण हैं । जो जगभेगीका असख्यातयां भाग अमंग्यात कोटि योजनप्रमाण है । मय पृथिवी १ योमं सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिध्यादृष्टि ध्या अमंग्यातमस्यग्दृष्टि नारकी पत्यक अमंग्यातवें भागप्रमाण हैं ।

त्रिय गतिम मिध्यादृष्टि त्रियष अनन्तान्त है । सासादनसम्यग्दृष्टिमे लक्ष संयतामंयत तक प्रत्यक गुणस्थानवाज्ञ त्रियष पत्यक अमंग्यातवें भागप्रमाण हैं ।

मनुष्यगतिम मिध्यादृष्टि मनुष्य जगभेगीक अमंग्यातवें भागप्रमाण हैं । जो जगभेगीका १५ अमंग्यातवां भाग अमंग्यातकाटि योजन प्रमाण है । सासादनसम्यग्दृष्टिस लक्ष संयतामंयत तक प्रत्यक गुणस्थानवाज्ञ मनुष्य संयतात हैं । प्रमत्तमंयत आनि मनुष्योंकी वही संख्या है जा सामान्यमे कह आय हैं ।

द्वयगतिम मिध्यादृष्टि द्वय अमंग्यात जगभेगीप्रमाण है जा जगभेगीका जगप्रत्यक अमंग्यात वें भागप्रमाण हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिध्यादृष्टि ध्या अमंग्यातमस्यग्दृष्टि इनमस प्रत्यक २० गुणस्थानवाज्ञ द्वय पत्यक अमंग्यातवें भागप्रमाण हैं ।

(१) तिररुषां मिध्या-मु

(२) जगभेगीमे ऐसे अमंग्यातका भाग है त्रियष यदंग्यत योजन काटि प्रमाण भाशय प्रदात प्रात १। इतनी दूत आदि प्र यक नरक नाशिवी की लक्षता है । प मंग्या उद्यगतर होय है ।

(३) इतम ममू'णम मनु-नींरी गान्ग लम्बि-१ है ।

(४) सासादनसम्यग्दृष्टि आनि गुणस्थानवा मनुष्योंकी संख्या बीसवात इत्यत्रममू'णमकी पत्य योमं मिध्यातम काट्य है ।

(५) मिध्यादृष्टि वहींरी मंग्यात गुणगा प्रमाण मरकम मिध्यादृष्टि नाशिवीं गुणगात ममान जन्ता काटिय है । भाग ३। इमी प्रकरण पतामम मनुगा कर जा काटिय ।

मिथ्यादृष्टयोजनान्ता । द्वीन्द्रियास्त्रीन्द्रियाश्चतुरिन्द्रिया असंख्येया श्रेण्य प्रतरासख्येयभागप्रमिता । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टयोऽसख्येया श्रेण्य प्रतरासख्येयभागप्रमिता । सासाधनसम्पद्दृष्ट्यादयोऽयोगकेवल्यन्ता सामान्योक्तसंख्या । कायानुवादेन पृथिवीवायिका अपृथायिकास्तेज कायिका वायुकायिका असख्येया लोका । वनस्पतिकायिका अनन्तानन्ता । सूक्ष्मायिकसंख्या पञ्चेन्द्रियवत् । योगानुवादेन मनोयोगिनो वा ग्योगिनश्च मिथ्यादृष्टयोऽसख्येया श्रेण्य प्रतरासख्येयभागप्रमिता । काययोगिनो मिथ्यादृष्टयोजनान्ता । त्रयाणामपि योगिनां सासाधनसम्पद्दृष्ट्यादयस्यतासंयतान्ता पत्योपमासख्येयभागप्रमिता । प्रमत्तस्यतादयस्ययोगकेवल्यन्तासख्येया । अयोगवेषलिन सामान्योक्तसंख्या । वेदानुवादेन स्त्रीवेदा पुवेदाश्च मिथ्यादृष्टयोऽसख्येया श्रेण्य प्रतरासख्येयभागप्रमिता । नपुंसक

इन्द्रियमार्गशाके अनुवादसे पकेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं । शोइन्द्रिय हीनेन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीव असंख्यात जगभेदीप्रमाण हैं जो जगभेदिया जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । पंचन्द्रियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगभेदीप्रमाण हैं जो जगभेदिया जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । सासाधनसम्पददृष्टिसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवाले पंचिन्द्रियोंकी वही संख्या है जो सामान्यसे कह आवे हैं ।

काय मागणाक अनुवादसे पृथिवीवायिक, जलवायिक, अग्निवायिक और वायुकायिक जीवोंका संख्या असंख्यात लोकप्रमाण है । वनस्पतिकायिक जीव अनन्तानन्त हैं । और प्रत्येक जीवोंकी संख्या पंचिन्द्रियोंके समान है ।

योग मागणाक अनुवादसे मनोयोगी और बचनयोगी मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगभेदीप्रमाण हैं जो जगभेदिया जगप्रतरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । काययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं । तानों यागवासोंमें सासाधनसम्पददृष्टिसे लेकर संयतासंयत एक प्रत्येक गुणस्थानवान जीव प्रत्येक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगकेवली गुणस्थान तक तीना यागवास जीव प्रत्येक गुणस्थानमें संख्यात हैं । अयोगकेवलियोंकी वही संख्या है जो सामान्यसे कह आवे हैं ।

चद मागणाक अनुवादसे स्त्रीवदवात और पुंरूपवदवात मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगभेदीप्रमाण हैं जो जगभेदिया जगप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । नपुंसकवदवात मिथ्या

(१)-वाग्नि मिथ्या-मु । वाग्नि मिथ्या-दि० १ । (२)-नमः । त्रियागिनां ताता-मु० ।

(३) वेग ता प्रत वाग्निही संख्या पंचेन्द्रियों की संख्याके अधिक है । पर असंख्यात सामान्यता भवता है । वदवातद्वारा संख्यात पंचिन्द्रियों की संख्याके समान वाग्नि है ।

वेदा मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ता । स्त्रीवेदा नपु सफवेत्तश्च सासादनसम्यग्दृष्टपादय संय  
 सासयतान्ता सामान्योक्तसंख्या । प्रमत्तसयतादयोऽनिवृत्तिवादरान्ता सख्येया । पुंवेदा  
 सासादनसम्यग्दृष्टपादयोऽनिवृत्तिवादरान्ता सामान्योक्तसंख्या । अपगतवेदा अनिवृत्ति  
 वादरादयोऽयोगेवत्यन्ता सामान्योक्तसंख्या । कृपायानुवादेन क्रोधमानमायासु मिथ्यादृ  
 ष्टपादय सयतासयतान्ता सामान्योक्तसंख्या । प्रमत्तसयतादयोऽनिवृत्तिवादरान्ता  
 सख्येया । लोभकृपायाणामुक्त एव क्रम । अयं तु विशेष सूक्ष्मसाम्परायसंयता सामा  
 योक्तसंख्या । अकृपाया उपशान्तकृपायादयोऽयोगेवत्यन्ता सामान्योक्तसंख्या । ज्ञाना  
 नुवादेन मत्स्यज्ञानिन भ्रुताज्ञानिनश्च मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टय सामान्योक्तसंख्या ।

दृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं । सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक स्त्रीवदवाले और नपुंसकवे  
 दवाले जीवाँकी वही संख्या है जो सामान्यसे कही है । प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिवाद् १०  
 तक आवेदवाले और नपुंसक वेदवाले जीव संख्यात हैं । सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर संयतासंयत  
 तक पुरुषवेदवाले जीवाँकी वही संख्या है जो सामान्यसे कही है । प्रमत्तसंयतसे लेकर  
 अनिवृत्तिवाद् तक पुनपदवालोंकी वही संख्या है जो सामान्यसे कही है । अनिवृत्तिवाद्से  
 लेकर अयोगकेवली गुणस्वान तक अपगतवेदवाले जावाँकी वही संख्या है जो सामान्यसे कही है ।

कृपाय मार्गणाके अनुवादसे क्रोध, मान और माया कृपायमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर १५  
 संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थानवाले जीवाँकी वही संख्या है जो सामान्यसे कही है । प्रमत्तसंयतसे  
 लेकर अनिवृत्तिवाद् तक उक्त कृपायवाले जाव संख्यात हैं । यही क्रम लोभकृपायासे जावाँका  
 जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सूक्ष्मसाम्परायिक संयत जीवाँकी वही संख्या है  
 जो सामान्यसे कही गई है । उपरान्त कृपायसे लेकर अयोगकेवली गुणस्वान तक कृपायद्वित  
 जीवाँकी संख्या सामान्यवत् है ।

ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्स्यज्ञानी और भ्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सामादनसम्यग्दृष्टि  
 जीवाँकी संख्या सामान्यवत् है । त्रिसंज्ञानी मिथ्यादृष्टि जाव असंख्यात जगत्प्रखीप्रमाण है जो

(१)—इया संयतासंयतास्ता सामान्योक्तसंख्या । प्रमत्तसंयतादयोऽनिवृत्ति—मु०, भा०, दि० १ दि० २।

(२)—दृष्टयाऽताता—ता

(३) यी ता त्रिस गुणस्थानवाली वी जा संख्या बनस्यार है वर कृपाय आदि पार भागीमें वर जनी है  
 फिर भी सामान्यसे उक्त संख्याका अतिक्रम नहीं होता इत लिये कृपाय मान माया और लज कृपायमें मिथ्यादृष्टि  
 से लेकर संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थानवाली वी संख्या भागके समान बनस्यार है । भाग भी जरा इत मगर  
 संख्या बनस्यार हा जरा परी क्रम जान उना चारिय ।

(४) संख्यात । (५) अनन्तानन्त ।

विभङ्गज्ञानिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येया श्रेणय प्रतरासख्ययभागप्रमिता । सासादन  
सम्पद्दृष्टय पन्थोपमासख्येयभागप्रमिता । मतिश्रुतज्ञानिनोऽसंयतसम्पद्दृष्टघादय क्षीण  
कषायान्ता सामान्योक्तसख्या । अबधिज्ञानिनोऽसंयतसम्पद्दृष्टिसयतासयता सामान्यो  
क्तसख्या । प्रमत्तसंयतादय क्षीणकषायान्ता सख्यया । मनःपर्ययज्ञानिन प्रमत्तसय  
तादय क्षीणकषायान्ता सख्येया । केवलज्ञानिन सयोगा अयोगाश्च सामान्योक्तसं  
ख्या । समयानुवादेन सामायिकच्छदोपस्थापनशुद्धिसयता प्रमत्ताद्ययोऽनिवृत्तिवादान्ता  
सामान्योक्तसख्या । परिहारविशुद्धिसयता प्रमत्ताद्याप्रमत्ताश्च सख्येया । सूक्ष्मसा  
म्परायशुद्धिसंयता यथास्थानविहारशुद्धिसंयता सयतासयता असंयताश्च सामान्योक्त  
सख्या । दर्शनानुवादेन अक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येया श्रेणय प्रतरासख्येयभाग  
प्रमिता । अक्षुर्दर्शनिनो मिथ्यादृष्टयोऽनन्तानन्ता । उभये च सासादनसम्पद्दृष्टघादय

जगद्रेणियां जाप्रसरके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । सामादनसम्पद्दृष्टि विभङ्गज्ञानी जीव  
पन्थके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं । असंयतसम्पद्दृष्टिसे होकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक मतिज्ञानी  
और श्रुतज्ञानी जीवोंकी संख्या सामान्यवत्<sup>१</sup> है । असंयतसम्पद्दृष्टि और संयतासंयत अबधिज्ञानी  
जावोंकी संख्या सामान्यवत्<sup>२</sup> है । प्रमत्तसंयतसे होकर क्षीणकषाय गुणस्थान तक प्रत्येक  
गुणस्थानमें अबधिज्ञानी जीव संख्यात हैं । प्रमत्तसंयतसे होकर क्षीणकषायतक प्रत्येक गुणस्थानमें  
मनःपर्ययज्ञानी जीव संख्यात हैं । सयोगी और अयोगी केवलज्ञानियों की संख्या सामान्यवत्<sup>३</sup> है ।

संयम मार्गणाके अनुवादासे प्रमत्तसंयतसे होकर अनिवृत्तिवावर तक सामायिकसंयत और  
क्षेत्रोपस्थापनासंयत जीवोंकी संख्या सामान्यवत्<sup>४</sup> है । प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानमें परिहार  
विशुद्धि संयत जीव संख्यात हैं । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत, यथास्थानविहारशुद्धिसंयत, संयता  
संयत और असंयत जीवोंकी संख्या सामान्यवत्<sup>५</sup> है ।

दर्शन मार्गणाके अनुवादासे अक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यात जगद्रेणी प्रमाण  
हैं जो अत्रियां जगदप्रतरके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । अपक्षुर्दर्शनवाले मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तान-

(१) पतञ्जलां सामा-मु० वि० १ वि० २ आ० ।

(२) किंतु गुणस्थानवालों की कितनी संख्या है सामान्यके उठनी संख्या है ।

(३) पन्थके असंख्यातवें भागप्रमाण ।

(४) संख्यात ।

(५) संख्यात ।

(६) सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत और यथास्थान विहारशुद्धिसंयत जीव संख्यात है । तथा संयतासंयत जीव

पन्थके असंख्यातवें भाग प्रमाण हैं और असंयतजीव अनन्तानन्त हैं ।

प्रीणकपायाता सामान्योक्तसख्या । अवधिदशनिनाज्वधिज्ञानिवत् । भवल्दशनि  
 वैदलज्ञानिवत् । सस्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतसेस्या मिथ्यादृष्ट्यादयोऽस्यतसम्यग्दृष्ट्य-  
 ता सामान्योक्तसख्या । तेजःपद्मलेश्या मिथ्यादृष्ट्यादय सयतासयतान्ता स्त्रीवे  
 दयत् । प्रमत्ताप्रमत्तसयता सख्येया । शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्ट्यादय सयतासयतान्ता  
 पत्योपमासख्येयभागप्रमिता । प्रमत्ताप्रमत्तसयता सख्येया । अपूर्वकरणाय सयोग ५  
 वेवत्यन्ता अलेभ्याश्च सामान्योक्तसख्या । मभ्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्यादयाऽ-  
 योगकवत्यन्ता सामान्योक्तसख्या । अभव्या अनन्ता । सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्य  
 ग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टय पत्योपमासख्येयभागप्रमिता । सयतासयतादय उपशान्तक

नन्त हैं । सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षयिकपाय गुणस्थान तकके उक्त दोनों दानवात्  
 जीवाकी संख्या सामान्यवत् हैं । अष्विदर्शनवात् जीवोंकी संख्या अदधिज्ञानियोंके समान है । १०  
 कवलदशनिवात् श्रीवोंकी संख्या वैदलज्ञानियोंके समान है ।

सस्या मागणाक अनुवात्से मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक कृष्ण, नील और  
 स्योत लेश्यावात् जीवोंकी संख्या सामान्यवत् हैं । मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयतासयत तक पात  
 और पद्मलेश्यावाले जीवोंकी संख्या श्रीवोंके समान है । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत  
 गुणस्थानवाले पीत और पद्मलेश्यावाले जीव संख्यात हैं । मिथ्यादृष्टिसे लेकर मयतासंयत तक १५  
 शुक्ल लेश्यावाले जीव पत्यक असंख्यातयें भागप्रमाण हैं । प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत जीव संख्यात  
 हैं । अपूर्वकरणसे लेकर सयोगकेवती तक जीव सामान्यवत् हैं । छप्यारहित जीव  
 सामान्यवत् हैं ।

मम्यमागणाक अनुवात्से भव्यामं मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकवत्या तक पीत सामान्य  
 वत् हैं । अभव्य अनन्त हैं । २०

सम्यक्त्व मागणाक अनुवात्से क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव पत्यक  
 असंख्यातयें भाग हैं । संयतासयतसे लेकर उपशान्तकपाय तक जीव संख्यात हैं । चार्त्

(१) किं गुणस्थानवासी की द्विती संख्या है सामान्यसे उठनी संख्या उक्त गुणस्थानमें बहुत और  
 मयसु दान वाली की है ।

(२) मिथ्यात्वमें अनन्तानन्त और दोन गुणस्थानोंमें पत्यके असंख्यातयें भागप्रमाण ।

(३) असंख्यात अश्वेन्द्रिप्रमाण ।

(४) किं गुणस्थानवासी की द्विती संख्या है उठनी है ।

(५) किं गुणस्थान वासी की द्विती संख्या है उठनी है । कप मिथ्यात्वमें असंख्यता संख्या कम  
 दो वाली है ।



पायान्ता सस्येया । अत्वारः क्षपका सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च सामान्योक्त संख्या । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिपु असंयतसम्यग्दृष्टिघादयोऽप्रमत्तान्ता सामान्योक्त सख्या । औपशमिकसम्यग्दृष्टिपु असंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयता पत्योपमासंख्ययभाग प्रमिता । प्रमत्ताप्रमत्तसंयता सस्येया । अत्वार औपशमिका सामान्योक्तसख्या ।

५. सासादनसम्यग्दृष्टय सम्यग्मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टयश्च सामान्योक्तसंख्या । सज्ञानुवा देन सज्ञिपु मिथ्यादृष्टिघादय क्षीणकपायान्ताश्चसुर्वर्शनिवत् । असंज्ञिनो मिथ्यादृष्टयो अनन्तानन्ता । तदुभयव्यपदेशरहिता सामान्योक्तसख्या । आहारानुवादेन आहारकेपु मिथ्यादृष्टिघादय सयोगकेवल्यन्ता सामान्योक्तसंख्या । अनाहारकेपु मिथ्यादृष्टिसासा दनसम्यग्दृष्टिघादयतसम्यग्दृष्टय सामान्योक्तसख्या । सयोगकेवलिन सस्येया ।

१० अयोगकेवलिन सामान्योक्तसख्या । संख्या निर्णीता ।

क्षपक, सयोगकेवली और अयोगकेवली सामान्यवत् हैं । क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयत सम्यग्दृष्टिसे होकर अप्रमत्तसंयत तक सामान्यवत् हैं । औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत जीव पक्षके अस्तंस्यातव्ये भाग हैं । प्रमत्त और अप्रमत्त-संयत जीव संख्यात हैं । चारों उपरमिक सामान्यवत् हैं । सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्या सामान्यवत् है ।

संज्ञा मागणाके अनुवाहसे संक्षियोंमें मिथ्यादृष्टिसे होकर क्षायकपाय तक जीवों की संख्या पञ्चद्वन्द्वनबल्ल जीवोंक समान है । असंज्ञी मिथ्यादृष्टि अनन्तानन्त हैं । संज्ञी और अनंज्ञी संज्ञासे रहित जीवोंकी संख्या सामान्यवत् है ।

आहार मागणाके अनुवाहसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे होकर सयोगकेवली तक जीवोंकी संख्या सामान्यवत् है । अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी संख्या सामान्यवत् है । सयोगकेवली संख्यात हैं । और अयोगकेवली जीवोंका संख्या सामान्यवत् है ।

इस प्रकार संख्याका निगूण किया

( ) मिथ्यादृष्टि संज्ञी अस्तंस्यातव्ये भागमें प्रियमात्र है । सासादन आदि संक्षियोंकी संख्या किन्तु गुणरक्षण वानों की प्रितनी संख्या है उतनी है ।

(१) संज्ञान । (२) मिथ्यादृष्टि आहारक अनन्तानन्त है । तत्प्रादमत्त उपर संयतासंयत तरके आहारक पक्षके अस्तंस्यातव्ये भाग प्रमात है । दान संज्ञान है । (३) मिथ्यादृष्टि अनाहारक अनन्तानन्त है । तथा सासादन उपरदृष्टि और अस्तंस्यातव्ये भाग अस्तंस्यातव्ये भाग है । (४) संख्यात ।

क्षेत्रमुच्यते । सत् द्विविध सामान्येन विशेषेण च । सामान्येन तावत् मिथ्या  
 हृष्टीनासवलोक । सासादनसम्पगृह्णघादीनामयोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासख्येयभाग ।  
 सयोगकेवल्यना लोकस्यासख्येयमौगोऽसख्येया भागा सर्वलोको वा । विशेषेण गत्यनुवादेन  
 नररगतौ सर्वासु पृथिवीषु नारकाणां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासख्येयभाग । तिर्यग्गती  
 तिरश्चां मिथ्याहृष्टघादिसयतासयतान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां ५  
 मिथ्याहृष्टघाद्ययोगकेवल्यन्तानां लोकस्यासख्येयभाग । सयोगकेवल्यनां सामान्योक्त  
 क्षेत्रम् । देवगतौ देवानां सर्वेषां चतुर्षु गुणस्थानेषु लोकस्यासख्येयभाग । इन्द्रियानुवादेन  
 एषेन्द्रियाणां क्षेत्र सर्वलोक । विकलेन्द्रियाणां लोकस्यासख्येयभाग । पञ्चेन्द्रियाणां  
 मनुष्यवत् । कायानुवादेन पृथिवीकायाविवनस्पतिकायान्तानां सर्वलोक । प्रसका  
 यिकानां पञ्चेन्द्रियवत् । योगानुवादेन वाङ्मनसयोगिनां मिथ्याहृष्टघादिसयोगकेवल्य १०

एव क्षेत्रका विचार करते हैं । सामान्य और विशेषकी अपेक्षा वह दो प्रकारका है ।  
 सामान्यसे मिथ्याहृष्टियोंका सय लोक क्षेत्र है । सासादनसम्पगृह्णियोंसे लेकर अयोगकेवली तक  
 जीवोंका लोकके असंख्यातवां भाग प्रमाण क्षेत्र है । सयोग केवल्यियोंका लोकके असंख्यातवां भाग प्रमाण,  
 लोकके असंख्यात बहुभाग प्रमाण और सब लोक क्षेत्र है ।

विशेषकी अपेक्षा गति मागणाके अनुवादेसे नररगतिसमें सब पृथिवियोंमें नारकियोंका चार १५  
 गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है ।

तिर्यक्गतिमें मिथ्याहृष्टि गुणस्थानसे लेकर संयतासंयत तक प्रत्येक गुणस्थानवाले तिर्यकोंका  
 क्षेत्र सामान्यवत् है । नर्षाम् मिथ्याहृष्टि तिर्यकोंका सय लोक क्षेत्र है और शेष तिर्यकोंका लोकका  
 असंख्यातवां भाग क्षेत्र है ।

मनुष्यगतिमें मिथ्याहृष्टिसे लेकर अयोगकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवाले मनुष्योंका क्षेत्र २०  
 लोकका असंख्यातवां भाग है । सयोगकेवल्यियोंका सामान्यवत् क्षेत्र है ।

देवगतिमें सब देवोंका चार गुणस्थानोंमें लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादेसे एकन्द्रियोंका सय लोक क्षेत्र है । विकलेन्द्रियोंका लोकका  
 असंख्यातवां भाग क्षेत्र है और पञ्चेन्द्रियोंका मनुष्योंके समान क्षेत्र है ।

अथ मागणाके अनुवादेसे पृथिवीकायमे लेकर वनस्पतिकाय तक जीवोंका सय लोक २५  
 क्षेत्र है । प्रसकायिकोंका पञ्चेन्द्रियोंके समान क्षेत्र है ।

योग मागणाके अनुवादेसे मिथ्याहृष्टिसे लेकर सयोगकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानयानेयस्य स

न्तानां लोकस्यासंख्येयभाग । काययोगिनां मिथ्यादृष्टिधादिसयोगकेवल्यन्तानामयोग  
 क्वलिनां च सामान्योक्त क्षेत्रम् । वेदानुवादेन स्त्रीपुवेदानां मिथ्यादृष्टिधादिसवृत्तिवा  
 वरान्तानां लोकस्यासंख्येयभाग । नपु सकवेदानां मिथ्यादृष्टिधादिसवृत्तिवादरान्ताना  
 मपगतवेदानां च सामान्योक्त क्षेत्रम् । कपायानुवादेन क्रोधमानमायाकपायाणां लोभ  
 कपायाणां च मिथ्यादृष्टिधादिसवृत्तिवादरान्तानां सूक्ष्मसाम्परायाणामकपायाणां च सामा  
 न्योक्त क्षेत्रम् । ज्ञानानुवादेन भयज्ञानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां  
 सामान्योक्त क्षेत्रम् । विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां लोकस्यासंख्ये  
 यभाग । आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानिनामसंयतसम्यग्दृष्टिधादीनां क्षीणकपायान्तानां  
 मनःपर्ययज्ञानिनां च प्रमत्तादीनां क्षीणकपायान्तानां केवलज्ञानिनां सयोगानामयोगानां  
 च सामान्योक्त क्षेत्रम् । संयमानुवादेन सामाधिकच्छदोपस्थापनाशुद्धिसंयतानां चतुर्णां  
 परिहारविशुद्धिसंयतानां प्रमत्ताप्रमत्तानां सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतानां मयाख्यात

योगी और मनोयोगी जीवोंका लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । मिथ्यादृष्टिसे क्षेत्र सयोगकेबड़ी  
 तक प्रत्येक गुणस्थानवाले काययोगी जीवोंका और अयोगकेबड़ी जीवोंका सामान्यवत् क्षेत्र है ।

१५ वेदमार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टिसे क्षेत्र अनिशुद्धि बाहर तक प्रत्येक गुणस्थानवाले  
 जीवोंकी और पुनःपुनः जीवोंका लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । तथा मिथ्यादृष्टिसे क्षेत्र अनिशु  
 द्धिबाहर तक प्रत्येक गुणस्थानवाले नपु सकवेदी जीवोंका और अपगतवेदियोंका सामान्यवत् क्षेत्र है ।

कपायमार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टिसे क्षेत्र अनिशुद्धि बाहर तक प्रत्येक गुणस्थानवाले  
 क्रोध मान, माया बल्लोभ कपायवाले सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानमें लोभ कपायवाले और कपाय  
 रहित जीवोंका सामान्यवत् क्षेत्र है ।

२ ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवाले मत्सहानी  
 और मुताहानी जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है । मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि विभंगज्ञानियोंका  
 लोकका असंख्यातवां भाग क्षेत्र है । असंयतसम्यग्दृष्टिसे क्षेत्र क्षीणकपाय तक प्रत्येक गुणस्थानवाले  
 आमिनिबोधिक ज्ञानी, मुतहानी और व्यवधिज्ञानी जीवोंका प्रमत्तसंयतसे क्षेत्र क्षीणकपाय तक  
 प्रत्येक गुणस्थानवाले मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका तथा सयोग और अयोग गुणस्थानवाले केवलज्ञानी  
 जीवोंका क्षेत्र सामान्योक्त है ।

संयम मार्गणाके अनुवादसे प्रमत्तादि चार गुणस्थानवाले सामाधिक और छेदोपस्थापना  
 संयत जीवोंका प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानवाले परिहारविशुद्धिसंयत जीवोंका, सूक्ष्मसाम्परायिक

विहारशुद्धिसयतानां चतुष्पा सयतासंयतानामसयताना च चतुर्णां सामान्योक्त क्षेत्रम् ।  
 दशनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिना मिथ्यादृष्ट्यादिक्रीणकपायान्तानां लोकस्यासंख्येयभाग ।  
 अक्षुर्दर्शनिना मिथ्यादृष्ट्यादिक्रीणकपायान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । अथधिदर्शनि  
 नामवधिज्ञानिवत् । केवलदर्शनिनां केवलज्ञानिवत् । लेश्यानुवादेन कृष्णलीलाकापोत  
 लेश्याना मिथ्यादृष्ट्याद्यसयतसम्यग्दृष्टयन्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । तेजःपद्मलेश्यानां ५  
 मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां लोकस्यासंख्येयभाग । शुक्ललेश्याना मिथ्यादृष्ट्यादिक्री  
 णकपायान्तानां लोकस्यासंख्येयभाग । सयोगकेवलिनामलेश्यानां च सामान्योक्त  
 क्षेत्रम् । भव्यानुवादेन भव्यानां चतुदशाना सामान्योक्त क्षेत्रम् । अभव्याना सर्व  
 लोक । सम्यक्त्वानुवादेन क्षामिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्ताना  
 क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानामौपशमिकसम्यग्दृष्टीनामसय १०  
 तसम्यग्दृष्ट्याद्युपशान्तकपायान्तानां सासादनसम्यग्दृष्टीना सम्यग्मिथ्यादृष्टीना

संयत जीवोंका, उपशान्त मोह आदि चार गुणस्थानवाले यथास्थानसयत जीवोंका और सयतासयत  
 तथा चार गुणस्थानवाले अर्न्धत जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है ।

वृद्धन मार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्त्रीणकपाय तक प्रत्येक गुणस्थानमें बहुत  
 वृद्धनवाले जीवोंका लोकका अर्न्धतवा भाग क्षेत्र है । मिथ्यादृष्टि से लेकर स्त्रीणकपाय तक प्रत्येक १५  
 गुणस्थानवाले अक्षुर्दर्शनवाले जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है । तथा अथधिदर्शनवालोंका अथधिज्ञान-  
 नियोंके समान और केवलदर्शनवालों का केवलज्ञानियोंके समान क्षेत्र है ।

तेज्या मार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टिसे लेकर अर्न्धतसम्यग्दृष्टि तक प्रत्येक गुणस्थान-  
 वाले कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है । मिथ्यादृष्टिसे लेकर अममत्त  
 संयततक प्रत्येक गुणस्थानवाले पीत और पद्मलेश्यावाले जीवोंका लोकका अमक्यातवा भाग क्षेत्र २०  
 है । मिथ्यादृष्टिसे लेकर स्त्रीणकपाय तक प्रत्येक गुणस्थानवाले शुक्ललेश्यावाले जीवोंका लोकका  
 अर्न्धतवा भाग क्षेत्र है तथा शुक्ललेश्यावाले सयोगकेवलियोंका और लेश्या रहित जीवोंका  
 सामान्योक्त क्षेत्र है ।

मन्व मार्गणाके अनुवादसे चौदह गुणस्थानवाले मन्व जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है ।  
 अमन्वोंका सब लोक क्षेत्र है ।

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवादसे अर्न्धत सम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगकेवली तक प्रत्येक गुणस्थान-  
 नवाले क्षामिकसम्यग्दृष्टियोंका, अर्न्धतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अममत्तसंयत तक प्रत्येक गुणस्थानवाले  
 क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टियोंका, अर्न्धतसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकपाय गुणस्थानतक प्रत्येक गुणस्थान-  
 वाले औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका तथा सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टियोंका २५

मिथ्यादृष्टीनां च सामान्योक्त क्षेत्रम् । सञ्ज्ञानुवादेन सञ्चिन्नां चक्षुर्दानिवत् । असञ्चिन्नां सर्वलोक । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिकीणकपायान्तानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । समागकेवलितानोक्तस्यासंख्येयभाग । अनाहारकाणां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टघसयतसम्यग्दृष्टघयोगकेवलितानां सामान्योक्त क्षेत्रम् । सयोगकेवलितानां सोनस्यासख्येया भागाः सर्वलोकानो वा । क्षणनिर्णय कृत ।

सामान्योक्त क्षेत्र है ।

संज्ञा मार्गणाके अनुवादेसे सक्षियोंका बहुवृत्तनबाल जीयांक ममान असंक्षियोंका सब लोक और संज्ञी असंज्ञी इस संज्ञासे रहित जीयांका सामान्योक्त क्षेत्र है ।

आहार मार्गणाके अनुवादेसे मिथ्यादृष्टिसे जेकर क्षीणकपाय एक प्रत्येक गुणस्थानवाले आहारकोंका सामान्योक्त क्षेत्र है । सयोगकेवलियोंका लोकका असंख्यातवा भाग क्षेत्र है । मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगकेवली अनाहारक जीवोंका सामान्योक्त क्षेत्र है । तथा सयोगकेवली अनाहारकोंका लोकका असंख्यात बहुभाग और सब लोक क्षेत्र है ।

विशेष-क्षेत्रप्ररूपणमें केवल यतमान कालीन आभासका विचार किया जाता है । मिथ्यादृष्टि जीव सब लोकमें पाये जाते हैं इसलिये उनका सब लोक क्षेत्र बतलाया है । अन्य गुणस्थानवाले जीव केवल लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें ही पाये जाते हैं इसलिये इनका लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र बतलाया है । केवल सयोगकेवली इसका अपवाद हैं । यों ही स्वम्यानगत सयोगकेवलियोंका क्षेत्र भी लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है फिर भी जो सयोगकेवली समुदात करते हैं उनका क्षेत्र तीन प्रकारका प्राप्त होता है । दण्ड और कपाटरूप समुदातके समय लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रतररूप समुदातके समय लोकका असंख्यात बहुभाग और लोकपूर्ण समुदातके समय सब लोक क्षेत्र प्राप्त होता है इसलिये इनके क्षेत्रका निर्देश तीन प्रकारसे किया है । गति आदि मार्गणाका क्षेत्रका विचार करते समय इसी दृष्टिका सामने रखकर विचार करना चाहिये । साधारणतया कहा किटना क्षेत्र है इसका विवेक निम्न बातोंसे किया जा सकता है-

(१) मिथ्यादृष्टिमें पकेन्द्रियोंका ही सब लोक क्षेत्र प्राप्त होता है । शंका नहीं । इनके कुछ ऐसे अवान्तर भेद हैं जिनका सब लोक क्षेत्र नहीं प्राप्त होता पर प यहाँ विद्यमान नहीं ।

इस हिसाबसे जो जो मागणा पञ्चन्द्रियोंके सम्मम हो उन सबके सब लोक क्षेत्र जानना चाहिये । उदाहरणार्थ-गति मार्गणामें त्रियम्बगति मागणा, इन्द्रिय मागणामें पञ्चन्द्रिय मागणा, काय, मागणामें पृथिवी आदि पांच स्थावर काय मार्गणा, योग मागणाम् काययोग मागणा, ब्रह्ममार्गणामें तर्जुसक वेदमार्गणा, कृपाय मन्मथामें क्रोध, मान, माया और खोम कृपाय मार्गणा, ज्ञान मागणामें मत्पज्ञान और ब्रुवाज्ञान मागणा, संयम मागणामें असंयत संयम मार्गणा, दर्शनमार्गणामें अक्षय ५  
दशन मागणा, लेख्या मार्गणामें कृष्ण, नील और कापोत लेख्या मागणा, मन्व्य मार्गणामें मन्व्य और अमन्व्य मागणा, सम्यक्त्व मागणामें मिथ्यादृष्टि सम्यक्त्व मागणा, संज्ञा मागणामें अज्ञानी मागणा, तथा आहार मार्गणामें आहार और अनाहार मागणा इनकर सब लोक क्षेत्र हैं ।

(२) सासावन सम्यग्दृष्टिसं लेकर क्षीयकृपाय गुणस्थान तकके जीर्वाका और अयोगि-  
केवलियोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही है । १०

(३) होइन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पंचन्द्रियोंमें असंख्यातका क्षेत्र भी लोकके  
असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।

(४) संक्षियोंमें समुद्रावगम सयोगिकक्षेत्रोंके सिवा शेष सबका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें  
भागप्रमाण है ।

इन नियमोंके अनुसार जो मागणाएं सयोगिकक्षेत्रोंके समुद्रावगम समय सम्मम हैं उनमें १५  
भी सब लोक क्षेत्र बन जाता है । शेष लोकका असंख्यातवें भाग प्रमाण ही क्षेत्र जानना चाहिये ।

सयोगिकक्षेत्रोंके लोकपूरण समुद्रावगम समय मनुष्य गति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस काय, काय-  
योग, अपगतवेद, अकृपाय केवलज्ञान, यथाकथा संयम, केवल दशन, शुक्ल तरया, मन्व्यत्व, शायिक  
सम्यक्त्व न संज्ञी न असंज्ञी और अनाहार ये मागणाएं पाई जाती हैं इसलिये लोकपूरण समुद्रावगम  
समय इन मार्गणाया का क्षेत्र भी सब लोक जानना चाहिये । २०

केवलीके प्रतर समुद्रावगम समय लोकका असंख्यात बहुभाग प्रमाण क्षेत्र पाया जाता है ।  
इसलिये इस समय जो मार्गणाएं सम्मम हों उनका क्षेत्र भी लोकका असंख्यात बहु भागप्रमाण  
बन जाता है । उदाहरणके लिए लोक पूरण समुद्रावगम समय जो मार्गणाएं गिनाई हैं वे सब यहाँ भी  
जानना चाहिये ।

इनके अतिरिक्त शेष सब मार्गणाएं ऐसा हैं जिनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण २५  
ही प्राप्त होता है । लोक पूरण और प्रतर समुद्रावगम समय प्राप्त होनावाली जो मागणाएं गिनाई हैं  
उनमेंसे काययोग मन्व्यत्व और अनाहार इन तीनको छोड़कर शेष सब मार्गणाएं भी एसी हैं जिनका  
भी क्षेत्र लोक अवस्थाके सिवा अन्यत्र लोकके असंख्यातवें भाग प्रमाण प्राप्त होता है ।

इस प्रकार शेषका निष्पत्ति किया ।

स्पर्शनमुच्यते । तद् द्विविध सामान्येन विशपेण च । सामान्येन तावत् मिथ्या  
दृष्टिभिः सर्वलोकं स्पृष्ट । सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येयभाग अष्टौ द्वादश  
वा चतुर्विंशतिभागा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिघसंयतसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासंख्येय  
भाग अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोना । संयतासंयतलोकस्यासंख्येयभाग पट चतुर्द  
शभागा वा देशोना । प्रमत्तसंयतादीनामयोगकेवल्यन्तानां क्षेत्रवत्स्पर्शनम् ।

विशपेण गत्यनुवादेन नरकगती प्रथमायां पृथिव्यां नारकवस्तुगुणस्थानलोकस्यास  
ंख्येयभाग स्पृष्ट । द्वितीयादिषु प्राक्सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासं  
ख्येयभाग एको द्वौ त्रय चत्वार पञ्च चतुर्विंशतिभागा वा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिघसंय

अथ स्पर्शनका कथन करते हैं वह दो प्रकारका है सामान्य और विशेष । सामान्यकी अपेक्षा  
१० मिथ्यादृष्टियोंने सब लोकका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंने लोकके असंख्यातवर्षे भाग क्षेत्र  
का और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम बारह भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टियों व असंयतसम्यग्दृष्टियोंने लोकके असंख्यातवर्षे भागका और  
प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागका स्पर्श किया है । संयतासंयतोंने लोकके  
असंख्यातवर्षे भागका और प्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम बारह भागका स्पर्श किया है ।  
१५ तथा प्रमत्तसंयतोंसे लेकर अयोग केवली गुणस्थान तकके तीर्थोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

विशेषकी अपेक्षा गति मार्गयाक अनुवादसे नरक गतिमें पहली पृथिवीमें मिथ्यादृष्टि  
आदि चार गुणस्थानवाले नारकियोंने लोकके असंख्यातवर्षे भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । दूसरीसे  
लेकर छठा पृथिवी तकके मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियोंने लोकके असंख्यातवर्षे भाग  
क्षेत्रका और क्रमसे लोक नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक राजु, कुछ कम दो राजु, कुछ  
२० कम तीन राजु, कुछ कम चार राजु और कुछ कम पाँच राजु क्षेत्रका स्पर्श किया है । सम्य

( १ ) मेरुपर्वतके मूठके नीचे कुछ कम दो राजु और ऊपर छह राजु । यह स्पर्शन विहारवत्त्व  
स्थान वेदना, क्लान और बैकिकिक समुदातकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

( २ ) मेरु पर्वतके मूठके नीचे कुछ कम पाँच राजु और ऊपर छह राजु । यह स्पर्शन मारका  
न्तिक समुदातकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

( ३ ) मेरु पर्वतके मूठके नीचे कुछ कम दो राजु और ऊपर छह राजु । यह स्पर्शन विहार  
वत्त्वस्थान, वेदना क्लान और बैकिकिक समुदातकी अपेक्षा प्राप्त होता है । अर्धवत् सम्मन्धिकोंके मारका  
न्तिक समुदातकी अपेक्षा भी यह स्पर्शन बन जाता है ।

( ४ ) ऊपर अशुक्ल कस्तक छह राजु । इसमेंसे विना पृथिवीका एक हजार योजन प नारक अशुक्ल  
कस्तके उपरिम विमनीके ऊपरका भाग छोड़ देना चाहिये । यह स्पर्शन मारकान्तिक समुदातकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

सप्तम्यन्वष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग । सप्तम्या पृथिव्या मिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग  
 पट चतुर्दशभागा वा देशाना । शर्पैस्त्रिभिलोकस्यासख्येयभाग । तियग्गतौ तिरइना  
 मिथ्यादृष्टिभि सर्वलोक स्पृष्ट । सासादनसम्यग्दृष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग सप्त  
 चतुर्दशभागा वा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग । असयतस  
 म्यग्दृष्टिसयतासयतलोकस्यासख्येयभाग पट चतुर्दशभागा वा देशोना । मनुष्यगती ५  
 मनुष्यमिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग सर्वलोको वा स्पृष्ट । सासादनसम्यग्दृष्टि  
 भिलोकस्यासख्येयभाग सप्त चतुर्दशभागा वा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिभादीना

मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पृश किया है ।  
 सातवीं पृथिवीमें मिथ्यादृष्टि नारकियोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह  
 भागोंमेंसे कुछ कम छह राजु क्षेत्रका स्पृश किया है । सासादनसम्यग्दृष्टि आदि शेष तीन गुणस्था- १०  
 नवाज्ञ उक्त नारकियोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पृश किया है ।

तियजगतिमें मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंने सब लोकका स्पृश किया है । सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यचोंने  
 लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोक नार्डीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम सात भाग क्षेत्रका  
 स्पृश किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यचोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पृश किया है ।  
 असयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यचोंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोक नार्डीके १५  
 चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भाग क्षेत्रका स्पृश किया है ।

मनुष्यगतिमें मिथ्यादृष्टि मनुष्योंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और सब लोकका  
 स्पृश किया है । सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्योंने लोकके असख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकनार्डीके  
 चौदह भागोंमेंसे कुछ कम सात भाग क्षेत्रका स्पृश किया है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिसे लहर अयोग

(१)-रश्मि संयता-मु०, छा०, न० ।

(१) मेरुपर्वतके मूखे ऊपर सात राजु । यह साधन मरुत्तलक समुद्रातकी अपवा प्रवा होता  
 है । यद्यपि तियज जालादन सम्यग्दृष्टि बीच मेरु पर्वतके मूखे नीचे भवनवालिचोंमें मारुत्तलक समुद्रात  
 बरत हुए पाप करते हैं तथापि इतने मात्र उखण क्षेत्र सात राजुअ अथिफ न होकर कम ही रहता है ।  
 ऐसे बीच मेरुपर्वतके मूखे नीचे एकेत्रियामें प नारकियोंमें मारुत्तलक समुद्रात नहीं करते यह उक्त कथन  
 का कारण है ।

(२) ऊपर अशुभ कण्ठक छह राजु । इसमेंसे चित्रा पृथिवीका एक दशर यावन व भारज  
 अशुभ बरतके उतरिम विमानोंके ऊपरका मग छाड़ देना चाहिये । यह साधन मरुत्तलक समुद्रातकी अपवा  
 प्राप्त होता है ।

(३) भवनवासी लहरके लहर ऊपर साक्षात् उक्त । इसमेंसे अगम्यप्रदेश गूट जानेसे कुछ कम



मयोगकेवल्यन्तानां क्षत्रवत्स्पर्शनम् । देवगती देवैर्मिथ्यादृष्टिसासादनसम्पद्दृष्टिभिर्नो  
कस्मात्सख्येयभाग अष्टौ नद्य चतुर्दशभागा वा देशोना । सम्पद्मिथ्यादृष्टप्रसमत  
सम्पद्दृष्टिभिर्लोकस्यासख्येयभाग अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोना ।

इन्द्रिमातुवादेन एकेन्द्रियैः सखलोकं स्पृष्ट । विकलेन्द्रियलोकस्यासंश्लेष्यभाग  
सखलोको वा । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासख्येयभाग अष्टौ चतुर्दशभागा वा  
देशोना सखलोको वा । शेषाणां सामान्योक्त स्पर्शनम् ।

शेषस्त्री गुणस्थान तर्कके मनुष्योंकर स्पर्श क्षेत्रके समान है ।

इषगतिमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्पद्दृष्टि देवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका  
तथा लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम 'आठ भाग और कुछ कम नौ 'भाग क्षेत्रका स्पर्श किया  
है । सम्पद्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्पद्दृष्टि देवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोक  
नाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम 'आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुभावसे पकेन्द्रियोंने सब लोकका स्पर्श किया है । विकलेन्द्रियोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और 'सब लोकका स्पर्श किया है । पंचन्द्रियोंने मिथ्यादृष्टियोंने लोकके  
असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोक नाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम 'आठ भाग क्षेत्रका और  
'सब लोकका स्पर्श किया है । शेष गुणस्थानवाले तिर्यंकोंका स्पर्श श्लेषके समान है ।

सात राज् स्पर्श रह जाता है । यह तर्क मारकान्तिक समुदायकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(२)-दक्षिणि सासा-वा ।

(१) मेघतर्कसे नीचे कुछ कम हो राज् और ऊपर छह राज् । यह स्पर्शन विहारवत्स्वरथान  
वेदना, कषाय और वैश्विकपदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(२) मेघतर्कसे नीचे कुछ कम हो राज् और ऊपर सात राज् । यह स्पर्शन मारकान्तिक समुदाय  
की अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(३) मन्वतर्कसे नीचे कुछ कम हो राज् और ऊपर छह राज् । यह स्पर्शन विहारवत्स्वरथान  
वेदना, कषाय वैश्विक और मरकान्तिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(४) विकलेन्द्रियोंका सब लोक स्पर्शन मरकान्तिक और वषाण्य परकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(५) मन्वतर्कसे नीचे कुछ कम हो राज् और ऊपर छह राज् । यह स्पर्शन विहारवत्स्वरथान  
वेदना कषाय और वैश्विक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

(६) सब लोक स्पर्शन मरकान्तिक और वषाण्यपदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

कायानुवादेन स्थावरकायिक सर्वलोक स्पृष्ट । त्रसकायिनां पञ्चेन्द्रियवत्  
स्पर्शनम् ।

योगानुवादेन वाक्मनसयोगिनां मिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासख्ययभाग अष्टौ चतु  
दशभागा वा देशाना सर्वलोका वा । सासादनसम्यग्दृष्टिभादीना क्षीणरूपायान्तानां  
सामायोक्त स्पर्शनम् । सयोगकेवलिनां लोकस्यासख्येयभाग । कामयोगिना मिथ्या ५  
दृष्टयादीनां सयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामायोक्त स्पर्शनम् ।

वेदानुवादेन स्त्री पुत्रेदमिथ्यादृष्टिभिलोकस्यासख्येयभाग स्पृष्ट अष्टौ  
चतुर्दशभागा वा देशाना सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टिभि लोकस्यासख्येय

अथ मागणाक अनुवादसे स्थावरकायिक जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है । त्रस  
कायिकोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है ।

१०

योग मागणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टि वचनयोगी और मनोयोगी जीवोंने लोकके अस्तंतया  
तयें माग क्षेत्रका और लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम 'आठ भाग क्षेत्रका और 'सब  
लोकका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे लेकर क्षीणरूपाय तकके गुणस्थानयात्रोंका  
स्पर्श श्लेषके समान है । और सयोगकेवली जीवोंका स्पर्श लोकका 'असख्यानवां माग है । तथा  
मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगकेवली गुणस्थान तकके काययोगयात्रोंका और अयोगकेवली जीवोंका १५  
स्पर्श श्लेषके समान है ।

अथ मागणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीवोंने लोकके अस्तंतयात्रों  
माग क्षेत्रका तथा लोक नाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम 'आठ भाग और सब लोक क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे लेकर अस्तंतयात्रों माग क्षेत्रका तथा लोक नाडीके चौदह

(१) श्रीपुसवे-ता० (२) महा नव पत्र-मु । (३)-आका वा । नपुंसकवेदेपु मु०

(४) मेरुतकते जैसे कुछ कम वा रात्र और ऊपर छह रात्र । यह स्थान विहारवल्गस्थान  
केना कपाय और नैमित्तिक पदवी अपना प्राप्त होता है ।

(५) सब लोक तथा मरणादिक पदवी अस्था प्राप्त होता है ।

(६) तसुदातके काकमें मनावीय और वचनभाग नहीं हावा इतने वचनयोगी और मनीषाये  
तयोगीकेवलीका स्पर्श लोकके अस्तंतयात्रों माग प्रमाण अदृष्टया है ।

(७) मेरुतकते जैसे कुछ कम दो रात्र और ऊपर छह रात्र । यह स्थान विहारवल्गस्थान  
वेदना कपाय और नैमित्तिक पदवी अपना प्राप्त होता है । सब लोक स्पर्श मरणादिक और उपवाद पदवी अपना  
प्राप्त होता है ।

भाग ज्यो नव चतुर्दशभागा वा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिष्वानिवृत्तिवादरान्तानां  
सामान्योक्तस्वर्णनम् । नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टिनां सासादनसम्यग्दृष्टिनां च सामा-  
न्याक्तस्वर्णनम् । सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासत्ययभाग । असंयतसम्यग्दृष्टिसंयता  
संयतलोकस्यासत्ययभाग पद् चतुर्दशभागा वा देशोना । प्रमत्साद्यनिवृत्तिवादरान्ता  
५ नामपगतवदनाणां च सामान्योक्तस्वर्णनम् ।

भागामंस कुछ कम १भाग और कुछ कम नो २भाग क्षेत्रका स्वप्न किया है । तथा सम्यग्मि-  
थ्यादृष्टियोंस लख अनिवृत्ति वादर गुणस्थान तकक जीवोंका स्वप्न आपक समान ह । नपुंसकवे-  
दियोंमें मिथ्यादृष्टि आर सामान्य सम्यग्दृष्टियोंका स्वप्न ५ओषके समान ह । सम्यग्मिथ्यादृष्टियों  
साकृत् चर्मण्यातयें भाग का स्वप्न किया ह । असंयतसम्यग्दृष्टि आर संयतासंयतान लोकक अतं  
१० त्वातयें भाग क्षेत्रका आर साकृताका पौदह भागामेंसे कुछ कम १०भाग क्षेत्रका स्वप्न किया  
ह । तथा प्रमत्संयतमि लख अनिवृत्ति वादर गुणस्थान तकक जीवोंका स्वप्न ओषके समान है ।

(१) सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिर्लोकस्यासत्ययभागः स्वप्नः । सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्लोकस्यासत्ययभागः  
अस्य नपुंसकभागा वा देशोना । सम्यग्मिथ्यादृष्टिष्वानिवृत्तिवादरान्तानां सामान्याक्तस्वर्णनम् । असंयत-  
सम्यग्दृष्टि-सु०

(२) सदत्तमे मीच कुछ कम वा रातु और ऊपर एह रातु । यह स्वप्न विहारपरारक्षण  
वदना । बराय और वैदिकिक पत्नी अयोध प्राप्त होता ह ।

(३) सदत्तम मीच कुछ कम हो रातु और ऊपर वाट रातु । यह स्वप्न मारकानिक पदकी  
अन्ता प्रजा होत ह । यही उदरान पत्नी अयोध पवार पनरातु स्वप्न प्राप्त होता है । किन्तु उदरानपदकी  
किताव नहीं होत । उदका टा घ नहीं बिना ह । यह स्वप्न सदत्तम मी । कुछ कम पंच रातु और ऊपर  
एह रातु एग प्रजा प्राप्त होता है ।

(४) पती कुजुवदनी मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि जीवोंका स्वप्न आपके समान  
बलवान् है । यह समान्य मिथ्या है । मिथ्याकी आता मिथ्यादृष्टि नपुंसकवर्ती ओमें वैदिकिक पदकी अन्ता  
एव अन्ता पत्नी अयोध बिना ह । वैदिकिक कुजुवदनी के इतन उदरान मिथ्या वदत हुए आप प्राप्त ह ।  
कुजुवदनी सासादन सम्यग्दृष्टिओमें एव सासादन विहारक पत्नी अन्ता बराय और वैदिकिक पत्नी  
अन्ता लोके अन्ता प्राप्त एव अन्ता प्राप्त होता है । उदरानपदकी अन्ता कुछ कम पवार हट और  
एव अन्ता प्राप्त होता है । सदत्तम एक पत्नी अन्ता कुछ कम पवार हट पारह अन्ता अन्ता एव अन्ता  
होत है । यह स्वप्न अन्ता लखत है

(५) यह स्वप्न मारकानिक पदकी अन्ता प्राप्त होता है ।

कपायानुवादेन चतुष्कपायाणामकपायाणां च सामान्योक्त स्पर्शनम् ।

ज्ञानानुवादेन मत्पशानिश्रुताज्ञानिनां मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्त स्पर्शनम् । विभङ्गज्ञानिनां मिथ्यादृष्टीनां लोकास्यासम्बन्धभाग अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशानां सर्वलोको वा । सासादनसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्त स्पर्शनम् । आभिनिबोधिकभ्रुतावधिमन-पर्ययकेवलज्ञानिनां सामान्योक्त स्पर्शनम् । ५

सयमानुवादेन सयतानां सर्वेषां सयतासयतानामसयतानां च सामान्योक्त स्पर्शनम् ।

दर्शनानुवादेन चक्षुदशनानां मिथ्यादृष्ट्यादिकीणकपायान्तानां पञ्चेन्द्रियवत् । अचक्षुर्वक्षनिनां मिथ्यादृष्ट्यादिकीणकपायान्तानामवधिकेवलदर्शनिनां च सामान्योक्त स्पर्शनम् ।

लेपयानुवादेन कृष्णनीलकापोतलेप्यैर्मिथ्यादृष्टिभिः सर्वलोक स्पृष्टः । १०

कपाय भागणके अनुवादसे क्रोधादि चारों कपायवाले और कपाय रहित जीवोंका स्पर्श ओषके समान है ।

ज्ञान मार्गणके अनुवादसे मत्पशानी और भ्रुताज्ञानी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका स्पर्श ओषके समान है । विभङ्गज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्श लोकाका असंख्यातवा भाग, लोक नाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम भाग और सब लोक है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंका स्पर्श ओषके समान है । आभिनिबोधिक ज्ञानी भ्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी जीवोंका स्पर्श ओषके समान है । १५

संयम भागणके अनुवादसे सब संयतोंका, संयतासंयतोंका और असंयतोंका स्पर्श ओषके समान है ।

दर्शन मार्गणके अनुवादसे मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकपाय तकके चक्षुदर्शनवाले जीवोंका स्पर्श पंचेन्द्रियोंके समान है । मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणकपाय तकके अचक्षुदर्शनवाले जीवोंका तथा अचक्षुर्वर्शनवाले और केवलदर्शनवाले जीवोंका स्पर्श ओषके समान है । २०

लेपया भागणके अनुवादसे कृष्ण, नील और कापोत लेप्यावाले मिथ्यादृष्टियोंसे सब

(१) यह स्पर्श विहारत्वस्थान वेदना कपाय और वैकल्पिक परस्पर अपेक्षा प्राप्त होता है क्योंकि

हनुम नीचे हा राहु और ऊपर उह राहु क्षेत्रमें गमनागमन देखा जाता है ।

(२) यह स्पर्श भ्रूणान्तरिक परस्पर अपेक्षा प्राप्त होता है, क्योंकि ये जीव सब एकत्रमें भागणादि

समुदाय करते हुए पाये जाते हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासस्येयभाग पञ्च चत्वारो द्वौ चतुर्दशभागा वा' देशोना ।  
 सम्यग्मिष्यादृष्टसयतसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासस्येयभाग । तेजोलक्ष्यमिष्यादृष्टिसासा  
 दनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासस्येयभाग अष्टौ नव चतुर्दशभागा वा दशाना । सम्य  
 ग्मिष्यादृष्टसयतसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासस्येयभाग अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोना ।  
 सयतासयतैलोकस्यासस्येयभाग अर्धचतुर्दशभागा वा देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तलौ  
 कस्यासस्येयभाग । पक्षलेश्यैमिष्यादृष्टघासयतसम्यग्दृष्टघतैलोकस्यासस्येयभाग

श्लोकका स्पष्ट किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियेनि श्लोकके अर्संख्यातर्वे भाग क्षेत्रका और श्लोकनाडीके  
 चौदह भागोंमेंसे क्रमशः कुछ कम पांच<sup>१</sup> भाग, कुछ कम चार भाग और कुछ कम दो भाग क्षेत्रका स्पष्ट  
 किया है । सम्यग्मिष्यादृष्टि और अर्संयतसम्यग्दृष्टि जीवोंने श्लोकके अर्संख्यातर्वे भाग क्षेत्रका  
 स्पष्ट किया है । पीतलेखावास्तु मिष्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंने श्लोकके अर्संख्यातर्वे  
 भाग क्षेत्रका तथा श्लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ<sup>२</sup> भाग और कुछ कम नौ भाग  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । सम्यग्मिष्यादृष्टि और अर्संयतसम्यग्दृष्टियेनि श्लोकके अर्संख्यातर्वे भाग  
 क्षेत्रका तथा श्लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ<sup>३</sup> भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । संयतासंय  
 ताने श्लोकके अर्संख्यातर्वे भाग क्षेत्रका और श्लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह<sup>४</sup> भाग  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंने श्लोकके अर्संख्यातर्वे भाग  
 क्षेत्रका स्पष्ट किया है । मिष्यादृष्टियोंसे लेकर अर्संयतसम्यग्दृष्टियों तकके पक्षलेश्यावास्तु जीवोंने

(१) वा देशानाः । इन्द्रभूयगा कुठा न छन्नस्य इति चेत् उत्रावस्थितलक्ष्यापेक्षया पञ्चैव । अथवा येषां  
 मतवादान पञ्चैव नारयत वृमतापेक्षया इन्द्रभूयगा न दशा । सम्यग्मिष्या-सु , भा , दि० १

(२) यह स्वर्ण मारणान्तिक चार उपाद पदकी अपेक्षा अतन्मता है । इष्य क्षेत्रनालेके कुछ कम  
 पांच रातु नाम अत्रनालेके कुछ कम चार रातु और कायात लेखनालेके कुछ कम दो रातु यह स्वर्ण होता है ।  
 वा नारकी विषय सावाहन सम्यग्दृष्टियामें उत्तर होता है उन्हींके यह स्वर्ण सम्यग्दृष्टि ।

(३) यह रायन विहार करना कपाल और वैदिकिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है, क्योंकि वैदिक-  
 पनासक सावादाना का नाप कुछ कम दो रातु चार चार छह रातु क्षेत्रमें गमनागमन लेया जाता है ।

(४) यह स्वर्ण मारणान्तिक समुद्रतरी अपेक्षा प्राप्त होता है पनासिक धेरे कीच तीवरी शृङ्खिले ऊपर  
 कुछ कम नी रातु क्षेत्रमें मारणान्तिक समुद्रतरी करत हुए पाप जात हैं । उपाद पदकी अपेक्षा इनका राय कुछ  
 कम छह रातु होता है इतना महा विनाय जानना चाहिये ।

(५) यह राय विहार करना कपाल वैदिकिक और मारणान्तिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।  
 दुष्टिना निर्रेण पर १ शिवा ही है । इतनी विगणता है कि मिथ गुणरवानमें मारणान्तिक समुद्रतरी नहीं होता ।

(६) यह स्वर्ण मारणान्तिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है । इनके उपाद पद नहीं होता ।

अष्टौ चतुर्दशभागा वा देशोना । सयतासयतलोकस्यासस्येयभाग पञ्च चतुर्दश  
भागा वा देशोना । प्रमत्ताप्रमत्तलोकस्यासस्येयभाग । शुक्लक्षेत्र्यमिष्यारष्ट्रघादिसं  
यतासंयतान्तलोकस्यासस्येयभाग पट चतुदशभागा वा देशोना । प्रमत्तादिसयोग  
केवल्यन्तानां अलेक्ष्यानां च सामान्योक्त स्पष्टनम् ।

भव्यानुवादेन भव्याना मिष्यारष्ट्रघाद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्योक्त स्पष्टनम् । १

अभव्य सवलोक स्पष्ट ।

सम्यक्त्वानुवादेन दायिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्टघाद्ययोगकेवल्यन्ताना

लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ<sup>१</sup> भाग क्षेत्रका  
स्पर्श किया है । सयतासंयतोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे  
कुछ कम<sup>२</sup> पांच भाग क्षेत्रका स्पष्ट किया है । तथा प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तासंयतोंने लोकके असं १०  
ख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । मिष्यारष्ट्रियोंसे लेकर संयतासयतों तकके शुक्लक्षेत्र्यावाले  
जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका और लोकनाडीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह<sup>३</sup> भाग  
क्षेत्रका स्पर्श किया है । प्रमत्तासंयत आदि संयोगकेवली तकके शुक्लक्षेत्र्यावालोंके और संयता-  
रहित जीवोंके स्पर्श ओपके समान है ।

भव्य मातायाके अनुवाद्से मिष्यारष्ट्रियोंसे लेकर अयोगकेवली तकके भव्योक्त स्पष्ट ओपके १५  
समान है । अभव्योंने सब लोकका स्पर्श किया है ।

सम्यक्त्व मागणाके अनुवाद्से असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे लेकर अयोगकेवली तक

(१) यह स्पर्श विहार वेदना कृपाय, वैदिकिक और मारणात्मिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।  
इन्के उपपाद पदकी अपेक्षा स्पर्श कुछ कम पांच रात्रु होता है । इतनी विनोक्ता है कि मित्र गुणगानमें मारणा  
त्मिक और उपपाद पद नहीं होता ।

(२) यह स्पर्श मारणात्मिक पदकी अपेक्षा प्राप्त होता है क्योंकि यह स्पर्शावल संयतासंयत कर  
कुछ कम पांच रात्रु क्षेत्रमें मारणात्मिक समुदाय करते हुए पाप करते हैं ।

(३) विहार, वेदना कृपाय वैदिकिक और मारणात्मिक पदोंकी अपेक्षा यह स्पर्शन प्राप्त होता है ।  
छां भी मिष्यारष्ट्रि आदि चार गुणवानों की अपेक्षा यह कथन किया है । संयतासंयत शुक्ल क्षेत्र्यावालोंके ता  
विहार, वेदना कृपाय, और वैदिकिक पदोंकी अपेक्षा साकके असंख्यातवें भाग प्रमाण ही स्पर्शन प्राप्त होता है ।  
उपपादपदकी अपेक्षा मिष्यारष्ट्रि और सासाहनसम्यग्दृष्टि शुक्ल क्षेत्र्यावालोंका स्पष्टन लोकके असंख्यातवें भाग  
प्रमाण है । अविहृतसम्यग्दृष्टि शुक्लक्षेत्र्यावालोंका स्पर्श कुछ कम छह रात्रु है । संयतासंयतोंके उपपादपद नहीं  
होता । फिर भी इन्के मारणात्मिक समुदायकी अपेक्षा कुछ छह रात्रु स्पर्श कम आठ है ।

सामान्योक्तम् । किंतु समयतासयतानां लोकस्यासख्येयभाग । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । औपशमिकसम्यक्त्वानामसयतसम्यग्दृष्टीनां सामान्योक्तम् । शेषाणां लोकस्यासख्येयभाग । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामान्योक्तम् ।

सञ्ज्ञानुवादेन सञ्ज्ञानां अक्षुदर्शनिवत् । असञ्ज्ञानि सर्वलोक स्पृष्ट । तद्गुणव्यपदेशरहितानां सामान्योक्तम् ।

आहारानुवादेन आहारकाणां मिथ्यादृष्ट्यादिक्रीणकपायान्तानां सामान्योक्तम् । सयोगकेवलिना लोकस्यासख्येयभाग । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टिमिं सर्वलोक स्पृष्ट । सासादनसम्यग्दृष्टिमिलोकस्यासख्येयभाग एकादश षतुर्दशभागा वा दशोना । असयतसम्यग्दृष्टिमि लोकस्यासख्येयभाग षट् चतुर्दश भागा वा देशोना । सयोग केवलिना लोकस्यासख्येयभागा सर्वलोको वा । अयोगकेवलिना लोकस्यासख्येयभाग । स्पर्शन व्याख्यातम् ।

काम्यिकसम्यग्दृष्टियों का स्पर्श औपके समान है । किन्तु संयतासंतलोका स्पर्श लोकका असंख्यातवा भाग है । क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका स्पर्श औपके समान है । असयतसम्यग्दृष्टि आपठमिक सम्यग्दृष्टियोंका स्पर्श औपके समान है । तथा शय औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवा भाग है । सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टियोंका स्पर्श सामान्योक्त है ।

महा माग्याक अनुवादसे सप्तियोंका स्पर्श अक्षुदर्शनवासे जीवोंके समान है । असंक्षियों न सय लोकका स्पर्श किया है । और इन दोनों व्यवहारोंसे रहित जीवोंका स्पर्श औपके समान है ।

आहार माग्याक अनुवादसे मिथ्यादृष्टियोंसे लेकर क्षीणरूपाय तकके आहारकोंका स्पर्श औपके समान है । तथा सयोगकेवलियोंका स्पर्श लोकका असंख्यातवा भाग है । अनाहारकोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे सब लोकका स्पर्श किया है । सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे लोकके असंख्यातवा भाग क्षेत्रका चार लोकनाडीके बादह भागोंमेंसे कुछ कम म्यारह<sup>१</sup> भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । असंयत सम्यग्दृष्टिपान लोकके अमंग्यातवें भाग क्षेत्रका चार लोकनाडीके बादह भागोंमेंसे कुछ कम द्वादह<sup>२</sup> भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है । अयोगकेवलियोंसे लोकके असंख्यात बहुत भाग क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्श किया है । तथा अयोगकेवलियोंसे लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

इस प्रकार स्पर्शनका व्याख्यान किया ।

(१) मरु तकसे नीचे कुछ कम चंद्र रात्र और ऊपर उद रात्र । यह सूर्य उत्तरव पक्षी अनेका प्राप्त होता है ।

(२) अश्विन कम तक ऊपर कुछ कम उद रात्र । तिर्यक अश्विन सम्यग्दृष्टि जीव मर कर अश्विन कम तक उत्तरव हीन है एकत्रिके उपचार पक्षी अनेका यह सूर्य बन जाता है ।

काल प्रस्तूयते । स द्विविध सामान्येन विशेषेण च । सामान्येन तावत्  
 मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एनजीवापेक्षया त्रयो भङ्गा । अनादिरप  
 र्यवसान अनादि सपयवसान सादि सपयवसानश्चेति । तत्र सादि सपयवसानो  
 जघन्येनान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेणाघंपुद्गलपरिवर्त्तो देशोन । सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजी  
 वापेक्षया जघन्यनक समय । उत्कर्षेण पत्न्योपमासंख्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्य ३  
 नक समय । उत्कर्षेण पडावलिता । सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्ये  
 नान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेण पत्न्योपमासंख्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्य उत्कृष्टश्चान्त  
 मुहूर्त्तं । असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनान्त  
 मुहूर्त्त । उत्कर्षेण त्रयविंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । सयतासयतस्य नानाजीवापे  
 क्षया सर्वकालः । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । १०

अय कालका कवन च्छेद हैं । सामान्य और विशेषकी अपेक्षा यह दो प्रकारका है ।  
 सामान्यकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव  
 सदा पाये जाते हैं । एक जीवकी अपेक्षा तीन भंग हैं—अनादि-अनन्त अनादि सान्त और सादि  
 सान्त । इनमेंसे सादि-अनन्त मिथ्यादृष्टिका जघन्य काल अन्तमुहूर्त्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम  
 अघपुद्गल परिवर्तन है । सासादनसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है १५  
 और उत्कृष्ट काल पत्न्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । एक जीवका अपेक्षा जघन्य काल एक समय  
 है और उत्कृष्ट काल छह आयलि है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल  
 अन्तमुहूर्त्त है और उत्कृष्ट काल पत्न्यका असंख्यातवें भाग है । एक जीवका अपेक्षा जघन्य और  
 उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्त्त है । असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी  
 अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुहूर्त्त है और उत्कृष्ट काल साधिक तृतीस<sup>३</sup> सागर है । सयतासयतका २०  
 नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुहूर्त्त और उत्कृष्ट  
 काल कुछ कम एक पूर्वकोटि है । प्रसक्तसयत और अप्रसक्तसयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल

( १ ) हर्ताः । तिलि चरन्ता सत प श्यालि दक्षतिरि च उत्याना । एषो ह्वर मुहुता सन्धेभि येव  
 मनुषाण ॥ उत्क-सु ।

( २ ) वा उग्रम भेनिका जीव मर कर एक समय कम तृतीय सागरकी आशु मकर अनुगर  
 किमानमे पैदा होय है । फिर पूर्वकीरिणी आशुवान् भुज्ज्योमे पैदा होकर अर्धनमर अर्धसमक साथ रहता है । कैवल  
 जीवनेमे अन्तमुहूर्त्त काय साथ रहनेपर तयमकी प्राप्त होकर विद्य होता है । तयके अर्धयत सम्प्रसक्तिका उत्कृष्ट  
 काय प्राप्त होता है । यह काल अन्तमुहूर्त्त कम एक पूर्वकोटि अर्धिक एक समय कम तृतीय सागर है ।

( ३ ) पूर्वकीरिणी आशु वाणा वां सम्पूर्धिम तियन उरत्त दीनः अन्तमुहूर्त्त काय अन्त सम्प्रसक्त



प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनक समय । उत्कर्षे  
 पान्तमुद्भूत । चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनक  
 समय । उत्कर्षेणान्तमुद्भूत । चतुणा क्षपकाणामयोगकेवलिना च नानाजीवापेक्षया  
 एकजीवापेक्षया च जघन्येनोत्कृष्टद्वन्तामुद्भूत । सयोगकेवलिना नानाजीवापेक्षया  
 ५ सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्यनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ।

विशेषेण गत्यनुवादन नरकगतौ नारकेषु सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवा  
 पक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनाचमुद्भूत । उत्कर्षेण यथासक्य एक त्रि-सप्त  
 दश-सप्तदश-त्राविंशति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि । सासादनसम्यग्दृष्टे सम्यग्मिथ्यादृष्टेच  
 सामान्योक्त काल । असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति  
 १० जघन्यनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण उक्त एवोत्कृष्टो देशोन ।

हे और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय<sup>१</sup> और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत है । चारों  
 उपशमकाका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय<sup>२</sup> है और उत्कृष्ट काल  
 अन्तमुद्भूत है । चारों क्षपक और अयोगकेवलियोंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य  
 और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत है । सयोगकेवलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक  
 १५ जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर कोटि है ।

विशेषका अपेक्षा गति सागजाक अनुवादेसे नरक गतिमें नारकियोंमें सावों पृथिवियोंमें  
 मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंका अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत  
 है और उत्कृष्ट काल क्रमात् एक, तीन, सात इस सप्रद्व, चार्लिस और तर्तीस सागर है । सासादनसम्य  
 गृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल ओषके समान है । असयतसम्यग्दृष्टिकर नाना जीवोंकी  
 २ अपेक्षा सब काल है । एक जीवका अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत है और उत्कृष्ट काल कुछ<sup>३</sup> कम  
 अपना अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है ।

साय समयान्तरका प्रश्न करता है उसका समयमात्रयथा उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । यह काल अन्तमुद्भूत कम  
 एक पूर्वकालि है ।

( १ ) जघन्य काल एक समय मरणाधी अपेक्षा कथयता है ।

( २ ) जघन्य काल एक समय मरणाधी अपेक्षा कथयता है ।

( ३ ) अन्तमुद्भूत कम । इतनी विधान है कि प्रारम्भके उर मरणाधी मिथ्यादृष्टि काय उत्पन्न करावे  
 फिर काय मुद्भूत का सम्भवताका उत्पन्न कराकर अन्त में सम्यग्दृष्टिकर काय उत्पन्न उत्कृष्ट काल प्राप्त कर । अन्त  
 कायों नरकमें प्रवेश और निर्धम हीही ही मिथ्यादृष्टिके काय करावे ।

तिर्यग्गतौ विरपचां मिथ्यादृष्टीनां नानाजीवापेक्षया सवकालः । एकजीव प्रति जघयेनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेणानन्तः कालोऽस्यस्यया पुद्गलपरिवर्ता । सासादनसम्यग्दृष्टिः सम्यग्मिथ्यादृष्टिस्यतासयतानां सामान्योक्तः कालः । असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सवकालः । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि ।

मनुष्यगतौ मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकालः । एकजीव प्रति जघन्ये नान्तमुद्भूतः । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि पूषकोटीपृथक्स्वरभ्यधिकानि । सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनकः समयः । उत्कर्षेणान्तमुद्भूतं । एकजीव प्रति जघन्येनकः समयः । उत्कर्षेण पञ्चावलिकाः । सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्यश्चोत्कृष्टद्वान्तमुद्भूतं । असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकालः । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि सातिरेकाणि । शषाणां १०

तियचगतिमें मिथ्यादृष्टि तियचोका नानाजीवोंकी अपक्षा सब काल है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत है और उत्कृष्ट अनन्त काल है जो अर्भक्यात' पुद्गल परिवर्तन प्रमाण है । सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयत तियचोक्च सामान्योक्त काल है । अर्भकसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा सब काल है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल अन्त मुद्भूत है और उत्कृष्ट काल तीन पत्य है ।

मनुष्यगतिमें मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा सब काल है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत है और उत्कृष्ट काल पूषकोटि 'पृथक्स्वसे अधिक तीन पत्य है । सासादनसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल छह भावकी है । सम्यग्मिथ्या दृष्टिका नाना जीव और एक जीवकी अपक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुद्भूत है । असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा सब काल है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल अन्तमुद्भूत है और

( १ ) यहाँ अर्भक्यातमें भावधिया अर्भक्यातमें भाग दिया गया है ।

( २ ) यहाँ पूर्वकीटि पृथक्स्वसे वैतान्तीय पूर्वकीटिचोका प्रत्य किया है । यद्यपि पृथक्स्वसे यद्वैतान्तीय कर और नीचे नीचकी सहाया योक्त है तथापि यहाँ वाद्वैतान्तीय अपक्षा पृथक्स्वसे वैतान्तीय का प्रत्य किया है ।

( ३ ) यहाँ साधिक पत्ये कुछ कम पूर्वकीटिच विभाग दिया गया है । उदाहरणार्थ एक पूर्वकीटिच भागुराज विन मनुष्यने विभागमें मनुष्यापुरा कथ किया । फिर अन्तमुद्भूतमें अर्भक्यातपूर्वक साधिकव्यग्यार्थनकी

सामान्योक्त काल ।

देवगतौ देवेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनान्त  
 मुहूर्त । उत्कर्षेणत्रिंशत्सागरोपमाणि । सासादनसम्यग्दृष्टेः सम्यग्मिथ्यादृष्टेष्व सामा  
 न्योक्त काल । असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनान्त  
 मुहूर्त । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि ।

इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणा नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येन  
 क्षुद्रमवग्रहणम् । उत्कर्षेणान्त कालोऽसुरस्यया पुञ्जलपरिवर्ता । विकलेन्द्रियाणां  
 नानामीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रमवग्रहणम् । उत्कर्षेण  
 सस्येयानि वर्षसहस्राणि । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव  
 प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्र पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् । शेषाणां  
 सामान्योक्तः काल ।

उक्त काल साधक तीन पन्थ है । तथा संयतासंयत आवि शेषका काल ओषके समान है ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिवा नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा  
 जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उक्त काल इच्छति सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्या  
 दृष्टिका अक्ष आपके समान है । असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक  
 जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और उक्त काल त्रैविंस सागर है ।

इन्द्रिय मागणाके अनुवावसे एकेन्द्रियांका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी  
 अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रमवग्रहण प्रमाण है और उक्त अनन्त काल है जिसका प्रमाण असंख्यात  
 पुञ्जल परिवर्तन है । विकलेन्द्रियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य  
 काल क्षुद्रमवग्रहण प्रमाण है और उक्त काल संख्यात हजार बर है । पञ्चेन्द्रियोंमें मिथ्यादृ  
 ष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुहूर्त है और  
 उक्त काल पूर्वकोटि पृथक्त्वसे अधिक हजार सागर है । तथा शेष गुणस्वार्नाका काल ओषके  
 समान है ।

प्राप्त किया और आसुके अन्तमें भर कर तीन पन्थके आसुके छाप उत्तम योगभूमिमें पैदा हुआ उसके अक्षित  
 सम्यग्दृष्टि उक्त काल प्राप्त होता है ।

( १ ) लगातार औरन्द्रिय औरन्द्रिय या औरन्द्रिय हीके उक्त काल संख्यात हजार वर्ष है । इस  
 क्षिप्त इनका उक्त काल उक्त प्रमाण करा है ।

कायानुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया सर्वकालः । एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभक्षग्रहणम् । उत्कर्षेणासख्येया' लोका । वनस्पतिकायिका नामेकेन्द्रियवत् । त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व कालः । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । क्षेपाणां पञ्चेन्द्रियवत् ।

योगानुवादेन वाचनसयोगिषु मिथ्यादृष्टघसयतसम्यग्दृष्टिमयतासयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलानां नानाजीवापेक्षया सर्वकालः । एकजीवापेक्षया जघन्येनक समयः । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तः । सासादनसम्यग्दृष्टे सामान्योक्त कालः । सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकसमयः । उत्कर्षेण पत्योपमासख्येयभागः । एकजीव प्रति जघन्येनैक समयः ।

काय मार्गजाके अनुवावसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल क्षुद्रभक्षग्रहण प्रमाण और छद्म काल असंख्यात लोक प्रमाण है । वनस्पतिकायिकोंका एकेन्द्रियोंके समान काल है । त्रसकायिकोंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और छद्म काल पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक दो हजार सागर है । इनके शेष गुणस्थानोंका काल पंचेन्द्रियोंके समान है ।

भाग माग्याके अनुवावसे बचनयोगी और मनोयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतसंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और संयोगकेब्रह्मियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और छद्म काल अन्तर्मुहूर्त है । सासादनसम्यग्दृष्टि सामान्योक्त काल है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और छद्म काल पश्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और छद्म काल अन्तर्मुहूर्त है । चारों उपरामक और चारों उपकोंका नाना जीव

( १ )—सम्यक् कालः । वन मु ।

( २ ) मनोयोग बचनयोग और काययोगका जघन्य काल एक समय योगव्रतावृत्ति, गुणव्रतावृत्ति, मरुत और व्याघात इव तरह चार प्रकारके बन जाता है । इनमेंसे मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि संयतसंयत और प्रमत्तसंयत यहाँ पर चारों प्रकार सम्भव हैं । अप्रमत्तसंयतके व्याघातके बिना तीन प्रकार सम्भव हैं, क्योंकि व्याघात और अप्रमत्तभावका फलस्वरूप विरोध है और लयमिनेकेब्रह्मके एक योगव्रतावृत्तिसे ही जघन्य काल एक समय प्राप्त होना सम्भव है ।

( ३ ) मरुतके बिना शेष तीन प्रकारके यहाँ जघन्य काल एक समय परिचित कर लेना चाहिये ।

उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त । चतुर्णामुपशमकाना क्षपकाणां च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनैकसमय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त । काययोगिषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येनैकसमय । उत्कर्षेणानन्त कालोऽस्तस्येया पुद्गलपरिवर्ता । शेषाणामनोभोगिवत् । अयोगानां सामान्यवत् ।

- ५ वेदानुयायेन स्त्रीवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पत्योपमशतपृथक्त्वम् । सासादनसम्यग्दृष्टिप्राप्तनिवृत्तिबावरान्तानां सामान्योक्त काल । किं तु असयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वकाल एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण पञ्चपञ्चाशत्पत्योपमानि देशोनानि पुत्रोद्देशेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त
- १० उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । सासादनसम्यग्दृष्टिप्राप्तनिवृत्तिबावरान्तानां सामान्योक्त काल । नपुंसकवेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति

और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक 'समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । काययोगियों मिथ्यादृष्टिसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर् काल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुत्रस परिवर्तन है । शेषका काल मनोर्ये

१५ गियोंके समान है । तथा योग रहित जीवोंका काल शेषके समान है ।

- वेद मन्त्रांशके अनुवाकसे स्त्रीवेदवाञ्छोमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ पत्यपृथक्त्व है सासादन सम्यग्दृष्टिसे श्रेष्ठ अनिवृत्तिबाधर एक प्रत्येकका सामान्योक्त काल है । किन्तु असय सम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त
- २० और उत्कृष्ट काल कुछ कम पचन पच्य है । पुत्रोद्देशवाञ्छोमें मिथ्यादृष्टिसे नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल सौ साग पृथक्त्व है । तथा सासादनसम्यग्दृष्टिसे श्रेष्ठ अनिवृत्तिबाधर एक प्रत्येकका सामान्योक्त काल है नपुंसकवेदवाञ्छोमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य

( १ ) अथमन्त्रोंके व्याघातके बिना तीन प्रकारसे और शब्दोंके मरण और व्याघातके बिना ४ प्रकारसे जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है ।

( २ ) देवीकी उत्कृष्ट श्राद्ध पचन पच्य है । इसमेंसे प्रारम्भक अन्तर्मुहूर्त काल कम कर देतेप स्त्रीवेदमें असंख्यसंख्याश्रेष्ठ उत्कृष्ट काल कुछ कम पचन पच्य प्राप्त हो जाता है ।

( ३ ) तीन ही धारसे धार और नौ ही धारके नीचे ।

जघन्येनान्तमुद्धृत । उत्कर्षेणानन्त भानोजसस्येया पुद्गलपरिवर्ति । सासादनसम्य  
गृष्ट्याद्यनिवृत्तिबादरान्तानां सामान्यवत् । किं त्वसंयत्सम्यगृष्टेनानाजीवापक्षया  
सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्धृत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि  
देशोनानि । अपगतवेदाना सामान्यवत् ।

कपायानुवादेन चतुष्कपायाणां मिथ्यादृष्ट्याद्यप्रमत्तान्ताना मनोयोगिवत् । ५  
द्वयोरुपशमकयोर्व्यो क्षपकया केवलसोमस्य च अकपायाणां च सामान्योक्त काल ।

ज्ञानानुवादेन मत्वज्ञानिभ्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यगृष्ट्यो सामा  
न्यवत् । विभङ्गज्ञानिषु मिथ्यादृष्टेनानाजीवापक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति  
जघन्येनान्तमुद्धृत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । सासादनसम्य  
गृष्टे सामान्योक्तः काल । आभिनिद्योधिकभ्रुताघघिमन-पर्ययकेवलज्ञानिनां च १०  
सामान्योक्त ।

काल अन्तमुद्धृत है और उत्कृष्ट 'अनन्त काल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है ।  
तथा सासादनसम्यगृष्टिसे लेकर अनिर्वृत्तिबादर तक प्रत्येकका सामान्योक्त काल है । किन्तु  
असंयत्सम्यगृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल  
अन्तमुद्धृत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम सेतीस 'सागर है । तथा बंदरहित जीवोंका काल १५  
ओषके समान है ।

कपाय मार्गणाके अनुवादसे मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत् तक चारों कपायोंका  
काल मनोयोगियोंके समान है । तथा दोनों उपशमक, दोनों क्षपक, कवल सोमपक्षे और कपाय  
रहित जीवोंका सामान्योक्त काल है ।

ज्ञान मार्गणाके अनुवादसे मत्वज्ञानी और भ्रुताज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादन- २  
सम्यगृष्टिका काल ओषक समान है । विभंगज्ञानियों में मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा  
सब काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तमुद्धृत है और उत्कृष्ट काल कुछ कम सेतीस  
'सागर है । तथा सासादनसम्यगृष्टिका सामान्योक्त काल है । आभिनिद्योधिकज्ञानी, भ्रुतज्ञानी,  
अबधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी और केवलज्ञानियोंका सामान्योक्त काल है ।

( १ ) यह सादि शान्त कालका निर्देश है ।

( २ ) हातमें भरकमें भरतबत सम्यगृष्टिका जो उत्कृष्ट काल है वही यहां नपु सक बंदमें असंयत्  
सम्यगृष्टिका उत्कृष्ट काल बहा है ।

( ३ ) मिथ्यादृष्टि नारसी या देवके उत्तम दानिके पार पर्यंत होने पर ही विभंगज्ञान प्रत्य हाता

सयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनपरिहारविद्युद्विसूक्ष्मसाम्परायययास्या तद्युद्विसयतानां सयतासंयतानामसंयताना च चतुर्णां सामान्योक्त काल ।

दर्शनानुवादेन चक्षुदर्शनिपु मिथ्यादृष्टिर्नानाजीवापेक्षया सय काल । एकजीव प्रति जघन्यनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे । सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां क्षीणरूपायान्ताना सामान्योक्त काल । अचक्षुदर्शनिपु मिथ्यादृष्ट्यादिकीणरूपा यान्तानां सामान्योक्त काल । अवधिकेवलदर्शनिनोरवधिकेवलज्ञानिवत् ।

लेस्यानुवादेन कृष्णनीलरूपोतलेस्यासु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सय काल । एकजीव प्रति जघन्यनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तसप्तसागरोपमाणि साति रेकाणि । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्यो सामान्योक्तः काल । असयतसम्यग्दृष्टिर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिं

संयम मार्गणाक अनुवादसे सामायिकसंयत, छत्रोपस्थापनासयत, परिहारविद्युद्विसंयत, सूक्ष्मसाम्परायसंयत, यथास्मात्तद्युद्विसंयत, संयवासंयत और चारों अंससंतोका सामान्योक्त फल है ।

दर्शन मार्गणाक अनुवादसे चक्षुदर्शनवालोंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सय काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ अन्तमुद्भूत है और अल्प काल वो हजार सागर है । तथा सासादन सम्यग्दृष्टिसे लेकर त्रिंशत्सप्तसप्त सागरोपमा सामान्योक्त काल है । अचक्षुदर्शन-वालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर चोपकपाय तक प्रत्येकका सामान्योक्त फल है । अवधिदर्शनवाले और केवलदर्शनवाले जीवोंका फल अवधिज्ञानी और केवलज्ञानियोंके समान है ।

लेस्या मार्गणाक अनुवादसे कृष्ण नील और कापोत क्षेत्रवावालोंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सय काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ अन्तमुद्भूत है और अल्प काल कमराः सायिक ठेठीस सागर सायिक सत्रह सागर और सायिक सात सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका सामान्योक्त फल है । असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सय काल है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ अन्तमुद्भूत और अल्प काल कमराः सायिक ठेठीस सागर, सत्रह सागर और सायिक सात सागर है । पीठ और

है । इसीसे यहाँ एक जीव की अपेक्षा मिथ्यादृष्टिके विभंगकायक अल्प काल कुछ कम ठेठीस सागर यहाँ है ।

( १ ) जो विश्व क्षेत्रवाले नरकमें लगभग होता है उसके मरते समय अन्तमुद्भूत पहले यही लेस्या भा खती है । इसी प्रकार नरकमें निकलनेपर भी अन्तमुद्भूत तक यही लेस्या रहती है । इसीसे यहाँ मिथ्या-दृष्टिके कृष्ण गीष्ण और कापोत क्षेत्रवाले अल्प काल कमसे सायिक ठेठीस सागर सायिक सत्रह सागर और सायिक सात सागर बतलाया है ।

सासदसदसदसागरोपमाणि देशोनानि । तेजपचलेश्ययोमिष्याहृष्टघसयतसम्यगृष्टघो  
 नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण द्वे साग  
 रोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । सासादनसम्यगृष्टिसम्यग्मिष्या-  
 हृष्टघो सामान्योक्त काल । सयतासयतप्रमत्ताप्रमत्ताना नानाजीवापेक्षया सब काल ।  
 एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेणान्तमुहूर्त । शुक्ल्लेश्याना मिष्याहृष्टेर्नाना ५  
 जीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरो  
 पमाणि सातिरेकाणि । सासादनसम्यगृष्टिघादिसयोगकेवल्यन्तानामलेश्यानां च सामान्योक्त  
 काल । किं तु सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीव प्रति जघन्येनैक  
 समय । उत्कर्षेणान्तमुहूर्त ।

मध्यानुवादेन भक्ष्येषु मिष्याहृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सर्वं काल । एकजीवापेक्षया १०  
 द्वौ भङ्गी । अनादि सपर्यवसान सादि सपर्यवसानम् । तत्र सादि सपर्यवसानो

पद्मक्षेत्रयावाळोमें मिष्याहृष्टि और असंयतसम्यगृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक  
 जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट काळ क्रमत् साधिक दो सागर और  
 साधिक अठारह सागर है । सासादनसम्यगृष्टि और सम्यग्मिष्याहृष्टिका सामान्योक्त काल है ।  
 संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवकी १५  
 अपेक्षा जघन्य काळ एक समय है और उत्कृष्ट काळ अन्तमुहूर्त है । शुक्ल लेश्यावाळोमें  
 मिष्याहृष्टिक नाना जीवोंकी अपेक्षा सब काल है । एक जीवका अपेक्षा जघन्य काळ अन्तमुहूर्त  
 है और उत्कृष्ट काळ साधिक इकतीस सागर है । सासादन सम्यगृष्टिस लक्ष सयोगकबला  
 तक प्रत्येकका और क्षयारहित जीवाका सामान्योक्त काळ है । किन्तु सयतासंयतका नाना जीवोंकी  
 अपेक्षा सब काळ है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य काळ एक समय और उत्कृष्ट काळ अन्तमुहूर्त है । २०

मध्य मागणाक अनुवासे भक्ष्योमें मिष्याहृष्टिका नाना जायांकी अपेक्षा सब काल है ।  
 एक जीवकी अपेक्षा दो मग हैं अनादि-सान्त और सादि-सान्त । इनमेंसे सादि-सान्त मंगका

( १ ) मिष्याहृष्टिके पक्षका अर्धमातर्वा मग अपिक दो सागर या अन्तमुहूर्त कम बार सागर  
 और सम्यगृष्टिक अन्तमुहूर्तक बार सागर ।

( २ ) मिष्याहृष्टिके पक्षका अर्धमातर्वा मग अपिक अठारह सागर और सम्यगृष्टिक अन्तमुहूर्त  
 कम साढ़े अठारह सागर ।

( ३ ) क्षेत्रयावाळि और शुक्लराहृष्टिने अपेक्ष्य काळ एक समय प्राक्त दो काटा है ।



जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेणादं पुद्गलपरिवर्तो देशोन । सासादनसम्यग्दृष्टिघाद्ययोग  
केवल्यन्तानां सामान्योक्त काल । अभव्यानामनादिरपर्यवसान ।

सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टीनामसयतसम्यग्दृष्टिघाद्ययोगकेवल्यन्तानां  
सामान्योक्त काल । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टीना चतुष्ठा सामान्योक्त काल । औप  
५ शमिकसम्यक्त्वेपु असंयतसम्यग्दृष्टिसयतासमतयोर्नाभीवापक्षया जघन्येनान्तर्मुहूर्त ।  
उत्कर्षेण पत्योपमार्सस्थेयभाग । एकजीव प्रति जघयश्चोत्कृष्टदृष्टान्तर्मुहूर्त । प्रम  
त्ताप्रमत्तयोश्चतुष्ठासम्यक्त्वानुवादेन च नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च जघन्येनक ।  
समय । उत्कर्षेणान्तर्मुहूर्त । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टीनां सामा  
न्योक्त काल ।

६ सञ्ज्ञानुवादेन सञ्ज्ञिपु मिथ्यादृष्टिघाद्यनिवृत्तिबाधरान्ताना पुवेदवत् । शेषाणां  
सामान्योक्त । असञ्ज्ञिनां नानाजीवापेक्षया सर्व काल । एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभव  
प्रहणम् । उत्कर्षेणान्तर्कालोऽसंस्थेया पुद्गलपरिवर्त । तदुभयव्यपदेशरहिताना

अपक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त इ और उत्कृष्ट काल कुञ्ज कम व्यर्ष पुद्गल परिवर्तन है ।  
सासादनसम्यग्दृष्टिसंज्ञकर अयोगकबली तक प्रत्यक्का सामान्योक्त काल है । अभव्योका अनादि  
१५ अनन्त काल है ।

सम्यक्त्व मार्गात्का अनुवादेसे क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिसे संज्ञकर अयोग  
केबली तक प्रत्यक्का सामान्योक्त काल है । चारों क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टियोंका सामान्योक्त काल  
है । औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतका नाना जीवोंकी अपक्षा  
जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त इ और उत्कृष्ट काल पत्युअ असंस्थेयताका भाग है । एक जीवकी अपक्षा  
जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और चारों उपप्रमत्तोंका नाना  
२० जाय और एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । तथा  
सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्दृष्टिमिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टिका सामान्योक्त काल है ।

संज्ञा भागणाक अनुवादेसे सञ्ज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसंज्ञकर अनिवृत्तिबाधर तक प्रत्यक्का  
काल पुण्यवर्षियोंके समान है । तथा शप गुणस्थानोंका सामान्योक्त काल है । असंज्ञियोंका नाना  
जीवोंकी अपक्षा मय काल है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य काल क्षुद्रभवप्रहण प्रमाण है और  
२५ उत्कृष्ट अनन्त काल है जिसका प्रमाण असंस्थेयत पुत्रस परिवर्तन है । संज्ञी और असंज्ञी व्यवहारसे

(१)—हिनी मिथ्यादं नानां सु ।

(२)—प्रहणम् । निष्कण्ठया उनीठा छावर्षी महस्यानि मरणाणि । अंतोद्युतमते तावदिया चंभ  
हीनि गुरमता । १११११ । उर्र सु ।

सामान्योक्त ।

आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापक्षया सव काल । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूत । उत्कर्षेणागुलासक्ष्येयभाग असक्ष्ययासक्ष्येया उत्सर्पोष्यव सर्पिण्य । शेषाणां सामान्योक्त काल । अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापक्षया सव काल । एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण त्रय समया । सासादनसम्यग्दृष्टघसयत्सम्पद्दृष्टघानानाजीवापक्षया जघन्यनैक समय । उत्कर्षेणावश्लिकाया असक्ष्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण द्वौ समयौ । सयागक्ष्येय लिनी नानाजीवापक्षया जघन्येन त्रय समया । उत्कर्षेण सक्ष्यया समया । एकजीव प्रति जघन्येनोत्कृष्टश्च त्रय समया । अयागक्ष्येयलिनी सामान्योक्त वार । वालो वर्णित ।

अन्तर निरूप्यते । विविक्षितस्य गुणस्य गुणात्तरसंक्रम सति पुनस्तत्प्राप्त प्राप्स्यमन्तरम् । तत् त्रिविध सामान्यन विद्यपेण च । सामान्यत तावत् मिथ्या

रहित जीवाका सामान्योक्त काल ई ।

आहार मागणाक अनुवादस आहारकामं मिथ्यादृष्टिका नाना जीवाका अपक्षा मष काल ई । एक जीवका अपक्षा जघन्य काल अन्तमुहूत ई आर उत्कृष्ट काल अगुलक अमग्न्यात्वे भागप्रमाण इ त्रिमका प्रमाण अमग्न्यात्वामग्न्यात् उत्सर्पिणी और अधसर्पिणी ई । शय गुणम्यानीका सामान्याक काल ई । अनाहारकामं मिथ्यादृष्टिका नाना जीवाका अपक्षा सव काल ई । एक जापकी अपक्षा जघन्य काल एक समय आर उत्कृष्ट काल तीन समय ई । सासादन सम्यग्दृष्टि आर असंयत सम्यग्दृष्टिका नाना जीवाका अपक्षा जघन्य काल एक समय ई आर उत्कृष्ट काल आपक्षीक अमग्न्यात्वे भागप्रमाण ई । एक जीवका अपक्षा जघन्य काल एक समय आर उत्कृष्ट काल दो समय ई । सयागक्ष्येयका नाना जीवाका अपक्षा जघन्य काल तीन समय आर उत्कृष्ट काल मग्न्यात् समय ई । एक जीवका अपक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल तीन समय ई । अयोगक्षयलिनीका सामान्याक काल ई ।

एस प्रकार कालका पणम किया ।

अथ अन्तरका निरूपण करत ई । उच विपक्षित गुण गुणान्तरक्रम संक्रमित हो जाता ई और पुन उगका प्राप्ति होता ई ता मध्यक कालका अन्तर करत ई । एत सामान्य

दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण द्वे पटवष्ठी देशोने सागरोपमाणाम् । सासादनसम्यग्दृष्टेरन्तर नानाजीवापेक्षया जघन्य नैक समय । उत्कर्षेण पत्योपमासस्ययभाग । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासस्य यभागः । उत्कर्षेणाद्वपुद्गलपरिवर्तो देशोन । सम्यग्मिथ्यादृष्टेरन्तर नानाजीवापेक्षया सासादनवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेणाद्वपुद्गलपरिवर्तो देशोन । असयतसम्यग्दृष्ट्याप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेणाद्वपुद्गलपरिवर्तो देशोन । चतुर्णामुपशमनानां नानाजी

और विगपकी अपेक्षा दो प्रकारका है । सामान्यकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एकसौ बत्तीस सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असंख्यातवां भाग है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर पत्यका असंख्यातवां भाग आर उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धे पुद्गल परिवर्तन है । सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर सासादनसम्यग्दृष्टियांक समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन है । असंयत सम्यग्दृष्टिसे १५ जघन्य अप्रमत्तसंयत तक प्रत्येकका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन है । चारों उपशम

( १ ) यदि दर्शन मोहनीयका सपना काल सम्मिश्रित न किन्ना ज्ञाय तो वेदक सम्बन्धका चट्टक अथ अन्तर्मुहूर्त कम सपासठ सागर प्राप्त होता है । साब ही यह भी नियम है कि ऐसा जीव मध्यमे अन्तर्मुहूर्तके स्थिते मिथ गुणस्वायमे बाकर पुनः अन्तर्मुहूर्त कम सपासठ सागर तक वेदक सम्बन्धके साब रह सकता है । इसके बाद वह या तो मिथ्यात्वमें बसा जाता है या दर्शनमोहनीयकी क्षणता करते लगता है । यहाँ मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर जाता है इसलिये मिथ्यात्वसे बाकर अन्तर्मुहूर्त पुनः मिथ्यात्वमें ही लब्धना बाधिये । इससे मिथ्यादृष्टिका चट्टक अन्तर कुछ कम एक सौ बत्तीस सागर प्राप्त हो जाता है ।

( २ ) यदि सासादन सम्यग्दृष्टि न हो तो वे अन्तर्मुहूर्त एक समय तक और अधिकसे अधिक पत्यके अर्धसंख्यातमें भाग काल तक नहीं होते इससे इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यके अर्धसंख्यातमें भाग प्रभाव फलदाता है ।

( ३ ) सासादन गुणस्वायन उपशम सम्बन्धसे श्रुत होम पर ही प्राप्त हो सकता है । किन्तु एक जीव अन्तर्मुहूर्त पत्यके अर्धसंख्यातमें भाग प्रभाव काबके जाने पर ही दूसरी बार उपशम सम्बन्धको प्राप्त हो सकता है । इसीसे यहो सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तरकाल पत्यके अर्धसंख्यातमें भाग प्रभाव कहा है ।

वापेक्षया जघन्येनक समय । उत्कर्षेण दर्पपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त ।  
 उत्कर्षेणाद्भुद्गलपरिवर्तो देशोन । षतुष्ठा क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवा  
 पेक्षया जघन्येनक समय । उत्कर्षेण पणमासा । एकजीव प्रति नान्त्यन्तरम् । सयोगके-  
 वलिना नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ।

विशयण गत्यनुवादेन नरकगतौ नारकाणा सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टस्य ५  
 तसम्यग्दृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त ।  
 उत्कर्षेण एक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति त्रयविंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । सासा  
 दनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया जघन्यनक समय । उत्कर्षेण पत्यो  
 पमासक्येयभाग । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासक्येयभागोऽन्तमुहूर्तश्च । उत्कर्षेण  
 एक त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति त्रयविंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । १०

कोका नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अपेक्षवत्त्व है । एक  
 जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अथपुद्गलपरिवर्तन  
 है । चारों क्षपक और अयोगक्षयलियोंका नाना जीवोकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और  
 उत्कृष्ट अन्तर इह महीना है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सयोगकेवलियोंका नाना  
 जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । १५

विशयकी अपेक्षा गतिमागक्षाक अनुवादेसे नरकगतिमें नारकियोंमें सातों वृषिवियोंम  
 मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी  
 अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः कुछ कम एक सागर, कुछ कम तीन  
 सागर कुछ कम सात सागर, कुछ कम दस सागर, कुछ कम सत्रह सागर, कुछ कम चाँस सागर  
 और कुछ कम वेतीस सागर है । सामान्यसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोकी २०  
 अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असंख्यातका भाग है । एक जीवकी  
 अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पश्यका असंख्यातका भाग और अन्तमुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर  
 सातों नरकोंमें क्रमशः कुछ कम एक सागर, कुछ कम तीन सागर, कुछ कम सात सागर, कुछ कम

( १ ) एक जीव उपग्रह भेलिठे स्थित होकर पुनः अन्तमुहूर्तके बाद उपग्रह भेलि पर चढ़ सकता  
 है इसलिये चारों उपग्रहोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त कालका है ।

( २ ) जिस नरककी भित्ती उत्कृष्ट स्थिति है । उसके प्रारम्भ और अन्तमें अन्तमुहूर्त तक मिथ्यात्वक  
 साथ रहकर मध्यमें सम्यक्त्वक साथ रहनेसे उस नरकमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर भा जाता है जिसका निर्दोष  
 मूलमें किया ही है ।

तिर्यग्गती तिरश्चां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघयेनान्तुर्हृतं । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि देशोनानि । सासादनसम्पद्दृष्टघादीनां चतुष्ठा सामायोक्तमन्तरम् ।

मनुष्यगती मनुष्याणां मिथ्यादृष्टस्तिर्यग्वत् । सासादनसम्पद्दृष्टिसम्पत्तिमिथ्या  
५ दृष्टघोनानाजीवापेक्षया सामायवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासस्येयभागो जन्तुमुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रीणि पत्योपमानि पूर्वकोटीपुत्रमत्स्यैरभ्यधिकानि । असंयत

दस सागर, कुक्ष कम मन्त्रह सागर, कुक्ष कम बार्हिस सागर और कुक्ष कम ठेतीस सागर है ।

तिर्यग्गतिसं विषयार्थोमं मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुक्ष कम तीन पत्य है । तथा सासा  
१० दनसम्पद्दृष्टि आदि चारोंको सामायोक्त अन्तर है ।

मनुष्य गतिमें मनुष्योंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर तिर्यग्गतेके समान है । सासादनसम्पद्दृष्टि और सम्पत्तिमिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर जोपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघम्य अन्तर कमज पत्यका अस्तंभ्यावर्वा भाग और अन्तमुहूर्त है । उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपुत्रमत्स्य अधिक तीन पत्य है । असंयतसम्पद्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं

( १ ) नरकमें उत्कृष्ट स्थितिमें साथ उत्तम हाथ पर अन्तमुहूर्तके बाद उत्तम सम्पत्तको प्राप्त कराके सासादन और मिथ्यमें लक्ष्य । फिर मरते समय सासादन और मिथ्यमें लक्ष्य । इस प्रकार मरनेके नरकमें गानादन और मिथ्य गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर भा जाता है । इसकी विशेषता है कि ठाठमें नरकमें मरनेके अन्तमुहूर्त परके सासादन और मिथ्यमें लक्ष्य ।

( २ ) वा तीन पत्रकी भाषुके पात्र कुक्षकुक्ष और मर्कट आदि पत्रावर्तमें दो माह रहा और बर्हिसि निरूपपर सुहूर्तपत्रके नीचे बरक सम्पत्तको प्राप्त हुआ । फिर अन्तम मिथ्यात्वमें जाकर और सम्पत्तका प्राप्त हाकर मरकर देव हुआ । उसका सुहूर्त पत्रके और दो माह कम तीन पत्र मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर जाता है ।

( ३ ) मनुष्य गतिमें मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर १ माह १९ दिन और वा अन्तमुहूर्त कम तीन पत्र है ।

( ४ ) मनुष्यकी उत्कृष्ट काय स्थिति सेवास्तीव पूर्वकादि अधिक तीन पत्र है । बार्हिस एक अन्त गति का जीव सासादनका नाशमें एक समय राय रहने पर मनुष्य हुआ और अन्ती उत्कृष्ट कायस्थिति प्रमाण का वह मनुष्य पत्रावर्तमें पत्रका हुआ अन्तमें उत्तम सम्पत्तपत्रके एक समयके स्थिति सासादनका प्राप्त हुआ था मरकर देव हा गया तो इससे मनुष्य गतिमें गानादनका उत्कृष्ट अन्तर दो समय कम सेवास्तीव पूर्वकी

सम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्यनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रीणि पत्न्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वरम्यधिकानि । सयथासयतप्रमत्ताप्रमत्ताना नाना जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण पूर्वकोटी-पृथक्त्वानि । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण पूर्वकोटीपृथक्त्वानि । शेषाणां सामान्यवत् । ५

देवगती देवानां मिथ्यादृष्टसयतसम्यग्दृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति

है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटी पृथक्त्व अधिक तीन पत्न्य है । सयवासयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर १० नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व<sup>२</sup> है । चारों उपस्मरकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है । शेष गुणस्थानाका अन्तर ओपके समान है ।

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर १८ नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्ष्मीस<sup>३</sup> सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके

और तीन पत्न्य प्राप्त हो जाता है । मिथ गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर लठे समय मनुष्य पर्वण्य प्राप्त करनेपर आठ वर्ष के बाद मिथ गुणस्थान प्राप्त करावे । फिर काय स्थितिके अन्तमें मिथ गुणस्थान प्राप्त कराकर मिथ्यात्व या सम्पत्त्वमें छे जाकर मरण करावे । तां इस प्रकार मिथ गुणस्थानअ उत्कृष्ट अन्तर तीन अन्तमुहूर्त और अन्त रूप कम सेंतासीस पूर्वकादि और तीन पत्न्य प्राप्त होता है ।

( १ ) मनुष्य सम्पत्त्विका उत्कृष्ट अन्तर आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्त कम सेंतासीस पूर्वकोटी और तीन पत्न्य है ।

( २ ) भागभूमिमें संवसाधंशम या संवसकी प्राप्ति सम्भव नहीं । इसलिये सेंतासीस पूर्वकादिके पीठर ही यह अन्तर बतलाया है ।

( ३ ) देवोंमें नीचें प्रवियक्त तक ही गुणस्थान परिवर्तन सम्भव है । इसीसे यहाँ मिथ्यात्व और सम्पत्त्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इक्ष्मीस सागर कथनया है ।

जघन्येन पत्न्योपमासस्येयभागोऽन्तमु हूतश्च । उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि ।  
 इन्द्रियानुवादेन एकन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया  
 जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके ।  
 विकलेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एक जीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् ।  
 उत्कर्षेणानन्त कालोऽभ्यस्येया पुद्गलपरिवर्ता । एवमिन्द्रिय मयन्तरमुक्तम् । गुण  
 प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । सासादानसम्यग्दृष्टि  
 सम्पन्नमिथ्यादृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्न्योपमा  
 सस्ययभागोऽन्तमु हूतश्च । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम् ।  
 असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति

१० समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पत्न्यका असंख्यातवां भाग और अन्तमुहूर्त है ।  
 तथा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है ।

इन्द्रिय मार्ग्याके अनुवादेसे एकन्द्रियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक  
 जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अभिक  
 दो हजार 'सागर' है । विकलेन्द्रियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा  
 जघन्य अन्तर क्षुद्रभव ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कास है जिसका प्रमाण असंख्यात  
 पुद्गल परिवर्तन है । इस प्रकार इन्द्रियकी अपेक्षा अन्तर कहा । गुणस्थानकी अपेक्षा बिचार करते  
 पर तो इनके नाना जीवोंकी अपेक्षा और एक जीवकी अपेक्षा दोनों अपेक्षाओंसे भी अन्तर नहीं है ।  
 या उत्कृष्ट और जघन्य दोनों प्रकारसे अन्तर नहीं है ।

पञ्चन्द्रियोंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर आपके समान है । सासादानसम्यग्दृष्टि और सम्य  
 २० मिथ्यादृष्टिक्र नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर आपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य  
 अन्तर क्रमशः पत्न्यका असंख्यातवां भाग और अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व  
 अभिक एक हजार सागर' है । असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक प्रत्येक गुणस्थानका  
 मान्य जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट

( १ ) वर पर्वतमें रहनेवा उत्कृष्ट कास पूर्वकोटि पृथक्त्व अभिक दो हजार सागर है । इसीसे  
 एकेन्द्रियोंका उक्त प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर कतलया है ।

( २ ) सासादानका उत्कृष्ट अन्तर साते सम्य पूर्वकोटि पृथक्त्व अभिक एक हजार सागरमेंसे आधिक्य  
 असंख्यातवां भाग और भी अन्तमुहूर्त कम कर देना चाहिये । निम्न गुणस्थानवाओंका उत्कृष्ट अन्तर अन्ते  
 सम्य करके अन्तमुहूर्त कम कर देना चाहिये । असंयत सम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्त सम्य इस अन्तमु

जघन्येनान्तमु हृत । उत्कर्षेण सागरोपमसहस्र पूषकोटीपृथक्स्वरभ्यधिकम् । चतुर्णामुपसा  
मकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमु हूर्ध्वं । उत्कर्षेण साग  
रोपमसहस्र पूषकोटीपृथक्स्वरभ्यधिकम् । शेषाणां सामान्योक्तम् ।

कायानुधादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।  
एकजीव प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणानन्त कालोऽसस्येया पुद्गलपरिवर्त्ता । ५  
वनस्पतिकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवापेक्षया जघन्येन  
क्षुद्रभवग्रहणम् । उत्कर्षेणासस्येया लोका । एष अयं प्रत्यन्तरमुक्तम् । गुण प्रत्युभयतोऽपि  
नास्त्यन्तरम् । त्रसकायिकेषु मिथ्यादृष्ट सामान्यवत् । सासादनसम्बन्धदृष्टिसम्बन्धमिथ्यादृष्ट  
धोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासस्येयभागोऽन्तर्मुहूर्ध्वम् ।  
उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे, पूर्वकोटीपृथक्स्वरभ्यधिके । असयतसम्बन्धदृष्ट्याद्यप्रम १०

अन्तर पूर्वकोटीपृथक्स्व अधिक एक हजार सागर है । चारों उपरामकोका नाना जीवोंकी अपक्षा  
अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्ध्वं है और उत्कृष्ट अन्तर  
पूर्वकोटी पृथक्स्व अधिक एक हजार सागर है । गण गुणस्थानोंका अन्तर ओपके समान है ।

काय मागणाके अनुधादसे पृथिवी कायिक, अलकायिक, अग्निकायिक, और वायुकायिक  
जीवोंका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहण १५  
प्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जिसका प्रमाण असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है । वनस्प  
तिकायिकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभव  
ग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है । इस प्रकार कायकी अपक्षा अन्तर  
कहा । गुणस्थानकी अपक्षा विचार करने पर सो नाना जीवोंकी अपक्षा और एक जीवकी अपक्षा  
इन दोनों अपक्षाओंसे भी अन्तर नहीं है । या उत्कृष्ट और जघन्य इन दोनों अपक्षाओंसे अन्तर २०  
नहीं है । त्रसकायिकोंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर ओपके समान है । सासादनसम्बन्धदृष्टि और  
और सम्बन्धमिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी  
अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमज्ञः पत्न्यका असंख्यातर्था माग और अन्तर्मुहूर्ध्वं है तथा  
उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटी पृथक्स्व अधिक दो हजार सागर है । असंयतसम्बन्धदृष्टिसे लेकर आग्रम

हूर्ध्वं कम कर देना चाहिए । संयतसंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्ते समय तीन पक्ष तीन दिन और बारह अन्तमु  
हूर्ध्वं कम कर देना चाहिए । प्रयत्नपूर्वक  
अन्तमु हूर्ध्वं कर देना  
१, २८, २९ और २  
दिने - २९ गी इत प्रक

पतसंयतों का उत्कृष्ट अन्तर अन्ते समय अठारह वर्ष और दस  
बार उत्पामकोंका उत्कृष्ट अन्तर अन्ते समय अन्ते  
देना चाहिए ।



तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तर । एक जीव प्रति जघन्यनान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्स्वरम्यधिके । घतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्स्वरम्यधिके । शंषाणां पञ्चेन्द्रियवत् ।

योगानुवादेन कायधातूमनसयोगिनां मिथ्यादृष्टिस्तयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टधोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । घतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । घतुर्णां सपकाणामयोगकेवलिना च सामान्यवत् ।

देवानुवादेन ऋग्वेदेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त्तं । उत्कर्षेण पद्मपद्माशात्पत्योपमानि देशोनानि । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टधोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमा

त्तमंयत् एक मत्स्य गुणस्वानका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्स्वर अधिक दो हजार सागर है । चारों उपशमकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर औपक समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्स्वर अधिक दो हजार सागर है । तथा शंष गुणस्वानकोंका अन्तर पंचेन्द्रियोंके समान है ।

योग मार्गणाक अनुवाद्से काययोगी, बचनयोगी और मनोयोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत प्रमत्तमंयत अप्रमत्तमंयत और सबोगकेवलीका नाना जीव २ बार एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर औपक समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । चारों उपशमकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर औपक समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । चारों उपक और अयोग्यप्रतियोंका अन्तर औपके समान है ।

वेद मार्गणाके अनुवाद्से रत्नत्रियियोंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं २५ है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुहूर्त्त और उत्कृष्ट अन्तर कुल कम पञ्चवन पत्स्य है । मामादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर औपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पत्स्यका अस्तम्यातवा भाग और अस्तमुहूर्त्त है और

संख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण पत्योपमशतपृथक्त्वम् । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण पत्योपमशतपृथक्त्वम् । द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण पत्योपमशतपृथक्त्वम् । द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ।

पुवेदेपु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टधोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तं । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् ।

उत्कृष्ट अन्तर सौ पत्युपमशतपृथक्त्व है । असंयतसम्यग्दृष्टिसे क्षेत्र अग्रमत्तसंयत एक प्रत्येक गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर सौ पत्युपमशतपृथक्त्व है । दोनों उपशमकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर सौ पत्युपमशतपृथक्त्व है । दोनों क्षपकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर ओपके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पत्युका असंख्यातर्वा माग और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है । असंयतसम्यग्दृष्टिसे क्षेत्र अग्रमत्तसंयत एक प्रत्येक गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर सौ

( १ ) जीवेका उत्कृष्ट काक सौ पत्युपमशतपृथक्त्व है जघमें से दो समान कम कर बेदेपर जीवेदियोंमें सासादन सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट अन्तर आ जाता है और यह अन्तर्मुहूर्त कम कर बेदेपर सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर आ जाता है । आगे भी इसी प्रकार आगमानुसार पठित कर उमा चाहिये ।

( २ ) साधारणता क्षपकमेंकि उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । पर स्त्रीवेदकी अपेक्षा छहमा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व बतलाया है ।

( ३ ) सासादनके दो समय कम और सम्यग्मिथ्यादृष्टिके छह अन्तर्मुहूर्त कम सौ सागर पृथक्त्व यह अन्तर ध्यानना चाहिये । आगे भी इस प्रकार तथा मांग्य अन्तर पठित कर उमा चाहिये ।

द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्तं ।  
उत्कर्षेण सागरोपशमशतप्रयन्त्वम् । द्वयो क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय ।  
उत्कर्षेण सवत्सर सातिरेक । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् ।

नर्पुसपवेदेपु मिष्याहृष्टेनानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघने  
५ नान्तमुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । सासादनसम्यग्दृष्टघाघनि  
वृत्त्युपशमकान्तानां सामान्योक्तम् । द्वयो क्षपकयो स्त्रीवेदवत् । अपगतवेदेपु अनिवृत्ति-  
वाद्रोपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । एकजीव प्रति  
जघन्यमुत्कृष्ट चान्तमुहूर्त । उपशान्तकपायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव  
प्रति नास्त्यन्तरम् । घपाघ्नी सामान्यवत् ।

१ कपायानुवादेन श्रेष्ठमानमायालोभकपायाणां मिष्याहृष्टघाघनिवृत्त्युपशमका-  
न्तानां मनोयोगिवत् । द्वयो क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण  
संवत्सर सातिरेक । केवलश्लोमस्य सूक्ष्मसाम्परायोपशमकस्य नानाजीवापेक्षया

सागर पूषकत्व इ । शोनों क्षपककोका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है । एक  
जीवकी अपेक्षा अपम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पूषकत्व है । शोनों क्षपकोका  
१५ नाना जीवोंकी अपेक्षा अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वष है । एक  
जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

नर्पुसक वेदबालांमि मिष्याहृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी  
अपेक्षा अपम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर इन्द्र कम तेवीस सागर है । सासादनसम्य-  
ग्दृष्टिसे क्षेत्र अनिवृत्ति उपशमक तक प्रत्येक गुणस्थानका सामान्योक्त अन्तर है । तथा शानों  
२० क्षपकोका अन्तर स्त्रीवेदियोंके समान है । अपगतवेदबालांमि अनिवृत्तिवाद् उपशमक और सूक्ष्म  
साम्पराय उपशमकका नाना जीवोंकी अपेक्षा सामान्योक्त अन्तर है । एक जीवकी अपेक्षा अपम्य  
और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । उपशान्तकपायका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान  
है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । शप गुणस्थानोंका अन्तर ओषके समान है ।

कपाय मागणके अनुवात्से श्लोष, मान माया और श्लोममि मिष्याहृष्टिसे क्षेत्र अनिवृ-  
२५ त्तिवाद् उपशमक तक प्रत्येक गुणस्थानका अन्तर मनोयोगियोंके समान है । शोनों क्षपकोका नाना  
जीवोंकी अपेक्षा अपम्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वष है । श्लोम कपायमि  
सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमकका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है । एक जीवकी

( १ ) पुत्रवेदी अविद्यते क्विक साधिक एक वष तक एक जेतिपर नहीं क्वता नह इसका भाव है ।

सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । क्षपकस्य तस्य सामान्यवत् । अक्षपायेषु उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । खेषाणां त्रयाणां सामान्यवत् ।

ज्ञानानुवादेन मत्स्यज्ञानश्रुतज्ञानविमङ्गलज्ञानेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । आभिनिबोधिकश्रुतावधिज्ञानेषु असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति अचन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति अचन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि । प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति अचन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । चतुर्णामुपशमक्रानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति

अपेक्षा अन्तर नहीं है । सूक्ष्मलोभवस्त्रे क्षपकका अन्तर ओपके समान है । कषाय रहित जीवोंमें उपशान्तकषायका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । शय तीन गुणस्थानोंका अन्तर ओपके समान है ।

ज्ञान माग्याके अनुवादसे मत्स्यज्ञानी, श्रुतज्ञानी और विमङ्गलज्ञानियोंमें मिथ्यादृष्टिका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सासादन सम्यग्दृष्टिक नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा अचन्य अन्तर अन्तमुद्भूत और षट्षष्ट अन्तर कुछ कम एक 'पूर्वकोटी' है । संयतासयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा अचन्य अन्तर अन्तमुद्भूत और षट्षष्ट अन्तर साधिक छषासठ 'सागर' है । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा अचन्य अन्तर अन्तमुद्भूत और षट्षष्ट अन्तर साधिक 'तेवीस' सागर है । चारों उपशमकका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है ।

( १ ) चार अन्तमुद्भूत कम पूर्व कोटी ।

( २ ) षट्षष्ट वर्ष और चार अन्तमुद्भूत कम तीन पूर्वकोटि अधिक छषासठ सागर । किन्तु अवधिज्ञानीके स्मरण अन्तमुद्भूतके स्थानमें १२ अन्तमुद्भूत कम करना चाहिये ।

( ३ ) प्रमत्तके छषे तीन अन्तमुद्भूत कम पूर्वकोटि अधिक तेवीस सागर षट्षष्ट अन्तर है । और अप्रमत्तके दो अन्तमुद्भूत कम पूर्वकोटि अधिक तेवीस सागर षट्षष्ट अन्तर है ।

जघन्येनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण पट्पट्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि । चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । किं तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकं समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मन-पर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तस्यतयोर्नाना जीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुद्भूतं । चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघनेनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । चतुर्णां क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् । द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यवत् ।

सयमामुवादेम सामायिकच्छदोपस्थापनद्विससयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवा पेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुद्भूतं । द्वयोरुपशमकयोर्नाना जीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघनेनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूतं और उत्कृष्ट अन्तर सायिक छपासठ<sup>१</sup> सागर है । चारों क्षपकोका अन्तर ओपके समान है । किन्तु अवधिज्ञानियोंमें नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्ष पृथक्त्व<sup>२</sup> है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । मना पर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्भूत<sup>३</sup> है । चारों उपशमकोका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुद्भूतं और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक<sup>४</sup> पूर्वकोटी है । चारों क्षपकोका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है । दोनों केवलज्ञानियोंका अन्तर ओपके समान है ।

संयम मार्गणाके अनुवादसे सामायिक द्विससयत और छदोपस्थापनद्विससयतोंमें प्रमत्त-संयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्भूत<sup>३</sup> है । दोनों उपशमकोका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक

( १ ) छीन वा चार पूर्व कोटि अधिक छपासठ सागर । किन्तु इसमें से चारों उपशमकोक जगते ११ २४ २९ और २ अन्तमुद्भूत तथा आठ वर्ष कम कर देना चाहिये ।

( २ ) अवधिज्ञानी प्रायः बहुत ही कम होते हैं, इस लिए इतना अन्तर बन जाता है ।

( ३ ) उपशमकोति और प्रमत्त अप्रमत्तका फल अन्तमुद्भूतं होनेसे मनाः पर्ययज्ञानी प्रमत्त और अप्रमत्तका अन्तर और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुद्भूतं बन पाया है ।

( ४ ) आठ वर्ष और १२ अन्तमुद्भूतं कम एक पूर्वकोटि ।

( ५ ) प्रमत्तको अप्रमत्तसे और अप्रमत्तको प्रमत्तसे अन्तरित कराके नर अन्तर से जाना चाहिये ।

द्वयो क्षपकयो सामान्यवत् । परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तमुद्भूत । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयत्तेषूपक्षमक्षस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । तन्मैव क्षपकस्य सामान्यवत् । यथाख्याते अक्षपायवत् । संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । असंयतेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूतं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरापमाणि देशोनानि । शेषाणां त्रयाणां सामान्यवत् ।

दर्शनानुवादेन षड्मुद्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । सासाधनसम्बन्धित्वात् साम्यमिथ्यादृष्टधोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्स्योपमा संख्येयभागोऽन्तर्मुद्भूतश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने । असंयतसम्बन्धित्वात्

जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुद्भूत और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वश्रेणी है । दोनों क्षपकाका अन्तर ओषक समान है । परिहारशुद्धि संयतोर्म प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुद्भूत है । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतामें उपक्षमका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । तथा उसी सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकाका अन्तर ओषके समान है । यथाख्यातेमें अन्तर कृपाय रहित जीवोंक समान है । संयतासंयतका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । असंयतोर्म मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुद्भूत और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम वेदास सागर है । शेष तीन गुणस्थानोंका अन्तर ओषक समान है ।

द्वयनमार्गस्थाक अनुवादेसे षड्मुद्दर्शनबाडोंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर ओषके समान है । सासाधनसम्बन्धित्वात् और सम्बन्धिमिथ्यादीष्टका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषक समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कमरा । पत्स्यका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुद्भूत है तथा उत्कृष्ट

( १ )—जमे उप-जा वि १ वि २ ता ।

( २ ) भाठ बर्य और प्यारह अन्तर्मुद्भूत कम एक पूर्वश्रेणी अपूर्वश्रेणी उत्कृष्ट अन्तर है । अनिदृष्टिहरणका समयाधिक नो अन्तर्मुद्भूत और भाठ बर्य कम एक पूर्वश्रेणी उत्कृष्ट अन्तर है ।

( ३ ) प्रमत्त और अप्रमत्तके परस्पर अन्तरित करानेके यह अन्तर का बाटा है ।

( ४ ) यह अन्तर सातवें नरकमें प्राप्त होता है ।

प्रमत्तान्ताना नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघयेनान्तमुहृत । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोते । चतुर्णामुपमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्योक्तम् । एकजीवं प्रति जघयेनान्तमुहृत । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोते । चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम् । अधशुदर्शनियु मिध्यादृष्ट्यादिक्षीणकपायान्ताना सामान्योक्तमन्तरम् । अधधिदर्शनिनोऽधिज्ञानिवत् । केवलदर्शनिनः केवलज्ञानिवत् ।

लेस्यानुवादेन कृष्णनीलकपोतलेक्ष्येण मिध्यादृष्ट्यस्यतसम्यग्दृष्टोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघयेनान्तमुहृत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि । सासावनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिध्यादृष्टोर्नानाजीवापेक्षया

अन्तरं कुक्षं कम दो इबार सागर है । अस्यतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तस्यत तक प्रत्येक गुणस्वानका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहृत और उत्कृष्ट अन्तर कुक्ष कम दो इबार सागर है । चारों उपमकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर आपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहृत और उत्कृष्ट अन्तर कुक्ष कम दो इबार सागर है । चारों उपमकोंका अन्तर आपके समान है । अधशुदर्शनवासियों मिध्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकपायतक प्रत्येक गुणस्वानका सामान्योक्त अन्तर है । अधधिदर्शनवासियोंका अधधिज्ञानिवतके समान अन्तर है । तथा केवल दर्शनवासियोंका केवलज्ञानिवतके समान अन्तर है ।

क्षेत्र्या मार्याके अनुवादसे कृष्ण नील और कपोत क्षेत्र्यावासियोंमें मिध्यादृष्टि और अस्यतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहृत और उत्कृष्ट अन्तर कमः कुक्ष कम तेवीस सागर कुक्ष कम सत्रह सागर और कुक्ष कम सात सागर है । सासावनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिध्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर आपके समान है ।

( १ ) सामान्यम् । एक-मु

( २ ) अधशुदर्शनवासियोंमें सासावनके नी अन्तमुहृत और अधधिदर्शनियोंके अपेक्षा माग कम सम

मिध्यादृष्टिके बारह अन्तमुहृत कम दो इबार सागर उत्कृष्ट अन्तर है ।

( ३ ) अधशुदर्शनवासियोंमें अधिरतसम्यग्दृष्टिके १ अन्तमुहृत कम क्षेत्र्यास्यतके ४८ दिन और १९

अन्तमुहृत कम प्रमत्तस्यतके ८ वर्ष १ अन्तमुहृत कम और अप्रमत्तस्यतके ८ वर्ष और १ अन्तमुहृत कम दो इबार सागर उत्कृष्ट अन्तर है ।

( ४ ) अधशुदर्शनवासियोंमें चारों उपमकोंका कमसे २९ २० २५ और २६ अन्तमुहृत तथा आठ वष

कम दो इबार सागर उत्कृष्ट अन्तर है ।

सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्स्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सप्तदशसप्तसागरोपमाणि देशोनानि ।

तेजःपद्मलेख्ययोर्मिथ्यादृष्टस्यतसम्यग्दृष्टयोर्नाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नाजीवापेक्षया सामान्यवत् । ५  
एकजीव प्रति जघन्येन पत्स्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण द्वे सागरोपम अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । सयतासयतप्रमत्ताप्रमत्तसयताना नाना जीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ।

शुक्ललेख्येषु मिथ्यादृष्टस्यतसम्यग्दृष्टयोर्नाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त । उत्कर्षेण कत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । सासाद १०  
नसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टयोर्नाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्स्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण कत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । संयता सयतप्रमत्तसंयतयोस्तेजोलेख्यावत् । अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् ।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर दोनो गुणस्थानांमि क्रमराः पत्स्यका असंख्यातर्वा भाग और अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर तीनों क्षेत्राभांमि क्रमराः कुञ्ज कम ठेठीस सागर, कुञ्ज कम सत्रह १५  
सागर और कुञ्ज कम सात सागर है ।

पीत और पद्म लक्ष्याबासोमि मिथ्यादृष्टि और असयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर दोनो क्षेत्राभांमि क्रमराः साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर दोनो गुणस्थानांमि क्रमराः पत्स्यका असंख्यातर्वा भाग और अन्तर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट अन्तर दोनो लक्ष्याबासोमि क्रमराः साधिक दो सागर और साधिक अठारह सागर है । संयतसंयत प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । २०

शुक्ल लक्ष्याबासोमि मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुञ्ज कम इकतीस सागर है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमराः पत्स्यका असंख्यातर्वा भाग और अन्तर्मुहूर्त है तथा उत्कृष्ट अन्तर कुञ्ज कम इकतीस सागर है । संयतार्थयत और प्रमत्तसंयतका अन्तरकथन २५



एकजीव प्रति अधन्यमुत्कृष्ट चान्तमुहूर्तं । त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति अधन्यमुत्कृष्ट चान्तमुहूर्तं । उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । चतुर्णां क्षपकाणां संयोगबैधलिनामलेक्ष्यानां च सामान्यवत् ।

५ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्योगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ।

सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिव्यसयससम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति अधन्यनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण पूषकोटी देशोना । संयतासयत्प्रमत्ताप्रमत्तसयत्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति अधन्येनान्तमुहूर्तं । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत् १० स्थागरोपमाणि सात्तिरेकाणि । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव

पीतलेखाके समान है । तथा अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंका अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जपम्य और उत्कृष्ट अन्तर १ अन्तमुहूर्त है । तीन उपशमकोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अधन्य और उत्कृष्ट अन्तर २ अन्तमुहूर्त है । उपशान्तकषायका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओषके समान है तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । चारों १५ क्षपक, संयोगकेबली और क्षेयारक्षित जीवोंका अन्तर ओषके समान है ।

भव्यमार्गणाके अनुवासे भव्योंमें मिथ्यादृष्टिसे भेदक अपेक्षकेबली तक प्रत्येक गुणस्वानका अन्तर ओषके समान है । अभव्योंका नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवासे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा अधन्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुब्ज ५ कम एक पूषकोटी है । संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपेक्षा जपम्य अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर १० सांभिक देवीस सागर है ।

( १ ) - हूर्तः । अन्तरे ति छ त्स्वामी इतिवत् त्स्वा इव देवविरचिते । एता इव मुक्कअस्वा अजी- गिवत्त अस्वत् १॥ त्रयाना-मु

( २ ) उपशमभेदिते अन्तरित करके जपम्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त प्रथम करना चाहिये ।

( ३ ) अप्रमत्तसंयत अन्तरित करके वह अन्तर प्रथम करना चाहिये ।

( ४ ) आठ वर्ष और दो अन्तमुहूर्त कम एक पूर्वकोटि ।

( ५ ) संयतासंयतके आठ वर्ष और चौदह अन्तमुहूर्त कम दो पूर्वकोटि अधिक देवीस सागर । प्रमत्त संयतके एक अन्तमुहूर्त और एक पूर्वकोटि अधिक देवीस सागर । अथवा चाहे तीन अन्तमुहूर्त कम एक पूर्वकोटि

प्रति जघन्येनान्तमुहूत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । घोषाणा  
सामान्यवत् ।

शायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसयतसम्यग्दृष्टेनानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव  
प्रति जघन्येनान्तमुहूत । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । सयतासयतस्य नानाजीवापेक्षया  
नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुहूर्त । उत्कर्षेण पट्पट्टिसागरोपमाणि  
देशोनानि । प्रमत्ताप्रमत्तसयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येना  
न्तमुहूत । उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि ।

शायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसयतसम्यग्दृष्टेनानाजीवापेक्षया जघन्येनक समय ।  
उत्कर्षेण सप्त रात्रिदिनानि । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तमुहूत । सयतासयतस्य

चारों उपशमकाका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य  
अन्तर अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेवीस सागर है । तथा शेष गुणधर्माका  
अन्तर ओपके समान है । शायोपशमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपक्षा  
अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम  
एक पूर्वकोटी है । संयतासंयतका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य  
अन्तर अन्तमुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम उपासठ सागर है । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त  
संयतका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अन्तमुहूर्त है  
और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेवीस सागर है । शायोपशमिकसम्यग्दृष्टियोंमें असयत सम्यग्दृष्टिका  
नाना जीवोंकी अपक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर सात दिन रात है । एक जीवकी  
अपक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तमुहूर्त है । संयतासंयतका नाना जीवोंकी अपक्षा जघन्य

अधिक तेवीस सागर । अप्रमत्त धयतके साठे पाँच अन्तमुहूर्त कम एक पूर्वकोटि अधिक तेवीस सागर ।

( १ ) -द्विनानि । एक—सु

( २ ) चारों उपशमकाके साठ बर्ष और अन्ते २७ २५ २३ बार २१ अन्तमुहूर्त कम दो पूर्व कोटि  
अधिक तेवीस सागर ।

( ३ ) बार अन्तमुहूर्त कम एक पूर्व कोटि ।

( ४ ) तीन अन्तमुहूर्त कम उपासठ सागर ।

( ५ ) प्रमत्तके सात अन्तमुहूर्त कम एक पूर्व कोटि अधिक तेवीस सागर और अप्रमत्तके साठ अन्त-  
मुहूर्त कम एक पूर्वकोटि अधिक तेवीस सागर ।

नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय\* । उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिदिनानि । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तमुद्भूत । प्रमत्ताप्रमत्तसयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय\* । उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिदिनानि । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तमुद्भूत । त्रयाणामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति जघन्यमुत्कृष्ट चान्तमुद्भूत । उपशान्तकृपायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्भिष्याहृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण पत्योपमासस्येयभाग । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । मिष्याहृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् ।

सञ्ज्ञानुवादेन सञ्ज्ञिषु मिष्याहृष्टे सामान्यवत् । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्भिष्याहृष्टघोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पत्योपमासस्येयभागोऽन्तर्मुद्भूतम् । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्शाना नानाजीवा

अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर चौदह दिन रात्रि है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुद्भूत है । प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह दिन रात है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुद्भूत है । तीन उपशमणोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुद्भूत है । उपशान्तकृपायका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्भिष्याहृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्यका असंख्यतया भाग है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । मिष्याहृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

संज्ञा मार्गणाके अनुवावस संज्ञियोंमें मिष्याहृष्टिका अन्तर ओपके समान है । सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्भिष्याहृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पत्यका असंख्यतया भाग और अन्तर्मुद्भूत है तथा उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है । असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत तक प्रत्येक गुणस्थानका नाना जीवोंकी

( १ ) स्त्रीकि वरारम्भेतिथे अन्तर कर उपशम सम्बन्ध सूट आता है । यदि अन्तर्मुद्भूतशब्द पुनः उपशमश्रेणि पर पड़ता है तब वेदव्युत्पत्त्य पूर्वक वृष्टी बार उपशम सम्बन्ध प्राप्त करपा पड़ता है । यही उक्त है कि उपशम सम्बन्ध में एक जीवकी अपेक्षा उपशान्तकृपाय का अन्तर नहीं प्राप्त होता ।

पेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णा क्षपकाणां सामान्यवत् । असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । तदुभयव्यपदेशरहितानां सामान्यवत् ।

आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टे सामान्यवत् । सासादनसम्यग्दृष्टि ५  
सम्यग्मिथ्यादृष्टिघोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येन पल्पोपमासह्येय  
भागोऽन्तर्मुद्भूतश्च । उत्कर्षेणागुलासंख्येयभागोऽसंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य ।  
असयत्सम्यग्दृष्टिप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीव प्रति  
जघन्येनान्तमुद्भूत । उत्कर्षेणागुलासंख्येयभा'गोऽसंख्येया संख्येया'उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य ।  
चतुर्णामुपशमकाना नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीव प्रति जघन्येनातमुद्भूत । १०  
उत्कर्षेणागुलासंख्येय'भागोऽसंख्येयासंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य । चतुर्णा क्षपकाणा  
सयोगैवल्लिनां च सामान्यवत् ।

अपक्षा अन्तर नहीं है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुद्भूत और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर  
पृथक्त्व है । चारों अपक्षकोंका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपक्षा  
जघन्य अन्तर अस्तमुद्भूत और उत्कृष्ट अन्तर सौ सागर पृथक्त्व है । चारों अपक्षोंका अन्तर ओपके १५  
समान है । असंज्ञियोंका नाना जीव और एक जीवकी अपक्षा अन्तर नहीं है । संज्ञी और अमज्ञी  
न्यबहारसे रहित जीवोंका अन्तर ओपके समान है ।

आहार मागणाक अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिका अन्तर ओपके समान है । सासा  
दनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टिश्च नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी  
अपक्षा जघन्य अन्तर जघन्य पल्पोपमा अस्तमुद्भूत है तथा उत्कृष्ट अन्तर २०  
अंगुलका अस्तमुद्भूत भाग है जिसका प्रमाण अस्तमुद्भूतात्मक्यात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ।  
असयत्सम्यग्दृष्टिसे लेकर अमत्तसंयत तक प्रत्येक गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपक्षा अन्तर नहीं  
है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुद्भूत और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलका अस्तमुद्भूत भाग  
है जिसका प्रमाण अस्तमुद्भूतात्मक्यात् उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है । चार उपक्षकोंका नाना  
जीवोंकी अपक्षा अन्तर ओपके समान है । एक जीवकी अपक्षा जघन्य अन्तर अस्तमुद्भूत और ५  
उत्कृष्ट अन्तर अंगुलका अस्तमुद्भूत भाग है जिसका प्रमाण अस्तमुद्भूतात्मक्यात् उत्सर्पिणी और  
अवसर्पिणी है । चारों अपक्ष और सयोगकषलियोंका अन्तर ओपके समान है ।

अनाहारकेपु मिथ्यादृष्टिर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । सासादनसम्यग्दृष्टिर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण पत्न्योपमासख्येयभाग । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । असंयतसम्यग्दृष्टिर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । सयोगकेवलिन नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । अयोगकेवलिन नानाजीवापेक्षया जघन्येनैक समय । उत्कर्षेण पद्ममासा । एकजीव प्रति नास्त्यन्तरम् । अन्तरमवगतम् ।

भावो विभाव्यते । स द्विविध सामापेन विशयण च । सामापेन तावत् मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भाव । सासादनसम्यग्दृष्टिरिति पारिणामिको भाव । सम्यग्दृष्टिरिति क्षायोपशामिको भाव । असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशामिको वा क्षायिको

अनाहारकोमें मिथ्यादृष्टिका माना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सासादनसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पत्न्यका असंख्यातवा भाग है । एक जीवका अपेक्षा अन्तर नहीं है । असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर मासपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । सयोगकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है । अयोगकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है ।

इस प्रकार अन्तरका विचार किया ।

अब साक्षर विचार करते हैं । वह दो प्रकारका है—सामान्य और विशेष । सामान्यकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह औदयिकभाव है । सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक भाव है । सम्यग्दृष्टि यह क्षायोपशामिक भाव है । असंयतसम्यग्दृष्टि यह औपशामिक, क्षायिक वा क्षायोपशामिक

( १ ) सासादनसम्यक्त्व यह वर्तमानसमय के उदय उपरान्त ही और अज्ञोपसम्ये नहीं होता इस विषये निष्कारण होनेसे पारिणामिक भाव है ।

( २ ) सम्यग्दृष्टिर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय होने पर अज्ञानात्मकानात्मक मिला हुआ हीन परिच्छेद होता है । उपरान्त प्रज्ञाशक्ति सम्बन्धित अर्थ है । सम्यग्दृष्टिर्नानाजीवोपेक्षया जघन्येनैक समय होनेसे अज्ञानात्मक हीन परिच्छेद ही इस विषये सम्बन्धित अर्थ है ।

वा क्षायोपशमिको वा भाव । असंयत पुनरोदयिकेन भावेन । संयतासंयत प्रमत्तसंयतोऽ-  
प्रमत्तसंयत इति क्षायोपशमिको भाव । चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव । चतुषु  
क्षपकेषु संयोगयोगकेवलिनोश्च क्षायिको भाव ।

विशेषेण गत्यनुवादेन नरकगतौ प्रथमायां पृथिव्यां नारकाणां मिथ्यादृष्टिषाश्च  
संयतसंयतदृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् । द्वितीयादिष्वपि संयता मिथ्यादृष्टिसासादनसंयत  
दृष्टिसंयतमिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत् । असंयतसंयतदृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको  
वा भाव । असंयत पुनरोदयिकेन भावेन । तिरंगगतौ तिरस्कां मिथ्यादृष्ट्यादिसंयता  
संयतान्तानां सामान्यवत् । मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्योगकेवल्यन्तानां  
सामान्यवत् । देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसंयतदृष्ट्यन्तानां सामान्यवत् ।

इन्द्रियानुवादेन एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणामौदयिको भाव । पञ्चेन्द्रियेषु मिथ्या- १०  
दृष्ट्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् ।

कायानुवादेन स्थावरकायिकानामौदयिको भाव । त्रसकायिकानां सामान्यमेव ।

भाव है । किन्तु इसमें असंयतपना औदयिक भावकी अपेक्षा है । संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और  
अप्रमत्तसंयत यह क्षायोपशमिक भाव है । चारों उपशमकोंके औपशमिक भाव हैं । चारों क्षपक,  
संयोगकेवली और असंयोगकेवलीके क्षायिक भाव हैं ।

विशेषकी अपेक्षा गति मार्गणाके अनुवादसे नरक गतिमें पहली पृथिवीमें नारकियोंके  
मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसंयतदृष्टि तक औपक समान भाव है । दूसरी से लेकर सातवीं  
पृथिवी तक मिथ्यादृष्टि, सासादनसंयतदृष्टि और संयतमिथ्यादृष्टि नारकियोंके औपके समान भाव  
है । असंयतसंयतदृष्टिके औपशमिक या क्षायोपशमिक भाव है । किन्तु इसमें असंयतपना आदयिक  
भावकी अपेक्षा है । तिरंगगतिमें तिरस्काके मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत तक औपक समान भाव २०  
है । मनुष्यगतिमें मनुष्योंके मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयोगकेवली तक औपक समान भाव है । देवगतिमें  
देवोंके मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयत संयतदृष्टि तक औपके समान भाव है ।

इन्द्रिय मार्गणाके अनुवादसे एकन्द्रियाँके औदयिक भाव है । पञ्चेन्द्रियोंमें मिथ्यादृष्टिसे  
लेकर असंयोगकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानका औपके समान भाव है ।

कायमार्गणाके अनुवादसे स्थावरकायिकोंके औदयिक भाव है । त्रसकायिकोंके औपके ५  
समान भाव है ।

( १ ) भाव । उक्त व-मिथ्य तनु चोद्भवो पिरिए पुन परिषमिषी भावो । मिथ्य तनुवसमिषा

अतिरदसम्ममि तिज्जव ॥ १ ॥ अर्थ—भु ।

योगानुवादेन कायवाचनसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानां च सामान्यमेव ।

वेदानुवादेन स्त्रीपुत्रपुंसकवेदानामवेदानां च सामान्यवत् ।

कषायानुवादेन क्रोधमानमायालोभकषयायाणामकषयायाणां च सामान्यवत् ।  
 ५ ज्ञानानुवादेन मत्स्यज्ञानिभूताज्ञानिविभङ्गज्ञानिना मत्सिभ्रूतावधिभन पर्ययकेवल-  
 ज्ञानिनां च सामान्यवत् ।

संयमानुवादेन सर्वेषां संयतानां संयतासंयतानामसंयतानां च सामान्यवत् ।

दर्शनानुवादेन अक्षुर्वर्शनाचक्षुर्वर्शनावधिदर्शनकेवलवर्शनिनां सामान्यवत् ।

लेक्ष्यानुवादेन पक्षलेक्ष्यानामलेक्ष्यानां च सामान्यवत् ।

१० मध्यानुवादेन मध्यानां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । अमध्यानां  
 पारिणामिको भावः ।

योगमार्गजाके अनुवादासे काययोगी, वचनयोगी और मनोयोगी जीवोंके मिथ्यादृष्टिसे  
 लेकर सयोगकेबली तक और अयोगकेबलीके ओपके समान भाव है ।

१५ वेद मार्गजाके अनुवादासे स्त्रीबेदी, पुरुषबेदी, नपुंसकबेदी और बेदरहित जीवोंके ओपके  
 समान भाव है ।

कषाय मार्गजाके अनुवादासे क्रोध कषायवासे, मान कषायवासे, मायाकषायवासे लोभ  
 कषायवासे और कषाय रहित जीवोंके ओपके समान भाव है ।

ज्ञान मार्गजाके अनुवादासे मत्स्यज्ञानी, भ्रूताज्ञानी, विभगज्ञानी, मत्सिज्ञानी भ्रूतज्ञानी,  
 अक्षयिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी और केषलज्ञानी जीवोंके ओपके समान भाव है ।

२० संयम मार्गजाके अनुवादासे सब संयतोंके, संयतासंयतोंके और असंयतोंके ओपके  
 समान भाव है ।

दर्शन मार्गजाके अनुवादासे अक्षुर्वर्शनवासे, अक्षुर्वर्शनवासे, अक्षयिदर्शनवासे और  
 कषलवर्शनवासे जीवोंके ओपके समान भाव है ।

लेक्ष्यामार्गजाके अनुवादासे अक्षुर्वर्शनावासे और लेक्ष्या रहित जीवोंके ओपके समान  
 भाव है ।

२५ मध्य मार्गजाके अनुवादासे मध्योंके मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगकेबली तक ओपके समाग  
 भाव है । अमध्योंके पारिणामिक भाव है ।

सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टे क्षायिको भाव ।  
 क्षायिक सम्यक्त्वम् । असंयतत्वमौदयिकेन भावेन । संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना  
 क्षायोपशमिको भाव । क्षायिक सम्यक्त्वम् । चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव ।  
 क्षायिक सम्यक्त्वम् । शेषाणां सामान्यवत् । क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु  
 असंयतसम्यग्दृष्टे क्षायोपशमिको भाव । क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयतः  
 पुनरौदयिकेन भावेन । संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भाव ।  
 क्षायोपशमिक सम्यक्त्वम् । औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टरीपशमिको भाव ।  
 औपशमिकं सम्यक्त्वम् । असंयत पुनरौदयिकेन भावेन । संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयताना  
 क्षायोपशमिको भाव । औपशमिक सम्यक्त्वम् । चतुर्णामुपशमकानामौपशमिको भाव ।  
 औपशमिक सम्यक्त्वम् । सासादनसम्यग्दृष्टे पारिणामिको भाव । सम्यग्दृष्ट्यादृष्टे  
 क्षायोपशमिको भाव । मिथ्यादृष्टेरौदयिको भाव ।

संज्ञानुवादेन संज्ञिनां सामान्यवत् । असंज्ञिनामौदयिको भाव । तदुभयव्यपदेश  
 रहिताना सामान्यवत् ।

सम्यक्त्व मार्गणाके अनुवात्से क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिके क्षायिक  
 भाव है । क्षायिक सम्यक्त्व है । किन्तु असंयतपना औदयिक भाव है । संयतासंयत और  
 अप्रमत्तसंयतके क्षायोपशमिक भाव है । क्षायिक सम्यक्त्व है । चारों उपशमकों  
 के औपशमिक भाव है । क्षायिक सम्यक्त्व है । शेष गुणस्थानोंका ओपके समान भाव है । क्षायो-  
 पशमिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिके क्षायोपशमिक भाव है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है ।  
 किन्तु असंयतपना औदयिक भाव है । संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके क्षायोपश-  
 मिक भाव है । क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है । औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टिके  
 औपशमिक भाव है । औपशमिक सम्यक्त्व है । किन्तु असंयतपना औदयिक  
 भाव है । संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके क्षायोपशमिक भाव है । औपशमिक  
 सम्यक्त्व है । चारों उपशमकोंके औपशमिक भाव है । औपशमिक सम्यक्त्व है । सासादनसम्य-  
 दृष्टिके पारिणामिक भाव है । सम्यग्दृष्ट्यादृष्टिके क्षायोपशमिक भाव है । मिथ्यादृष्टिके  
 औदयिक भाव है ।

मंश मार्गणाके अनुवात्से संज्ञियोंके ओपके समान भाव है । असंज्ञियोंके औदयिक  
 भाव है । तथा मंश और असंज्ञी व्यवहारसे रहित जीवों के ओपके समान भाव है ।

किन्तु अन्तर्गते अन्तर्भाव भाव क्या है इच्छा अपेक्षा भावका निर्देश किया है । यद्यपि दसके क्रम मंग हो जाता  
 है तथापि विशेष जानकारोंके विवेक ऐसा किया है ।



आहारानुवादेन आहारकाणामनाहारकाणां च सामान्यवत् । भाव परिसमाप्तः ।  
अल्पबहुत्वमुपवर्ष्यते । तत् द्विविध सामान्येन विशेषेण च । सामान्येन तावत्  
सर्वत स्तोका त्रय उपशमका स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्या । उपशान्तक  
पायास्तावन्त एव । त्रय क्षपका संख्येयगुणा । क्षीणकपायवीतरागच्छास्यस्तावन्त  
एव । सयोगकेवलिनोऽयोगकेवलिनश्च प्रवेशेन तुल्यसंख्या । सयोगकेवलिन स्वकालेन  
समुदिता संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । संय  
तासयता असंख्येयगुणा । सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । सम्यग्मिध्याहृष्टयः सं  
ख्येयगुणा । असंमत्सम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा । मिध्याहृष्टयोऽनन्तगुणा ।

विशेषण गत्यनुवादेन नरकगती सर्वास्तु पृथिवीपु नारकेषु सर्वत स्तोका सासा  
दनसम्यग्दृष्टयः । सम्यग्मिध्याहृष्टय संख्येयगुणा । असयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणा ।  
मिध्याहृष्टयोऽसंख्येयगुणा । तिर्यग्गती तिरश्चा सर्वतः स्तोका संमत्तासयता । इतरेया

आहार मार्गणके अनुवावसे आहारक और अनाहारक बीजोंके ओषके समान भाव हैं ।

इस प्रकार भाव समाप्त हुआ ।

अब अल्पबहुत्वका कथन करते हैं । यह दो प्रकारका है—सामान्य और विशेष । सामा  
न्यकी अपेक्षा तीनों उपशमक सबसे बड़े हैं जो अपने अपने मुख्यस्थानके काष्ठोंमें प्रवेशकी अपेक्षा  
१५ समान संख्यावाले हैं । उपशान्तकपाय बीज छतने ही हैं । इनसे तीन गुणस्थानके क्षपक संख्यात  
गुण्ये हैं । क्षीणकपायवीतराग छद्मस्य छतने ही हैं । सयोगकेवली और अयोगकेवली प्रवराकी  
अपेक्षा समान संख्यावाले हैं । इनसे अपने काष्ठमें समुचित हुए सयोगकेवली संख्यात गुण्ये हैं ।  
इनसे अप्रमत्तसंयत संख्यात गुण्ये हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुण्ये हैं । इनसे संयतासंयत  
असंख्यात गुण्ये हैं । इनसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे सम्यग्मिध्याहृष्टि संख्यात  
गुण्ये हैं । इनसे असयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे मिध्याहृष्टि अनन्तगुण्ये हैं ।

विराणकी अपेक्षा गति मार्गणके अनुवावसे नरकादिमें सब पृथिवियोंमें नारकियोंमें  
सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे बड़े हैं । इनसे सम्यग्मिध्याहृष्टि संख्यातगुण्ये हैं । इनसे असंयतसम्य  
ग्दृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं । इनसे मिध्याहृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं ।

तियचगतिमें तियचोंमें संयतासयत सबसे बड़े हैं । शेष मुख्यस्थानवासे तिर्यकोंका अल्प

( १ )—३पदा संख्येय-मु । ( २ )—४पदा अतंजने- मु ।

( ३ ) कम से कम एक और अधिक से अधिक बीजण ।

( ४ ) कमसे कम एक और अधिकसे अधिक एक ही आठ ।



कपायानुवादेन त्रेषमानमायाकपायाणां पुंवेदवत् । अयं तु विशेष मिथ्या  
दृष्टयोजनतगुणा । लोभकपायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या सम्पत् । क्षपका संख्येय  
गुणा । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धुपशमकसयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपका संख्येय  
गुणा । शेषाणां सामान्यवत् ।

५ ज्ञानानुवादेन मत्पञ्चानिभ्रुताज्ञानिपु सर्वतः स्तोका सासादनसम्पद्दृष्टय ।  
मिथ्यादृष्टयोजनतगुणा । विभगज्ञानिपु सर्वतः स्तोका सासादनसम्पद्दृष्टय ।  
मिथ्यादृष्टयोजनसम्पद्गुणा । मतिभ्रुतावधिज्ञानिपु सवतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार  
क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसमता संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । संयता  
संयता असंयतसंयतगुणा । असंयतसम्पद्दृष्टय असंख्येयगुणा । मनपर्ययज्ञानिपु सर्वतः  
१० स्तोकाश्चत्वार उपशमका । चत्वारः क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता संख्येयगुणा ।  
प्रमत्तसमता संख्येयगुणा । केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिन्य सयोगकेवलिन संख्येयगुणा ।  
संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या ।

समान है । नपु सकषेत्री और बेवर्हित जीवोंका अल्पबहुत्व शेषके समान है ।

१५ कपाय मार्गणाके अनुवाद्से लोभकपायवासे, मानकपायवासे और मायाकपायवासे  
जीवोंका अल्पबहुत्व पुम्पक्षेत्रियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अक्षय सम्पद्  
द्वियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तरगुणे हैं । लोभ कपायवालोंमें दोनों उपशमकों की संख्या समान है ।  
इनसे क्षपक संख्यातगुणे हैं । इनसे सूक्ष्मसाम्पराय उपशमक विशेष अधिक है । इनसे सूक्ष्म  
साम्पराय क्षपक संख्यातगुणे हैं । आगे शेष शुद्धस्थानवालोंका अल्पबहुत्व शेषके समान है ।

ज्ञान मार्गणाके अनुवाद्से मत्पञ्चानि और भ्रुताज्ञानियोंमें सासादनसम्पद्दृष्टि सबसे बड़ी  
२० हैं । मिथ्यादृष्टि अनन्तरगुण हैं । विभगज्ञानियोंमें सासादनसम्पद्दृष्टि सबसे बड़ी हैं ।  
मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणे हैं । मतिज्ञानी भ्रुतज्ञानी और अधिज्ञानियोंमें चारों उप-  
शमक सबसे बड़ी हैं । इनसे चारों क्षपक संख्यातगुणे हैं । इनसे अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणे  
हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं । इनसे संयतासंयत असंख्यातगुणे हैं । इनसे अनयत-  
सम्पद्दृष्टि असंख्यातगुणे हैं । मनाप्ययज्ञानियोंमें चारों उपशमक सबसे बड़ी हैं । इनसे चारों  
२५ क्षपक संख्यातगुणे हैं । इनसे अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं । इनमें प्रमत्तसंयत संख्यातगुणे हैं ।  
क्षपकज्ञानियोंमें अयोगकेवलियास सयोगकेवली संख्यातगुणे हैं ।

संयत मार्गणाके अनुवाद्से सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसयतोंमें दोनों उपशमक

( १ ) दृष्टयोऽतस्तेनाभाः । अति-मु० ।

( २ )—यथा संख्ये-मु । ( १ )—अक्षय-मु ।

तत् सख्ययगुणौ क्षपकौ । अप्रमत्ता सख्येयगुणा । प्रमत्ता सख्येयगुणा । परिहारशुद्धिसयतेषु अप्रमत्तेभ्यः प्रमत्ता सख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषु उपशमकेभ्यः क्षपका सख्ययगुणा । यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतेषु उपशान्तकृपायेभ्यः क्षीणकृपाया सख्येयगुणा । अयोगकेवलिनस्तावन्त एव । सयोगकेवलिनः संक्षेपगुणा । संयतासंयतानास्त्यल्पबहुत्वम् । असयतेषु सर्वे स्तोका साप्तावनसम्प्रादृष्टयः । सम्प्रादृष्टिमिध्यादृष्टयः सख्येयगुणा । असंयतसम्प्रादृष्टयोऽसंख्येयगुणा । मिध्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ।

दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिना मनोयोगिवत् । अचक्षुर्दर्शनिना काययोगिवत् । अवधिदर्शनिनामवधिज्ञानिवत् । केवलदर्शनिना भेदलज्ञानिवत् ।

लेख्याननुवादेन कृष्णनीलकपोतलेख्यानां असंयतवत् । तेजःपक्षलेख्यानां सवत् स्तोका अप्रमत्ता । प्रमत्ता सख्येयगुणा । एयमितरेषां पञ्चेन्द्रियवत् । शुक्ललेख्यानां सर्वतः स्तोका उपशमका । क्षपका संख्ययगुणा । सयोगभेदलिना संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता सख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता सख्येयगुणा । संयतासंयताः असंख्येय

समान संख्यावाले हैं । इनसे दोनो क्षपक संख्यातगुणो हैं । इनसे अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणो हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणो हैं । परिहारशुद्धि संयतोमें अप्रमत्तसंयतोसे प्राप्तासंयत संख्यातगुणो हैं । सूक्ष्मसाम्परायिक शुद्धिसंयतोमें उपशमकोसे क्षपक संख्यातगुणो हैं । यथाख्यात विहारशुद्धिसंयतोमें उपशान्त कृपायवालोसे क्षीणकृपाय की संख्यातगुणो हैं । अयोगकेवली सवत हैं । सयोगकेवली संख्यातगुणो हैं । संयतासंयतोका अल्पबहुत्व नहीं है । असंयतोमें साप्तावनसम्प्रादृष्टि सबसे षोडशे हैं । इनसे सम्प्रादृष्टिमिध्यादृष्टि संख्यातगुणो हैं । इनसे असंयतसम्प्रादृष्टि असंख्यगुणो हैं । इनसे मिध्यादृष्टि अनन्तगुणो हैं ।

दर्शनमार्गोको अनुवादेसे चक्षुर्दर्शनपात्रोका अल्पबहुत्व मनोयोगियोके समान है । अचक्षुर्दर्शनपात्रोका अल्पबहुत्व काययोगियोके समान है । अवधिदर्शनिनाको अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोके समान है । और केवलदर्शनपात्रोका अल्पबहुत्व भेदलज्ञानियोके समान है ।

तेजःपक्षको अनुवादेसे कृष्ण, नील और कपोत लेख्यावालोका अल्पबहुत्व असंयतो समान है । पीत और पद्म लेख्यावालोमें अप्रमत्तसंयत सबसे षोडशे हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणो हैं । इसी प्रकार श्रेय शुभस्थानवालोका अल्पबहुत्व पञ्चेन्द्रियोके समान है । शुक्ल लेख्यावालो उपशमक सवत षोडशे हैं । इनसे क्षपक संख्यातगुणो हैं । इनसे सयोगकेवली संख्यातगुणो हैं । अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणो हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणो हैं । इनसे संयतासंयत असंख्यातगु

कपायानुवादेन श्रेष्ठमानमायानपायाणां पुवेदवत् । अयं तु विशेष मिथ्या  
दृष्टयोऽनन्तगुणा । शोभकपायाणां द्वयोस्त्वक्षमकमोस्तुल्या सख्या । क्षपका संख्येय  
गुणा । सूक्ष्मसाम्परायशुष्युपक्षमकसंयता विशेषाधिका । सूक्ष्मसाम्परायक्षपका संख्येय  
गुणा । शषाणां सामान्यवत् ।

५. ज्ञानानुवादेन मत्प्रज्ञानिश्रुताज्ञानिषु सवत् स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः ।  
मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा । विभगज्ञानिषु सवत् स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः ।  
मिथ्यादृष्टयाऽसंख्येयगुणः । मतिश्रुतावधिज्ञानिषु सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाश्चत्वार  
क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । प्रमत्तसंयता संख्येयगुणाः । संयता  
संयता असंख्येयगुणा । असंयतसम्यग्दृष्टयः असंख्येयगुणा । मनःपर्ययज्ञानिषु सर्वतः  
१०. स्तोकाश्चत्वार उपशमका । चत्वारः क्षपका संख्येयगुणा । अप्रमत्तसंयता संख्येय  
प्रमत्तसंयता संख्येयगुणा । केवलज्ञानिषु अयोगकेवलिन्यसंयोगकेवलिनः  
संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुप-

समान है । नपु सकषेत्री और बेदरहित जीवोंका अल्पबहुत्व

कपाय माग्याके अनुवादेसे श्रेष्ठकपायद

१५. जीवोंका अल्पबहुत्व पुरुषवैशेषिके समान है । किन्तु इत  
द्विषोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण्ये हैं । शोभ कपायवाच्योंमें  
इनसे क्षपक संख्यातगुण्ये हैं । इनसे सूक्ष्मसाम्पराय उपरः  
साम्पराय क्षपक संख्यातगुण्ये हैं । आगे शेष गुणस्थानवाच्योंका अ

ज्ञान मार्गणाके अनुवादेसे मत्प्रज्ञानी और श्रुताज्ञानियोंमें

२. हैं । मिथ्यादृष्टि अनन्तगुण्ये हैं । विभगज्ञानियोंमें सासादनस  
मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं । मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी और अव  
क्षमक सबसे बड़े हैं । इनसे चारों क्षपक संख्यातगुण्ये हैं । इनसे आ  
हैं । इनसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुण्ये हैं । इनसे संयतासंयत असंख्यातगुण्ये  
सम्यग्दृष्टि असंख्यातगुण्ये हैं । मनःपर्ययज्ञानियोंमें चारों उपशमक सबसे श्रे  
२५. क्षपक संख्यातगुण्ये हैं । इनसे अप्रमत्तसंयत संख्यातगुण्ये हैं । इनसे प्रमत्तसंयत  
कवलज्ञानियोंमें अयोगकेवलियोंसे संयोगकेवली संख्यातगुण्ये हैं ।

संयम मार्गणाके अनुवादेसे सामायिक और छेदोपस्थापना शुद्धिसंयतोंमें ।

( १ ) दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । छति-मु ।

( २ )—बता संख्येय-मु० । ( ३ )—इपर्यय-मु ।

आहारानुवादेन आहारकाणा काययोगिवत् । अनाहारकाणा सर्वत स्तोका  
सयोगकेवलिन । अयोगकेवलिन सस्येयगुणा । सासादनसम्यग्दृष्टयोऽस्येयगुणा ।  
असयतसम्यग्दृष्टयोऽस्येयगुणा । मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणा ।

एष मिथ्यादृष्टधावीनां गत्यादिषु मार्गणा कृता सामान्येन । तत्र सूक्ष्मभेद  
आगमाविरोधेनानुसर्तव्यः ।

एव सम्यग्दर्शनम्यादावुद्दिष्टस्य लक्षणोत्पत्तिस्वामिविषयन्यासाधिगमोपाया  
निर्दिष्टा । तत्सम्बन्धेन च जीवादीना सञ्ज्ञापरिभाषाधि निर्दिष्टम् । तदनन्तर सम्यग्  
ज्ञानं विचारार्हमिस्थाह—

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेष्वहानि ज्ञानम् ॥ ९ ॥

ज्ञानशब्द प्रत्येक परिसमाप्यते । मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान  
केवलज्ञानमिति । इन्द्रियमनसा च यथास्वमर्षो मन्यते अनया मनुते मननमात्र वा मति ।

आहार मार्गणाक अनुवादेन आहारकोका अल्पबहुत्व काययोगियोंके समान है । अनाहा  
रकोमें सयोगकेबली सबसे थोड़े हैं । इनसे अयोगकेबली संख्यातगुणों हैं । इनसे सासादनसम्यग्दृष्टि  
असंख्यातगुणों हैं । इनसे असयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणों हैं । इनसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणों हैं ।

अल्पबहुत्वका कथन समाप्त हुआ ।

इस प्रकार गत्यादि मार्गणाओंमें मिथ्यादृष्टि आदिका सामान्यसे विचार किया । इसमें  
उत्तरोत्तर सूक्ष्म भेद आगमानुसार जान लेना चाहिये ।

इस प्रकार सर्व प्रथम कहे गये सम्यग्दर्शनके लक्षण, उत्पत्ति, स्वामी, विषय, म्यास और  
अधिगमका उपाय कहा । और उसके सम्बन्धसे जीवादिकाकी संज्ञा और परिमाण आदि भी कहा ।  
अब इसके बाद सम्यग्ज्ञान विचार योग्य है इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं ॥ ९ ॥

सूत्रमें ज्ञान शब्द मति आदि प्रत्येक शब्दके साथ जोड़ लेना चाहिये । यथा—मतिज्ञान, श्रुत  
ज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

मतिको व्युत्पत्तिउत्पन्न अर्थ है—इन्द्रियमनसा च यथास्वमर्षो मन्यते अनया मनुते  
मननमात्रं वा मति—इन्द्रिय और मनके द्वारा यथायोग्य पदार्थ जिसके जरिये मनन किये जाते हैं  
जा मनन करता है या मननमात्र मति कहलाता है ।

तदावरण'कमक्षयोपशमे सति निरूप्यमाण भ्रूयते अनेन<sup>३</sup> तत् दृणोति श्रवणमात्र वा श्रुतम् । अनयो प्रत्यासन्ननिर्देश इत्त कायकारणभावात् । तथा च वक्ष्यते "श्रुत मतिपूर्वम्" इति । <sup>३</sup>अवाग्धानादवच्छिन्नविषयाद्वा अवधि । परकीयमनोगतोर्भ्यो मन हस्युच्यते । साहचर्यात्तस्य पययण परिगमन मन पर्यय । मतिज्ञानप्रसङ्ग इति चेत् न

५ अपेक्षामात्रत्वात् । क्षयोपशमप्रसङ्गिमात्रविजृम्भित हि तत्केवल स्वपरमनोभिव्यर्पदिश्यते । यथा अन्ने चन्द्रमस पश्यति । घ्राणनाभ्यां तरेण च तपसा यदर्थमर्थिनो मार्ग केवन्ते सर्वत्र तत्केवलम् । असहायमिति वा ।

श्रुतका न्युत्पत्तिरूप्य अर्थ इ—तदावरणकर्मक्षयोपशमे सति निरूप्यमाण भ्रूयते अनन श्रुणाति श्रवणमात्रं वा श्रुतम्=श्रुतज्ञानावरण कमका क्षयोपशम होने पर निरूप्यमाण पदार्थ जिसका

१० द्वारा सुना जाता है, जो सुनता है वा सुननामात्र श्रुत कहलाता है ।

मति और श्रुत इन दोनों ज्ञानोंका समापमें निर्देश किया है क्योंकि इनमें काय कारणभाव पामा जाता है । ऐसा कि ध्याय कहेंगे श्रुतं मतिपूर्वम् ।

अवधिका न्युत्पत्ति रूप्य अर्थ=अपिच्छर नीच क विषयको जाननवाला होनेस या परिमित विषयवाला होनेस अपधि कहलाता है ।

१५ मनः पययका न्युत्पत्तिरूप्य अर्थ=वृत्तरफ मनोगत अर्थको मन कहते हैं । सम्बन्धसं उसका पययण अर्थोंम् परिगमन करनवाला ज्ञान मन पयय कहलाता है ।

शंका मन पयय ज्ञानका इस प्रकार लक्षण करन पर उसे मतिज्ञानका प्रसंग मान जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि यन्त्रपययज्ञानमें मनकी अपेक्षामात्र है । यद्यपि यह कबल ज्ञया पयय शक्तिसे अपना काम करता है तो भी कबल स्व और परक मनकी अपेक्षा उसका व्यवहार किया जाता है । यथा आकारामे चन्द्रमाका इन्द्रो यद्वा आकाराका अपेक्षामात्र होनेस एसा व्यवहार किया गया है ।

कवलका न्युत्पत्तिरूप्य अर्थ=अधीजन जिमक सिधे वाद्य आर आम्पतर तपक द्वारा माग का कवन अथान सबन करते हैं वह कवलज्ञान कहलाता है । अथवा कवल शब्द असहायवार्थी है, इत्यस्य अमदाय ज्ञानका कवलज्ञान कहते हैं ।

( १ )—ब्रह्मसूत्र-मु । ( २ ) अननेत तत्र मु । ( ३ ) 'अवाग्धानादवधि' । अथवा अने न'अवधि'वाक्ये अवाग् नाम तं दपि परिच्छिन्नमिति भावितः । अत्रात्रेण ज्ञान भावितव्यम् । अथवा अविषयवादा भाविताना गद वर्तमानमवधिज्ञानम् ।—अथ प्र० अ ५० ८६५ आरा ।

तदन्ते प्राप्यते इति अन्ते क्रियते । तस्य प्रत्यासन्नत्वात्तस्मीपे मन पर्ययग्रहणम् ।  
 कुत प्रत्यासत्ति । समयकाधिकरणत्वात् । तस्य अवधिर्विक्रष्ट । कुत 'विक्रष्टात्'  
 रत्वात् । प्रत्यक्षात्परोक्षं पूर्वमुक्तं सुगमत्वात् । श्रुतपरिचितानुभूता<sup>१</sup> हि मतिश्रुतपद्धति  
 सर्वेण प्राणिगणेन प्राय प्राप्यते-त्यत । एनमेतत्पञ्चविधं ज्ञानम् । तद्वैवादायश्च पुरस्ताद्वक्ष्यन्ते  
 "प्रमाणनयरधिगम इत्युक्तम् । प्रमाणं च केपाञ्चित् ज्ञानमभिमतम् । केपा ५

केवलज्ञानकी प्राप्ति अन्तमें होती है इसलिय सूत्रमें उसका पाठ सबके अन्तमें रखा है ।  
 उसके समापका होनेसे उसके समीपमें मनःपर्ययका ग्रहण किया है ।

शुका—मनाःपर्यय केवलज्ञानके नजदीकका क्या है ।

समाधान—क्यों कि इन दोनोंका संयम ही एक आधार है अतएव मनःपर्यय केवलज्ञानके  
 नजदीकका है ।

अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानसे दूर है इसलिय उसका मनःपर्ययज्ञानके पहले पाठ रखा है ।

शुका—मनःपर्ययज्ञानसे अवधिज्ञानको दूरका क्यों कहा ।

समाधान—क्यों कि अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञानसे अत्यन्त दूर है ।

प्रत्यक्षसे परोक्षका इतक कवन किया, क्यों कि वह सुगम है । वू कि मति-श्रुतपद्धति श्रुत  
 परिचित और अनुभूत होनेसे प्राय सब प्राणियोंके द्वारा प्राप्त करने योग्य है अतः यह सुगम है । १५

इस प्रकार यह पाँच प्रकारका ज्ञान है । इसका भेद भादि आग कहेंगे ।

विरापाय—रुमानुसार इस सूत्रमें सन्म्यज्ञानके पाँच भेद बतलाये गये हैं । यद्यपि सूत्रमें  
 'ज्ञानम्' ऐसा निर्वाचन किया है पर सन्म्यक्त्वका प्रकरण होनेसे य पाँचों सन्म्यज्ञानके भेद हैं, ऐसा यहाँ  
 जानना चाहिये । यद्यपि आत्मा केवलज्ञान स्वभाव है । मूख ज्ञानमें कोई भेद नहीं है पर आब  
 रणके भेदसे वह पाँच भागोंमें विभक्त हो जाता है । २०

इस सूत्रका व्याख्या करते हुए सर्वाथसिद्धिमें मुख्यतया तीन विरापायार्था पर प्रकल्प डाला  
 गया है—

( १ ) मति भादि राष्ट्रोंका ध्युत्वशिष्य अथ ।

( २ ) मति और श्रुत को समीपमें रखनेके कारणका निर्वेश ।

( ३ ) मतिके बाद श्रुत इत्यादि रूपसे पाँच ज्ञानोंक निर्वेश करनेका कारण । २५

प्रमाण और नयसे ज्ञान होता है यह पहले कह आये हैं । किन्हीं ज्ञानको प्रमाण माना



ञ्चित् सन्निकष । केषाञ्चिदिन्द्रियमिति । अतोऽधिकृतानामव मत्यादीनां प्रमाणत्वस्यापनाशमाह—

तत्प्रमाणं ॥ १० ॥

सद्वचन किमर्थम् ? प्रमाणान्तरपरिकल्पनानिबृत्त्यर्थम् । सन्निकष प्रमाणमिन्द्रिय प्रमाणमिति कश्चित्कल्पयन्ति सन्नियुत्यथ एदित्युच्यते । तदेव भत्यादि प्रमाण ना<sup>१</sup>न्यदिति ।

अथ सन्निकर्षे प्रमाणे सति इन्द्रिये वा को दोष ? यदि सन्निकष प्रमाणम्, सूक्ष्मव्यवहितविवृष्टानामयानामग्रहणप्रसङ्ग । न हि ते इन्द्रिये सन्निकृष्यन्ते । अथ सम्भ्रतत्वाभाव स्यात् । इन्द्रियमपि यदि प्रमाण स एव दोष अल्पविषयत्वात् ।  
१० घक्षुरादीनां श्रयस्य चापरिमाणत्वात् ।

सर्वेन्द्रियसन्निकर्षाभावश्च यद्युर्मनसो प्राप्यकारित्वाभावात् । अप्राप्यकारित्व च उत्तरत वक्ष्यते ।

८, किन्हीने सन्निकषका आर किन्हीने इन्द्रियको । अतः अभिकार प्राप्त मत्यादिक ही प्रमाण हैं इस यावके दिखसानके लिये आगका सूत्र बहते हैं—

॥ यह पाँचों प्रकारका ज्ञान दो प्रमाणरूप है ॥ १० ॥

११ संक्ष- सूत्रमें 'तत्' पद किस लिये दिया है ?

समाधान—जो दूसर भोग सन्निक आदिको प्रमाण मानते हैं उनकी इस कल्पनाके निराकरण करनेके लिय सूत्रमें 'तत्' पद दिया है । सन्निकष प्रमाण ह, इन्द्रिय प्रमाण है ऐसा कितन ही लोग मानते हैं इसलिये इनका निराकरण करनेके लिये सूत्रमें 'तत्' पद दिया है । जिससे यह अर्थ स्पष्ट हो जाया ह कि ये भत्यादि ही प्रमाण हैं अन्य नहीं ।

२० संक्ष—सन्निकष या इन्द्रियको प्रमाण माननेमें क्या दोष है ?

समाधान—यदि सन्निकषको प्रमाण माना जाता है तो सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट पदार्थके अग्रहणका प्रसंग प्राप्त होता ह क्या कि इनका इन्द्रियार्थ सम्बन्ध नहीं होता । इस लिये सम्भ्रतताका अभाव हो जाता ह । यदि इन्द्रियको प्रमाण माना जाता ह तो वही दोष आता है, कर्वा कि कुछ आदिका विषय अल्प ह आर तय अपरिमित ह ।

२१ दूसर सब इन्द्रियोंका सन्निकष भां नहीं पतता क्योंकि कुछ और मन प्राप्यकारी नहीं

( १ ) 'अत्यधिकारिका प्रमाणानि ।—१।१३ न्या० भा । ( २ ) 'बहुवर्धभिर्विभिधं तदप्रमाणम् ।

न्या० पा २ ५ । ( ३ ) भाष्यप्रतिभा दि० १ ।

यदि ज्ञान प्रमाण फलाभाव । अभिगमो हि फलमिष्ट न भावान्तरम् । स चेत्प्रमाण, न तस्यान्यत्फल भवितुमर्हति । फलवता च प्रमाणेन भवितव्यम् । सन्निकर्षे इन्द्रिये वा प्रमाण सति अभिगम फलमर्थान्तरभूत युज्यते इति ? तदयुक्तम् । यदि सन्निकर्ष प्रमाण अर्थाभिगम फल, तस्य द्विष्टत्वात्तत्फलेनाधिगमेनापि द्विष्टन भवितव्यमिति अर्थादीनामप्यधिगम प्राप्नोति । आत्मनश्चेतनत्वात्तत्रव समवाय इति चेत् ? न ज्ञस्वभावाभावे सर्वेषामचेतनत्वात् । ज्ञस्वभावाभ्युपगमे वा आत्मन स्वमतविरोध स्यात् ।

ननु शोक ज्ञाने प्रमाण सति फलाभाव इति ? नैव दोष अर्थाधिगमे प्रीतिवर्षानात् । ज्ञस्वभावस्यात्मन कममस्तीमसस्य करणालम्बनादयतिश्चय प्रीतिरुपजायते । सा फलमित्युच्यते । उपेक्षा अज्ञाननाशो वा फलम् । रागद्वेषयोरप्रणिघात ईश श्रिये भी समिकर्षको प्रमाण नहीं मान सकते । ज्ञ और मनक अप्राप्यकारित्वका कर्मन भागे करेंगे ।

सहा—यदि ज्ञानको प्रमाण मानते हैं तो फलका अभाव होता है । प्रकृतमें ज्ञानको ही फल मानना इष्ट है अन्य पदार्थका फल मानना इष्ट नहीं । पर यदि उसे प्रमाण मान लिया जाता है तो उसका कोई दूसरा फल नहीं प्राप्त हो सकता । किन्तु प्रमाणको फलवाला होना चाहिये । पर समिकर्ष या इन्द्रियका प्रमाण मानन पर उससे भिन्न ज्ञानरूप फल बन जाता है ?

समाधान—यह कहना मुक्त नहीं, क्योंकि यदि समिकर्षका प्रमाण और अर्थके ज्ञानको फल मानते हैं तो समिकर्ष हो में रहन वाला होनेसे उसके फलरूप ज्ञानको भी वीर्य रहनेवाला होना चाहिये, इसलिये घट पटादि पदार्थके भी ज्ञानकी प्राप्ति होती है ।

शंका—आत्मा अतन है, अतः उसमें ज्ञानका समवाय है ?

समाधान—नहीं क्योंकि आत्माको ज्ञस्वभाव नहीं मानन पर सभा पदार्थ अपचन प्राप्त होते हैं । यदि आत्माको ज्ञस्वभाव माना जाता है, तो स्वमतका विरोध होता है ।

पहले पूर्व पक्षीने जो यह कहा है कि ज्ञानको प्रमाण मानन पर फलका अभाव होता है सो यह कोई दोष नहीं क्योंकि पदार्थक ज्ञान होन पर प्रीति देखी जाती है । यद्यपि आत्मा ज्ञस्वभाव है तो भी यह कर्मसे मलीन है अतः इन्द्रियोंक आलम्बनसे पदार्थके निश्चय करने पर उसके जो प्रीति उत्पन्न होती है वही प्रमाणका फल कहा जाता है । अथवा उपेक्षा या अज्ञान का द्वारा प्रमाण

( १ ) 'अकारनिश्चिर्ज्ञानावावृत्तौपेकारय फलम् ।—५० सु ५१ । 'वरा समिकर्षस्वहा ज्ञान प्रमिति ।

पदा ज्ञान तथा ज्ञानोपादानोपेक्षाबुद्धयः फलम् ।—१११३ न्या० भा ।

नमुपेक्षा । अथकारकल्याणाननाशो वा फलमित्युच्यते ।

प्रमित्येति प्रतीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् । किमनेन प्रतीयते ? जीवादिरयं । यदि जीवादेरधिगमे प्रमाणं प्रमाणाधिगमं च अन्यत्प्रमाणं परिकल्पयिष्यम् । तथा सत्यनवस्था ? नानवस्था प्रतीतवत् । यथा घटादीनां प्रकाशनं प्रतीतो  
५ हंतु स्वस्वरूपप्रकाशनंऽपि स एव न प्रकाशान्तरं मृग्यं तथा प्रमाणमपीति अवश्यं चतुर्दशमुपगन्तव्यम् । प्रमेयवत्प्रमाणस्य प्रमाणान्तरपरिकल्पनायां स्वाधिगमाभावात् स्मृत्यभावात् । तदभावाद् व्यवहारलोपं रयात् ।

वक्ष्यमाणभेदापेक्षया द्विवचननिर्देशः । वक्ष्यते हि 'आधे परोक्षम् प्रत्यक्षमन्यद् इति स च द्विवचननिर्देशः प्रमाणान्तरसम्मानिवृत्त्यर्थः ।

१० का फल है । राग द्वेषरूप परिणामोंका नहीं होना उपेक्षा है और अन्वकारके समान अज्ञानका दूर हो जाना अज्ञाननाश है । सो ये भी प्रमाणके फल हैं ।

प्रमाण शब्दका व्युत्पत्तिराम्य अर्थ है—प्रमित्येति, प्रतीयतेऽनेन प्रमितिमात्रं वा प्रमाणम् = सो अन्वकी तरह मान करता है जिसके द्वारा अन्वकी तरह मान किया जाता है या प्रमितिमात्र प्रमाण है । शंका—प्रमाणके द्वारा क्या जाना जाता है ?

१५ समाधान—जीवादि पदार्थ जाने जाते हैं ।

शंका—यदि जीवादि पदार्थके ज्ञानमें प्रमाण कारण है तो प्रमाणके ज्ञानमें अन्व प्रमाणको कारण मानना चाहिये । और ऐसा मानने पर अनवस्था दोष प्राप्त होता है ?

२० समाधान—जीवादि पदार्थके ज्ञानमें प्रमाणको कारण मानने पर अनवस्था दोष नहीं आता जैसे दापक । जिस प्रकार घटादि पदार्थके प्रकाश करनेमें दीपक हेतु है और अपने स्वरूपके प्रकाश करनेमें भी बत्ती हेतु है इसके लिये प्रकाशास्वर नहीं है इना पड़या । उसी प्रकार प्रमाण भी है यह बात अवश्य मान लेना चाहिये । अब यदि प्रमेयके समान प्रमाणके लिये अन्व प्रमाण माना जाता है तो स्वप्न ज्ञान नहीं होनेसे स्मृतिका अभाव हो जाता है और स्मृतिका अभाव हो जानेसे व्यवहारका लोप हो जाता है ।

मूलमें आग कह ज्ञानबाल भेदोंकी अपेक्षा द्विवचनका निर्देश किया है । आग कहेंगे आग परोक्षम् प्रत्यक्षमन्यद् । यह द्विवचनका निर्देश प्रमाणकी अन्व सख्याके निराकरण करनेके लिये किया है ।

( १ )—रराभावात् अज्ञाननाशो मु० । ( २ )—अगम अन्व—मु० । ( ३ )—इत्यं तत्त्व—मु० ।

( ४ )—स्वरमत्त्व प्रमाणम् मु० ।

विशेष—विद्वत्ते सूत्रमें पाँच सम्यग्ज्ञानोंकी वार्त्ता करके इस सूत्रमें उनकी प्रमाणता बतलाई गई है। यों तो सम्यग्ज्ञान करनेसे उनकी प्रमाणता सुतरां सिद्ध है किन्तु दृष्टान्तरांमें ज्ञानका मुख्यतया प्रमाण न मान कर सन्निकर्ष व इन्द्रिय आदिको प्रमाण माना गया है इसलिये यहाँ पर सन्निकष भाषि प्रमाण नहीं हैं किन्तु ज्ञान ही प्रमाण है यह बतलाया गया है।

सर्वायसिद्धि टीकामें मुख्यतया दो मतोंका उल्लेख करके उनका आलोचना की गई है। ५  
ये दोनों मत नैयायिक सम्मत हैं। नैयायिकोंने प्रत्यक्ष ज्ञानकी उत्पत्तिमें सन्निकष और इन्द्रिय दोनों का प्रमाण माना है। सन्निकष प्रमाण है इस मतका उल्लेख न्यायभाष्यमें और इन्द्रिय प्रमाण है इस मतका उल्लेख उद्योत करके न्यायवार्तिकमें पाया जाता है। परन्तु सर्वायसिद्धिकारन जब इस दूसरे मतका उल्लेख किया है, तो यह भा प्रथम मतके समान प्राचीन मतीत होता है। बहुत सम्भव है कि इस द्वारा सर्वायसिद्धिकारने सांख्यके इन्द्रियवृत्ति प्रमाण है इस मतका उल्लेख किया हो तो काइ १०  
आश्चर्य नहीं।

नैयायिक लोग प्रत्यक्षज्ञानकी उत्पत्तिमें सन्निकर्षको असाधारण कारण मानकर उसे प्रमाण मानते हैं। किन्तु आगे बसकर करणके 'असाधारण कारणको करण कहते हैं' इस अणुके स्थानमें 'न्यायारवाण कारणको करण कहते हैं' यह अणु भी प्रचलित हो गया जिससे सन्निकर्षक साथ उनका यहाँ इन्द्रिया भी प्रमाण मानी जान लगी। वे जब सन्निकर्षको प्रमाण मानते हैं तब ज्ञान उसका फल १५  
मान लिया जाता है और जब इन्द्रियोंको प्रमाण मानते हैं तब भी सन्निकर्षको इन्द्रियोंका व्यापार मानकर ज्ञान उनका फल मान लिया जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि ये ज्ञानको प्रमाण ही नहीं मानते। उनके यहाँ ज्ञानको भी प्रमाण माना गया है। जब वे ज्ञानको प्रमाण मानते हैं। तब ज्ञान बुद्धि, उपादानबुद्धि और उपजाबुद्धि बसका फल माना जाता है।

किन्तु नैयायिकोंकी सन्निकष और इन्द्रियको प्रमाण माननकी बात समीचीन नहीं है यही २०  
निर्णय इस सूत्रका टीकामें किया गया है।

सन्निकर्षको प्रमाण माननेमें जो दोष प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) सूक्ष्म व्यवहित और विप्रकृत पदार्थोंका ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये सबज्ञताका अभाव होता है।

(२) चक्षु और मनसे ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती क्योंकि ये अप्राप्यकारी हैं। २५

(३) प्रत्येक इन्द्रियका अलग अलग विषय मानना ठचित नहीं क्योंकि चक्षुका रूपक साथ सन्निकष पाया जानेसे जैसे वह रूपज्ञानका जनक है वही प्रकार बसका रसक साथ भी सन्निकष पाया जाता है अतः उससे रसका भी ज्ञान होना चाहिये।

‘उक्तस्य पञ्चविधस्य ज्ञानस्य प्रमाणद्वयान्त पातित्वे प्रतिपादिते प्रत्यक्षानुमानादिप्रमाणद्वयकल्पनानिवृत्त्यर्थमाह—

(४) समिकर्षण एक का न होकर इन्द्रिय और अर्थ इन दो पा दोसे अभिक्रमा होता है अतः समिकर्षणका फल जो ज्ञान है वह भी दोनोंमें होता चाहिये ।

इन्द्रियका प्रमाण माननेमें निम्नलिखित दोष आते हैं—

(१) सबज्ञताका अभाव होता है, क्योंकि कि इन्द्रियोँ सब पदार्थोंको एक साथ जाननेमें असमर्थ हैं ।

(२) इन्द्रियोँमें सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृत पदार्थोंका ज्ञान सम्भव न होनेसे भी सबज्ञताका अभाव होता है ।

(३) अनुमान आदि ज्ञानोंकी उत्पत्ति नहीं हो सकेगी, क्योंकि कि इन ज्ञानोंकी उत्पत्ति इन्द्रियोँसे नहीं होती ।

समिकर्षण और इन्द्रियको प्रमाण मानने पर इसी प्रकार और भी दोष आते हैं ।

समिकर्षण और इन्द्रियका प्रमाण माननेवाले लोग ज्ञानको प्रमाण मानने पर एक बड़ी भारी आपत्ति यह देते हैं कि यदि ज्ञानको प्रमाण माना जाता है तो प्रमाण निष्कल हो जाता है ।

किन्तु उनकी यह आपत्ति भी समीचीन नहीं है, क्योंकि कि ज्ञानको प्रमाण मानने पर प्रीति अज्ञाननाश त्यागबुद्धि, महणबुद्धि और उपेक्षाबुद्धि आदि अनेक फल बन जाते हैं । उन्होंने भी जब ज्ञानको प्रमाण माना है तब ये ही फल माने हैं । म्यायमाध्यमे लिखा है कि ‘जब ज्ञान प्रमाण होता है तब हानबुद्धि, उपादानबुद्धि और अपेक्षाबुद्धि उसके फल प्राप्त होते हैं ।

इसलिये ज्ञानको ही सबत्र प्रमाण मानना चाहिये यही निष्कर्ष निकलता है । इससे पूर्वोक्त सभी शर्षोंका निराकरण हो जाता है ।

इसके अलावा इस सूक्ष्मी टीकामें निम्न बातों पर और प्रकाश डाला गया है—

(१) प्रमाणकी निरुक्ति ।

(२) अर्थादि पदार्थोंके ज्ञानके लिये जैसे प्रमाण माना गया है वैसे प्रमाणक ज्ञानके लिये अन्य प्रमाण अपेक्षित नहीं इसका झुलासा ।

(३) सूत्रमें ‘प्रमाणो’ इम प्रकार द्विवचन रखनेका कारण ।

य विषय सुगम है ।

पहले कहे गये पाँच प्रकारक ज्ञान दो प्रमाणोंमें आ जाते हैं इस प्रकार सुनिश्चित हो जाने

(१) -२२२ । उपमानार्थपरवादी भाग्येवात्सर्गभाष्य-सू० ।

## आद्य परोक्षम् ॥ ११ ॥

आदिवाद्यं प्राथम्यवचनम् । आत्मी भवमाद्यम् । कथं द्वयोः प्रथमत्वं ? मुख्यो  
 उपचारकल्पनया । मतिज्ञानं तावन्मुख्यकल्पनया प्रथमम् । भ्रुतमपि तस्य प्रत्यासत्त्या  
 प्रथममित्युपचयते । द्विवचननिर्देशसामर्थ्याद्गौणस्यापि ग्रहणम् । आद्यं च आद्यं आद्ये मतिभ्रुत  
 इत्यर्थः । तदुभयमपि परोक्षं प्रमाणमित्यभिप्रेतं स्वर्ध्वते । कुतोऽस्य परोक्षत्वम् ? परायत्तत्वात् ५  
 'मतिज्ञानं इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्' इति वदयतं 'भ्रुतमनिन्द्रियस्य' इति च । अतः पराणो  
 न्द्रियाणि मनश्च प्रकाशोपदेशादि च बाह्यनिमित्तं प्रतीत्य तन्वावरणकमक्षयोपशमापेक्षम्या  
 स्मनो मतिभ्रुत उत्पद्यमानं परोक्षमित्याख्यायते । अतः उपमानागमादीनामत्रवान्भावः ।

परं मी ये दो प्रमाणं प्रत्यक्षं और अनुमान आदिक मी हो सकते हैं अतः इस कल्पनाके दूर करनेके  
 लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

प्रथमं दो ज्ञानं परोक्षं प्रमाणं है ॥ ११ ॥

आदि शब्द प्राथम्यवाची है । जो आविर्भवे हो वह आद्य कहलाता है ।

संका—दो प्रथम कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—पहला मुख्यकल्पनासे प्रथम है और दूसरा उपचार कल्पनासे प्रथम है ।  
 मतिज्ञान तो मुख्यकल्पनासे प्रथम है और भ्रुतज्ञान मी उसका समीपका होनेसे प्रथम है ऐसा उपचार १५  
 किया जाता है । सूत्रमें 'आद्ये' इस प्रकार द्विवचनका निर्देश किया है अतः इसकी सामर्थ्यसे गौणका  
 भी ग्रहण हो जाता है ।

'आद्ये' पदका समास 'आद्यं च आद्यं च आद्ये' है । इससे मतिज्ञान और भ्रुतज्ञान ये दोनों  
 लिये गये हैं । ये दोनों ज्ञान मिलकर परोक्ष प्रमाण हैं ऐसा यहाँ सम्बन्ध करना चाहिये ।

संका—ये दोनों ज्ञान परोक्ष क्यों हैं ?

समाधान—क्योंकि ये दोनों ज्ञान पराधीन हैं । 'मतिज्ञानं इन्द्रिय और अनिन्द्रियके  
 निमित्तसे होता है' यह भाग कहेगा और 'अनिन्द्रियका विषय भ्रुत है' यह मी आगे कहेगा । अतः 'पर'  
 से यहाँ इन्द्रिय और मन तथा प्रकाश और उपदेश आदि बाह्य निमित्त लेने चाहिये । वास्तव यह २५  
 है कि मतिज्ञानावरण और भ्रुतज्ञानावरण कर्मके अयोपशमकी अपेक्षा रखनेवाले आत्माके इन्द्रिय  
 और मन तथा प्रकाश और उपदेशादिक बाह्य निमित्तकी अपेक्षा मतिज्ञान और भ्रुतज्ञान उत्पन्न  
 होते हैं अतः ये परोक्ष कहलाते हैं । उपमान और आगमादिक मी ऐसे ही हैं अतः इनका मी  
 इन्द्रियमें अन्वर्भाव हो जाता है ।

अभिहितलक्षणात्परोक्षादितरस्य सर्वस्य प्रत्यक्षत्वप्रतिपादनार्थमाह—  
प्रत्यक्षमन्यत् ॥ १२ ॥

विद्येपार्थ—पिक्वले सूत्रमें दो प्रकारके प्रमाणोंका उल्लेख कर चाये हैं। वे दो प्रमाण कौन हैं और उनमें पाँच ज्ञानोंका कैसे विभाग होता है यह बतलाना शेष है, अतः ग्यारहवें और बारहवें सूत्रों द्वारा यह बतलाया गया है। उसमें भी ग्यारहवें सूत्र द्वारा प्रमाणके पहले भेदकी परोक्ष संज्ञा बतलाकर उसमें मतिज्ञान और बुद्धिज्ञानका अन्तर्भाव किया गया है।

दूसरे छोग जो इन्द्रियोंका आविषय है उसे परोक्ष कहते हैं। किन्तु जैन परम्परामें परोक्षवा और प्रत्यक्षवा यह ज्ञानका भेद मानकर उस प्रकारसे उनकी व्याख्या की गई है।

जैन परम्पराके अनुसार पर की सहायतासे जो अक्ष अर्थात् आत्माके ज्ञान होता है वह परोक्ष ज्ञान कहलाता है परोक्ष शब्दका यह अर्थ लिया गया है। मतिज्ञान और भुवज्ञान ये दोनों ज्ञान ऐसे हैं जो पचासम्भव इन्द्रिय, मन तथा प्रकाश और उपदेश आदिके बिना नहीं हो सकते, अतः ये दोनों परोक्ष मान गये हैं।

दार्शनिक प्रबोधमें इन्द्रिय ज्ञानका मान्यबह्यारिक प्रत्यक्षरूपसे उल्लेख देखनेको मिलता है। सो यह कथन औपचारिक जानना चाहिये। दूसरे लोगोंने अक्षका अर्थ इन्द्रिय करके इन्द्रिय ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। वहाँ इसी अपेक्षासे इन्द्रिय ज्ञानको साम्यबह्यारिक प्रत्यक्ष लिखा गया है ऐसा यहाँ जानना चाहिये। वस्तुतः आत्माके सिवा अन्य निमित्तसे चिन्ता भी ज्ञान हाता है यह सप परोक्ष ही है।

उपमान आगम आदि और मितन ज्ञान हैं वे भी अन्यकी अपेक्षाके बिना नहीं होते अतः उनका इन्हीं ज्ञानोंमें अन्तर्भाव हो जानेसे मुख्यतः परोक्ष ज्ञान को ही ठहरते हैं एक मतिज्ञान और दूसरा भुवज्ञान।

यहाँ इतना विग्रह जानना चाहिये कि ये ज्ञान केषुछ बाह्य निमित्तसे नहीं होते हैं। मुख्यतया इनका उत्पत्तिमें मतिज्ञानावरण और भुवज्ञानावरण कमका संयोजनमा आवश्यक है। आत्माकी एसी योग्यता हुए बिना ये ज्ञान नहीं होते। एसी योग्यताके होनेपर बाह्यनिमित्त मापेछ इनकी प्रवृत्ति हाती है यह उक्त कथनका सार है।

परोक्षका उल्लेख कहा। इससे मार्कीक सप ज्ञान प्रत्यक्ष हैं इस बातके बतलानेक लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

शेष मय ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥ १२ ॥

अङ्गोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा । तमेव प्राप्तक्षयोपशम प्रक्षीणावरण वा प्रति नियत प्रत्यक्षम् । अवधिदर्शनं केवलवक्षनमपि अक्षमेव प्रति नियतमतस्तस्यापि ग्रहण प्राप्नोति? नैष दोषः ; ज्ञानमित्यनुवर्तते, तेन दर्शनस्य व्युत्पत्तिः । एवमपि विभक्तज्ञानमक्षमव प्रति नियतमतोऽस्यापि ग्रहण प्राप्नोति? सम्यगित्यधिकारात् तन्निरूपितम् । सम्यगित्यनुवर्तते तेन ज्ञानं विशिष्यते ततो विभक्तज्ञानस्य निरूपितम् कृता । तद्वि मिथ्यादर्शनाद याद्विपरीतार्थविषयमिति न सम्यक् ।

स्यान्मतमिन्द्रियव्यापारजनित ज्ञानं प्रत्यक्षं व्यतीतेन्द्रियविषयव्यापार परोक्षमित्येतद्विषयवाचि लक्षणमभ्युपगन्तव्यमिति? तद्युक्तम्, आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानाभावप्रसङ्गात् ।

अक्ष शब्दका व्युत्पत्तिरन्वय अक्ष इति—अङ्गोति व्याप्नोति जानातीत्यक्ष आत्मा=अक्षम्याप् और ज्ञा ये पातुर्गे एकाक्षक है इसलिये अक्षका अर्थ आत्मा होता है । इस प्रकार ज्ञयो परमवाले या आबरणरहित केवल आत्माके प्रति जो नियत है अर्थात् जो ज्ञान वाच्य इन्द्रियादिककी अपेक्षासे न होकर केवल ज्ञयोपशमवाले या आबरणरहित आत्मासे होता है वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है ।

शंका—अध्विदर्शन और केवलदर्शन मी अक्ष अर्थात् आत्माके प्रति नियत है अतः प्रत्यक्ष शब्दक द्वारा उनका भी ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि प्रकृतमें ज्ञान शब्दकी अनुवृत्ति है जिससे दर्शनका निराकरण हो जाता है ।

शंका—यद्यपि इससे दर्शनका निराकरण हो जाता है तो भी विभक्तज्ञान केवल आत्माके प्रति नियत है अतः उसका ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—यहाँ 'सम्यक्' पदका अधिकार है, अतः उसका निराकरण हो जाता है । वास्तव यह है कि इस सूत्रमें 'सम्यक्' पदकी अनुवृत्ति होती है जिससे ज्ञान विशिष्य हो जाता है इसलिये विभक्तज्ञानका निराकरण हो जाता है । क्योंकि विभक्तज्ञान मिथ्यादर्शनके उदयसे विपरीत पदार्थको विषय करता है इसलिये वह समीचीन नहीं है ।

शंका—जो ज्ञान इन्द्रियोंके व्यापारसे उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष है और जो इन्द्रियोंके व्यापारसे रहित है वह परोक्ष है । प्रत्यक्ष और परोक्ष यह अविस्मरणीय लक्षण मानना चाहिये ?

( १ )—ज्ञानमिति प्रति—मु० । ( २ )—वाक् वागमि—सु । ( ३ ) अक्षस्य अक्षस्य प्रतिविषयं वृत्तिः प्रत्यक्षम् ।—१, १, १२५ भा । ( ४ ) 'परोक्ष इत्युच्यते । किं परोक्षं नाम ? परमवक्षः परोक्षम् ।—नाम भा०३।२।२।११५। ( ५ )—प्रसंगता । यदि आ , वि १, दि०२।



यदि इन्द्रियनिमित्तमेव ज्ञान प्रत्यक्षमिष्यते 'एव सति आप्तस्य प्रत्यक्षज्ञानं न स्यात् । न हि तस्येन्द्रियपूर्वोऽर्थाधिगम । अथ तस्यापि करणपूर्वमेव ज्ञान कल्प्यते, तस्यासब्रह्मत्व स्मात् । तस्य मानसं प्रत्यक्षमिति चेत् मन प्रणिधानपूर्वकत्वात् ज्ञानस्य सर्वज्ञत्वाभाव एव । आगमतस्वस्तिदिरिति चेत् ? न तस्य<sup>१</sup> प्रत्यक्षज्ञानपूर्वकत्वात् ।

५ योगिप्रत्यक्षमन्यज्ज्ञान विष्यमप्यस्तीति चेत् ? न तस्य प्रत्यक्षत्व इन्द्रियनिमित्तत्वाभावात् अक्षमक्ष प्रति यद्वर्तते तत्प्रत्यक्षमित्यभ्युपगमात् ।

किञ्च सर्वज्ञत्वाभाव प्रतिज्ञाहानिर्वा । अस्य योगिनो यज्ज्ञान तत्प्रत्यक्षवशवति वा स्यात् अनेनायं प्राहि वा ? यदि प्रत्यक्षवशवति सर्वज्ञत्वमस्य नास्ति योगिन ज्ञेयस्यानन्त्यात् । अयानेकार्यं प्राहि या प्रतिज्ञा

१ समाधान—यह कहना ठीक नहीं क्योंकि उक्त छद्मणके माननेपर आपके प्रत्यक्ष ज्ञानका अभाव प्राप्त होता है । यदि इन्द्रियोंके निमित्तसे होनेवाले ज्ञानको ही प्रत्यक्ष कहा जाता है तो ऐसा माननेपर आपके प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि आपके इन्द्रियपूर्वक पदार्थोंका ज्ञान नहीं होता । कदाचिन् इसके भी इन्द्रियपूर्वक ही ज्ञान माना जाता है तो उसके सर्वज्ञता नहीं रहती ।

शंका—उसके मानस प्रत्यक्ष होता है ?

१। समाधान—मनके प्रथमसे ज्ञानकी उत्पत्ति माननेपर सर्वज्ञत्वका अभाव ही होता है ।

शंका—आगमसे सब पदार्थोंका ज्ञान हो जायगा ?

समाधान—नहीं क्योंकि सर्वज्ञता प्रत्यक्ष ज्ञानपूर्वक प्राप्त होती है ।

शंका—योगी प्रत्यक्ष नामका एक अर्थ विषय ज्ञान है ?

२० समाधान—हां भी उसमें प्रत्यक्षता नहीं बनती क्योंकि वह इन्द्रियोंके निमित्तसे नहीं होता है । जिसकी प्रकृति प्रत्येक इन्द्रियसे होती है वह प्रत्यक्ष है ऐसा आपके मतमें स्वीकार भी किया गया है ।

दूसरे प्रत्यक्षका उपयुक्त लक्षण मानने पर सबहत्वका अभाव और प्रतिज्ञाहानि ये दो वाप आते हैं । मुख्यता इन प्रकार है—

२१ इस योगीक जो ज्ञान होता है वह प्रत्येक पदार्थको क्रमसे जानता है या अनेक अर्थोंको युगपत् जानता है । यदि प्रत्येक पदार्थको क्रमसे जानता है तो इस योगीक सर्वज्ञताका अभाव होता है, क्योंकि कि ज्ञय अतन्त हैं । और यदि अनेक अर्थोंको युगपत् जानता है तो जो यह प्रतिज्ञा है कि

( १ ) एवं प्रथमस्या आप्त-मु । ( २ ) युगपत्ज्ञानानुत्पत्ति मन्थी सिद्धम् । -श्या० सू० १।१।१६।

( ३ ) तस्य आगमस्य प्रत्य- मु० । ( ४ ) -निमित्ततामा-मु० ( ५ ) 'अथमर्थं प्रति वर्तते एतदवयवम् ।

-श्याय विन्दु टी ५०११।

“विद्वानासि न विद्वानमेकमर्थद्वयं यथा ।  
एकमर्थं विद्वानासि न विद्वानद्वयं तथा ॥”

सा हीयते ।

अथवा “श्रुण्णिका सर्षसंकाराः” इति प्रतिज्ञा हीयते, अनेकक्षणवृत्त्यकविज्ञानाम्युपगमात् । अन्कार्यग्रहण हि क्रमेणति । युगपदेवेति चेत् ? योज्यमजमक्षणस आत्मलाभार्थ एव । लब्धात्मलाभ हि किञ्चित्स्वकाय प्रति व्याप्रियते । प्रदीपवदिति चेत् ? तस्माप्यन्तकक्षणविषयतायां सत्यामेव प्रकाश्यप्रकाशनाम्युपगमात् । विकल्पाती तस्वाचस्य शून्यतामसङ्गश्च ।

‘विस प्रकार एक विद्वान दो अर्थों को नहीं जानता है वही प्रकार दो विद्वान एक अर्थको नहीं जानते हैं ।’

बह नहीं रहती

अथवा ‘सर्व पदार्थ श्रुण्णिक हैं’ यह प्रतिज्ञा नहीं रहती, क्या कि व्यापके मतमें अनेक क्षण तक रहनवाला एक विद्वान स्वीकार किया गया है । यदा अनेक पदार्थोंका ग्रहण क्रमसे ही होता है ।

शंका—अनेक पदार्थों का ग्रहण एक साथ हो जायगा ?

समाधान—जो ज्ञानकी उत्पत्तिका समय है उस समय तो वह स्वरूपलाभ ही करता है, क्या कि कोई भी पदार्थ स्वरूपलाभ करने क पश्चात् ही अपने कार्यके प्रति व्यापार करता है ।

शंका—विद्वान दीपकके समान है असा; उसमें दोनों बातें एक साथ बन जायगी ?

समाधान—नहीं क्यों कि उसक अनेक क्षण तक रहन पर ही प्रकाश्यमूत पदार्थोंका प्रकाशन करना स्वीकार किया गया है ।

यदि ज्ञानको विद्वन्प्राप्तीव माना जाता है तो सूक्ष्मताकी प्राप्ति होता है ।

विरोधार्थ—इस सूत्रमें कौन कौन ज्ञान प्रत्यक्ष हैं यह पतझाया गया है । प्रसंगस इसकी टीकामें निम्न विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है—

( १ ) अक्ष राक्ष अथ ।

( २ ) प्रत्यक्ष शब्दकी ल्युत्पत्ति ।

( ३ ) अक्ष राक्ष अथ इन्द्रिय या मन करक प्रत्यक्ष शब्दका छक्षण करने पर क्या शेष आते हैं इसश्च निर्देश ।

(१) श्रुण्णिका उपलब्धयः शिवरत्नां कुत क्रिया । भूमिर्देवां क्रिया तेष कारकं तेष कल्पते ।—

( २ )—अथर्ववेद—३० ।

अभिहितोभयप्रकारस्य प्रमाणस्य आदिप्रकारविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

मतिं स्मृति संज्ञा चिन्ताऽभिमनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ॥ १३ ॥

भाषी उद्दिष्ट यज्ज्ञान तस्य पर्यायशब्दा एते वेदितव्या मतिज्ञानावरणक्षयोप  
शमान्तरङ्गनिमित्तजनितोपयोगविषयत्वादेतेषां भुतादिष्वप्रवृत्तेषु । मनन मति स्मरण  
स्मृति सञ्ज्ञान सञ्ज्ञा चिन्तन चिन्ता अभिमनिबोधनमभिमनिबोध इति । यथासम्भव  
विग्रहान्तर विज्ञयम् ।

(४) आगमसे सर्वज्ञता नहीं बनती किन्तु यह प्रत्यक्षज्ञान पूर्वक ही प्राप्त होती है  
इसका निर्देश ।

(५) बौद्धोंके द्वारा माने गये प्रत्यक्षके छद्मको स्वीकार करने पर क्या दोष प्राप्त होते  
हैं इसकी ख्या ।

(६) प्रसंगसे बौद्धोंके यहां सर्वज्ञता कैसे नहीं बनती और प्रतिज्ञाहानि दोष कैसे आता  
है इसका निर्देश ।

चीसरी वातका झुकासा करते हुए जो कुछ जिज्ञा है उसका भाव यह है कि प्रत्यक्षज्ञानको  
इन्द्रियनिमित्तक या मननिमित्तक मानने पर सर्वज्ञता नहीं बनता ।

वेह ही मूल, मविष्यत, वर्तमान, दूरवर्ती, सूक्ष्म इत्यादि अर्थोंका ज्ञान करानेमें समर्थ  
है । इसीसे सञ्ज्ञ पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है । इसलिये इन्द्रियजन्य ज्ञान और मनोजन्य ज्ञानको  
प्रत्यक्ष माननेमें कोई आपत्ति नहीं है । ऐसा भीमांसक मानते हैं । परन्तु उनका ऐसा मानना समीचीन  
नहीं है क्योंकि सर्वज्ञता प्रत्यक्ष ज्ञानके बिना नहीं बन सकती है । यह बात चौथी विशेषता द्वारा  
बतलाई गई है ।

बौद्ध भी अज्ञका अब इन्द्रिय करके इन्द्रियजन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष मानते हैं परन्तु उनका  
ऐसा मानना क्यों समीचीन नहीं है यह पाँचवी विशेषता द्वारा बतलाया गया है । शेष कवन  
सुगम है ।

प्रमाणके प्रत्यक्ष और परोक्ष ये दो भेद कहे । अब प्रथम प्रकारके प्रमाणके विशेषका  
ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र करते हैं—

मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिमनिबोध ये पर्यायवाची नाम हैं ॥१३॥

आदिमें जो ज्ञान कहा है उसके ये पर्यायवाची शब्द जानने चाहिये, क्यों कि ये मति  
ज्ञानावरण कमके क्षयोपसमरूप अन्तरंग निमित्तसे उत्पन्न हुए उपयोगको विषय करते हैं और  
इन्की भुतादिकमें प्रवृत्ति नहीं होती । 'मनन मतिः स्मरणं स्मृतिः, सञ्ज्ञानं संज्ञा, चिन्तनं चिन्ता

सत्यपि प्रकृतिभेदे रूढिबललाभात् पर्यायशब्दत्वम् । यथा इन्द्र 'शक्रः पुरन्दर इति इन्दनादिक्रियाभेदेऽपि शचीपतेरकस्यैव संज्ञा । समभिरूढनमापेक्षया तेषामर्थान्तर-  
कल्पनायां मत्यादिष्वपि स क्रमो विद्यत एव । किं तु मतिज्ञानावरणक्षयोपघामनिमित्तो  
पर्याय नौचित्यतन्त्र इति अयमत्रार्थो विवक्षित । 'इति' शब्द प्रश्नारार्थः । एषप्रकारा अस्म  
पर्यायशब्दा इति । अभिधेयार्थो वा । मति स्मृति संज्ञा चिन्ता अभिनिबोध इत्येतयो  
ऽर्थोऽभिधीयते स एक एव इति ।

और अभिनिबोधनमभिनिबोधन यह इनकी व्युत्पत्ति है । पर्यायसम्बन्ध इनका दूसरा विग्रह भी  
जानना चाहिये ।

यद्यपि इन शब्दोंकी प्रकृति अलग अलग है अर्थात् यद्यपि ये शब्द अलग अलग धातुसे  
बने हैं तो भी रूढ़िसे ये पर्यायवाची हैं । जैसे, इन्द्र, शक्र और पुरन्दर । इनमें यद्यपि इन्द्र आदि १०  
क्रियाकी अपेक्षा भेद है तो भी ये सब एक शचीपतिकी भाषक संज्ञाएँ हैं । अथ यदि समभिरूढ  
नयकी अपेक्षा इन शब्दोंका अलग अलग अर्थ लिया जाता है तो वह क्रम मति आदि शब्दोंमें  
भी पाया जाता है । किन्तु ये मति आदि मति ज्ञानावरण क्रमके लोपोपरामरूप निमित्तसे उत्पन्न  
रूप उपयोगको उल्लंघन नहीं करते हैं यह अर्थ यहाँ पर विवक्षित है ।

प्रकृतमें 'इति' शब्द प्रकारवाची है जिससे यह अर्थ होता है कि इस प्रकार य मति आदि १५  
मतिज्ञानक पर्यायवाची शब्द हैं । अथवा प्रकृतमें मति शब्द अभिधेयवाची है । जिसके अनुसार यह  
अर्थ होता है कि मति स्मृति संज्ञा, चिन्ता आर अभिनिबोध इनके द्वारा जो अर्थ कहा जाता  
है वह एक ही है ।

विशेषार्थः—इस सूत्रमें मतिज्ञानके पर्यायवाची नाम दिये गये हैं । पदरूपभागमके प्रकृति अनु-  
बागद्वारमें भी मतिज्ञानक ये ही पर्यायवाची नाम आते हैं । अन्तर केवल इतना है कि वहाँ मतिज्ञान २०  
नाम न शक्र अभिनिबोधिकज्ञान नाम दिया है और फिर इसके संज्ञा स्मृति, मति आर चिन्ता  
ये आर पर्यायवाची नाम दिये हैं । इससे जो लोग प्रकृतमें मतिका अर्थ वर्तमान ज्ञान स्मृतिका अथ  
स्मरणज्ञान संज्ञाका अथ प्रत्यभिज्ञान, चिन्ताका अथ सर्व और अभिनिबोधका अर्थ अनुमान करते हैं  
उनके मतका खण्डन हुआ जाता है । वास्तवमें यहाँ इन नामोंका विविध ज्ञानोंकी अपेक्षासे संग्रह  
नहीं किया गया है किन्तु मतिज्ञानके पर्यायवाची नामोंका अपेक्षासे ही संग्रह किया गया है । २५

(१) वदो हि रुद्राः एकानां भक्ति । तपसा-इन्द्र शक्रः पुबहुताः पुरन्दरः । -पा० म० भा०  
१।२।४।४५ (२) संज्ञा । सम-सु । (३) नातिवर्तन इति मु० । (४) -कारार्थे । एवं-आ दि० १  
दि० २। । हेतावेन प्रकारे च व्यक्त्येदे विपर्यय । प्राहुमिणे उमातो च इति शब्दः प्रकीर्तताः । -अने०  
ना० इति ।

अथास्यात्मलाभे किं निमित्तमित्यत आह—

॥ तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ॥ १४ ॥

इन्तीति इन्द्र आत्मा । तस्य ज्ञस्वभावस्य तदावरणक्षमोपशमे सति स्वयमर्थान्  
गृहीतुमसमर्थस्य यवर्षोपलम्बि लिङ्ग तदिन्द्रस्य लिङ्गमिन्द्रियमित्युच्यते । अथवा लीनमर्थ  
गमयतीति लिङ्गम् । आत्मन सूक्ष्मस्यास्तित्वाधिगमे लिङ्गमिन्द्रियम् । यथा इह  
धूमोऽग्ने । एवमिदं स्पृशनादि करण नासति स्पर्शात्मनि भवितुमर्हतीति ज्ञातुरस्तित्वं

सूत्रकारने इसी अर्थमें इनका अनन्यतररूपसे निर्देश किया है । इस सूत्रकी टीकामें निम्न विशेषताओं  
पर प्रकाश डाला गया है ।

( १ ) मति आदि शब्दोंके पर्यायवाची होनेमें इत्यु ।

( २ ) मति आदि शब्दोंकी व्युत्पत्ति ।

( ३ ) मति आदि शब्दोंमें प्रकृति भेद होनेपर भी उनके पर्यायवाचित्वका दृष्टान्तद्वारा  
समर्थन ।

( ४ ) सममित्युत्पत्तिकी अपेक्षा इनमें अर्थ भेद होने पर भी प्रकृतमें ये पर्यायवाची क्यों  
हैं इसमें पुनः युक्ति ।

( ५ ) सूत्रमें आये हुए 'इति' शब्दकी सार्वक्याता ।

मतिज्ञानके स्वरूप लाभमें क्या निमित्त है अब यह पठसाने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

वह ( मतिज्ञान ) इन्द्रिय और मनरूप निमित्तस होता है ॥ १४ ॥

इन्द्र शब्दका व्युत्पत्ति सम्य अर्थ है 'इन्तीति इन्द्र' जो आत्मा और ऐश्वर्यवासा है वह  
इन्द्र । इन्द्र शब्दका अर्थ आत्मा है । वह यद्यपि ज्ञस्वभाव है तो भी मतिज्ञानावरण कर्मके क्षयोपरम  
के रहते हुएपत्थर्ष पदार्थों को जानने में असमर्थ है अतः उसको पदार्थके जानने में जो किंग ( निमित्त )  
होता है वह इन्द्रका किंग इन्द्रिय कही जाती है ।

अथवा जो लीन अर्थात् गूढ़ पदार्थका ज्ञान कराता है उसे किंग कहते हैं । इसका अनुसार  
इन्द्रिय शब्दका यह अर्थ हुआ कि जो सूक्ष्म आत्माके अस्तित्वका ज्ञान करनेमें किंग अर्थात् कारण है  
वह इन्द्रिय कहते हैं । जैसे लोकेमें घूम अग्निका ज्ञान करानेमें कारण होता है । इसी प्रकार घ स्पृशं  
नादिक कारण कृता आत्माके अभावमें नहीं हो सकते हैं अतः इनसे ज्ञानका अस्तित्व जाना जाता है ।

( १ )—दृग्निमित्तं इन्द्र इति । ( २ )—योगशास्त्रानौन्द्रियानि ।—न्या० भा० १।१।६।

गम्यते । अथवा इन्द्र इति नामकर्मोच्यते । तेन सृष्टिमिन्द्रियमिति<sup>१</sup> । तस्पर्शनादि उत्तरत्र वक्ष्यते ।

अनिन्द्रिय मन अन्त करणमित्यनर्थात्तरम् । कथ पुनरिन्द्रियप्रतिपक्षेन इन्द्रलिङ्गे एव मनसि अनिन्द्रियशब्दस्य वृत्ति ? ईपदस्य नभ प्रयोगात् । ईपविन्द्रियमनिन्द्रिय मिति । यथा अनुवरा कन्या इति । कथमीपदस्य ? । इमानीन्द्रियाणि<sup>२</sup> प्रतिनियतदेश विषयाणि कालान्तरावस्थायीनि च । न तथा मन इन्द्रस्य लिङ्गमपि सत्प्रतिनियतदेश विषय कालान्तरावस्थायि च ।

सदन्त करणमिति चोच्यते । गुणदोषविचारस्मरणादिव्यापारे इन्द्रियानपेक्षस्या

अथवा इन्द्र शब्द नाम कर्मका वाची है । अतः यह अर्थ हुआ कि उससे रची गई इन्द्रिय है ।

व इन्द्रियां स्पशनादिक ईं जिनका कथन भागो करेंगे ।

अनिन्द्रिय मन और अन्तःकरण ये एकार्थवाची नाम हैं ।

शंका—अनिन्द्रिय शब्द इन्द्रिय का निषेधपरक है अतः इन्द्र के लिंग मन में अमिन्द्रिय शब्द का न्यापार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यहाँ नभ का प्रयोग 'ईपद' अर्थ में किया है इससे इन्द्रिय अनिन्द्रिय । यथा अनुवरा कन्या । इस प्रयोगमें जो अनुवरा शब्द आया है उससे वर का अभाव रूप अर्थ न लेकर ईपद अर्थ लिया गया है उसी प्रकार प्रकृत में जानना चाहिये ।

शंका—अनिन्द्रिय में नभ का निषेध रूप अर्थ न लेकर 'ईपद' अर्थ क्यों लिया गया है ?

समाधान—ये इन्द्रियां नियत देश में स्थित पदार्थों को विषय करती हैं और कालान्तर में अवस्थित रहती हैं । किन्तु मन इन्द्र का लिंग होता हुआ भी प्रतिनियत देश में स्थित पदार्थ को विषय नहीं करता और कालान्तर में अवस्थित नहीं रहता ।

यह अन्त करण कहा जाता है । इसे गुण और दोषों के विचार और स्मरण करने आदि कार्यों में इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं लेनी पड़ती तथा यह आदि इन्द्रियों के समान इसकी

( १ ) 'भगवा हि सम्प्रसक्तुदा परमिस्वरियमाकटी इन्दो कुसुक्कुतलं च कम्म कम्मेषु कत्तमि इत्यदि पाम्पवदा । तेनेत्थ कम्मउन्नित्तमि ताव इन्द्रियानि कुसुक्कुतलं कम्म कत्तमि' इति तेन च विद्वामीति इन्द्रियिण्डेन इन्द्रियिण्डेन च इन्द्रियानि । बि० म० पृ० ३४३ । ( २ ) अनुवरा कन्येति १ पा० म० मा ३३ । २ । ३ ।

( ३ ) 'इन्द्रस्य वै सती मनस इन्द्रियेभ्यः प्रथगुपदेशो कर्मिणाव । शीतिषानोन्द्रियमपि नियतविषयमपि ध्युषानां येषामिन्द्रियमव इति । मनसकर्मोक्तिं सविषयं च ।—न्या० मा० १ । १ । १४ 'सर्वविषयमन्तःकरणं मनः ।—न्या० मा० १ । १ । ६ ।

चक्षुरादिवद् बहिरनुपलब्धश्च अन्तर्गत 'करणमन्त-करणमित्युच्यते ।

तदिति किमर्थम् ? । मतिज्ञाननिर्देशार्थम् । ननु च तदनन्तर 'अनन्तरस्य विधिर्षा भवति प्रतिषेधो वा' इति तस्यैव ग्रहणं भवति ? इहार्थमुत्तरार्थं च तदित्युच्यते । यन्मत्यादिपर्यायशब्दवाच्यं ज्ञानं तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं तदेवावग्रहेहावायधारणा इति । इतरथा हि प्रथमं मर्यादिवशब्दवाच्यं ज्ञानमित्युक्त्वा इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं श्रुतम् । तदेवावग्रहेहावायधारणा इत्यनिष्टमभिसम्बध्येत ।

पादरूपसम्बन्धि भी नहीं होती इसलिये यह अन्तर्गत करण होने से अन्तःकरण कहा जाता है । इसीलिये अनिन्द्रिय में नभ का निषेध रूप अर्थ न लेकर ईषद् अर्थ लिया गया है ।

शंका—सूत्र में 'तत्' पद किस लिये दिया है ?

समाधान—सूत्र में 'तत्' पद मतिज्ञान का निर्देश करने के लिये दिया है ।

शंका—मतिज्ञानका निर्देश अनन्तर किया ही है और ऐसा नियम है कि 'विधान या निषेध अनन्तरवर्ती पदापका ही होता है' अतः यदि सूत्रमें 'तत्' पद न दिया जाय तो भी मतिज्ञानका ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—इस सूत्रके लिये और अगले सूत्रके लिये 'तत्' पदका निर्देश किया है । मति आदि पर्यायवाची शब्दोंके द्वारा जो ज्ञान कहा गया है वह इन्द्रिय और अनिन्द्रियके निमित्तसे होता है और उसका एक अक्षय, ईहा, अभाव और धारणा ये चार भेद हैं, इसलिये पूर्वोक्त शेष नहीं प्राप्त होता । यदि 'तत्' पद न दिया जाय तो मति आदि पर्यायवाची नाम प्रथम ज्ञानके ही आर्यगे चार इन्द्रिय अनिन्द्रियके निमित्तसे होनेवाला ज्ञान श्रुतज्ञान कहलयागा और इसका अक्षय, ईहा, अभाव और धारणा ये चार भेद प्राप्त होंगे इस प्रकार अनिष्ट अथक सम्यग्दर्शकी प्राप्ति होगी अतः इस अनिष्ट अथक सम्बन्धक निराकरण करनेके लिये सूत्रमें 'तत्' पदका निर्देश करना आवश्यक है ।

विशेषण—इस सूत्रमें मतिज्ञानकी उत्पत्तिके निमित्तोंकी धरणा करत हुए ये इन्द्रिय और मनके भेदमें जो प्रकारके बतलाये हैं । यद्यपि इस ज्ञानकी उत्पत्तिमें अथ आर आलाक आदि भी निमित्त होते हैं पर ये अर्थविधारी कारण न हानसे उनका यहाँ निर्देश नहीं किया है ।

इसकी टीकामें इन्द्रिय अनिन्द्रिय शब्दका क्या अर्थ है इस पर मरारा बालक हुए इन्द्रियोंका जो प्रतिनियत हानको विषय करनेवाला और कामागतर में अपरिचित रहनवाला तथा मनका अनियत देशका विषय करनेवाला और बालागतरमें अर्थविधायक रहनवाला बतलाया है

एवं निज्ञातोत्पत्तिनिमित्तमनिर्णीतभेदमिति तद्भेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—  
अथग्रहेहाथाधारणा ॥ १५ ॥

विषयविषयिसन्निपातसमनन्तरमाद्य ग्रहणमथग्रह । विषयविषयिसन्निपाते सति दशन भवति । तदनन्तरमर्थग्रहणमथग्रह । यथा—चक्षुषा शुक्ल रूपमिति ग्रहणमथग्रह । अथग्रहगृहीतेऽर्थे तद्विषयाकाङ्क्षणमीहा । यथा—शुक्ल रूप किं मलाका पताका वेति । विशेषनिज्ञानाद्याथात्म्यावगमनमवाय । उत्पत्तननिर्णयनपक्षविक्षपादिभिर्वैकाङ्ग्येय न पठाकेति । अवेत्तस्य कालान्तरेऽविस्मरणकारण धारणा । यथा—सर्वेयं

सो इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार इन्द्रियां देश और काल दोनोंकी अपेक्षा नियत विषयको ग्रहण करती है वैसे मन नहीं है । इस प्रकार मनका विषय नियत नहीं है । उसकी इन्द्रियगम्य और अतीन्द्रिय सब विषयोंमें प्रवृत्ति होती है । इसका दूसरा नाम अन्वयकरण क्यों है इसका श्रुतासा टीकामें किया ही है । शेष कथन सुगम है ।

इस प्रकार मतिज्ञानकी उत्पत्तिके निमित्त ज्ञान लिये किन्तु अभी उसके भेदोंका निर्णय नहीं किया अतः उसके भेदोंका ज्ञान करानेके लिये अथग्रह सूत्र कहते हैं—

अथग्रह, ईहा, अथाय और धारणा ये मतिज्ञानके चार भेद हैं ॥ १५ ॥

विषय और विषयीके सम्बन्धके बाद होनेवाले प्रथम ग्रहणको अथग्रह कहते हैं । विषय और विषयीका सन्निपात इनेपर दर्शन होता है उसके पश्चात् जो पदार्थका ग्रहण होता है वह अथग्रह कहलाता है । जैसे पक्ष इन्द्रियके द्वारा 'यह शुक्ल रूप है' ऐसा ग्रहण करना अथग्रह है । अथग्रहके द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थमें उसके विशेषके ज्ञानन की इच्छा ईहा कहलाती है । जैसे, जो शुक्ल रूप देखा है 'यह क्या वस्तु है' इस प्रकार विशेष ज्ञाननकी इच्छा या 'यह क्या पताका है' इस प्रकार विशेष ज्ञाननकी इच्छा ईहा है । विशेषके निश्चय द्वारा जो यथार्थ ज्ञान होता है उसे अथाय कहते हैं । जैसे उत्पत्तन नियतन और पक्ष विशेष आदिके द्वारा यह वस्तु है ही है पता नहीं है' पता निश्चय जाना अथाय है । जानी हुई वस्तुका जिस कारण अज्ञानान्तरमें विस्मरण नहीं होता उसे धारणा कहते हैं । जैसे यह वही वस्तु है जिसे प्रायःकाल मीने देखा था ऐसा जानना धारणा है ।

( १ )—माधव—मु० । ( २ )—मर्थत्व पर—मु० । ( ३ ) पठाकेति । मु० । ( ४ ) उत्पत्तनपक्ष आ , वि०१, वि०२ । ( ५ ) अवेत्तस्य मु० । ( ६ ) 'तत्पश्चत्तं तत्पत्त्यादिविषयवर्धं चो य वातयाजौगी । काल तरे व र्धं पुष्पशुक्लार्थं धारया वा ठ ।'— वि भा० गा २९१ ।



बलाका पूर्वहि यामहमद्राक्षमिति । 'एषामवप्रहादीनामुपन्यासक्रम उत्पत्तिक्रमकृत ।  
उच्छानामवप्रहादीनां प्रभत्प्रतिपत्त्ययमाह—

**बहुबहुविषक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम् ॥ १६ ॥**

अवप्रहादय क्रियाविशेषा प्रकृता । तदपेक्षोऽय कर्मनिर्देश । वहादीनां  
सेतराणामिति । बहुशब्दस्य संख्यावपुत्यवाचिनो ग्रहणमविष्यत्वात् । सस्यवाची यथा,  
एको द्वौ बहव इति । वपुत्यवाची यथा, 'बहुरोदनो बहु सूप इति । विषशब्द प्रकार  
वाची । क्षिप्रग्रहणमधिरप्रतिपत्त्ययमर्थम् । अनिःसृतग्रहण्य असकलपुद्गलत्वोद्गमार्थम् ।

सूत्रमें इन अवप्रहादिकका उपन्यासक्रम इनके उत्पत्तिक्रमकी अपेक्षा किया है । वात्प्य  
यह है कि जिस क्रमसे ये ज्ञान उत्पन्न होते हैं उसी क्रमसे इनका सूत्रमें निर्देश किया है ।

विशेषाद्य—इस सूत्रमें मतिज्ञानके चार भेद क्रिये हैं सो ये भेद मतिज्ञानकी उपयोग रूप  
अवस्थाकी प्रधानतासे क्रिये गये हैं । इससे इसका अयोपराम भी इतने प्रकारका मान लिया गया है ।  
पदार्थको जानते समय जिस क्रमसे यह उसे जानता है यह इन भेदों द्वारा बतलाया गया है यह इस  
कथनका वात्पर्य है । भेदोंके स्वरूपका निर्देश टीकामें किया ही है । विशेष वक्ष्य्य इतना है कि यह  
ज्ञान किसी विषयको जानते समय उसीको जानता है । एक विषयके निमित्तसे इसका दूसरे विषय में  
प्रवेश नहीं होने पाता । टीकामें अवग्रह आदिके जो दृष्टान्त दिये हैं सो इनका बर्गीकरण इसी दृष्टिसे  
किया गया है ।

इस प्रकार अवग्रह आदिक कथन किया अब इनके भेदोंके दिक्त्वानेके छिये आगेका  
सूत्र कहते हैं—

सेतर ( प्रतिपक्षसहित ) बहु, बहुनिष, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त और ध्रुवक अवग्रह,  
ईहा, अधाय और चारणारूप मतिज्ञान होत हैं ॥

अवग्रह आदि क्रिया विशेषक प्रकरण है उनकी अपेक्षा 'वहादीनां सेतराणां' इस प्रकार  
कर्मकारकका निर्देश किया है । 'बहु' शब्द संख्यावाची और वैपुत्यवाची दोनों प्रकारका है । इन  
द्वानोका यहाँ ग्रहण किया है क्योंकि उनमें कोई विशेषता नहीं है । संख्यावाची बहु शब्द यथा—एक,  
दो, बहुत । वैपुत्यवाची बहु शब्द यथा—बहुत भात, बहुत बाल । 'विष' शब्द प्रकारवाची है ।  
सूत्रमें 'क्षिप्र' शब्दका ग्रहण अस्वी होनेवाले ज्ञानके अज्ञानके छिये किया है । जब पूरी वस्तु

(१) ईदिक्रम नागदिवं नवग्रह नास्तीदिवं न बाबायं । धारिक्रम जं बभु तण बमीऽनगाहादधी ॥ —

वि मा गा २९६। (२) अस्व्य संख्यावाची । तद्यथा एका द्वौ बहव इति । — पा म भा १।१।२।१।

(३) 'बहुरोदनो बहु सूप इति । — पा म भा १।१।२।१।

अनुक्तमभिप्रायेण ग्रहणम् । ध्रुव 'निरन्तर यथाग्रहणम् । सेतरग्रहण प्रतिपक्षसंग्रहार्थम् ।  
 यद्ग्रनामवग्रह अल्पस्यावग्रह बहुविधस्यावग्रह एकविधस्यावग्रह क्षिप्रमवग्रह  
 क्षिरेणावग्रह अनि सुतस्यावग्रह नि सुतस्यावग्रह अनुक्तस्यावग्रह उक्तस्याव  
 ग्रह ध्रुवस्यावग्रह अध्रुवस्यावग्रहश्चेति अवग्रहो द्वादशविकल्प । एवमीहादयोऽपि । त  
 एते पञ्चभिरिन्द्रियद्वारमनसा च प्रत्येकं प्रादुर्भाष्यन्ते । तत्र बह्वग्रहादय मतिज्ञाना ५  
 वरणक्षयोपशमप्रकर्षात् प्रभवन्ति नेतरे इति । तेषामभ्यहितत्वादादी ग्रहण क्रियते ।

बहुवहुविधयो क प्रतिविशेष यावता बहुष्वपि बहुत्वमस्ति बहुविधेष्वपि  
 बहुत्वमस्ति एकप्रकारनानाप्रकारकृती विधाप । उक्तनि सुतयो क प्रतिविशेष ,  
 यावता सकलनि सर्गणाग्नि मृतम् । उक्तमप्येवविधमेव ? अयमस्ति विधाप, अयोपदेः

प्रकट न होकर कुछ प्रकट रहती है और कुछ अप्रकट तब यह अनिःसृत कही जाती है । यहाँ अनिः १०  
 सृतका अर्थ ईयद् निःसृत है अथ इसका ग्रहण करनेके लिये सूत्रमें 'अनिःसृत' पद दिया है । जो  
 कही या विना कही वस्तु अभिप्रायसे जाना जाती है उसके ग्रहण करनेके लिये 'अनुक्त' पद दिया  
 है । जो यथाग्रह ग्रहण निरन्तर होता है उसके ज्ञानके लिये 'ध्रुव' पद दिया है । इनसे प्रतिपक्ष  
 मृत पन्थाका संग्रह करनेके लिये 'सेतर' पद दिया है ।

बहुतका अथग्रह, अल्पका अथग्रह, बहुविधका अथग्रह, एक विधका अथग्रह क्षिपावग्रह, १५  
 अक्षिप्रायग्रह अनिःसृतका अथग्रह, निःसृतका अथग्रह, अनुक्तका अथग्रह, उक्तका अथग्रह, ध्रुवका  
 अथग्रह और अध्रुवका अथग्रह ये अथग्रहके बारह भेद हैं । इसी प्रकार इहादिकर्मसे प्रत्येकके बारह  
 बारह भेद हैं । य सप्त अलग अलग पाँच इन्द्रिय और मनके द्वारा उत्पन्न कराने चाहिये । इनमेंसे  
 बहु अथग्रह आदि मतिज्ञानावरण कमके क्षयोपशमके प्रकृतसे ज्ञात हैं इतर नहीं ।

बहु आदि श्रेष्ठ है अतः उनका प्रथम ग्रहण किया है । २०

शंका—बहु और बहुविधमें क्या अन्तर है । क्योंकि बहु और बहुविध इन दोनोंमें  
 बहुतपना पाया जाता है ?

समाधान—इनमें एक प्रकार और माना प्रकारका अन्तर है । अर्थात् बहुमें प्रकार  
 भेद इष्ट नहीं और बहुविधमें प्रकारभेद इष्ट है ।

१का—उक्त और निःसृतमें क्या अन्तर है—क्योंकि पशुका पूरा प्रकट जाना निःसृत २५  
 है और उक्त भी इसीप्रकार है ?

( १ ) मुँह पया ता०, म० ( २ ) बन्धु वर्णिक । — सु० ।

पूर्वक ग्रहणमुक्तम् । स्वत एव ग्रहण नि सुतम् ।

अपरेषां क्षिप्रनि सत इति पाठः । त एव वर्णयन्ति श्रोत्रेन्द्रियेण शब्दमवगृह्यमाण मयूरस्य वा कुरुरस्य वेति कश्चित्प्रतिपद्यते । अपरस्वल्पमेवा' अित्य इति ।

ध्रुवावग्रहस्य धारणायाश्च क प्रतिविशेषः ? उच्यते, क्षयोपशमप्राप्तिकाले विशुद्धपरिणामसन्तत्या प्राप्तास्क्षयोपशमात्प्रथमसपये यथावग्रहस्तथैव द्वितीयादिष्वपि समयेषु नोनो नाभ्यधिक इति ध्रुवावग्रह इत्युच्यते । यदा पुनर्विशुद्धपरिणामस्य सक्लेश परिणामस्य च मिश्रणात्क्षयोपशमो भवति तत उत्पद्यमानोऽवग्रह कदाचिद् बहूनां कदाचिदस्वस्य कदाचिद् बहुविधस्य कदाचिदेकविधस्य वेति न्यूनाधिकभावादध्रुवावग्रह इत्युच्यते । धारणा पुनर्गृहीतार्थाविस्मरणकारणमिति महधनयोरन्तरम् ।

१ समाधान—इन दोनोंमें यह अन्तर है—अन्यके उपवेशपूर्वक वस्तुका ग्रहण करना उक्त है और स्वतः ग्रहण करना निःसृत है ।

उक्त आचार्योंके मतसे क्षिप्रानिमृत्तके स्थानमें 'क्षिप्रानिमृत्त' ऐसा पाठ है । वे ऐसा व्याख्यान करते हैं कि भोत्र इन्द्रियके द्वारा शब्दको ग्रहण करते समय यह मयूरका है अथवा कुरुरका है ऐसा कोई ज्ञानता है । दूसरा स्वरूपके आश्रयसे ही ज्ञानता है ।

१५ अक्ष—ध्रुवावग्रह और धारणामें क्या अन्तर है ?

समाधान—क्षयोपशम की प्राप्तिके समय विशुद्ध परिणामोंकी परंपराके कारण प्राप्त हुए क्षयोपशमसे प्रथम समयमें जैसा अवग्रह होता है वैसा ही द्वितीयादिक समयमें भी होता है, न न्यून होता है और न अधिक यह ध्रुवावग्रह है । किन्तु अब विशुद्ध परिणाम और सक्लेश परिणामोंके मिश्रणसे क्षयोपशम होकर उससे अवग्रह होता है तब वह कदाचित् बहुवका होता है, कदाचित्

२० अल्पका होता है, कदाचित् बहुविधका होता है और कदाचित् एकविधका होता है । तात्पर्य यह कि उसमें न्यूनाधिक भाव होता रहता है इसलिये वह अध्रुवावग्रह कहलाता है किन्तु धारणा तो गृहीत अर्थके नहीं मूलनेके कारणभूत ज्ञानको करते हैं, अतः ध्रुवावग्रह और धारणामें बड़ा अन्तर है ।

विशेषात्—ये अवग्रह आदि मतिज्ञान द्वारा ज्ञानरूप क्रियाके भेद हैं और बहु आदि उनके कम हैं इस लिये इस सूत्रमें इनका इसी रूपसे निर्देश किया गया है । मतिज्ञान द्वारा पदार्थोंका बहु आदि रूप ज्ञान प्रकारसे अवग्रहण, इन्हन अभाव और धारण होता है यह इसका तात्पर्य है । इन बहु आदिक स्वतःका तथा उनके अन्तरका व्याख्यान टीकामें किया ही है । मालूम होता है कि पूर्वपाद स्वामीक समय इस सूत्रक दो पाठ प्रचलित थे और उनका दो प्रकारसे व्याख्यान भी किया

यद्यथाग्रहादयो यद्वादीना कर्मणामाक्षेप्तारः, यद्वादीनि पुनर्विक्षेपणानि कस्ये  
त्यत आह—

अर्थस्य ॥ १७ ॥

चक्षुरादिविषयोऽयं । तस्य यद्वादिविक्षेपणविशिष्टस्य अवग्रहादयो भवन्तीत्य  
भिसम्बन्धे त्रियते । किमथमिदमुच्यते यावता यद्वादिरथ एव ? सत्यमेव किन्तु प्रवादिषु ५  
रिक्तत्वनानिवृत्त्यर्थं अथस्य इत्युच्यते । भेषित्प्रवादिनो मन्यन्ते रूपादयो गुणा एव इन्द्रिय  
सन्निकृष्यन्ते तेनतपामव ग्रहणमिति ? तदयुक्तम् न हि ते रूपादयो गुणा अमूर्ता इन्द्रि

जाता या त्रिनशा उल्लेख पूर्वपाद स्वामीन स्वयं क्रिया इ । एक पाठ जो उस समय अधिक मान्य  
था या पूर्वपाद स्वामी त्रिसे मूल पाठ मानते रह उसका उल्लेख तो उन्होंने व्याख्यानरूपसे किया  
है और दूसरे पाठका उल्लेख अन्य कुछ आचार्योंके मठभेद रूप से किया है । इन दोनों व्याख्यानों १०  
में जो अन्तर है वह इस प्रकार है—

मूल पाठके अनुसार—

अनिमृत्ज्ञान—अवयवके ग्रहणके समय ही पूरा अवयवीका ज्ञान होना ।

निःसृत्ज्ञान—इससे बलटा ।

पाठान्तरके अनुसार—

निःसृत्ज्ञान—विशयवाको सिधे हुये ज्ञान होना ।

अनिमृत्ज्ञान—विशयवाके बिना साधारण ज्ञान होना ।

अथ कथन सुगम है ।

यदि अवग्रह आदि षट् आदिकको जानते हैं तो षट् आदिक किमपि विशयण हैं अथ इसी  
पाठका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं— २०

अथ ( वस्तुके ) अवग्रह, ईडा, अवाय और धारणा च साग मनिज्ञान होत ह ॥१७ ॥

षट् आदि इन्द्रियोंका विषय अथ कहलाता है । षट् आदि विशयणोंसे युक्त उस ( अथ )  
के अवग्रह आदि होते हैं जमा यहाँ मन्थन करना चाहिये ।

गका—यका षट् आदिक अथ ही हैं, अत यह सूत्र किमसिधे कया ?

समाधान—यह सत्य है कि षट् आदिक अथ ही हैं ता मा अन्य आदियोंका कल्पनाका  
निराकरण करनेके लिये अथम्य सूत्र कहा है । २१

किन्तु हा प्रवाण मानते हैं कि रूपान्ति गुण हा इन्द्रियोंके साथ सम्बन्धका प्राप्त  
हात है अतः उन्हीका महत्त्व हाता है । किन्तु उनका जमा मानना ठीक नहीं है क्या कि प्रवाणदिक  
गुण अमूर्त हैं अतः उनका इन्द्रियोंके साथ सम्बन्ध नहीं हा सकता ।

यसन्निकपमापद्यन्ते । न<sup>१</sup> तर्हि इदानीमिदं भवति रूपं मया दृष्टं गच्छो वा घ्रात इति । भवति च । कथं ? इत्यति पर्यायास्तर्वाव्यय इत्यर्थो द्रव्यं तस्मिन्निन्द्रियैः सन्निकृष्यमाणे तन्व्यसिरेकाद्रूपाधिष्वपि सव्यवहारो युज्यते ।

किमिमे अवग्रहादयं सर्वम्यन्द्रियानिन्द्रियस्य भवन्ति उत कश्चिद्विषयविशेषोऽस्तीत्यत आह—

व्यञ्जनस्यावग्रह<sup>२</sup> ॥ १८ ॥

व्यञ्जनमव्यक्त<sup>३</sup> शब्दादिजात तस्यावग्रहो भवति नेहादयः । किमर्थमिदं ? नियमार्थम् अवग्रह एव नेहादय इति । स तर्हि एवकार कर्तव्य ? न कर्तव्य । सिद्ध

शंका—यदि ऐसा है तो 'मैंने रूप देखा, मैंने गंध सूंघा' यह व्यवहार नहीं हो सकता,

१० किन्तु होता अवश्य है तो इसका क्या कारण है ?

समाधान—'जो पर्यायोंको प्राप्त होता है या पर्यायोंके द्वारा जो प्राप्त किया जाता है' यह 'अर्थ' शब्दकी व्युत्पत्ति है । इसके अनुसार अर्थ इव्य ठहरता है । उसके इन्द्रियोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त होने पर चू कि रूपादिक उससे जन्मित है अतः रूपादिकमें भी ऐसा व्यवहार बन जाता है कि 'मैंने रूप देखा, मैंने गन्ध सूंघा ।'

१५

विशेषार्थ—ज्ञानका विषय न केवल सामान्य है और न विशेष किन्तु उभयारमक पदार्थ है । प्रकृतमें इसी बातका खान करनेके लिये 'अर्थस्य' सूत्रकी रचना हुई है । इससे नैयायिक वैरोपिकोंके इस मतका खण्डन हो जाता है कि रूपादि गुण इन्द्रियोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त होते हैं ।

क्या ये अवग्रह आदि सब इन्द्रिय और मनके होते हैं या इनमें विषयकी अपेक्षा कुछ भेद है ? अब इसी बातके बखानेके लिये आगका सूत्र करते हैं—

२०

व्यञ्जनका अवग्रह ही होता है ॥ १८ ॥

आभ्यक्त शब्दादिके समूहको व्यञ्जन करते हैं । इसका अवग्रह ही होता है ईहादिक नहीं होते ।

शंका—यह सूत्र किसलिये आया है ?

समाधान—अवग्रह ही होता है ईहादिक नहीं होते इस प्रकारका नियम करनेके लिये यह सूत्र आया है ।

२५

शंका—तो फिर इस सूत्रमें एवकार का निर्देश करना चाहिये ।

( १ ) 'न तर्हि इदानीमिदं भवति । — वा मा १ १ ४ ।

( २ ) 'व्यञ्जनात्तन्नि वि नाशं तत्पदस्य तस्य नि तो समन्वय । वि मा गा १९६ । ( १ )—महो भवति । क्रि-दि०३, दि २, भा०, मु० ।

विधिरारम्भमाणो नियमार्थः' इति अन्तरेणवकार नियमार्थो भविष्यति । ननु अवग्रह  
ग्रहणमुभयत्र तुल्यं तत्र किं कृतोऽप्य विधाय ? अर्थावग्रहव्यञ्जनावग्रहयोर्व्यङ्गाव्यक्तकृतौ  
बिधौप । कथम् ? अभिनवशरावादींकरणवत् । यथा जलकण<sup>३</sup>द्वित्रासिक्त सरावोऽभिनवो  
नार्त्तभवति स एव पुन पुन<sup>४</sup> सिच्यमान शनस्तिभ्यति एवं श्रोत्रादिष्विन्द्रियेषु शब्दा  
दिपरिणता पुद्गला<sup>५</sup> द्वित्रादिषु समयेषु गृह्यमाणा न व्यक्तीभवन्ति, पुन पुनरवग्रहे  
सति व्यक्तीभवन्ति । अतो व्यक्तग्रहणात्प्राग्व्यञ्जनावग्रह व्यक्तग्रहणमर्थावग्रह ।  
ततोऽप्यक्तावग्रहणादीहावयो न भवन्ति ।

समाधान—नहीं करना चाहिये क्योंकि 'किसी कायके सिद्ध रहते हुए यदि उसका पुन  
बिधान किया जाता है तो वह नियमके लिये होता है' इस नियमक अनुसार सूत्रमें एवकारके न  
करने पर भी वह नियमक प्रयोजक हो जाता है ।

शंका—अब कि अवग्रहका ग्रहण दोनों जगह समान है तब फिर इनमें अन्तर किनिमित्तक है ?

समाधान—इनमें व्यक्त ग्रहण और अव्यक्त ग्रहणकी अपेक्षा अन्तर है ।

शंका—कैसे ?

समाधान—जैसे माटीका नया सकोय जलके दो तीन कणोंसे सीपने पर गीला नहीं होता  
और पुनः पुनः सीपने पर वह धीरे धीरे गीला हो जाता है । इसी प्रकार श्रोत्र आदि इन्द्रियोंके  
द्वारा किये गये शब्दादिरूप पुद्गल स्वरूप दो तीन समयोंमें व्यक्त नहीं होते हैं किन्तु पुनः पुनः ग्रहण  
होने पर वे व्यक्त हो जाते हैं । इससे सिद्ध हुआ कि व्यक्त ग्रहणसे पहले पहले व्यञ्जनावग्रह होता है  
और व्यक्त ग्रहण का नाम अर्थावग्रह है । यही कारण है कि अव्यक्त ग्रहणपूर्व ईहादिक नहीं होते ।

विशेषार्थ—यहां अव्यक्त शब्दादिकको व्यञ्जन कहा है । किन्तु बीरसेन स्वामी इस  
छन्दसे सहमत नहीं हैं उनक मतानुसार प्रात अथका प्रथम ग्रहण व्यञ्जन कहलाता है ।

विचार करने पर ज्ञात होता है कि दृष्टिमेंसे ही ये दो उक्तण कह गये हैं । तत्पश्चात् इनमें कोई  
भेद नहीं । प्रात अथका प्रथम ग्रहण व्यञ्जन है यह तो पूर्वपाद स्वामी और बीरसेनस्वामी दोनोंको  
ज्ञात है । केवल पूर्वपाद स्वामीन स्वप्न, रसना, प्राण और श्रोत्र इन्द्रियोंके द्वारा विषयक प्रात होनेपर  
प्रथम ग्रहणक समय उसकी क्या स्थिति रहती है इसका विग्रह स्पष्टीकरण करनेक लिय शब्दजातके  
पहले अव्यक्त विग्रहण दिया है । और बीरसेन स्वामी एसा विग्रहण देना ज्ञात नहीं मानत ।  
शय कथन सुगम है ।

( १ ) शिष्टे विधिरारम्भमाणो शयकार्षो भवति ।— पा म भा १ १ ३। ( २ ) द्विविध- मु० ।

( ३ ) द्विपादि मु० ।

सर्वेन्द्रियाणामविशेषेण व्यङ्गनावग्रहप्रसङ्गे यत्रासम्भवस्तदर्थप्रतिषेधमाह—

न चक्षुरनिन्द्रियाम्याम् ॥ १६ ॥

चक्षुषा अनिन्द्रियेण च व्यङ्गनावग्रहो न भवति । कुत ? अप्राप्यकारित्वात् ।

यतोऽप्राप्तमथमविविक्त 'युक्त सन्निकषवि'पयेऽवस्थित बाह्यप्रकाशाभिव्यक्तमुपलभते

५ चक्षु मनश्चाप्राप्तमित्यनयोव्यङ्गनावग्रहो नास्ति ।

चक्षुषोऽप्राप्यकारित्व कथमव्यवसीयते ? आगततो युक्तसदृश । आग मतस्तार्वत्—

पुष्ट सुषेदि सर्व अपुष्ट येव पस्तवे रूम् ।

गंध रस च फास पुष्टमपुष्टं विषाणादि ॥”

१० सच इन्द्रियोंके समान रूपसे व्यङ्गनावग्रहके प्राप्त होने पर किन इन्द्रियोंके द्वारा यह सम्भव नहीं है वस्तु निषेध करनेके लिये आगेका सूत्र करते हैं—

चक्षु और मनसे व्यङ्गनावग्रह नहीं होता ॥ १६ ॥

चक्षु और मनसे व्यङ्गनावग्रह नहीं होता है ।

संका—क्यों ?

१५ समाधान—क्योंकि चक्षु और मन अप्राप्यकारी हैं । चू कि नेत्र अर्थात् योग्य स्थितिमें अवस्थित, युक्त, सन्निकषके योग्य देशमें अवस्थित और बाह्य प्रकाश आदिसे व्यक्त हुए पदार्थको ग्रहण करता है और मन भी अर्थात् अर्थको ग्रहण करता है अतः इन दोनोंके द्वारा व्यङ्गनावग्रह नहीं होता ।

संका—अथ इन्द्रिय अप्राप्यकारी है यह कैसे जाना जाता है ?

२० समाधान—आगम और मुक्तिसे जाना जाता है । आगमसे यथा—

'श्रोत्र स्पृष्ट शब्दको सुनता है और अस्पृष्ट द्रव्यको भी सुनता है नेत्र अस्पृष्ट रूपको ही देखता है । तथा माण्ड रसना और स्पर्शन इन्द्रियाँ क्रमसे स्पृष्ट और अस्पृष्ट गन्ध, रस और स्पर्शको जानती हैं ॥'

(१) अर्थात् आ दि १ वि०श (२) पुनरुक्त, ता, ना० । (३) विशिष्ट-मु०, वा०, ना । (४) प्राप्ततौ जानवीर्भ-मु ता, ना । (५) महोऽस्ति । मु । (६) कथमव्यवसी-मु । (७) शाब्द-पुष्टं सुषेदि सर्व अपुष्ट पुष्ट पस्तवे रूम् । अथ रत्नं च गंधं बर्दं पुष्ट विषाणादि ॥ बुद्धि-मु० । आ० नि गा ५ ।

युक्तिवत्—अप्राप्यकारि षष्ठु, स्पृष्टानवग्रहात् । यदि प्राप्यकारि स्यात् त्वगिन्द्रियवत् स्पृष्टम ज्ञान गृहीयात् न तु गृह्यत्यतो मनोवदप्राप्यकारीत्यवसेयम् ।

सत्तद्व्यभुर्नसौ वर्जयित्वा शेषाणामिन्द्रियाणा व्यञ्जनावग्रह । सर्वेषामिन्द्रिया निन्द्रियाणामर्थावग्रह इति सिद्धं ।

युचिते यथा—

षष्ठु इन्द्रिय अप्राप्यकारा हे, क्योंकि यह स्पृष्ट पदार्थको नहीं ग्रहण करती यदि षष्ठु इन्द्रिय प्राप्यकारी होती तो यह तबचा इन्द्रियके समान स्पृष्ट हुए अंजनका ग्रहण करती । किन्तु यह स्पृष्ट अंजनको नहीं ग्रहण करती है इससे मान्य होता है कि मनके समान षष्ठु इन्द्रिय अप्राप्यकारा है ।

अतः सिद्ध हुआ कि षष्ठु और मनको छोड़कर शेष इन्द्रियोंके व्यञ्जनावग्रह होता है । तथा १०  
षष्ठु इन्द्रिय और मनके अभावग्रह होता है ।

विशयाथ—पहले अवग्रहके दो भेद यतला थाय है—अथायग्रह और व्यञ्जनावग्रह । इनमेंसे अथायग्रह ता पापों इन्द्रियों और मन इन छहोंसे होता है किन्तु व्यञ्जनावग्रह षष्ठु और मन इन दो से नहीं होता यह इस सूत्रका भाय है । षष्ठु और मनसे व्यञ्जनावग्रह क्यों नहीं होता, इसका निर्देश करते हुए जा टीकाम लिखा है उसका भाय यह है कि ये दोनों अप्राप्यकारा हैं अथवा ये १५  
दोनों विषयका स्पृष्ट करके नहीं जानते हैं इसलिये इन द्वारा व्यञ्जनावग्रह नहीं होता । इससे यह अपने आप फलित हो जाता है कि व्यञ्जनावग्रह प्राप्त अथका ही होता है और अथायग्रह प्राप्त तथा अप्राप्त ज्ञानों प्रकारके पदार्थोंका होता है । यही यह कहा जा सकता है कि यदि अप्राप्त अथका अथायग्रह होता है तो हीमो इसमें पाया नहीं पर प्राप्त अथका अथायग्रह कैसे हो सकता है ? सा इस संकाहा यह समाधान है कि प्राप्त अथका सब प्रथम ग्रहणके समय ता व्यञ्जनावग्रह हो जाता है किन्तु पार्थमे उसका भा अथायग्रह हो जाता है ।

नत्र प्राप्त अथके क्या नहीं जानता इसका निर्देश तो टीकामें किया ही है । इसी प्रकार शेष इन्द्रियों भा क्वापिन् अप्राप्यकारी होती हैं यह भी सिद्ध होता है । प्रायः श्रुतियोंमें जिस प्रकार निधि रगी रहती है उस आर पतनविक्रम मूलक विकारा द्वारा जाता है । यह तभी पतन मरणा है जब स्वान इन्द्रियद्वारा अज्ञान अथका मह्य पतन जाता है । इसी प्रकार हमना प्राय आर अथ इन्द्रिय द्वारा भा अथके सिद्ध हो जाता है । शेष कथन सुगम है ।

(१) वर पठ गृहेषु ट कणवर्मण- । १७ वि भा० गा० १ । (-) मर्यादा । -वि० भा० गा० ३ । १ ।



आह निर्दिष्ट मतिज्ञान लक्षणतो विकल्पतश्च तदनन्तरमुद्दिष्ट यत् भुवं  
तस्येवानीं लक्षणं विकल्पश्च वक्ष्य्य इत्यत आह—

**भुत मतिपूर्वं ज्ञानेकदादृश्यमेदम् ॥ २० ॥**

श्रुतज्ञानोऽपि अज्ञानमुपादय व्युत्पादितोऽपि रूढिवशात् कस्मिंश्चिज्ज्ञानविशेषे  
वर्तते । यथा कुशलवनकम प्रतीक्ष्य व्युत्पात्तितोऽपि कुशलज्ञानो रूढिवशात्प्रयवदाते वर्तते ।  
क पुनरसौ ज्ञानविशेष इति अथ आह 'भुत मतिपूर्वम्' इति । श्रुतस्य प्रमाणत्वं  
पूरयतीति पूव निमित्त कारणमित्यनर्धान्तरम् । मतिर्निर्दिष्टा । मति पूर्वमस्य मतिपूर्वं  
मतिकारणमित्यर्थं । यदि मतिपूर्वं भुत तदपि मत्यात्मक प्राप्नोति कारणसदृशं हि लोके  
कार्यं दृश्यम् इति । नतवकातिकम् । दृष्ट्यादिकारणोऽपि घटो न दृष्ट्याद्यात्मक । अपि

१० अज्ञान और भेदोंकी अपेक्षा मतिज्ञानका कथन किया । अब उसके बाद भुतज्ञानके अर्थ  
और भेद कहन चाहिये, इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

भुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है । वह दो प्रकारका, अनेक प्रकारका और बारह  
प्रकारका है ॥२०॥

यह 'भुत' शब्द ज्ञानने रूप अर्थकी मुख्यतासे निष्पादित है तो भी रूढिसे उसका वाच्य  
कोई ज्ञानविशेष है । जैसे 'कुराख' शब्दका व्युत्पत्ति अर्थ कुराका देवना है तो भी रूढिसे उसका  
अर्थ पयवदात अर्थात् विमल या मनोज्ञ किया जाता है ।

यह ज्ञानविशेष क्या है इस बातको ध्यानमें रखकर 'भुत मतिपूर्वम्' यह कहा है । जो भुतकी  
प्रमाणताको पूरता है । इस म्युत्पत्तिके अनुसार पूर्व, निमित्त और कारण ये प्रकारवाची हैं । मतिका  
अर्थमान्यता पहले कर आये हैं । वह मति किसका पूव अर्थात् निमित्त है यह मतिपूर्व कहलाता है  
जिसका अर्थ मतिकारणक होया है । वाच्य यह है कि जो मतिज्ञानके निमित्तसे होया है उसे  
भुतज्ञान कहते हैं ।

अर्थ—यदि भुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होया है तो वह भुतज्ञान भी मत्यात्मक ही प्राप्त  
होता है क्यों कि लोकमें कारणके समान ही कार्य देखा घाता है ?

समाधान—यह कोई एकान्त नियम नहीं है कि कारणके समान कार्य होता है । यद्यपि  
२५ घटकी उत्पत्ति दृष्ट्यादिकसे होती है तो भी वह दृष्ट्याद्यात्मक नहीं होता । दूसर मतिज्ञानके रहते

(१)—प्रीत्या शु- सु० । (२) 'अवदाते द विमले मनीषा—'अ० ना ४, ६६ । (३)

पुनं पूर्यमाणभावश्चो न मई । वि० भा० गा० १ ४ ।

च सति तस्मिन्स्तदभावात् । सत्यपि मतिज्ञाने बाह्यश्रुतज्ञाननिमित्तसन्निधानेऽपि प्रवक्तव्यतावरणोदयस्य श्रुताभावः । श्रुतावरणक्षयोपशमप्रकर्षे तु सति श्रुतज्ञानमुत्पद्यत इति मतिज्ञान निमित्तमात्रं ज्ञेयम् ।

आह, श्रुतमनादिनिघनमिष्यते । तस्य मतिपूवकत्वे तदभाव आदिमतोऽन्त यथात् । ततश्च पुरुषकृतित्वाद्प्रामाण्यमिति ? नप दोष द्रव्यादिसामान्यापणात् ५ श्रुतमनादिनिघनमिष्यते । न हि केनचित्पुरुषेण कश्चित्कृत्याश्चित्कथञ्चिदुत्प्रेषितमिति । तेजामेव विशेषापेक्षया आदिरन्तश्च सम्भवतीति 'मतिपूवकम्' इत्युच्यते । यथाऽकुरो वीज पूवकं स च सन्तानापेक्षया अनादिनिघन इति । न चापेक्षेयत्व प्रामाण्यकारणम् चौर्वाषुपदेशस्यास्मयमाणकन्तु कस्य प्रामाण्यप्रसङ्गात् । अनियस्य च प्रत्यक्षादे प्रामाण्ये को विरोधः । १

हृष्ट भी श्रुतज्ञान नहीं होता । यद्यपि मतिज्ञान रहा आता है और श्रुतज्ञानके बाह्य निमित्त भी रह आते हैं तो भी जिसके श्रुतज्ञानावरणका प्रकर्ष उदय पाया जाता है उसके श्रुतज्ञान नहीं होता । किन्तु श्रुतज्ञानावरण कर्मका प्रकर्ष क्षयोपशम होनेपर ही श्रुतज्ञान होता है इसलिये मतिज्ञान श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्तमात्र जानना चाहिये ।

शक्य—श्रुतज्ञानको अनादिनिघन कहा है । ऐसी अवस्थामें उस मतिज्ञानपूवक मान १५ लन पर उसकी अनादिनिघनता नहीं बनती क्योंकि जिसका आवृत्ति होता है उसका अन्त अवश्य होता है । और इसलिये वह पुरुषका काय होनेसे उस प्रमाण नहीं माना जा सकता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि द्रव्य आदि सामान्य नयकी मूर्त्यतास श्रुतको अनादिनिघन कहा है । किसी पुरुषन कही और कभी किसी भी प्रकारसे उस किया नहीं है । हाँ उन्ही द्रव्य अणि विशेष नयकी अपेक्षा उसका अणि और अन्त सम्भव है २ इसलिये वह मतिपूवक होता है ऐसा कहा जाता है । उस कि अकृत धीजपूवक होता है फिर भी वह सन्तानकी अपेक्षा अनादिनिघन है ।

सूत्रे जो यह कहा है कि पुरुषका काय होनेसे वह अप्रमाण है सा अपौरुषयता प्रमाणताका कारण नहीं है । यदि अपौरुषयताको प्रमाणताका कारण माना जाय तो जिसके कर्ताका स्मरण नहीं होता ऐसे चोरी आदिक उपदेश भी प्रमाण हो जायेंगे । ५५

तीसरे प्रत्यक्ष आदि ज्ञान अनित्य होकर भी यदि प्रमाण मान जात है तो इसमें क्या विरोध है अर्थात् कुछ भी नहीं ।

आह, प्रथमसंभ्यन्तवोत्पत्तौ युगपज्ज्ञानपरिणामाभितिपूर्वकत्व श्रुतरय नोपपद्यते ? तदयुक्तम् सम्यक्त्वस्य तदपक्षत्वान् । आत्मलोभस्तु क्रमवानिति मतिपूर्वकत्व व्याघाताभाव ।

आह मतिपूर्व श्रुतमित्यतस्लक्षणमव्यापि श्रुतपूर्वमपि श्रुतमित्यते । उच्यते—  
 शब्दपरिणतपुद्गलस्फघावाहितवणपदवाक्यादिभावाच्चक्षुरादिविषयमाच्च अश्रुतविषय  
 भावभाषनादव्यभिचारिण कृतसगीतिजनो घटाज्जलधारणादि कार्यं सम्बन्धन्तर  
 प्रतिपक्षे भूमावेवाग्यादिब्रह्म तदा श्रुतात् श्रुतप्रतिपत्तिरिति ? नच दोष तस्यापि  
 मतिपूर्वकत्वमुपचारत । श्रुतमपि क्वचिमतिरित्युपचर्यत मतिपूर्वकत्वाविति ।

पाठा—प्रथमोपशम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके साथ ही ज्ञानकी उत्पत्ति होती है अतः श्रुतज्ञान

१ मतिज्ञानपूर्वक होना है यह कथन नहीं बनता ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि ज्ञानमें समीचीनता सम्यग्दर्शनके निमित्तसे प्राप्त होती है । इन दोनोंका आत्मरूप तो क्रमसे ही होता है इसलिये श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है इस कथनका व्याघात नहीं होता ।

पाठा—मतिज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान होता है इस लक्षणमें अव्यापित दोष आता है क्योंकि  
 १५ श्रुतज्ञानपूर्वक भी श्रुतज्ञान होता है ऐसा कहा जाता है । यथा—किसी एक जीवने बर्ण पत्र और वाक्य आदि रूपसे शब्द परिणत पुद्गल स्कन्धोंका कण इष्टिमग्राह्य ग्रहण किया । अनन्तर उससे घटपदार्थे विषयक प्रथम श्रुतज्ञान हुआ । यदि उसने घटके कार्योंका संकेत कर रखा है तो उसे उस घटज्ञानके वाद जलधारणा दूसरे कार्योंका ज्ञान होता है और तब श्रुतज्ञानसे श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । या किसी एक जीवने वस्तु आदि इन्द्रियोंके विषयको ग्रहण किया । अनन्तर उसे उससे भूमापि पदार्थविषयक प्रथम श्रुतज्ञान हुआ । यदि उसे भूमापि और अग्नि आदि ब्रह्मके सम्बन्धका ज्ञान है तो वह भूमादिके निमित्तसे अग्नि आदि ब्रह्मको जानता है और तब भी श्रुतज्ञानसे श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है । इसलिये मतिज्ञानपूर्वक ही श्रुतज्ञान होता है यह बात नहीं बनती ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जहाँ पर श्रुतज्ञानपूर्वक श्रुतज्ञान हाता है वहाँ पर प्रथम श्रुतज्ञान उपचारसे मतिज्ञान माना गया है । श्रुतज्ञान भी वहाँ पर मतिज्ञानरूपसे उपचारित किया जाता है क्योंकि श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है ऐसा नियम है ।

(१) 'आत्मरूपेणैव म समकालाई जसो मद्रूपार्थ । ता न सुप मद्रूपार्थ मद्रूपान् वा मद्रूपान्—वि भा वा १६७ । (२) 'इहमविमद्रूपार्थ समकालाई न नृवजीवो वि । मद्रूपार्थ मद्रूपार्थे मद्रूपार्थो मद्रूपमसा ।—वि भा वा १६८ । (३) पक्ष्याद्यादि—आ वि १ । (४)—मगति—नृ । (५)—सम्बन्धान्तर ता भा ।

भेदस्य प्रत्येक परिसमाप्यते द्विभेदमनेकभेद द्वादशभेदमिति । द्विभेद तावत्—अहमवाह्यमहमप्रविष्टमिति । अहमवाह्यमनेकविध दशवकालिकोत्तराध्ययनादि । अहमप्रविष्ट द्वादशविधम् । तद्यथा आचार मूत्रकृत स्थान समवाय व्याख्याप्रज्ञप्ति शातुषमकथा उपासकाध्ययन अन्तःकृद्बन्ध अनुसारीपपादिभेदस्य प्रस्तव्याकरण विपाकसूत्र दृष्टिवाद इति । उष्टिवाद १ पञ्चविध—परिक्रम सूत्र ५ प्रथमानुयोग पूर्वगत चूलिकाश्चेति । तत्र पूर्वगत चतुर्दशविधम्—उत्पादपूर्व आप्रायणीय बीर्यानुप्रवाद अस्तिनास्तिप्रवाद ज्ञानप्रवाद सत्यप्रवाद आत्मप्रवाद कर्मप्रवाद प्रत्याभ्यासनामधेय विद्यानुप्रवाद कल्याणनामधेय प्राणावाय क्रियाविद्याल लोकविन्दुसारमिति । तदन्तु श्रुत द्विभेदमनेकभेद द्वादशभेदमिति ।

किञ्चोऽप्य विधेय ? वक्तुविद्यापकृत । त्रयो वक्तार—सर्वमस्तीक्ष्णकर इतरो १ वा श्रुतकवली आरानीयश्चेति । तत्र सवज्ञम परमपिणा परमाचिन्त्यकवलज्ञानविभूति विशपग अयत आगम उद्विष्ट । तस्य प्रत्यक्षमधिगवात्प्रधीणदोपत्वाच्च प्रामाण्यम् । तस्य साक्षाच्छिष्ययुद्धयतिशयद्वियुक्तगणधरै श्रुतकवलिमिरनुस्मृतत्रयचरचनमहगपूर्व

सूत्रमेव आय हृए भवे शक्तो दो आदि प्रत्येक सधके साध जोड सेना चाक्षिप । यथा—वा भन अनक भद ओर धारह भेद । धुनगानर दो भव अंगवाह्य ओर अंगप्रविष्ट है । अगवाह्यके १५ वदावकाश्चि ओर उलगध्ययन आदि अनक भव हैं । अगप्रविष्टक वारह भन हैं । यथा—भाषार सूत्रकृत स्थान समवाय व्याख्याप्रज्ञप्ति शातुषमकथा उपासकाध्ययन अन्तःकृद्बन्ध अनुसारीप पात्किन्श प्रस्तव्याकरण विपाकसूत्र और दृष्टिवाद । दृष्टिवादके पांच भेद हैं—परिक्रम सूत्र प्रथमानुयोग पूर्वगत और चूलिका । इनमेंसे पूर्वगतक चौदह भेद हैं—उत्पादपूर्व अप्रायणीय बीर्यानुवाद अस्तिनास्तिप्रवाद ज्ञानप्रवाद सत्यप्रवाद आत्मप्रवाद कर्मप्रवाद प्रत्याभ्यासनामधेय विद्यानुवाद कल्याणनामधेय प्राणावाय क्रियाविद्याल और लोकविन्दुसार । इस प्रकार यह श्रुत दो प्रकारका अनक प्रकारका और धारह प्रकारका है ।

धक्ता—यह भेद किञ्चत है ?

समाधान—यह भद वक्तविधेयकृत है । वक्ता तीन प्रकारक है—सर्वज्ञ तीक्ष्णकर या सामान्य केवली तथा धुनकवली और आरानीय । इनमेंसे परम ऋषि सवज्ञ उत्कृष्ट और अचिन्त्य कवलज्ञानरूपी विभूतिविधेयसे युक्त है । इस कारण उन्हीं अर्थरूपसे आगमका उपदेश दिया । २५ य सवज्ञ प्रत्यक्षदर्शी और दीपमूकन है इसलिय प्रमाण है । इनक साक्षात् सिष्य और बुद्धिके अतिशयरूप ऋषिसे युक्त गणधर धुनकवलिर्गोम अर्थरूप आगमका स्मरण कर अग और पूर्वप्रश्नोंकी

लक्षणम् । तत्प्रमाणम्, तत्प्रामाण्यात् । आगतीयं पुनराचार्यं कालद्वीपालसिन्धुपिताम्  
मतिबलविद्यमानुग्रहाय दशवैकालिनाद्युपनिबद्धम् । तत्प्रमाणमथतस्तदेवमिति  
क्षीराणञ्जलं षट्गृहीतमिव ।

रचना की । सवपनेकनी प्रमाणताक कारण य भी प्रमाण है । तथा आगतीय आचार्योक्त कारणोप  
२ जिनकी आयु मति और बल पत्र गया ह उसे सिद्धोक्त उपकार करनेक लिय दमववासिक आदि  
प्रय रत्न । जिन प्रकार क्षीरमागरेका जल पत्रमें भर लिया जाता ह उसी प्रकार य ग्रन्थ भी अर्थ  
रूपसे व हा हें इसलिय प्रमाण ह ।

विशयार्थ-मतिज्ञान श्रुतज्ञानका कारण जिस रूपमें ह मतिज्ञान और श्रुतज्ञानमें अन्तर  
क्या है श्रुत अनाग्निमित और सादि कसे है श्रुतक मत कितन और कौन कौन ह,  
१ श्रुतमें प्रमाणता कसे आती ह इस्यादि बातोंका विशय विचार तो मूलमें किया हो ह । यही  
कवक विचारणीय विषय यह है कि श्रुतज्ञानका निरूपण करत समय सूत्रकारन कवल द्रव्य आगम  
श्रुतका ही निरूपण क्यों किया ? अनुमान आदि एसे बहुवच जान ह जिनका अन्तर्भाव श्रुतज्ञानमें  
किया जाता ह फिर उनका निर्देश यहाँ क्यों नहीं किया ? क्या श्रुतज्ञान द्रव्य आगम श्रुतके ज्ञान  
तक ही सीमित है और अनुमान आदिका अन्तर्भाव सूत्रकारक मठानुसार मतिज्ञानम होता ह ? म  
२ एसे विचारणीय प्रश्न ह जिनका प्रकृतमें समाधान करना आवश्यक ह ।

बात यह है कि जने परम्परामे द्रव्य आगम श्रुतकी प्रघातता सदास बनी आ रही ह  
इसलिय सूत्रकारने श्रुतज्ञानक निरूपणक समय उसका प्रमुखतास निर्वेध किया है । पर इसका यह  
तात्पर्य नहीं कि श्रुतज्ञान द्रव्य आगम श्रुतके ज्ञान तक ही सीमित ह । मतिके सिवा अनुमान आदि  
१ दोष एव परोक्ष ज्ञानोक्त अन्तर्भाव श्रुतज्ञानमें ही होता ह क्योंकि इन ज्ञानोंमें हनु आदिका  
प्रत्यक्ष ज्ञान आदि होने पर ही इन ज्ञानोंकी प्रवृत्ति होती है । उपाहरणार्थ नेत्र इन्द्रियसे  
धूमका ज्ञान होता है । अनन्तर व्याप्तिका स्मरण होता है तब जाकर 'यहाँ अग्नि होती  
कहिसे यह अनुमान होता है । कहीं कहीं मतिज्ञानमें भी इमक अन्तर्भावका निर्वेध भिन्नता  
ह पर वह कारणरूप ही जानना चाहिये । मतिज्ञान श्रुतज्ञानकी उत्पत्तिमें निमित्त है इसलिय  
कारणमें कार्यका उपचार करक कही कहीं अनुमान आदिका भी मतिज्ञान रूपसे निर्वेध  
२ किया जाता ह ।

एक बात और विचारणीय ह और वह यह कि यह श्रुतज्ञानका प्रकरण ह द्रव्यश्रुतका मही  
इमन्धिये यहाँ सूत्रकारने श्रुतज्ञानक मद्र न विस्कारक द्रव्यश्रुतक मद्र क्यों लिखनाये ? उत्तर यह  
है कि श्रुतज्ञानावरण कर्मके क्षयोपसमना और द्रव्यश्रुतका अन्योन्य सम्बन्ध है । क्षयोपसमके  
अनुसार होनवाले श्रुतज्ञानको ध्यानमें रक्कड ही द्रव्यश्रुतका विभाग किया गया है । यही कारण है  
१ कि यहाँ श्रुतज्ञानका प्रकरण होते हुए भी द्रव्यश्रुतके मद्र गिनाये गय हैं । इस बातकी विशेष  
धानकारीके लिये गोम्पटसार बीजकाण्डमें निविष्ट ज्ञानमार्गका द्रष्टव्य है ।

व्याख्यात परोक्षम् । प्रत्यक्षमिदानीं वक्ष्यन्वम् । तद् द्वेषा—देशप्रत्यय संवप्रत्यय च । देशप्रत्ययसमवधिमन-पययज्ञाने । सर्वप्रत्यय केवलम् । यद्यवमिदमेव सावदवधिज्ञान त्रि प्रकारस्य प्रत्ययस्याद्य व्याक्रियतामित्यत्रोच्यते—द्विविधोऽवधिभवप्रत्यय क्षयोपशम निमित्ताश्चेति । तत्र भवप्रत्यय उच्यते—

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम् ॥ २१ ॥

भव इत्युच्यते । को भव ? आयुर्नामकर्मोदयनिमित्त आरमन् पर्यायो भव । प्रत्यय कारण निमित्तमित्यनथान्तरम् । भव प्रत्ययोऽस्य भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणां वदितव्यम् । यद्वेषेव तत्र क्षयोपशमनिमित्तरथ न प्राप्नोति ? नैव दोष तदाश्रयात्तिसिद्धे । भव प्रतीत्य क्षयोपशम सजायते इति वृत्त्वा भव प्रथानकारणमित्युपदिश्यते । यथा पतत्रिणो गमनमाकाश भवनिमित्ताम् न शिक्षागुणविशेष तथा देवनारकाणां १

परोक्ष प्रमाणका व्याख्यान किया । अव प्रत्यय प्रमाणका व्याख्यान करना है । वह दो प्रकारका है—शुभप्रत्यय और दुःखप्रत्यय । दुःखप्रत्यय अवधिज्ञान और मन-पययज्ञानके भेदसे दो प्रकारका है । सर्वप्रत्यय केवलज्ञान है । यदि ऐसा है तो तीन प्रकारके प्रत्ययके आदिमें कह गये अवधिज्ञानका व्याख्यान करना चाहिये इसलिये कहत है—अवधिज्ञान दो प्रकारका है—भवप्रत्यय और क्षयोपशमनिमित्तक । उनमेंसे सब प्रथम भवप्रत्यय अवधिज्ञानका अगले सूत्र द्वारा बतान करत हैं—  
भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियोंके होता है ॥२१॥ १५

भवका स्वरूप कहत है ।

शका—भव किस कहते है ?

समाधान—आयु नामककर्म उदयका निमित्त पाकर जो जीवकी पर्याय होती है उसे भव कहत है ?

प्रत्यय कारण और निमित्त ये एकापवाची नाम है । जिस अवधिज्ञानक होगमें भव निमित्त है वह भवप्रत्यय अवधिज्ञान है । यह स्व और नारकियोंके जानना चाहिये । २

शका—यदि ऐसा है तो इनके अवधिज्ञानक होगमें क्षयोपशमकी निमित्तता नहीं बनती ?

समाधान—यह बात दोष नहीं है क्योंकि भवक आश्रयसे क्षयोपशमकी सिद्धि हो जाती है । भवका आरम्भन लेकर क्षयोपशम हो जाता है एसा समझकर भव प्रधान कारण है एसा उपपत्त दिया जाता है । जैसे पक्षियाका आकाशमें गमन करना भवनिमित्तक होता है शिक्षा गुणकी अपेक्षासे नहीं होता वम ही देव और नारकियोंक व्रत नियमादिकक अभावम भी अवधिज्ञान १५

प्रतनियमाद्यमात्रेऽपि जायत 'इति भवप्रत्ययः इत्युच्यते । इतरथा हि भव साधारण्य इति कृत्वा सर्वेषामविशेष स्यात् । इत्यपते च तत्रावघ्रे प्रकृपाप्रकृपवृत्तिः । न्व नारकाणाम् इत्यविशेषाभिधानेऽपि भव्यादृष्टिनामेव ग्रहणम् । कुत ? अत्रिग्रहणात् । मिथ्यादृष्टिनां च विभङ्ग इत्युच्यते । प्रकृपाप्रकृपवृत्तिश्च आगमतो विज्ञेया ।

२ यन्मि भवप्रत्ययोऽत्रिभिन्ननारकाणाम् अथ क्षयोपगमहेतुक भेषामित्यत आह—

ज्ञेया ह इत्यस्य उच्ये भवनिमित्तक पदं ह । यदि एसा न माना जाय ता भव तौ सबक साधारण रूपस पाया जाता ह, अत सबक एकसा भवविज्ञान प्राप्त हागा । परन्तु बहूपर अवधिज्ञान न्यूनाधिक कहा ही जाता ह, इससे ज्ञात होता ह कि यद्यपि बहूपर अवधिज्ञान हाता तो क्षयोपसमस ही है पर बहु क्षयोपसम भवक निमित्तस प्राप्त होता है अथ उच

१० भवप्रत्यय कहते ह ।

सूत्रमें 'वनारकाणाम्' ऐसा सामान्य वचन होने पर भी इसस सम्यग्दृष्टियोंका ही ग्रहण होता है क्योंकि सूत्रमें 'अथ' पदका ग्रहण किया है । मिथ्यादृष्टियोंका बहु विभगज्ञान कहता हा । अवधिज्ञान वच और नारकियोंमें न्यूनाधिक किसके कितना पाया जाता है यह आगमस जान लता चाहिये ।

११ विद्यायाः—अवधिज्ञान बहु पर्यायित ज्ञान है जो इन्द्रिय और मनकी सहायताक बिना मूर्तिक पदार्थोंको स्पष्ट जानता है । मन-पर्यायज्ञानका भी यही स्वरूप कहा जाता है पर इससे मन पर्यायज्ञानम मौक्तिक भेद है । बहु मनकी पर्यायों द्वारा ही मूर्तिक पदार्थोंको जानता है सीधे तौरसे मूर्तिक पदार्थोंको नहीं जानता ।

० यह अवधिज्ञान वेद और नारकियोंके उस पर्यायिक प्राप्त होने पर बनायास होता है । इसक सिधे उन्हें प्रयत्न विशेष नहीं करता पड़ता । तथा तियच्छों और मनुष्योंके सम्यग्दर्शन आदि गुणाक निमित्तसे होता है । इससे इसके भवप्रत्यय और क्षयोपसमनिमित्तक य दो मद किये गये है ।

यहां भवप्रत्यय अवधिज्ञान मुख्यत वेद और नारकियोंके बतलाया है पर तीर्थंकर आदिके भी इस अवधिज्ञानकी प्राप्ति देखी जाती ह इसलता यहां विशेष जानना चाहिये । २१ वेद और नारकियोंमें भी उन्हीके भवके प्रथम समयसे अवधिज्ञान होता है जो सम्यग्दृष्टि होते है । मिथ्यादृष्टियोंके इसकी उत्पत्ति पर्याय होनेपर ही होती है और उसका नाम विभगज्ञान है ।

इस ज्ञानकी विशेष जानकारी जीवकाष्ठ घबका बदलाकाष्ठ आदिसे करनी चाहिये ।

यदि भवप्रत्यय अवधिज्ञान वेद और नारकियोंके होता है तो क्षयोपसमहेतुक अवधिज्ञान किसक हाता है । आगे इसी बातको बतलाते है—

क्षयोपशमनिमित्त पृथ्विकल्प शोषाणाम् ॥ २२ ॥

अबधिज्ञानावरणस्य देशधातिस्पष्टकानामुदये सति सबधातिस्पष्टकानामुदयामाव  
क्षय तेषामेवानुदयप्राप्तानां सबधस्या उपशमः । तौ निमित्तमस्येति क्षयोपशमनिमित्त ।  
स शोषाणां वेदितव्य । के पुन शोषा ? मनुष्यास्तियञ्चश्च । तेष्वपि यत्र सामर्थ्यमस्ति  
तत्रव वेदितव्य । न ह्यसंज्ञानामपर्याप्तकानां च तत्सामर्थ्यमस्ति । मस्निनां पयाप्त  
कानां च न सर्वेषाम् । नेपा तर्हि ? यथावतसम्पद्दधानानिनिमित्तसन्निधाने सति  
घान्तक्षीणकर्मणां तस्योपलब्धिभवति । सबस्य क्षयोपशमनिमित्तान्त्र क्षयापशमग्रहण  
नियमाय क्षयोपशम एव निमित्त न भव इति । स एवोऽवधि पृथ्विकल्प । कुत ?  
अनुगाम्यतनुगामिवर्धमानहीयमानावस्थितानवस्थितभेदात् । अश्चिदवधिभिस्कर-  
प्रकाशवद् गच्छन्तमनुगच्छति । कश्चित्तानुगच्छति तत्रवानिपतति' उ' मु' ख' प्रस्तादेशिपुरुष ?

क्षयोपशमनिमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकारका है । जो क्षय अर्थात् तिर्यक्षों और  
मनुष्योंक होता है ॥२२॥

अबधिज्ञानावरण कर्मक वद्यथाती स्पर्धकाका उदय रहत हुए सबधाती स्पर्धकाका  
उदयामापी क्षय और अनुदय प्राप्त इन्हींका सबधस्वरूप उपशम इन दोनोंक निमित्तसे जो  
होता ह वह क्षयोपशमनिमित्तक अबधिज्ञान है । यह क्षय जीवोंक जानना चाहिय । १२

शका—क्षय कौन है ?

समाधान—मनुष्य और तिर्य च । उनमें भी जिनके सान्ध्य है उन्हीक जानना चाहिय ।  
असंज्ञी और अपर्याप्तकोंके यह सामर्थ्य नहीं ह । सज्ञी और पर्याप्तकोंमें भी सबक यह  
सामर्थ्य नहीं होती ।

शका—तो फिर किके होती है ?

समाधान —यद्योक्त सम्यग्दर्शन आवि निमित्तोंक भिन्न पर जिनक अबधिज्ञानावरण  
कर्म शान्त और क्षीण हो गया है उनके यह सामर्थ्य होती है ।

यद्यपि अबधिज्ञानसाक क्षयापशमक निमित्तस होता है तो भी मूत्रमें क्षयोपशम पदका  
ग्रहण यह नियम करनेके लिय किया ह कि उक्त जीवोंक मात्र क्षयापशम निमित्त ह भव नहीं ।

यह अबधिज्ञान अनुगामी अननुगामी वर्धमान हीयमान अवस्थित और अनवस्थितक २२  
भेदस छह प्रकारका ह । कोई अबधिज्ञान जैसे सुषका प्रकार उसके साथ जाता है कस  
अपन स्वामीका अनसरण करता है । कोई अबधिज्ञान अनसरण नहीं करता किन्तु  
अस किमुक्त हुए पुरुषक प्रकृत उत्तरस्वरूप दूसरा पुरुष जो वधन कहता ह वह वही छूट  
जाता है किमुक्त पुरुष उस ग्रहण नहीं करता है बने ही यह अबधिज्ञान भी वही पर छूट



वचनवत् । अपरोऽथधि अरणिनिमयनात्पन्नशुष्कपर्णोपचीयमान घननिचयसमिद्ध  
पावकवत्सम्यग्दर्शनान्निगुणविद्युद्विपरिणामसन्निधानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वद्धते  
आ असम्यग्मलाकम्भ्य । अपरोऽथधि परिच्छिन्नोपादानसन्तत्यग्निशिखावत्सम्यग्दर्श  
नादिगुणहानिसकलेशपरिणामवृद्धियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो हीयते आ अङ्गुलस्या  
५ मस्यभागात् । इतरोऽथधि सम्यग्दर्शनादिगुणावस्थानाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्तत्परिमाण  
एवावशिष्यत न हीयते नापि वधत लिङ्गवत् आ भवक्षयादा केवलज्ञानात्पत्तर्बा ।  
अन्योऽथधि सम्यग्दर्शनादिगुणवृद्धिहानियोगाद्यत्परिमाण उत्पन्नस्ततो वद्धत यावदनन  
वर्धितम्य हीयते च यावन्नन हातम्य यामुवेगप्रेरितजलामिवत् । एव पद्भुविकरपो-  
वधिभवति ।

१ एव व्याख्यातभवधिज्ञान तदनन्तरमिदानीं मन पययज्ञान वक्षसव्यम् । तस्य  
भयपुर सर लक्षण व्याचिख्यामुरिदमाह—

जाता ह । कोइ अबधिज्ञान जगत्क निर्मम्भनस उत्पन्न हुई और सूसे पत्तोस उपचीयमान  
इ घनक समुदायमे बुद्धिको प्राप्त हुइ अग्निके समान सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी विद्युद्वि रूप परि  
१५ णामाक सन्निधानवद्य जितने परिमाणमें उत्पन्न होता है उससे असख्यात लोक जामनेकी  
योग्यता हान तक बढ़ता जाता है । कोई अबधिज्ञान परिमित उपादानसन्ततिवाली अग्निजिज्ञा  
क समान सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी हानिसे हुए सकलेश पारणामोक बढ़नसे जितने परिमाणम  
उत्पन्न होता ह उससे मात्रार्थगुलक असख्यातबे भागप्रमाण जाननेकी योग्यता होने तक घटता जाता  
जाता है । कोइ अबधिज्ञान सम्यग्दर्शनादि गुणोंक समानरूपस स्थिर रहनेक कारण जितने परिमाणम  
उत्पन्न होता है उतना ही बना रहता ह । पर्यायके नाश होने तक या केवलज्ञानक उत्पन्न होने तक  
२ परोरम स्थित मसा आदि विद्युत्के समान न घटता ह और न बढ़ता है । कोई अबधिज्ञान वायुक  
वधस प्ररित जलनी तरंगोके समान सम्यग्दर्शनादि गुणोंकी कमी वृद्धि और कमी हानि होमसे  
जितने परिमाणम उत्पन्न होता है उससे बढ़ता है जहाँ तक उसे बढ़ता चाहिय और घटता है  
जहाँ तक उस घटता चाहिय । इस प्रकार अबधिज्ञान छह प्रकारका है ।

विशेषाथ—यथापक्षमनिमित्तक अबधिज्ञानर तीन भेद ह—दशाथधि परमावधि और  
२५ सर्वाथधि । दशाथधि तिर्य षों और मनुष्याक होता है पर मनुष्योंक मपत अवस्थामें परमावधि और  
सर्वाथधिका प्राप्त होना भी सम्भव है । मनुष्योंक चौथ और पाँचवें गुणस्थानमें दशाथधि और आने  
क गुणस्थानोंमें यथापक्षम ताना हात ह । भवन्त्यय अबधिज्ञानका अन्तर्माथ देवाथधिमं होता ह ।  
एग प्रकार अबधिज्ञानका व्याख्यात किया । अब भाग मनपययज्ञानका व्याख्यात करना  
चाहिय । अब उक्त प्रश्नक साथ लक्षणका बखत करनेकी उच्छासे भागीता मूढ पढ़न है—

ऋजुविपुलमती मनःपर्यय ॥ २३ ॥

ऋज्वी निर्वातिता प्रगुणा च । कस्मान्निर्वतिता ? वाक्कायमनःकृतार्थस्य परमनो गतस्य विज्ञानात् । ऋज्वी मतिर्यस्य सोऽयं ऋजुमति । अनिर्वतिता कुटिला च विपुला । कस्मादनिर्वतिता ? वाक्कायमनःकृतार्थस्य परकीयमनोगतस्य विज्ञानात् । विपुला मतिर्यस्य सोऽयं विपुलमति । ऋजुमतिश्च विपुलमतिश्च ऋजुविपुलमती । एकस्य मतिशब्दस्य गताभत्वादप्रयोग । अथवा ऋजुश्च विपुला च ऋजुविपुले । ऋजुविपुले मती ययोस्ती ऋजुविपुलमती इति । स एष मनःपर्ययो द्विविध ऋजुमतिविपुलमतिरिति । आह उक्तो भेदः, लक्षणमिदानीं वक्तव्यमित्यत्राच्यते—धीर्यान्तरामन पर्ययज्ञाना वरणक्षयोपशानाङ्गोपाङ्गनामलाभायष्टम्भादारमन परकीयमनःसम्बन्धेन लघ्वृत्तिरूपयोगो मनःपर्यय । मतिज्ञानप्रसङ्ग इति चत् उक्तोत्तर पुरस्तात् । अपेक्षाकारण मन इति । परकीयमनसि व्यवस्थिताऽर्थः अनेन ज्ञायते इत्येतावदत्रापेक्षयते । तत्र ऋजुमति

ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान है ॥ २३ ॥

ऋजुका अथ निर्वातित और प्रगुण है ।

शका—किसस निर्वातित ?

समाधान—दूसरेके मनको प्राप्त हुए वचन काय और मनकृत अर्थके विज्ञानसे निर्वातित । १५

किसकी मति ऋजु है वह ऋजुमति कहलाता है ।

विपुलका अर्थ अनिर्वतित और कुटिल है ।

शका—किससे अनिर्वतित ?

समाधान—दूसरेके मनको प्राप्त हुए वचन काय और मनकृत अर्थके विज्ञानसे अनिर्वतित ।

किसकी मति विपुल है वह विपुलमति कहलाता है ।

सूत्रमें जो 'ऋजुविपुलमती' पद आया है वह ऋजुमति और विपुलमति इन पदोंसे समसित होकर बना है । यहाँ एक ही मति शब्द पर्यन्त होनेसे दूसरे मति शब्दका प्रयोग नहीं किया । अथवा ऋजु और विपुल शब्द का क्रमधारय समास करके बाद इनका मति शब्द साथ बहुव्रीहि समास कर लेना चाहिये । तब भी दूसरे मति शब्दकी आवश्यकता नहीं रहती ।

यह मनःपर्ययज्ञान दो प्रकारका है—ऋजुमति और विपुलमति ।

शका—मनःपर्ययज्ञानक भेद तो कह दिया । अब उसका लक्षण कहना चाहिये ? २२

समाधान—धीर्यान्तराय और मनःपर्यय ज्ञानावरणक क्षयोपशम और आंगोपांग नामकर्मक आलम्बनसे आत्मामें जो दूसरेके मनके सम्बन्धसे उपयोग जन्म होता है उसे मनःपर्ययज्ञान कहते हैं ।

शका—यह ज्ञान मनके सम्बन्धसे होता है अतः इस मतिज्ञान होना का प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि इस शकाका उत्तर दे आया है । अर्थात् यहाँ मनकी अपेक्षाया १०

मनःपर्यय कालतो जघन्यन जीवानामात्मनश्च द्वित्राणि भवग्रहणानि, उत्कर्षेण सप्ताष्टौ गत्यागत्यादिभिः प्ररूपयति । क्षेत्रतो जघन्येन गभ्युतिपुषक्त्व उत्कर्षेण योजनपुषक्त्व स्याम्यन्तर न बहिः । द्वितीयः कालतो जघन्येन सप्ताष्टौ भवग्रहणानि उत्कर्षेणा सस्येयानि गत्यागस्याग्निभिः प्ररूपयति । क्षेत्रतो जघन्यन योजनपुषक्त्व, उत्कर्षेण मानुषो

२ तरशलस्याम्यन्तर, न बहिः ।

उक्तयारनया पुनरपि विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेष ॥ २४ ॥

तदावरणक्षयापशमे सति आत्मनः प्रमादो विशुद्धिः । प्रतिपत्तनः प्रतिपातः ।

ह । दूसरेके मनमें अबस्थित अर्थको यह जानता है इतनी मात्र यहाँ मनकी अपेक्षा है ।

१ इनमेंसे शुद्धमति मन पर्ययज्ञान कालकी अपेक्षा जघन्यस जीवोंके और अपने दो हीन भवोंको ग्रहण करता है उत्कर्षसे गति और आगतिकी अपेक्षा साठ आठ भवोंका कथन करता है । क्षेत्र की अपेक्षा जघन्यसे गभ्युतिपुषक्त्व और उत्कर्षसे योजनपुषक्त्वके भीतरकी बात जानता है इससे बाहरकी नहीं । विपुलमति कालकी अपेक्षा जघन्यसे साठ आठ भवोंको ग्रहण करता है उत्कर्षसे गति और आगतिकी अपेक्षा अतस्याठ भवोंका कथन करता है । क्षेत्रकी अपेक्षा जघन्यसे योजनपुषक्त्व और उत्कर्षसे मानुषोत्तर पक्षक भीतरकी बात जानता है इससे बाहरकी बात नहीं जानता ।

१२ विशुद्धि—उत्स्वायसूनुक छठवें अध्यायके दसवें सूत्रके रासवार्तिकमें शका समाधानके प्रसंगसे मनःपर्ययज्ञानकी चर्चा की है । बड़ा बतलाया है कि मनःपर्ययज्ञान अपने विषयमें अक्षिज्ञानके समान स्वमुखसे प्रकृत नहीं होता है । किन्तु दूसरेके मनके सम्बन्धसे ही प्रकृत होता है । इसलिये जैसे मन अतीत और अनागत विषयोंका विचार तो करता है पर साक्षात्कार नहीं करता उसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानी भी मृत और मन्विष्यत् विषयोंको जानता तो है पर सीधे तौरसे साक्षात्कार नहीं करता । इसी प्रकार यह बतमान विषयको भी मनोमत हाथ पर विशेषरूपसे जानता है ।

२२ राजवार्तिकका यह कथन इतना स्पष्ट है जिससे मनःपर्ययज्ञानकी उपयोगात्मक बधाका स्पष्ट आभास मिल जाता है । इसका आशय यह है कि करता तो है यह मनकी पर्यायोंको ही विषय किन्तु तद्द्वारा पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है ।

इसके दो भेद हैं—शुद्धमति और विपुलमति । इसका विशेष खुलासा भूममें किया ही है । पहले मनःपर्ययज्ञानके दो भेद कहे हैं उनका और विशेष ज्ञान करनेके लिये आगेका पूरा कह्य है—

३ विशुद्धि आर अतिपातकी अपेक्षा इन दोनोंमें अन्तर है ॥२४॥

मनःपर्यय ज्ञानावरण कमका क्षयोपशम होने पर जो आत्मामें निर्मलता आती है उसे

न प्रतिपातः अप्रतिपातः । उपशान्तरूपायस्य चारित्रमाहाद्रेकात्प्रच्युतसयमशिक्षरस्य प्रतिपातो भवति । क्षीणरूपायस्य प्रतिपातकारणाभावादप्रतिपातः । विद्युद्विद्ये च अप्रतिपातश्च विद्युद्वयप्रतिपातो । 'ताभ्यां विद्युद्ध्यप्रतिपाताभ्याम् । तयोर्विशेषस्तद्विशेषः । तत्र विद्युद्ध्या साधत्—ऋजुमतेविपुलमतिद्रव्यक्षेत्रकालभावविद्युद्वतरः । कथम् ? इह यः कर्मणद्रव्यानन्तभागोऽस्त्य सर्वावधिना ज्ञातस्तस्य पुनरनन्तभागीकृतस्यान्त्यो भागः ऋजुमतेविषयः । तस्य ऋजुमतिविषयस्यानन्तभागीकृतस्यान्त्या भागो विपुलमतेविषयः । अनन्तस्यानन्तभेत्वात् । द्रव्यक्षेत्रकालता विद्युद्विरुक्ता । भावतो विद्युद्विसूक्ष्मतरद्रव्यविषयत्वादेव वेदितव्या प्रकृष्टक्षयोपशमविद्युद्वियोगात् । अप्रतिपातेनापि विपुलमतिविशिष्टः स्वामिना प्रवृद्धमानचारित्र्योऽप्यत्वात् । ऋजुमतिः पुनः प्रतिपातो स्वामिनां कृपायाद्रेकादीयमानचारित्र्यात्त्वात् ।

विद्युद्वि बहुते है । गिरनका नाम प्रतिपात है और नहीं गिरना अप्रतिपात कहलाता है । उपशान्तरूपाय जीवका चारित्र्य मोहनीयक उदयम समय क्षिप्त छूट जाता है जिससे प्रतिपात होता है और क्षीणरूपाय जीवका पतनका कारण न होनेसे प्रतिपात नहीं होता । इन दानाकी अपक्षा ऋजुमति और विपुलमतिमें भेद है ।

विद्युद्वि यथा—ऋजुमतिसे विपुलमति द्रव्य क्षत्र कार और भाव की अपक्षा विद्युद्वतर है । यथा—कैस ?

ममापात—यहाँ जो कामज द्रव्यका अनन्तका अन्तिम भाग महावधिमानका विषय है उमक भी अनन्त भाग करने पर जो अन्तिम भाग प्राप्त होता है वह ऋजुमतिका विषय है । और इस ऋजुमतिक विषयके अनन्त भाग करने पर जो अन्तिम भाग प्राप्त हुना है वह विपुलमतिका विषय है । अनन्तक अनन्त भेद है अतः य उमरोत्तर मूढम विषय बन जात है । इस प्रकार द्रव्य क्षत्र और कामकी अपक्षा विद्युद्वि कही । भावकी अपक्षा विद्युद्वि उमरोत्तर मूढम द्रव्यका विषय करनेवाला होनेसे ही जान पनी चाहिये क्योंकि इनका उक्त रोमक प्रकृष्ट क्षयोपशम पाया जाता है इसलिये ऋजुमतिसे विपुलमतिमें विद्युद्वि अपिचानी है ।

अप्रतिपातकी अपक्षा नो विपुलमति विशिष्ट है क्योंकि उमक स्वामिनाक प्रवृद्धमान चारित्र्य पाया जाता है । परन्तु ऋजुमति प्रतिपातो है क्योंकि इसका स्वामिनाक कृपायक उदयम पटना हुआ चारित्र्य पाया जाता है ।

विद्युद्विचय—यहाँ मन पयम ज्ञानक दोनों भागमें अन्तर दिग्गमाया गया है । ऋजुमति मूढम ज्ञान है और विपुलमति मूढमज्ञान । इसीसे इसका भेद स्पष्ट हो जाता है । यह विद्युद्विकक भेद है । इससे द्रव्य क्षत्र काम और भावकी अपक्षा पलायका ज्ञान करनेमें

यद्यस्य मनःपर्ययस्य प्रत्यात्ममय विशेषः अद्यानयोरवधिमनःपर्ययमो कृतो विशेष इत्यत आह—

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययो ॥२५॥

विशुद्धि प्रसात् । क्षत्र यत्रस्थाभावाप्रतिपद्यते । स्वामी प्रयोक्ता । विषयो ज्ञयः । तत्रावधेमनःपर्ययो विशुद्धतरः । कृत ? सूक्ष्मविषयत्वात् । क्षेत्रमुक्तम् । विषयो वक्ष्यत । स्वामित्वं प्रत्युच्यते । प्रकृष्टचारित्रगुणोपेतेषु वर्तते प्रमत्तादिषु क्षीणरूपामात्तेषु । तत्र चात्पद्यमानं प्रवर्द्धमानं चारित्र्येषु न हीयमानं चारित्र्येषु । प्रवर्द्धमानं चारित्र्येषु चात्पद्यमानं सप्तविधान्यतमिन्द्रिप्रातेषूपजायते नेतरेषु । ऋद्धिप्राप्तेषु केषुचिन्न सर्वेषु । इत्यस्यायं स्वामिविशेषो विशिष्टसयमग्रहणं वा वाक्ये प्रकृतम् । अवधि पुनश्चातुर्गति

अन्तर पङ्क जाता ह । किन्तु इन दोनों ज्ञानोंके अन्तरका एक कारण और ह जो कि प्रतिपाठ और अप्रतिपाठ सम्बन्ध पुकारा जाता है । प्रतिपाठका अर्थ है गिरना और अप्रतिपाठका अर्थ है नहीं गिरना । एसा नियम है कि विपुलमति मनःपर्ययज्ञान उसीक होता है जो तद्भव मोक्षगामी होत हुए भी क्षयक्षेपि पर चढ़ता है किन्तु ऋजुमति मनःपर्यय ज्ञानके लिये एसा कोई नियम नहीं है । वह तद्भव मोक्षगामीके भी हो सकता है और अन्यक भी हो सकता ह । इसी प्रकार जो क्षयक्षेपि पर चढ़ता ह उसके भी हो सकता है और जो उसपर नहीं चढ़कर उपशम क्षेपि पर चढ़ता है मा नहीं भी चढ़ता है उसके भी हो सकता है । इसीसे ऋजुमति प्रतिपाटी और विपुलमति अप्रतिपाटी माना गया है । यह विषयता याव्यताज्ञय है इसस्मि इसका निर्देश अलगसे किया ह ।

यदि इस मनःपर्ययज्ञानका अलग अलग यह भेद है तो अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञानम किस कारणसे भेद है ? अब इसी बातके बतलानके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी आर विषयक्षी अपक्षा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें भेद है ॥२५॥

विशुद्धि का अर्थ निमलता है । जिनके स्थानमें स्थित भावोंको जानता ह वह क्षेत्र है । स्वामी का अर्थ प्रयोक्ता है । विषय ज्ञयको कहत है । सो इन दोनों ज्ञानोंम अवधिज्ञानमें मनःपर्ययज्ञान विशुद्धतर ह क्योंकि मनःपर्ययज्ञानका विषय सूक्ष्म है । क्षेत्रका कथन पहलू कर भाय है । विषयका कथन भाग करेग । यहाँ स्वामीका विचार करते ह— मनःपर्ययज्ञान प्रमत्तसंबन्धन रखर क्षीणरूपाय गुणस्थान सत्के उत्कृष्ट चारित्र्यगुणम मुष्ट जीवाक ही पाया जाता ह । वहाँ उत्पन्न होता हुआ भी वह वर्द्धमान चारित्र्यवाक जीवाके ही उत्पन्न होता है पत्तन हुए चारित्र्यवाक जीवाके नहीं । वद्यमान चारित्र्यवाक जीवामें उत्पन्न होता हुआ भी गान प्रत्यागते ऋद्धियोंमें किमी एक ऋद्धिको प्राप्त हुए जीवाके ही उत्पन्न होता है

(१)—सूत्र विनेरो व-मु । (२)—पद-मु वि १ वि २ । (३) इत्यस्य स्वामिविशेषो

विशुद्धिपर्ययज्ञाने काने इत्यम् । अ-मु ता मा ।

केचित्स्विति स्वामिभेदादप्यनयाविशेषः ।

इदानीं केवलज्ञानलक्षणामिधानं प्राप्तकारणम् । तदुल्लङ्घ्य ज्ञानानां विषयनि-  
वन्धः पराक्ष्यत । कुत ? तस्य 'मोहमयाज्ज्ञानदशनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्'  
इत्यत्र यक्ष्यमाणत्वात् । यद्येवमाद्यपारव तावन्मतिश्रुतयाविषयनिबन्ध उच्यतामित्यतः  
आह—

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसवपर्यायेषु ॥ २६ ॥

निबन्धनं निबन्धः । कस्य ? विषयस्य । तद्विषयग्रहणं कृतव्यम् । न कृतव्यम् ।  
प्रकृतं विषयग्रहणम् । क्व प्रकृतम् ? विद्युद्विशेषस्वामिविषयस्य 'इत्यत्र । अतस्तस्याप्य-  
वशाद्विभक्तिपरिणामो भवतीति विषयस्य इत्यभिसम्बध्यते । द्रव्येषु इति बहुवचनं

अग्निकृत्वा । ऋद्धिप्राप्तौ जीवामे भी किन्हीक ही उत्पन्न होता है सबके नहीं इस प्रकार सूत्रमें  
इसका स्वामिबिधाया विधिष्ट समयका ग्रहण प्रकृत है । परन्तु अवधिज्ञान चारों गतिक  
जीवोके होमा ह इसलिय स्वामियोके भवन्न भी इनमें अन्तर ह ।

विद्ययाप्य—या ता अवधिज्ञान और मन-पययज्ञानमें मौक्तिक अन्तर ह । अवधिज्ञान सीध  
सौरस पत्नयोका जानना ह और मन-पययज्ञान मनकी पर्यायरूपस । फिर भी यही अन्य आधारों  
मे इन दाना ज्ञानोंमें अन्तर स्थितमायागया है । वे आधार चार ह—द्रव्य मत्र स्वामी और विषय ।

अत्र केवलज्ञानका लक्षण कहनाका अवसर ह किन्तु उसका कथन न कर पहले ज्ञानोंके  
विषयका विचार करत ह क्योकि केवलज्ञानका लक्षण मोहमयाज्ज्ञानान्तरायक्षयाच्च  
कथलम् यही कहेंगे । यदि एता ह ता सब प्रथम आत्मीय आय हूए मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके  
विषयका कथन करना चाहिये । एमी बातका ध्यानमें रखकर आगेका सूत्र कहते हैं—

मतिज्ञानं च भूतज्ञानं च प्रवृत्तिं कुञ्ज पर्यायैः युक्तं मयः द्रव्यायाम् होती है ॥२६॥

निबन्धनं गन्तव्यं व्युत्पत्तिरन्वय अर्थ ह—निबन्धनं निबन्धन—जीवना सम्बन्ध करना ।

गन्तव्यं—विमर्श सम्बन्ध ?

गन्तव्यं—विमर्श ।

गन्तव्यं—तो सूत्रमें विषय पत्नया ग्रहण करना चाहिये ?

गन्तव्यं—नहीं करना चाहिये क्योकि विषय पदका ग्रहण प्रकरण प्राप्त ह ।

गन्तव्यं—एता प्रकरणमें आया ह ?

गन्तव्यं—विषयक्षेत्रस्वामिविषयस्य इमं सूत्रमें आया है । यही विषय पत्नया  
पत्नय कर अथवा अनुगार उगनी विमर्श करत एता ह इगलिय यही पत्नी विमर्श  
अथवा उगनी पत्नया जाता ह ।

निर्देश सर्वेषां जीवधर्माधिर्माकालाकाशपुद्गलानां सग्रहाथ । तद्विशेषणाय 'असवपर्याय' ग्रहणम् । तानि द्रव्याणि मतिश्रुतयोर्विषयभावमापन्नमानानि कतिपयैरेव पर्यायविषय भावमास्कन्दन्ति न सवपर्यायैरन्तरपीति । अत्राह—धर्मास्तिकायादी यतीन्द्रियाणि तेषु मतिज्ञान न प्रवर्तते । अतः सर्वद्रव्येषु मतिज्ञान वर्तत इत्ययुक्तम् ? नैव दोष अनिन्द्रियास्य करणमस्ति तदालम्बना नाइन्द्रियावरणक्षयोपशमलक्षिपूर्वक उपयोगोऽवग्रहादिरूप प्रागेवोपजायत । ततस्तत्पूर्वं श्रुतज्ञान तद्विषयेषु स्वयोग्येषु व्याप्रियते ।

अथ मतिश्रुतमारनन्तरनिर्देशार्हंम्यायधे को विषयनिबन्ध इत्यत आह—  
रूपिष्ववधे ॥ २७ ॥

'विषयनिबन्ध' इत्यनुवर्तते । 'रूपिषु' इत्यनेन पुद्गला पुद्गलद्रव्यसम्बन्धावध जीवा परिगृह्यन्ते । रूपिष्वेवावधेविषयनिबन्धो ना'रूपिष्विति नियम क्रियत । रूपिष्वधि मवध सर्वपर्यायिषु स्वयोग्येष्वेवेत्यवधारणाथमसर्वपर्यायिष्वित्यभिसम्बध्यते ।

सूत्रमें 'द्रव्येषु' बहुवचनान्त पदका निर्देश जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काष्ठ इन सब द्रव्योंका सग्रह करनके लिय किया है । और इन सब द्रव्योंके विशेषण रूपसे असर्व पर्यायिषु' पदका ग्रहण किया है । व सब द्रव्य मतिज्ञान और श्रुतज्ञानक विषय भावको प्राप्त होत हुए कुछ पर्यायिके द्वारा ही विषयभावको प्राप्त होते हैं सब पर्यायिके द्वारा नहीं और अनन्त पर्यायिके द्वारा भी नहीं ।

शका—धर्मास्तिकाय आदि अतीन्द्रिय है । उनम मतिज्ञानकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती अतः 'सब द्रव्योंमें मतिज्ञानकी प्रवृत्ति होती है' यह कहना अयुक्त है ?

समाधान—यह कोइ दोष नहीं है, क्योंकि अमिन्द्रिय नामका एक कारण है । उसके आलम्बनस नोइन्द्रियावरण कर्मके क्षयोपशमरूप लक्षिपूर्वक अवग्रह आदिरूप उपयोग पहल ही उत्पन्न ही जाता है अतः तत्पूर्वक होनकाला श्रुतज्ञान अपन योग्य इन विषयोंमें व्यापार करता है ।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञानक अनन्तर निर्देशके योग्य अविज्ञानका विषय क्या है आग सूत्र द्वारा इसी बातको मतलाते हैं—

अधिज्ञानकी प्रवृत्ति रूपी पदार्थोंमें होती है ॥ २७ ॥

पिछल सूत्रमें 'विषयनिबन्ध' पदकी अनुवृत्ति होती है । रूपिषु पद द्वारा पुद्गलों और पुद्गलोंस बद्ध जीवों का ग्रहण होता है । इस सूत्रद्वारा 'रूपी पदार्थोंमें ही अधिज्ञानका विषय सम्बन्ध है अरूपी पदार्थोंमें नहीं यह नियम किया गया है । रूपी पदार्थोंमें होता हुआ भी उनकी सब पर्यायोंमें नहीं होता किन्तु स्वयोग्य पर्यायोंमें ही होता है इस प्रकारका निबन्ध करनेके लिये 'असवपर्यायिषु' पदका सम्बन्ध होता है ।

अथ तदनन्तरनिर्देशभाजो मनःपर्ययस्य को विषयनिबन्ध इत्यत आह—  
तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य ॥ २८ ॥

यदतद्रूपि द्रव्यं सवावधिज्ञानविषयत्वेन समर्थित तस्यानन्तभागीकृतस्य कस्मिन्  
भागे मनःपर्ययः प्रवर्तते ।

अयान्ते यन्निदिष्टं केवलज्ञान तस्य का विषयनिबन्ध इत्यत आह—  
सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ॥ २९ ॥

द्रव्याणि च पर्यायाश्च द्रव्यपर्याया इति इतरतरयोगलक्षणो द्वन्द्वः । तद्विशेषण  
'सर्वं ग्रहणं प्रत्येकमभिमन्वध्यते सर्वेषु द्रव्येषु सर्वेषु पर्यायिष्यति । जीवद्रव्याणि ताव  
दनन्तान्तानि पुद्गलद्रव्याणि च ततोऽप्यनन्तानन्तानि अणुस्त्वधमेदभिक्षानि, घर्मा  
घर्माकाशानि त्रीणि कालदशासहस्रयस्तथा पर्यायाश्च त्रिकालभूय प्रत्येकमनन्तानन्तास्तेषु ।  
द्रव्यपर्यायजातं वा न किञ्चित्केवलज्ञानस्य विषयभावमतिक्रान्तमस्ति । अपरिमित  
माहात्म्यं हि तन्निति ज्ञापनाय 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु' इत्युच्यते ।

अथ इमं अनन्तर निर्देशके योग्य मनःपर्ययज्ञानका विषयसम्बन्ध कया ह इति वाक्य  
व्यवस्थानेन लिख्य आगता सूत्रं बहूतं ह—

मनःपर्ययज्ञानकी प्रवृत्ति अवधिज्ञानके विषयक अनन्तवै भागमें होती है ॥ २८ ॥

जो रूपी द्रव्य सर्वावधिज्ञानका विषय है उसका अनन्त भाग करने पर उसका एक भागमें  
मनःपर्ययज्ञान प्रवृत्त होता है ।

अब अन्त में जो केवलज्ञान कहा है उसका विषय कया है यह बतलाने के लिए आगता  
सूत्रं बहूतं है—

केवलज्ञानका प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनका सब पर्यायोंमें होता है ॥ २९ ॥

मन्त्रम आद्यं रूपं द्रव्यं और पर्याय इति दाना पन्नाका इतरतरयोग द्वन्द्वसमाम ह । तथा  
एत दाना च विषयस्वरूपम आद्यं रूपं 'सर्व' पदका द्रव्य और पर्याय इति दानाक माय जोड़ लना  
प्राहिय । यथा—मन्त्र रूप्याम और सब पर्यायाम । जीव द्रव्य अनन्तानन्त ह । पुद्गल द्रव्य इनस  
मी अनन्तानन्तगुणे ह त्रिनक अणु और स्वरूप य भेद ह । घर्म अथम और आकाश ये तीन  
ह और बान्ध अमर्यात ह । इम मय द्रव्योंकी पूयन पूयन तीनों कालामें हानवामी अनन्तानन्त  
पर्याय ह । मन सबमें केवलज्ञानकी प्रवृत्ति होता ह । एसा न बाह्य द्रव्य है और न पर्यायममूह ह  
जा केवलज्ञानक विषयक पर ह । केवलज्ञानका माहात्म्य अपरिमित है इसी वाक्यका ज्ञान  
करानक लिख्य मन्त्रम सर्वद्रव्यपर्यायेषु पदं बन्ध ह ।

विशेषण—यहाँ ज्ञान सूत्राम पाँचा जानों के विषयका निर्देश किया गया है । मन्त्रान्त  
और ध्यातान पाँचा द्विद्वय और मनकी महायताम प्रवृत्त हाह ह यह ता स्पष्ट है ॥

(१) यदिति—दि १ दि २ । (२)—भेदेन मि—च ।



आह विषयनिबन्धोऽवघृतो मस्यादीनाम् । इदं तु न निर्जातिमेकस्मिन्नात्मनि स्वनि  
मित्तसन्निधानोपजनितवृत्तीनि ज्ञानानि योगपद्येन कति भवन्तीत्युच्यते—

एकाद्वीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥ ३० ॥

एकशास्त्र-सख्यावाची आदिशब्दोऽवयववचन । एक आदियेपौ तानि इमान्येका  
२ दीनि । भाज्यानि विभक्तव्यानि । योगपद्येनकस्मिन्नात्मनि । आ कुत ? आ चतुर्भ्यः ।  
तद्यथा-एक तावत्केवलज्ञान न तं सहायानि सायोपशमिकानि युगपदवतिष्ठन्ते ।  
द्व मतिश्रुत । त्रीणि मतिश्रुतावधिज्ञानानि मतिश्रुतमन-पर्ययज्ञानानि वा । चत्वारि  
मतिश्रुतावधिमन-पर्ययज्ञानानि । न पञ्च सन्ति केवलस्यासहायत्वात् ।

इसलिये इनका विषय मूर्तिक पदार्थ ही हो सकता है पर मन विकल्प द्वारा रूपी और अरूपी  
१० सभी पदार्थोंको जानता है इसीसे इन दोनों ज्ञानोंका विषय उहाँ द्रव्य और उनकी कुछ पर्यायों  
का बतलाया है । अवधि ज्ञान यद्यपि भाह्य सहायताके बिना प्रवृत्त होता है पर वह सायोप-  
शमिक होतस उसका विषय मूर्तिक पदार्थ ही हो सकता है । इसी कारणसे अवधिज्ञानका  
विषय रूपी पदार्थ कहा है । मन-पर्यय ज्ञान भी सायोपशमिक होता है इसलिये उसका विषय  
यद्यपि रूपी पदार्थ ही है पर यह रूपी पदार्थोंको मनकी पर्यायोंद्वारा ही ग्रहण करता है इससे  
इसका विषय अवधि ज्ञानके विषयक अनन्तबेँ भागप्रमाण कहा है तथा केवल ज्ञान निराकरण  
१२ होता है इसलिये उसका विषय सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों हैं ऐसा कहा है ।

मत्यादिकक विषयसम्बन्धका निश्चय किया किन्तु यह न जान सके कि एक आत्मामें एक  
साथ अपने अपन निमित्तोंके मिलने पर कितने ज्ञान उत्पन्न हो सकते हैं इसी बातका ज्ञान  
बचनके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

एक आत्मामें एक साथ एक से लेकर चार तक ज्ञान मजनासे होते हैं ॥ ३० ॥

एक शास्त्र-सख्यावाची है और आदि शब्द भवमवकाशी है । जिनका भावि एक है न  
एकादि कहलाते हैं । भाज्यानि का अर्थ 'विभाग करना चाहिये' होता है । तात्पर्य यह  
है कि एक आत्मामें एक साथ एक ज्ञानसे लेकर चार ज्ञान तक हो सकते हैं । यथा—यदि एक  
ज्ञान होता है तो केवलज्ञान होता है । उसका साथ दूसरे सायोपशमिक ज्ञान एक साथ नहीं रह  
१४ सकते । दो होते हैं तो मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं । तीन होते हैं तो मतिज्ञान श्रुतज्ञान  
और अवधिज्ञान या मतिज्ञान श्रुतज्ञान और मन-पर्ययज्ञान होते हैं । तथा चार होते हैं तो  
मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान और मन-पर्ययज्ञान होते हैं । एक साथ पाँच ज्ञान नहीं होते  
क्योंकि केवलज्ञान असहाय है ।

विशेषाथ—यहाँ एक साथ एक आत्मामें कमसे कम कितने और अधिकसे अधिक  
१ कितने ज्ञान हो सकते हैं इस बात का निर्देश किया है । यह तो स्पष्ट है कि ज्ञान एक है अतः  
उगरी पर्याय भी एक कासमें एक ही हो सकती है फिर भी यहाँ एक आत्मामें एक साथ

अथ यथोक्तानि मत्यादीनि ज्ञानव्यपदेशमेव लभन्ते उतान्यथापीत्यत आह—

मतिभूतावयवो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥

विपर्ययो मिथ्येत्यथ । कुत ? सम्यग्धिकारात् । 'न' शब्द समुच्चयार्थः । विपर्ययश्च सम्यक्चेति । कुत ? पुनरेषां विपर्यय ? मिथ्यादर्शनेन सहकायसमवायात् सरजस्क-

कज्ञान होनेका निर्देश किया है सो उसका कारण अन्य है । बात यह है कि जब ज्ञान ५  
निरावरण होता है तब तो उसमें किसी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता है अतएव  
एसी अवस्थामें एक केवलज्ञान पर्यायिका ही प्रकाश माना गया है । किन्तु सत्तार अवस्थामें जब  
ज्ञान सावरण होता है तब निमित्त भबस उसी ज्ञानको कई भागोंमें विभक्त कर दिया जाता  
है । सावरण अवस्थामें जितन भी ज्ञान प्रकट होत हैं वे सब सायोपचमिक ही होते हैं और  
सायोपचम एक साथ कई प्रकारका हो सकता है इसलिये सावरण अवस्थामें दो तीन या चार ज्ञानकी १०  
सत्ता युगपत् मानी गई हैं । पर इसका यह अर्थ नहीं कि जब दो तीन या चार ज्ञानकी  
सत्ता रहती है तब वे सब ज्ञान एक साथ उपयोगरूप हो सकते हैं । उपयोग तो एक कालमें  
एक ही ज्ञानका होता है अन्य ज्ञान उस समय लक्ष्मिरूपस रहते हैं । आद्यम यह है कि एसा बोद्ध  
क्षण नहीं जब ज्ञानकी कोई पर्याय प्रकट न हो । मति ज्ञान श्रुत ज्ञान अवधि ज्ञान मन-पर्यय ज्ञान  
और केवल ज्ञान ये सब ज्ञानकी पर्याय हैं इसलिये इनमेंसे एककालमें एकही पर्याय का उदय १५  
रहता है । निरावरण अवस्थामें मात्र केवल ज्ञान पर्यायिका उदय रहता है और सावरण अवस्था  
में प्रारम्भकी चार पर्यायोंमेंसे एक कालमें किसी एक पर्यायिका उदय रहता है फिर भी तब  
युगपत् दो तीन और चार ज्ञानोंकी सत्ताक माननेका कारण एकमात्र निमित्तभेद है । जब  
मति और श्रुत इन दो पर्यायोंके प्रकट होनेका निमित्त उपस्थित रहता है तब युगपत् दो ज्ञानोंका  
सद्भाष कहा जाता है । जब मति श्रुत और अवधि या मति श्रुत और मन-पर्यय इन २०  
तीन पर्यायोंके प्रकट होना निमित्त उपस्थित रहता है तब युगपत् तीन ज्ञानोंका सद्भाष  
कहा जाता है और जब मति आवि चार पर्यायोंके प्रकट होनेका निमित्त उपस्थित रहता है  
तब युगपत् चार ज्ञानोंका सद्भाष माना जाता है । यही कारण है कि प्रकृत सूत्रमें एक  
साथ एक आत्माके एक दो तीन या चार ज्ञान हो सकते हैं यह कहा है ।

अब यथोक्त मत्यादिक ज्ञान व्यपदेशको ही प्राप्त होत है या अन्यथा भी होने हैं इस २५  
बातका ज्ञान करानेके लिये भागका सूत्र कहत हैं—

मति, श्रुत और अवधि य तीन विपर्यय भी हैं ॥ ३१ ॥

विपर्ययका अर्थ मिथ्या है क्योंकि सम्यग्दर्शनका अधिकार है । 'न' शब्द समुच्चयरूप  
अर्थमें आया है । इससे यह अर्थ होता है कि मति श्रुत और अवधि विपर्यय भी हैं और  
समीचीन भी ।

कटुकालावुगतदुग्धवत् । ननु च तत्राधारवोयाद् दुग्धस्य रसविपर्यया भवति । न च तथा मत्प्रज्ञानादीनां विषयग्रहणे विषयय । तथा हि सम्यग्दृष्टियथा चक्षुरादिभी रूपावी नुपलभत तथा मिथ्यादृष्टिरपि मत्प्रज्ञानेन । यथा च सम्यग्दृष्टिं श्रुतेन रूपादीन् जानाति निरूपयति च तथा मिथ्यादृष्टिरपि श्रुताज्ञानेन । यथा चावधिज्ञानेन सम्यग्दृष्टि-  
 ५ रूपिणाऽर्थावगच्छति तथा मिथ्यादृष्टिर्विभङ्गज्ञानेनति । अत्रोच्यते—

सबसतोरविज्ञेयाद्यवच्छोपलब्धेयमस्तवत् ॥ ३२ ॥

सद्विद्यमानमसदविद्यमानमित्यथ । तयोरविशेषेण यदृच्छया उपलब्धविषययो भवति । कदाचिद्रूपाधि सदप्यसदिति प्रतिपद्यते, असदपि सदिति कदाचिस्मत्सदेव असत्प्यसदेवति मिथ्यादर्शनोदयात्पृथक्स्यति । यथा पित्तोदयाकुलितबुद्धिर्मानर भार्येति  
 १ भार्यामपि मातति मन्यत । यदृच्छया यदापि मातर मातचेति भार्यामपि भार्ये वेति च

सका—ये विपर्यय क्यों हैं ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यादर्शने साध एक आराममें इनका समवाय पाया जाता है । जिस प्रकार रज सहित कड़वी सूखी में रसा हुआ दूध कड़वा हो जाता है उसी प्रकार मिथ्या  
 २५ पदान का निमित्तसे ये विपर्यय होते हैं ।

कड़वी सूखीमें आधारेके दापसे दूधका रस मोठसे कड़वा हो जाता है यह स्पष्ट  
 है किन्तु उस प्रकार मत्स्यादि ज्ञानोंकी विषयके ग्रहण करनेमें विपरीतता नहीं मालूम होती ।  
 सुखासा इस प्रकार है—जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि पशु आदिक द्वारा रूपादिक पदार्थोंको ग्रहण  
 करता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी । जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि श्रुतके द्वारा रूपादि पदार्थोंको  
 जानता है और उनका निरूपण करता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी श्रुताज्ञान के द्वारा रूपा-  
 ३ दिक पदार्थोंको जानता है और उनका निरूपण करता है । जिस प्रकार सम्यग्दृष्टि अवधि ज्ञानके  
 द्वारा रूपादि पदार्थोंको जानता है उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि भी विभग ज्ञान का द्वारा रूपादि पदार्थों  
 को जानता है । यह एक प्रश्न है जिसका समाधान करने के लिए जगन्मा सूत्र कहते हैं ।

यास्तत्रिक और अवास्तत्रिकक अन्तरके बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा बी में आया  
 उस रूप ग्रहण होने) का कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान ही है ॥३२॥

२५ प्रकृतमें 'सत् का अर्थ विद्यमान और असत् का अर्थ अविद्यमान है । इनकी विशेषता  
 न करके इच्छानुसार हण करने से विषयय होता है । कदाचित् रूपादिक विद्यमान हैं तो भी  
 उन्हें अविद्यमान मानता है । और कदाचित् अविद्यमान वस्तु को भी विद्यमान कहता है । कदा-  
 चित् सत् को सत् और असत् को असत् ही मानता है । यह सब निदृश्य मिथ्यापदानके उदयसे  
 होता है । जैसे पित्तक उन्मत्त आकुलित बुद्धिवाला मनुष्य माताको भार्या और भार्याको

(१)—रूपि । यथा हि १ दि २, मा । (२) यथावद्विमेयताओ अर्थात् अविधिः प्रतीकताः प्राओ ।

मातृताभावाओ मिथ्यादृष्टिदुःखं जन्मात् ।—वि भा मा ११५ । (३)—च्छया मातरं नु ता मा ।

तदापि न तत्सम्यग्ज्ञानम् । एव मत्यादीनामपि रूपादिषु विषययो वेदितव्य । तथा हि  
 कश्चिन्मिथ्यादशनपरिणाम आत्मन्यवस्थिता रूपाद्युपलब्धौ सत्यामपि कारणविपर्यास  
 भेदाभेदविपर्यासि स्वरूपविपर्यासि च जनयति । कारणविपर्यासस्तावत्—रूपादीनामेक  
 कारणममूत्त नित्यमिति केचित्स्वरूपयन्ति । अपर पृथिव्यादिजातिभिन्ना परमाणवश्चतु  
 स्त्रिद्रुपैकगुणास्तुत्यजातीयाना कार्याणामारम्भना इति । अन्य वणयन्ति—पृथिव्या ५  
 दीनि चत्वारि भूतानि भौतिकधम वणगन्धरसस्पर्शा एतेषा समुदायो रूपपरमाणुरष्टक  
 इत्यादि । इतरे वणयन्ति—पृथिव्यप्तेजावायव काठिन्यादिद्रवत्वाद्युष्णत्वादीरण-  
 त्वाग्निगुणा जातिभिन्ना परमाणव कार्यस्यारम्भका । भेदाभेदविपर्यासि कारणात्काम  
 मर्षान्तरभूतमेवेति अनर्षान्तरभूतमेवति च पश्चिल्पना । स्वरूपविपर्यासा रूपादयो  
 निविषत्वा सन्ति न सन्त्यव वा । तदाकारपरिणत विज्ञानमेव । न च तदालम्बन १०  
 वस्तु वाह्यमिति । एवम यानपि परिचल्पनाभेदान् दृष्टेष्टविरुद्धामिथ्यादशनोदयात्कल्प

माता मामता है । जब अपनी इच्छा की छहर के अनुसार माताको माता और भार्याको  
 भार्या ही मानता है तब भी वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है । इसी प्रकार मत्यादिकका भी  
 रूपाधिकमें विषय जानना चाहिये । कुरासा इस प्रकार है—आत्मा में स्थित कोई मिथ्या-  
 वर्धनरूप परिणाम रूपादिककी उपस्थिति होनेपर भी कारणविपर्यास भेदाभेदविपर्यासि और १५  
 स्वरूपविपर्यासको उत्पन्न करता रहता है ।

कारणविपर्यास यथा—कोई मानते हैं कि रूपादिकका एक कारण है जो अमूर्त  
 और नित्य है । कोई मानते हैं कि पृथिवी जाति के परमाणु अलग हैं जो चार गुणवाले  
 हैं । जल जातिके परमाणु अलग हैं जो तीन गुणवाले हैं । अग्नि जातिके परमाणु अलग हैं  
 जो दो गुणवाले हैं और वायु जातिके परमाणु अलग हैं जो एक गुणवाले हैं । तथा य २०  
 परमाणु अपने समान जातीय कायको ही उत्पन्न करते हैं । कोई कहते हैं कि पृथिवी आदि  
 चार भूत हैं और इन भूतोंके वण गन्ध रस और स्पर्श ये भौतिक धम हैं । इन सबके  
 समुदायको एक रूप परमाणु या अष्टक कहते हैं । कोई कहते हैं कि पृथिवी जल अग्नि  
 और वायु ये क्रमसे काठिन्याग्नि द्रवत्वादि उष्णत्वाग्नि और हरणत्वादि गुणवाले अलग अलग २५  
 जाति के परमाणु होकर कायको उत्पन्न करते हैं ।

भेदाभेदविपर्यासि यथा—कारणसे कायको सबथा मिस्र या सर्वथा अमिस्र मानना ।  
 स्वरूपविपर्यासि यथा—रूपादिक निविकल्प है या रूपादिक हही नहीं या रूपादिकके  
 आकाररूपसे परिणत हुआ विज्ञान ही है उसका आलम्बनभूत और कोई बाह्य पदाव नहीं है ।

(१) घोस्या । (२) नैयामिका । (३) बौद्धा । (४) लौक्यपिका । (५) उरे कल्पयन्ति  
 पश्चि-आ दि १ । (६) नत्वावियमनादिगुणा आ दि १ दि २ । (७) नैयामिका । (८) घोस्या ।  
 (९) बौद्धा । (१०) नैयामिका । (११) योगशास्त्र ।

यन्ति तत्र च श्रद्धानमुत्पादयन्ति । ततस्तत्प्रत्यक्षान् श्रुताज्ञान विभगज्ञान च भवति ।  
सम्यग्दर्शनं पुनस्तत्स्वार्थाधिगमे श्रद्धानमुत्पादयति । ततस्तत्प्रतिज्ञान श्रुतज्ञानमवधि  
ज्ञानं च भवति ।

आह प्रमाणद्विप्रकारवर्णितम् । प्रमाणरुदेशादच नयास्तदनन्तरोद्देशभाजो निर्दे  
ष्टव्या इत्यत आह—

नगमसप्रहृष्यवहारर्जुसूत्रशाब्दसमभिरुद्धैवम्भूता नया ॥३३॥

एतयां सामान्यविशेषलक्षणवक्तव्यम् । सामान्यलक्षणं तावद्वस्तुन्यनेकान्तरमय  
विराभन हृष्यपणारसाध्यविशेषस्य याथात्म्यप्रापणप्रवणं प्रयागो नयः । स द्वेषा द्रव्या  
धिकं पयायाधिकदचति । द्रव्यं सामान्यमुत्सग अनुवृत्तिरित्यर्थः । तद्विषयो द्रव्याधिकः ।

एकी प्रकार मिथ्यादर्शनक उदय स य जीव प्रत्यक्ष और अनुमानके विरुद्ध नाना  
प्रकारकी कल्पनाएँ करते हैं और उनमें श्रद्धान् उत्पन्न करते हैं । इसलिये इनका यह ज्ञान  
मन्यज्ञान श्रुताज्ञान या विभग ज्ञान होता है । किन्तु सम्यग्दर्शन तत्त्वार्थक ज्ञानमें श्रद्धान्  
उत्पन्न करता है अतः इस प्रकारका ज्ञान मति ज्ञान श्रुत ज्ञान और अवधि ज्ञान होता है ।

विगपार्थ—यहाँपर प्रारम्भ क तीन ज्ञान विपर्यय होत हैं यह बतलाकर य विपर्यय  
क्या जान है यह बतलाया गया है । ससारी जीवकी श्रद्धा विपरीत और समीचीनके भेद  
दो प्रकारकी होती है । विपरीत श्रद्धावाला जीवको विरुद्धता यथार्थ ज्ञान नहीं होता । वह  
जगत्तम कितन पदाप ह उनका स्वरूप क्या है यह नहीं जानता । आत्मा और परमात्मा  
क स्वरूप बोधसे तो वह सर्वथा बलित रहता है । वह घटके घट और पटके पट ही  
बहुता है पर जिन तत्त्वोंस इनका निर्माण होता है उनका इसे यथाथ बाध नहीं होत  
पाता । यही कारण ह कि जीवकी श्रद्धाके अनुसार ज्ञान भी समीचीन ज्ञान और मिथ्या ज्ञान  
इन दो भागों में विभक्त हो जाता ह । यथार्थ श्रद्धाके होनेपर जो ज्ञान होत हैं उन्हें  
समीचीन ज्ञान कहत हैं और यथार्थ श्रद्धाके अभावमें होनेवाले ज्ञानोंका नाम ही मिथ्या ज्ञान  
ह । एसे मिथ्या ज्ञान तीन मान गये हैं—श्रुतिज्ञान कुशुत ज्ञान और विभग ज्ञान । य ही  
तीन ज्ञान मिथ्या होत हैं अन्य नहीं क्योंकि य ज्ञान विपरीत श्रद्धावालाके भी प्राप्त जात  
ह । विपरीत श्रद्धा क्या होनी है इसका निर्देश मूल टीकामें किया ही है ।

य प्रकारके प्रमाणका बर्णन किया । प्रमाणक एकत्रको नय कृत हैं । इनका कयन  
प्रमाणान् भन्तर करना चाहिये अतः भागका सूत्र कहत हैं—

नगम, गंग्रह, व्ययहार, श्रुतुश्रुत, सन्द, ममभिरुद्ध और एषंभूत ये सात नय हैं ॥३३॥

नया सामान्य और विगप लक्षण कृता चाहिये । सामान्य सराण—अनकात्कारक  
बन्धुम विरोधक बिना हेतुकी मुख्यताम साध्यविगपकी यथापनाक प्राप्त कथनमें समय

पयायो विशेषोऽपवादो व्यावृत्तिरित्यथ । तद्विषयः पर्यायाधिकः । तयोर्भेदा नगमादयः ।  
 तेषां विशेषलक्षणमुच्यते—अनभिनिवृत्तायसकल्पमात्रग्राही नगमः । कश्चित्पुरुष  
 परिगृहीतपरशु गच्छन्तमवलम्ब्य कश्चित्पृच्छति किमथ भवान्गच्छतीति । स आह  
 प्रस्थमानेतुमिति । नासौ तदा प्रस्थपर्यायः सन्निहितः । तदभिनिवृत्तये सकल्पमात्रे  
 प्रस्थव्यवहारः । तथा एषोदकाद्याहरणे व्याप्रियमाणः कश्चित्पृच्छति किं करोति भवा ५  
 निति । स आह ओदनपचामीति । न तदौदनपयायः सन्निहितः तदर्थं व्यापारे स प्रयुज्यते ।  
 एवप्रकारो लोकसव्यवहारः अनभिनिवृत्तायसकल्पमात्रविषया नगमस्य गोचरः ।

स्वजात्यचिराधनकध्यमुपानीय पर्यायानात्रन्तभेदानविशेषेण ममस्तग्रहणा  
 त्सग्रहः । सत् द्रव्य घट इत्यादि । सदित्युक्ते सदिति वाग्विज्ञानानुप्रवृत्तिलिङ्गानुमित  
 सत्ताधारभूतानामविशेषेण सर्वेषां सग्रहः । द्रव्यमित्युक्तेऽपि द्रवति गच्छति तास्ताभ्यर्था १  
 यानित्युपलक्षितानां जीवाजीवतद्भेदप्रभेदानां सग्रहः । तथा घट इत्युक्तोऽपि घट

प्रयोगको नम कहत हं । इसको दो भेद ह—द्रव्याधिक और पर्यायाधिक । द्रव्यका अर्थ सामान्य  
 उद्देश्य और अनुवृत्ति है और इसको विषय करनेवाला नम द्रव्याधिक नम कहलाता ह ।  
 तथा पर्यायका अर्थ विशेष अपवाद और व्यावृत्ति है और इसको विषय करनेवाला नम  
 पर्यायाधिक नम कहलाता है । इन दोनों नयोंक उत्तर भेद नैगमादिक है । १२

अब इनका विशेष लक्षण कहत हैं—अनिप्यन्न अर्थमें सकल्पमात्रको ग्रहण करनेवाला  
 नम नैगम है । यथा—हाथमें फरसा लेकर जात हुए किसी पुरुषको देखकर कोई अन्य पुरुष  
 पूछता ह आप किस कामक लिय जा रह है । वह कहता है प्रस्थ लानके लिय जा रहा  
 है । उस समय वह प्रस्थ पर्याय सन्निहित नहीं है केवल उसके बनावका सकल होनेसे  
 उसमें प्रस्थ व्यवहार किया गया ह । तथा इ भन और जल आदिक लानमें लग हुए किसी २  
 पुरुषस कोई पूछता ह कि आप क्या कर रहे हैं । उसन कहा भात पका रहा है । उस  
 समय भात पर्याय सन्निहित नहीं है केवल भातक लिय किय गय व्यापारमें भातका प्रयोग  
 किया गया है । इस प्रकारका जितना लोक व्यवहार अनिप्यन्न अर्थके आसम्बन्धसे सकल्प  
 मात्रको विषय करता है वह सब नगम नयका विषय है ।

भेद सहित सब पर्यायोंको अपनी जातिके अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्यस ५३  
 सबको ग्रहण करनेवाला नम सग्रहनम ह । यथा—सत् द्रव्य और घट आदि । सत् एसा  
 कहने पर सत् इस प्रकारके बन्ध और विज्ञानकी अनवृत्तिरूप स्मिसे अनुमित सत्ताक व्यापार  
 मूल सब पदार्थोंका सामान्य रूपसे सग्रह हो जाता है । द्रव्य एसा कहने पर भी उन उन  
 पर्यायोंको ब्रह्मता है अर्थात् प्राप्त होता है इस प्रकार इस व्युत्पत्तिस मुक्त जीव मज्जीव और  
 जमके सब भेद प्रभेदोंका सग्रह हो ता है । तथा घट एसा कहने पर भी घट इस प्रकारकी ३

वृद्ध्यभिधानानुगमलिङ्गानुमितसकलायसग्रह । एवप्रकारोऽपि सग्रहनयस्य' विषय ।  
 सग्रहनयाक्षिप्तानामर्शाना विधिपूर्वकमवहरण व्यवहार । को विधि ? य-  
 सग्रहगृहीतोऽप्यस्तदानुपूर्वणव व्यवहार प्रवतत इत्यय विधि । तद्यथा—सवसग्रहण  
 'यसत्त्व गृहीत तच्चानपेक्षितविशेषनाल मव्यवहारारयेति व्यवहारनय आश्रीयते ।  
 यत्सत्तद् द्रव्य गुणो वेति । द्रव्येणापि सग्रहाक्षिप्तेन जीवाजीवविशेषानपेक्षेण न शक्य  
 सव्यवहार इति जीवद्रव्यमजीवद्रव्यमिति वा व्यवहार आश्रीयते । जीवाजीवावपि' च  
 सग्रहाक्षिप्तौ नाल सव्यवहारारयेति प्रत्येक देवनारमादिघटादिश्च व्यवहारेणाश्रीयते ।  
 एवमय नयस्तावद्वर्तते यावत्पुनर्नास्ति विभाग ।

ऋजु प्रगुण सूत्रयति' तत्रयतीति ऋजुसूत्र । 'पूर्वापरांस्त्रिकालविषयानतिसम्य  
 वतमानकालविषयानौवसे' अतीतानागतयोर्विनष्टानुत्पन्नत्वेन व्यवहाराभावात् । तच्च

वृद्धि और षट इस प्रकारके द्रव्यकी अनुवृत्तिकर्य लिंगसे अनुमित सब षट पदार्थोंका सग्रह  
 हो जाता है । इस प्रकार अन्य भी सग्रह नयका विषय है ।

सग्रह नयक द्वारा ग्रहण किय गये पदार्थोंका विधिपूर्वक अवहरण अर्थात् मेन करना  
 व्यवहार नय है ।

शका—विधि क्या है ?

समाधान—जो सग्रह नयके द्वारा गृहीत अथ है उसीके आनुपूर्वी क्रमसे व्यवहार  
 प्रवृत्त होता है यह विधि है । यथा—सर्वे सग्रह नयके द्वारा जो वस्तु ग्रहण की गई है वह  
 अपने उत्तर भर्दोंके बिना व्यवहार करानाम असमर्थ है इसलिये व्यवहार नयका आश्रय लिया  
 जाता है । यथा—जो सत् है वह या तो द्रव्य है या गुण । इसी प्रकार सग्रह नयका विषय  
 जो द्रव्य है वह भी जीव अजीवकी अपेक्षा किय बिना व्यवहार करानेमें असमर्थ है इसलिये  
 जीव द्रव्य है और अजीव द्रव्य है इस प्रकारके व्यवहारका आश्रय लिया जाता है । जीव  
 द्रव्य और अजीव द्रव्य भी जब तक सग्रह नयके विषय रहते हैं तब तक वे व्यवहार  
 करानेमें असमर्थ हैं इसलिये व्यवहारसे जीव द्रव्यके येन मारकी आदि रूप और अजीव द्रव्यके  
 घटाटिकर्य भर्दोंका आश्रय लिया जाता है । इस प्रकार इस नयकी प्रवृत्ति वहाँ तक होती  
 है जहाँ तक वस्तुमें फिर कोई विभाग करना सम्भव नहीं रहता ।

ऋजुका अर्थ प्रगुण है । जो ऋजु अर्थात् सरलको सूचित करता है अर्थात् स्वीकार  
 करता है वह ऋजुसूत्र नय है । यह नय पहले हुए और पश्चात् होनेवाले तीनों कालोंके  
 विषयोंको ग्रहण न करके वर्तमान कालके विषयभूत पदार्थोंको ग्रहण करता है क्योंकि

(१) संज्ञानय ॥२॥ संघ-मु । (२) पत्संघ-मु वि १ वि २, भा । (३)—जीवावपि  
 संघ-मु । (४)—यद्यपि ऋजु-मु ता ता ॥ (५) पूर्वापरा-मु । (६)—ययमाद्य-जा ।

वतमान समयमात्रम् । तद्विषयपर्यायमात्रब्राह्मणमयमृजुसूत्र । ननु सव्यवहारलोपप्रसङ्ग इति चेद् ? न अस्य नयस्य विषयमात्रप्रदर्शनं क्रियते । सबनयसमूहसाध्यो हि लोकसव्यवहारः ।

लिङ्गसख्यासाधनादिव्यभिचारनिवृत्तिपरं घट्टनयम् । तत्र लिङ्गव्यभिचारः—  
पुष्यस्तारका नक्षत्रमिति । सख्याव्यभिचारः—जलमाप वपां श्रुतु आश्रा वनम् ५  
वरणा नगरमिति । साधनव्यभिचारः—सेना पर्वतमधिकवसति । पुरुषव्यभिचारः—एहि  
मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्त पितसि । कालव्यभिचारः—विश्वदुश्वाज्म्य  
पुत्रा जनिता । भावि कृत्यमासीदिति । उपग्रहव्यभिचारः—मन्तिष्ठते प्रतिष्ठते विर

अतीतके विनष्ट और अनागतके अनुत्पन्न होनेसे उनमें व्यवहार नहीं हो सकता । वह वतमान काल समयमात्र है और उसका विषयमूठ पर्यायमात्रको विषय करनेवाला यह श्रुतिसूत्र नय है । १

घटा—इस तरह सव्यवहारक लोपका प्रसंग आता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि यहाँ इस नयका विषयमात्र विस्तारवाला है लोक सव्यवहार को सब नयोंक समूहका भाव है ।

स्त्रिं सख्या और साधन आदिके व्यभिचारकी निवृत्ति करनेवाला घट्ट नय है । स्त्रिं व्यभिचार यथा—पुष्य तारका और नक्षत्र । ये भिन्न-भिन्न लिङ्गक घट्ट हैं । इनका मिला कर प्रयोग करना स्त्रिंगव्यभिचार है । सख्याव्यभिचार यथा—जल माप वपां श्रुतु आश्रा वनम् वरणा नगरम् य एक वचनान्त और बहुवचनान्त घट्ट है । इनका विशेषणविभाष्यरूपसे प्रयोग करना सख्याव्यभिचार है । साधनव्यभिचार यथा—सेना पर्वतमधिकवसति सेना पर्वतपर है । यहाँ अधिकरण कारकके अर्थमें मण्डली विभक्ति न होकर त्रितीया विभक्ति है इसलिये यह साधनव्यभिचार है । पुरुषव्यभिचार यथा—एहि मन्ये रथेन यास्यसि न हि यास्यसि यातस्ते पितः—आओ तुम समझत हो कि मैं रथसे जाऊँगा नहीं जाओगे । मुझारे पिता गया । यहाँ 'म-यथे' क स्थानमें मन्ये और यास्यसि के स्थानमें 'यास्यसि क्रियाका प्रयोग किया गया है इसलिये यह पुरुषव्यभिचार है । काल व्यभिचार यथा—विश्वदुश्वाज्म्य पुत्रा जनिता—इसका विश्वदुश्वा पुत्र होगा । यहाँ विश्वदुश्वा कर्ता रखकर 'जनिता' क्रियाका प्रयोग किया गया है इसलिये यह कालव्यभिचार है । अथवा भावि कृत्यमासीत्—होनेवाला काय हो गया । यहाँ होनेवाले कायको हो गया बनलाया गया है इसलिये यह कालव्यभिचार है । उपग्रहव्यभिचार यथा—मन्तिष्ठते प्रतिष्ठते विरमति उपरमति । यहाँ 'सम् और 'प्र' उपसर्गके कारण स्था धातुका आत्मनपद प्रयोग तथा 'वि और उप उपसर्गक कारण रम्'

(१) बह्व्य हि १ वि ० । (२) वनमिति । पाठ-आ वि १ वि ० ता वा । (३)-आर (कारकव्यभिचार) सना म । (४) सेना वनमध्यास्ते । पु३-ता । (५) एहि मन्ये रथेन यास्यसि । -या म वा ०१११४५ । (६) 'भावि कृत्यमासीत्' । पु३ो व्यभिचयमासीत् । वा म वा १३५११३ ।



मत्पुपरमतीति । एवम्प्रकार व्यवहारमन्याम्य मयते अन्यायस्यान्यायेन सम्यघा-  
मावात् । लोकसमयविरोध इति चेत् ? विरुध्यताम् । सत्त्वमिह मीमांस्यते न मप-  
ज्यमातुरेच्छानुवर्ति ।

नानार्थसमभिरोहणात्समभिच्छेद । यतो नानार्थान्तिमतीत्यकमथमाभिमुख्येन रूढ  
समभिच्छेद । गौरित्यय शब्दो वागादिष्वर्थेषु वर्तमानः पक्षावभिच्छेद । अथवा अथ-  
गत्यथ शब्दप्रयोग । तत्रकस्याथस्यकेन गताथत्वात्पर्यायशब्दप्रयोगोऽन्यथकः । शब्द-  
भेदश्चेदस्ति अर्थभेदनाप्यवश्यं भवितव्यमिति । नानाथसमभिरोहणात्समभिच्छेद । इन्द्र-  
नादिन्द्र सप्तनाच्छेदकं पूर्दारणात् पुरन्दर इत्येव सर्वत्र । अथवा यो यत्राभिच्छेद स तत्र  
समेत्याभिमुख्यनारोहणात्समभिच्छेद । यथा क्व भवानास्ते ? आरमनीति । कुत ?

घातुका परस्मैपदमें प्रयोग किया गया है इसलिये यह उपग्रहव्यभिचार है । यद्यपि व्यवहारमें  
ऐसे प्रयोग होते हैं तथापि इस प्रकारके व्यवहारको सभ्यनय अनुचित मानता है क्योंकि  
पर्यायार्थिक नयकी दृष्टिसे अन्य अर्थका अन्य अर्थक साथ सम्बन्ध नहीं बन सकता ।

शब्दा—इसस लोकसमयका (व्याकरण शास्त्रका) विरोध होता है ।  
समाधान—यदि विरोध होता है तो होने दो इससे हानि नहीं क्योंकि यहाँ तत्त्वकी  
मीमांसा की जा रही है । वहाँ कुछ पीड़ित पुरुषकी इच्छाका अनुकरण करनेवाली नहीं होती ।

नाना अर्थोंका समभिरोहण करनेवाला होनेसे समभिच्छेद नय कहलाता है । चूँकि जो

नाना अर्थोंको 'सम्' अर्थात् छोड़कर प्रधानतासे एक अर्थमें रूढ़ होता है वह समभिच्छेद नय है ।

उदाहरणार्थ—'गो' इस शब्दक वचन आदि अर्थक अर्थ पाय जाते हैं तो भी वह 'पशु' इस  
अर्थमें रूढ़ है । अथवा अर्थका ज्ञान करानेके लिये शब्दोंका प्रयोग किया जाता है । ऐसी

हालतमें एक अर्थका एक शब्दसे ज्ञान हो जाता है इसलिये पर्यायवाची शब्दोंका प्रयोग करना  
निष्फल है । यदि शब्दोंमें भेद है तो अर्थभेद अवश्य होना चाहिये । इस प्रकार नाना अर्थोंका  
समभिरोहण करनेवाला होनेसे समभिच्छेद नय कहलाता है । जैसे इन्द्र शक्र और पुरन्दर म-  
तीन शब्द होनेसे इनके अर्थ भी तीन हैं । इन्द्रका अर्थ आज्ञा ऐश्वर्यवान् है शक्रका अर्थ  
समर्थ है और पुरन्दरका अर्थ मगरका वारण करनेवाला है । इसी प्रकार सर्वत्र जानना चाहिये ।

अथवा जो जहाँ अभिच्छेद है वह वहाँ 'सम्' अर्थात् प्राप्त होकर प्रमुखतासे रूढ़ होनेके कारण  
समभिच्छेद नय कहलाता है ? यथा—आप कहाँ रहते हैं ? अपनेमें क्योंकि अन्य वस्तुकी अन्य

(१)—हारण्यं न्याम्यं नु सि १ सि २, आ । (२) तत्त्वं मीमांसा आ सि १ सि २ ।

(३) न तु भेद—आ ता सि १ । (४)—नास्तिवु वर्त—ता ना । (५) 'अर्थमत्यर्थ-सम्प्रयोग ।  
अर्थं संप्रत्याययिष्यामीति शब्दः प्रमुच्यते । तत्रैकितोक्तत्वात्सामर्थ्यत्वं द्वितीयम् न तृतीयस्य च प्रदोषेण  
न भवितव्यम् 'उक्तार्थमप्रयोग' इति' पा न आ २।१।१।१।

वस्त्वन्तरे वृत्त्यभावात् । 'यद्यन्यस्या यत्र वृत्ति' स्यात् ज्ञानादीनां रूपादीनां चाकाशे वृत्ति स्यात् ।

येनात्मना भूतस्तेनवाध्यवसाययतीति एवम्भूत । स्वाभिप्रेतक्रियापरिणतिक्षणे एव स शब्दो युक्तो नान्यदस्ति । यदवेन्दो नान्यदस्ति तदैवेन्द्रो नाभिपेक्षको न पूजक इति । यदव गच्छति तदव गीर्णं स्थितो न शयित इति । अथवा येनात्मना येन ज्ञानेन भूत परिणतस्तेनवाध्य वसाययति । यथेन्द्राग्निज्ञानपरिणत आत्मवेन्द्रोऽग्निश्चेति ।

उक्ता नगमादयो नया । उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वादेया क्रमः पूवपूवहेतुमत्त्वाच्च । एवमेते नया पूवपूवविकृद्धमहाविषया उत्तरात्तरानुकूलाल्पविषया द्रव्यस्यानन्तशक्तौ प्रति शनित विभिद्यमाना बहुविकल्पा जायन्ते । स एते गुणप्रधानतया परस्परतत्रा सम्यग्दशनहेतवः पुरुषाधिक्रियासाधनसामर्थ्यात्तन्त्वादय इव यथोपाय विनिर्देश्यमाना पटादि सञ्जा स्वतन्त्राश्चासमर्था । तन्त्वादय इवति विषय उपन्यासः । तन्त्वादयो निरपेक्षा

वस्तुमें वृत्ति नहीं हो सकती । यदि अन्यकी अन्यमें वृत्ति होती है ऐसा माना जाय तो सामादिककी और रूपादिककी आकाशमें वृत्ति होन छग ।

जो वस्तु जिस पर्यायको प्राप्त हुई है उसी रूप निश्चय करनेवाले नयको एवम्भूत नय कहत है । आशय यह है कि जिस शब्दका जो वाच्य है उस रूप क्रियाके परिणमनके समय ही उस शब्दका प्रयोग करना युक्त है अन्य समयमें नहीं । जमी आज्ञा ऐश्वर्यवाला हो तभी इन्द्र है अभिपेक्ष करनेवाला नहीं और न पूजा करनेवाला ही । जब गमन करती हो तभी गाय है वठी हुई नहीं और न सोती हुई ही ।

अथवा जिस रूपसे अर्थात् जिस ज्ञानसे आत्मा परिणत हो उसीरूपसे उसका निश्चय करनेवाला नय एवम्भूत नय है । यथा—इन्द्ररूप ज्ञानसे परिणत आत्मा इन्द्र है और अग्निरूप ज्ञानसे परिणत आत्मा अग्नि है ।

य नगमादिक नय कहे । उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयवाले होनेके कारण इनका यह क्रम कहा है । पूर्व पूर्व नय भाग भागके नयका हेतु है इसलिये भी यह क्रम कहा है ।

इस प्रकार ये नय पूर्व पूर्व विकृष्ट महाविषयवाचक और उत्तरोत्तर अनुकूल अल्प विषयवाले हैं । इन्द्रकी अनन्त शक्ति है इसलिये प्रत्येक शक्तिकी अपेक्षा भदकी प्राप्त हो कर ये अनेक विकल्पवाचक हो पाते हैं ।

य सब नय गीण मुख्यरूपसे एक वृत्तकी अपेक्षा करके ही सम्मगर्धनक हतु ह । जिस प्रकार पुरुषकी अर्धक्रिया और साधनोंकी सामर्थ्यबल सहायोग्य निबेधित किम्य मये तन्तु आत्मिक पट मादिक सञ्जाको प्राप्त होत है और स्वतन्त्र रहने पर कार्यकारो नहीं होत उसी प्रकार य नय समझने चाहिये ।

अपि काञ्चिदर्थमात्रा जनयन्ति । भवति हि कश्चित्प्रत्येकं तन्तुस्त्वक्पत्राण समथं । एकश्च बन्धजो बन्धने समथं । इमे पुननया निरपेक्षा सतो न काञ्चिदपि सम्यग्बन्धन मात्रा प्रादुर्भावयन्तीति ? नप दोषः अभिहितानवबोधात् । अभिहितमर्थमनवबुध्य परेणद्रमुपालभ्यते । एतदुक्तं निरपेक्षेषु तन्त्वादिषु पटादिकाय नास्तीति । यत्तु तनो पदाशितं न तत्पटादिकार्यम् । किं तर्हि । केवलं तन्त्वाविकार्यम् । तन्त्वादिकार्यमपि तन्त्वाद्य वयवेषु निरपेक्षेषु नास्त्येव इत्यस्मत्पक्षसिद्धिरेव । अथ तन्त्वादिषु पटादिकाय शक्यपक्षया अस्तीत्युच्यते ? नयध्वपि निरपेक्षेषु बुद्ध्यभिधानरूपेषु कारणवशात्सम्यग्दर्शनहेतुत्ववि परिणतिसद्भावात् शक्यत्वाऽऽत्मनाऽस्तित्वमिति साम्यमेवोपन्यासस्य ।

इति तन्त्वायवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसंज्ञाया प्रथमोऽध्यायः ।

शका—प्रकृतमें तन्त्वावयव इव विषय दृष्टान्त है क्यों कि तन्तु आविक निरपेक्ष रह कर भी किसी न किसी कार्य का जन्म पठ ही हैं । दसठ है कि कोई एक तन्तु स्वभावी रक्षा करनेमें समर्थ है और एक बल्कर किसी वस्तुको बांधनेमें समर्थ है । किन्तु ये नय निरपेक्ष रहते हुए शोका भी सम्यग्दर्शनरूप कार्यको नहीं पदा कर सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जो कुछ कहा गया है उस समझे नहीं । कहे गये अथ को समझे बिना दूखरन यह उपालम्भ दिया है । हमने यह कहा है कि निरपेक्ष तन्तु आदिमें पटादि कार्य नहीं पाया जाता । किन्तु शकाकारने जिसका निर्देश किया है वह पटादिका काम नहीं है ।

शका—तो वह क्या है ?

समाधान—केवल तन्तु आविका कार्य है । तन्तु आविका काम भी सबथा निरपेक्ष तन्तु आवि के अवयवोंमें नहीं पाया जाता इस लिय इससे हमारे पक्षका ही समर्थन होता है ।

यदि यह कहा जाय कि तन्तु आविमें पटादि कार्य शक्तिकी अपेक्षा है ही तो यह बात बद्धि और अभिधान—शब्दरूप निरपेक्ष नयोंके विषयमें भी जानना चाहिये । उनमें भी ऐसी शक्ति पाई जाती है जिससे वे कारणवश सम्यग्दर्शनक हेतुरूपसे परिणामन करनेमें समर्थ हैं । इस लिय दृष्टान्तका दार्ष्टान्तिस साम्य ही है ।

(१) 'एकस्त्वन्त्वावयवोऽन्यमवन्तस्तन्तुवयवस्य कन्धजो समर्थः । × × एकश्च बन्धजो बन्धनेऽयमर्थस्त्वन्तुवयवस्य रज्जु समर्थ भवति । विषय उपन्यास । भवति हि तत्र वा च भावती चार्थमाभा । भवति हि कश्चित्प्रत्येकतन्तुस्त्वक्पत्राण समर्थः । × × एकश्च बन्धजो बन्धने समर्थः । वा न ना १।२।२।५३। (२)—कार्यम् । तर्हि तन्त्वा—ता ना । (३)—न्यायस्य । ज्ञानवर्धनवोस्त्वत्वं नयानां चैव लक्षणम् । ज्ञानस्य च प्रमाणत्वमप्यायेऽस्मिन्निति । इति' प्रतिषेधं पाठः ।

विश्वपार्थ-प्रमाणके भव प्रभदोंका कथन करनेके बाद यहाँ नयोंका निर्देश किया गया है। नय श्रुत ज्ञानका एक भव है यह पहले ही बतला आया है। यहाँ आलम्बनकी प्रधानतासे उसके साथ नय किये गए हैं। मुख्यतः आलम्बनको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है उपचार, अर्थ और शब्द। पहला नगमनय उपचारनय है। सप्रह व्यवहार और ऋजुसुभ अथनय हैं और शप तीन शब्दनय हैं। आशय यह है कि नैगम नयकी प्रवृत्ति उपचारकी प्रधानतासे होती है इसलिये इसे उपचार नय कहा है। बस तो इसकी परिगणना अर्थनयमें की गई है। सप्रह व्यवहार और ऋजुसुभकी प्रवृत्ति अर्थकी प्रधानतासे होती है इसलिये इन्हें अर्थनय कहा है और शब्द समभिरुद्ध तथा एवंश्रुत नयकी प्रवृत्ति शब्दकी प्रधानतासे होती है इसलिये इन्हें शब्द नय कहा है।

असा कि हमन सकते किया है कि नगमनयका समावेश अर्थनयोंमें किया जाता है किन्तु शप १० अर्थनयोंसे नैगमनयको अर्थनय माननेमें मौलिक भव है। वात यह है कि उपचार की प्रधानतासे वस्तुको स्वीकार करना यह नगमनयका काम है शप अर्थनयोंका नहीं इसलिये इस उपचार नय कहा है। शेष अर्थनय तो भदाभेद या सामाय शिक्षणकी प्रधानतासे शीघ्र ही वस्तुको विषय करते हैं वहाँ उपचारको विशेष स्थान नहीं इसलिये हमने अर्थनयोंसे नैगमनयको पृथक् बतलाया है। माना कि नगमनय भी गौण मुख्यभावसे भेदाभेद या सामान्यविशेषको विषय करता है पर इन सबकी जड़में उपचार काम करता है इसलिये नगमनय मुख्यतः उपचारनय ही है। १५

सिद्धसेन विचारकरने नैगमनयको नय ही नहीं माना है इसका कारण यह उपचार ही है। सम्यग्ज्ञानक प्रकरणमें उपचारको वहाँ तक स्थान दिया जाय यह एक प्रश्न तो है ही। वस्तुस्पर्शी विकल्प और वस्तुमें आरोपित विकल्प इनमें बड़ा अन्तर है। वस्तुस्पर्शी विकल्पोंको सम्यग्ज्ञानकी कोटिमें स्थान देना तो अनिवाय है किन्तु यदि वस्तुमें आरोपित विकल्पोंको सम्यग्ज्ञानकी कोटिमें स्थान दिया जाय तो मनकस्याकी सीमा ही न रहे यह एक भय था जिसके कारण आचार्य सिद्धसेन विचारकरने नय प्रकरणमें नैगमका नामोन्मत्त तक न किया। किन्तु ऐसा उपचार, जो परम्परासे ही सही मूल कार्यका ज्ञान करानमें सहायक हो और जिससे अबास्तबिक भ्रम फैलनेका भय न हो या जो वस्तुका विपरित रूपसे बोध न करा कर वस्तुके सूक्ष्म तत्त्वकी ओर इधारा करता हो प्रायः ही एसा मानकर उपचार प्रधान नगमनयकी नयप्रकरणमें स्थान दिया गया है। इससे विचार करन की परिधि बढ़ जाती है और सम्यग्ज्ञान के जनक समग्र विचारोंका वर्गीकरण करनेमें सहायता मिलती है। २५

यदि नैगमनयकी श्रेणिमें जो विचार आते हैं उन्हें मिथ्या मान कर मर्यादा छोड़ दिया जाता है—सम्यग्ज्ञानकी श्रेणिमें स्थान नहीं दिया जाता है तो मनवरी ओर ल जाने वाला जितन विचार हैं उनकी भी यही गति होनी चाहिये। यदि उनसे वस्तुके स्वरूपका

विश्लेषण करनेमें सहायता मिलती है इस किये उनकी नयीकी अणिमें परिगणना की जाती है तो यही बात मैगमनयके ऊपर भी लागू करनी चाहिये ।

इन नयीका सामान्य और विशेष स्वरूप टीकामें दिया ही है इसकिये यहाँ इस विषयमें विशेष नहीं लिखा गया है ।

१. अनुसन्न नय बतमान पर्यायद्वारा वस्तुको ग्रहण करता है और शब्दादिक नय शब्दों द्वारा वर्तमान पर्यायमुखन वस्तुको ग्रहण करते हैं इसकिये इन नयीका विषय द्वित्व नहीं हो सकता । यही कारण है कि शब्दनयके विषयका निरूपण करते समय एक साथ प्रयुक्त किये गये एकवचनान्त और द्विवचनान्त आदि शब्द का वाच्य भावि इसके अविषय बतलाय है और सममितिकके विषयका निरूपण करते समय एक शब्दके अनेक अर्थ या एक अर्थमें अनेक शब्दोंका प्रयोग करना इसका अविषय बतलाया है क्योंकि एकवचनान्त शब्द का वाच्य अन्यार्थ है और द्विवचनान्त शब्द का वाच्य अग्यार्थ है, इसकिये शब्द नय इनको एक वाच्य रूपसे ग्रहण नहीं कर सकता । इसी प्रकार गो शब्द का गाय अर्थ अन्यार्थ है और वाणी अर्थ अन्यार्थ है इस किये सममितिक नय इन अर्थोंको एक साथ ग्रहण नहीं कर सकता । इसी प्रकार सभी नयीके विषयको समझना चाहिये ।

२. नय अर्थ द्वारा वस्तुको स्पष्ट करनेवाला एक विकल्प है । प्रमाण ज्ञान के समान यह समग्र वस्तुको स्पर्श नहीं करता इसकिये ही निरपेक्ष नयको मिथ्या और सापेक्ष नयको सम्भव कहा गया है । इस विषयका विषय सुलासा और सब नयीकी उत्तरोत्तर सूक्ष्मताका विचार मूलमें किया ही है । इस प्रकार नय सात हैं और वे ब्रह्मादिक और पर्यायादिक इन दो भागों में बंट हुए हैं यह निश्चित होता है ।

३. इस प्रकार सर्वार्थसिद्धि नामवाली उत्तरार्थवृत्तिमें प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ।

## अथ द्वितीयोऽध्याय

आह् सम्पद्दर्शनस्य विषयभावेनापविष्टेषु जीवादिध्वादाद्युपन्यस्तस्म जीवस्य

किं स्वतत्त्वमित्युच्यते—

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

आत्मनि कर्मण स्वशक्ते कारणवशादनुद्भूतिरुपशम । यथा कृतकादि  
द्रव्यसम्बन्धादम्भसि पङ्कस्य उपशम । क्षय आत्यन्तिकी निवृत्ति । यथा तस्मिन्ना  
म्भसि शुचिभाजनान्तरसंक्रात पङ्कस्यात्यन्तान्नाश । उभयात्मको मिश्रः । यथा तस्मि  
न्नेवाम्भसि कृतकादिद्रव्यसम्बन्धात्पङ्कस्य क्षीणाक्षीणयुक्ति । द्रव्यादिनिमित्तवशात्कर्मणां  
फलप्राप्तिरुच्यते । द्रव्यात्मलक्षणमात्रहेतुर्न परिणामः । उपशम प्रयोजनमस्येत्यौपश  
मिक । एव क्षायिक क्षायोपशमिक औदयिक पारिणामिकश्च । त एते पञ्च भावा  
असाधारणा जीवस्य स्वतत्त्वमित्युच्यते ।

## दूसरा अध्याय

सम्पद्दर्शनके विषयरूपसे जीवादि पदार्थोंका कर्मण किया । उनके आदिमें जो जीव पदार्थ  
भाया है उसका स्वतत्त्व क्या है यह बतलानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदयिक और पारिणामिक ये जीवके स्वतत्त्व हैं ॥१॥

जैसे कृतक आदि द्रव्यके सम्बन्धसे जलमें कीचड़का उपशम हो जाता है उसी प्रकार  
आराममें कर्मकी निज शक्तिका कारण बलस प्रकट न होना उपशम है । जैसे उसी जलको  
दूसरे साफ बर्तनमें बदल देने पर कीचड़का अत्यन्त अभाव हो जाता है वैसे ही कर्मों का आरामसे  
सर्वथा दूर हो जाना क्षय है । जिस प्रकार उसी जलमें कृतकादि द्रव्यके सम्बन्धसे कुछ कीचड़  
का अभाव हो जाता है और कुछ बना रहता है उसीप्रकार उभयरूप भाव मिश्र है । द्रव्यादि  
निमित्तके वशासे कर्मोंके फलका प्राप्ति होना उदय है । और जिसके होनेमें द्रव्यका स्वरूपलक्षण  
मात्र कारण है वह परिणाम है । जिस भावका प्रयोजन अर्थात् कारण उपशम है वह औपशमिक  
भाव है । इसी प्रकार क्षायिक क्षायोपशमिक औदयिक और पारिणामिक भावोंकी व्युत्पत्ति  
कहनी चाहिये । ये पाँच भाव असाधारण हैं इसलिए जीवके स्वतत्त्व कहलाते हैं ।

सम्यग्दर्शनस्य प्रकृतत्वात्तस्य त्रिषु विकल्पेषु औपशमिकमादौ लभ्यत इति तस्यादौ ग्रहणं क्रियते । तदनन्तरं क्षायिकग्रहणम् तस्य प्रतियोगित्वात् ससार्थपक्षया द्रव्यतस्ततोऽसम्येयगुणत्वाच्च । तत उत्तरं मिश्रग्रहणम् तदुभयात्मकत्वात्ततोऽसम्येयगुणत्वाच्च । तेषां सर्वेषामनन्तगुणत्वाद् औदयिकपारिणामिकग्रहणमते क्रियते । अत्र

५. द्वन्द्वनिर्देश कस्यव्य-औपशमिकक्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिका इति । तथा सति द्वि-  
 'च' शब्दो न कर्तव्यो भवति ? न च शब्दमयम् अन्यगुणापेक्षया मिश्र इति प्रतीयेत ।  
 वाक्ये पुनः सति 'च' शब्देन प्रकृतोभयानुकम्पं कृतो भवति । तर्हि क्षायोपशमिकग्रहणमेव  
 कतव्यमिति चेत् ? न गौरवात् । मिश्रग्रहणं मध्ये क्रियते उभयापेक्षार्थम् । भव्यस्य  
 औपशमिकक्षायिकी भावौ । मिश्रं पुनरभ्यस्यापि भवति औदयिकपारिणामिकाभ्या  
 १ सह भव्यस्यापीति । भाषापक्षया तल्लिङ्गसंख्याप्रसङ्गं स्वतत्त्वस्येति चेत् ? न उपा-  
 तलिङ्गसंख्यात्वात् । तद्भावरत्त्वम् । एव तत्र स्वतत्त्वमिति ।

सम्यग्दर्शनका प्रकरणं होनुस उसके तीन-मेवोंमेंसे-सर्वप्रथम-औपशमिक-सम्यग्दर्शन  
 होता है अतएव औपशमिक भावको आदिमें ग्रहण किया है । क्षायिक भाव औपशमिक भावका  
 प्रतियोगी है और ससारी बीवोंकी अपेक्षा औपशमिक सम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि  
 १५ असंख्यातगुण है अत औपशमिक भावक पश्चात् क्षायिक भावको ग्रहण किया है । मिश्रभाव इन  
 दोनोंरूप होता है और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि बीव औपशमिक और क्षायिक सम्यग्दृष्टियोंसे  
 असंख्यातगुणे होते हैं अत तत्पश्चात् मिश्रभावको ग्रहण किया है । इन सबस अनन्तगुण  
 होनके कारण इन सबके अन्तमें औदयिक और पारिणामिक भावों को रखा है ।

२. धका—यहाँ औपशमिकक्षायिकमिश्रऔदयिकपारिणामिका इस प्रकार द्वन्द्व समास  
 करना चाहिये । एसा करनेसे सूत्रमें दो 'च' शब्द नहीं रखने पड़ते हैं ?

समाधान—ऐसी धका नहीं करनी चाहिये क्योंकि सूत्रमें यदि 'च' शब्द न रखकर  
 द्वन्द्व समास करते तो मिश्रकी प्रतीति अग्य गुणकी अपेक्षा होती । किन्तु वाक्यमें 'च' शब्दक  
 रहने पर उससे प्रकरणमें आया हुए औपशमिक और क्षायिक भावका अनुकर्षण हो जाता है ।

३. धका—जो फिर सूत्रमें 'क्षायोपशमिक' पदका ही ग्रहण करना चाहिये ?

१५ समाधान—नहीं क्योंकि 'क्षायोपशमिक' पदके ग्रहण करनेमें गौरव है अत 'इस शेष  
 को दूर करनेके लिए 'क्षायोपशमिक' पदका ग्रहण न करके मिश्र पद रखा है ।

दोनोंकी अपेक्षाने मिश्र पद मध्यमें रखा है । औपशमिक और क्षायिकभाव  
 भव्यके ही होने हैं । किन्तु मिश्रभाव अभव्यके भी होता है । तथा औदयिक और पारिणामिक  
 भावोंके साथ भव्यक भी होगा है ।

४. धका—'भावोंकी अरथा स्वतत्त्वपदका नहीं लिग और संख्या प्राप्त होती है ?

अत्राह तस्यकस्मात्मनो ये भावा औपशमिकादयस्ते किं भेदवन्त उताभेदा इति ?  
अत्रोच्यते, भेदवन्त । यद्येव, भेदा उच्यतामित्यत आह—

द्विनवाष्टादशकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ॥ २ ॥

इयादीना सख्याशब्दानां कृतद्वद्धानां भेदशब्देन सह स्वपदार्थेऽन्यपदार्थे वा वृत्ति  
वेदितया । द्वौ च नव च अष्टादश च एकविंशतिश्च त्रयश्च द्विनवाष्टादशकविंशतित्रयः । १  
ते च त भेदाश्च त एव भेदा यथामिति वा वृत्तिद्विनवाष्टादशकविंशतित्रिभेदा इति ।  
यदा स्वपदार्थे वृत्तिस्तदा औपशमिकादीना भावानां द्विनवाष्टादशकविंशतित्रया भेदा  
इत्यभिसम्बन्ध क्रियते अथवशाद्विभक्तपरिणाम इति । यदाऽन्यपदार्थे वृत्तिस्तदा

समाधान—नही क्योंकि जिस पदको जो लिंग और सख्या प्राप्त हो गई है उसका  
वही लिंग और वही सख्या वनी रहती है ।

स्वतत्त्वका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—स्व तत्त्वं स्वतत्त्वम्—जिस वस्तुका जो भाव है वह  
तत्त्व है और स्व तत्त्वं स्वतत्त्व है ।

विशेषाद्य—पाँच भावोंमें प्रारम्भिक चार भाव निमित्तकी प्रधानतासे कह गये हैं और  
अन्तिम भाव योग्यताकी प्रधानतासे । जगमें जिसने काय होते हैं उनका विभागीकरण इसी  
हिंसाबसे किया जाता है । कहीं निमित्तको प्रमुखता दी जाती है और कहीं योग्यताको । १५  
पर इससे अर्थ वस्तुका कतु स्व अन्यमें मानना उचित नहीं । ऐसे विभागीकरणके दिक्रान  
का इतना ही योजन है कि जहाँ जिस कायका जो सुनिश्चित निमित्त हो उसका परिज्ञान हो  
जावे । यों तो कार्य अपनी योग्यतासे होता है किन्तु जिसके बिना जो कार्य नहीं होता वह  
उसका सुनिश्चित निमित्त कहा जाता है । इस हिंसाबसे विचार करने पर औपशमिक  
शायिक शायोपशमिक और औदयिक ये चार निमित्तिक भाव उद्गृत हैं । १६

एक आत्माके जो औपशमिक आदि भाव कहें हैं उनका कोई भेद है या नहीं ?  
भेद है । यदि ऐसा है तो इनके भेदोंका कथन करना चाहिये इसलिये आगेका सत्र कहते हैं—

उक्त पाँच भावोंके क्रमसे दो, नौ, अठारह, इकसोस और तीन भेद हैं ॥ २ ॥

सख्याबाची दो आदि शब्दोंका द्वन्द्व समास करके पदवाच्य उगका भव शब्दके साथ स्वप  
शपम या अन्यपदार्थमें समास जानना चाहिये । स्वपदार्थ प्रधान समास यथा—द्वौ च नव च अष्टादश १५  
च एकविंशतिश्च त्रयश्च इति द्विनवाष्टादशकविंशतित्रयः त एव भेदा इति द्विनवाष्टादशक  
विंशतित्रिभेदा । अन्यपदार्थप्रधान समास यथा—द्विनवाष्टादशकविंशतित्रयः भेदा यथा त  
द्विनवाष्टादशकविंशतित्रिभेदा ।

जब स्वपदार्थमें समास करते हैं तब औपशमिक आदि भावका दो नौ अगारह  
इकसोस और तीन भेद हैं ऐसा सम्बन्ध कर सत्र है । यद्यपि पूरे सूत्रमें औपशमिक आदि १



यं क्षायिको भावा नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्वरूपप्रतिपादनार्थमाह—

ज्ञानवक्षनज्ञानलाभभोगोपभोगधीर्याप्ति च ॥४॥

च'शब्द' सम्यक्त्वचारित्रानुपपत्त्याय । ज्ञानावरणस्यात्यंतक्षयात्कवल-

ज्ञान क्षायिक तथा कवलदशनम् । दानान्तरायस्यात्यंतक्षयादनंतप्राणिगणानुपहृत्कर

क्षायिकमभयदानम् । लाभान्तरायस्याशपस्य निरासात् परित्यक्तकवलाहारक्रियाणां

केवलिना यत् शरीरवलाघानहेतवोऽन्यमनुजासाधारणा परमशुभा सूक्ष्मा अनन्ता प्रति

समय पुद्गला सम्यग्धमुपयान्ति स क्षायिका लाभ । कृत्स्नस्य भोगान्तरायस्य तिरो

भावात्तद्विभूताऽतिशयदाननन्तो भोग क्षायिक । यत् कुसुमवृष्टिघादयो विशया प्रादु

भवन्ति । निरवशपस्योपभोगान्तरायस्य प्रलयात्प्रादुभूताऽनन्त उपभोग क्षायिक । यत्

सिंहासनचामरच्छत्रप्रयादयो विभूतय । धीर्यान्तरायस्य कमणोऽन्यन्तक्षयादाविभूतम

नन्तधीय क्षायिकम् । पूर्वोक्तानां नप्ताना प्रकृतीनामत्यन्तक्षयात्क्षायिक सम्यक्त्वम् ।

पहली योग्यता अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कारुणी है । जिस जीवके सत्कारमें रहने का

इतना बाल धप रहा है उस ही सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है । पर इतन बालके

दाप रहनपर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनी ही चाहिये एसा कोई नियम नहीं है । हमक पहले

सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती इतना सुनिश्चित है । धप कथन सुगम है ।

जा क्षायिकभाव नौ प्रकारका कहा है उसका भर्षोके स्वरूपका कथन करनेके लिये

आगवा सूत्र कहत है—

क्षायिक भावके ना भेद है—क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक

लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक धीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र ॥४॥

सूत्रमें च' शब्द सम्यक्त्व और चारित्रके ग्रहण करने क लिये आया है । ज्ञानाव

रण कमक अत्यन्त क्षयस क्षायिक केवलज्ञान होता है । इसी प्रकार कवलज्ञान भी होता

है । ज्ञानान्तराय कमक अत्यन्त क्षयस अनन्त प्राणियोंक समुदायका उपकार करनेवाला

दायित अभयदान होता है । समस्त लाभान्तराय कमक क्षयस कवलाहार क्रियाके

रहित कवदियोंक दायित लाभ होता है जिसमें उनके शरीरको बल प्रदान करने में कारण

भूत दूगर मनुष्योंको अमापारण अर्थात् कभी न प्राण हानिकाम परम दुःख और मृ स एने अनन्त

परमाणु प्रति समय सम्बन्धको प्राण हान है । समस्त भोगान्तराय कमक क्षयस अनिदयबाले

क्षायिक अनन्त भोगता प्रादुर्भाव होता है । जिसमें कुसुमवृष्टि आदि आन्धय विषय हात है ।

समस्त उपभोगान्तराय कवल है । जात में अनन्त क्षायिक उपभोग होता है । जिसमें सिंहासन

चामर और छीन छत्र आदि विभूतियां हाती है । धीर्यान्तराय कमक अत्यन्त क्षयस क्षायिक

चारित्र्यमपि तथा । यन्नि क्षायिकदानादिभावकृतमभयदानादि सिद्धेष्वपि तत्प्रसङ्ग ?  
नप दोष धरीरनामतीयकरणामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात् । तेषा तदभावे तदप्रसङ्ग । कथ  
सहि तपा सिद्धेषु वृत्ति ? परमानन्त्याव्यावाघरूपेणैव तेषा तत्र वृत्ति । केवल-  
मानरूपेणानन्तस्वीयवृत्तियत् ।

होता ह । इसी प्रकार क्षायिक चाग्नि का स्वरूप समझना चाहिए ।

पचा—यदि क्षायिक ज्ञान आग्नि भावोंके निमित्तस अमयदान आग्नि काय होत ह तो  
सिद्धोंमें भी उनका प्रसंग प्राप्त होता ह ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं क्योंकि इस अमयदान आग्नि ज्ञान में धरीर नाम  
कर्म और तीर्थंकर नामकक उभयही अपेक्षा रहती ह । परन्तु सिद्धोंके धरीर नामकर्म और  
तीर्थंकर नामकर्म नहीं होते अतः उनका अमयदान आग्नि नहीं प्राप्त होते ।

पंका—दो सिद्धांत क्षायिक ज्ञान भादि भावोंका सद्भाव कर्म माना जाय ?

समाधान—त्रिम प्रकार सिद्धोंके कवलज्ञान रूपम अनन्त बीयका सद्भाव माना  
गया ह उसी प्रकार परमानन्तक अव्यावाघरूपमें ही उनका सिद्धांत सद्भाव ह ।

विद्यार्थ—यानिकर्मोंके चार भेद ह—ज्ञानावरण स्थानावरण मोक्षनीय और अक्षराय ।

इनमें से ज्ञानावरणक अभावम क्षायिक ज्ञान दर्शनावरणक अभावस क्षायिक ज्ञान साह्चर्यिक  
अभावम क्षायिक सम्बन्ध और क्षायिक चाग्नि तथा अक्षरायके अभावसे क्षायिक दानानि  
पाके स्थितियाँ हाना ह । इसीम क्षायिक भावक नो भव किय ह ।

यद्यपि अध्यानि कर्मोंके अभावम जीवक क्षायिक मयुग्मधु आग्नि गुण प्रकट होते ह पर  
व अनुज्ञाको न ज्ञानम उनका यही ग्रहण नहीं किया ह ।

प्रश्न यत् ह कि तेषाम जा अमयदान आदिका धरीर नामकर्म और तीर्थंकर

नामकर्मको अपेक्षा रखतवाक क्षायिक ज्ञान आग्नि काय बनलाय ह सो एसा बनलाना कही  
तक उचित ह ? यात यह ह कि एसा निमित्त निमित्तक सम्बन्ध ह कि साधकक गभम  
आनपर छ महाना पक्षम भवितयस न्व धाएर त्रिम नगरीम तीर्थंकर जन्म सत ह वही  
रस यथा करत ह । एतत्त कुमारिणां आनर मातरीम मवा करती ह, गभगोपन करती  
ह रक्षा करती ह । साधकक गभम आनपर दक्ष स्थियाँ उभयक मानत ह । जन्म तप  
कर्म और निर्वाणक समय भा एसा ही करत ह । कवल ज्ञान ज्ञानक बाद समकगरूपको  
रचना करत ह कुममवृत्ति करत ह आग्नि । इसलिये मुख्यत य अमयदानादि स्थानिकाकी  
भक्ति और धर्मानुगत पाप ह धरीर नामकर्म और तीर्थंकर नाम कर्मकी अपेक्षा रखतवाले  
क्षायिक ज्ञान आदि नही । फिर भी ज्ञान अमयदानादिना उपचारम इनका काय कहा ह ।  
एसा नही मानतपर निमित्तनिमित्त कील काय आत ह—

निर्विष्टविभक्त्यन्ता एवाभिसम्बध्यते, औपशमिकादयो भावा द्विनषाप्तादशकविशति  
त्रिभेदा इति । यथाक्रमं वचन यथासम्प्रतिपत्त्यधम । औपशमिको द्विभद । क्षायिको  
नवभेद । मिश्रोऽष्टादशभेद । औदमिक एकविशतिभेद । पारिणामिकस्त्रिभद इति ।

यद्येवमौपशमिकस्य कौ द्वौ भदावित्यत आह—

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

व्याख्यातलक्षणे सम्यक्त्वचारित्रे । औपशमिकत्व कथमिति चेदुच्यते । चारित्र  
मोहो द्विविधः कषायभेदनीयो नोकषायभेदनीयश्चेति । तत्र कषायभदनीयस्य भेदा अत  
न्तानुबन्धिनः क्रोधमानमायालोभादृषत्वारः । दर्शनमोहस्य त्रयो भदा सम्यक्त्व मिथ्यात्व  
सम्यग्मिथ्यात्वमिति । आसां सप्ताना प्रकृतीनामुपशमादौपशमिक सम्यक्त्वम् ।

अनादिमिथ्यावृष्टिभ्रम्यस्य कर्मोदयापावितकालुध्ये सति कुतस्तदुपशमः ? काल-  
लब्ध्यान्निमित्तत्वात् । तत्र काललब्धिस्तावत्—कर्मविष्ट आत्मा भ्रम्य कालेऽर्थापुद्गल  
परिवर्तनास्येऽप्रशिष्टे प्रथमसम्यक्त्वग्रहणस्य योग्यो भवति नाधिके इति । इयमेका

पक्षी बड़ी विभक्ति नहीं है तो भी अर्धवश विभक्ति बरल जाती है । और जब अन्य पदार्थों  
समाप्त करते हैं तब विभक्ति बदलनेका कोई कारण नहीं रहता । सूत्रमें इनकी विभक्तिका  
बिस प्रकार निर्देश किया है तदनुसार सम्बन्ध हो जाता है ।

सूत्रमें यथाक्रमं वचन यथासम्प्रतिके ज्ञान कटागके लिये दिया है । यथा—औपशमिक  
भावके दो भेद हैं क्षायिकके नौ भेद हैं मिश्रके अठारह भेद हैं औदमिकके एकवीस भेद  
हैं और पारिणामिकके तीन भेद हैं ।

यदि ऐसा है तो औपशमिकके दो भेद कीमसे हैं ? इस बातका ज्ञान करानेके लिये  
धागेका सूत्र कहत है—

औपशमिक भावके दो भेद हैं—औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ॥ ३ ॥

सम्यक्त्व और चारित्रिक लक्षणका व्याख्यान पहले कर आय हैं ।

धंका—इनके औपशमिकरूपका किस कारणसे है ?

समाधान—आदिमोहनीयके दो भेद हैं—कषायभेदनीय और नोकषायभेदनीय । इनमेंसे  
कषायभेदनीयके अन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभ ये चार भेद और दर्शनमोहनीयके  
सम्यक्त्व मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये तीन भेद इन सातके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व  
होता है ।

धंका—अनादि मिथ्यावृष्टि भ्रम्यके कर्मोंके उदयसे प्राप्त कलुषताके रहते हुए इनका  
उपशम कैसे होता है ?

समाधान—काललब्धि आदिके निमित्तसे इनका उपशम होता है ।

अब यहाँ काललब्धिके बतलाते हैं—कर्मयुक्त कोई भी भ्रम्य आत्मा अपुद्गल परि  
वर्तन नामके कालके क्षय रहनपर प्रथम सम्यक्त्वके ग्रहण करनेके योग्य होता है इनसे अधिक

काललब्धि' अपरा कमस्थितिका काललब्धि । उष्णपटस्थितिकपु कमसु जघ यस्थिति  
केपु च प्रथमसम्यक्त्वलाभो न भवति । क्व तर्हि भवति ? अन्तःकोटीकोटीसागरोपम  
स्थितिकेपु कमसु वन्यमापद्यमानेषु विद्युद्भपरिणामवशात्कमसु च ततः सन्त्ययसागराप  
मसहस्रोनायामन्तःकोटीकोटीसागरोपमस्थितौ स्थापितेषु प्रथमसम्यक्त्वयाग्या भवति ।  
अपरा काललब्धिभवापेक्षया । मध्यः पञ्चन्द्रिय सती पर्याप्तकः सर्वविद्युद्भ प्रथमसम्यक्  
क्त्वमुत्पादयति । आदि घ-देन जातिस्मरणादि परिगृह्यते ।

कृत्स्नस्य मोहनीयस्योपशमादौपशमिक चार्त्रिम् । तत्र सम्यक्त्वस्यादौ वचन  
तत्पूर्वकत्वान्चारित्रस्य ।

कालस्य दोष रहनपर नहीं होता यह एक काललब्धि है । सुमने काललब्धिका सम्बन्ध कम  
स्थितिसे है । उदाहरण स्थितिका कमों का घण रहनपर या जघन्य स्थितिका कमों का घण  
रहनपर प्रथम सम्यक्त्वका प्राप्त नहीं होता ।

प्राप्त-तो फिर किस अवस्थामें होता है ?

समाधान-जब वचनबाले कमों की स्थिति अन्तःकोटीकोटी सागर पड़ती है और  
विद्युद्भ परिणामोंके वद्यमे सत्तामें स्थित कमोंकी स्थिति समयात् ह्यत्र सागर कम अन्तः  
कोटीकोटी सागर प्राप्त होती है तब यह जीव प्रथम सम्यक्त्वक योग्य होता है ।

एक काललब्धि भवती अपरा हाती है-जो मध्य है सती है पर्याप्तक है और सब  
विद्युद्भ वह प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है । आदि घस्य जातिस्मरण आदिका ग्रहण  
करता चार्त्रिम् ।

समस्त माहनीय कमने उपशमस्य औपशमिक चार्त्रिम् हाता है ।

इनमें सम्यक्त्व पञ्चो आदिम गया है क्योंकि चार्त्रिम् सम्यक्त्व पूर्वक हाता है ।

विद्युत्पाय-उपगम दो प्रकारका है-करणोपगम और अकरणोपगम । कमोंका अन्तर्करण  
हाकर जो उपगम हाता है वह करणोपगम कहलाता है । एसा उपगम दानमाहनीय और  
चार्त्रिमाहनाय इन का ही हाता है इसलिए उपगम भावत दो ही भव वन्याय है । किन्तु  
इनकी विद्युत्पाय है कि अनन्तानुसंगी पशुपत्तया अन्तर्करण उपगम नहा हाता इसलिए जहाँ भी  
इसका उपगमता विधान किया गया है वहाँ इसका अकरणोपगम ही मना चार्त्रिम् । औपशमिक  
सम्यक्त्वद्विग्न दानमाहनीयता का अन्तर्करण उपगम हाता है और अनन्तानुसंगी पशुपत्तया  
अन्तर्करण उपगम यह उक्त कथनका भाव है ।

यद्यपि उपगम सम्यक्त्वद्विग्न अनन्तानुसंगी पशुपत्तया अन्तर्करण उपगम हाता है इन  
मता उन्मत्त मन्त्रिणाम दया जाता है पर मुख्य मत यही है किमता यही मन्त्रिण किया है ।

प्रथम किम जावा औपशमिक सम्यक्त्वता प्राप्ति हाती है उगता योग्यताका निर्णय  
करने हुए एसा पार पायताका बनता है । एसाका एम प्राप्त है-

यः क्षायिको भावो नवविध उद्दिष्टस्तस्य भेदस्य रूपप्रतिपादनायमाह—

ज्ञानदर्शनदानस्नाभभोगोपभोगधीर्याणि च ॥४॥

च'शब्दः सम्यक्त्वधारित्रानुकूपणाय । ज्ञानावरणस्यात्यन्तक्षयात्केवल-  
ज्ञान क्षायिक तथा कथलक्षणम् । दानान्तरायस्यात्यन्तक्षयादनन्तप्राणिगणानुपहृकर  
क्षायिकमभयदानम् । लाभान्तरायस्याशपस्य निरासात् परित्यक्तकवलाहारक्रियाया  
केवलिनां यत् शरीरवलाघानहेतवाज्यमनुजासाधारणा परमशुभा सूक्ष्मा अनन्ता प्रति  
समय पुद्गला सम्वन्धमुपयान्ति स क्षायिका लाभ । कृत्स्नस्य भागान्तरायस्य तिरो  
भावात्त्रिभूतोऽतिशयवाननन्तो भोग क्षायिक । यत् कुसुमवृष्ट्याया विशेषा प्रादु  
भवन्ति । निरवशेषस्योपभागान्तरायस्य प्रत्यात्प्रादुभूताऽनन्त उपभोग क्षायिक । यत्  
सिंहासनचामरच्छत्रत्रयादया विभूतयः । वीर्यान्तरायस्य कमणोज्यन्तक्षयादाविभूतम  
नन्तवीर्य क्षायिकम् । पूर्वोक्तानां सप्तानां प्रकृतानामत्यन्तक्षयात्क्षायिक सम्यक्त्वम् ।

पहली योग्यता अर्धपुद्गल परिवर्तन प्रमाण कालकी है । जिस जीवके ससामें रहने का  
इतना काल दोष रखा है उसे ही सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है । पर इतने कालक  
क्षय रहनेपर सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनी ही बाहिय ऐसा कार्य नियम नहीं है । इसका पहल  
सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहीं होती इतना सुनिश्चित है । क्षय कथन सुगम है ।

जो क्षायिकभाव नौ प्रकारका कहा है उसमें सर्वोक्त स्वरूपका कथन करनक सिमे  
भागका सूत्र कहत है—

क्षायिक भावके ना भेद हैं—क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक  
लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चाग्रि ॥४॥

सूत्रमें च' शब्द सम्यक्त्व और चारित्रिक ग्रहण करन क सिमे आया है । ज्ञानाव  
रण कर्मके अत्यन्त क्षयस क्षायिक केवलज्ञान होता है । इसी प्रकार कवलाघन भी होता  
है । दानान्तराय कर्मके अत्यन्त क्षयस अनन्त प्राणियोंक समुदायका उपकार कर्नवाला  
क्षायिक अभयदान होता है । समस्त लाभान्तराय कर्मके क्षयसे कवलाहार क्रियास  
रहित केशलियोंके क्षायिक लाभ होता है जिससे उनके शरीरको बर प्रदान करने में कारण  
भूत दूगरे मनुष्योंको असाधारण अर्थात् कभी न प्राप्त होनेवाला परम सुम और सुदम एस अनन्त  
परमाणु प्रति समय सम्वन्धको प्राप्त होत है । समस्त भोगान्तराय कर्मके क्षयसे अतिशयबासे  
क्षायिक अनन्त भोगका प्रादुर्भाव होता है । जिससे कुसुमवृष्टि आदि आदय विशेष होत है ।  
समस्त उपभोगान्तरायके नष्ट हो जाने से अनन्त क्षायिक उपभोग होता है । जिसस सिंहासन  
चामर और तीन छत्र आदि विभूतियां हाती है । वीर्यान्तराय कर्म के अत्यन्त क्षयसे क्षायिक  
अनन्त वीर्य प्रकट होता है । पूर्वोक्त सात प्रकृतियोंके अत्यन्त बिनाशस क्षायिक सम्यक्त्व

चाग्निमपि तथा । यदि धायिकदानादिभाववृत्तमभयदानादि सिद्धत्वपि सत्प्रमङ्ग ?  
 नप दोष धारीरनामनाथकरणामकर्मोदयाद्यपेक्षत्वात् । तेषा सदभाव तत्प्रमङ्ग । कथ  
 सहि तेषा सिद्धयु वृत्ति ? परमानन्त्याव्यावाधिरूपेणय तेषा तत्र वृत्ति । कवल  
 ज्ञानरूपणानन्ववायवृत्तिवत् ।

ह्युक्ता है। इसी प्रकार धायिक चाग्निमा स्वरूप समझना चाहिये।

धका—यदि धायिक दान आदि भावार्थे निमित्तस अभयदान आदि काम होत हैं तो  
 सिद्धां भी उनका प्रसंग प्राप्त होता है ?

समाधान—यह काइ दोष नहा, क्योंकि इन अभयदान आदि होने में धारीर नाम  
 काम और तीर्थकर नामकमक उपपत्ती अपक्षा रहती है । परन्तु सिद्धाके धारीर नामकर्म और  
 तीर्थकर नामकर्म नहीं होते अत उनका अभयदान आदि नहीं प्राप्त हाव ।

धका—ता सिद्धाके धायिक दान आदि भावार्थे सदभाव कैम माना जाय ?  
 समाधान—जिम प्रकार सिद्धाके कवलज्ञान रूपमे अनन्त धीयका सदभाव माना  
 गया है उमी प्रकार परमानन्त्या अव्यावाधिरूपमे ही उनका सिद्धाके सदभाव है ।

विशेषा—धानिर्मो के चार भू ह—ज्ञानाकरण ज्ञानाकरण माहतीय और अत्रगम ।  
 इनमें स ज्ञानाकरणका अभावमे धायिक ज्ञान ज्ञानाकरणका अभावमे धायिक—दान माहतीयक  
 अभावमे धायिक गम्यक और धायिक चाग्नि तथा अत्रगमक अभावमे धायिक ज्ञानादि  
 पांच लक्ष्यो ह्युक्ता है । इसीमे धायिक भावक नी भू किय है ।

यद्यपि अपादि कर्मो क अभावमे ज्ञान धायिका अगुण्यु आदि गुण प्रकृत हात है पर  
 क अनुभावी न होनेमे उनका यही प्रकृत नहीं किया है ।

प्रत्यय है कि धारामें जा अभयदान आदि का धारीर नामकर्म और तीर्थकर  
 नामकर्मो अरथा रजनवाड धायिक दान आदि का पाय बतलाय है सो एसा बतलाना नहीं  
 तक उचित है ? वात यह है कि एसा निमित्त निमित्त गम्यक है कि ताधाराक गम्य  
 भावपर है माना पहलमे भविष्यत्क एवं आरत जिम नगरीमें तीर्थकर जम लत है यही  
 रत परी करत है । एतल कुमागिनामें आरत मानाता मका करती है गनगायन करती  
 है एसा करती है । ताधाराक तनमें आनपर नेक लक्ष्यो उ मक माना है । जम तप  
 कयत् और निबागत गमय भी एसा न करत है । कवल ज्ञान धारत बाद गम्यकगुणो  
 रमना करत है कुमुमवृत्ति करत है प्राणि । एगलिय मुच्यत य अनपणानादि द्यानिवाती  
 भरित और धर्मानुगत पाय है धारीर नामकर्म और तीर्थकर नाम कर्मो अपक्षा रजनवाड  
 धायिक दान प्राणि नही । किर भा तम अभयदानादि उपपारण एतला काय का है ।  
 एसा नया माननपर निमित्तनिमित्त ज्ञान पाय भात है—

य उक्त क्षायापशमिको भावोऽष्टादशविकल्पस्तद्भेदनिरूपणायमाह—

ज्ञानाज्ञानवर्शनलब्धयश्चतुस्त्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वधारित्रसयमासयभाश्च ॥ ५ ॥

(१) निर्वाण कस्याप्यत्र समय धारीर नामकम और तीर्थंकर नामकर्म नहीं रहता, इसलिए वह नहीं बन सकगा ।

(२) गममें आनेक पहले जो रत्नवर्षा आदि काम होते हैं उन्हें अकारण मानना पड़गा ।

(३) गम जम और तप कस्यागकके समय न तो क्षायिक दान आदि ही पाय जात ह और न तीर्थंकर प्रकृतिका उदय ही रहता ह इसलिए इन कारणोंके अभावमें इन्हें भी अकारण मानना पड़गा ।

इन सब दोषोंसे बचनका एक ही उपाय ह कि पाँच कल्याणकोंको और समबसरण आदि बाह्य विभूतिको द्वाविककी भक्ति और धर्मानुरागका कार्य मान लिया जाय । जिस प्रकार जिन प्रतिमाका अभिपन्न आदि महाशिव भी इसीके काय हें इसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये । इसपर यह प्रश्न होता है कि उक्त कार्य भले ही द्वाविककी भक्ति और धर्मानुराग बंध होते हों पर जम कल्याणकके समय जो अष्टानाद आदि कार्य विशेष होते हें उनका कारण तो धर्मानुराग और भक्ति नहीं ह । यदि उनका कारण पुण्यातिशय माना जाता है तो ये कार्योका कारण पुण्यातिशय माननमें क्या आपसि है? समाधान यह ह कि जिस प्रकार एक अवसर्पिणी या उत्सर्पिणीमें चौबीस तीर्थंकर धारह षष्ठवर्ती नौ नारायण नौ प्रतिनारायण और नौ बरुमद्र आदि के होनेका नियम है । यह कर्म विधायका कार्य नहीं । उस उस कालके साथ एसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ह कि इस कालमें इतने तीर्थंकर, इतने षष्ठवर्ती आदि ही होंगे न्यूनाधिक नहीं इसी प्रकार तीर्थंकरके जम कालके साथ एसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध ह कि इस समय अमुक स्थानक अमुक प्रकारके वाज बजेंग इसलिए इस कर्म विशेषका कार्य मानना उचित नहीं । कर्मकी अपनी मर्यादाएँ हें । उन तक ही वह सीमित ह ।

फिर भी मूलमें जिस स्थितिके रहते हुए ये कार्य होत ह उस स्थितिके ध्यानमें रखकर उपचारस उस स्थितिका इनका कारण कहा है । और ह्यन कायकारणभावका सीमा विचार करके यह लिखा ह । शर कथन सुगम है ।

जो अठारह प्रकारका क्षायोपशमिक भाव कहा है उसके भेदोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते है—

क्षायोपशमिक भावके अठारह भेद हैं—चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच

द्वारादि विभूतिका अकारण और अकारणिक ॥ ६ ॥

षत्वारश्च त्रयश्च त्रयश्च पञ्च च चतुस्त्रिपञ्च' । ते भेदा यासा ताश्चतु  
स्त्रिपञ्चमेदा । यथाक्रममित्यनुवर्तते । तेनाभिसम्बन्धाच्चतुरादिभिर्ज्ञानादीन्यभिसम्ब  
ध्यन्ते । चत्वारि ज्ञानानि, त्रीण्यज्ञानानि, त्रीणि दशनानि पञ्च लघय इति । सर्वं  
घातिस्पर्द्धकानामुदयक्षयात्तेषामेव सदुपशमाद्देशघातिस्पर्द्धकानामुदये क्षायोपशमिको भावो  
भवति । तत्र ज्ञानादीना वृत्ति स्वावरणान्तरायक्षायोपशमाद् व्याख्यातव्या । सम्बन्ध- ५  
ग्रहणेन वेदकसम्बन्धवत् गृह्यते । अनन्तानुबन्धकपायचतुष्टयस्य मिथ्यात्वसम्बन्ध मिथ्या  
त्वयाश्चोदयक्षयात्सदुपशमाच्च सम्बन्धवत्स्य देशघातिस्पर्द्धकस्यादये तत्स्वायथ्रदान क्षायोप  
शमिक सम्बन्धत्वम् । अनन्तानुबन्धप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानद्वादशकपायोदयक्षयात्सदुपश  
माच्च सञ्ज्वलनकपायचतुष्टयान्यतमदेशघातिस्पर्द्धकोदये नोकपायनवकस्य यथासम्भ  
वोदये च निवृत्तिपरिणाम आत्मनः क्षायोपशमिक चारित्रम् । अनन्तानुबन्धप्रत्याख्यान  
कपायाष्टकाक्षयात्सदुपशमाच्च प्रत्याख्यानकपायादये सञ्ज्वलनकपायस्य देशघाति  
स्पर्द्धकोदये नोकपायनवकस्य यथासम्भवोदय च विरताविरतपरिणाम क्षायोपशमिक  
सयमासयम इत्याख्यायते ।

चिन्तक चार, तीन छीम और पाँच भू हैं वे चार छीम छीम और पाँच भदवाजे  
कहलाते हैं । इस सूत्रमें 'यथाक्रमम्' पत्तकी अनुवृत्ति होती है जिससे चार आदि पत्तोंके १३  
साथ ज्ञान आदि पत्तोंका क्रमसम्बन्ध होता है । यथा—चार ज्ञान छीम अज्ञान तीन दशन  
और पाँच लघियौ ।

अज्ञान कालमें सर्ववाती स्पर्द्धकोंका उदयभावी क्षय होन से और आगामी कालकी  
अपक्षा उद्गीक्षा सबवस्था रूप उपशम होन से दशघाती स्पर्द्धकाना उदय रहत हुए क्षायोप  
शमिक भाव होना है । इन उपपन्न भावोंमें से ज्ञान आदि भाव अपन अपन आवरण और २  
अन्तराय कर्मोंका क्षयापशमस होने है एसा भ्याख्यान यहाँ कर लेना चाहिये ।

सूत्रमें आये हुए सम्बन्धवत्स्य वेदक सम्बन्धवत् छना चाहिये । तात्पर्य यह है कि चार  
अनन्तानुबन्धी कपाय मिथ्यात्व और सम्बन्धिमिथ्यात्व इन छ प्रकृतियोंके उदयाभावी क्षय और  
सबवस्थारूप उपशमस दशघाती स्पर्द्धकवाली सम्बन्धवत् प्रकृतिक उदयमें जो उत्तारार्थप्रदान  
होना है वह क्षायोपशमिक सम्बन्धवत् है । अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानान्तरण और प्रत्याख्यान  
करण इन बाह्य कपायोंके उदयभावी क्षय होनसे और इन्हींके नन्दस्वारूप उपशम होनसे  
तथा चार सञ्ज्वलनोंमें से किसी एक दशघाती प्रकृतिक उदय होनपर और नौ नोकपायोंका  
यमानम्भव उदय होनपर जो त्यागरूप परिणाम होता है वह क्षायोपशमिक चारित्र है ।  
अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानान्तरण इन आठ कपायोंके उदयभावी क्षय होनसे और सबवस्था-  
रूप उपशम होनसे तथा प्रत्याख्यानान्तरण कपायके और सञ्ज्वलन कपायके दशघाती स्पर्द्धकोंके ३



य एकविंशतिविकल्प औदयिको भाव उद्दिष्टस्तस्य भेदसञ्ज्ञासङ्कीर्तनाद्यमिदमुच्यते—

उदय होनपर सभा नौ नोकपार्योका यथासम्भव उदय होनपर जो विरताविरतरूप परिणाम होता है वह समयमासयम कहलाता है।

५. विशाखा—यद्यमान समयमें सर्वघाति स्पर्धकोका उदयाभावी क्षय आगामी कालकी अपक्षा उन्हीका सबस्था रूप उपशम और वशाघाति स्पर्धकोका उदय यह क्षयोपशमका लक्षण है। यह तो मुनिश्चित है कि अधिकतर वेशघाति कर्म गेस होते हैं जिनमें वेशघाति और सबघाति दोनों प्रकारक स्पर्धक पाय जाते हैं। कवल नौ नोकपाय और सम्पक प्रकति य १ प्रकतियाँ इसके अपवाद हैं। इनमें मात्र वेशघाति स्पर्धक पाय जात हैं अतः नौ नोकपार्यो के सिवा क्षय सब वेशघाति कर्मों का क्षयोपशम सम्भव है क्योंकि पूर्वोक्त लक्षणक अनुसार क्षयोपशम न दोनों प्रकारक कर्म लगत हैं। उसमें भी समयमासयम भावकी प्राप्तिमें प्रत्याख्यानाकरण कर्म अपक्षा भवसे वेशघाति मान लिया जाता है और सम्पक प्रकति मिष्यात्व व सम्पगिमिष्यात्वस मिरु कर क्षयोपशमिक भावको जन्म देती है इसलिए क्षयोपशमिक भावके कुल १८ भेद ही पटित हात हैं। उदाहरणार्थ—ज्ञानावरणकी वेशघाति प्रकतियाँ चार हैं अतः इनके क्षयोपशमसे चार ज्ञान प्रकट होत हैं पर मिष्यावृष्टि के तीन अज्ञान और सम्पगवृष्टिक चार ज्ञान इस प्रकार क्षयोपशमिक ज्ञानके कुल भेद ७ होते हैं। इसीसे १८ क्षयोपशमिक भावोंमें इन ७ ज्ञानोंकी परिगणना की जाती है। प्रकतमें वेशम तीन और लब्धि पाँच क्षयोपशमिक भाव हैं यह स्पष्ट ही है। शय यह तीन भाव सो य वेदक सम्पकत्व समयमासयम और समय लिम्बे गये हैं। इन सब भावोंमें वेशघाति स्पर्धकोका उदय होता है इसलिये इन्हें षण्क भाव भी कहत हैं। जितने भी क्षयोपशमिक भाव होत हैं व वेशघाति स्पर्धकोक उदयसे वेदक भी होत हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसमें सर्वघाति स्पर्धको या सर्वघाति प्रकतियोंका वर्तमान समयमें अनुदय रहता है इसलिये इनका उदय कालके एक समय पहले उदयरूप स्पर्धको या प्रकतिमें स्तिबुक संक्रमण हो जाता है। प्रकतमें इसे ही उदयाभावी क्षय कहते हैं। यहाँ उदयका अभाव ही क्षय रूपसे विवक्षित है। और आगामी कालमें उदयमें आने योग्य इन्ही सर्वघाति स्पर्धको व प्रकतियोंका सबस्था रूप उपशम रहता है। इसका आशय यह है कि वे सत्तामें रहते हैं। उनकी उदीरणा नहीं होती। मात्र स्तिबुक संक्रमणके द्वारा इनका उदय कालसे एक समय पहले सजातीय वेशघाति प्रकति या स्पर्धकरूपसे संक्रमण होता रहता है। सर्वघाति अथवा उदय और उदीरणा न होनेस जीवका निजभाव प्रकाशमें आता है और वेशघाति अथवा उदय रहनसे उसमें सद्योपता आती है यह इस भावका तात्पर्य है।
६. अब जो इक्कीस प्रकारका औदयिक भाव कहा है उसक भेदोंका कथन करनेके

गतिक्रपायलिङ्गमिध्यावर्षामाज्ञानासयतासिद्धसेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्यैकैकककपडभेवा ॥६॥

यथाक्रममित्यनुवतते, तेनाभिसम्बन्धाद् गतिश्चतुर्भेदा नरकगतिस्तिथ्यगतिमनुष्य गतिदेवगतिरिति । तत्र नरकगतिनामकर्मोदयाभारको भावो भवतीति नरकगतिरीद यिकी । एवमितरत्रापि । कपायश्चतुर्भेद, क्रोधो मानो माया लोभ इति । तत्र क्रोधनि यतनस्य कमण उदयात्क्रोध औदयिकः । एवमितरत्रापि । लिङ्ग त्रिभेद स्त्रीवेद पुर्वेदो ५ नपुसकवेद इति । स्त्रीवेदकर्मण उदयात्स्त्रीवेद औदयिकः । एवमितरत्रापि । मिध्या वशनमेकभेदम् । मिध्यादशनकमण उदयात्तत्त्वायाश्रद्धानपरिणामो मिध्यादशनमौन्यि कम् । ज्ञानावरणकमण उदयात्पदार्थानवबोधो भवति तदज्ञानमौन्यिकम् । चारित्र मोहस्य सर्वघातिम्पदंकेस्योदयादसयत औदयिकः । कर्मोदयमानान्यापेक्षोऽसिद्ध औद यिकः । श्लेश्या द्विविधा द्रव्यश्लेश्या भावश्लेश्या चेति । जीवभावाधिकाराद् द्रव्यश्लेश्या १ नाधिभूता । भावश्लेश्या कपायादयरञ्जिता योगप्रवृत्तिरिति कृत्वा औदयिकीत्युच्यत । सा पञ्चविधा नृपणलक्ष्या नीललक्ष्या कापोतलक्ष्या तजालेश्या पक्षलेश्या शुक्ललक्ष्या चेति ।

लिए आगता सूत्र कहत है—

औदयिक भावके इष्टीस भेद हैं—चार गति, चार कपाय, तीन लिंग, एक मिध्या दर्शन, एक अज्ञान, एक असयन, एक असिद्ध भाव और छ' श्लेश्याएँ ॥ ६ ॥ १३

इस सूत्रमें यथाक्रमम्' पदकी अनुवृत्ति होती है क्योंकि यहाँ उसका सम्बन्ध है । गति चार प्रकारकी है नरकगति तिर्यग्गति मनुष्यगति और देवगति । इनमेंसे नरकगति मामकर्मक उदयसे नारकभाव होता है इसलिए नरकगति औदयिक है । इसी प्रकार छप तीन गतियोंका भी अर्थ करना चाहिये । कपाय चार प्रकारका है—क्रोध मान माया और लोभ । इनमेंसे क्रोधको वेदा करनेवाले कर्मक उदय से क्रोध औदयिक होता है । इसी प्रकार छप तीन कपायोंको २ औदयिक जानना चाहिये । लिंग तीन प्रकारका है स्त्रीवेद पुर्वपद और नपुसकपद । स्त्रीवेद कर्मक उदयसे स्त्रीवेद औदयिक होता है । इसी प्रकार छप दो वेद औदयिक हैं । मिध्यावशन एक प्रकारका है । मिध्यावशन कर्मक उदयसे जो तत्त्वोंका अर्थज्ञानरूप परिणाम होता है वह मिध्यादर्शन है इसलिए वह औदयिक है । पदार्थों के नहीं जाननेको अज्ञान कहत है । पू कि यह ज्ञाना वरण कर्मक उदयसे होता है इसलिए औदयिक है । असयतभाव चारित्रमोहनीय कर्मक सर्व २३ घातीस्यद्वयक उदयसे होता है इसलिए औदयिक है । असिद्धभाव कर्मोदय सामान्यकी अपक्षा होता है इसलिए औदयिक है । श्लेश्या दो प्रकारकी है—द्रव्यश्लेश्या और भावश्लेश्या । यहाँ जीवके भावोंका अधिकार होनेसे द्रव्यश्लेश्या नहीं ली गई है । पू कि भावश्लेश्या कपायक उदयसे अनुरजित योगकी प्रवृत्तिरूप है इसलिए वह औदयिक नहीं जाती है । वह छ प्रकारकी है— कण्ठश्लेश्या नीलश्लेश्या कापोतलेश्या पीतश्लेश्या, पक्षश्लेश्या और शुक्लश्लेश्या । १

ननु च उपशान्तकृपाय क्षीणकृपायै सम्योगकेवलिनि च शुक्ललेश्याऽस्तीत्यागम । तत्र कृपायानुरञ्जनाभावादौदयिकरव नोपपद्यते ? नच दोष पूषभावप्रज्ञापनमा' पक्षया याऽसौ योगप्रवृत्ति कृपायानुरञ्जिता मैवेत्युपचारादौदयिकीत्युच्यते । तदभावा दयोगकवल्यन्त्य इति निश्चीयत ।

य पारिणामिको भावस्त्रिभेद उक्तस्तद्भेदस्वरूपप्रतिपादनायमाह—

जीवभष्याभष्यत्वानि च ॥ ७ ॥

शुक्रा—उपशान्तकृपाय क्षीणकृपाय और सम्योगकेवली गुणस्थानमें शुक्ललेश्या है ऐसा आगम है परन्तु वहाँपर कृपायना उक्त्य नहीं है इसलिए औदयिकपना नहीं बन सकता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जो योगप्रवृत्ति कृपायके उदयसे अनुरजित है वही यह है इस प्रकार पूषभावप्रज्ञापन नयकी अपक्षा उपशान्तकृपाय आदि गुणस्थानोंमें भी लक्ष्या को औदयिक कहा गया है ।

किन्तु अयोगकवलीक योगप्रवृत्ति नहीं होती इसलिए वे लेश्यारहित हैं ऐसा निश्चय होता है ।

विद्यापार्थ—कर्मोंकी जातियाँ और उनके अवान्तर भेद अनेक हैं इसलिए उनके उदय से हानवाला भाव भी अनेक है पर यहाँ मुख्य मुख्य औदयिक भाव ही गिनाय गये हैं । ऐसे भाव इक्षीम होत हैं । प्रथम चार भेद चार गति है । य गति नाम कर्मक उदयस होत है । नामकर्म अपाति कम है । गति नाम कर्म उसीका एक भेद है । जो पुरुषमें अत्य जीवविपाकी अर्थात् कर्मों का उपसक्षण है । पुद्गलविपाकी कर्मोंके जीवभाव नहीं होते इसलिए उनकी यहाँ परिगणना नहीं की गई है । पाति कर्मोंमें क्राधादि चारों कृपायोंके उदयस क्रोधादि चार भाव हात है । तीन बदारु उदयस तीन ऋग होते है । तीन चर उपसक्षण हैं । इनस हास्य आदि छह भावाना भी ग्रहण हाता है । दधानमोहनीय के उदयस मिम्यादशन होता है । दर्शनाकरण उक्त्यम हानवाला अर्थात् भाव इसीमें ग्रहण होता है । जालाकरण उदयसे अज्ञान भाव हाता है असयत भाव पारित्रमोहनीयक उक्त्यना भाव है और भविष्य भाव सब कर्मोंके उदयना भाव है । रहा लक्ष्याएँ सा य कृपाय और योग इनके मिलनस उत्पन्न हुई परिपति विगण है । फिर भी इनमें कर्मोदयकी मुख्यता होतसे इनकी भीदयिक भावोंमें परिगणना की गई है । इन भावोंमें कर्मोंका उक्त्य निमित्त है इसलिए इन्हें औदयिक कहत है ।

अब जा तान प्रारंभ पारिणामिक भाव कहा है उससे भेदोंके स्वस्वरा कायन करनेक विगण भाग का सूत्र कहत है—

पारिणामिक भावक तीन भेद हैं—जीवस्य, भष्यस्य चार अमव्यतर ॥ ७ ॥

जीवत्व मभ्यत्वमभ्यत्वमिति त्रया भावा पारिणामिका अन्यद्वय्यासाधारणा आत्मनो वेदितव्या । कुत पुनरपि पारिणामिकत्वम् ? नर्मोदयोपशमक्षयक्षयोपशमान पक्षित्वात् । जीवत्व अत यमित्यथ । सम्यग्दर्शनादिभावेन भविष्यतीति मध्य । तद्वि परीताऽमध्य । त एते त्रयो भावा जीवस्य पारिणामिका ।

ननु चास्तिरत्नित्यत्वप्रवेश'वस्थादयाऽपि भावा पारिणामिका सन्ति तेषामिह ग्रहण कतव्यम् ? न कतव्यम् कृतमथ । कथम् ? 'च' शब्देन समुच्चितत्वात् । यद्येव त्रय इति सख्या विरुध्यते ? न विरुध्यत असाधारणा जीवस्य भावा पारिणामिकास्त्रय एव । अस्तित्वावयव पुनर्जीवाजीवविषयत्वात्साधारणा इति 'च' शब्देन पृथग्गृह्यते । आह आप शमिकादिभावानुपपत्तिरमूतरत्नात्मन । कमव'वापेक्षा हि तेषां भावा । न चामूर्ते कमणां वधो युज्यत इति ? तन्न अनेकान्तात् । नायमेकान्त' अमूर्तिरेवात्मति । कम

जीवत्व मभ्यत्व और अभ्यत्व य तीन पारिणामिक भाव अन्य शब्दोंमें नहीं होते इसलिय ये आत्मा के जानने चाहिए ।

शका—य पारिणामिक क्यों हैं ?

समाधान—य तीनों भाव कमक उदय उपशम क्षय और क्षयोपशमके विना होत हैं इसलिय पारिणामिक हैं ।

जीवत्वका अब चर्चा है । जिसके सम्यग्दर्शन आदि भाव प्रकृत हान की योग्यता है वह मध्य कहलाता है । अभ्यत्व इसका उल्टा है । य तीनों जीव के पारिणामिक भाव हैं ।

शका—अस्तित्व निर्यत्व और प्रवेशवत्त्व आदिक भी पारिणामिक भाव हैं उनका इस सूत्रमें ग्रहण करना चाहिए ?

समाधान—प्रकृत उनका ग्रहण करना कोई काम नहीं क्योंकि उनका ग्रहण किया ही है ।

शका—कस ?

समाधान—क्यों कि सूत्रमें आये हुए 'च' शब्द से इनका समुच्चय ही जाता है ।

शका—यदि एसा ह तो तीन' सख्या विरोधको प्राप्त होती है क्योंकि इस प्रकार तीन से अधिक पारिणामिक भाव हो जात है ?

समाधान—प्रथम भां तीन' यह सख्या विरोधको नहीं प्राप्त होती क्योंकि जीवके असाधारण पारिणामिक भाव तीन ही हैं । अस्तित्वादिक तां जीव और अजीव दोनोंके साधारण है इसलिय उनका 'च' शब्द के द्वारा अलगसे ग्रहण किया है ।

शका—भौवशमिक आदि भाव नहीं बन सकत क्योंकि आत्मा अमूर्त है । य भौवपामिक आदि भाव कमकण्य की अपेक्षा हात है परन्तु अमूर्त आत्माके कमोबा लय्य नहीं बनना है ?

(१)—प्रवेशवत्त्वा—आ वि १ वि २ भू । (२) कम कथकशब्देन म । कम कतन अत आ ।

(३) न । न चामूर्ते कमणां वा वि १ वि २ ता वा ।

बन्धपर्यायापेक्षया तदावेशाल्प्या मृत । शुद्धस्वरूपापेक्षया स्मादमृत । यद्येव कर्मवधा  
वेशादस्य कत्वे सत्यविवेक प्राप्नोति ? नष दोष बन्ध प्रत्य कत्वे मत्यपि लक्षणभेदानस्य  
नानात्वमवसीयते । उक्त च—

“वर्षं पठि एष च लक्षणेन्दो इवह तस्स णाण च ।

तग्हा अमुत्तिमावोऽण्येयंती होइ जीवस्स ॥” इति ।

समाधान—आत्माक अमूर्तत्वक विषयमें अनकान्त है । यह कोई एकान्त नहीं कि आत्मा अमूर्ति  
ही है । कर्मबन्धरूप पर्यायकी अपक्षा उसस युक्त हानक कारण कश्चित् मृत है और शुद्ध स्वरूपकी  
अपक्षा कश्चित् अमूर्त है ।

शका—यदि ऐसा है तो कर्मबन्धके आवश्यकसे आत्माका एक हो जानपर आत्माका उसस भेद  
नहीं रहता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं क्योंकि यद्यपि बन्धकी अपक्षा अमद है तो भी लक्षणक भेदसे  
कर्मसे आत्माका भेद जाना जाता है । कहा भी है—

आत्मा बन्धकी अपक्षा एक है तो भी लक्षणकी अपक्षा वह भिन्न है । इसलिय जीवका अमूर्तिक  
भाव अनकान्तरूप है । वह एक अपक्षास ह और एक अपक्षास नहीं है ।

बिदायार्थ—पारिणामिक भाव तीन हैं—जीवत्व भव्यत्व और अभव्यत्व । जीवत्व के दो भेद  
हैं—एक जीवन-क्रियासापक्ष और दूसरा कृत-यगुणसापक्ष । जीवनक्रिया प्राणसापक्ष होती है  
इसलिये एम जीवत्वकी मुख्यता नहीं है यही तो चेत्यगुणसापक्ष जीवत्वकी ही मुख्यता है । यह सब  
जीवोंमें समानरूपस पाया जाता है और कारणनिरपेक्ष होता है इसलिये इस पारिणामिक कहा है ।  
यहां बात भव्यत्व और अभव्यत्वके सम्बन्धमें भी जाननी चाहिये क्योंकि य दोनों भाव भी कारण

निरपेक्ष होत है । साधारणतः जिनमें उत्तम गुण प्रकट होनकी योग्यता होती है व भव्य कहलात  
ह और जिनमें एसी योग्यता नहीं होती उन्हें अभव्य कहत है । जीवोंमें य दोनों प्रकारकी योग्यताएँ  
स्वभावस होती है । इसीसे भव्यत्व और अभव्यत्व य दोनों भाव भी पारिणामिक मान गय है ।  
अभिप्राय यह है कि किन्ही जाबाबा स्वभावस अनादि-अनन्त बच होता है और किन्हीबा अनादि  
साग्त । जाबाबा इस तरहका बच कारण निरपेक्ष होता है । यह किसी कर्मविधापत्ता कार्य नहीं है

किन्तु एसी योग्यता पारिणामिक मानी गई है । इसीसे जीवत्वके साथ भव्यत्व और अभव्यत्व य  
दोनों भाव भी पारिणामिक कह गय है । यद्यपि जीवोंमें अस्तित्व भादि और बहुतास पारिणामिक भाव  
पाय जात है पर व जीवक असाधारण धर्म न हानस उनकी यही परिणयता नहीं की गई है ।

दुन भावोंर सम्बन्धमें मध्य प्रदन यह है कि जब कि जाव अमूर्त है एसी दधामें उभवा कर्मक  
साप बच करी जा मरना और कर्मबन्धन अभावमें भीपमिन भादि भावोंकी उत्पत्ति नहीं बन गवती  
क्यापि पारिणामिक भावाक भिन्न धाय सब भाव कर्मनिमित्तन मान गय है ? उत्तर यह है कि कर्मका

यद्येव तदेव रक्षणमुच्यतां येन नानात्वमवसीयत इत्यस आह—

उपयोगो लक्षणम् ॥ ८ ॥

उभयनिमित्तवशाद्दुत्तरमानश्चत यानुविधायी परिणाम उपयोग । तेन यच्च प्रत्येकत्वे सत्यप्यात्मा रुदयते सुवणरजतयोश्च य प्रत्येकत्वे सत्यपि वर्णादिभेदवत् ।

तद्भेदप्रदानायमाह—

स द्विविधोऽष्टघतुर्भेदः ॥ ९ ॥

स उपयोगो द्विविध — ज्ञानोपयोगो दर्शनोपयोगश्चेति । ज्ञानोपयोगोऽष्टभेद—  
मतिज्ञान श्रुतज्ञानमवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान मर्यज्ञान श्रुताज्ञान विभक्तज्ञान  
चेति । दर्शनोपयोगश्चतुर्विध — चक्षुदर्शनमचक्षुदर्शनमवधिदर्शन केवलदर्शन चति । तयो  
कस्य भेद ? साकारनाकारभेदात् । साकार ज्ञानमनाकार दर्शनमिति । तच्छब्दस्थेषु  
क्रमेण वर्तते । निरावरणेषु युगपत् । पूर्वकालभाविनाऽपि दर्शनाज्ज्ञानस्य प्रागुपया  
स अम्यहितत्वात् । सम्यग्ज्ञानप्रकरणात्पूर्वं पञ्चविधो ज्ञानोपयोगो व्याख्यातः । इह

आत्मास अनादि सम्बन्ध ह इन्द्रिय कोइ दोष नहीं आता । आगय मह ह कि ससार अबस्पामें  
जीवका कमक साथ अनादिकालीन बन्ध हानक कारण वह व्यवहारस मूर्त ही रहा ह । और यह बात  
असिद्ध भी नहीं है क्योंकि मन्त्रि आत्मिका सबन करनपर ज्ञानमें मुच्छा बसी जाती है । पर इतने  
मात्र स आत्माको मूर्तस्वभाव नहीं माना जा सकता क्योंकि रूप रस गंध और स्पृश ये पुदगस के  
धम हैं । आत्मा मूर्तरूप इन धर्मोंस भिन्न स्वभाववाला है ।

यदि एसा है तो वही लक्षण कहिय जिसस कमस आत्माका म जाना जाता है इनी बातको  
ध्यानमें रखकर भागका सूत्र कहत ह—

उपयोग जीवका लक्षण है ॥ ८ ॥

ओ अन्तर्य और वहिरग दोनों प्रकारक निमित्तसाम होता ह और चैतन्यका अन्वयी है अर्थात्  
चैतन्यको छोडकर अन्यत्र नहीं रहता वह परिणाम उपयोग कहलाता है । यद्यपि आत्मा धन्यकी अपेक्षा  
एक है तो भी इमस वह स्वतंत्र जाना जाता है । जिस प्रकार स्वर्ण और चाँदी बचकी अपेक्षा एक ह  
तो भी वर्णान्क भेदस उनमें पार्थक्य रहता है उमी प्रकार प्रकृतमें समझना चाहिय ।

अब उपयोगक भव निरालोक स्थि आगता सूत्र कहत ह—

यह उपयोग दो प्रकारका है ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका  
है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है ॥ ० ॥

यह उपयोग दो प्रकारका है ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । ज्ञानोपयोग आठ प्रकारका है—  
मतिज्ञान श्रुतज्ञान अवधिज्ञान मन पर्ययज्ञान केवलज्ञान मर्यज्ञान श्रुताज्ञान और विभक्तज्ञान ।  
दर्शनोपयोग चार प्रकारका है—चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन ।

धका—इत दोना उपयोगाम किन्स कारणसे भेद ह ?

समाधान—साकार और अनाकारक भेद स इन दोनों उपयोगोंमें भेद है । साकार ज्ञानोपयोग  
ह और अनाकार धनोपयोग ।

ये दोनों छद्मधर्मोंके प्रथम हाठ है और आवरणरहित जीवोंक युगपत् होता है । यद्यपि दर्शन

पुनरुपयोगग्रहणाद्विषययोऽपि गृह्यते इत्यष्टविध' इति उच्यते ।

यथोक्तैरनाननाभिहितपरिणामेन सर्वात्मसाधारणेनोपयोगेन ये उपलक्षिता उपयोगिनस्ते द्विविधा—

ससारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥

ससर्ग ससार परिवर्तनमित्यथ । न एयामस्ति ते ससारिण । तत्परिवर्तन

पहले हाता ह तो मी थप्ट होने क कारण सूत्रमें ज्ञानको दर्शनसे पहले रखा है। सम्यग्ज्ञानका प्रकरण होनेक कारण पहले पाँच प्रकारक ज्ञानोपयोगका व्याख्यान कर आय ह। परन्तु यही उपयोगका ग्रहण करनेसे विपर्ययका भी ग्रहण होता है इसलिय वह भाठ प्रकारका कहा है।

बिज्ञपार्थ—यहाँ जीवका लक्षण उपयोग बतला कर उसके भेदों की परिगणना की गई है। उपयोगक मुख्य भेद दो ह—ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ये दोनों प्रकारक उपयोग सब जीवोंक पाय जात ह। इनक अन्तर्गत भेद कई है जो निमित्तबिज्ञपस होत है। ज्ञानावरण और दर्शनावरणक अन्तर्गत भेदोंका यथायोग्य क्षयोपशम और क्षय तथा दर्शनोहनीयका उदय य प्रघात निमित्त है। इनक कारण दोनों प्रकारक उपयोग बारह भेदोंमें विभक्त हो जात है। इस प्रकार ज्ञानोपयोगके आठ और दर्शनोपयोगक चार भेद प्राप्त होत हैं। मुख्यतया सप्तागी जीवके एक कालमें एक उपयोग और कबलीक दो उपयोग होते हैं। पर नाना जीवोंकी अपेक्षा परिगणना करनेपर ब बारह होत है। यद्यपि प्रथम अध्यायमें एक जीवक एक साथ चार ज्ञान बतला आय ह और जिसक एक साथ चार ज्ञान होग उसक उची समय तीस दर्शन भी पाय जायगे पर यह कश्च क्षयोपशमकी प्रघातनास किया गया जानना चाहिय। एक जीवक एक कालमें मतिज्ञानावरण आदि चार ज्ञानावरण और अक्षदर्शनावरण आदि तीन दर्शनावरण इन सात कर्मोंका क्षयोपशम हो सकता है पर तत्काल उनके उस समय उपयोग एक ही होगा। क्षयोपशम ज्ञानोत्पत्ति और दर्शनोत्पत्तिमें निमित्त ह और उपयोगज्ञान दर्शनकी प्रवृत्ति ह। जीवमें ज्ञान और वशम गुणकी धारा गिरलकर प्रवर्तित होयी रहती है। वह जिस समय बाह्य और अन्तरंग जैसा निमित्त मिलता है उसके अनुसार काम करने लगती है। इतना अबवय है कि ससार अबस्थास वह मलिन मस्तिन्तर और मस्तिन्तम रहती है और वैकल्प काम होनेपर वह बिशुद्ध हो जाती है फिर उसकी प्रवृत्तिक लिय अन्तरंग व बाह्य कारण अपेक्षित नहीं रहत। यही कारण ह कि यहाँ जीवका लक्षण उपयोग कहा है।

सब आत्माओंमें साधारण उपयोगरूप जिन आत्मपरिणामका पहले व्याख्यान किया है उसस उपलक्षित सब उपयोगवाले जीव दो प्रकारके ह इस बावका ज्ञान करानके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

जीव दो प्रकारके हैं—संसारी और मुक्त ॥ १० ॥

ससर्ग करनको ससार कहत है जिसका अर्थ परिवर्तन है। यह जिन जीवोंक पाया जाता है व

पञ्चविध द्रव्यपरिवर्तन क्षेत्रपरिवर्तन कालपरिवर्तन भवपरिवर्तन भावपरिवर्तन चेति ।  
 तत्र द्रव्यपरिवर्तन द्विविधम्—नाकर्मद्रव्यपरिवर्तन कमद्रव्यपरिवर्तन चेति । तत्र नोकम  
 द्रव्यपरिवर्तन नाम त्रयाणां शरीराणां पण्णां पर्याप्तीनां च योग्या ये पुद्गला एकेन जीवन  
 एकस्मिन्समये गृहीता स्निग्धरूक्षवणगन्धादिभिस्तीव्रमन्दमध्यमभावेन च यथावस्थिता  
 द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा अगृहीतानन्तवारानतीत्य मिश्रकांश्चानन्तवारानतीत्य  
 मध्ये गृहीताश्चानन्तवारानतीत्य त एव तनव प्रकारेण तस्यैव जीवस्य नोकमभावमा  
 पद्यते यावत्तावत्समुदित नोकमद्रव्यपरिवर्तनम् । कमद्रव्यपरिवर्तनमुच्यते—एकस्मिन्स  
 मये एकेन जीवेनाप्विधकमभावेन ये गृहीता पुद्गला समयाधिकामावलिंकामतीत्य  
 द्वितीयादिषु समयेषु निर्जीर्णा पूर्वोक्तेनैव क्रमेण त एव तनव प्रकारेण तस्य जीवस्य  
 कमभावमापद्यन्ते यावत्तावत्कर्मद्रव्यपरिवर्तनम् । उच्यते च—

“सन्धे वि पुग्गला खलु कमसो सुत्तुज्झिया य जीवेण ।

असइ अणतस्तुतो पुग्गलपरियट्टससारे ॥”

क्षेत्रपरिवर्तनमुच्यते—सकमनिगोर्जीवोऽप्याप्तिकं सवजघन्यप्रदेशशरीरो

लोकस्याष्टमध्यप्रदशान्स्वशरीरमध्ये कृत्वात्पन्न क्षुद्रभवग्रहण जीयित्वा मृत । स एव  
 समारी है । परिवर्तनक पाँच भव है—द्रव्यपरिवर्तन क्षेत्रपरिवर्तन कालपरिवर्तन भवपरिवर्तन और  
 भावपरिवर्तन । द्रव्यपरिवर्तनक दो भेद है—नोकर्म द्रव्यपरिवर्तन और कर्म द्रव्यपरिवर्तन । अब नोकम  
 द्रव्य परिवर्तनका स्वरूप कहत है—किसी एक जीवन तीन शरीर और छह पर्याप्तियोंके भोग्य पुद्गलोंके  
 एक समयम ग्रहण किया । अनन्तर व पुद्गल स्निग्ध या रूक्ष स्वर्ण तथा वर्ण और गन्ध आदि क द्वारा  
 जिस तीव्र मन्द और मध्यम भावम ग्रहण किया व उस रूपस अवस्थित रहकर द्वितीयादि समयोंमें  
 निर्जीव हो गय । तत्पश्चात् अगृहीत परमाणुओंको अनन्तवार ग्रहण करके छोडा मिथ्य परमाणुओंको  
 अनन्तवार ग्रहण करके छोडा और बीचम गृहीत परमाणुओंको अनन्तवार ग्रहण करके छोडा । तत्प  
 श्चात् जब उमी जीवक सब प्रथम ग्रहण किया गये व ही कर्म परमाणु उसी प्रकारस नोकर्म भावको  
 प्राप्त होत है तब यह सब एक कर्म द्रव्यपरिवर्तन होता है ।

अब कमद्रव्यपरिवर्तनका कथन करत हैं—एक जीवन व्याठ प्रकारके कमरूपस जिन पुद्गलोंको  
 ग्रहण किया वे समयाधिक एक आवलीकालक बाद द्वितीयादिक समयोंमें क्षर गय । पश्चात् जो क्रम  
 नोकर्म द्रव्यपरिवर्तनम घनलाया है उसी क्रमस व ही पुद्गल उसी प्रकारसे उस जीवक जब कर्मभावको  
 प्राप्त होते है तब यह सब एक कर्म द्रव्यपरिवर्तन कहलाता है । कहा भी है—

‘इम जीवन समी पुद्गलोंको क्रमस भोगकर छोड दिया । और इस प्रकार यह जीव अनन्तवार  
 पुद्गल परिवर्तनरूप मसारमें धूमता रहता है ॥

अब क्षेत्रपरिवर्तनका कथन करत है—जिनका शरीर आकाशके सबम कम प्रदलोंपर स्थित है ।

(१) अणुग्रहण—वि १, वि २ आ नु । १ वा अणु वा १२ । (१)—रिपम्यप्रदेशात् इत्या नु ।



पुनस्तनैवावगाहेन द्विस्तपश्चतुस्तथा त्रिस्तथा चतुरित्येष मायद् घनाद् गुल्म्यासह्ययभाग  
प्रमितयाकागप्रदशास्तावत्त्वस्तत्रय जनित्वा पुनरेकैकप्रवेदाधिकभावेन सर्वो लोका  
आत्मना ज मक्षत्रभावमुपनीतो भवति यावत्तावत्क्षेत्रपरिवत्तनम् । उच्यते च—

“सष्वम्भि लोयस्वेषे कमनो त षत्त्रि ज ण उष्णं ।

२. अोगाहणाए बहुसो परिममिदो खेचमसारे ॥”

कालपरिवर्तनमुच्यते—उत्सपिण्या प्रथमममये जात मदिषज्जीव स्वामुप  
परिसमाप्तो मृत । स एव पु नद्वितीयाया उत्सपिण्या द्वितीयसमये जात स्वामुप क्षया  
मृत । स एव पुनस्तृतीयाया उत्सपिण्यास्तृतीयसमये जात । एवमनेन त्रमेणात्सपिणी  
परिसमाप्ता । तथावसपिणी च । एव ज मनरन्तर्यमुच्यते । मरणस्यात्रिनरन्तर्य तथैव  
३. ग्राह यम् । एतावत्कालपरिवर्तनम् । उच्यते च—

“उत्सपिणिअवसपिणिसमयावक्षियासु णिरवसेसासु ।

बादो मुदो य बहुसो ममणेण दु कालमसारे ॥”

एसा एक सूक्ष्म निगोद लक्ष्मणपर्याप्तक जीव लोकक आठ मध्य प्रवक्षाको अपन शरीरक मध्यमें करक  
उत्पन्न हुआ और क्षुप्रमक्षग्रहण कालतक जी कर मर गया । पश्चात् वही जीव पुन उसी अवगाहनास  
१२. वही दूसरीबार उत्पन्न हुआ तीसरीबार उत्पन्न हुआ चौथी बार उत्पन्न हुआ । इस प्रकार अगुल्के  
असम्प्राप्तके भागमें आकाशके जितन प्रवेश प्राप्त हों उतनी बार वही उत्पन्न हुआ । पुन उसन आकाश  
का एक एक प्रदश बढाकर सब लोकको अपना जन्मक्षेत्र बनाया । इस प्रकार यह सब मिलकर एक  
क्षेत्रपरिवर्तन होता है । कहा भी है—

‘सब लोक क्षेत्रमें एसा एक प्रदश मही है जहाँ यह अवगाहनाक साथ क्रमसे मही उत्पन्न हुआ ।

२. इस प्रकार इस जीवन क्षेत्र ससारमें अनकवार परिभ्रमण किया ।

जब कालपरिवर्तनका कथन करते हैं—कोई जीव उत्सपिणीके प्रथम समयमें उत्पन्न हुआ और  
आयुक्त समाप्त हो जानपर मर गया । पुन वही जीव दूसरी उत्सपिणीके दूसर समयमें उत्पन्न हुआ  
और अपनी आयुक्त समाप्त होनेपर मर गया । पुन वही जीव तीसरी उत्सपिणीके तीसर समयमें  
उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इसन क्रमसे उत्सपिणी समाप्त की और इसी प्रकार अवसपिणी भी । यह  
२४. जन्मका मरन्तर्य कहा । एसा इसी प्रकार मरणका भी मरन्तर्य सना चाहिये । इस प्रकार यह सब  
मिलकर एक कालपरिवर्तन है । कहा भी है—

कालससारमें परिभ्रमण करता हुआ यह जीव उत्सपिणी और अवसपिणी के सब समयोंमें  
अनक बार जन्मा और मरा ।

(१) गवर्ध्वनाम्ना-वि १ जि १ आ । (२) वा अणु वा २६ । ३-हृज्ज बहुसो मु वा ।

(४) एव तृती-आ वि १ वि १ उत्सपिणिके वा वा । मरणस्यापि तथैव वा वा । (५)  
वा अणु वा २७ ।

भवपरिवर्तनमुच्यते—नरकगतौ सबजघन्यमायुदशवपसहस्राणि । तेनायुषा  
 तत्रोत्पन्न पुनः परिभ्रम्य तेनवायुषा जात । एव दशवपसहस्राणा यावन्तः समयास्ताव  
 स्त्वत्वस्तत्रव जातो मृत । पुनरेकैकसमयाधिकभावेन त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमा  
 पितानि । ततः प्रच्युत्य त्रियग्गतावन्तर्हृत्तायु समुत्पन्न । पूर्वोक्तनव क्रमेण त्रीणि  
 पत्योपमानि तेन परिसमापितानि । एव मनुष्यगतौ च' । देवगतौ च नारकवत् । अय  
 तु विशेष—एकत्रिंशत्सागरोपमाणि परिसमापितानि यावत्तावद् भवपरिवर्तनम् ।  
 उक्तं च—

“गिरयाद्विजहृष्णादिषु आषु दुःखरिन्दिषु दुःखवद्भा ।

मिच्छससिद्धेण दुःखसो वि भवद्विद्वि ममिदा ॥”

भावपरिवर्तनमुच्यते—पञ्चेन्द्रिय सञ्ज्ञी पर्याप्तका मिथ्यादृष्टि वद्विचञ्जीव  
 स सर्वजपयां स्वयोग्या ज्ञानावरणप्रकृत स्थितिमन्त कोटीकोटीसन्निवामापद्यते ।  
 तस्य कपायाध्यवसायस्यानायसस्येयलोकप्रमितानि पटस्थानपतितानि तत्स्थितियोग्यानि  
 भवन्ति । तत्र सबजघन्यकपायाध्यवसायस्थाननिमित्तान्यनु भागाध्यवसायस्यानान्य  
 सस्येयलोकप्रमितानि भवन्ति । एव सबजघन्या स्थिति सबजघन्य च कपायाध्यवसा

भव परिवर्तन का कथन करत हूँ—नरकगतिमें सबस जघन्य आयु दस हजार बपकी ह। एक  
 जीव उस आयुस वहाँ उत्पन्न हुआ पुनः भूम फिर कर उसी आयुस वही उत्पन्न हुआ । इस प्रकार दस  
 हजार बप क जितने समय ह उतनी बार वही उत्पन्न हुआ और मरा । पुनः आयुमें एक एक समय बढ़ा  
 कर नरककी तैतीस सागर आयु समाप्त की । तदनन्तर नरकस निकरु कर अन्तमुहूर्त आयुस साथ  
 त्रियम्भगगतिमें उत्पन्न हुआ । और पूर्वोक्त क्रमस उसन त्रियम्भगगतिकी तीन पत्य आयु समाप्त की ।  
 इसी प्रकार मनुष्यगतिमें अठमुहूर्तस लकर तीन पत्य आयु समाप्त की । तथा दशगतिमें नरकगतिक  
 समाप्त आयु समाप्त का । दिन्तु लकगतिमें इतनी विघापता है कि यहाँ इकतीस सागर आयु समाप्त  
 होतकर कथन करना चाहिये । इस प्रकार यह सब मिलकर एक भवपरिवर्तन है । कहा भी है—

इस जीवन मिथ्यात्वके ससगस उपरिष घबयक तक नरक आदि गतियोंका अवश्य आदि स्थितिमें  
 में उत्पन्न हो होकर अनेकवार परिभ्रमण किया ।

अब भावपरिवर्तनका कथन करत हूँ—पञ्चेन्द्रिय सञ्ज्ञी पर्याप्तक मिथ्यादृष्टि काई एक जीव  
 ज्ञानावरण प्रकृतिकी सबस जघन्य अपन योग्य अन्त कोटीकोटी प्रमाण स्थितिका प्राप्त होता है ।  
 उसके उस स्थितिक योग्य पटस्थानपतित अमस्थान लोकप्रमाण कपाय अध्ववसाय स्थान होत हूँ ।  
 और सबस जघन्य इन कपाय अध्ववसाय स्थानोंक निमित्तस अमस्थान लोकप्रमाण अनुभाग अध्ववसाय  
 स्थान होत हूँ । इस प्रकार सबस जघन्य स्थिति सबस जघन्य कपाय अध्ववसाय स्थान और सबस

यस्यान सर्वजघयमेवानुभागवधस्थानमास्करन्तस्तद्योग्य सवजघयम योगस्थान भवति ।  
 तेषामेव स्थितिकषायानुभा गस्यानाना द्वितीयमसस्ययभागवद्वियुक्त यागस्थान भवति ।  
 एष च तृतायादियु चसु स्थानपतितानि त्र्यस्यसस्ययभागप्रमितानि यागस्थानानि भवन्ति ।  
 तथा तामव स्थिति तदेव कषायार्थवसायस्थान च प्रतिपद्यमानस्य द्वितीयमनुभवाध्यव  
 १ मायस्थान भवति । तस्य च यागस्थानानि पूर्ववद्वेदितव्यानि । एय तृतीयात्पि अतु  
 नवाध्यवसायस्थानेषु आ असस्येयलोकपरिमितात् । एव तामेव स्थितिमापद्यमानस्य  
 द्वितीय कषायार्थवसायस्थान भवति । तस्याप्यनुभवाध्यवसायस्थानानि यागस्थानानि  
 च पूर्ववद्वेदितव्यानि । एव तृतीयादिपि कषायार्थवसायस्थानेषु आ असस्येयलोक  
 परिमितात् द्विक्रमो वेन्तिव्य । उन्ताया जघन्याया स्थित समयाधिकाया कषायादि  
 १ स्थानानि पूर्ववत् । एष समयाधिकक्रमेण आ उत्कृष्टस्थितोस्त्रिशतागरोपमकोटी  
 काटीपरिमिताया कषायादिस्थानानि वन्तिव्यानि । अनन्तभागवृद्धि असस्येय

अपन्य अनुभाग अन्वयवसाय स्थानको धारण करनेवाले इस जीवके तद्योग्य सबसे अपन्य यागस्थान होगा  
 ह । तत्पश्चात् स्थिति कषाय अन्वयवसायस्थान और अनुभाग अन्वयवसाय स्थान वही रहत ह किन्तु  
 योगस्थान दूसरा हो जाता है आ असस्यैयलोकपरिमितात् होता है । इसी प्रकार तीसरे चौथे आदि  
 १५ योगस्थानोंमें समझना चाहिये । य सब योगस्थान चार स्थान पतित होत ह और इनका प्रमाण श्रेणीके  
 असस्यैयलोकके भागह । तदनन्तर उसी स्थिति और उसी कषाय अन्वयवसाय स्थानको धारण करनेवाले जीवके  
 दूसरा अनुभाग अन्वयवसाय स्थान होता है । इसके योगस्थान पहलके समान जानना चाहिये । तात्पर्य  
 यह है कि यहाँ भी पूर्वोक्त तीनों बातें धूब रहती ह किन्तु योगस्थान जगद्येगीके असस्यैयलोकके भागप्रमाण  
 होत है । इस प्रकार असस्यैयलोकके अनुभाग अन्वयवसाय स्थानोंके होततक तीसरे आदि  
 २ अनुभाग अन्वयवसाय स्थानों में जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि यहाँ स्थिति और कषाय अन्वयवसाय  
 स्थान तो जबय ही रहत है । किन्तु अनुभाग अन्वयवसायस्थान क्रमसे असस्यैयलोकके भागप्रमाण हो जाते  
 हैं और एक एक अनुभाग अन्वयवसाय स्थानके प्रति जगद्येगीके असस्यैयलोकके भागप्रमाण योगस्थान होत  
 है । तत्पश्चात् उसी स्थितिको प्राप्त होतवाले जीवके दूसरा कषाय अन्वयवसाय स्थान होता है ।  
 इसके भा अनुभाग अन्वयवसाय स्थान और योगस्थान पहलके समान जानना चाहिये । अर्थात् एक  
 २५ एक कषाय अन्वयवसाय स्थानके प्रति असस्यैयलोकके भागप्रमाण अनुभाग अन्वयवसाय स्थान होत है और एक  
 एक अनुभाग अन्वयवसायस्थानके प्रति जगद्येगीके असस्यैयलोकके भागप्रमाण योगस्थान होते हैं । इस  
 प्रकार असस्यैयलोकके भागप्रमाण कषाय अन्वयवसाय स्थानोंके हान तक तीसरे आदि कषाय अन्वयवसाय  
 स्थानोंमें वृद्धिवा क्रम जानना चाहिये । त्रिम प्रकार सबसे अपन्य स्थितिक कषायादि स्थान कहे हैं

(१) नववत्सवा-म् । (२) विषु दोषस्थानेषु चतु-म् ता । (३) पूर्ववत्कसय-म् । (४) -त्वात्तानि  
 (पूर्ववत्) बहि-म् ।

भागवृद्धिः सम्भवेयभागवृद्धिः सख्येयगुणवृद्धिः असख्येयगुणवृद्धिः अनन्तगुणवृद्धिः  
 इमानि षट् वृद्धिः स्थानानि । हानिरपि तथैव । अनन्तभागवृद्धयनन्तगुणवृद्धिरहितानि  
 नस्वारि स्थानानि । एव सर्वेषां कमणां मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां च परिवर्तनक्रमा  
 यदित्यम् । तदेतत्सर्वं समुदितं भावपरिवर्तनम् । उक्तं च—

“सन्त्वा पयद्विद्विदीभ्यो अणुमागपदसन्धेयानि ।

मिच्छन्तमसिद्धेण य ममिदा पुण भावससारे ॥”

उक्तात्पञ्चविधात्मसारान्निवृत्ता ये ते मुक्ता । ससारिणा प्रागुपादानं तत्पूर्वकं

त्वा मुक्तात्पददेशस्य ।

उही प्रकार एक समय अधिक ज्ञेय स्थिति के भी कृपापादि स्थान जानना चाहिय और इसी प्रकार  
 एक एक समय अधिक के क्रमसे तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण उल्टूट स्थिति तक प्रत्येक स्थिति  
 विकल्प के भी कृपापादि स्थान जानना चाहिये । अनन्त भागवृद्धि असख्यात भागवृद्धि सख्यात भाग  
 वृद्धि सख्यात गुणवृद्धि असख्यात गुणवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि इस प्रकार य वृद्धिके छह स्थान हैं  
 तथा इसीप्रकार हानि भी छह प्रकारकी है । इनमेंसे अनन्त भागवृद्धि और अनन्त गुणवृद्धि इन दो  
 स्थानोंके क्रम कर दनपर चार स्थान होते हैं । इसी प्रकार सब गुण प्रकृतियोंका और उनकी उत्तर  
 प्रकृतियोंके परिवर्तनका क्रम जानना चाहिये । यह सब मित्तर एक भावपरिवर्तन होता है । कहा भी है—१५

इस जीवन मिथ्यात्वक ससगसे सब प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रपञ्चबन्धके स्थानोंका प्राप्ति  
 कर भावससारमें परिभ्रमण किया ।

जो उक्त पाँच प्रकारके ससारसे निवृत्त हो के मुक्त है । सूत्रमें ससारि' पदका पहरे ग्रहण किया  
 क्योंकि मुक्त यह शशा समाप्तपूवक प्राप्ति होती है ।

जिगराप—जीवन मुख्य भव वा है—समारी और मुक्त । य भव जीवकी वृद्ध और अवृद्ध  
 अवस्थाका ध्यानमें रखकर किया गया है । वस्तुतः य जीवकी वा अवस्थाएँ हैं । पहलू जीव वृद्ध अवस्थामें  
 रहता है इसलिये उस समारी कहते हैं और बादमें उसको मुक्त हानपर वही मुक्त कहलाता है । जीवका  
 समार निमित्त-मापक होता है इसलिये इस अपेक्षासे समारक पौष भव किया गया है—ब्रह्मसमार  
 क्षत्रमार कात्ममार भवमार और भावसमार । इनका दूसरा नाम परिवर्तन भी है । ब्रह्म  
 पदम क्रम और नाक्रम किया गया है क्षत्र पदम आकाशक प्रपञ्चका ग्रहण किया है ज्ञान पदम ममयता  
 ग्रहण किया है जब पदम जीवकी नर नारक आदि अवस्थाओंका ग्रहण किया है और भाव पदम  
 जीवक पाप और कर्मावस्थान विवक्षित है । इन ब्रह्मान्तिक निमित्तम समारम जीवका परिभ्रमण  
 किस प्रकार होता रहता है यही यहाँ बतलाया गया है । न परिवर्तना के क्रममें उत्तरोत्तर अधिक  
 अधिक ज्ञान प्राप्त है । मुख्य रूपम जीवका समार मय्यपदानक प्राप्ति होता है पूर्वज माना गया है  
 इसमें य परिवर्तन आक्षेप मिथ्यात्व अवस्थाम हात है यह निश्चय होता है । मय्यपदानक होतपर जीव

य एते ससारिणस्ते द्विविधा—

समनस्कामनस्का ॥११॥

मनो द्विविधम्—द्रव्यमनो भावमनश्चति । तत्र पुद्गलविपाकिकर्मोदयापेक्ष  
द्रव्यमनः । वीर्यान्तरायनोद्भन्द्रियावरणक्षयापशमापेक्षा' आत्मनो विषुद्धिभविमन । तेन  
मनसा सह वतन्त इति समनस्का । न विद्यते मनो येषां त इमं अमनस्का । एव मनसा  
भावाभावाभ्यां ससारिणो द्विविधा विभज्यते । समनस्काश्चामनस्काश्च समनस्कामन  
मनस्का इति । अभ्यहितरवात्समनस्कशब्दस्य पूर्वनिपात । कथमभ्यहितत्वम् ? गुण  
दोषविचारकत्वात् ।

पुनरपि ससारिणा भदप्रतिपत्त्ययमाह—

संसारिणस्त्रसस्थावरा ॥१२॥

'ससारि'ग्रहणमनषकम् प्रकृतत्वात् । क्व प्रकृतम् ? ससारिणो मुक्ताश्च'इति ।

• नानषकम् । पूर्वापेक्षायम् । ये उक्ता समनस्का अमनस्कास्ते ससारिण इति । यदि हि

का ईपत् ससार शेष रह्य पर भी यह इन परिवर्तनोंसे मुक्त हो जाता है । पूर्ण मोक्ष मुक्त अबस्वामें  
होता है । इसीस जीवके ससारी और मुक्त य दो भव किये गये हैं ।

पहले आ ससारी जीव कह आय हैं य दो प्रकारक है । आगेके सूत्र द्वारा इसी बातका बतसात है—

मन घाले और मनरहित ऐसे ससारी जीव हैं ॥ ११ ॥

मन दो प्रकारका है द्रव्यमन और भावमन । उनमेंस द्रव्यमन पुद्गलविपाकी आंगोपांग नामक  
के उदयस होता है तथा वीर्यान्तराय और नोद्भन्द्रियावरण कर्मक क्षयोपशम की अपेक्षा रखनवाले  
आरमाकी विभुद्धिका भावमन कहत ह । यह मन जिन जीवोंके पाया जाता ह व समनस्क है । और  
जिनक मन नहीं पाया जाता है वे अमनस्क है । इस प्रकार मनक सर्वभाव और असर्वभावकी अपेक्षा  
ससारी जीव दो भागोंमें बट जात ह । समनस्कामनस्का इसमें समनस्क और अमनस्क इस प्रकार  
द्वन्द्व समाप्त है । समनस्क शब्द श्रेष्ठ है अत उसे सूत्रमें पहक रखा ।

शब्दा—श्रेष्ठता किस कारणस है ?

समाधान—क्योंकि समनस्क जीव गुण और दोषोंक विचारक होत है । इस क्रिय समनस्क पद

श्रेष्ठ है ।

अब फिरसे भी ससारी जीवोंक भदोंना ज्ञान करानक क्रिय आगेका सूत्र कहते ह—

तथा संसारी जीव त्रस और स्थावर क भेद से दो प्रकार हैं ॥ १२ ॥

शब्दा—सूत्रमें 'ससारी' पदका ग्रहण करना निश्चय है क्योंकि यह प्रकरण प्राण है ?

प्रतिपादा—इमना प्रकरण कहा है ?

पञ्चतार—ससारिणा मन्ताश्च' इस सूत्रमें उसका प्रकरण है ।

पूर्वस्य विशयण न स्यात् समनस्कामनस्कग्रहण ससारिणा मुक्ताश्चेत्यनेन यथासख्यम  
भिसबध्येत । एव च कृत्वा 'ससारि'ग्रहणमादौ क्रियमाणमुपपन्न भवति ? तत्पूर्वपिञ्ज  
सदुत्तरायमपि भवति' । ते ससारिणो द्विविधा—त्रसा स्यावरा इति । त्रसनामकर्मो  
दयवशीकृताम्त्रमा' । स्यावरनामकर्मोदयवशर्वतिन स्यावरा । त्रस्यन्तीति त्रसा, स्थान  
शीला स्यावरा इति चेत् ? न आगमविरोधात् । आगमे हि कायानुवादेन त्रसा द्वीन्द्रिया  
दारम्य आ अयोगकेवलिन इति । तस्मान्न चलनाचलनापेक्ष त्रसस्थावरत्वम् । कर्मोदया  
पेक्षमेव । त्रसग्रहणमादौ क्रियते अल्पात्तरत्वावम्यहितस्याच्च । सर्वोपयोगसम्भवाद  
म्यहितत्वम् ।

एकन्द्रियाणामतिवह्वयक्तव्याभावादुल्लङ्घ्यानुपूर्वी स्यावरभेदप्रतिपत्त्यर्थमाह—

पृथिव्यप्तेजोवायुधनस्पतयः स्यावरा ॥ १३ ॥

समाधान—सूत्रमें 'ससारी' पदका ग्रहण करना अनर्थक नहीं है क्योंकि पूर्व सूत्रकी अपेक्षा इस  
सूत्रमें 'ससारी' पदका ग्रहण किया है । तात्पर्य यह है कि पूर्व सूत्रमें जो समनस्क और अमनस्क जीव  
बतलाये हैं वे ससारी हैं इस बातका ज्ञान करानक लिय इस सूत्रमें 'ससारी' पद दिया है । यदि 'ससारी'  
पदको पूर्वका विशयण न माना जाय तो समनस्क और अमनस्क इनका ससारी और मुक्त इनके साथ  
त्रससम्बन्ध हो जायगा । और इस अभिप्रायसे 'ससारी' पदका आदिमें ग्रहण करना बन जाता है ।  
इस प्रकार 'ससारी' पदका ग्रहण पूर्व सूत्रकी अपेक्षासे होकर अगल सूत्रके लिय भी हो जाता है ।  
यथा—वे ससारी जीव दो प्रकारके हैं त्रस और स्यावर । जिनके त्रसनामकर्मका उच्य है वे त्रस कहलाते  
हैं और जिनके स्यावर नाम कर्मका उच्य है उन्हें स्यावर कहत है ।

शका—'त्रस्यन्ति' अर्थात् जो चलते फिरते हैं वे त्रस हैं और जो स्थितिस्वभाववाले हैं वे स्यावर हैं  
क्या त्रस और स्यावरका यह लक्षण ठीक है ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं क्योंकि एसा माननमें आगमसे विरोध आता है । क्योंकि  
कायानुवावकी अपेक्षा कथन करत हुए आगममें बतलाया है कि द्वीन्द्रिय जीवोंसे स्केर अयोगकबली  
तकके सब जीव त्रस हैं । इसलिये गमन करत और न करनकी अपेक्षा त्रस और स्यावर यह मय नहीं  
है किन्तु त्रस और स्यावर कर्मोंके उचयकी अपेक्षासे ही है ।

सूत्रमें त्रस पदका प्रारम्भमें ग्रहण किया है क्योंकि स्यावर पदसे इसमें त्रस अक्षर है और यह श्रेष्ठ  
है । त्रस शब्द इसलिये है कि इनके सब उपयोगोंका पाया जाना सम्भव है ।

एकन्द्रियोंके विषयमें अधिक धनस्य नहीं है इसलिये आनुपूर्वीको छोड़कर पहले स्यावरके भवोंका  
ज्ञान करानक लिय आगका सूत्र कहत है—

पृथिवीफायिक जलफायिक, अग्निफायिक, वायुफायिक  
और धनस्पतिकायिक ये पाँच स्यावर हैं ॥ १३ ॥

स्थावरनामकमभदा पृथिवीकायादय मन्ति । तदुदयनिमित्ता' जीवेषु पृथि  
व्यादय मञ्जा वदितव्या । प्रथनादिप्रकृतिनिष्पन्ना अपि रुद्धियथात्प्रथनाद्यनपेक्षा वर्तन्ते ।  
एषा पृथिव्यादीनामापे चातुर्विध्यमुक्त प्रत्येकम् । तत्कथमिति चेद् उच्यते—पृथिवी पृथि  
वीकाय पृथिवीकायिन पृथिवीजीव इत्यादि । तत्र अचेतना यथमिकपरिणामनिवृत्ता  
काठिन्यगुणात्मिका पृथिवी । अचेतनत्वादसत्यपि पृथिवीकायनामकमोत्ये प्रथनक्रियोपल-  
क्षितवेद्यम् । अथवा पृथिवीति सामान्यम् उत्तरत्रयेऽपि सद्भावात् । काय शरीरम् ।  
पृथिवीकायिकजीवपरिग्रहत्त पृथिवीकायो मृतमनुष्यादिकायवत् । पृथिवीकायोऽस्या  
स्तीति पृथिवीकायिक । सत्कायसम्बन्धवशीकृत आत्मा । समवाप्तपृथिवीकायनामक  
मोत्ये कामणकाययोगस्थो या न तावत्पृथिवीं कायत्वन गृह्णाति स पृथिवीजीव' ।  
एवमवात्पृथिवी योज्यम् । एते पञ्चविधा प्राणिन स्थावरा । कति पुनरप्यप्राणा ?  
सत्त्वार म्यघनन्द्रियप्राण कायबलप्राण उच्छ्वासनिश्वासप्राण आयु प्राणश्चति ।

पृथिवीकाय आदि स्थावर नामकमेक भेद ह । उनक उदयक निमित्तस जीवोक पृथिवी आदिक नाम  
जानने चाहिय । यद्यपि य नाम प्रथन आत्ति चातुर्ओंस बन ह तो भी य रौढिक है इसस्मि इनमें  
प्रथन आदि धर्मोकी अपक्षा नही ह ।

धना—आपमें य पृथिवी आदिक अस्सग अलग चार प्रकारक कह हें सो म चार चार भेद किस  
प्रकार प्राण होते ह ?

समाधान—पृथिवी पृथिवीकाय पृथिवीकायिक और पृथिवीजीव य पृथिवीक चार भेद ह ।  
इनमें जो अचेतन है प्राकृतिक परिणमजनों से जो है और कठिन गणबाली है वह पृथिवी है । अचेतन  
होना यद्यपि इनमें पृथिवी नाम कमका उच्य नहीं ह तो भी प्रथनक्रियास उपरक्षित होना कारण  
अर्थात् विस्मर आदि गुणबाली होना कारण यह पृथिवी कहलाती है । अथवा पृथिवी यह सामान्य  
मद ह क्वाकि आगक तीन भदांमं भी यह पाया जाता है । कायका अर्थ शरीर है अतः पृथिवीकायिक  
जीवक द्वारा जो शरीर छोड़ दिया जाता है वह पृथिवीकाय कहलाता है । यथा मर हुण मनुष्य आदिकका  
शरीर । जिस आदक पृथिवीरूप काय विद्यमान है उस पृथिवीकायिक कहत ह । तात्पर्य यह है कि  
यह जीव पृथिवीरूप शरीरक सम्बन्धम यक्त ह । कामजकाययोगमें स्थित जिस जीवन जब तक  
पृथिवीकाय रूपम ग्रहण नहा किया ह तबतक वह पृथिवीजीव कहलाता ह इसी प्रकार जलाधिकमें  
भी चार चार भेद कर सन चाहिय । य पांच प्रकारक प्राणी स्थावर ह ।

धरा—उनक विभन प्राण होत ह ?

समाधान—उनक चार प्राण हात ह—म्यघन इन्द्रियप्राण कायबलप्राण उच्छ्वास निश्वासप्राण  
और आयुप्राण ।

१ —निमित्ता धर्मो इति जलसु क्त्वा । (२)जीव । उपर्य च-पृथिवी पृथिवीकाया पृथिवीकाय  
पृथिवीकाय । कायाचारमुखा मरीचकित्तो भवन्ति ॥ लव-म ।

अथ त्रया के ते इत्यत्रोच्यते —

द्वीन्द्रियाद्यस्त्रया ॥ १४ ॥

इन्द्रिये यस्य साज्य द्वीन्द्रिय । द्वीन्द्रिय आदिर्येषा त द्वीन्द्रियादय । 'आदि शब्दो व्यवस्थावाची । क्व व्यवस्थिता ? आगमे । कथम् ? द्वीन्द्रियस्त्रीन्द्रियश्चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रियश्चति । 'तद्गुणमविज्ञानवृत्तिग्रहणाद् द्वीन्द्रियस्याप्यन्तर्भावः । कति पुनरपि प्राणा ? द्वीन्द्रियस्य तावत् पद् प्राणा, पूर्वोक्ता एव रसनवाक्प्राणाधिका । त्रीन्द्रियस्य सप्त त एव घ्राणप्राणाधिका । चतुरिन्द्रियस्याष्टौ त एव चक्षुःप्राणाधिका । पञ्चेन्द्रियस्य तिरश्चाऽसंज्ञिता नव त एव श्रात्रप्राणाधिका । सन्निनो दश त एव मनोबल प्राणाधिका ।

अब त्रस कौन हैं इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

दो इन्द्रिय आदिक त्रय हैं ॥ १४ ॥

जिन जीवोंके दो इन्द्रियाँ होंगीं हूँ उन्हें दोइन्द्रिय कहत हूँ । तथा जिनके प्रारम्भमें दो इन्द्रिय जीव हूँ वे दो इन्द्रियादिक कहत हैं । यहाँ आदि शब्द व्यवस्थावाची हूँ ।

पूछा—ये व्यवस्थित जीव कहाँ बतलाये हूँ ?

समाधान—आगममें बतलाये हैं ।

पूछा—किस क्रममें ?

समाधान—दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय चार इन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय इस क्रमसे व्यवस्थित हैं ।

यहाँ तद्गुणमविज्ञान बहुव्रीहि समासका ग्रहण किया हूँ इसलिये द्वीन्द्रियका भी अन्तर्भाव हो जाता हूँ ।

पूछा—इस द्वीन्द्रिय आदि जीवोंके कितने प्राण होते हैं ?

समाधान—पूर्वोक्त चार प्राणोंमें रसनप्राण और वचनप्राण इन दो प्राणोंके मिला देनेपर दो इन्द्रिय जीवोंके छह प्राण होते हैं । इनमें घ्राणप्राणके मिला देनेपर तीन इन्द्रिय जीवोंके सात प्राण होते हैं । इनमें चक्षुःप्राणके मिला देनेपर चौर इन्द्रिय जीवोंके आठ प्राण होते हैं । इनमें श्रोत्रप्राणके मिला देने पर पञ्चन्द्रिय असंज्ञिक नौ प्राण होते हैं । इनमें मनोबलके मिला देने पर दश जीवोंके दस प्राण होते हैं ।

विशयार्थ—यहाँ द्वीन्द्रियके छह त्रीन्द्रियके सात चतुरिन्द्रियके आठ असंज्ञिक नौ और सन्ज्ञिक दस प्राण पर्याप्त अवस्थाकी अपेक्षा बतलाये हैं । अपर्याप्त अवस्थामें इनके क्रमसे चार, पाँच छह सात और सात प्राण होते हैं । अगुणमा इस प्रकार हूँ—कुल प्राण दस हैं—पाँच इन्द्रियप्राण तीन बल प्राण आयु और स्वासोच्छ्वास । इनमेंसे सन्ज्ञी और असंज्ञीक अपर्याप्त अवस्थामें स्वासोच्छ्वास मनोबल और वचनवर्ण्य तीन प्राण नहीं होते शेष सात प्राण होते हैं । चतुरिन्द्रियके अपर्याप्त अवस्थामें ३



आदि'गव्यन निर्दिष्टानामनिर्जातसख्यानामियत्तावधारण क्तव्यमित्यत आह—  
पञ्चवेन्द्रियाणि ॥१५॥

'इन्द्रिय शब्दो व्याख्याताय । 'पञ्च ग्रहणमवधारणायम् पञ्च वनाधिक-  
सम्पानीति । कर्मोन्द्रियाणां धागादीनामिह ग्रहण कर्तव्यम् ? न क्तव्यम्  
५ उपयोगप्रकरणात् । उपयोगसाधनानामिह ग्रहण न क्रियासाधनानाम् अनवस्थानाच्च ।  
क्रियासाधनानामङ्गोपाङ्गनामकमनिर्वृतिताना सर्वेषामपि क्रियासाधनत्वमस्तीति न  
पञ्चव कर्मोन्द्रियाणि ।

तेषामन्तर्भेदप्रवक्ष्यामिमाह—

द्विविधानि ॥१६॥

विद्य शब्द प्रकारवाची । द्वी विधौ येषा तानि द्विविधानि द्विप्रकाराणीत्यर्थः ।

१ तीन य और श्रोत्रन्द्रिय य चार प्राप्त नहीं होत णप छह प्राण होत हैं । त्रीन्द्रियक अपर्याप्त अवस्थामें  
चार य और क्लुरिन्द्रिय य पाँच प्राप्त नहीं होत णप पाँच प्राण होत हैं और द्वीन्द्रियक अपर्याप्त अवस्थामें  
पाँच य और घ्राणन्द्रिय य छह प्राण नहीं होत णप चार प्राप्त होत ह ।

पूज सूत्रमें जो आदि शब्द विद्या ह उसस सख्या नहीं जात होती अत उसके परिमाणका निरूपण  
१२ करनके लिय आगवा सूत्र कहत है—

इन्द्रियां पाँच हैं ॥ १५ ॥

इन्द्रिय शब्दका व्याख्यान कर आये । सूत्रमें जो 'पञ्च' पदका ग्रहण किया है वह मर्यादाक निर्दिष्टत  
करनके लिय किया है कि इन्द्रियां पाँच ही होती है । इन्द्रियों की इससे और अधिक सख्या नहीं पाई  
जाती ।

२ शब्द—इस सूत्रमें वचनाधिक कर्मोन्द्रियोंका ग्रहण करना चाहिये ?

समाधान—नहीं करना चाहिये क्योंकि उपयोगका प्रकरण है । इस सूत्रमें उपयोगकी साधन  
भूत इन्द्रियाका ग्रहण किया है क्रियाकी साधनभूत इन्द्रियोंका नहीं । दूसर क्रियाकी साधनभूत  
इन्द्रियाकी मर्यादा कहा ह । आंगोपांग नामकमक उदयस जिनन मी आंगोपांगोंकी रचना होती ह  
क सब क्रियाक साधन ह इसलिय कर्मोन्द्रियां पाँच ही ह एसा कोई नियम नहीं किया जा सकता ह ।

२२ अब उन पाँचों इन्द्रियोंक अन्तर्भेदक विवरणक लिय आगवा सूत्र कहत है—

ये प्रत्येक दो दो प्रकार की हैं ॥ १६ ॥

विद्य शब्द प्रकारवाची है । 'द्विविधानि' पदमें द्वी विधौ येषा तानि द्विविधानि इस प्रकार  
बहुप्रोहि समान ह । जिनका यह आशय ह कि य पाँचों इन्द्रियों प्रत्येक दो प्रकारकी है ।

(१) वाक्यान्वितास्तापुसकानि कर्मो त्रयाप्याहुः—तां की श्लो १६ । (२) ग्रहण इत्  
न विद्या— ता ता । (३) कनिदिष्टाणं भवे इदिया पञ्चता ? नोक्तया बुविहा पञ्चता । तं  
ग्रहण—ई इदिया य वाक्यविद्या या—पञ्चकथा ५४ १२ ।

कौ पुनस्तौ द्वौ प्रकारौ ? द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रियमिति ।

तत्र द्रव्येन्द्रियस्वरूपप्रतिपक्ष्यमाह—

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम् ॥१७॥

निवृत्यत इति निवृत्ति । केन निवृत्यते ? कर्मणा । सा द्विविधा बाहूयाभ्यन्तरभेदात् । उत्सेधाङ्गुलासम्भेयभागप्रमितानां शुद्धानामात्मप्रदेशानां प्रतिनियतक्षु  
रादीन्द्रियसंस्थानेनावस्थितानां वृत्तिराभ्यन्तरा निवृत्ति । तेष्वामप्रदेशेष्विन्द्रियव्यपदेश  
माद्यु प्रतिनियतसंस्थानो नामकर्मोदयापान्तितायस्याविशेषः पुद्गलप्रचय सा बाह्य  
निवृत्ति । येन निवृत्तेरुपकरणं क्रियते तदुपकरणम् । पूषवत्तदपि द्विविधम् । तत्रा  
भ्यन्तरं कृष्णशुक्लमण्डलं बाहूयमक्षिपत्रपत्रमद्वयादि । एव शोषेप्य पीन्द्रियेषु ज्ञेयम् ।

शका—व दो प्रकार कौन है ?

समाधान—द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय ।

अब द्रव्येन्द्रिय स्वरूपका ज्ञान कराने के लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

निर्वृत्ति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय है ॥ १७ ॥

रचनाका नाम निवृत्ति है ।

शका—यह रचना कौन करेगा ?

समाधान—कर्म ।

निवृत्ति दो प्रकारकी है—बाह्यनिवृत्ति और आभ्यन्तर निवृत्ति । उत्सर्गाङ्गके असंख्यातके  
भागप्रमाण और प्रतिनियत क्षुद्रादि इन्द्रियाके आकाररूपके अवस्थित शुद्ध आत्मप्रदणोंकी रचनाका  
आभ्यन्तर निवृत्ति कहत है । तथा इन्द्रिय नामवाके उन्हीं आत्मप्रदणोंमें प्रतिनियत आकाररूप और  
नामकर्मके उत्पन्न विगत अवस्थाका प्राप्त जो पुद्गलप्रचय होता है उन बाह्यनिवृत्ति कहत है । जो  
निवृत्ति का उत्तरण करता है उन उत्तरण कहत है । निवृत्ति के समान यह भी दो प्रकारका है—आभ्य  
न्तर और बाह्य । जब इन्द्रियके कृष्ण शुकलमण्डल आभ्यन्तर उत्तरण हुआ तब और दानों बगेरी  
आदि बाह्य उत्तरण है । इसी प्रकार पाप इन्द्रियोंमें भी जानना चाहिये ।

विद्यापय—प्रागमम सगरी जीवके प्रत्येक कल्पके बनताय है । मध्यक आठ प्रदण अवस्था  
है और पाप प्रत्येक कल्प । एसी अवस्थाम नियत आत्म प्रत्येक हां सदा विवक्षित इन्द्रियरूप बन रहत है  
यह नहीं कहा जा सकता किन्तु प्रत्येक परिष्कारके अनुसार प्रति समय अन्य अन्य प्रदण अभ्यन्तर  
निवृत्तिरूप होत रहत है तथा यही गमजाना चाहिये । जिसके क्रियाकी इन्द्रियां होती हैं उनके उत्तरण  
इन्द्रियावरण कभीका शयापनम सर्वांग होता है तन्मध्य अभ्यन्तर निवृत्ति की उत्तरण प्रारम्भ व्यवस्था  
माननेम कोई बाधा नहीं आता । यह उत्तरण कथनका तात्पर्य है । पाप कथन गमम है ।

भावन्द्रियमुच्यत—

लक्ष्म्युपयोगी भावेन्द्रियम् ॥१८॥

लम्बन लघि । का पुनरसौ ? ज्ञानावरणकमक्षयोपशमविशय । यत्सन्निधा  
नादात्मा द्रव्यन्द्रिमनिवृत्ति प्रति व्याप्रियते तन्निमित्त आत्मन परिणाम उपयोग । तदु  
नये भावन्द्रियम् । इन्द्रियफलमुपयोग तस्य कथमिन्द्रियत्वम् ? कारणधमस्य कार्ये  
दशानात् । यथा घटाकारपरिणत विज्ञान घट इति । स्वाथम्य तत्र मुख्यत्वात् । इन्द्रस्य  
लक्ष्मिन्द्रियमिति यं स्वार्थं स उपयोगे' मुख्य' उपयोगलक्षणा जीव इति वचनात् ।  
अत उपयोगस्यन्द्रियत्व याम्यम् ।

अत्र भावन्द्रियका कथन करणक लिय आगता सूत्र कहत ह —

लम्बि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय है ॥ १८ ॥

लम्बि शब्दका व्युत्पत्तिलम्ब अर्थ है—लम्बन लम्बि—प्राप्त होना ।

शका—लम्बि किस कहत ह ?

समाधान—ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशम विशयको लम्बि कहत ह ।

जिसक ससर्गस आत्मा द्रव्यन्द्रियकी रचना करणक लिय उच्यत होता ह तन्निमित्तक आत्माके

परिणामको उपयोग कहते ह । लम्बि और उपयोग ये दोनों भावन्द्रियाँ ह ।

शका—उपयोग इन्द्रियका फल है वह इन्द्रिय कैसे हो सकता है ?

समाधान—कारणका धर्म कार्यमें देना जाता है । जैसे बटकार परिणत हुआ ज्ञान भी घट  
कहलाता है अत इन्द्रियक फलको इन्द्रिय माननमें कोई आपत्ति नहीं है । दूसरे इन्द्रियका जो अर्थ ह  
वह मुख्यतास उपयोगमें पाया जाता है । तात्पर्य यह है कि इन्द्रके ललाको इन्द्रिय कहत ह' यह जो  
इन्द्रिय शब्दका अर्थ है वह उपयोगम मुख्य ह क्योंकि जीवका लक्षण उपयोग है ऐसा बचन है अत  
उपयोगको इन्द्रिय मानना उचित है ।

विशयार्थ—ज्ञानकी अनुक पर्यायको प्रकृत न होन वना विवक्षित ज्ञानावरणक सर्वभाती स्वर्ण  
कोंके उच्यका काम है । किन्तु जिस जीवके विवक्षित ज्ञानावरणका क्षयोपशम होता ह उमके  
उस ज्ञानावरणक सर्वभाती स्वर्णकोंका उचय न होनसे विवक्षित ज्ञानक प्रकाशमें आनेकी योग्यता  
होती है और इसी योग्यताका नाम लम्बि है । एही योग्यता एकसाथ सभी क्षयोपशमिक ज्ञानोंकी  
हो सकती है किन्तु उपयोगमें एक कारुमें एक ही ज्ञान आता है । इसका अभिप्राय यह है कि क्षयोपश  
मिक ज्ञानकी पर्यायका नाम लम्बि न होकर क्षयोपशमविशेषका नाम लम्बि है और उपयोग ज्ञानकी  
पर्यायका नाम है । यही कारण है कि लम्बि एक साथ अनक ज्ञानोंकी हो सकती है पर उपयोग एक  
कारुमें एक ही ज्ञानका होता है ।

पहले प्रथम अध्याय सूत्र १४ में यह कह आय है कि भतिज्ञान इन्द्रिय और मनके निमित्तसे होता है

(१) —प्रागे मूल्य दि १ वि २ सु ।

उक्तानामिन्द्रियाणां सन्नानुपूर्वीप्रतिपादनाद्यमाह—

स्पर्शान् रसनं घ्राणञ्चक्षुभ्योश्चाणि ॥१९॥

श्लोके इन्द्रियाणां पारतन्त्र्यविवक्षा दृश्यते । अनेनाक्षणा सुष्ठु पश्यामि अनेन कर्णेन सुष्ठु शृणोमीति । ततः पारतन्त्र्यात्स्पर्शानादीनां कारणत्वम् । शीर्यान्तरायमतिज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भादात्मना स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शानम् । ५

इससंज्ञात होता है कि उपयोग स्वरूप ज्ञानकी इन्द्रिय सज्ञा न होकर जा उपयोगरूप मतिज्ञान और श्रुतज्ञानक होनेमें साधकतम कारण है उसीकी इन्द्रिय सज्ञा है इसलिये यहाँ निम्नलिखित उपकरण और रुचिको इन्द्रिय कहना तो ठीक है क्योंकि य उपयोगरूप मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके होनेमें साधकतम कारण है पर स्वयं उपयोगको इन्द्रिय कहना ठीक नहीं है क्योंकि वह इन्द्रिय व्यापारका फल है । यह एक शक्ति है जिसका समाधान पूज्यपाद स्वामीन दो प्रकारसे किया है । प्रथम तो यह बतलाया है कि कारणक धर्म इन्द्रियत्वका कार्यमें उपचार करके उपयोगको भी इन्द्रिय कहा है । अर्थात् उपयोग स्वयं इन्द्रिय नहीं है किन्तु इन्द्रियक निमित्तसे वह होता है इसलिये यहाँ उपचारसे उसे इन्द्रिय कहा है । यह प्रथम समाधान है । दूसरा समाधान करते हुए उन्होंने जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि जिसमें इन्द्र अर्थात् आत्माकी पहिचान हो वह इन्द्रिय कहलाती है और एसी पहिचान करानवाली वस्तु निज अर्थ होनी चाहिये । यदि इस बुद्धिसे वसा जाता है तो इन्द्रिय शब्दका मुख्य वाच्य उपयोग ही ठहरता है क्योंकि वह आत्माका निज अर्थ है । यही कारण है कि यहाँ उपयोगको भी इन्द्रिय कहा है । तात्पर्य यह है कि निमित्तकी अपेक्षा विचार करने पर निम्नलिखित उपकरण और रुचिको इन्द्रिय सज्ञा प्राप्त होती है और स्वार्थकी अपेक्षा विचार करनेपर उपयोगको इन्द्रिय सज्ञा प्राप्त होती है । पहले प्रथम अध्यायमें कवक निमित्तकी अपेक्षा इन्द्रिय शब्दका व्यवहार किया गया था और यहाँ निमित्त और मुख्यार्थ दोनोंको ध्यानमें रखकर इन्द्रियक भेद विवेकसे गये हैं इसलिये कोई विरोध नहीं है । १०

अथ उक्त इन्द्रियोक्तं प्रथमं सज्ञा दिक्कल्पानकं स्थित आगका सूत्रं बहते ह—

स्पर्शनं, रसनं, घ्राणं, चक्षु और भ्रोज्य ये इन्द्रियां हि ॥ १९ ॥

श्लोकमें इन्द्रियोंको पारतन्त्र्यविवक्षा, ऐसी जाती है । जस इस अक्षरमें अच्छा देखता हूँ इस ज्ञानके मैं अच्छा सुनता हूँ । अतः पारतन्त्र्यविवक्षामें स्पर्शनं आदि इन्द्रियोंका कारणपना बत जाता है । २५

शीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरणक्षय उपशमाङ्गोपाङ्गनामलाभावष्टम्भादात्मना

(१) श्रुतीन्द्रियाणि चक्षुभ्योऽघ्राणञ्चक्षुभ्योश्चाणि । ता-की इतो १ । घ्राणरसनचक्षुस्त्वकधोशापीन्द्रियाणि मूलम्ब- । न्या सू १ १ १९ । (२) विद्यमानतः धारणं गर्भं पृच्छतीति । रसयन्तननि रसतं रसं गृह्णातीति । चक्षुःश्रेण्डि चक्षुः कर्णं पश्यतीति वि × पृच्छोपयननि शीर्यं चक्षुः गृह्णातीति ।

—या मा १ १ १९ ।

रस्यतेऽनेनेति रसनम् । घ्रायतेऽनेनेति घ्राणम् । चक्षुरनेनाथत्वाद्दृशनाथं विवक्षाया चष्टे  
अर्थान्यथ्यत्यननेति चक्षु । श्रूयतेऽननति श्रोत्रम् । स्वातथ्यविवक्षा च दृश्यते । इद'  
मे अक्षि सुष्टु पश्यति । अय मे कण सुष्टु शृणोति । तत स्पर्शनादीनां कतरि निष्पत्ति ।  
स्पृशतीति स्पर्शनम् । रसतीति रसनम् । जिघ्रतीति घ्राणम् । चष्टे इति चक्षु । शृणो  
२ तीति श्रोत्रम् । एषा निर्देशक्रम एककवृद्धिक्रमप्रज्ञापनाथ ।

तेषामिन्द्रियाणा विषयप्रवशनाथमाह—

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तबर्था ॥२०॥

द्रव्यपर्याययो प्राधायविवक्षाया कमभावसाधनत्व स्पर्शादिशब्दाना वेदितव्यम् ।  
द्रव्यप्राधायविवक्षाया कमनिर्देश । स्पृश्यत इति स्पर्श । रस्यत इति रस । गन्ध्यत  
१ इति गन्ध । यष्यत इति वर्ण । शब्दघत इति शब्द । पर्यायप्राधायविवक्षायां भाव

आत्मा जिसके द्वारा स्पर्श करता है वह स्पर्शन इन्द्रिय है जिसके द्वारा स्वाद लेता है वह रसन इन्द्रिय है  
जिसके द्वारा सूंघता है वह घ्राण इन्द्रिय है । अक्षि धातुक अनक अर्थ है । उनमेंसे यहाँ दर्शनरूप अक्ष  
लिया गया है इसलिय जिसके द्वारा पदार्थोंको देखता है वह चक्षु इन्द्रिय है तथा जिसके द्वारा सुनता है  
वह श्रोत्र इन्द्रिय है । इसीप्रकार इन इन्द्रियोंकी स्वातन्त्र्य विवक्षा भी दक्षी जाती है । जैसे यह मेरी  
१५ आँस अच्छी तरह देखती है यह मेरा कान अच्छी तरह सुनता है । और इसलिय इन स्पर्शन आदि  
इन्द्रियोंकी कर्ताकारकमें सिद्धि होती है । यथा—जो स्पर्श करती है वह स्पर्शन इन्द्रिय है जो स्वाद  
करती है वह रसन इन्द्रिय है जो सूंघती है वह घ्राण इन्द्रिय है जो देखती है वह चक्षु इन्द्रिय है और जो  
सुंघती है वह कर्ण इन्द्रिय है ।

सूत्रमें इन इन्द्रियोंका जो स्पर्शनके बाद रसना और उसके बाद घ्राण इत्यादि क्रमसे निर्देश किया  
२ है वह एक एक इन्द्रियकी इस क्रमसे बुद्धि होती है वह विज्ञानके लिय किया है ।

अब उन इन्द्रियोंका विषय विज्ञानके लिय आगेका सूत्र कहत है—

स्पर्शन, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द ये क्रमसे उन इन्द्रियों के विषय हैं ॥ २० ॥

द्रव्य और पर्यायकी प्राधान्य विवक्षामें स्पर्शादि शब्दोंकी क्रमसे कर्मसाधन और भावसाधनम  
सिद्धि जानना चाहिये । अब द्रव्यकी अपक्षा प्रधान रहती है तब कर्मनिर्देश होता है । जैसे—जो  
२५ स्पर्श किया जाता है वह स्पर्श है जो स्वादका प्राप्त होता है वह रस है जो सूंघा जाता है वह गन्ध है  
जो देखा जाता है वह वर्ण है और जो शब्दरूप होता है वह शब्द है । इस व्युत्पत्तिक अन्तार में सब  
स्पर्शादिक द्रव्य ठहरत है । तथा अब पर्यायकी विवक्षा प्रधान रहती है तब भावनिर्देश होता है ।

(१) इमानीन्द्रियाणि कर्वाचित्स्वातन्त्र्येण विवक्षितानि भवन्ति । तत्तथा—इदं मे अक्षि सुष्टु पश्यति  
अय मे कर्ण सुष्टु शृणोति । कर्वाचित्स्वातन्त्र्येण विवक्षितानि भवन्ति—अन्तर्गता सुष्टु पर्यायि ।  
धनेन कर्णत सुष्टु शृणोति इति ।— पा न भा १।१।२।३। (२) गन्धरसस्पर्शवर्णशब्दा पृथिव्यादिषु  
भास्तबर्था ।—पा भा १ १ ४१ ।

निर्देश । स्पर्शनं स्पर्श । रसन रस । गन्धन गन्ध । वणन वण । शब्दन शब्द<sup>१</sup> इति ।  
एषा क्रम इन्द्रियक्रमेणव व्याख्यात ।

अत्राह यत्तावमनोज्ञवस्थानादिन्द्रिय न भवतीति प्रत्याख्यात तस्मिन्प्रयोगे  
स्योपकारि उत नति ? तदप्युपकार्येव । तेन विनेन्द्रियाणां विषयेषु स्वप्रयोजनवृत्त्य  
भावात् । किमस्यपा सहकारित्वमात्रमेव प्रयोजनमुतान्यदपीत्यत आह—

श्रुतमनिन्द्रियस्य ॥२१॥

श्रुतज्ञानविषयोऽप्य श्रुतम् । स विषयोऽनिन्द्रियस्य परिप्राप्तश्रुतज्ञानावरण  
क्षयोपशमस्यात्मन श्रुतार्थेऽनिन्द्रियालम्बनज्ञानप्रवृत्ते । अथवा श्रुतज्ञान श्रुतम् तदनि  
न्द्रियस्यार्थं प्रयोजनमिति भावत् । स्वातन्त्र्यसाध्यमिदं प्रयोजनमनिन्द्रियस्य ।

प्रेस—स्पर्शनं स्पर्श है रसन रस ह गन्धन गन्ध है वणन वण ह और शब्दन शब्द ह । इस व्युत्पत्तिक १०  
अनुसार म सब स्पर्शादिक क्रम निर्दिष्ट होत हैं ।

इन स्पर्शादिकका क्रम इन्द्रियोंक क्रमसे ही व्याख्यात है । अर्थात् इन्द्रियोंक क्रमको ध्यानमें रखकर  
इनका क्रम किया ह ।

आग कहत है कि मन अनवस्थित ह इसलिये यह इन्द्रिय नहीं । इस प्रकार जो मनके इन्द्रियपनका  
निषेध किया है सो यह मन उपयोगका उपकारी है या नहीं ? मन भी उपकारी है, क्योंकि मनक बिना १५  
स्पर्शादि विषयोंमें इन्द्रियाँ अपन अपन प्रयोजनकी सिद्धि करनेमें समर्थ नहीं होती । सो क्या इन्द्रियोंकी  
सहायता करना ही मनका प्रयोजन ह या और भी इसका प्रयोजन ह ? इसी बातके बतलानके लिये  
आगका सूत्र कहते हैं—

श्रुत मनका विषय है ॥ २१ ॥

श्रुतज्ञानका विषयश्रुत अर्थ श्रुत है वह अनिन्द्रिय अर्थात् मनका विषय है क्योंकि श्रुतज्ञानावरणक २०  
क्षयोपशमको प्राप्त हुए जोबक श्रुतज्ञानक विषयमें मनक आलम्बनस ज्ञान होता है । अथवा श्रुत  
शब्द का अर्थ श्रुतज्ञान है । और वह मनका अर्थ अर्थान् प्रयाजन है । यह प्रयोजन मनक स्वतः आधीन  
है इसमें उस दूसरेक साहाय्यका आवश्यकता नहीं लनी पड़ती ।

विषयार्थ—यहाँ श्रुत शब्दका अर्थ श्रुतज्ञानका विषय या श्रुतज्ञान किया है और उस अनिन्द्रियका  
विषय बतलाया है । आसय यह है कि श्रुतज्ञानकी उपयोग दत्ता पाँच इन्द्रियोंक निमित्तस म होकर २५  
केवल अनिन्द्रियक निमित्तस होनी है । इसका यह अर्थिप्राय नहीं कि अनिन्द्रियक निमित्तस केवल  
श्रुतज्ञान ही होता है किन्तु इसका यह अर्थिप्राय है कि जिस प्रकार मतिज्ञान इन्द्रिय और अमिन्द्रिय  
दोनोंक निमित्तस होता है उग प्रकार श्रुतज्ञान इन दोनोंक निमित्तस म होकर केवल अनिन्द्रियक निमित्त  
स होता है ।

उक्तानामिन्द्रियाणां प्रतिनियतविषयाणां स्वामित्वनिर्देशे कर्तव्ये यत्प्रथमं गृहीतं स्पृशन् तस्य तावत्स्वामित्वावधारणाद्यमाह—

यमस्पत्यन्तानामेकम् ॥२२॥

एकं प्रथममित्यथ । किं तत् ? स्पृशन्म् । तत्केषाम् ? पृथिव्यादीनां वनस्पत्यन्तानां वदितव्यम् । तस्योत्पत्तिकारणमुच्यते—वीर्यान्तरायस्पर्शनेन्द्रियावरणक्षयोपशमे सति शयन्द्रियसर्वघातिस्पृशकोदमे च शरीरनामलाभावष्टम्भे एकेन्द्रियजातिनामोदयवशवर्तित्वाया च मत्या स्पृशन्मेकमिन्द्रियमाविभवति ।

इतरपामिन्द्रियाणां स्वामित्वप्रदर्शनाद्यमाह—

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेककवृद्धानि ॥२३॥

एककम् इति वीप्सायां द्वित्वम् । एककेन वृद्धानि एकैकवृद्धानि । कृमिमादि' कृत्वा स्पृशनाधिकारात् स्पृशन्मादि कृत्वा एककवृद्धानीत्यभिसम्बन्धश्च क्रियते । 'आदि' शब्दप्रत्येकपरिसमाप्यते । कृम्यादीनां स्पृशन् रसनाधिकम् पिपीलिकादीनां स्पृशन् रसने

जिस इन्द्रियका क्या विषय है यह वक्तव्य आये । अब उनके स्वामीका कथन करना है अतः सर्वप्रथम जो स्पृशन् इन्द्रिय कही है उसका स्वामीका विषय करनेके लिये आगेका सूत्र कहत है—

यमस्पृशिकायिकं तदके जीवोके एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है ॥ २२ ॥

सूत्रम आय हुए 'एक' शब्द का अर्थ प्रथम है ।

पना—बहु कौन है ?

समाधान—स्पृशन् ।

पना—बहु जिन जीवोंके होती है ?

समाधान—पृथिवीकायिक जीवास्त सबके वनस्पतिकायिक तदके जीवोंके जानना चाहिये ।

अब उसकी उत्पत्तिक कारणका कथन करते हैं—वीर्यान्तराय तथा स्पर्शनेन्द्रियावरण कर्मके क्षयापवनाके हानपर और शय इन्द्रियाके सबघाती स्पृशकाके उदयके होतपर तथा शरीर नामकर्मके आमम्बनके हानपर और एकन्द्रिय जाति नामकर्मके उत्पत्तिके आधीनताके रहत हुए एक स्वर्गनेन्द्रिय प्रकृत होती है ।

अब इतर इन्द्रियाके स्वामित्वका ज्ञान करानके लिये आगेका सूत्र कहत है—

कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदिक क्रम से एक एक इन्द्रिय अधिक होती है ॥२३॥

एककम् यह वीप्सायां द्वित्वम् है । इन्द्रियाके एक एक क्रम से बढ़ी है इत्यलिये च एकैकवृद्ध' कही गत है । य इन्द्रियाके क्रमसे बढ़ी है । यती गगन इन्द्रियाके अधिकार होतमे स्पृशन् इन्द्रियके एक एक क्रमसे बढ़ी है इस प्रकार यही सम्बन्ध कर मना चाहिये । आदि शब्दका प्रत्येकके साथ सम्बन्ध होता है । जिनके यह अर्थ हुआ कि कृमि आदि जीवाने गगन और गगनाय दो इन्द्रिया

घ्राणाधिके भ्रमरादीनां स्पशनरसनघ्राणानि चक्षुरधिकानि मनुष्यादीनां तान्येव श्रोत्रा-  
धिकानीति यथासंख्येनाभिसम्बन्धो व्याख्यात । तेषां निष्पत्ति स्पशनोत्पत्त्या व्याख्याता  
उत्तरोत्तरसबधातिस्पर्शकोदयेन ।

एवमेतेषु ससारिणु द्विभेदषु इन्द्रियभेदात्पञ्चविधेषु ये पञ्चेन्द्रियास्तद्भेदस्या  
नुक्तस्य प्रतिपादनायमाह—

सञ्ज्ञिन समनस्का ॥२४॥

मनो व्याख्यातम् । सह तन ये वर्तन्ते ते समनस्का । सञ्ज्ञिन<sup>१</sup> इत्युच्यन्ते ।  
पारिश्लेष्यादितरे ससारिण प्राणिनाऽसञ्ज्ञिन इति सिद्धम् । ननु च सञ्ज्ञिन इत्यनेनैव गताय  
त्वात्समनस्का इति विशेषणमनर्थकम् । यतो मनोव्यापारो हिताहितप्राप्तिपरिहारपरीक्षा ।  
सञ्ज्ञापि सैवेति ? नतद्युवतम् सञ्ज्ञाणब्दाद्यभ्यभिचारगत् । सञ्ज्ञा नामेत्युच्यते ।  
तद्वन्त सञ्ज्ञिन इति सर्वेषामतिप्रसङ्गः । सञ्ज्ञा ज्ञानमिति चेत् सर्वेषां प्राणिनां

होती है । पिपीलिका आदि जीवोंके स्पर्शन रसना और घ्राण य तीन इन्द्रियां होती हैं । भ्रमर आदि  
जीवोंके स्पर्शन रसना घ्राण और चक्षु य चार इन्द्रियां होती हैं । मनुष्यादिके चोत्र इन्द्रियके और  
मिला वनपर पाँच इन्द्रियां होती हैं । इस प्रकार उक्त जीव और इन्द्रिय इनका यथाक्रमसे सम्बन्ध  
का व्याख्यान किया । पहले स्पर्शा इन्द्रियकी उत्पत्तिका व्याख्यान कर आये हैं उसी प्रकार शप  
इन्द्रियोंकी उत्पत्तिका व्याख्यान करना चाहिये । किन्तु उत्पत्तिक कारणका व्याख्यान करत समय  
जिस इन्द्रियकी उत्पत्तिक कारणका व्याख्यान कियाआय वहाँ उससे अगली इन्द्रिय सम्बन्धी सर्वघाती  
स्पर्शकोक उदयके साथ वह व्याख्यान करना चाहिये ।

इस प्रकार इन दो प्रकारके और इन्द्रिय भवोंकी अपेक्षा पाँचप्रकारके ससारी जीवोंमें जो पञ्चन्द्रिय  
जीव ह उनके भेद नहीं बहू अतः उनका कथन करना लिय आगका सूत्र कहत हैं—

मनयस्त्रे जीव सञ्ज्ञी होते हैं ॥ २४ ॥

मनका व्याख्यान कर आये । उसके साथ जो रहत ह व समनस्क कहलात है । और उन्हें ही सञ्ज्ञी  
कहत ह । परिशय न्यायम यह सिद्ध हुआ कि इनमें अतिरिक्त जितने ससारी जीव होत हैं व सब असञ्ज्ञी  
होते हैं ।

शब्दा—सूत्रमें सञ्ज्ञिन इतना पद दोनसे ही काम चर जाता है अतः 'समनस्का' यह विशेषण  
दना निष्कृत है क्योंकि हितकी प्राप्ति और अहितके त्यागकी परीक्षा करनेमें मनका व्यापार होता है  
और यही सञ्ज्ञा ह ?

समाधान—यह कहना उचित नहीं क्योंकि सञ्ज्ञा शब्दके अर्थमें अभ्यभिचार पाया जाता है ।  
अर्थात् सञ्ज्ञा शब्दके अर्थ ह । सञ्ज्ञाका अर्थ नाम ह । यदि नामवाले जीव सञ्ज्ञी माने जायें तो  
सब जीवोंको सञ्ज्ञीपनका प्रसंग प्राप्त होता ह । सञ्ज्ञाका अर्थ यदि ज्ञान लिया जाता है तो भी सभी



ज्ञानात्मकत्वावतिप्रसङ्ग । आहारादिविषयाभिलाष सञ्जेति चेत् ? तुल्यम् । तस्मात्स-  
मनस्मा इत्युच्यते । एव च कृत्वा गर्भण्डजमूर्च्छितसुपुष्ट्याद्यवस्थासु हिताहितपरीक्षा-  
भावोऽपि मनसन्निधानात्सञ्चितत्वमुपपन्न भवति ।

यदि हिताहितादिविषयपरिस्मन्व प्राणिना मनःप्रणिधानपूषक । अयाभि-  
नवशरीरग्रहण प्रत्यागूर्णस्य विधीणपूषमूर्तेनिमनस्कस्य यत्कम तत्कुत इत्युच्यते—

विग्रहगतौ कमयोग ॥२५॥

विग्रहो देहः । विग्रहार्था गतिविग्रहगति । अथवा विरहो ग्रहो विग्रहो व्याघात<sup>१</sup> ।  
कर्मादानेऽपि नोर्कर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थः । विग्रहेण गतिविग्रहगति । सर्वं

प्राणी ज्ञान स्वभाव होनस सबको सञ्जीवनका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि आहारादि विषयोंकी अभि-  
लाषाकी सहा कहा जाता है तो भी पहलक समान शोष प्राप्त होता है । अर्थात् आहारादि विषयक  
अभिलाषा सबक पाई जाती है इसलिये भी सबको सञ्जीवनका प्रसंग प्राप्त होता है । भूकिय शोष  
न प्राप्त हा अतः सूत्रमें समनस्का यह पदरक्ता है । इससे यह लाभ है कि गर्भज अण्डज मूर्च्छित और  
सुपुष्टि आदि अवस्थाओंमें हिताहितकी परीक्षाक न होनपर भी मनके सम्बन्धसे सञ्जीवना बन  
जाता है ।

विशेषार्थः—प्रायः एकमिन्द्रिय आदि प्रत्येक जीव अपन इष्ट विषयमें प्रवृत्ति करता है और अनिष्ट  
विषयस निवृत्त होता है फिर भी मनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है सो इसका कारण यह है  
कि सुखनात्मक अध्ययन लोक परलोकका विचार हिताहितका विवेक आदि काय ऐसे हैं जो मनुके  
बिना नहीं हो सकत । इसीसे मनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है । यह मन जिनके होता है वे  
सञ्जी होते हैं अन्य नहीं । जीवोंका सञ्जी और असञ्जी यह भेद पञ्चमिन्द्रिय जीवोंमें ही पाया जाता है ।  
अथ एकमिन्द्रियस्य स्वरूप चतुरिन्द्रिय तत्क जीव तो असञ्जी ही होते हैं । अर्थात् उनके मन न होन स  
उक्त प्रकारक ज्ञानस्य बधित रहत है ।

यदि जीवोंक हित और अहित आदि विषयक स्मिय क्रिया मनके निमित्तस होती है तो जिन  
पूर्व शरीरको छोड़ दिया है और जो मररहित है ऐसा जीव जब नूतन शरीरको ग्रहण करनक स्मिय  
उद्यत हाता है तब उसक जो श्रिया होती है वह बिना निमित्त स होती है यही अतमानक स्मिय आगेका  
सूत्र कहत है—

विग्रहगतिमें कमयोग होता है ॥ २६ ॥

विग्रहका अर्थ यह है । विग्रह अर्थात् शरीरक स्मिय जो गति होती है वह विग्रहगति है । अथवा  
विग्रह ग्रहका विग्रहकणत है जिसका अर्थ व्याघात है । तात्पर्य यह है कि जिस अवस्थामें कर्मक ग्रहण  
हानपर भी नोर्कर्मपुद्गलकोका ग्रहण नहीं हाता वह विग्रह है और इस विग्रहक साथ होनेवाली

शरीरप्ररोहणवीजमूल कामण शरीर कर्मैत्युच्यते । योगो वाऽऽ मनसवायवगणानिमित्त  
आत्मप्रदेशपरिस्पन्दः । कामणा वृत्तो योग कामयोगो विग्रहगतौ भवतीत्यथ । तत्र  
कर्मणि न देशान्तरसंक्रमश्च भवति ।

आह जीवपुद्गलानां गतिमास्कन्दता देशान्तरसंक्रम विमाकाशप्रदेशत्रयवृत्त्या  
भवति, उताविशेषणेत्यत आह—

अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥

लोकमध्यादारभ्य ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च आकाशप्रदशानां क्रमसन्निविष्टानां पठं क्ति  
श्रेणि इत्युच्यते । अनु शब्दस्मानुपूर्व्येण वृत्तिः । श्रेण रा'नुपूर्व्येणानुश्रेणीति जीवानां  
पुद्गलानां च गतिभवतीत्यथ । अनधिभूतानां पुद्गलानां कथं ग्रहणमिति चत् ? गति  
ग्रहणात् । यदि जीवानामत्र गतिरिच्छास्यद् गतिग्रहणमनयकम् अधिधारात्तस्मिद्धे ।  
उत्तरत्र जीवग्रहणाच्च पुद्गलसंप्रत्ययः । ननु चन्द्रादीनां ज्यातिष्काणां मेरुप्रन्धिणा  
काश विद्याधरादीनां च विद्यगतिगतिरपि दृश्यते तत्र किमुच्यते 'अनुश्रेणि गति इति ?

गतिका नाम विग्रहगति है । सब शरीरकी उत्पत्तिक मूलकारण कामण शरीरको कम कहत  
हैं । तथा कथमवर्गणा मनोवगणा और वायवगणाक निमित्तस हानकारण आत्मप्रदेशके हृत्त  
चरनको योग कहत हैं । कम च निमित्तस जा योग होता है वह कामयोग है । वह विग्रहगतिमें होता है  
यह उक्त कथनका तात्पर्य है । इसस नूतन कर्मका ग्रहण और एक देशस दूसर देशमें गमन' होता है ।

गमन करनेवाले जीव और पुद्गलका एक देशस दूसर देशमें गमन आकाशप्रदेशकी पंक्तिप्रमस  
होता है या इसका बिना होता है अब इसका खुलासा करनेके लिय आगेका सूत्र कहत हैं—

गति श्रेणिके अनुमार होती है ॥ २६ ॥

लोकक मध्यस एकर ऊपर नीचे और तिरछे त्रमस स्थित आकाशप्रदेशोंकी पंक्तिको श्रेणि कहत  
है । अनु शब्द मानुपूर्वी अर्थमें सममित है । इसलिये अनुश्रेणि' का अर्थ श्रेणिकी आनुपूर्वीमें  
होता है । इस प्रकारकी गति जीव और पुद्गलकी होती है यह इसका भाव है ।

शका—पुद्गलका अधिकार न हानस यहाँ उनका ग्रहण कम है सकता है ?

मसाधाम—सूत्रम गतिपत्तका ग्रहण किया है इसमें मिथ्य हुआ कि अनधिभूत पुद्गल भी यहाँ  
बिबदित है । यदि जीवकी गति ही इच्छा होती तो सूत्रमें गति पत्तक ग्रहण करनेकी आवश्यकता न  
थी क्याकि गति पत्तका ग्रहण अधिकारम मिथ्य है । दूसर अर्थ सूत्रमें जीव पदका ग्रहण किया है  
इसलिये इस सूत्रम पुद्गलकी भी ग्रहण इच्छा है यह जान होता है ।

शका—चन्द्रमा आदि ज्यातिपिमाकी और मरुकी प्रन्धिणा करत समय विद्याधराकी विद्यगति  
गति दली जाती है तसलिये जीव और पुद्गलकी अनुश्रेणि गति होती है यह किन्तिक्य कहा ?

ज्ञानात्मकत्वावतिप्रसङ्ग । आहारान्विषयामिलाय सञ्जेति चेत् ? तुल्यम् । तस्मात्स-  
मनस्का इत्युच्यते । एव च कृत्वा गर्भण्डजमूर्च्छितसुपुप्त्याद्यवस्थासु हिताहितपरीक्षा-  
भावेऽपि मनःसंश्लेषानात्सञ्चितस्वमुपपन्न भवति ।

यदि हिताहितादिविषयपरिस्पन्द प्राणिनां मनःप्रणिधानपूर्वक । अथामि  
२ नवधरीरग्रहण प्रत्यागूर्णस्य विधीणपूर्वमूर्तेनिमनस्कस्य यत्कम तत्कुत इत्युच्यते—

विग्रहगतौ कर्मयोग ॥२५॥

विग्रहो दह । विग्रहार्या गतिविग्रहगति । अथवा विरुद्धो ग्रहो विग्रहो व्याघात<sup>१</sup> ।  
कर्मादानेऽपि नोर्कर्मपुद्गलादाननिरोध इत्यर्थ । विग्रहेण गतिविग्रहगति । सर्वे

प्राणी ज्ञान स्वभाव होनस सबको सञ्जीवनका प्रसंग प्राप्त होता है । यदि आहारादि विषयोंकी अग्नि  
१ लापाको सज्जा कहा जाता है तो भी पहलेके समान दोष प्राप्त होता है । अर्थात् आहारादि विषयक  
अग्निलापा सबके पाई जाती है इसलिये भी सबको सञ्जीवनका प्रसंग प्राप्त होता है । चूँकि य दोष  
न प्राप्त हो अतः सुनमें समनस्का यह पदरखा है । इससे यह लाभ है कि गर्भज अण्डज मूर्च्छित और  
सुपुप्ति आदि अवस्थाओंमें हिताहितकी परीक्षाके न होनपर भी मनक सम्बन्धसे सञ्जीवना दन  
जाता है ।

२ विधोपार्थ—प्रायः एकस्त्रिय आदि प्रत्येक जीव अपन इष्ट विषयमें प्रवृत्ति करता है और अगिष्ट  
विषयस निवृत्त होता है फिर भी मनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है सो इसका कारण यह है  
कि तुलनात्मक अध्ययन लोक परलोकका विचार हिताहितका विवेक आदि कार्य उस है जो मनके  
बिना नहीं हो सकत । इसीसे मनकी स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार की गई है । यह मन जिनक होता है व  
सञ्जी होते हैं अन्य नहीं । जीवोंका सञ्जी और असञ्जी यह सब पञ्चेन्द्रिय जीवोंमें ही पाया जाता है ।  
३ अन्य एकेन्द्रियस लेकर चतुरिन्द्रिय तकक जीव तो असञ्जी ही होत हैं । अर्थात् उनक मन न होम स  
उक्त प्रकारक ज्ञानस बन्धित रहत है ।

यदि जीवोंक हित और अहित आदि विषयक क्रिय क्रिया मनक निमित्तसे होती है तो जिसन  
पूर्व शरीरको छोड़ दिया है और जो मनरहित है एसा जीव जब मृतन शरीरको ग्रहण करनके क्रिय  
उद्यत होता है तब उमके जो क्रिया होती है वह किस निमित्त स हाती है यही बतलानक क्रिये आगका  
४ सूच कहत है—

विग्रहगतिमें कर्मयोग होता है ॥ २५ ॥

विग्रहका अर्थ दह है । विग्रह अर्थात् शरीरक क्रिय जो गति होती है वह विग्रहगति है । अथवा  
विग्रहग्रहका विग्रहकहत है जिसका अर्थ व्याघात है । तात्पर्य यह है कि जिस अवस्थामें कर्मके ग्रहण  
होनपर भी नोर्कर्मरूप पुद्गलोंका ग्रहण नहीं होता वह विग्रह है और इस विग्रहक साथ होनवाकी

वचनम् । ननु तत्रैव देशकालनियम उक्त ? न अतस्तत्सिद्धे ।

यद्यसङ्गस्यात्मनोऽप्रतिबन्धेन गतिरालोकान्तादवध तत्राला प्रतिशायते सदेहस्य पुनर्गति किं प्रतिबन्धिनी उत मुक्तात्मवदित्यत आह—

विग्रहवती च ससारिण प्राक् चतुर्भ्यः ॥२८॥

कालावधारणाय 'प्राक्चतुर्भ्यः' इत्युच्यते । 'प्राग्' इति वचन मर्यादायम् चतुर्था ५  
त्समयात्प्राग्विग्रहवती गतिर्भवति न चतुर्थे इति । कुत इति चेत् ? सर्वोत्कृष्टविग्रहनिमित्त  
निष्कृतक्षेत्रे उत्पित्सु प्राणी निष्कृतक्षेत्रानुपूर्व्यनुश्रेण्यभावादिपुगत्यभावे निष्कृतक्षेत्रप्रापण  
निमित्ता त्रिविग्रहां गतिमारभत नोर्ध्वाम् तथाविधापपादक्षेत्राभावात् । 'च' शब्द  
समुच्चयाय । विग्रहवती चाविग्रहा चेति ।

समाधान—पूव सूत्रमें कहींपर बिशेषिगति भी होती है इस बातका ज्ञान करानक लिय यह सूत्र १०  
रखा है ।

धका—पूवसूत्रकी टीकामें ही वचनियम और कालनियम कहा है ?

समाधान—नहीं क्योंकि उसकी सिद्धि इस सूत्रस होती ह ।

मुक्तात्माकी श्लोकपयन्त गति बिना प्रतिबन्धक नियत समयके भीतर होती है यदि एसा आपका  
निश्चय है तो अब यह बतलाइय कि सबह आत्माकी गति क्या प्रतिबन्धक साथ होती है या मुक्तात्मके १५  
समान बिना प्रतिबन्धक होती ह इसी बातका ज्ञान करानक लिय आगका सूत्र कहत हैं—

ससारी जीवकी गति विग्रहरहित और विग्रहवाली होती है । उसमें विग्रहवाली  
गति चार समय से पहले तीन समय तक होती है ॥ २८ ॥

कालका अवधारण करनक लिय प्राक्चतुर्भ्यः पद दिया ह । प्राक् पद मर्यादा निश्चित करनके  
लिय लिया है । चार समयस पहले मोड़वाली गति होती है चौथे समयमें नहीं यह इसका तात्पर्य ह । २०

धका—मोड़वाली गति चार समयसे पूर्व अर्थात् तीन समय तक ही क्यों होती ह चौथ समयमें  
क्या नहीं होती ?

समाधान—निष्कृत क्षत्रमें उत्पन्न होनवाल जीवको सबसे अधिक मोड़ करने पड़ते ह क्योंकि  
यहाँ आनुपूर्वीस अनुद्यणिका अभाव होनस इपुगति नहीं हो पाती । अत यह जीव निष्कृत क्षत्रको प्राप्त  
करनक लिय तीन मोड़वाली गतिका आरम्भ करता है । यहाँ इसस अधिक मोड़की आवश्यकता नहीं २५  
पड़ती क्योंकि इस प्रकारका कोई उपपादक्षत्र नहीं पाया जाता अत मोड़वाली गति तीन समय तक  
ही होती है चौथ समयमें नहीं जाती ।

'च' शब्द समुच्चय क लिय दिया ह । जिसस विग्रहवाली और विग्रहरहित दोनों गतियोंका  
समुच्चय होता ह ।

कालदेशनियमोऽत्र वेदितव्य । तत्र कालनियमस्तावज्जीवानां मरणकाले भवान्तरसक्रम  
मुन्तानां चोर्ध्वगमनकाले अनुश्रेण्येव गति । देशनियमोऽपि ऊर्ध्वलोकादधोगति, अधो-  
लोकादूर्ध्वगति, तिर्यंग्लोकादधोगतिरूर्ध्वा वा तत्रानुश्रेण्येव । पुद्गलानां च या लोकान्त  
प्रापिणी सा नियमादनुश्रेण्येव । इतरा गतिभजनीया ।

पुनरपि गतिविशेषप्रतिपत्त्यमाह—

अविग्रहा जीवस्य ॥२७॥

विग्रहो व्याघात कौटिल्यामरणस्य । स यस्यां न विद्यतेऽसावविग्रहा गति ।  
कस्य ? जीवस्य । कीदृशस्य ? मुक्तस्य । कथं गम्यते मुक्तस्येति ? उत्तरसूत्र सप्पारि  
ग्रहणादिह मुक्तस्येति विज्ञायते । ननु च अनुश्रेणि गति ह्यनेनैव श्रेण्यन्तरसक्रमाभावो  
व्याख्यात । नार्थोऽनेन ? पूर्वसूत्रे विश्रेणिगतिरपि क्वचिदस्तीति शायनायमिव

समाधान—यहाँ कालनियम और देशनियम जानना चाहिये । कालनियम यथा—मरणक  
समय जब जीव एक भवको छोड़कर दूसर भवक स्थि गमन करत है और मुक्त जीव जब ऊर्ध्व गमन  
करत है तब उनकी गति अनुश्रेणि ही होती है । देशनियम यथा—जबकोई जीव ऊर्ध्वलोकस अधोलोकके  
प्रति या अधोलोकस ऊर्ध्वलोकके प्रति आता जाता है । इसी प्रकार तिर्यग्लोकस अधोलोकके प्रति या  
ऊर्ध्वलोकके प्रति आता है तब उस अवस्थामें गति अनुश्रेणि ही होती है । इसी प्रकार पुद्गलोंकी जो  
लोकके अन्तको प्राप्त करानवाली गति होती है वह अनुश्रेणि ही होती है । हाँ इसके अतिरिक्त जो  
गति हाँती है वह अनुश्रेणि भी होती है और विश्रेणि भी । किसी एकप्रकारकी होनका कोई नियम नहीं है ।

अब फिर भी गति विग्रहका ज्ञान करानक स्थिय आगका सूत्र कहत ह—

मुक्त जीवकी गति विग्रहरहित होती है ॥ २७ ॥

विग्रहका अर्थ व्याघात या कुटिलता है । जिस गतिमें विग्रह अर्थात् कुटिलता नहीं होती वह  
विग्रहरहित गति है ।

शका—यह किसक होती है ?

समाधान—जीवक ।

शका—किस प्रकारक जीवक ?

समाधान—मुक्त जीवक ।

शका—यह किस प्रमाणम आता जाता है कि मुक्तजीवक विग्रहरहित गति होती है ?

समाधान—अगम सूत्रम संमारी पत्रका ग्रहण किया है इससे ज्ञान होता है कि इस सूत्रमें मुक्त  
जीवके विग्रहरहित गति की गई है ।

शका—अनुश्रेणि गति इस सूत्रम ही यह ज्ञान हो जाता है कि एक श्रेणिते दूसरी श्रेणिमें सक्रमण  
नहीं होता फिर इस सूत्रक सिद्धाने क्या प्रयोजन है ?

एव गच्छतोऽभिनवमूर्त्यन्तरनिवृत्ति प्रकारप्रतिपादनायमाह—

सम्मूच्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

त्रिवु लोकेषूर्ध्वमघस्तिथक च दहस्य समन्ततो मूच्छन सम्मूच्छनमवयवप्रकल्प  
नम् । स्त्रिया उदरे शुक्रोष्णितयोगरण मिश्रण गभ । मानुषभुनताहारगरणाद्वा गभ ।  
उपेरय पद्भतेऽस्मिन्निति उपपाद । देवनारकोत्पत्तिस्थानविशेषसञ्ज्ञा । एते त्रय २  
ससारिणां जीवानां जन्मप्रकारा शुभाशुभपरिणामनिमित्तकमभेदविपाककृता ।

अथाधिकृतस्य ससारविद्ययोपभोगोपलब्ध्यधिष्ठानप्रवणस्य जन्मनो योनिवि  
कल्पा वक्तव्या इत्यत आह—

सच्चित्तस्तीतसङ्घता सेतरा मिश्राद्वकशस्तघोनय ॥३२॥

आत्मनश्चतयविशेषपरिणामश्चित्तम् । सह चित्तेन यत्स इति सचित्त । १०  
शीत इति स्पष्टविशेष शुक्लाविवबुभयवचनत्वात्तद्युक्त द्रव्यमप्याह । सम्मग्नवृत्त सवृत् ।

इस प्रकार अथ गतिको गमन करनेवाले जीवक मूतन दूसरे पर्यायको उत्पत्तिके सर्वोक्तो विस्तारानेक  
किय भागेका सूत्र कहत हैं—

सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद ये ( तीन ) जन्म हैं ॥ ३१ ॥

तीनों शोकोमें ऊपर नीचे और तिरछ दहका चारों ओरसे मूच्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूर्च्छन १५  
है । इसका अभिप्राय है चारों ओरसे पुद्गलोंको ग्रहण कर अवयवोंकी रचना होना । स्त्रीके उदरमें  
शुक्र और शोणितक परस्पर गरण अर्थात् मिश्रणको गर्भ कहते हैं । अथवा माताक द्वारा उपभुक्त  
आहारके गरण होनाको गर्भ कहत है । प्राप्त होकर जिसमें जीव हल्म-चलन करता है उस उपपाद  
कहते हैं । उपपाद यह देव और नारकियोंके उत्पत्तिस्थान विशेषकी सज्ञा है । ससारी जीवोंके ये  
तीनों जन्मके भव हैं जो शुभ और अशुभ परिणामोंके निमित्तसे अनेक प्रकारके कर्म बधत हैं, उनका २०  
फल है ।

यहाँतक ससारी विद्ययोंके उपभोगकी प्राप्तिमें आभारमूत जन्मोंका अधिकार था । अब हमकी  
योनिओंके भेद कहते चाहिये इसलिये आगेका सूत्र कहत हैं—

सच्चित्त, शीत और सङ्घत तथा इनकी प्रतिपन्नमूत अक्षिप्त उष्ण और विद्वत तथा मित्र  
अर्थात् सच्चित्ताक्षिप्त, शीतोष्ण और सङ्घतविद्वत ये उसकी अर्थात् जन्मकी योनियाँ हैं ॥३२॥ २५

आत्माके अत्यन्तबिभक्ष्य परिणामको चित्त कहते हैं । जो उसके साथ रहता है वह सचित्त  
कहलाता है । शीत यह स्पर्शका एक भव है । शुक्ल आदिके समान यह द्रव्य और गुण दोनोंका वासी  
है अतः शीतगुणवाला द्रव्य भी शीत कहलाता है । जो भले प्रकार ढका हो वह सवृत् कहलाता है ।

(१)-निवृत्तिव्ययप्रकाशम् । (२) शुक्लशोणित-ना ना वि १ मु । (३) माभोपभुक्त-म् ।  
माभोपयस्तदि १, वि २ (४) उपेत्येत्य-म् । (५) अस्याक्षिप्त-आ वि १ वि २ । (६) अयो वक्तव्य  
आ ता ना । ता ना । (७) सम्मग्नवृत्त सवृत् इति आ वि १ वि २ ।

विग्रहवत्या गते कालोज्वघृत । अविग्रहाया कियान् काल इत्युच्यते—

एकसमयाऽविग्रहा ॥२९॥

एक समयो यस्या सा एकसमया । न विद्यते विग्रहो यस्या सा अविग्रहा ।  
गतिमत्ता हि जीवपुद्गलानामध्याघातेनकसमयिकी गतिरालोभान्तावधीति ।

२ अनादिकर्मव घसन्ततो मिथ्यादशनादिप्रत्ययवशात्कर्माध्याददानो विग्रहगता  
व्यपाहारक प्रसक्तस्ततो नियमाधमिदमुच्यते—

एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक ॥३०॥

अधिकारात्समयाभिसम्बन्ध । 'वा'पदो विकल्पाध । विकल्पश्च यथेच्छाति  
सग । एक वा द्वौ वा त्रीन्वा स मयाननाहारको भवतीत्यथ । त्रयाणा शरीराणा पष्णा  
१ पर्याप्तीना माग्यपुद्गलग्रहणमाहार । तदभावादानाहारक । कर्मादान हि निरन्तर  
धार्मणशरीरसद्भावे । उपपादक्षत्र प्रति ऋज्व्या गतौ आहारक । इतरेषु त्रिषु समयपु  
अनाहारक ॥

विग्रहवाली गतिका काल मालूम पड़ा । अब विग्रहरहित गतिका कितना काल है इस बातका  
ज्ञान करानेके लिय आगका सूत्र कहत है —

१५ एक समयवाली गति विग्रहरहित होती है ॥ २९ ॥

जिस गतिमें एक समय लगता है वह एक समयवाली गति है । जिस गतिमें विग्रह अर्थात् मोटा  
नहीं रूना पड़ता वह मोटारहित गति है । गमन करनेवाले जीव और पुद्गलोंके व्याप्रातके अभावमें  
एक समयवाली गति लोकपर्यन्त भी होती है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

२ कर्मबन्धकी परंपरा अनादिकाहीन है अतः मिथ्यादशन आदि बन्ध कारणोंके बधस कर्मोंके  
ग्रहण करनेवाला जीव विग्रहगतिमें भी आहारक प्राप्त होता है अतः नियम करनेके लिये आगका  
सूत्र कहत है—

एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है ॥ ३० ॥

समयका अधिकार होमसे यहाँ उसका सम्बन्ध होता है । 'वा'पदका अर्थ विकल्प है और विकल्प  
जहाँ तक अभिप्रेत है वहाँ तक लिया जाता है । जीव एक समय तक दो समय तक या तीन समयतक  
२५ अनाहारक होता है यह इससूत्रका अभिप्राय है । तीन शरीर और छहपर्याप्तियोंके योग्य पुद्गलोंके ग्रहण  
करनेको आहार करत है । जिन जीवोंके इन प्रकारका आहार नहीं होता वे अनाहारक कहलाते हैं ।  
किन्तु धार्मण शरीरक सद्भाबमें कर्मके ग्रहण करनेमें अन्तर नहीं पड़ता । जब यह जीव उपपादक्षत्रके  
प्रति ऋजुगतिमें रहता है तब आहारक होता है । बाकीके तीन समयमें अनाहारक होता है ।

(१) समबोज्या एक-वा वि १ । समबोज्या सा एक-वि २ ता ना । (२)-ग्रहोज्या;  
अधि-भा वि १ ता ना । (३) 'काकाधनोत्पत्तसंधयोगे ।-वा १, १ ३ ।

एष गच्छतोऽभिनवमूत्पन्तरनिवृत्तिप्रकारप्रतिपादनायमाह—

सम्मूच्छनगर्भोपपादा जन्म ॥३१॥

त्रिपुलाकपूष्वमघस्तियक च देहस्य समन्ततो मूच्छन सम्मूच्छनमवयवप्रकल्प  
नम् । स्त्रिया उदरे शुक्राणितयोगरण मिश्रण गम । मानुषभुक्ताहारगरणाद्वा गम ।  
उपत्य' पद्यतेऽस्मिन्निति उपपाद । देवनारकोत्पत्तिम्भानविशेषसञ्ज्ञा । एते त्रय ३  
ससारिणां जीवाना जमप्रकारा शुभाशुभपरिणामनिमित्तकर्मभेदविपाककृता ।

अथाधिमृतस्य ससारविपमापभोगोपलब्ध्यधिष्ठानप्रवणस्य जमनो योनिवि  
कस्या' वन्तव्या इत्यत आह—

सच्चित्तशीतसञ्चुता' सेतरा मिभाद्वचकशस्तद्योनय' ॥३२॥

आत्मनश्चतन्यविशेषपरिणामद्विचक्षम् । सह चित्तेन वतत इति सचित्त । १०  
शीत इति स्पशविशेष' शुक्लादिवदुभयवचनत्वात्तद्युक्त द्रव्यमप्याह । 'सम्यग्वृत्' सञ्चुत ।

इस प्रकार अय गतिकी गमन करनबाल जीवक नूतन दूसरे पर्यायकी उत्पत्तिक मर्दोंकी विखलानके  
स्मिय आगेका सूत्र कहत है—

सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद ये ( तीन ) जन्म हैं ॥ ३१ ॥

तीनों लोकोंमें ऊपर, नीचे और तिरछ रहना चारों आरस मूच्छन अर्थात् ग्रहण होना सम्मूर्च्छन १३  
है । इसका अभिप्राय है चारों ओरस पुद्गलोंको ग्रहण कर अवयवोंकी रचना होना । स्त्रीक उदरमें  
दुग्ध और क्षोषितक परस्पर गरण अर्थात् मिश्रणको गर्भ कहत हैं । अथवा माताक द्वारा उपमुक्त  
आहारक गरण होनको गर्भ कहत है । प्राप्त होकर जिसमें जीव हसन-बसन करता है उस उपपाद  
कहते हैं । उपपाद यह दब और नारकिमोंके उत्पत्तिस्थान विज्ञापकी सज्ञा है । ससारी जीवोंके ये  
तीनों जमक भव है जो शुभ और अशुभ परिणामोंके निमित्तस भनक प्रकारक कर्म वैद्यत हैं, उनक २  
फल है ।

यहाँतक समारी विपयोंके उपभोगकी प्राप्तिमें आधारभूत जन्मोंका अधिकार था । अब इसकी  
योनियोंके भव कहन चाहिये इसस्मिय आगेका सूत्र कहत है—

सच्चिद, शीत और सञ्चुत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त उष्ण और विद्वत तथा मिभ  
अर्थात् सच्चिदाचिदा, शीतोष्ण और सञ्चुतविद्वत ये उसकी अर्थात् जन्मकी योनियाँ हैं ॥३२॥ २५

आत्माक चतन्यविपयरूप परिणामकी चित्त कहत हैं । जो उसक साथ रहता है वह सचित्त  
कहनाता है । शीत यह स्पर्शका एक भव है । युक्त आदिक समान यह द्रव्य और गुण तैनोंका बाधी  
है अत शीतगुणबाला द्रव्य भी शीत कहलाता है । जो भन प्रकार ठका हो वह सञ्चुत कहलाता है ।

(१)—निवृत्तिजन्मप्रका-मु । (२) शुक्लशोषित आ ना रि १ मु । (३) माभोगमुक्त-मु ।  
माभोगयुक्त-रि १ रि २ (४) ज्येष्ठोत्पद्य-मु । (५) सञ्चुताधिष्ठा-प्रा रि १ रि २ । (६) कर्मो कल्पव्य-  
आ ता ना । ता ना । (७) सम्यग्वृत् सञ्चुत इति ना रि १ रि २ ।



सवृत इति दुरुपलक्ष्यप्रदश उच्यते । सह इतरवतन्त इति सेतरा । सप्रतिपक्षा इत्यर्थः । के पुनरितर ? अचित्तोष्णविवृता । उभयात्मको मिथः । सचित्ताचित्त शीतोष्णः सवृत विवृत इति । 'च' शब्दः समुच्चयार्थं मिथ्नाश्च योनयो भवन्तीति । इतरथा हि पूर्वोक्तानामेव विशेषण म्यात् । एकदा' इति वीप्साय । तस्य ग्रहण क्रममिथ्यप्रतिपत्त्ययम् । यद्यपि विज्ञायेत—सचित्तश्च अचित्तश्च शीतश्च उष्णश्च, सवृतश्च विवृतश्चेति । मय विज्ञायि—सचित्तश्च शीतश्चेत्यादि । 'तद्ग्रहण जमप्रकारप्रतिनिर्देशायम् । तेषां सम्मूर्च्छनादीनां जमनां योनय इति । त एते नव योनयो वेदितव्या । योनिजमनोरविशेष इति चेत् ? न आधाराधेयमदास्तदमद । त एत सचित्तादयो योनय आधारा । आधेया जमप्रकारा । यत सचित्तादियो यधिष्ठान आत्मा सम्मूर्च्छनादिना जमना शरीराहारेन्द्रियादियोग्या न्युद्गलानुपादत्ते । देवनारका अचित्तयोनयः । तया हि योनिरुपपाददशपुद्गलप्रचयोऽ-चित्तः । गभजा मिथ्ययोनयः । तया हि मातुरुदरे शुक्रशोणितमचित्तम् तदात्मना चित्तवता मिथ्यणामिथ्य'योनिः । सम्मूर्च्छनजास्त्रिविकल्पयोनयः । केचित्सचित्तयोनयः ।

यहाँ सवृत ऐसे स्थानको कहते हैं जो देसनम न आव । इतरका अर्थ अय ह और इनके साथ रहनेवाले सेतर कहे जाते ह ।

१२ प्रश्न—य इतर कौन है ?

समाधान—अचित्त उष्ण और विवृत ।

जो उभयरूप होत ह वे मिथ्य कहलाते हैं । यथा—सचित्ताचित्त शीतोष्ण और सवृतविवृत । सूत्रमें 'च' शब्द समुच्चयवाची ह । जिससे योनियाँ मिथ्य भी होती हैं' इसका समुच्चय हो जाता है । यदि 'च' पदका यह अर्थ न लिया जाय ताँ मिथ्यपद पूर्वोक्त पदोंका ही विशेषण हो जाता । 'एकदा' यह पद वीप्सावाची है । सूत्रमें इस पदका ग्रहण क्रम और मिथ्यका ज्ञान करानक सिद्धे किया ह । जिससे यह ज्ञान हो कि सचित्त अचित्त शीत उष्ण सवृत विवृत इस क्रमसे योनियाँ भी हैं । यह ज्ञान न हो कि सचित्त शीत इत्यादि क्रमसे योनियाँ भी हैं । जमक मवाके दिखलानक सिद्धे सूत्रम तत्' पदका ग्रहण किया ह । उन सम्मूर्च्छन आवि जन्मोकी ये नौ योनियाँ हैं यह इसका भाव है ।

प्रश्न—योनि और जन्ममें कोई भव नहीं ?

१३ समाधान—मही क्योंकि आधार और आधारकके भवसे उनमें भेद है । य सचित्त आदिक योनियाँ आधार है और जन्मके भव आधार हैं क्योंकि सचित्त आदि यानिरूप आधारमें सम्मूर्च्छन आवि जन्मक द्वारा आत्मा शरीर, आहार और इन्द्रियोंके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है ।

यह और नारकियोंकी अचित्त योनि होती है क्योंकि उनके उपपाददशक पुद्गलप्रचयरूप योनि अचित्त है । गर्भजोंकी मिथ्य योनि होती है क्योंकि उनकी माताके उदरमें दूध और घोषित अचित्त होता है जिसका सचित्त माताकी आत्मासे मिथ्य है इससिद्धे यह मिथ्ययोनि है । सम्मूर्च्छनोंकी तीज

अन्ये अक्षित्तयानय । अपरे मिथयानय । सचित्तयोनय साधारणयरीरा । कुत ?  
परस्परश्रयत्वात् । इतरे अक्षित्तयानया मिथयानयश्च । शीताणयानया देवनायका ।  
तेषां हि उपपादस्यानानि कानिचिच्छीतानि कानिचिदुष्णानीति । उष्णयोनयस्तत्रस्का  
यिका । इतरे त्रिविकल्पयोनय । कचिच्छीतयोनय । कचिदुष्णयोनय । अपरे मिथ  
योनय इति । देवनायकचेन्द्रिया सवृत्तयानय । विमलन्द्रिया विवृतयानय । गभजा २  
मिथयानय । तद्भेदाच्चतुर्गोतिघतसद्वृत्तमस्या आगततो यन्तित्व्या । उक्तं च —

‘पिच्छिवरभाङ्गु सत्त य सद् वस भिर्यालिदिपसु छञ्चेव ।

सुरणिरयतिरिय सउरो चोद्दस मणुए सवसहस्सा ॥’

एवमेतस्मिन्नवयोनिभेत्स द्वादश त्रिविधजमनि सवप्राणमूनामनियमन प्रसक्तते तद  
वधारणायमाह—

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भं ॥३३॥

यज्जाण्वत्प्राणिपरिचरण विवृतमासशाणित तज्जरायु । यज्ञवत्त्वक्सदृशामु

प्रकारका योनियां हाती ह । किन्हीका मक्षित यानि होती ह किन्हीकी अक्षित्तयोनि हाती ह और  
किन्हीकी मिथयानि हाती है । साधारण पाण्डवा जीवाकी मक्षित यानि हाती ह क्योंकि य एक  
दूनरक आश्रयम रहत ह । इनस अतिरिक्त भय समुच्छत जीवाक अक्षित और मिथ यानों प्रकारकी १२  
योनियां होती ह । एक और नायकियाकी पीत और उष्ण दानों प्रकारकी यानियां हाती है क्योंकि  
इनक कुछ उपपात्स्यान पीत है और कुछ उष्ण । तत्रस्कायिक जीवाकी उष्णयानि हाती ह । इनम  
अतिरिक्त जीवाका यानियां तीन प्रकारकी हाती ह । किन्हीकी शीत यानियां हाती ह किन्हीकी  
उष्णयानियां हाती ह और किन्हीकी मिथयानियां हाती हैं । एक नायकी और एकन्द्रियाकी मवृत्त  
यानियां हाती ह । विमलन्द्रियोंकी विवृत यानियां हाती है । तथा गभजाकी मिथ योनियां हाती ह । २०  
इन सब योनियाके बीरगमी लाज भू ह यह वान आगमम जानती चाहिय । कदा भी ई—

‘नित्यनिगोत्रे इतरनिगोत्रे पृथिवीकायिक अल्कायिक अन्निकायिक और वायुकायिक जीवाका  
साज सात साज यानियां ह । बुधोंकी दम लाज यानियां हैं । विमलन्द्रियाकी मिलाकर छह साज  
योनियां ह । एक नायकी और नियन्त्रिकाकी चार चार साज यानियां हैं तथा मनुष्योंका बीरह साज  
यानियां ह ।

इस प्रकार नौ मानियाम युक्त तीन जन्म सब जीवाक अनियमम प्राप्त हुए अथ निष्पय  
व्यक्तक क्रिय आगका मूत्र कहत ह—

जरायुज, अण्डज और पोत जीवोंका गर्भजन्म हाता ई ॥ ३३ ॥

जा जामक समान प्राणियाका आकरण है और जा मान और शाणितम बना ह उस जरायु बरत

पाप्तकाठिन्य शुक्रशोणितपरिवरण परिमण्डल तदण्डम् । किञ्चित्परिवरणमन्तरेण परिपूर्णवियवो योनिनिगतमात्र एव परिस्पन्दादिसामर्थ्योपेत पोत । जरायु जाता जरायुजा । अण्डे जाता अण्डजा । जरायुजाश्च अण्डजाश्च पोताश्च जरायुजाण्डजपोता गमयोनय ।

५ यद्यमीपा जरायुजाण्डजपोताना गर्भोऽवधिष्यते अपोपपाद केषां भवतीत्यत आह—

देवमारकाणामुपपाद ॥३४॥

दवाना नारकाणां चोपपादो जम वेदितव्यम् ।

अथान्येषां किं जमेत्यत आह—

क्षोषार्थां सम्मूच्छनम् ॥३५॥

गमजभ्य औपपादिकभ्यश्चान्ये क्षोषा । सम्मूर्च्छन जमेति । एते त्रयोऽपि योगा नियमार्था । उभयतो नियमश्च द्रष्टव्यः । जरायुजाण्डजपोतानामव गम । गम एव च जरायुजाण्डजपोतानाम् । देवनारकाणामपोपपाद । उपपाद एव च देवनारकाणाम् । क्षोषाणामेव सम्मूर्च्छनम् । सम्मूर्च्छनमेव क्षोषाणामिति ।

१५ है । जो मलकी त्वचाक समान कठिन है गोसू है और जिसका आवरण शुक्र और शोणितस बना है उस अण्ड कहत है । जिसक सब अवयव बिना आवरणक पूर हुए है और जो योनिसे निकलते ही हस्त चलन आदि सामर्थ्य युक्त है उसे पोत कहत है । इनमें जो जरस पदा होत है व जरायुज कहलात है । जो अण्डोसे पत्ता हात है वे अण्डज कहलाते है । सूत्रमें जरायुज अण्डज और पोत इनका इन्द्र समाप्त है । य सब गमकी योगिया है ।

२ यदि इस जरायुज अण्डज और पोत जीवोंका गर्भ जम निर्णीत होता है तो अब यह बतलायम कि उपपाद जन्म किन जीवोंका होता है अत इस बातका ज्ञान करानक लिये आगका सूत्र कहत है—  
द्वय और नारकियोंका उपपाद जम होता है ॥ ३४ ॥

इतम अतिरिक्त अन्य जीवोंका कौनसा जन्म होता है । अब इस बातका ज्ञान करानक लिये आगका सूत्र कहत है—

२५ अथ सब जीवोंका सम्मूर्च्छन जन्म होता है ॥ ३५ ॥

इस सूत्रम 'गण' पदम के जीव लिये गये है जो गर्भ और उपपाद जन्ममे नहीं पदा होत । इनक सम्मूर्च्छन जम जाता है । य तोना ही सूत्र नियम करत है । और यह नियम तोना औरम जानना चाहिये । यथा—गर्भ जन्म जगमज अण्डज और पोत जीवोंका ही जाता है । या जरायुज अण्डज और पोतजीवोंक गमजन्म ही जाता है । उपपाद जन्म द्वय और नारकियोंका ही जाता है या देव और नारकियोंक उपपाद जन्म ही जाता है । सम्मूर्च्छन जन्म गण जीवोंका ही जाता है या गण जीवोंक सम्मूर्च्छन जन्म ही जाता है ।

तेषां पुनः सप्सारिणां त्रिविधज मनामाहितवहुविकल्पनवयोनिभेदानां शुभाशुभ  
नामकमविषाकनिवृत्तित्वादि बन्धकलानुभवनाधिष्ठानानि शरीराणि कानीत्यत आह—

औदारिकवक्रियिकाहारकृतजसकामणानि शरीराणि ॥३६॥

विधिष्ठनामकर्मोदयापास्तवृत्तीनि शीयन्त हति शरीराणि । औदारिकादि  
प्रभृतिविशेषोत्प्राप्तवृत्तीनि औदारिकादीनि । उदार स्वल्पम् । उदार भव उदार  
प्रयाजनमस्यति वा औदारिकम् । अप्गुणस्वययागादकानकाणुमहच्छरीरविविधकरण  
विनिष्पा, सा प्रयाजनमस्यति वक्रियिकम् । सूक्ष्मपत्न्यानिर्जानाधममयमपरिजिहीषया वा  
प्रमत्तमयतेनाह्वयत निवृत्तयत तदित्याहारकम् । यत्तज्जानिमित्त तजमि वा भव तत्तज  
मम् । कामणां वाय कामणम् । सर्वेषां कमनिमित्तत्वपि ऋद्धिवशाद्विधिष्ठविषय वृत्ति  
रवमया ।

यथौदारिकस्यन्द्रियशुष्यस्त्विदमेतरेषां मस्मान्न भवतीत्यत आह—

परम्पर सूक्ष्मम् ॥३७॥

पर शब्दस्त्वानवायवृत्तित्वपि विवक्षानो व्यवस्थापगति । पुण्यभूतानां शरी

जा तीन जमान पंदा हात ह और जिनका भजन अवात्तर भवाम युक्त नौ योनिवां ह उन ममारी  
जीवाक पुत्र और भ्रगुभ नामकमक उत्पन्न निष्पन्न शत और बन्धकलानु अनुभव कगतमं आपागभूत  
शरीर विन्तन है । अब हमें जानना नियन्त्रक निय आगवा मृत् कहत ह—

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कामण ये पांच शरीर हैं ॥ ३६ ॥

जा बिनाय नाम काम उत्पन्न प्राप्त होकर दीयन्ते अर्थात् गलत ह व शरीर ह । मय ओदा  
गिन आदि पांच भेद ह । य औदारिक आदि प्रभृति विविध उदयम हात ह । उदार और पूल य  
गवायवासी शब्द ह । उदार शब्द हातरूप अथवा प्रयाजनरूप अर्थमें ठक प्रत्यय हातर औदा  
रिक शब्द बनता ह । अक्षिमा आदि आठ गणांक लक्ष्यक मन्वपम एक अनक छाटा बडा  
आदि माना प्रवाग्वा शरीर करना विनिष्पा ह । यह विनिष्पा त्रिम शरीरका प्रयोजन ह यह  
विनिष्पा शरीर ह । गुह्य पत्न्यका ज्ञान करनेक क्रिय या भयममनो दूर करनेकी इच्छाया  
प्रमत्तगयत त्रिम शरीरकी रचना करता ह वह आहारक शरीर ह । जा शक्तिवा काय ह या  
तत्रम उत्पन्न हाता ह उस तत्रम शरीर कहत ह । कर्मोत्ता वाय कामण शरीर ह । यद्यपि सब शरीर  
पमर निमित्तम हात ह ता भी ऋद्धि विधिष्ठ शरीरका कामण शरीर कहा ह ।

त्रिम प्रकार शक्त्या औदारिक शरीरका ज्ञानही ह उस प्रकार तत्र शरीरका ज्ञान मना ज्ञाना ?  
अब हम जानना नियन्त्रक निय आगवा मृत् कहत ह—

आग आगवा शरीर सूक्ष्म है ॥ ३७ ॥

पर शब्दक अर्थ अथ ह ता भी यही विवक्षाम व्यवस्थाप अथवा ज्ञान हाता ह । यद्यपि शरीर

(१) - कर्तव्यशरीरक शरीरम् । मया मृ १ १ ११ । (२) उदारे कर्मोत्तित्वम् । उदार क ।

राणां सूक्ष्मगुणन भी पानिर्देश क्रियत परम्परमिति । औदारिकं स्पूलम् तत सूक्ष्म वैक्रियिकम् तत सूक्ष्म आहारकम् तत सूक्ष्म तजसम् तजसात्कार्मण सूक्ष्ममिति ।

यदि परम्पर सूक्ष्मम् प्रवेशतो ऽपि न्यून परम्पर हीनमिति विपरीतप्रतिपत्तिनिवृत्त्यर्थमाह—

प्रवेशतोऽसस्येयगुण प्राक्तेजसात् ॥३८॥

प्रदिश्यन्त इति प्रवेशा परमाणव । सख्यामतीतोऽसस्येय । असस्येयो गुणो ऽस्य तदिदमसस्येयगुणम् । कुत ? प्रदशत । नावगाहत । परम्परमित्यनुवृत्तेरा कामणात्प्रसङ्ग तत्रिवृत्त्यर्थमाह प्राक्तजसादिति । औदारिकादसस्येयगुणप्रवेश वैक्रियिकम् । वैक्रियिकादसस्येयगुणप्रदशमाहारकमिति । को गुणकार ? पत्योपमासस्येयभाग । यद्येव परम्पर महापरिमाण प्राप्नोति ? नैवम् षष्ठविशेषात्परिमाणभावाभावस्तूलनिचयाय पिण्डवत् ।

अलग अलग हे तां भी उनमें सूक्ष्म गुणका अन्वय है यह विस्मयनेक स्थि परम्परम् इस प्रकार बोध्या निर्देश किया है । औदारिक शरीर स्पूल ह । इसस वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म है । इसस आहारक शरीर सूक्ष्म है । इसस तैजस शरीर सूक्ष्म है और इसस कार्मण शरीर सूक्ष्म है ।

यदि य शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हें तो प्रवेशोंकी अपक्षा भी उत्तरोत्तर हीन होंग । इस प्रकार विपरीत ज्ञानका निराकरण करनक स्थि आगका सूत्र कहत ह—

तैजसे पूर्व तीन शरीरोंमें आगे आगेका शरीर प्रवेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है ॥ ३८ ॥

प्रवेश शब्दकी व्युत्पत्ति प्रदिश्यन्ते' होती है । इसका अर्थ परमाणु है । सख्यातीतको असस्येय कहत है । जिसका गुणकार असख्यात है वह असस्येयगुणा कहलाता है ।

शका—किसकी अपक्षा ?

समाधान—प्रदशोंकी अपक्षा अवगाहककी अपक्षा नहीं ।

पुन सूत्रमें परम्परम्' इस पदकी अनुवृत्ति होकर असस्येयगुणत्वका प्रसंग कार्मण शरीरत्व प्राप्त होता है अत उसकी निवृत्तिक स्थि सूत्रमें प्राक् तैजसात्' पद रखा है । अर्थात् तैजस शरीरत्व पूर्ववर्ती शरीरत्व य शरीर उत्तरोत्तर असख्यातगुण है । औदारिक शरीरस वैक्रियिक शरीर असख्यात गुणे प्रवेशबाला है ।

शका—गुणकारका प्रमाण क्या है ?

समाधान—पत्यका असख्यातका भाग ।

शका—यदि एसा ह तो उत्तरोत्तर एक शरीरसे दूसरा शरीर महापरिमाणबाधा प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि दम्बविशेषके कारण परिमाणमें भव नहीं होता ।

जैस रूईका डर और लोहेका गोला ।

अघातग्या किं ममप्रत्येगस्त्वमुतास्ति कश्चिद्विधेय इत्यत आह—

अमन्तगुणे परे ॥३९॥

प्रदघात इत्यनुवृत्ततं तनवमभिमम्बघ प्रियत—आहारकात्तजमप्रदेघातोऽन्त  
गुणम तजस्रान्नामण प्रदघाताऽन्तगुणमिति । का गुणकार ? अमव्यानामनन्तगुण मिद्धा  
नामनन्तभागे ।

तत्रतन्म्याच्छन्यकवमूर्तिमद्द्रव्यापचितत्वात्ममारिणा जीवम्याभिप्रतगतिनिराध  
प्रमद्ग इति ? तत्र किं कारणम् ? यस्मादुभ अप्यत—

अप्रतीघाते ॥४०॥

मूर्तिमता मूर्यन्तरण व्याघात प्रतीघात । स नास्व्यनयोरिधप्रताघाते मूधम  
परिणामात् । अयपिण्ड तजाऽनुप्रवधवत्तजमवामणयान्नास्ति वज्रपटलात्पि ध्याघात । १०  
ननु च यत्रियिवाहाग्वयागपि नास्ति प्रतीघात ? सवत्राप्रतीघाताऽभ विवक्षित । यथा

भागव हा परोरक प्रदा कया ममान ह या उरमे भी कुछ म ह । इमघातका बतलानक किय  
आगता मत्र कहत ह—

परवर्ती दो गरीर प्रसौंफी अपक्षा उपरोक्षर अनन्तगुणे ह ॥ ३९ ॥

पूव मूत्रम प्रदान इम पक्षी अनुवृत्ति हाती ह । त्रिमस तस प्रदा मम्बघ करना चाहिय कि १५  
भाहारक गरागम तत्रम गरीरक प्रदा अनन्तगुण ह और तत्रम परोरक कामण परोरक प्रदा अनन्त  
गण ह ।

घाता—गुणकार क्या ह ?

ममाघात—अमन्ताम अनन्तगुणा और मिद्धोरा अनन्तवा भाग गणकार ह ।

घाता—त्रिम प्रदा कीय भास्ति मय ज्ञानम का भी प्राणा दक्षित स्यातना नरी जा मचना ५  
उमा प्रदा मर्तो इध्यम उरचित हानक कारण ममाग जीवकी दक्षित गतिर निरापरा प्रगण  
प्रान हाता ह ?

ममाघात—दह का मय मर् ह क्याकि य हाता पारा—

प्रतीघातरहित ह ॥ ४० ॥

मय मर्तो पक्षपरा मय मर्तो पक्षपक हाग जा व्यापात हाता ह उम प्रतीघात कात्त ह । २५  
मय भा पाराका तस पाराका प्रतीघात मरी हाता मन्विय य प्रतीघात र्तिर ह । त्रिम पारा म  
हानम भति लाक गागम प्रदा कर जाती ह उमा पारा तत्रम और कामण गरागता मयागपारिभम  
भा व्यापात नरी हाता ।

घाता—वर्तविक और ज्ञातारक गरागता भा प्रदापात न । हाता कि पनी तत्रम और कामण  
पाराका । अमनापात क्या क्या

तजसकामणयारा लोभान्तात् मयत्र नास्ति प्रतीघात न तथा वक्रियिकाहारकया ।

आहृ निमतावानव विशाप उत कश्चिदन्योऽप्यस्तीत्याह—

अनादिसम्बन्धे च ॥४१॥

य शब्दो विकल्पाय । अनादिसम्बन्धे सात्त्विसम्बन्धे चेति । कायकारणभाव  
५ सन्तत्या अनादिसम्बन्धे विशापपेक्षया सादिसम्बन्धे च वीजवृक्षवत् । यथोदारिक-  
वक्रियिकाहारकाणि जीवस्य कादाचित्कानि न तथा तजसकामणे । नित्यसम्बन्धिनी  
हि ते आ ससारक्षयात् ।

त एत तजसकामणे किं कस्मच्चिदव भवत उताविशापणयत आहृ—

सवस्य ॥४२॥

१ 'सर्वं शब्दो निरवशेषवाची । निरवशेषस्य समारिणो जीवस्य ते द्वे अपि शरीरे  
भवत इत्यर्थः ।

अविशेषाभिधानात्तरीणरिकादिभिः सवस्य ससारिणो योगपद्येन सम्बन्धप्रसङ्ग  
सम्भविशरीरप्रदर्शनायमिदमुच्यते—

समाधान—इस सूत्रमें संबंध प्रतीघातका अभाव विवक्षित है । जिस प्रकार तजस और कामण  
११ शरीरका लोक पयन्त सबत्र प्रतीघात नहीं होता वही बात वक्रियिक और आहारक शरीरकी नहीं है ।  
इन दोनों शरीरोंमें क्या इतनी ही विशापता है या और भी कोई विशेषता है । इसी बातको बतला  
नक स्थिय अब आगका सूत्र कहते हैं—

आरमाके साथ अनादि सम्बन्धवाछे हैं ॥ ४१ ॥

सूत्रम य शब्द विकल्पको सूचित करनेके स्थिय दिया है । जिसस यह अर्थ हुआ कि तजस और  
२ कामण शरीरका अनादि सम्बन्ध है और सादि सम्बन्ध भी है । कायकारणभावकी परपराकी अपक्षा  
अनादि सम्बन्ध है और विणयकी अपक्षा सादि सम्बन्ध है । यथा बीज और वृक्ष । जिस प्रकार बीज  
रिक्त बैक्रियिक और आहारक शरीर जीवक क्वचिन्त् होत है उस प्रकार तजस और कामण शरीर  
नहीं हैं । ससारका क्षय होनेतक उनका बीवक साथ सदा सम्बन्ध है ।

य तजस और कामण शरीर क्या किसी बीवक ही होत हैं या सामान्यरूपस सबक होत हैं । इसी  
३ बातका ज्ञान करानके स्थिय आगका सूत्र कहते हैं—

तथा सब ससारी जीवोंके होते हैं ॥ ४२ ॥

यही सर्वं शब्द निरवशेषवाची है । व दोनों सब ससारी जीवोंके शरीर होत हैं यह इस सूत्रका  
तात्पर्य है ।

सामान्य कथन करनेस उन औदारिकादि शरीरोंके साथ सब ससारी जीवोंका एक साथ सम्बन्ध  
३ प्राप्त होता है अत एक साथ कितने शरीर सम्भव है इसबातको विवक्षानक स्थिय आगका सूत्र कहते हैं—

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्या चतुर्म्यं ॥४३॥

‘तत् शब्दं प्रकृतसजसकामणप्रतिनिर्देशाय । ते तजसकामणे आदिर्मेषां तानि तदादीनि । भाज्यानि विकल्प्यानि । आ कुत ? आ चतुर्म्यं । युगपदेकस्यारमन । कस्यचिद् द्वे तजसकामणे । अपरस्य त्रीणि औदारिकसजसकामणानि वक्रियिकतजस कामणानि वा । अन्यस्य चत्वारि औदारिकाहारकतजसकामणानीति विभाग क्रियते । पुनरपि तथा विशेषप्रतिपत्त्ययमाह—

निवृत्तभोगमन्त्यम् ॥ ४४ ॥

अन्ते भवमन्त्यम् । किं तत् ? कामणम् । इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुप

एक साथ एक जीवके तजस और कार्मणसे लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं ॥४३॥

सूत्रमें प्रकरणप्राप्त तजस और कामण शरीरका निवृत्त करतक स्थि तत् शब्द किया है । तदादि शब्दका समाससम्बन्ध अर्थ है—तजस और कार्मण शरीर जिनके आदिमें हे व । भाज्य और विकल्प्य य पर्यायवाची नाम हैं । तात्पर्य यह है कि एक साथ एक आत्माके पूर्वोक्त दो शरीरस लेकर चार शरीर तक विकल्प्य होत हैं । किसीके तजस और कामण य दो शरीर होत है । अथक औदारिक तजस और कामण या वक्रियिक तजस और कामण ये तीन शरीर होत हैं । किसी दूसरेके औदारिक आहारक तजस और कार्मण य चार शरीर होत हैं । इस प्रकार यह विभाग यहाँ किया गया है ।

विशेषात्—आग ४७वें सूत्रम तपोविशेषक तजस वक्रियिक शरीरकी उत्पत्तिक निवृत्त या क्रिया है इसलिय प्रश्न होता है कि किसी ऋद्धिधारी साथके एक साथ पाँच शरीरका सम्भाव माननमें क्या हानि है ? समाधान यह है कि एक साथ वक्रियिक और आहारक ऋद्धिकी प्रवृत्ति नहीं हाती इसलिये एक तो एक साथ आहारक शरीरक साथ वक्रियिक शरीरका अवस्थान नहीं बन सकता । दूसरे तपोविशेषक को विक्रिया प्राप्त होती है वह औदारिक शरीर सम्बन्धी ही विक्रिया है । उसे स्वतन्त्र वक्रियिक शरीर मानना उचित नहीं है । कर्मसाहित्यमें वक्रियिक शरीर नामकर्मक उदयस जो शरीर प्राप्त होता है उसकी परिगणना ही वैक्रियिक शरीरमें की गई है । इसलिय अधिकारी मत होनेस औदारिक और आहारक शरीरक साथ वक्रियिक शरीर नहीं बन सकता । यही कारण है कि एक साथ अधिकस अधिक चार शरीर बतलाय है ।

फिर भी उन शरीरोंका विशेष ज्ञान करानक स्थि आगेका सूत्र कहत है—

अन्तिम शरीर उपमोगरहित है ॥ ४४ ॥

जो अन्तम होता है वह अन्त्य कहलाता है ।

शका—अन्तका शरीर कौन है ?

समाधान—कार्मण ।



लक्ष्मिरूपभोग' । तदभावाश्लिरूपभोगम् । विग्रहगतौ सत्यामपि इन्द्रियलक्ष्मी द्रव्य  
न्द्रियनिवृत्त्यभावाच्छब्दाद्युपभागाभाव इति । ननु तजसमपि निरुपभोगम् । तत्र किमु  
च्यत निरुपभोगमन्त्यमिति ? तजस शरीर योगनिमित्तमपि न भवति, ततोऽस्योपभाग  
विचारेऽधिकार ।'

५ एव तत्रोक्तलक्षणयु जमसु अमूनि शरीराणि प्रादुर्भावमापद्यमानानि किम  
विशेषण भवन्ति उत कश्चिदस्ति प्रतिविशय इत्यत आह—

गर्भसम्पूर्णजमाद्यम् ॥ ४५ ॥

इन्द्रियरूपी नक्षिपोक द्वारा शब्दादिक प्रहण करनेको उपभाग कहत है । यह बात अन्तके शरीरमें  
नहीं पाइ जाती अत यह निरुपभोग है । विग्रहगतिसमें लक्ष्मिरूप भावन्द्रियक रहत हुए भी यहाँ

१ इन्द्रियकी रचना न होनेस शब्दादिकका उपभोग नहीं होता ।

शका—तजस शरीर भी निरुपभोग है इसलिय यहाँ यह क्यों कहते हो कि अन्तका शरीर निरुप  
भोग है ?

समाधान—तैजस शरीर योगमें निमित्त भी नहीं होता इसलिय इसका उपभोगके विचारमें  
अधिकार नहीं है ।

२ विशुद्ध—श्रौदारिक भक्तियुक्त और आहारक इन तीन शरीरोंमें इन्द्रियोंकी रचना होकर उन  
द्वारा अपन अपने विषयोंका ग्रहण होता है इसलिय ये तीनों शरीर सोपभोग माने गये हैं । यद्यपि कामेश  
काययोग कबली जिनक प्रतर और लोकपूरण समुदायके समय तथा विग्रहगतिसमें होता है । पर इनमेंसे  
प्रतर और लोकपूरण समुदायके समय केवलज्ञान होनेस यहाँ उपभोगका प्रश्न ही नहीं उठता । मात्र  
विग्रहगतिसमें कामेश काययोगके रहत हुए उपभोग होता है या नहीं यह प्रश्न होता है और इसी प्रश्नका

२ उत्तर देनेक लिय निरुपभोगमन्त्यम् यह सूत्र रचा गया है । अन्तका शरीर उपभोगरहित क्यों है  
इस बातका समाधा करते हुए बतलाया है कि विग्रहगतिसमें भावन्द्रियाँ तो होती हैं पर इन्द्रियोंकी नहीं  
होती इसलिय यहाँ शब्दादि विषयोंका ग्रहण नहीं होता । यही कारण है कि अन्तक शरीरको निरुपभोग  
कहा है । रहा तजस शरीर तो अग्य चार शरीरोंके समान इसका स्वतन्त्र अधिकार नहीं है । अनिसूत  
तैजस शरीर सब ससारी जीवोंके सबा होता है और निसूत तजस शरीर कायाचित्क होता है । इस  
२३ प्रकार तैजस शरीर पाया तो जाता है सब ससारी जीवोंक पर आत्मप्रदश परिस्परमें यह शरीर कारण  
नहीं है इसलिय इन्द्रियों द्वारा विषयोंके ग्रहण करनेस इस शरीरका उपयोगी नहीं माना गया है । यही  
कारण है कि तैजस शरीर निरुपभोग है कि सोपभोग यह प्रश्न ही नहीं उठता ।

इस प्रकार पूर्वोक्त लक्षणवाल इन जन्मोंमें क्या सामान्यसे सब शरीर उत्पन्न होत है या इसमें कुछ  
विशेषता है । इस बातका बतलानक लिये अब आगका सूत्र कहते हैं—

पहसा शरीर गर्भ और सम्पूर्ण जन्मसे पैदा होता है ॥ ४६ ॥

सूत्ररूपापेक्षया आदौ भवमाद्यम् । औदारिकमित्ययम् । यद् गभज यच्च मम्मू  
च्छनञ्ज तत्सवमौदारिकं द्रष्टव्यम् ।

तानन्तरं यन्निदिष्टं तत्कस्मिन् जन्मनीत्यत आह—

औपपादिकं च क्रियिकम् ॥ ४६ ॥

उपपादे भवमौपपादिकम् । तत्सव वक्रियिकं वदितव्यम् ।

यद्यौपपादिकं चक्रियिकम् अनौपपादिकस्य वक्रियिकं वाभाव इत्यत आह—

सम्बिप्रत्ययं च ॥ ४७ ॥

च शब्देन वक्रियिकमभिसम्बध्यते । तपोविशेषादृद्धिप्राप्तिलब्धिः । लघि-  
प्रत्ययः कारणमस्य लब्धिप्रत्ययम् । वक्रियिकं लघिप्रत्ययं च भवतीत्यभिसम्बध्यते ।

किमेतदेव लब्ध्यपक्षमुतान्यदप्यस्तीत्यत आह—

तजसमपि ॥ ४८ ॥

अपि'शब्देन लब्धिप्रत्ययमभिसम्बध्यते । तजसमपि लब्धिप्रत्ययं भवतीति ।

सूत्रमें जिस क्रमसे निर्देश किया है तदनुसार यहाँ आद्यपदस्य औदारिक शरीरका ग्रहण करना  
चाहिये । जो शरीर गमज्जमसे और समुच्छेन ज्जमस उत्पन्न होता है वह सब औदारिक शरीर है यह  
इस सूत्रका तात्पर्य है ।

इसके अनन्तर जिस शरीरका निर्देश किया है उसकी उत्पत्ति किस ज्जमस होती है अब इस बात  
का ज्ञान करानेके लिये आगका सूत्र कहत है—

वैक्रियिकं शरीरं उपपादं सन्मसे पैदा होता है ॥ ४६ ॥

जो उपपादमें होता है उसे औपपादिक कहत है । इस प्रकार उपपाद ज्जमस पदा होनेवाले शरीर  
को वैक्रियिक जानना चाहिये ।

यदि जो शरीर उपपाद ज्जमस पदा होता है वह वैक्रियिक है तो जो शरीर उपपाद ज्जमस  
नहीं पैदा होता उसमें वैक्रियिकपना नहीं बन सकता । अब इसी बातका स्पष्टीकरण करनेके लिये  
आगका सूत्र कहत है—

तथा लम्बिसे भी पैदा होता है ॥ ४७ ॥

सूत्रमें 'च' शब्द आया है । उससे वैक्रियिक शरीरका सम्बन्ध करना चाहिये । तपोविशेष  
प्राप्त होनेवाली ऋद्धिको लम्बि कहते हैं । इस प्रकारकी लम्बिस ज्जो शरीर उत्पन्न होता है वह लम्बि  
प्रत्यय कहलाता है । वैक्रियिक शरीर लम्बिप्रत्यय भी होता है ऐसा यहाँ सम्बन्ध करना चाहिये ।

क्या यही शरीर लम्बिकी अपेक्षास्य होता है या दूसरा शरीर भी होता है । अब इसी बातका ज्ञान  
करानेके लिये आगका सूत्र कहत है—

तजस शरीरं भी लम्बिसे पैदा होता है ॥ ४८ ॥

सूत्रमें अपि' शब्द आया है । उससे लम्बिप्रत्ययम् पदका ग्रहण होता है । तजस शरीर भी

वक्रियिकानन्तर यदुपदिष्ट तस्य स्वरूपनिर्धारणार्थं स्वामिनिर्देशाय चाह—  
शुभं विशुद्धमव्याधाति वाहारक प्रमत्तसयतस्यव ॥ ४९ ॥

शुभकारणत्वाच्छुभव्यपदेश । शुभकर्मण आहारककामयोगस्य कारणत्वाच्छु-  
भमित्युच्यत अत्रस्य प्राणव्यपदेशवत् । विशुद्धनायत्वाद्द्विशुद्धव्यपदेश । विशुद्धस्य पुण्य  
५ वमण अशवलस्य निरवद्यस्य कायत्वाद्द्विशुद्धमित्युच्यत तन्तूनां कार्पासव्यपदेशवत् ।  
उममता व्याधासाभावादव्याधाति । न ह्याहारकशरीरेणायस्य व्याधात । नाप्यस्य  
नाहारकस्येति । तस्य प्रयोजनसमुच्चयमाय 'व'षष्ट् प्रियते । तद्यथा—कदाचि  
ल्लिखिविषयमद्भायजापनाय कदाचित्सूक्ष्मपदार्थनिर्धारणाय समयपरिपालनाय च ।  
आहारकमिति प्रागुक्तस्य प्रत्याम्नाय । यदाऽऽहारकशरीरं निवर्तयितुमारभत तथा  
१० प्रमत्ता भवतीति प्रमत्तसयतस्य इत्युच्यत । इष्टतोऽवधारणाय 'एव कारोपाशनम् । यद्य  
विजायत प्रमत्तसयतस्यवाहारक नान्यस्येति । न च विजायि प्रमत्तसयतस्याहारकमवति ।

एवियप्रत्यय हाता है यह इन सत्रका मात्र है ।

वक्रियिक शरीरक पश्चात् त्रिम शरीरका उपस्था त्रिया है उमक स्वरूपका निश्चय करनक क्रिये  
और उमक स्वाभिका निर्देश करनक क्रिये आगका सूत्र कहत है—

१५ आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याधात रहित है और यह प्रमत्तसयतक ही होता है ॥४९॥

शुभकर्मका कारण होना इस शुभ कहा है । यह शरीर आहारक काययोग रूप शुभकर्मका  
कारण है इसलिये आहारक शरीर नाम कहलाता है । यही कारणसे कार्यका उपचार है । उम  
अथम प्राणका उपचार करके अथवी प्राण कहत है । विशुद्ध कर्मका काम होना आहारक शरीरको  
विशुद्ध कहा है । तात्पर्य यह है कि जो चित्र विचित्र न हाता निर्दोष है एस विशुद्ध अर्थात् पुण्यकर्मका

२० पापहानन आहारक शरीरका भी विशुद्ध कहत है । यही कायम कारणका उपचार है । जैसे तन्तुओंमें  
कपासका उपचार करके तन्तुआंका कपास कहत है । दोसा आरम्भ व्यापान नहीं हाता इसलिये यह  
अव्याधाती है । तात्पर्य यह है कि आहारक शरीरक अथम पदायका व्यापान नहीं होता और अथम  
प्राणम आहारक शरीरका व्यापान नहीं होता । आहारक शरीरक प्रयोजनका समन्वय करनके क्रिये  
सुखम च पश्य त्रिया है । यथा—आहारक शरीर कदाचिन्म स्थि विगपक सद्भावको जतानक क्रिये

२५ पश्चात्तन्म गमय पश्चात्तन्म निश्चय करनक क्रिये और समयकी रथा करनक क्रिये उत्पन्न होता है ।

सत्रम आहारक पद आया है उमक पुषम कह गय आहारक शरीरको दुहगया है । त्रिम समय  
त्रय आहारक शरीरका स्थितारा आरम्भ कर्ता है उम समय यह प्रमत्त हा जाता है इसलिये सत्रमें  
प्रमत्तसयतक ही आहारक शरीर हाता है यह कहा है । तत्र अर्थक निश्चय करनक क्रिये सत्रमें पश्चात्त  
प हा कहत त्रिया है । त्रिमय यह जाना त्रय त्रि आहारक शरीर प्रमत्तसयतक ही हाता है अर्थात्  
३ म । किन्तु यह न जाना त्रय त्रि प्रमत्तसयतक आहारक हा हाता है । तात्पर्य यह है कि प्रमत्तस

मा भूदानारिकादिनिवृत्तिरिति ।

एष बिभक्षतानि शरीराणि विभ्रतां सवारिणां प्रतिगतिं च त्रिकिङ्कमग्निभान  
उत लिङ्गनियम कश्चिन्स्तीर्यत आह—

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुसकानि ॥ ५० ॥

नरकाणि वदयेत् । नरकपु भवा नारका । सम्मूर्छन सम्मूर्च्छ स येपामस्ति' ते ५  
सम्मूर्च्छिन' । नारकाश्च सम्मूर्छिनश्च नारकसम्मूर्छिन । चारित्रमाहविषल्पनोषपाय  
भेदस्य नपुसकवेत्स्याद्युभनाम्नश्चात्यान्न स्त्रिया न पुमांश्च इति नपुसकानि भवन्ति ।  
नारकसम्मूर्च्छिनो नपुसकान्यवसि नियम' । तत्र हि स्त्रीपुंसविषयमनाजगद्यग्नरूप  
रसस्पृशसम्प्रघनिमिता स्वत्पापि मुखमात्रा नास्ति ।

यद्यवमवधिष्यते अर्थात्पापत्रमतदुक्ततन्व्याज्ये ससाग्निस्त्रिङ्गा इति यत्रा १०  
र्यन्त' नपुसकलिङ्गस्याभावस्तत्प्रतिपादनाथमाह—

न वेवा ॥ ५१ ॥

स्त्रण पास्व च यन्निरतिषय'मुख गुभगतिनामोदयापेक्ष तद्देवा अनुभवन्तीनि न  
तपु नपुंसकानि सन्ति ।

यत्र औत्तरिक' आदि शरीराका नियमरग न हो इसलिये प्रसक्तमयत पत्रक साय ही एषकार पद १५  
सगाया ह ।

इस प्रकार इन शरीरोंको धारण करनेवाले सप्तानी जीवोंक प्रत्येक गतिमें क्या तीनों स्थि हात ह  
या स्थि का कोई स्वतन्त्र नियम है । अब इस बातका जान करानक लिय आगका सूत्र कहते हैं—

नारक और सम्मूर्छिन नपुसक होते हैं ॥ ५० ॥

नरकोंका कथन आग करेग । जो नरकोंमें उत्पन्न हात हैं वे नारकी कहलात है । जो सम्मूर्छिन ९  
अमय पैदा होते हैं वे सम्मूर्छिन कहलात हैं । सूक्ष्म नारक और सम्मूर्छिन इन दोनों पदाका द्वन्द्व  
समास है । चारित्रमोहक दो भेद हैं—कपाय और नोकपाय । इनमेंसे नाकपाययक भेद नपुसकवदक  
उत्पस और असुम नामकर्म क उदयस उक्त जीव स्त्री और पुत्रप न हाकर नपुसक हात ह । यहाँ  
एसा नियम जानना कि नारक और सम्मूर्छिन नपुसक ही हात हैं । इन जीवोंके मनाज पश्य गन्ध  
रूप रस और स्पृशक सम्बन्धस उत्पन्न हुआ स्त्री-पुत्र्यविषयक घोडा भी सुल नहीं पाया जाता है । १  
यदि उक्त जीवोंके नपुसकवद निर्दिष्ट होता है तो यह अर्थात् सिद्ध है कि इसने अतिरिक्त अन्य  
समागी जीव तीन वेदवाले हात ह । इसमें भी जिनके नपुसकवदका अस्त्यत अभाव है उमका कथन  
करनेके लिय आगका सूत्र कहत ह—

देव नपुसक नहीं हात ॥ ५१ ॥

गुभगति नामकमक उदयसे स्त्री और पुत्र्यसम्बन्धी जो निरतिषय मुख ह उसका दव १

(१)—मस्तीति सम्मू-मु । (२)—त्यजगपु प्रा वि १ ।-र्यन्तिकनपु-वि २ । (३)—सक सुप  
मति-व । (४)—नपुसकलिङ्गाति सन्ति मु ।

अथेतर कियल्लिङ्गा इत्यत आह—

शेषास्त्रिवेदा ॥ ५२ ॥

यथा वदा येषा त त्रिवेदा । के पुनस्ते वेदा ? स्त्रीत्व पुस्त्व नपुसकत्वमिति । कथं तेषा सिद्धि ? वेद्यत इति वेदः । लिङ्गमित्यर्थः । तद् द्विविधं द्रव्यलिङ्गं भाव  
 १ लिङ्गं चति । द्रव्यलिङ्गं यानिमेहनादि नामकर्मोदयनिर्बतितम् । नोनषायोदयापान्तिवृत्ति  
 भावलिङ्गम् । स्त्रीवेदोदयात् स्यायस्त्यस्या गभ इति स्त्री । पुवेदोदयात् सूते जनयत्य  
 पत्यमिति पुमान् । नपुसकवेदोदयात्तदुभयशक्तित्विकल नपुसकम् । रुडिपाष्णाश्चत । रुडि  
 पु च क्रिया व्युत्पत्त्यर्थः च । यथा गच्छतीति गौरिति । इतरथा हि गभधारणान्त्रिन्मा  
 प्राधाय बालवृद्धाना तियङ् मनुष्याणा देवाना कामणकाययोगस्थाना च तदभावात्स्त्री  
 १ त्वान्विष्यपशो न स्यात् । त एतं त्रयो वेदा शेषाणा गभजानां भवन्ति ।

अनुभव करत हैं इसलिये उनमें नपुसक नहीं होत ।

इस अतिरिक्त षण् जीव कितने लिंगवाले होत हूँ इस बातक बतलानके लिये आगेका सूत्र  
 बटन ह—

षण्क सत्र जीव तीन वेदवाले होते हैं ॥ ५२ ॥

१ जिनक तीन वेद होत है व तीन वेदवाले कहे जात हैं ।

पचा—वे तीन वेद कौन ह ?

समाधान—स्त्रीवेद पुरुषवेद और नपुसकवेद ।

पचा—सकी सिद्धि कस होनी है ?

समाधान—जो बदा जाता है उस वेद कहत हैं । इसीका दूसरा नाम लिंग है । इसक दो भेद हैं—

२ द्रव्यलिंग और भावलिंग । जो चीज महत आदि सामकमक उदयस रखा जाता है वह द्रव्यलिंग है  
 और जिसकी स्थिति मोकपायक उदयसे प्राप्त होती है वह भावलिंग है । स्त्रीबदन उदयस जिसमें  
 गभ रहता है वह स्त्री ह । पुबेदन उदयसे जो अपत्यका जनना है वह पुरुष है और नपुसकवेदक उदयस  
 या उवक माना प्रकारकी शक्तिस रहित हूँ वह नपुसक है । वास्तवमें य तीनों रीतिके बाल हूँ और  
 ३ रदिस प्रिया व्युत्पत्तिके लिये ही होती है । यथा जो गमन करनी हूँ वह गाय ह । यदि ऐसा न माना  
 ४ जाय और इसका अर्थ गभधारण आदि क्रियाप्रधान किया जाय ता बालक और बृद्धांके निवृत्त और  
 मनुष्यां दवाने तथा कामणकाययोगमें स्थित जीवोंक गभधारण आदि क्रियाका अभाव होतस्त्री  
 जादि सत्ता सत्रा बन सकती है । य नीना बन् षण् जीवां अर्थात् गर्भजोंक हात ह ।

विशयार्थ—स्त्री मध्यायम ओदयिक भावारा निर्देग करत समय उनमें तीन लिंग भी गिनाय  
 ५ । य नीना लिंग बदा गर्वायवाची ह आ बदनोरपायक उदयसे हात ह । यहाँ जिन जीवाने तीन  
 ६ लिंग हाता ह उनका गिनाय न ग्या है । इसी प्रसंगसे आचार्य पुण्यपादन लिंगक दो भन् बतसाय है—

(१) पुमान् । तदुभय आ वि १ वि २ ।

य इमे जमयानिधरीरलिङ्गसम्यग्वाहितविद्येया प्राणिनो निर्दिश्यन्त देवा  
दयो विचित्रधर्माधमवधीकृताश्चक्षुसमु गतिषु शरीरगणि धारयन्तस्त किं यथाकालमुप  
भुक्तायुषो मृत्यन्तराप्यास्वन्ति उतायथाकालमपीत्यत आह—

औपपादिकचरमोत्तमदेहासस्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुष ॥ ५० ॥

औपपादिका व्याख्याता दवनाग्वा इति । चरमशब्दात्त्यवाची । उत्तम ५  
उत्कृष्ट । चरम उत्तमा देहा येवा ते चरमात्तमदेहा । परीतससारास्वज्जमनिवा  
णाहा इत्ययम् । असस्येयमतीतमस्थानमुपमाप्रमाणेन पत्याग्निना गम्यमायुषेयां त इमे  
असस्येयवर्षायुषमिदमह मनुष्या उत्तरनुवात्पि प्रमूता । औपपादिकाश्च चरमोत्तम  
देहाश्च असस्येयवर्षायुषश्च औपपादिकचरमानमदेहासस्येयवर्षायुष । वाह यस्यापघात  
निमित्तस्य विषमश्राद मति मग्निवान् ह्रस्व भवतीत्यपवत्यम् । अपवत्यमायुषेयां त १  
इमे अपवत्यायुष । न अपवत्यायुष अनपवर्त्यायुष । नह्येषामापपादिकादीना वाह्य  
द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग । प्रश्न यह है कि लिङ्गक य तो म सूक्ष्म फलित होत हैं या विषय  
जानकारीक लिय मात्र टीकाकारन इनका निर्देश किया ह । उत्तर स्पष्ट ह कि मूल सूत्रमें मात्र वद  
नोकपायके उदयस होनवास बर्दोका ही निर्देश किया है जसा कि इसी अध्याय के ६वें सूत्रसे  
ज्ञान हावा ह ।

औ य देवादिक् प्राणी जम योनि धरीर और लिङ्गक सम्वधस अनक प्रकारक वतलाय हवे १५  
विचित्र पुष्य और पापक बपाभूत हाकर चारा गतियामें धरीरको धारण करत हुए यथाकाल आयुका  
भागकर अन्य धरीरको धारण करते ह या आयुका पूरा न करक भी अग्य धरीरको धारण करत  
हैं ? अत्र इस बातका ज्ञान करानके लिय आगका सूत्र कहत ह—

उपपादकमवाले, चरमोत्तमदेहवाले और असस्यात वर्षकी आयुवाले जीव अनपवत्ये १  
आयुवाले होत हैं ॥ ७३ ॥

उपपादकमवाले और नारकी हैं यह व्याख्यान कर आय । चरम शब्द अत्यवाची ह ।  
उत्तम शब्दका अर्थ उत्कृष्ट है । जिनका धरीर चरम और उत्तम है व चरमोत्तम देहवाले कहे जात हैं ।  
जिनका सगार निकट है अर्थात् उमी भवसे मोक्षका प्राप्त होनवाले जीव चरमोत्तम देहवाले कहलात  
ह । असस्येय परिमाण विषेय ह या सक्रयानसे पर है । तात्पर्य यह है कि पत्य भावि उपमा  
प्रमाणक द्वारा जिनकी आयु जानी जाती है व उत्तरकृत्य भाग्निमें उलान हुए विषय और २५  
मनुष्य असस्यात वर्षकी आयुवाले कहलात ह । उपधानके निमित्त विर परमाग्नि वाह्य निमित्ता  
क मिष्टन पर जा आय घट जाती है वह अपवत्य आयु कहलाती है । इस प्रकार जिनकी आयु घट  
जाती ह व अपवत्य आयुवाले कहलात है और जिनकी आयु नहीं घटनी व अनपवत्य आयुवाले

(१) बला । विरगीत-मु । ( ) इत्यर्थ । कपीतमस्थान-ता ना ।

निमित्तवशादायुरपवत्यते इत्ययं नियमः । इतरेषामनियमः । चरमस्य देहस्योत्कृष्टत्व  
प्रदशनायमुत्तमग्रहणं नार्थान्तरविशेषोऽस्ति । चरमदेहा इति वा पाठः ।

इति तत्त्वापवृत्तौ सर्वाषिसिद्धिसञ्ज्ञिकामाया द्वितीयोऽध्यायः ।

कहलात् है । इन औपपादिक आदि जीवोंकी आयु ब्राह्म निमित्तस नहीं घटती यह नियम  
है तथा इनस अतिरिक्त षण् जीवोंका ऐसा कोई नियम नहीं है । सूत्रमें जो उत्तम विद्यापण दिया है  
वह चरम शरीरक उत्कृष्टपनेको दिखलानक लिये दिया है । यहाँ इसका और कोई विषय अर्थ  
नहीं है । अथवा 'चरमोत्तमदेह' पाठके स्थानमें 'चरमदेहा यह पाठ भी मिलता है ।

विद्यापार्यं—भुज्यमान आयुका उत्कर्षण नहीं होता केवल उदीरणा हाकर आयु घट सकती  
है इस लिये प्रश्न होता है कि क्या सब ससारी जीवोंकी आयुका ह्रास होता है या इसका भी  
कोई अपवाद है । इसी प्रश्न के उत्तर स्वल्प प्रकृत सूत्रकी रचना हुई है । इसमें बतलाया है कि  
उपपादजमदाल दश और नारकी तद्भवमोक्षगामी मनुष्य और असम्प्रातर्षकी आयुकाके तिर्यं न  
और मनुष्य इनकी आयुका ह्रास नहीं होता । इन्हें जो आयु प्राप्त होती है उसका पूरा भोग  
होकर ही उस पर्याय का अन्त होता है । यह विशेष नियम करनेका कारण यह है कि कर्मशास्त्रके  
अनुसार कोई भी अधिक स्थितिवाला कर्म कारणविशेषक मिलने पर अल्प कालमें भोग जा  
सकता है । भुज्यमान आयु पर भी यह नियम लागू होता है इसलिये इस सूत्र द्वारा यह स्पष्टका  
बी गई है कि उक्त जीवोंकी भुज्यमान आयु पर यह नियम लागू नहीं होता । आशय यह है कि इन  
जीवोंके भुज्यमान आयुके प्रारम्भ होनेके प्रथम समय में आयुके जितने मियेक होत हैं व कर्मसे  
एक एक निपक उदयमें आकर ही निर्जराको प्राप्त होत है । विष्य शस्त्रादिक बाह्य निमित्तके  
बलस उनका घात नहीं होता । पर इसका अर्थ यह नहीं कि इन जीवोंके आयुकर्मकी उदीरणा ही न  
होती होगी । इनके उदीरणाका हाना तो सम्भव है पर स्थितिवात न होकर ही यह उदीरणा होती  
है । स्थितिवात न होन स हमारा अभिप्राय है कि इनके पूरा निपकका उदीरणा द्वारा लय नहीं होगा ।

सूत्रमें तद्भव मोक्षगामीके लिये 'चरमोत्तमदेह' पाठ आया है । सर्वाषिसिद्धि टीकामें इसकी  
व्याख्या करते हुए चरम शरीरको ही उत्तम बतलाया गया है किन्तु तत्त्वापार्यशब्दातिक में पहले तो  
चरमदेह और उत्तमदेह एसा असंग अर्थ अथ किया गया है किन्तु बादमें उक्तमन्त्रवाक्य चरमपर आदि  
क शरीरको अपवत्य आयुकाका बतलाकर उत्तम शब्दको चरमदेहका ही विद्यापण मान लिया है ।  
एक बात स्पष्ट है कि प्रारम्भ से ही उत्तम पद पर बिबाह रहा है । तभी तो सर्वाषिसिद्धिमें 'चरम  
दह' इस प्रकार पाठान्तर की सूचना की गई है और यह पाठान्तर उन्हें पूर्व परम्परासे प्राप्त था ।

इस प्रकार सर्वाषिसिद्धिनामक तन्त्राद्यज्ञसिद्धिमें दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ।

(१) पाठः ॥२॥ जीवश्चमात्रमस्यताचर्वाषिसिद्धिस्तथाच । गतिव्यमदीतिरेकिकिद्वातापवृत्तितानु

त्रकारणध्यावेऽर्थाविविधिता प्रवर्त्तनीति न कथ ॥ इति तत्राया ५ । पाठः ॥२॥ जीवश्चमात्रमस्यताचर्वाषिसिद्धिनाम  
स्वल्पभेदः ॥ तद्विद्यमदीतिरेकिकिद्वातापवृत्तितानु ॥ इति तत्राया ५ ।

## अथ तृतीयोऽध्यायः

'भवप्रत्ययोज्वधिद्वैवनारकाणाम्' इत्यवमादिषु नारका श्रुतास्ततः पृच्छति के त नारका इति । तत्प्रतिपादनाय सदधिकरणनिर्देशं क्रियते—

रत्नशक रावालुकापङ्कधूमतमोमहातमःप्रभा भूमयो  
घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा सप्ताधोऽथ ॥ १ ॥

रत्न श शक रा श वालुका श पङ्कधूमतममहातमःप्रभा भूमयो १  
कापङ्कधूमतमोमहातमासि । 'प्रभा' शब्दः प्रत्येक परिसमाप्यते । साहचर्यात्ताच्छब्दम् ।  
चित्रादिरत्नप्रभासहचरिता भूमि रत्नप्रभा शकगप्रभासहचरिता भूमि शकगप्रभा,  
वालुकाप्रभासहचरिता भूमिवालुकाप्रभा, पङ्कप्रभासहचरिता भूमि पङ्कप्रभा धूमप्रभा  
सहचरिता भूमिधूमप्रभा, तमःप्रभासहचरिता भूमिस्तमःप्रभा, महातमःप्रभासहचरिता  
भूमिमहातमःप्रभा इति । एताः सजा अनेनोपायेन व्युत्पाद्यन्ते । 'भूमि'ग्रहणमधिकरण १  
विशेषप्रतिपत्त्यर्थम् । यथा स्वर्गपटलानि भूमिमनाश्रित्य व्यवस्थितानि न तथा नारका

## तीसरा अध्यायः

'भवप्रत्ययोज्वधिद्वैवनारकाणाम्' इत्यादिकं सूत्रोक्तं मार्गः शक्यं मुना ह इत्यस्मिन् पृच्छते ह किं च  
मार्गो कौन ह ? अतः मार्गव्योक्तं कथनं कर्तुं च कियं उक्तो आधारभूतं पृथिवीका  
निर्देशं कर्तुं ह—

रत्नाप्रभा, शकगप्रभा, वालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा १५  
य सात भूमियां घनाम्बु, वात और आकाश च सहारे स्थित हं तथा क्रमसे नीचे नीचे हं ॥१॥

रत्नशकरावालुकापङ्कधूमतमोमहातमा इत्येवं सप्तपदोंका परस्पर इन्द्र समान है । प्रभा  
शब्दको प्रत्येक शब्दक साथ जोड़ लता चाहिये । पृथिवीको प्रभा क्रमसे रत्न आदिके समान  
होनसे इनके रत्नप्रभा आदि नाम पड़े हें । यथा जिसकी प्रभा चित्र आदि रत्नाकी प्रभाके समान  
ह वह रत्नप्रभा भूमि ह । जिसकी प्रभा शकरा के समान ह वह शकगप्रभा भूमि ह । जिसकी प्रभा २  
वालुकाकी प्रभाके समान है वह वालुकाप्रभा भूमि ह । जिसकी प्रभा पङ्कके समान है वह  
पङ्कप्रभा भूमि ह । जिसकी प्रभा धूमके समान है वह धूमप्रभा भूमि है । जिसकी प्रभा अश्वत्थके  
समान ह वह तमः प्रभा भूमि है और जिसकी प्रभा गण्ड अश्वत्थके समान ह वह महातमःप्रभा  
भूमि ह । इस प्रकार इन नामोंकी व्युत्पत्ति करनी चाहिये । सूत्रमें भूमि पदका ग्रहण अधिकरण  
विशेषका ज्ञान करानके लिये किया ह । तात्पर्य यह ह कि जिस प्रकार स्वर्गपटल भूमिके जिता स्थित १५



वासा । किं तर्हि ? भूमिमाश्रिता इति । आसां भूमीनामालम्बननिर्जनाथ घनाम्बु वातादिग्रहण क्रियते । घनाम्बु च वातश्च आकाश च घनाम्बुवाताकाशानि । तानि प्रतिष्ठा आश्रयो यासा ता घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा । सर्वा एता भूमयो घनोन्धिवलय प्रतिष्ठा । घनोन्धिवलय घनवातवलयप्रतिष्ठम् । घनवातवलय तनुवातवलयप्रतिष्ठम् । तनुवातवलयमाकाशप्रतिष्ठम् । आकाशमात्मप्रतिष्ठ, तस्यवाधाराधेयत्वात् । त्रीप्यप्यतानि वलयानि प्रत्येक विशतियाजनसहस्रबाहुल्यानि । सप्त ग्रहण मस्यान्तरनिवृत्त्यथम् । सप्त भूमयो नाष्टौ न नव चेति । अधोऽथ वचन तियक्प्रचयनिवृत्त्यथम् ।

हे उस प्रकार नारकियों के निवासस्थान नहीं हैं । किन्तु वे भूमिके आश्रयसे अवस्थित हैं । इन भूमियोंके आलम्बनका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें 'घनाम्बुवात' आदि पदका ग्रहण किया है । अमिप्राय यह है कि ये भूमियां क्रमसे घनोन्धिविवातवलय घनवातवलय तनुवातवलय और आकाशके आश्रयसे स्थित हैं इस बातके निश्चयानेके लिये सूत्रमें 'घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठा' पददिया है । ये सब भूमियां घनोन्धिविवातवलयके आश्रयसे स्थित हैं । घनोन्धिविवातवलय घनवातवलयके आश्रयसे स्थित है । घनवातवलय तनुवातवलयके आश्रयसे स्थित है । तनुवातवलय आकाशके आश्रयसे स्थित है और आकाश स्वयं अपने आश्रयसे स्थित है क्योंकि वह आश्रय और आश्रय दोनों हैं । ये तीनों वातवलय प्रत्येक बीस बीस हजार योजन मोटे हैं । सूत्रमें 'सप्त' पद का ग्रहण दूसरी सम्पाके निराकरण करणके लिये किया है । भूमियां सात ही हैं न आठ हैं और न नौ । ये भूमियां तिर्यक् रूपसे अवस्थित नहीं हैं । इस बातके निश्चयानेके लिये सूत्रमें अधोऽथ यह वचन दिया है ।

विश्वपार्ष—आकाशक दो भव हैं—अस्पोकाकाश और लोकाकाश । लोकाकाश अस्पोकाकाशके बीचोबीच अवस्थित है । यह अकस्मिन् अनादिनिघ्न स्वभावतः निर्मित और छह द्रव्योंसे व्याप्य है । यह उत्तर दक्षिण अधोभागसे स्फेरक ऊर्ध्वभागतक विस्तारकी अपेक्षा सर्वत्र सात राज्मु है । पूर्ब पश्चिम नीचे सात राज्मु चौड़ा है । फिर दोनों ओरसे घटते घटते सात राज्मुकी ऊँचाई पर एक राज्मु चौड़ा है । फिर दोनों ओर बढ़ते बढ़ते साढ़ दस राज्मुकी ऊँचाई पर पाँच राज्मु चौड़ा है । फिर दोनों ओर घटते घटते चौह राज्मुकी ऊँचाई पर एक राज्मु चौड़ा है । पूर्ब पश्चिमकी ओरसे लोकका आकार कटि पर दोनो हाथ रख कर और पेरोंको फेला कर लड़े हुए मनुष्यके आकारका प्रतीत होता है । इससे अधोभाग बतये भासनके समान मध्यभाग झालरके समान और ऊर्ध्वभाग मूषगके समान दिखाई देता है ।

इनके तीन भाग हैं—अधोलोक मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक । मध्यलोकके बीचोबीच मेरु पर्वत

(१)—'ति । तासा भूमी-म्बु ता ना । (२) प्रतिष्ठा । जन् च घनो मन्बो महान् भावत इत्यर्थः । अम्बु च अन् उरध्वमित्यर्थः । वात-श्च शोऽन्धवरीयक । तत् एव सम्बन्धनीय । घनो घनवातः । अम्बु अम्बुवात । वातस्तनुवातः । इति महेशोशया तन्वृति नामध्वगम्य । अम्य पा । निश्चान्वापाऽस्तु घनाम्बु च वातं पिति वातस्यर भोगस्त्रियते । वातस्यरवात इति वा । उर्ध्वं गता मु ता ना ।

किं ता भूमयो नगराणां सवत्रावामा आहोस्वित्क्वचित्त्वयचिदिति तन्नि  
धोरणार्थमाह—

तासु त्रिंशत्यञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनकरकशतसहस्राणि

पञ्च च यथाक्रमम् ॥ २ ॥

तासु रत्नप्रभादिषु भूमिषु नरकाप्यनेन सख्यायन्ते यथाक्रमम् । रत्नप्रभाया ५  
त्रिंशत्तरकशतसहस्राणि शकराप्रभायां पञ्चविंशतिर्नरकशतसहस्राणि बालुकाप्रभायां  
पञ्चदश नरकशतसहस्राणि पङ्कप्रभाया दश नरकशतसहस्राणि, घूमप्रभाया त्रीणि  
नरकशतसहस्राणि, तमप्रभायां पञ्चोनमेक नरकशतसहस्रं, महातमप्रभाया पञ्च  
नरकाणि । रत्नप्रभायां मरुप्रस्तागस्त्रयोदश । ततोऽथ आ सप्तम्या द्वौ द्वौ नरकप्र  
हे जो एक लाख चालीस योजन ऊँचा है । उसने नीचका भाग अधोलोक ऊपरका भाग ऊँचलोक  
और बरानर रक्षामें विरछा फला हुआ मध्यलोक है । मध्यलोकका विरछा विस्तार अधिक हानसे  
इस त्रियलोक भी कहल है ।

प्रकृत सूत्रमें अधोलोकका विभाग किया गया है । इसमें सात भूमियां हैं जो उत्तरोत्तर नीच  
नीच हैं पर आपसमें भिन्न नहीं हैं । किन्तु एक दूसरी भूमिक वीचमें असंख्य योजनों का अन्तर है ।  
इन भूमियोंके नाम सूत्रमें क्रमसे दिए ही हैं । ये इनके गुणनाम हैं । पम्मा, वषा मषा, अश्रवा १५  
अग्निष्ठा मषका और माषवी ये इनके रौद्रिक नाम हैं । पहली पृथिवी एक लाख अस्वी हजार  
योजन मोटी है । दूसरी वत्सीम हजार योजन मोटी है तीसरी अट्टार्दस हजार योजन मोटी है  
चौथी धौवीम हजार योजन मोटी है पाँचवी वीम हजार योजन मोटी है छठी साल्ह हजार योजन  
मोटी है और गानर्वा आठ हजार योजन मोटी है । ये सात भूमियां घनादधि घनवान तनुवान  
और आकाशक आधारक स्थित हैं । अर्वात् प्रत्येक पृथिवी घनादधि क आधारसे स्थित है घनादधि २  
घनवानक आधारसे स्थित है घनवात तनुवातक आधारसे स्थित है तनुवात आकाशक आधारक  
स्थित है और आकाश अपन आधारसे स्थित है ।

ब२। इन भूमियों में सर्वत्र नगरिकाक निवास स्थान है या नहीं वहीं इस बातका निश्चय  
करना स्थि अत्र आग का सूत्र कहल है—

उन भूमियोंमें क्रमसे तीस लाख, पन्चीस लाख, पन्डह लाख, दस लाख, तीन लाख २५  
पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं ॥ ३ ॥

उन रत्नप्रभा आदि भूमियां में एक बत्त द्वाग क्रमसे नरकाकी संख्या बतलाई गई है । रत्नप्रभामें  
तीस लाख नरक हैं । शरणाप्रभामें पञ्चवीस लाख नरक हैं । बालुकाप्रभामें पन्डह लाख नरक हैं ।  
पङ्कप्रभामें दश लाख नरक हैं । घूमप्रभामें तीन लाख नरक हैं । तमप्रभामें पाँच कम एक लाख नरक  
हैं और महातम प्रभामें पाँच नरक हैं । रत्नप्रभामें दस नरक पन्डह हैं । अन्त में आग का भूमि ३

स्तारो हीनो । इतरौ विशयो लोकानुयोगता<sup>१</sup> वेदितव्य ।

अथ तासु भूमिषु नारकाणां क प्रतिविशेष इत्यत आह—

नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया ॥ ३ ॥

लेश्यान्वयो व्याख्यातार्था । अशुभतरा इति प्रकपनिर्देश तियगतिविषयाशुभ

लेश्याद्यपेक्षया अघोऽथ स्वगत्यपेक्षया च वेदितव्य । नित्य शब्द आभीक्ष्ण्यवचन ।  
नित्यमशुभतरा लेश्यान्वयो यथां ते नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रिया नारका ।

तक दो नो नरक पटल कम हैं । इसके अतिरिक्त और विशेषता लोकानुयोगसे जान लेनी चाहिये ।

विशयार्थ—पहले साठ पृथिवियोंका निर्देश किया ही है । उनमेंसे पहली पृथिवीक तीस भाग  
ह—सुरभाग पकभाग और अशुभभाग । सुर भाग सबसे ऊपर है । इसमें रत्नोंकी बहुतायत  
ह और यह सोलह हजार योजन मोटा है । दूसरा पकभाग है इसकी मोटाई चौरासी हजार योजन  
ह । तथा तीसरा अशुभभाग है । इसकी मोटाई अस्सी हजार योजन है ।

नारकियोंक रहनक आवासकी नरक बहुत हैं । रत्नप्रभा भूमिके प्रथम भाग और दूसर भाग  
म नरक नहीं है । तीसरे भागमें हैं । इस प्रकार प्रथम भूमिके तीसरे भागकी ओर दोष छह भूमियों  
की जितनी जितनी मोटाई बतलाई है उसमेंसे ऊपर और नीचे एक एक हजार योजन भूमिको  
छोड़कर मारतों ममियों के बाकीके मध्य भागमें नरक है । इनका आकार विविध प्रकारका है ।  
कोई गोल है कोई त्रिकोण है कोई चौकोण है और कोई अनिश्चित आकारका है । ये सब नरक-  
पटल क्रमसे अवस्थित हैं । जिस प्रकार पत्थर या मिट्टी के एक पर पर दूसरा पर अवस्थित होता है  
उसीप्रकार ये पटल हैं । पहली भूमिमें ये पटल तेरह हैं और आग की भूमियोंमें दो दो पटल कम  
होते गये हैं । एक पटल दूसरे पटलसे मटा हुआ है । इनमें नरक हैं । नरक जमीनके भीतर कुएँ  
के समान पोलका नाम है । यह ऊपर नीचे चारों ओर जमीनसे घिरी रहती है । इन्हीं नरकोंमें  
नारकी जीव अपनी आयुक अन्तिम समय तक रहते हैं और बड़ा नामा प्रकारके दुःख भोगते हैं ।

उन भूमियों में रहनेवाले नारकियोंमें क्या विशेषता है इस बातको बतलानेके लिये अब आगे  
का सूत्र कहत हैं—

नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, वेद, वेदना और विक्रियात्वात् ॥३॥

लेश्यादिकका पहिल व्याख्यान कर आये हैं । अशुभतर<sup>२</sup> इस पद के द्वारा तिय गतिमें प्राप्त  
हानिवाणी अदुःख स्वप्ना आदिककी अपेक्षा और नीचे नीचे अपनी गतिकी अपेक्षा लेश्यादिक की  
प्रकपता बतलाई गई है । अर्थात् तिये या जो लेश्यादिक है उनसे प्रथम नरकक नारकियोंक अधिक  
अदुःख हैं आदि । नित्य शब्द आभीक्ष्ण्य अर्थात् निरन्तरबाधी है । तात्पर्य यह है कि नारकियोंकी स्या

(१)-प्रत्याग हीना । इनके आदि १ कि २ । (२) लोकनिर्वाणतो कि १ कि २ । (३) अर्थात्

नरक निरन्तरात्तो तावत्क कल्पन्विक्रियादिकु भावेणु कर्तते । कि नहि ? भागीरथेऽपि कर्तते । तद्यथा-निरन्तरात्ततो  
नि पत्रवस्थित इति । ता म भा ५ ३७ ।

प्रथमाद्वितीयमा कापाती लक्ष्या तृतीयायामुपरिष्णात्कापाती अधो नीला, चतुर्थ्यां नीला  
 पञ्चम्यामुपरि नीला अध कृष्णा पष्ठ्या कृष्णा सप्तम्या परमकृष्णा । स्वायु  
 प्रमाणावधृता द्रव्यलक्ष्या उक्ता । भावलेख्यास्तु अन्तमुद्धतपरिवर्तिय । परिणामा  
 स्पष्टारसग धवणघ दा क्षेत्रविशेषनिमित्तवशादतिदु स्हतवोऽगुमतरा । ग्राह्यच तेषाम  
 शुभनामैकमोऽन्यान्त्यन्ताशुभतरा विहृतावृत्तयो हृण्डसस्थाना दुदधना । तेषामुत्सघ  
 प्रथमायां सप्त घनपि त्रया हस्ता पङ्कज्जल्य । अधाऽधा-द्विगुणत्रिगुण उत्सेध ।  
 अभ्यन्तरासद्वेषोदमे सति अनादिपारिणामिकधीतोष्णवाह्यनिमित्तजनिता अतितीव्रा  
 वेदना भवन्ति नारकाणाम् । प्रथमाद्वितीयातृतीयाचतुर्थीपु उष्णवदनायव नरकाणि ।  
 पञ्चम्यामुपरि उष्णवेत्ने द्व नरकगतसहस्र । अध धीतवदनमन शतसहस्रम् । पष्ठीस  
 प्तम्यो शीतवेदनान्यव । शुभ विकरिष्याम इति अगुमतरमव विभुर्वन्ति सुखहेतुनुत्पा  
 याम इति दुःखहेतुनेवोपादयन्ति । त एते भावा अधोऽधाऽगुमतरा वन्तिव्या ।

परिणाम गेह बन्ता और विविधा निरन्तर अगुम होती ह । यथा प्रथम और दूसरी पृथिवीमें कापोत  
 लक्ष्या ह । तीसरी पृथिवीमें ऊपरक भागमें कापोत लक्ष्या है और नीचक भागमें नील लक्ष्या ह ।  
 चौथी पृथिवीमें नील लक्ष्या ह । पाँचवी पृथिवीमें ऊपरक भागमें नील लक्ष्या ह और नीचक  
 भागमें कृष्ण लक्ष्या है । छठी पृथिवीमें कृष्ण लक्ष्या ह । और सातवीं पृथिवीमें परम कृष्ण लक्ष्या ह । १५  
 द्रव्य लक्ष्याएँ अपनी आयुतक एक सी बही गइ ह । किन्तु मायलक्ष्याएँ अन्तमु हूँतम बन्ती रहती हैं ।  
 परिणामस यहाँ स्पष्ट रस गंध बण और शब्द स्थि गय ह । य क्षेत्र विद्यपक निमित्तम अत्यन्त  
 दुःखक कारण अगुमतर है । नारकिया क शरीर अगुम मामकर्मक उपयम होनक कारण उत्तरात्तर  
 अगुम ह । उनको बिकृत आकृति है कुछ सम्भाव है और दहनमें बुर लगत ह । उनकी ऊँचाइ प्रथम  
 पृथिवीमें सात घनप तीग हाथ और छह अगुल ह । तथा नीच मीच प्रत्यक पृथिवीमें बह दूनी दूनी २  
 ह । नारकियोंक अभ्यन्तर कारण अमाता बदनीयका उदय रहत हुए अनादिकासीन धीत और  
 उष्णरूप बाह्य निमित्तम उत्पन्न हुए अति ताप बन्ता होगी ह । पहली दूसरी तीसरी और चौथी  
 पृथिवीमें मात्र उष्ण वदनावाल नरक है । पाँचवी पृथिवीमें ऊपरक ओ लाग्य नरक उष्ण वदनावाल  
 ह । और नीचक एक लाग्य नरक धीत वदनावाल ह । तथा छठी और सातवीं पृथिवीक नरक  
 धीत वदनावाल ही है । नारकी 'गुम विविधा करेग एसा विचार करन ह पर उत्तरात्तर अगम १५  
 विविधा का ही करत ह । 'सुयकर हनुओंका उत्पन्न करेग एसा विचार करन ह परन्तु क दुःखकर  
 हनुओंका ही उत्पन्न करन ह । इस प्रकार य भाव मीच नीचे अगुमतर जानन चाहिय ।

विद्यपार्थ-यहाँ टीकामें लक्ष्याक दो भेद करके भाव लक्ष्या अगुम हूँतमें बदलता रहती ह यह

(१) स्वायु प्रमा-दू ता वा । ( )-मागेचकता आ दि १ दि २ । (३)-जामाया

-आ दि १ दि २ । (४) मन्वाता नया आ दि १ दि २ । (५) द्विगुणो द्विगुण आ दि १  
 दि २ । (६) त्रिगुणो त्रिगुण आ दि १ दि २ आ ५ । (७)-वदनावालेक आ दि १ दि २ ।

(८) पञ्चम्यामुपरि आ दि १ दि २ ।

किमतेषां नारकाणां शीतोष्णजनितमेव दुःखमुतान्यथापि भवतीत्यत आह—  
परस्परोदीरितदुःखा ॥ ४ ॥

कथं परस्परोदीरितदुःखत्वम्? नारकाः भवप्रत्ययेनावधिना मिथ्यादर्शनोद्ययादि  
मङ्गल्यपदेशभाजा च दूरादेव दुःखहेतुनवगम्योत्पन्नदुःखा प्रयासतो परस्परगलोकनाच्च  
प्रज्वलितकोपाग्नयः पूवभवानुस्मरणाच्चातितीघ्रानुबद्धनगराश्च इवशृगालान्वितस्वामिधाते  
प्रवतमाना स्वविक्रियाकृतासिवासीपरशुभिण्डिमालयन्तितोमरकुन्तायोधनादिभिरायुध  
स्वकरधरणदशनश्च छेदनभेदनतक्षणदशनादिभिः परस्परस्यातितात्र दुःखमुत्पादयन्ति ।

किमेतावानेष दुःखात्पसिक्कारणप्रकार उता योऽपि कश्चिदस्तीत्यत आह—

कहा है। सो इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ जो मारलेख्या कही है उसमें परिवर्तन नहीं होता ।

मात्र उसमें योग और कृपाय के अनुसार उत्तमभाव होता रहता है क्योंकि प्रत्येक नारकीके वही  
योग और वही कृपाय रहनी चाहिये ऐसा नियम नहीं है। किन्तु अपने अपने जबन्य मध्यम या  
उत्कृष्ट भासक अनुसार योग और कृपायका परिवर्तन नियमसे होता है। यत्र कृपायानुरजित  
योगप्रवृत्तिका नाम लेख्या है अत्र योग और कृपायके बदलनस बह भी बदल जाती है। मात्र जहाँ  
कापोत लेख्या का अभ्यन्त्र अथ कहा है वहाँ वही रहता है वह बदलकर कापोत लेख्याका मध्यम  
और उत्कृष्ट अंश नहीं होता या जहाँ परम कृप्य लेख्या कही है वहाँ वही रहती है वह बदल कर  
अथ लेख्या नहीं होती। येय कथन सुगम है।

क्या इन नारकीके शीतोष्णजनित ही दुःख है या दूसर प्रकार का भी दुःख है इस बातको  
बतसानक स्थिय आयका सूत्र कहते हैं—

तथा ये परस्पर उत्पन्न क्रिये गय दुःखाले होते हैं ॥ ४ ॥

संका—नारकी परस्पर एक दूसरको कैसे दुःख उत्पन्न करते हैं ?

समाधान—नारकीके सबप्रत्यय अवधिज्ञान क्षुब्धित मिथ्यादर्शनके उदयस विभगज्ञान कहते हैं।

इस ज्ञानके कारण दूरसे ही दुःखके कारणको जानकर उनको दुःख उत्पन्न हो जाता है और समीप  
में भात पर एक दूसरके वस्त्रसे उनकी कोषाग्नि भसक उठती है। तथा पूवभवका स्मरण होनेसे  
उनकी बरकी गति और दुःखतर हो जाती है। जिसस व कुत्ता और गीदड़के भ्रमान एक दूसरका  
घात करनेके स्थि प्रकृत होते हैं। वे अपनी विक्रियास लखवार बसूला फरसा हाथसे बलानका  
तार, बच्छी तोमर नामका अस्त्र बिद्यप धरछा और हथौडा आदि अस्त्र-शस्त्र बनाकर उनसे  
तथा अपने हाथ पाँव और दाँतोंम छान्ना भदना छीलना और कान्ना आदिके द्वारा परस्पर  
अतितीघ्र दुःखको उत्पन्न करते हैं।

जिन कारणोंम दुःख उत्पन्न होता है वे इनने ही हैं या और भी हैं? अब इन बातका ज्ञान

कगनक स्थिय भागका सूत्र कहते हैं—

(१) नारकाणाम्? सबत्र ता ना ।

सकिलष्टासुरोबीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्या ॥ ५ ॥

देवगतिनामकमविकल्पस्यामुरत्वसधतनस्य कमण उदयादस्यन्ति परानित्यसुरा ।  
पूवजमनि भावितेनातितीव्रण सकलैशपरिणामेन यदुपाजित पापकर्म तस्योदयात्सतत  
किलष्टा सकिलष्टा सकिलष्टा असुरा सकिलष्टासुरा । सकिलष्टा इति विशेषणान्न सर्वे  
असुरा नारकाणां दुःखमुत्पादयन्ति । किं तर्हि ? अम्बावरीपादय एव केचनति । अदधिप्र  
पशनाय प्राक्चतुर्थ्या इति विशेषणम् । उपरि तिसृषु पृथ्वीषु सकिलष्टासुरा वाघाहतवो  
नात् परमिति प्रदधानायम् 'च' शब्द पूर्वोक्तदुःखहेतुसमुच्चयाय । सुतप्तायांसपा  
यननिष्टप्तायस्तम्भालिङ्गनकूटशास्मत्यारोहणावतरणाय।घनाभिधातवासीशूरतक्षणक्षा  
रतप्ततलायसेचनाय कुम्भीपाकांम्बरीपमञ्जनवतरणीमज्जनयन्निष्पीठनाविभिर्नारकाणां  
दुःखमुत्पादयन्ति । एव छेदनमदनादिभिः शकलीकृतमूर्त्तीनामपि तया न मरणमकाले  
भवति । कुत ? अनपवर्त्यायुक्त्वात् ।

और चौथी भूमिसे पहले तक वे संकलित असुरोंके द्वारा उत्पन्न

क्रिये गये दुःखकाले भी होते हैं ॥ ५ ॥

देवगति नामक नामकर्मके भवोंमें एक असुर नामकर्म है जिसके उदयस परान् अस्यन्ति  
जो दूसरोंको पँकत है उन्हें असुर कहत हैं । पूव जममें क्रिय गय अतितीव्र सकलैशरूप १५  
परिणामोंसे इन्होंने जो पापकर्म उपाजित क्रिया उसने उदय स य निरग्त किलष्ट रूत  
हैं इसलिये सकिलष्ट असुर कहलाते हैं । सूत्रमें यद्यपि असुरोंका सकिलष्ट विषयण दिया  
ह पर इसका यह अर्थ नहा कि सब असुर नारकियोंको दुःख उत्पन्न करात ह । किन्तु  
अम्बावरीप आवि कुछ असुर ही दुःख उत्पन्न करात ह । मर्यादाने दिखलानक लिये सूत्रमें  
प्राक् चतुर्थ्या यह विशेषण दिया ह । इसस यह दिखलाया है कि ऊपरकी तीन पृथिवियोंमें ही २  
सकिलष्ट असुर बाधाक कारण ह इसस आगे नहीं । सूत्रमें 'च' शब्द पूर्वोक्त दुःखक कारण का  
समुच्चय करनेके लिये दिया है । परस्पर लूव लपाया दृवा सोहका रम पिपाना अत्यन्त  
लपाय गय लौहस्नम्भका आलिंगन कूट और समर कवुधपर चङ्गाना उतागना साहेक घनस भागना  
बसुरा और छरास तरासना लपाय गय क्षार तलस छीचनता तलकी चङ्गाइमें पकाना भाइमें भूजना  
वैतरणों में इवाना यन्त्रसे पेलना आविके द्वारा नारकियोंके परस्पर दुःख उत्पन्न करात ह । इस २५  
प्रकार छेदन भेदन आदिने द्वारा उनका घरीर क्षण्ड क्षण्ड हो जाता है तो भी उनका अकालमें  
मरण नहीं होता है क्यों कि उनकी आयु घटती नहा ।

विशेषण—नारक जीव स्वभावसे बुर स्वभाववाले होते हैं । एक दूसरेको दखने ही उनका  
त्रोष भय उठना है और क एक दूसरेको मारने काटने लगते हैं । उनका घरीर वद्विषिक होता है  
इसलिये उसमें क क्षाना प्रकारक आयुष आगिका आकार धारण कर उनमें दूसरे नारकियोंको पीछा  
पहुँचात हैं । तीसरे मरक तक दबोंका भी गमन होता है इसलिये य भी बृहत्सुख था उन्हें आपसमें १

(१)—जगति भग्नादि-भ । (२) किलष्टा सकिलष्टा असुरा च । (३) नारकान् आ वि १ वि २ ।

यद्येव तदेव तावदुच्यतां नारनाणामामु परिमाणमित्यत आह—

तेष्वेकप्रिसप्तवशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां

परा स्थिति ॥ ६ ॥

यथाक्रममित्यनुवसत । तेषु नरकेषु भूमिक्रमेण यद्यामस्थमेनादयः स्थितयोः  
 १ मिसम्बध्यन्त । रत्नप्रमायामुत्कृष्टा स्थितिरकसागरोपमा । शकराप्रभाया त्रिसागरो  
 पमा । बालुकाप्रभायां सप्तसागरोपमा । पङ्कप्रभाया दशसागरोपमा । धूमप्रभायां  
 सप्तदशसागरोपमा । तमप्रभायां द्वाविंशतिसागरोपमा । महातमप्रभाया त्रयस्त्रिं  
 शत्सागरोपमा इति । परा उत्कृष्टेत्यर्थः । 'सत्त्वानाम्' इति वचन भूमिनियुक्त्यर्थम् ।  
 भूमिषु सत्त्वानामिय स्थिति न भूमीनामिति ।

उक्त सप्तभूमिविन्तीर्णोऽधोलोक । इवानीं त्रियग्लोको वक्तव्यः । यद्य पुन  
 स्त्रियग्लोक ? यतोऽमस्थेया स्वयम्भूरमणपर्यन्तास्तियकप्रक्षयविशेषणावस्थिता द्वीप  
 समुद्रान्ततन्त्रियग्लोक इति । के पुनस्त्रियग्व्यवस्थिता इत्यत आह—

निष्ठा वेते ह और उनका भात प्रत्याघात दक्षकर मजा लूटत है । पर यह काम सब देव नहीं करत  
 किन्तु अम्बावरीष आदि जातिके कुछ ही असुर कुमार बव करते हैं । इतना सब होते हुए भी उन  
 १५ नारकियोंका अकाल मरण नहीं होता इतना यहाँ बिशय जानना चाहिये ।

यदि ऐसा है तो यह बहिये कि उन नारकियोंकी कितनी आय है ? इसी बातको बतलानेके  
 लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

उन नरकोंमें जीषोंकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे एक, तीन, सात,

दस, सत्रह, पारस और सैंतीस सागर हैं ॥ ६ ॥

१ इस सूत्रमें यथाक्रमम्' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । जिससे उन नरकोंमें भूमिक क्रमसे एक  
 सागर आदि स्थितियोंका क्रम समझ हो जाता है । रत्नप्रभामें एक सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।  
 शकराप्रभामें तीन सागर उत्कृष्ट स्थिति है । बालुकाप्रभामें सात सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।  
 पङ्कप्रभामें दस सागर उत्कृष्ट स्थिति है । धूमप्रभामें सत्रह सागर उत्कृष्ट स्थिति है । तम प्रभा  
 में पारस सागर उत्कृष्ट स्थिति है और महातम प्रभामें सैंतीस सागर उत्कृष्ट स्थिति है । परा' शब्द  
 २५ का अर्थ 'उत्कृष्ट' है । और 'सत्त्वानाम्' पद भूमियोंका निगमन्य करनका लिय दिया है । अभिप्राय  
 यह है कि भूमियोंमें जीषोंकी यह स्थिति है भूमियोंकी नहीं ।

सात भूमियोंमें बह हुए अथाशोका बचन किया । अब त्रियग्लोकका बचन करना चाहिये ।

शका—त्रियग्लोक यह मजा क्या है ?

मयाघात—बुद्धि स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त अमर्याद द्वीप समुद्र त्रियग प्रबचविगपरूपमें

१ अबस्थित है इमलिय त्रियग्लोक मजा है ।

अम्बूद्वीपलघणोदावयः शुभनामानो द्वीपसमुद्रा ॥ ७ ॥

जम्बूद्वीपादयो द्वीपा । लवणोदावय समुद्रा । यानि लोके शुभानि नामानि सन्नामानस्ते । तद्यथा—जम्बूद्वीपा द्वीप । लवणोत् समुद्र । घातकीखण्डो द्वीप । कालोद समुद्र । पुष्करवरा द्वीप । पुष्करवरा समुद्र । घारणीवरो द्वीप । वारुणीवर समुद्र । क्षीरवरो द्वीप । क्षीरवरा समुद्र । घृतवरा द्वीप । घृतवरा समुद्र । इक्षुवरो द्वीप । इक्षुवरा समुद्र । नन्दीद्वरवरो द्वीप । नन्दीद्वरवरा समुद्र । अरुणवरा द्वीप । अरुणवरा समुद्र । इत्यवममण्येया द्वीपसमुद्रा स्वयम्भूरमणपयन्ता धेन्तित्या ।

अमीपा विष्णुम्भमशिवेणसम्भानविशेषप्रतिपत्त्यमाह—

द्विद्विविष्णुम्भा पूवपूवपरिक्षेपिणो घलपाकृतय ॥ ८ ॥

द्विद्विरिति 'वीष्णुम्भा'वृत्तिवचन विष्णुम्भद्विगुणस्वध्याप्ययम् । आद्यस्य द्वीपस्य १०  
या विष्णुम्भ तद्द्विगुणविष्णुम्भो लवणजलधि । तद्द्विगुणविष्णुम्भा द्वितीयो द्वीप । तद्द्विगुणविष्णुम्भो द्वितीयो जलधिरिति । द्विद्विविष्णुम्भा यथा त द्विद्विविष्णुम्भा । पूवपूवपरिक्षेपियचन भ्रामनगरादिवद्विनिवेशा मा विनायीति । वलपाकृतवचन धतुरञ्जा

व तिमक रूपस अर्कस्थित क्या है इस बात का ज्ञान कराने के लिये आगका सूत्र कहत है—

अम्बूद्वीप आदि शुभ नामवाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नामवाले समुद्र ॥७॥ १४

जम्बूद्वीप आदि द्वीप ह और लवणाद आदि समुद्र हैं । तात्पर्य यह है कि लोके जितन शुभ नाम ह उन नामवाले व द्वीप समुद्र हैं । यथा—जम्बूद्वीप नामक द्वीप लवणोत् समुद्र घात कीखण्ड द्वीप कालोद समुद्र पुष्करवरा द्वीप पुष्करवरा समुद्र घारणीवर द्वीप वारुणीवर समुद्र क्षीरवर द्वीप क्षीरवरा समुद्र घृतवरा द्वीप घृतवरा समुद्र इक्षुवर द्वीप इक्षुवरा समुद्र नन्दीद्वरवर द्वीप नन्दीद्वरवरा समुद्र अरुणवर द्वीप और अरुणवरा समुद्र इस प्रकार स्वयम्भूरमण पयन्त २ असम्पात द्वीप समुद्र जानने चाहिये ।

अब इन द्वीप समुद्रों के विस्तार रचना और आकारविषयका ज्ञान कराने के लिये आगका सूत्र कहत है—

ष समी द्वीप और समुद्र दूने दून ध्यामवाले, पूर्व पूर्ण द्वीप और समुद्रका

घण्टित वर्गनाल और चूड़ीके आकारवाले ॥ ८ ॥

द्वीप-जम्बूद्वीप का विस्तार दूना दूना है इस बातको दिखाने के लिये गुरुमें द्विद्वि इस प्रकार वीष्णु अथम अध्यावृत्ति कथन है । प्रथम द्वीपका जो विस्तार है लवणसमुद्रका विस्तार उतना दूना है । तथा दूसरे द्वीप का विस्तार तम दूना है और दूसरे समुद्रका इतना दूना है । इस प्रकार उत्तरात्तर दूना दूना विस्तार है । तात्पर्य यह है कि इन द्वीप-जम्बूद्वीप का विस्तार दूना दूना है इत्यप्ये वृत्तमें उन्हें दूने दूने विस्तारवाला कहा है । प्राम और नगरादिकक गणना इन द्वीप-जम्बूद्वीपों ३



विसस्थानान्तरनिवृत्त्यथम् ।

अत्राह जम्बूद्वीपस्य प्रदशसस्थानविष्कम्भा यत्तद्व्यास्तन्मूलत्वादितरविष्कम्भा दिविज्ञानस्येत्युच्यते—

तन्मध्ये मेघनाभिद्वस्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीप ॥ ९ ॥

२. तेषां मध्ये तन्मध्ये । कथम् ? पूर्वोक्तानां द्वीपसमुद्राणाम् । नाभिरिव नाभिः । मेघनाभियस्य स मेघनाभिः । वृत्त आन्तर्यमण्डलोपमानम् । शतानां सहस्रं शतसहस्रम् । योजनानां शतसहस्रं योजनशतसहस्रम् । योजनशतसहस्रं विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजनशतसहस्रविष्कम्भः । कोऽसौ ? जम्बूद्वीपः । कथं जम्बूद्वीपः ? जम्बूद्वीपोपलक्षितत्वात् । उत्तरकुर्णां मध्यं जम्बूद्वीपानादिनिघनं पृथिवीपरिणामां ऋत्रिमं सपरिवारस्तत्पुलक्षितोऽयं द्वीपः ।

रचना न समझी जाय इस बातक वतमानेक सिधे सूत्रमें 'पूर्वपूर्वपरिखोपिण यह बचन दिया है । अर्थात् वे द्वीप और समुद्र उत्तरोत्तर एक दूसरेको घेरे हुए हैं । सूत्रमें जो बरमाण्डलम् बचन दिया है वह चौकीर आवि आकारोंके निराकरण करनेके सिधे दिया है ।

अब पहल जम्बू द्वीपका आकार और बिस्तार कहना चाहिये क्यों कि दूसर द्वीप समुद्रोंका

११. विस्तार आन्तर्यमूलक है इस सिधे आगेका सूत्र कहते हैं—

उन सबके बीचमें गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है । जिसके मध्यमें मेरु पर्वत है ॥ ९ ॥

तन्मध्ये पत्तिका अर्थ है 'उनके बीचमें' ।

शाका—किनके बीच में ?

२. समाधान—पूर्वोक्त द्वीप समुद्रोंके बीचमें ।

नाभिम्यानीय होमस नाभि कहा है । जिसका अर्थ मध्य है । अग्निप्राय यह है कि जिसके मध्यमें मेरु पर्वत है जो सूर्यक मण्डलके समान गोल है और जिसका एक लाख योजन विस्तार है एसा यह जम्बूद्वीप है ।

शाका—इसे जम्बूद्वीप क्यों कहते हैं ?

३. समाधान—जम्बूद्वीपसे उपलक्षित होने के कारण इस जम्बूद्वीप कहते हैं । उत्तरकुर्णों अतादि नियत पृथिवीस धमा हुआ ऋत्रिम और परिवार बृक्षोंस युक्त जम्बूद्वीप है जिसके कारण यह जम्बूद्वीप कहलाता है ।

विशेषाध—अबोकोकता विवचन कर भाय है इसक भाव मध्यलोक है । यह रत्नप्रभा पृथिवीक ऊपरी भाग पर अवस्थित है । इसमें गोल आकारको सिधे हुए और एकके बाद

(१) पूर्वोक्तद्वीप—आ वि १ वि २ धु । (२) नाभिमध्यम् । मेघ आ वि १ वि २ धु ।

(३) परिमाणोक्त-धु ।

तत्र जम्बूद्वीपे पृथग्नि कुलपवर्तैर्विभक्तानि मत्त क्षेत्राणि कानि तानीत्यत  
आह—

भरतह्रैमवत्तहरिविदेहरम्यकहरप्यवत्तरावत्तवर्षा क्षेत्राणि ॥ १० ॥

भरतादय मरुता अनदिनालप्रवृत्ता अनिमित्ता । तत्र भरतवप  
पत्र सप्रिविष्ट ? दक्षिणादिग्भाग हिमवताद्रेस्त्रयाणां समुद्राणां मध्ये ५  
आरोपितचापाकारो भरतवप । विजयाद्रेतेन गङ्गासिधुभ्यां च विभक्त स पट  
खण्ड । क्षुद्रहिमवन्तमुत्तरेण दक्षिणेन महाहिमवन्त पूर्वापरसमुद्रयोमध्ये ह्रमवत्तवप ।

एकको परे हुए असम्ब्यात द्वीप भीर समुद्र हैं । इन सबके बीचमें जम्बूद्वीप ह । इसके बीचमें  
और दूसरा द्वीप समुद्र नहीं है । मद्यपि गोल तो सब द्वीप और समुद्र ह पर व सब पृथीक ममान  
गोल ह और यह घालीक समान गाल ह । इसका म्याम एक काल योजन ह । इसक ठीक बीचमें १  
मर पवत्त ह । यह एक साज चापीस योजन ऊचा है । इसमेंसे एक हजार योजन जमीनमें ह ।  
पालीस योजनकी अक्षीरमें चोनी ह और घप नियमानव हजार योजनका समतलसे श्रुतिका तक  
ह । प्रारम्भमें जमीन पर मर पवत्तका म्यास वम हजार योजन है । ऊपर क्रमस घटना गया ह । जिस  
हिसाबस ऊपर घटा ह उनी हिसाबम जमीनमें उसका म्यास बका ह । मेरु पवत्तन तीन काण्ड हैं ।  
पहला काण्ड जमीनस पांचमी योजनका दूमरा साड बासठ हजार योजनका और तीसरा छतीस  
हजार योजनका है । प्रत्येक काण्डके अन्तमें एक एक कन्ती ह । जिसका एक ओरका म्यास पांच  
मी योजन है । अन्तिम कन्तीका म्याम साभ छह योजन कम ह । एक जमीन पर और तीन इन  
तीन कन्तिया पर इस प्रकार यह चार बनोंम सुगोमित ह । इनक क्रमम भद्रनाम मन्तन मीमनम  
और पांडुक य नाम ह । पहली और दूमरी कन्तीक बाद मरु पवन मीपा गया ह फिर  
भमम घटन मगता ह । इसक चार बनोंमें चारों दिशाओंमें एक एक वनमें चार चार इस हिसाबम २  
मालह परयालय है । पाण्डक वनमें चारो दिशाओंमें चार पाण्डुक दिशाएँ हैं । जिन पर उम उम  
दिशाक क्षत्राम उत्पन्न हुए तीर्थ करका अभिपत्र होता ह । इसका रग पीला ह ।

इस जम्बूद्वीपमें छह कुल्पवर्षाण विभाजित होकर जो मात क्षेत्र ह व कौन म है ? इनी  
बातको बतमान व लिय आनका मूत्र कहत ह—

भरतवर्ष, ह्रैमवत्तवर्ष हरिषर्ष पित्रेह्वर्ष रम्यकवर्ष, इरण्यवत्तवर्ष २५

आर एगवत्तवप य मात क्षेत्र इ ॥ १० ॥

क्षेत्राको भरत आदि मरुता अनदिनाल कान्यम जमी भा रहा ह और अनिमालक ह । इनमेंम  
मरुत क्षत्र बती म्यिन ह । हिमवान् पवत्त दक्षिणमें और तीन समुद्राणि बायम बड हुए  
धनुषक आकारवाला भरत क्षत्र ह जो विजयाध और गगा म्पुम विभाजित होकर छह मण्डामें  
बंन हुआ ह । धनु हिमवान् उलरम और महाहिमवान्क दक्षिणमें तथा पूव पश्चिम समुद्रक ३

(१) धर्षाणि ॥१ ॥ विप्र-विप्रानि मरुता-न भा । (२) याणा व ननु म । (३) विपत्त व न-ज ।

निपघस्य दक्षिणतो महाहिमवत उत्तरत पूर्वापरसमुद्रयोरन्तराले हरिवप । निपघस्यो  
तराश्रीलतो दक्षिणत पूर्वापरसमुद्रयोरन्तरे विदेहस्य सनिवेशो द्रष्टव्यः । नीलत उत्त  
रात् रुक्मिणो दक्षिणात् पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्य रम्यकवर्षं । रुक्मिण उत्तराच्छिखरिणा  
दक्षिणात्पूर्वापरसमुद्रयोर्मध्ये सन्निवेशी<sup>१</sup> हरप्यवतवर्षं । शिखरिण उत्तरतस्त्रयाणा  
ममुद्राणा मध्ये एरावतवप । विजयाद्वेन रत्नारमतोदाभ्या च विभक्त स पदसङ्घः ।

पद मूलपवता इत्युक्त के पुनस्ते कथ वा व्यवस्थिता इत्यत आह—

तद्विभाजितं पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवशिखरिणी

रुक्मिशिखरिणी षषधरपर्वता ॥ ११ ॥

तानि क्षेत्राणि विभजन्त इत्येवशीलास्तद्विभाजिन । पूर्वापरायता इति पूर्वा

परकाटिभ्यां लवणजलघिसर्पिण इत्यर्थं । हिमवदादयाजनादिकालप्रवृत्ता अनिमित्त  
सञ्जा वपविभागहेतुत्वाद्द्वयधरपर्वता इत्युच्यन्त । तत्र क्व हिमवान् ? भरतस्य हृमय  
तस्य च सीमनि व्यवस्थित । क्षुद्रहिमवान् याजनशतोच्छ्राय । हृमवतस्य हरि<sup>२</sup>

बीषमें हैमवत क्षेत्र है । निपघके दक्षिणमें और महाहिमवान्के उत्तरमें तथा पूव और पश्चिम  
समुद्रके बीचमें हरि क्षेत्र है । निपघके उत्तरमें और नीलके दक्षिणमें तथा पूर्व और पश्चिम  
समुद्रके बीचमें विदेहक्षेत्रको रचना है । नीलके उत्तरमें और रुक्मीके दक्षिणमें तथा पूर्व पश्चिम  
समुद्रके बीचमें रम्यक क्षेत्र है । रुक्मीके उत्तरमें और शिखरीके दक्षिणमें तथा पूर्व और पश्चिम  
समुद्रके बीचमें हरप्यवत क्षेत्र है । शिखरीके उत्तरमें और तीन समुद्रोंके बीचमें एरावत क्षेत्र है ।  
जो विजयार्थ और रत्ना रत्नोदास विभाजित होकर छह सङ्घोंमें बँटा हुआ है ।

क्षुद्रपर्वत छह हैं यह पहले कह आय है परन्तु वे कौन हैं और कहा स्थित हैं यह बतलाना  
नाप है अत आगता सूत्र कहत है—

उन क्षेत्रोंको विभाजित करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्ब एमें हिमवान्, महाहिमवान्,  
निपघ, नील, रुक्मी और शिखरिण ये छह धरपर्वत हैं ॥११॥

इन पर्वतोंका स्वभाव उन क्षेत्रोंका विभाग करना है इन लिये इन्हें उनका विभाग करना  
नामा कहा है । य पूर्वसे पश्चिम तक लम्ब है । इसका यह भाव है कि इन्होंने अपने पूव और  
पश्चिम दिशे लवण समुद्रका मार्ग किया है । य हिमवान् आदि महाए अनादि बालम जलो आ  
रही है और बिना निमित्तक है । इन पर्वतों कारण क्षेत्रोंका विभाग होता है इसलिये इन्हें  
धरपर्वत कहत है । हिमवान पर्वत कहा है जब इस बतलाना—भरत और हैमवत राजकी  
नामा पर हिमवान पर्वत स्थित है । इस क्षुद्र हिमवान् भी कहते है । यह नौ याजन ऊंचा है ।

(१) नीलका उत्त आ दि १ दि २ । (२) उत्तर पश्चिमकी दक्षिण आ । (३) शिखरीके है पु ।

(४)—निपघका उत्त आ दि १ दि २ । (५) नीलका उत्त आ दि १ दि २ । (६) पूर्वपश्चिम च विभा आ दि १ दि २ ।

वपस्य च विभागकरो महाहिमवान् द्विजाजनगतोच्छाय<sup>१</sup> । विदेहस्य दक्षिणता हरि  
वपस्यात्तरतो निपधो नाम पवतश्चतुर्भोजनगतोच्छाय । उत्तर त्रयोऽपि पवता स्ववपवि  
भाजिना व्याख्याता । उच्छायश्च तेषां चत्वारि द्वे एक च याजनगत वेदितव्यम्<sup>२</sup> ।  
सर्वेषां पर्वतानामुच्छायस्य चतुर्भागोऽवगाहः ।

तेषां वणविधोपप्रतिपत्त्यमाह—

हेमानु नतपनीयधीरुदरकतहेममया ॥ १२ ॥

त एते हिमवदान्त्य पर्वता ह्यमादिमया वेन्तिध्या ययात्रमम् । हेममया हिमवान्  
चीनपट्टवण । अजुनमयो महाहिमवान् शुक्लवण । तपनीयमयो निपधस्तरुणान्त्य  
वण । वद्वयमया नीला मयूरप्रीवाभ । रजतमयो रुक्मी शुक्ल । हेममय शिखरी  
चीनपट्टवण ।

पुनरपि तैर्द्विष्टोपणार्थमाह—

मणिविचित्रपाद्वर्षा उपरि मूले च तुल्यविस्तारा ॥ १३ ॥

नानावणप्रभादिगुणोपेतर्मणिभिविचित्राणि पाद्वर्षाणि येषां ते मणिविचित्रपाद्वर्षा ।

हेमवत और हरिवर्षका विभाग करन वाला महाहिमवान् है । यह दो सौ योजन ऊंचा है । विदेह  
क दक्षिणमें और हरिवर्षक उत्तरमें निपध पर्वत है । यह चार सौ योजन ऊंचा है । इसी प्रकार  
भाषक तीन पर्वत भी अपने अपने शत्रोंका विभाग करनवाले जानन चाहिये । उनकी ऊंचाई  
क्रमशः चारसौ दोसौ और सौ योजन जाननी चाहिये । इन सब पर्वतोंकी अड़ अपनी ऊंचाईका  
एक बर चार भाग है ।

अब इन पर्वतोंके वर्ष विद्यपत्तिका ज्ञान करनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

य छहों पर्वत क्रमसे सोना, चांदी, तपाया हुआ सोना, वैदूर्यमणि,

चांदी और सोना इनके समान रगवाले हैं ॥ १२ ॥

य पर्वत क्रमसे हम आदि वर्णबाल जानने चाहिये । हिमवान् पर्वतका रग हममय अर्थात् पीनी  
रगमक समान है । महाहिमवान्का रग अजुनमय अर्थात् सफेद है । निपध पर्वत का रग तपाय  
गये सोनके समान अर्थात् उगठ हुए सूर्य के रपक समान है । नील पर्वतका रग वद्वयमय अर्थात्  
मांसक गलकी आभावाला है । रुक्मी पर्वतका रग रजतमय अर्थात् सफेद है और शिखरी पर्वतका  
रग हेममय अर्थात् पीनी रगमक समान है ।

इन पर्वतोंकी और विद्यपत्तिका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इनके पाद्वर्ष मणियोंसे विचित्र-विचित्र हैं तथा ये ऊपर, मध्य

और मूलमें समान विस्तारवाले हैं ॥ १३ ॥

इन पर्वतोंके पाद्वर्ष भाग नाना रंग और नाना प्रकारकी प्रभा आदि गुणोंसे युक्त मणियोंसे विचित्र

अनिष्टसम्भानस्य निवृत्यथमुपर्यादिवचन क्रियत । च'शब्दो मध्यसमुच्चयार्थः । य  
एषा मूले विस्तारः स उपरि मध्ये च तुल्यः ।

तेषां मध्ये लम्बास्पदा ह्यत्र उच्यन्ते—

पद्यमहापद्यतिगिच्छकेसरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रस्वास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥

पद्यो महापद्यस्तिगिच्छ केसरी महापुण्डरीक पुण्डरीक इति तेषां हिमवदादीना  
मुपरि यथाक्रममेते लक्ष्या वेदितव्याः ।

तत्राद्यस्य सस्थानविशेषप्रतिपत्त्यथमाह—

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तबद्धबिष्कम्भो ह्रस्वः ॥ १५ ॥

प्राक्प्रत्यक योजनसहस्रायाम उदगावाक पञ्चयोजनशतविस्तारो षड्रमयतलो

द्विविधमणिमनमविचित्रिततट पद्यनामा ह्रस्वः ।

तस्यावगाहप्रकल्पपर्यमिदमुच्यते—

दशयोजनावगाहः ॥ १६ ॥

अवगाहाऽथ प्रवेशो निम्नता । दशयोजनावगाहोऽप्य दशयोजनावगाहः ।

हैं इस क्रिय सूत्रमें इन्होंने मणियोंसे विचित्र पार्श्वबाले कहा है । अनिष्ट आकारके निराकरण करने  
के लिये सूत्रमें 'उपरि' आदि पद रखे हैं । 'च' शब्द समुच्चयवाची है । तात्पर्य यह है कि इनका  
मूलमें जो विस्तार है वही ऊपर और मध्यमें है ।

इन पर्वतोंके मध्यमें जो तालाब हैं उनका कथन करनके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

इन पर्वतोंके ऊपर क्रमसे पद्य, महापद्य, तिगिच्छ, केसरी,

महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये तालाब हैं ॥ १४ ॥

पद्य महापद्य तिगिच्छ केसरी महापुण्डरीक और पुण्डरीक ये छह तालाब हैं जो उन हिम  
बाल आदि पर्वतों पर क्रमसे जानना चाहिये ।

इनमेंसे पहला तालाबने आकार विशेषका ज्ञान करानके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पहला तालाब एक द्वार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है ॥ १५ ॥

पद्य नामक तालाब पूर्व और पश्चिम एक द्वार यात्रत लम्बा है और पांचमौ योजन चौड़ा

है । इनका तलभाग बज्रम बना हुआ है । तथा इसका तट भाग माना प्रचारक मणि और सीतले  
विचित्रविचित्र है ।

अब इसकी गहराई दिग्दालेक क्रिय आगेका सूत्र कहते हैं—

दश योजना गहराई ॥ १६ ॥

अवगाह अथ प्रवेश और निम्नता ये एवार्थवाची नाम हैं । पद्य तालाबकी गहराई दश योजन

तेमध्ये किम्—

तमध्ये योजन पुष्करम् ॥ १७ ॥

योजनप्रमाण याजनम् क्रोशायामपत्रत्वात्क्रोशद्वयविष्कम्भकणिकत्वाच्च योजनायामविष्कम्भम् । जलतलात्क्रोशद्वयाच्छायनात् तावद्वहलपत्रप्रचय पुष्करमवगन्तव्यम् ।

इतरेषां ह्यदाना पुष्कराणां चायामादिनिर्नानायमाह—

सद्द्विगुणद्विगुणा ह्यवा पुष्कराणि च ॥ १८ ॥

स च तच्च ते तयोर्द्विगुणौ द्विगुणास्तद्द्विगुणद्विगुणा इति द्वित्व व्याप्तिर्ज्ञापनायम् । कन द्विगुणा ? आयामादिना । पक्षहृदम्य द्विगुणायामविष्कम्भभावगाहो महापक्षो ह्यव । तस्य द्विगुणायामविष्कम्भभावगाहस्तिगिच्छा ह्यव । पुष्कराणि च । किम् ? द्विगुणानि द्विगुणानौत्यभिसम्बध्यत ।

तन्निवामिनीना दर्वीना मञ्ज्राजीवितपरिवारप्रतिपात्नायमाह—

हं यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

इसके धीचमें एक योजनका कमल है ॥ १७ ॥

सूत्रमें जो 'योजनम्' पद दिया है उससे एक योजन प्रमाण रत्ना चाहिये । तात्पर्य यह है कि कमलका पत्ता एक कास लम्बा है और उसकी कणिकाना विस्तार दो कोसका है इसलिये कमल एक योजन लम्बा और एक योजन विस्तार वाला है । इस कमल की नास जलजल दो कोस ऊपर उठी है और इसका पत्तोंकी उतनी ही मोटाई है । इस प्रकार यह कमल जानना चाहिये ।

अब हमारे तात्पर्य और कमलकी लम्बाई आदिका ज्ञान करने के लिय आगेका सूत्र कहते हैं—

आगक तालाय और कमल दून दूने हैं ॥ १८ ॥

मन्त्रम जो तद् पद आया है उससे तात्पर्य और कमल दाना का ग्रहण किया है । आगक तात्पर्य और कमल दून दून है इस व्याप्तिका ज्ञान करनेके लिय सूत्रमें 'तद्द्विगुणद्विगुणा' कहा है ।

पक्ष—य तालाय और कमल किसकी अगता दून है ?

समाधान—लम्बाई आदिकी अपक्षा ।

पक्ष तात्पर्यकी जा लम्बाई विस्तार और गहराई है महापक्ष तात्पर्यकी लम्बाई विस्तार और गहराई सम दून है । इसमें तिगिच्छ तात्पर्यकी लम्बाई विस्तार और गहराई दूनी है ।

पक्ष—कमल क्या है ?

समाधान—य भी लम्बाई आदिकी अपक्षा दून दून है एसा यहा सम्बन्ध करना चाहिये ।

मन्त्रम निवामनबाली दविपात्त माम आयु और परिवारका ज्ञान करनेके लिय आगेका सूत्र कहते हैं—

(१)-आग । तस्यप्य योजनम् अत्र १ वि २ । (२)-तद्द्विगुणा तद्द्विगुणात् १ । (३) ज्ञानायम् १ । (४)-गच्छत् १ । (५)-गच्छत् १ ।



एकत्र सवासा प्रसङ्गनिवृत्त्यय दिग्विद्योपप्रतिपत्त्यय चाह—

द्वयोद्भयोः पूर्वा पूर्वगा ॥२१॥

द्वयोद्भयो सरितारेकैक क्षेत्र विषय इति वाक्ययोपाभिसम्बन्धादेकत्र सर्वासां प्रसङ्गनिवृत्ति कृता । पूर्वा पूर्वगा इति वचन दिग्विद्योपप्रतिपत्त्ययम् । तत्र पूर्वा मा सरितस्ता पूर्वगा । पूर्वं जलधि गच्छन्तीति पूर्वगा । किमपेक्ष पूर्वत्वम् ? सूत्रनिर्देशापेक्षम् । यद्येव गङ्गासिध्वाण्य मत्स्य पूर्वगा इति प्राप्तम् ? नप दाप द्वयोद्भयोस्त्यभि सम्बन्धात् । द्वयोद्भयो पूर्वा पूर्वगा इति वेदितव्या ।

इतरासां दिग्विभागप्रतिपत्त्ययमाह—

शोषास्त्वपरगा ॥ २२ ॥

द्वयोद्भयोर्या अवशिष्टास्मा अपरगा प्रत्येतव्या । अपरसमुद्र गच्छन्तीत्यपरगा । तत्र पक्षह्युत्प्रमवा पूर्वतोरणद्वारनिगता गङ्गा । अपरतोरणद्वारनिगता सिन्धु । उदीच्य तोरणद्वारनिगता रोहितास्या । महापक्षह्युत्प्रमवा अवाच्यतारणद्वारनिगता राहित् ।

एकस्थानमें सबका प्रसंग प्राप्त होता है अतः इसका निराकरण करके विद्या विद्यापका ज्ञान करानके लिय आगेका सूत्र कहत हैं—

दो दो नदियोंमेंसे पहली पहली नदी पूर्व समुद्रको जाती है ॥२१॥

इस सूत्रमें 'दो दो नदियाँ एक एक क्षत्रमें हूँ इस प्रकार वाक्यविभक्तका सम्बन्ध कर कनेसे एक क्षत्रमें सब नदियोंके प्रसंग होनेका निराकरण हो जाता है । 'पूर्वा पूर्वगा' यह वचन विद्याविद्यापका ज्ञान करानके लिय लिया हूँ । इन नदियोंमें जो प्रथम नदियाँ हैं वे पूर्व समुद्रमें जाकर मिली हैं । सूत्रमें जा 'पूर्वगा' पद है उसका अर्थ पूर्व समुद्रको जाती है यह है ।

घना—पूर्वत्व किं अपसास है ?

समाधान—सूत्रमें किं गय निर्देशको अपसा ।

घना—यदि एना है तो गंगा सिन्धु आदि सात नदियाँ पूर्व समुद्रको जानवाली प्राप्त होती हैं ? समाधान—यह कहा दोष नहीं क्योंकि 'द्वयोद्भयो इत्ये पदों का सम्बन्ध है । तात्पर्य यह है कि दो नदियाँ प्रथम प्रथम नदी कह कर पूर्व समुद्रमें मिली हूँ ।

अब इन नदियोंके दिशाविद्यापका ज्ञान करानके लिय आगेका सूत्र कहत हूँ —

किन्तु उप नदियाँ पश्चिम समुद्रको जाती हैं ॥२२॥

दो दो नदियोंमें जा दाप नदियाँ हैं वे कह कर पश्चिम समुद्रमें मिली हूँ । अपरगा पदका अर्थ अपर समुद्रको जाती हूँ यह है । उनमेंसे पूर्व तासावम उत्पन्न हुई और पूर्व तासाव द्वारस निकली हुई गंगा नदी है । पश्चिम तोरण द्वारसे निकली हुई सिन्धु नदी है तथा उत्तर तोरण द्वार से निकली हुई राहित्यास्या नदी है । महापक्ष तासावम उत्पन्न हुई और पश्चिम तोरणद्वार



- उदीच्यतारणद्वारनिगता हरिकान्ता । निगिच्छ ह्रदप्रभवा दक्षिणतोरणद्वारनिगता हरित् ।  
 उदीच्यतोरणद्वारनिगता सीताम् । केसरि ह्रदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिगता सीता ।  
 उदीच्यतारणद्वारनिगता नरकान्ता । महापुण्डरीक ह्रदप्रभवा दक्षिणद्वारनिगता नारी ।  
 उदीच्यतोरणद्वारनिगता रूप्यकूला । पुण्डरीक ह्रदप्रभवा अवाच्यतोरणद्वारनिगता सुव  
 ५ र्णकूला । पूर्वतोरणद्वारनिगता रक्ता । प्रेक्षीच्यतोरणद्वारनिगता रक्तोत्ता ।

तासां परिवारप्रतिपादनायमाह—

घसुबक्षनबीसहस्रपरिवृता गङ्गासिम्ब्यावयो नद्यः ॥ २३ ॥

- किमय गङ्गासिध्वावि ग्रहण क्रियते ? नदीग्रहणायम् । प्रवृत्तास्ता अभि  
 सम्बन्ध्यन्ते ? नव शङ्खधम् अन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा इति अपरगाणामेव  
 १ ग्रहण स्यात् । गङ्गादिग्रहणमवास्तीति चेत् ? पूर्वगाणामेव ग्रहण स्यात् । अत उभयीनां  
 ग्रहणार्थं गङ्गासिध्वावि' ग्रहण क्रियत । नदी' ग्रहण द्विगुणा द्विगुणा इत्यभिसम्बन्धार्थम् ।

- निकली हुई रोहित नदी ह तथा उत्तर तोरणद्वारस निकली हुई हरिकान्ता नदी है । तिमिच्छ  
 तालाबसे उत्पन्न हुई और दक्षिण तारणद्वारसे निकली हुई हरित नदी है और उत्तर तारण द्वारसे  
 निकली हुई सीतोदा नदी है । केसरी तालाबसे उत्पन्न हुई और दक्षिण तोरणद्वारसे निकली हुई  
 १५ सीता नदी है तथा उत्तर तोरणद्वारसे निकली हुई नरकान्ता नदी है । महापुण्डरीक तालाबसे  
 उत्पन्न हुई और दक्षिण तोरणद्वारसे निकली हुई नारी नदी है । तथा उत्तर तोरणद्वारसे निकली  
 हुई रूप्यकूला नदी है । पुण्डरीक तालाबसे उत्पन्न हुई और दक्षिण तोरणद्वारसे निकली हुई  
 सुवर्णकूला नदी है । पूर्व तोरणद्वारसे निकली हुई रक्ता नदी है और पश्चिम तोरणद्वारसे निकली  
 हुई रक्तोदा नदी है ।

- २ अब इनकी परिवार-नदियोंका कथन करनेके लिय आगेका सूत्र कहते हैं—  
 गगा और सिन्धु आदि नदियोंकी चौदह चौदह हजार परिवार नदियां हैं ॥२३॥  
 शका—गगा सिन्धु आदि' पर्वका ग्रहण किसलिये किया ह ?

समाधान—नदियोंका ग्रहण करनेके लिये ।

शका—उनका तो प्रकरण है ही अत गगासिन्धुआदि' पर्वके बिना ग्रहण किय ही उनका  
 २५ सम्बन्ध हो जाता है ?

समाधान—एसी शका नहीं करनी चाहिये क्योंकि अनन्तरका विधान होता है या प्रतिषेध'  
 इस नियमके अनुसार पश्चिमकी ओर बहनेवाली नदियोंका ही ग्रहण होता जो कि दृष्ट नहीं  
 अत सूत्र म 'गगासिन्धुआदि' पर्व दिया है ।

शका—तो सूत्रमें गगादि इतने पर्वका ही ग्रहण रहे ?

- ३० समाधान—यदि 'गगादि' इतना पर्वका ही ग्रहण किया जाय तो पूर्वकी ओर बहनेवाली

गङ्गा चतुदशानदीमहस्रपरिवृता । सिंघुरपि । एवमुत्तरा अपि नद्य प्रतिक्षेत्र तद्द्विगुणद्वि  
गुणा भवन्ति आ विदेहान्तात् । तत उत्तरा अर्द्धादीना ।

उक्तानां क्षेत्राणा विष्कम्भप्रतिपत्त्यथमाह—

भरत पर्वविशेषश्चयोजनशतविस्तारः पट चकोनविंशतिभागा योजनस्य ॥ २४ ॥

पठविंशति विद्यति पठविंशति । पठविंशतिरधिक्यता येपु तानि पठविंशानि । ५  
पठविंशानि पञ्चयाजनगतानि विस्तारो यस्य पठविंशपञ्चयोजनशतविस्तारो भरतः ।  
किमतावानेव ? न इत्याह पट चकोनविंशतिभागा याजनस्य विस्तारोऽप्येत्यमिसम्बध्यते ।

इतरया विष्कम्भविशेषप्रतिपत्त्यथमाह—

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारो षडधरवर्या विदेहागता ॥ २५ ॥

तैता भरताद् द्विगुणा द्विगुणो विस्तारो येया स इम तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारो । १०

केत ? षडधरवया । किं सर्वे ? न इत्याह विदेहान्ता इति ।

नदियोंका ही ग्रहण होय जा भी इष्ट नहीं । अतः दोनों प्रकारकी नदियोंका ग्रहण करतक स्थि  
'गगामिम्ब्वानि' पदका ग्रहण किया है ।

मद्यपि गगामिम्ब्वानि' इत्यन पदक ग्रहण करनेस ही यह बोध हो जाता है कि य नदियां हैं फिर  
भी सूत्रमें जो 'नदी' पदका ग्रहण किया है वह द्विगुणा द्विगुणा इत्यक सम्बन्धके स्थिय किया है । १५

गगाकी परिवार नदी चौदह हजार हैं । इसी प्रकार सिन्धुकी भी परिवार नदी चौदह हजार  
हैं । इस प्रकार आगकी परिवार नदियां बिन्दुक्षेत्र पर्यन्त दूनी दूनी होती गइ हैं । और इमने  
आपकी परिवार नदियां आधी आधी होनी गईं ह ।

अब उक्त क्षेत्रके विस्तारका गान करानक स्थिय आगका सूत्र कहत ह—

भरत क्षेत्रस्य विस्तार पांच सौ छत्तीस सही छह षटे उन्नीस योजन है ॥२४॥ २

यहाँ टीकाम पहल 'पठविंशपञ्चयाजनशतविस्तार' पदका समान किया गया ह जिनका  
अभिप्राय यह ह कि भरतवर्य पाँचसौ छत्तीस योजनप्रमाण विस्तार है ?

पदका—क्या इमका इतना ही विस्तार ह ।

समाधान—नहीं क्याकि इमका एक योजनका छह षटे उन्नीस योजन विस्तार और जोड़  
सना चाहिए । २५

अब इतर क्षेत्रका विस्तार विगणका ज्ञान करानक स्थिय आगका सूत्र कहत हैं—

विन्दु पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रोंके विस्तार भरतक्षेत्रक विस्तारमे दूना दूना है ॥२५॥

जिनका भरतमे दूना दूना विस्तार ह व भरतमे दूना दूना विस्तारवाक्ये कह गय ह । यहाँ  
तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारो म बहुव्रीहि समान ह ।

पदका—व दूना दूना विस्तारवाक्य क्या है ?

समाधान—यवन और क्षेत्र ।

अथात्तरयां कथमित्यत आह—

उत्तरा वक्षिणस्तुत्या ॥ २६ ॥

उत्तरा ऐरावताभ्यां नीलान्ता भरतादिभिर्दक्षिणस्तुत्या द्रव्यव्या । अतीतस्य सर्वस्माय विशेषो वदितव्य । तेन हृदपुष्करादीनां तुल्यता योज्या ।

१ अत्राह उक्तेषु भरताविषु क्षेत्रेषु मनुष्याणां किं तुल्योऽनुभवाः आहोस्वि त्स्ति वक्षिणत्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

भरतरावतयोर्वृद्धिहासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिष्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥

वृद्धिश्च ह्रासश्च वृद्धिहासौ । काभ्याम् ? षट्समयाभ्यामुत्सर्पिष्यवसर्पिणीभ्याम् । कया ? भरतरावतयो । न तयो क्षेत्रयोर्वृद्धिहासौ स्त असम्भवात् । तत्स्थानां मनुष्याणां वृद्धिहासौ भवत । अथवाधिकरणनिर्देश । भरत ऐरावते च मनुष्याणां वृद्धिहासाविति । विकृती वृद्धिहासौ ? अनुभवायु प्रमाणादिकृती । अनुभव

शका—क्या सबका दूना दूना बिस्तार है ?

समाधान—नहीं किन्तु विवह तक दूना दूना बिस्तार है ।

१२ व्यागके पर्वत और क्षत्रोंका विस्तार किस प्रकार है अब इस बातके बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उत्तरके क्षेत्र और पर्वतोंका बिस्तार दक्षिणके क्षेत्र और पर्वतोंके समान है ॥२६॥

‘उत्तर’ इस पदसे ऐरावत क्षत्रसे लेकर नीरूक पयन्त क्षेत्र और पर्वत सम्ये गये हैं । इसका बिस्तार दक्षिण विशावर्ती भरतादिक समान जानना चाहिये । पहलू जितना भी कथन कर आये हैं उन सबमें यह विशेषता जानना चाहिये । इससे ताकाद और कमरू आदिकी समानता रूपा सेना चाहिये । यहाँ पर शकाकार कहता है कि इन पूर्वोक्त भरतादि क्षेत्रोंमें मनुष्योंका अनमन आदि क्या समान है या कुछ विशेषता है । इस शका का समाधान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

भरत और ऐरावत क्षेत्रोंमें उत्सर्पिणीके और अवसर्पिणीके छह समयोंकी अपेक्षा वृद्धि और हास होता रहता है ॥२७॥

वृद्धि और ह्रास इन दोनों पदोंमें कर्मधारय समास है ।

२४ शका—किनकी अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता है ?

समाधान—छह समयोंकी अपेक्षा ।

शका—किनका छह समयोंकी अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता है ।

समाधान—भरत और ऐरावत क्षेत्रका ।

१ इसका यह मतलब नहीं कि उन क्षेत्रोंका वृद्धि और ह्रास होता है, क्योंकि ऐसा होना असम्भव है । किन्तु उन क्षेत्रोंमें रहनेवाले मनुष्योंका वृद्धि और ह्रास होता है ।

उपभाग आयुर्जीवितपरिमाणम्, प्रमाण धरीरागमेध इत्येवमादिभिर्वृद्धिहासा मनुष्याणां भवति । किहेतुको पुनस्तौ ? कालहेतुको । स च काल द्विविध—उत्सर्पिणी अवसर्पिणी चेति । तद्भेदात् प्रत्येक पट । अन्वयसञ्ज्ञे चते । अनुभवान्भिरुत्सर्पणगीला उत्सर्पिणी । तरेवावसर्पणगीला अवसर्पिणी । तत्रावसर्पिणी पञ्चविधा—सुपमसुपमा सुपमा सुपमदुप्यमा दुप्यमसुपमा दुप्यमा अतिदुप्यमा चेति । उत्सर्पिण्यपि अतिदुप्यमाद्या सुपमसुपमान्ता पञ्चविधव भवति । अवसर्पिण्या परिमाण सागरापमकाटीकात्पथ । उत्सर्पिण्या अपि तावत्य एव । सोभयी कल्प इत्याख्यायते । तत्र सुपमसुपमा चतस्र सागरापमकोटीकात्पथ । तदादा मनुष्या उत्तरकुम्भमनुष्यतुल्या । तत्र क्रमेण हानी सत्या सुपमा भवति तिस्र सागरापमकाटीकात्पथ । तदादौ मनुष्या हरिवपमनुष्यसमा । तत्र क्रमेण हानी सत्या सुपमदुप्यमा भवति द्वे सागरापमकोटीकोटयो । तदादौ मनुष्या ह्रस्वतकमनुष्य

अथवा, भरतीराजतयो पट्टी विभक्ति न होकर अधिकरणमें यह निर्णय किया है जिससे इस प्रकार अथ होता है कि भरत और ऐरावत क्षत्रमें मनुष्योंकी वृद्धि और ह्रास होता है ।

पथा—यह वृद्धि और ह्रास किनिमित्तक होता है ?

समाधान—अनुभव आयु और प्रमाण आदि निमित्तन होता है ।

अनुभव उपभोगको कहते हैं जीवित रहनेके परिमाणका आयु कहते हैं । और धरीरकी ऊँचाईको प्रमाण कहते हैं । इस प्रकार इन पूर्वोक्त कारणोंसे और अन्य कारणोंसे मनुष्याका वृद्धि और ह्रास होता है ।

पथा—य वृद्धि ह्रास किस निमित्तसे होते हैं ?

समाधान—ये कालके निमित्तसे होते हैं ।

वह काल दो प्रकारका है—उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी । और इनमेंसे प्रत्येकके छह भेद हैं । य दोनों काल साषक नामवाले हैं । जिसमें अनुभव आदिकी वृद्धि होती है वह उत्सर्पिणी काल है । और जिसमें इनका ह्रास होता है वह अवसर्पिणी काल है । अवसर्पिणाके छह भेद हैं—सुपमसुपमा सुपमा सुपमदुप्यमा दुप्यमसुपमा दुप्यमा और अतिदुप्यमा । इसी प्रकार उत्सर्पिणी भी अतिदुप्यमासे लेकर सुपमसुपमा तक छह प्रकारका है । अवसर्पिणी कालका परिमाण दस काड़ाकोड़ी मागर् है और उत्सर्पिणीका भी इतना ही है । ये दोनों मिलकर एक कल्पकाल बने जाते हैं । इनमेंसे सुपमसुपमा चार कोड़ाकोड़ी सागरका होता है । इसके प्रारम्भमें मनुष्य उत्तरकुम्भके मनुष्योंके समान होते हैं । फिर क्रमसे हानि हानिपर तीन कोड़ाकोड़ी मागर् प्रमाण सुपमा काल प्राप्त होता है । इसके प्रारम्भमें मनुष्य हरिवपके मनुष्योंके समान होते हैं । तदनन्तर क्रमसे हानि हानि पर दो कोड़ाकोड़ी मागर् प्रमाण सुपमदुप्यमा काल प्राप्त होता है । इसके प्रारम्भमें मनुष्य ह्रस्वतक

समा । तत क्रमण हानौ सत्यां दुष्यमसुपमा भवति एकमागनामकोटीकाटी द्विषत्वा  
रिषाद्वयसहस्रोना । सदावौ मनुष्या विदेहजनसुल्या भवन्ति । तत क्रमेण हानौ सत्या  
दुष्यमा भवति एकविंशतिवषसहस्राणि । तत क्रमण हानौ सत्यामतिदुष्यमा भवति  
एकविंशतिवषसहस्राणि । एवमुत्सर्पिष्यपि विपरीतक्रमा वेदितव्या ।

अथेतरासु भूमिषु काञ्चस्येत्यत आह—

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता ॥ २८ ॥

ताभ्यां भरतरावताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिता भवन्ति । न हि तत्रोत्सर्पिष्यव  
मपिष्यौ स्त ।

किं तासु भूमिषु मनुष्यास्तुल्यायुष आहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविषोष इत्यत आह—

एकद्वित्रिपत्योपमस्थितयो ह्रमवतकहारिवषकवकुरवका ॥ २९ ॥

ह्रमवत भवा ह्रमवतका इत्येव 'वुञ्जि' सति मनुष्यसम्प्रत्ययो भवति । एव  
मुत्तरयोरपि । ह्रमवतकादयस्त्रयः । एकादयस्त्रयः । तत्र यथासम्यग्मभिसम्यन्ध क्रियत ।  
एकपत्योपमस्थितयो ह्रमवतका । द्विपत्यापमस्थितयो हारिवषका । त्रिपत्योपमस्थितयो  
देवकुरवका इति । तत्र पञ्चसु ह्रमवतयु सुषमदुष्यमा सदाऽवस्थिता । तत्र मनुष्या

१५ मनुष्योक्त समान होते है । तदनन्तर क्रमसे हानि होकर ब्यालीस हजार वर्ष कम एक बोझाकोड़ी  
सागरका दुष्यमसुपमा काल प्राप्त होता है । इसके प्रारम्भमें मनुष्य विवेह क्षेत्रके मनुष्योक्त समान  
होते है । तदनन्तर क्रमसे हानि होकर इक्कीस हजार वर्षका दुष्यमा काल प्राप्त होता है । तद  
नन्तर प्रथमे हानि होकर इक्कीस हजार वर्षका अतिदुष्यमा काल प्राप्त होता है । इसी प्रकार  
उत्सर्पिणी भी इससे विपरीत क्रमसे जानना चाहिये ।

२ इतर भूमियोंमें क्या अबस्था है अब इस बातके बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

भरत और एरावतके सिवा क्षप भूमियाँ अवस्थित हैं ॥२८॥

सूत्रमें 'ताभ्याम्' पन्से भरत और एरावत क्षेत्रका ग्रहण किया है । इन दोनों क्षेत्रोंसे क्षप  
भूमियाँ अवस्थित हैं । उन क्षेत्रोंमें उत्सर्पिणी और अक्षसर्पिणी काल नहीं हैं ।

३ इन भूमियोंमें मनुष्य क्या सुख आयुवाले होते हैं या कुछ बिघेपता है । इस बातके  
बतलानेके लिये अब आगेका सूत्र कहते हैं—

ह्रमवत, हरिवर्ष और देवकुठके प्राभियोंकी स्थिति क्रमसे एक, दो  
और तीन पश्य प्रमाण है ॥२९॥

ह्रमवत क्षेत्रमें उत्पन्न हुए ह्रमवतक कहलाते हैं । यहाँ ह्रमवत शब्दसे  
'ब्रह्म' प्रत्यय करके ह्रमवतक शब्द बना है जिससे मनष्योंका ज्ञान होता है । इसी प्रकार आगेके  
हारिवर्षक और देवकुठक इन दो शब्दोंमें ज्ञान सेना चाहिये । ह्रमवतक आदि तीन हैं और एक  
आदि तीन हैं । यहाँ इनका क्रम समझने करने हैं जिससे यह अब हुआ कि ह्रमवत क्षेत्रके मनुष्योंकी  
स्थिति एक पश्यकी है । हरिवर्ष क्षेत्रके मनष्योंकी स्थिति दो पश्यकी है और देवकुठके मनुष्योंकी  
स्थिति तीन पश्यकी है । बाईं हीपमें जो पांच ह्रमवत क्षेत्र हैं उनमें मदा सुषमदुष्यमा काल है । वहाँ

एकपत्यापमायुषा द्विधनुःसहस्रोच्छिताश्चतुश्रमभक्ताहारा नीलास्पलवर्णा । पञ्चसु हरि  
वर्षेषु सुपमा सप्त वस्थिता । तत्र मनुष्या द्विपरयापमायुषश्चतुश्चापसहस्रात्सधा पृष्ठ  
भक्ताहारा दाह्ववर्णा । पञ्चसु देवपुरुषु सुपमसुपमा सदाश्वस्थिता । तत्र मनुष्या  
स्त्रिपत्योपमायुष पृष्ठधनुःसहस्राच्छाया अष्टमभक्ताहारा मनववर्णा ।

अयोत्तरपु भाज्यस्येत्यत आह—

तयोत्तरा ॥ ३० ॥

यथा दक्षिणा व्याख्यातान्तधवोत्तरा वदितव्या । हरण्यवतका हृमवतमस्तुल्या ।  
राम्यका हारिवपमस्तुल्या । देवपुरुषवरोत्तरपुरुषका समाम्याता ।

अथ विदहप्यवस्थितेषु धा स्थितिरित्यत्राध्यत—

विदेहेषु सख्येयकाला ॥ ३१ ॥

सर्वेषु विदेहेषु सख्येयकाला मनुष्या । मत्र बाल सुपमदृष्टमान्तापम सदा-  
श्वस्थित । मनुष्याश्च पञ्चधनुःघतात्सेधा । नित्याहारा । उरवपणनपूवकाटीस्थिति

मनुष्योंकी आयु षण् पन्धकी है शरीरकी ऊँचाई दो हजार धनुष ह उनका आहार एक दिनका  
अन्तरालम होता ह और शरीरका रंग नील कमलक समान ह । पाँच हरियप नामक शत्रोंमें सदा  
सुपमा बाल रहता ह । वहाँ मनुष्योंकी आयु दो पन्धकी ह शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुष ह  
उनका आहार दो दिनका अन्तरालम होता है और शरीरका रंग गीम क समान मफल ह । पाँच देवपुरु  
नामक शत्रोंमें मत्र सुपमसुपमा बाल ह । वहाँ मनुष्योंकी आयु तीन पन्धकी है शरीरकी ऊँचाई  
छह हजार धनुष ह । उनका भोजन तीन दिनका अन्तरालम होता ह और शरीरका रंग मोनेक  
गमान पीम्हा ह ।

उत्तर त्रिधावर्ती धावामें क्या अवस्था ह इसका बतलानेक लिय अब भागका मूत्र कहत है—

दक्षिणक ममान उत्तरमें है ॥ ३० ॥

त्रिग प्रकार दी लक शत्राका व्याख्यान किया उसा प्रकार उत्तरक शत्राका जानना चाहिये ।  
हरण्यवत शत्रक मनुष्योंकी सब बात हमपतक मनुष्योंका समान है रम्यक शत्रक मनुष्योंकी सब बातें  
हरियप शत्रक मनुष्योंका समान ह और देवपुरु शत्रक मनुष्योंका सब बात उत्तरक शत्रक  
मनुष्योंका समान ह ।

पाँच विदेहाम क्या स्थिति है इसका बतलानेक लिय भागका मूत्र कहत ह—

पितृहोमै ममपान वर्षकी आयुवाल प्राणी ह ॥ ३१ ॥

सब विदेहाम मनुष्योंका आयुवाल मनुष्य हीन ह । वहाँ मनुष्योंका बालक अन्त  
समान बाल गता अवस्थित ह । मनुष्योंका शरीरका ऊँचाई पापमो घनता हाता ह व प्रति दिन  
आहार कहत ह । उनकी उत्कृष्ट आयु एक पुरंकाटि वर्षप्रमाण और उत्कृष्ट आयु अन्तम ह त्रप्रमाण

(१)—मनुष्य पुरुषका बतलानेक लिय (२) भाग दुबन्धुगर्भक बतलानेक लिय ।

का । जथन्येनान्तमूहृतायुप । तस्याश्च' सम्बन्धे गाथां पठन्ति—

“पुष्यस्तु दु परिमाण सदरिं खलु काठिसदसहस्ताई ।

छप्पण्यं च सहस्ता बोद्ध्वा वासकोटीण<sup>१</sup> ॥”

उक्तो भरतस्य विष्कम्भ । पुन प्रकारान्तरेण तत्प्रतिपत्त्यथमाह—

३ भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभाग ॥ ३२ ॥

जम्बूद्वीपविष्कम्भस्य योजनशतसहस्रस्य नवतिशतभागीकृतस्यको भागो भरतस्य विष्कम्भ । स पूर्वोक्त एव । उक्त जम्बूद्वीप परिवृत्य वेदिका स्थिता ततः परो लवणोव समुद्रो द्वियोजनशतसहस्रवलयविष्कम्भ । ततः परो घातकीखण्डो द्वीपश्चतुर्योजन शतसहस्रवलयविष्कम्भ ।

४ तत्र वर्षादीनां संख्यादिविधिप्रतिपत्त्यथमाह—

द्विर्घातकीखण्डे ॥ ३३ ॥

भरतादीनां द्रव्याणामिहाभ्यावृत्तिविवक्षिता । तत्र कथं सूच्यते ? अध्याह्निय माणत्रिम्याभ्यावृत्तिघोतनाथं सूच्यते । यथा द्विस्तावानय प्रासाधो मीमत इति । एव हे । इसके सम्बन्धमें एक गाथा कही जाती है—

१५ एक पूर्वकोटिका प्रमाण सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जानना चाहिये । भरत क्षेत्रका विस्तार पहले कह आये । अब प्रकारान्तरेसे उसका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

भरत क्षेत्रका विस्तार जम्बूद्वीपका एकसौ नब्बेवां भाग है ॥३२॥

२ एक लाख योजन प्रमाण जम्बूद्वीपके विस्तारके एकसौ नब्बे भाग करनेपर जो एक भाग प्राप्त हो उतना भरत क्षेत्रका विस्तार है जो कि पूर्वोक्त पांचसौ खण्डोंमें सही छह बट उन्नीस योजन होता है ।

जो पहले जम्बूद्वीप कह आये उसका चारों ओर एक वेदिका है । इसके बाव लवणसमुद्र है जिसका विस्तार दो लाख योजन है । इसके बाव घातकीखण्ड द्वीप है जिसका विस्तार चार लाख योजन है । अब इसमें क्षेत्र आधिकी संख्याका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

३ घातकीखण्डमें क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीपसे दूने हैं ॥३३॥

भरत आदि क्षेत्रोंकी यही भावृत्ति विवक्षित है ।

शका—सूत्रमें 'सुच्यते' प्रत्यय किसलिये किया है ?

समाधान—वाक्य पूरा करनेके लिये जो क्रिया जोड़ी जाती है उसकी भावृत्ति बतलानेके लिये 'सुच्यते' प्रत्यय किया है । जैसे द्विस्तावान् अयं प्रासाधः यहाँ 'सुच्यते' प्रत्ययके रहनेसे यह दूना

(१) तस्यास्तु सम्बन्ध आदि १ वि १ । (२) शीर्ष ॥ ७ ५९

भा । (१) संख्याविधि-मु ।

उक्तो मु ता

द्विर्घातकीस्रण्डे भरतादयो मीय ते इति । तद्यथा—द्राम्यामिप्वाकारपर्वताभ्या दक्षिणोत्तरायताभ्यां एवणोदकालोदकेदिकास्युष्टकोटिम्या विभक्तो घातकीस्रण्ड पूर्वापर इति । तत्र पूर्वस्यै अपरस्य च मध्ये द्वौ मन्दरो । तयोश्चमयो भरतादीनि क्षेत्राणि हिमवदादयश्च वर्षधरपवता । एव द्वौ भरतो द्वौ हिमवन्तो इत्येवमादि सख्यान् द्विगुण वेदितव्यम् । जम्बूद्वीपहिमवदादीना वपघराणां यो विष्णुम्भस्तद्द्विगुणो घातकीस्रण्डे हिमवदादीना वपघराणाम् । वपघराश्चक्ररवदवस्थिता । अरविवरसस्थानानि क्षेत्राणि । जम्बूद्वीपे यत्र जम्बूवृक्षा स्थित तत्र घातकीस्रण्डे घातकीवृक्षा सपरिवारः । तद्योगाद्घातकीस्रण्ड इति द्वीपस्य नाम प्रतीतम् । तत्परिक्षेपी कालोद्य समुद्रः टङ्कच्छिन्नतीर्थः अपत्योजनशतसहस्रवलयविष्णुम्भ । कालोदपरिक्षेपी पुष्करद्वीपः घातकीस्रण्डे अत्योजनशतसहस्रवलयविष्णुम्भः ।

तत्र द्वीपाम्भोनिधिविष्णुम्भद्विगुणपरिक्लृप्तवद्घातकीस्रण्डवर्षादिद्विगुणवृद्धिः प्रसङ्गे विशेषावधारणायमाह—

### पुष्करार्धे च ॥ ३४ ॥

ह यह अनुमान किया जाता है । इसी प्रकार घातकीस्रण्डमें सुन्से भरतादिक दून भात हो जात हैं । यथा—अपन सिरसे एवणोद और कासोदको स्पर्श करनेवासे और दक्षिणसे उत्तर तक लम्ब इप्वाकार नामक दो पर्वतोंसे विभक्त होकर घातकीस्रण्ड द्वीपक दो भाग हो जात हैं—पूर्व घातकीस्रण्ड और पश्चिम घातकीस्रण्ड । इन पूर्व और पश्चिम दोनों स्रण्डोंके मध्यमें दो मन्दर अर्थात् मय पर्वत हैं । इन दोनोंके दोनों ओर भरत आदि क्षत्र और हिमवान् आदि पर्वत हैं । इस प्रकार दो भरत दो हिमवान् इत्यादि रूपसे जम्बूद्वीपसे घातकीस्रण्ड द्वीपमें दूनी सख्या जानना चाहिये । जम्बूद्वीपमें हिमवान् आदि पर्वतोंका जो विस्तार है घातकीस्रण्ड द्वीपमें हिमवान् आदि पर्वतोंका उससे दूना विस्तार है । जहाँ जिस प्रकार आग होत है उसी प्रकार य पर्वत क्षत्रोंके मध्यमें भवस्थित है । और जहाँ सिद्धोंका जो आकार होता है यहाँ क्षत्रोंका वही आकार है । जम्बूद्वीपमें जहाँ जम्बू वृक्षा स्थित है घातकीस्रण्ड द्वीपमें परिवार वृक्षोंका साथ वहाँ घातकी वृक्षा स्थित है । और इससे सम्बन्धसे द्वीपका नाम घातकीस्रण्ड प्रसिद्ध है । इसका घेर हुए कालोद्य समुद्र है । जिसका भाग एसा मान्यम बता है कि उस टीकोस काट दिया हो और जिसका विस्तार आठ लाख योजन है । कालादको घर हुए पुष्करद्वीप है जिसका विस्तार सोलह लाख योजन है ।

द्वीप और समुद्रोंका उत्तरात्तर जिस प्रकार दूना दूना विस्तार बतलाया है उसी प्रकार यहाँ घातकीस्रण्ड द्वीपके क्षेत्र आदि की सख्या दूनी प्राप्त होती है अतः विद्यय निष्पन्न करनेके लिये आगेका सूत्र कहत है—

### पुष्करार्धे उतने ही है ॥ ३४ ॥



श्चति । अनृद्धिप्राप्तार्या पञ्चविधा-क्षेत्रार्या जात्यार्या कर्मर्याश्चारित्रार्या दशनार्या  
श्चति । ऋद्धिप्राप्तार्या ऋप्तविधा बुद्धिविक्रियात्पोबलौपधरसाक्षीणभेदात् ।

म्लच्छा द्विविधा-अन्तर्द्वीपजा कमभूमिजाश्चेति । तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदध-  
रभ्यन्तर<sup>१</sup> पादवैष्ट्यासु निक्ष्वपटौ । तदन्तरपु चापटौ । हिमवच्छिस्तरिणोरुभयोश्च विजया  
५ द्वयान्तरपुषटौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वदिकायास्तिर्यक पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति ।  
विन्दिवन्तरपुष द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शालान्तेषु द्वीपा पट  
योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । निक्षु द्वीपा शतयोजनविस्ताराः । विदिवन्तरपुष  
द्वीपास्तदर्शविष्कम्भा । शालान्तेषु पञ्चविंशतियोजनविस्ताराः ।

तत्र पूर्वस्या दिक्ष्वेकोदका । अपरस्या दिशि लाङ्गुलिन । उत्तरस्या<sup>२</sup> दिश्य  
१ मापभा । दक्षिणस्या<sup>३</sup> दिशि विपाणित । द्वादशणशष्कुलीकर्णप्रार्वरणनलम्बकर्णी  
विदिक्षु । अर्धसिंहद्वयमहिपवगह्व्याध्वौककपिमुक्ता अन्तरेषु । मधमुद्धविद्युमुक्ता

प्राण आम और ऋद्धिरहित आर्य । ऋद्धिरहित आम पाँच प्रकारके हैं—क्षेत्राम जात्याय कर्मय  
चारित्र्याय और दर्शनाय । बुद्धि विक्रिया तप बल औपस रस और अक्षीण ऋद्धिके भेदसे ऋद्धि  
प्राप्त आय सात प्रकारके ह । म्लेच्छ दो प्रकारके हैं—अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ और कर्मभूमिज म्लेच्छ ।

१५ लवण समुद्रके भीतर आठो दिशाओंमें आठ अन्तर्द्वीप हैं और उनके अन्तरात्ममें आठ अन्तर्द्वीप  
और ह । तथा हिमवान और शिखरी इन दोनों पर्वतोंके अन्तमें और दोनों विजयाय पर्वतोंके  
अन्तमें आठ अन्तर्द्वीप ह । इसमेंसे जो दिशाओंमें द्वीप हैं वे वेदिकासे तिरछे पाँचसौ  
याजन भीतर जाकर हैं । विदिशाओं और अन्तरात्मोंमें जो द्वीप हैं वे पाँचसौ पचास योजन भीतर  
जाकर ह । तथा पर्वतोंके अन्तमें जो द्वीप हैं वे छहसौ योजन भीतर जाकर हैं । दिशाओंमें स्थित

२ द्वीपाणा विस्तार मो योजन हैं । विदिशामो भीर अन्तरात्मों में स्थित द्वीपोंका विस्तार उमम  
आया अर्धान् गणाय योजन ह । तथा पर्वताय अन्तमें स्थित द्वीपाणा विस्तार पञ्चसौ योजन ह ।

पूर्व दिशाम एष टांगवाल मनुष्य ह । पदिशम दिशामें पूछवाल मनुष्य हैं । उत्तर दिशामें  
गुग मनुष्य हैं और दक्षिण दिशामें सीगवाल मनुष्य ह । चारा विदिशाओंमें क्रमशः गरगोशक  
समान बानवाल शष्कुली अर्धान् मछली अर्धान् पूहीय समान बानवाल प्रावरणक समान कानवाल  
१५ और लम्ब बानवाल मनुष्य हैं । आठों अन्तराल्म द्वीपोंमें क्रमसे षोडश समान मुगवाल सिंहक  
समान मुगवाल कुतार समान मुगवाल भगाय समान मुगवाल मुअरक समान मुगवालके  
स्याद्य समान मुगवाल बोआ समान मुगवाल और बल्गय गयाम मुगवाल मनुष्य ह ।

(१) मध्यायै अष्टानु दिक्ष्वपटौ वा दि १ दि २ । लक्ष्मीधरेभ्यन्तरेष्वायु दिक्ष्वपटौ वा ।

(२) उत्तरस्यायभापरा वा दि १ दि २ । (३) मध्यायै विपा-आ दि १ दि २ । (४) बरगणाय वा ।

(५) वायुपूर्वदि-अ । (६) वेदविद्य-अ ।

शिक्षरिण उभयोरन्तयो । मत्स्यमुखकालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा दक्षमुखा उत्तरविजयाघस्योभयोरन्तया । गोमुखमेपमुखा दक्षिणविजयाघस्योभयोरन्तयो । एभोरुखा मुदाहाग गृहावासिन । शेषा पुष्पफलाहारा वृक्षवासिन । सर्वे ते पत्योपमायुष ।

ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलादेकयाजनोत्सेधा । लवणोदघेर्वाहृपासर्वेऽप्येव चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्या । तथा कालोदेऽपि षडित्तया । त एतेऽन्तर्द्वीपजा म्लेच्छा । कमभूमिजाश्च शक्यवनधवरपुलिन्दादय ।

का पुनः कर्मभूमय इत्यत्र आह—

पिस्सरी पर्वतक दोनों कोर्षोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप छ उनमें मधक समान मुखवाल और विजलीक समान मुखवाल मनुष्य हैं । हिमवान पर्वतक दोनों कोर्षोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप हैं उनमें मछलीके समान मुखवाल और काष्क समान मुखवाने मनुष्य हैं । उत्तर विजयार्धके वानों कोर्षोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप हैं उनमें हाथीक समान मुखवाल और वषणके समान मुखवाल मनुष्य हैं । तथा दक्षिण विजयार्धके दोनों कोर्षोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप हैं उनमें गायक समान मुखवाले और मदाक समान मुखवाल मनुष्य हैं । इनमेंसे एक टागवाल मनुष्य गुफाओंमें निवास करत हैं और मिन्टीका आहार करत हैं । तथा शेष मनुष्य फूलों और फर्षोंका आहार करत हैं और पड़ों पर रहत हैं । इन सबकी आयु एक पत्यप्रमाण है । य चौबीसों अन्तर्द्वीप जल्की सतहसे एक योजन ऊंच हैं । इसी प्रकार कालो समुद्रमें भी जानना चाहिये । य सब अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं । इनसे अतिरिक्त जो एक मदन धवर और पुलिन्दाविक हैं वे सब कमभूमिज म्लेच्छ हैं ।

विणपाष—पद्लण्डागममें मनुष्याक दो मन्त्रिण्य गये हैं—कमभूमिज और अकमभूमिज । अकमभूमि भोगभूमिका दूसरा नाम है । भागभूमिका एक मद्र कुभोगभूमि है । उसमें जन्म लनवाल मनुष्य ही यहाँ अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कह गये हैं । वय रह पाक मदन धवर और पुलिन्द आदि म्लेच्छ कमभूमिज म्लेच्छ हैं । इसी प्रकार आर्य भी क्षत्रकी अपक्षा दो भागोंमें विभक्त हैं—कमभूमिज आर्य और अकर्मभूमिज आर्य । तीनों भोगभूमियाक मनुष्य अकर्मभूमिज आर्य हैं और कमभूमिज आर्य कमभूमिज आर्य हैं । इनसे अकर्मभूमिज आर्य और म्लेच्छोंके अविगत सम्बन्धित एक धार गुणस्थान हो सकत हैं किन्तु कमभूमिज आर्य और म्लेच्छ अपुत्रत और महाव्रतके भी अधिकारी हैं । इनके समयमासयम और समयस्थानाका विशेष व्याख्यान रुचिभवार क्षपणामार्गमें किया है ।

कमभूमियां कौन कौन हैं, अब इस बातके यत्नानके लिये आगका सूत्र कहत हैं—

(१) दक्षिणदिशि—मु । (२) दक्षिणदिशिपसेऽपि उभयोस्तद्व्येत्तत्वारिगाद्द्वीपा वनतस्त-दि १ ।  
(३) शेषा । तथा कालोदेऽपि जा दि १ ।

किम् ? द्विरित्यनुवतत । किमपेक्षा द्विरावृत्ति ? जम्बूद्वीपभरतहिमवदाद्यपेक्षयैव ।  
कुत ? व्याख्यानत । यथा घातकीखण्डे हिमवदादीना विष्कम्भस्तथा पुष्करार्धे हिमव  
वादीनां विष्कम्भो द्विगुण इति व्याख्यायते । नामानि तायेव इष्वाकारौ मन्दरी च  
पूर्ववत् । यत्र जम्बूवृक्षस्तत्र पुष्कर सपरिवारम् । तत एव तस्य द्वीपस्य नाम रू  
५ पुष्करद्वीप इति । अथ कथं पुष्कराद्धमञ्ज्ना ? मानुषोत्तरशस्त्रेण विभक्ताघत्वात्पुष्कराघ  
सञ्ज्ञा ।

अत्राह किमथ जम्बूद्वीपहिमवदादिसस्या द्विरावृत्ता पुष्करार्धे भ्रम्यत न पुन  
कृत्स्न एव पुष्करद्वीपे ? इत्यत्राप्यते—

प्राङ् मानुषोत्तरान्मनुष्या ॥ ३५ ॥

पुष्करद्वीपबहुमध्यवेशभागी बल्यवृत्ता मानुषोत्तरो नाम शल । तस्मात्प्रागव

यहां द्वि' इस पदकी अनुवृत्ति होती है ।

शका—द्वि' इस पदकी किसकी अपेक्षा अनुवृत्ति होती है ?

समाधान—जम्बूद्वीपक भरत आदि लग और हिमवान आदि पर्वतोंकी अपेक्षा 'द्वि' इस  
पदकी अनुवृत्ति होती है ।

१२ शका—यह कैसे समझा जाता है ?

समाधान—व्याख्यानसे ।

जिस प्रकार घातकीखण्ड द्वीपमें हिमवान आदिका बिस्तार कहा है उसी प्रकार पुष्करार्धमें  
हिमवान आदिका बिस्तार बूना बतलाया है । नाम वही है । दो इष्वाकार और दो मन्दर  
पर्वत पहलक समान जानना चाहिये । जहाँ पर जम्बूद्वीपमें जम्बू वृक्ष है पुष्कर द्वीपमें वहाँ  
२ अपन परिवार वृक्षोंके साथ पुष्करवृक्ष है । और इसीलिये इस द्वीपका पुष्करद्वीप यह नाम रू  
हुमा है ।

शका—इस द्वीपको पुष्करार्ध यह संज्ञा कैसे प्राप्त हुई ?

समाधान—इस द्वीपके मानुषोत्तर पर्वतक कारण दो विभाग हो गये हैं अतः आगे द्वीपको  
पुष्करार्ध यह संज्ञा प्राप्त हुई ।

२३ यहाँ इष्वाकारका कहना है कि जम्बूद्वीपमें हिमवान आदिकी जो सक्या है उससे हिमवान  
आदिकी बूना सग्या आगे पुष्कर द्वीपमें क्यों नहीं जाती है पूरे पुष्करद्वीपमें क्यों नहीं कही  
जाती ? अब इस शकाका समाधान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मानुषोत्तर पर्वतक पहले तक द्वी मनुष्य है ॥३६॥

पुष्करद्वीपके ठीक मध्यमें सूईके समान गोल मानुषोत्तर नामका पर्वत है । उसके पहले

(१) शकायक । जम्बूद्वीपका पुष्करार्ध ही जगती ही हिमवन्ती इत्यादि । पुनः नु वि १ वि २ आ । (२)  
यत्र जम्बूद्वीप जम्बू वृ वि वि २ आ । (३) उभय द्वीपस्यानुसर्ग पुष्करद्वीप इति नाम । अथ नु ।

मनुष्या न वह्निरिति । ततो न वहि पूर्वोक्तक्षेत्रविभागोऽस्ति । नास्मादुत्तर कदाचिदपि विद्याधरा ऋद्धिप्राप्ता अपि मनुष्या गच्छन्ति अयत्रोपपादसमुद्घाताभ्याम् । ततोऽस्यान्वयसञ्ज्ञा । एव जम्बूद्वीपादिष्वघनृतीयेषु द्वीपेषु द्वयाश्च समुदयोमनुष्या वन्ति तस्याः । त द्विविधा —

आर्या स्वेच्छादश्च ॥ ३६ ॥

गुणगुणवद्भिर्वा अयत् इत्यार्या । ते द्विविधा ऋद्धिप्राप्तार्या अनुद्धिप्राप्तार्या

पहले ही मनुष्य हैं उसका बाहर नहीं । इसलिये मनुष्योत्तर पर्वतक बाहर पूर्वोक्त क्षेत्रोंका विभाग नहीं है । इस पर्वतक उस ओर उपपाद जमवाले और समुद्घातको प्राप्त हुए मनुष्योंको छोड़ कर और दूसरे विद्याधर या ऋद्धिप्राप्त मुनि भी कवाचित् नहीं जाते हैं इसलिये इस पर्वतका मनुष्योत्तर यह सार्वक नाम है । इस प्रकार जम्बूद्वीप आदि बाह्य द्वीपोंमें और दो समुद्रोंमें मनुष्य जानना चाहिये ।

विद्यापार्ष—बाह्य द्वीप और इनके मध्यमें आनेवाले दो समुद्र यह मनुष्यलोक है । मनुष्य इसी क्षेत्रमें पाय पाठ है । मनुष्योत्तर पर्वत मनुष्यलोककी सीमा पर स्थित होना इसका मनुष्योत्तर यह नाम साधक है । मनुष्य इसी क्षेत्रमें रहते हैं उनका बाहर जाना सम्भव नहीं इसका यह अभिप्राय है कि गर्भमें आनक वाय मरण पयन्त भौतिक शरीर या आहारक शरीरक साथ वे इस क्षेत्रक बाहर नहीं जा सकते । सम्पूर्ण मनष्य तो इसका औदारिक शरीरक आधरसे होत है इसलिये उनका मनुष्यलोकके बाहर जाना कथमपि सम्भव नहीं है । पर इसका यह अर्थ नहीं है कि किसी भी अवस्थामें मनुष्य इस क्षेत्रक बाहर नहीं पाय जाते हैं । एही तीन अवस्थाएँ हैं जिनके होन पर मनुष्य इस क्षेत्रक भी बाहर पाय जाते हैं यथा—

(१) जो मनुष्य मर कर बाह्य द्वीपक बाहर उत्पन्न होनेवाले हैं व यदि मरणक पहल मारणास्तिक समुद्घात करत ह तब इसके द्वारा उनका बाह्य द्वीपक बाहर गमन देखा जाता है ।

(२) बाह्य द्वीपके बाहर निवास करनबाल जा जीव मर कर मनुष्योंमें उत्पन्न होत हैं उनका मनुष्य गतिनाम कर्मका उचय होन पर भी बाह्य द्वीपमें प्रवेश करमेक पूर्व तक इस क्षेत्रके बाहर अस्तित्व देखा जाता है ।

(३) कवलिसमुद्घातक समय उनका मनुष्य लोकक बाहर अस्तित्व देखा जाता है । इस तीन अपवादोंको छोड़कर और किसी अवस्थामें मनुष्योंका मनुष्यलोकक बाहर अस्तित्व नहीं देखा जाता ।

व मनुष्य दो प्रकारक ह अथ यह बतलानेक लिय आगना सूत्र कहत है—

मनुष्य दो प्रकारके हैं—आर्य और स्वेच्छ ॥३६॥

जो गुणों या गुणबालोक द्वारा माने जाते ह—वे आर्य कहलाते ह । उनके दो भेद हैं—ऋद्धि

(१) तीयेषु द्वयोश्च म् ।

श्चेति । अनृद्धिप्राप्तार्या पञ्चविधा-क्षत्रार्या जात्यार्या कर्मार्याश्चारित्रार्या दशनार्या  
श्चेति । ऋद्धिप्राप्तार्या सप्तविधा बुद्धिविक्रियात्पोवलयौपधरसाक्षीणभेदात् ।

म्लच्छा द्विविधा-अन्तर्द्वीपजा कमभूमिजाश्चेति । तत्रान्तर्द्वीपा लवणोदध  
रम्यन्तरे<sup>१</sup> पार्श्वेष्टासु दिक्ष्वष्टौ । तदन्तरपु चाष्टौ । हिमवच्छिस्तरिणोरुभयोश्च विजया  
५ द्वयोरन्तर्ष्वष्टौ । तत्र दिक्षु द्वीपा वेदिकामास्तियक पञ्चयोजनशतानि प्रविश्य भवन्ति ।  
विन्क्ष्वन्तरपु च द्वीपा पञ्चाशत्पञ्चयोजनशतेषु गतेषु भवन्ति । शालात्पु द्वीपा प  
योजनशतेषु गतेषु भवन्ति । दिक्षु द्वीपा शतयोजनविस्तारा । विन्क्ष्वन्तरेषु च  
द्वीपास्तदर्धेविष्कम्भा । शालान्तपु पञ्चविंशतियोजनविस्तारा ।

तत्र पूर्वस्या दिश्येकोरुका<sup>२</sup> । अपरस्या दिशि लाङ्गूलिन । उत्तरस्या<sup>३</sup> दिश्य  
१ भापका । दक्षिणस्यां<sup>४</sup> दिशि विद्याणिन । दशकणशाष्कुलीकणप्रार्वेरणकणलम्बकर्मा  
विदिक्षु । अर्धसिंहस्वमहिषवराहुव्याघ्रकौककपिमुसा अन्तरेषु । मेघमुखविद्युमुसा

प्राप्त आर्य और ऋद्धिरहित आय । ऋद्धिरहित आय पांच प्रकारक हैं—शेभार्य जात्याय कर्मार्य  
चारित्रार्य और दर्शनार्य । बुद्धि विक्रिया तप बल औषध रस और अक्षीण ऋद्धिके भेदसे ऋद्धि  
प्राप्त आर्य सात प्रकारके ह । म्लेच्छ दो प्रकारक हैं—अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ और कमभूमिज म्लेच्छ ।

१५ लवण समुद्रके भीतर आठों दिशाओंमें आठ अन्तर्द्वीप हैं और उनके अन्तरालमें आठ अन्तर्द्वीप  
और हैं । तथा हिमवान और सिस्सरी इन दोनों पर्वतोंके अन्तमें और दोनों विजयार्ध पर्वतोंके  
अन्तमें आठ अन्तर्द्वीप हैं । इसमेंसे जो दिशाओंमें द्वीप हैं वे वेदिकासे तिरछे पांचसौ  
योजन भीतर जाकर हैं । विन्दिशाओं और अन्तरालोंमें जो द्वीप हैं वे पांचसौ पचास योजन भीतर  
जाकर हैं । तथा पर्वतोंके अन्तमें जो द्वीप हैं वे सड़ूसौ योजन भीतर जाकर हैं । दिशाओंमें स्थित  
२ द्वीपोंका विस्तार सौ योजन है । विदिशाओं और अन्तरालोंमें स्थित द्वीपोंका विस्तार उससे  
आधा अर्धान् पचास योजन है । तथा पर्वतोंके अन्तमें स्थित द्वीपोंका विस्तार पन्नीस योजन है ।

पूर्व दिशामें एक टांगवाल मनुष्य ह । पश्चिम दिशामें पूछवाल मनुष्य हैं । उत्तर दिशामें  
गूगे मनुष्य हैं और दक्षिण दिशामें सीगवाल मनुष्य हैं । चारों दिशिजाओंमें क्रमसे सरगोष्के  
समान कानवासे क्षत्रकुली अर्थात् मछली अथवा पूड़ीके समान कानवासे प्रावरणके समान कानवासे  
२५ और लम्बे कानवासे मनुष्य हैं । आठों अन्तरालके द्वीपोंमें क्रमसे भोजेके समान मुखवाल सिंहके  
समान मुखवाल कुत्ताक समान मुखवासे मैसाक समान मुखवाल सुजरक समान मुखवासे  
व्याघ्रक समान मुखवाले कौआक समान मुखवाल और धन्वरके समान मुखवाले मनुष्य हैं ।

(१) लवणोदधे अष्टासु दिक्ष्वष्टौ आ दि १ दि २ । कमभोवनेरम्यन्तरेष्टासु दिक्ष्वष्टौ बु ।

(२) उत्तरस्यामभापका आ दि १ दि २ । (३) अस्या विद्या-आ दि १ दि २ । (४) अरकणम्ब मु ।

(५) काकपुष्कपि-मु । (६) मेघविद्यु-मु ।

गिन्नरिण उभयोर्न्तयो । मत्स्यमुखबालमुखा हिमवत उभयोरन्तयो । हस्तिमुखा  
रक्षामुखा उत्तरविजयाघस्याभयोर्न्तया । गामुत्रमेपमुखा दक्षिणविजयाघस्याभयो  
रन्तयो । एकोरुवा मृदाहाग गुहावासिनः । शेषा पुष्पफलाहाग वृक्षवाग्नि । सर्वे  
ते पत्यापमायुषः ।

ते चतुर्विंशतिरपि द्वीपा जलतलाधेकयोजनात्सेषा । लवणोदधेर्वाह्यपाद्वेऽ- ५  
प्येव चतुर्विंशतिर्द्वीपा विज्ञातव्याः । तथा कालोदपि वेदितव्या । त एतन्तर्द्वीपजा  
म्लेच्छा । वामभूमिजादध शक्यवनशवरपुलिन्दादयः ।

का पुनः वामभूमय इत्यत आह—

गिन्नरी पवतक दोनों कोणोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप ह उनमें मधक समान मुखबाल और विजलीक  
समान मुखबाल मनुष्य है । हिमवान पवतक दोनो कोणोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप ह उनमें मछलीक १  
समान मुखबाल और बालके समान मुखबाल मनुष्य हैं । उत्तर विजयाघके दोनों कोणाकी सीधमें  
जो अन्तर्द्वीप ह उनमें हाथीके समान मुखबाल और वपक समान मुखबाधे मनुष्य ह । तथा  
दक्षिण विजयाघके दोनों कोणोंकी सीधमें जो अन्तर्द्वीप ह उनमें गायक समान मुखबाल और मठाक  
समान मुखबाल मनुष्य ह । इनमेंसे एक टांगबाले मनुष्य गुफाआमें निवास करत है और मिट्टीका  
आहार करत ह । तथा घप मनुष्य फूकों और फलाका आहार करत है और पर्वों पर रहत ह । १५  
इन सबकी आयु एक पल्पप्रमाण है । य चौवीसा अन्तर्द्वीप जलकी सतहसे एक योजन ऊंच हैं । इसी  
प्रकार कालोद समुद्रमें भी जानना चाहिये । य सब अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ ह । इनसे अतिरिक्त जो  
शक्य वन शवर और पुलिन्दादिह ह व सब वामभूमिज म्लेच्छ ह ।

विशेष—पट्टकडागममें मनुष्याक दो भेद किये गये ह—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज ।  
अकर्मभूमि भोगभूमिका दूसरा नाम ह । भोगभूमिका एक भव कुभोगभूमि है । उसमें जम लनेबाल २  
मनुष्य ही यहा अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ कह गये ह । घप रह शक्य वन शवर और पुलिन्द जावि  
म्लेच्छ कर्मभूमिज म्लेच्छ ह । इसी प्रकार आय भी क्षत्रकी अपक्षा दो भागोंमें विभक्त ह—कर्म  
भूमिज आर्य और अकर्मभूमिज आय । सीनों भागभूमियोंक मनुष्य अकर्मभूमिज आर्य ह और  
कर्मभूमिक आर्य कर्मभूमिज आय ह । इनमेंसे अकर्मभूमिज आर्य और म्लेच्छोंक अविभक्त सम्पत्कृति  
तक चार गुणस्वान हो सकत ह किन्तु कर्मभूमिज आर्य और म्लेच्छ अगुणत और महाव्रतक भी २५  
अधिकारी है । इनके समयमासयम और समयस्थानोंका विनियम व्याख्यान रुम्भिसार शपणामार्गमें  
किया है ।

कर्मभूमियां कौन कौन हैं, अब इस बातक बतलानक लिय आगका सूत्र कहत हैं—

(१) दक्षिणदिग्भिन्नम् । (२) शक्तिद्वितीयपक्षेऽपि उभयोस्तन्प्रेटकत्वारिणद्वीपा जलतलादि ९ ।

(१) शेषा । तथा कालोदपि जा वि १ ।

भरतरावतविदेहा कमभूमयोज्यत्र देवकुरुत्तरकुरुम्य ॥ ३७ ॥

- भरता' ऐरावता विदेहाश्च पञ्च पञ्च एता कमभूमय इति व्यपदिश्यन्ते। तत्र 'विदेह' ग्रहणाद्देवकुरुत्तरकुरुग्रहणे प्रसवत तत्प्रतिषेधायमाह—अयत्र देवकुरुत्तु कुरुम्य इति। अन्यत्र' शरदो वजनार्थं । देवकुरव उत्तरकुरवा हभवतो हरिवर्षो रत्नो
- १ हरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्त । अथ कथं कमभूमित्वम् ? शुभानु-  
रक्षणस्य कमणोऽधिष्ठानत्वात् । ननु मय 'लोकत्रितय कमणोऽधिष्ठानमय' उक्तं  
प्रकृतिविज्ञास्यते प्रकरणेण यत्कमणोऽधिष्ठानमिति । तत्राशुभकमणस्तावत्सुखमय  
प्रापणस्य भरतादिष्वेवाजनम शुभस्यै च सर्वाथसिद्धिधावि' स्थानविशेषप्रापकत्वं कम  
उपाजन तत्रैव कृष्यादिलक्षणस्य पञ्चविधस्य कमणः पात्रदानादिसहितस्य तत्रवारक-  
१ कमभूमिव्यपदेशो वेदितव्य । इतरास्तु दशविधकल्पवृक्षाकल्पितभोगानुभवतविपकक-  
भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्त ।

देवकुरु औद उत्तरकुरुके सिवा भरत ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमि हैं ॥३७॥  
भरत ऐरावत और विदेह यं प्रत्येक पांच पांच हैं । य सब कर्मभूमियां की जाती हैं ।

- विदेहका ग्रहण किया है इसलिये देवकुरु और उत्तरकुरुका भी ग्रहण प्राप्त होता है जो जो  
१२ निषेध करनेके लिये अन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुम्य यह पद रखा है । अयत्र शब्दका अर्थ नितो।  
देवकुरु उत्तरकुरु हैमवत हरिवर्ष रम्यक हरण्यवत और अन्तर्द्वीप य भोगभूमियां कही जातीं।  
धका—कर्मभूमि यह संज्ञा कैसे प्राप्त होती है ?

- समाधान—जो शुभ और अशुभ कर्मोंका आश्रय हो उस कर्मभूमि कहत है । यद्यपि कर्म  
शोक कर्मका आश्रय है फिर भी इससे उत्कृष्टताका ज्ञान होता है कि य प्रकल्प रूपसे कर्मका ज्ञान  
२ है । सागरे गरकको प्राप्त करने वाल अशुभ कर्मका भरतादि क्षत्रोंमें ही अर्जन किया जाता है  
प्रकार सर्वाथसिद्धि आदि स्थान विधायको प्राप्त करानेवाले पुण्य कर्मका उपाजन भी यही प्रकार  
है । तथा पात्रदान आदिक साव कृपि आदि छह प्रकारक कर्मका आरम्भ यहीं पर होता है सर्व  
भरतादिकका कमभूमि जानना चाहिये ।

- इतर क्षेत्रोंमें दान प्रकारक कल्पवृक्षासे प्राप्त हुए भोगोंक उपभोगकी मुख्यता है इति  
२२ भागभूमियां कहायाती है ।

- विशेषण—यह पदक ही वतगा जाय है कि भरतादि क्षत्रोंका विभाग बाईं द्वीपमें ही है ।  
द्वीपमें भरतादि क्षत्र एक-एक है और घातकीकृष्ण पुष्करार्थमें य दो-दो है । इस प्रकार पुण्य  
३५ हान है । उनमें भी उत्तरकुरु और देवकुरु विदेह क्षेत्रमें होकर भी असय गिन जात हैं कर्म  
(१) भरतौपस्थादिशुभक ता जा । (२) हरिवर्ष रम्य-जा वि १ वि २ । (३) उत्तरेक्षेत्र  
कर्म-जा वि १ वि २ । (४) एक प्रक-म् । (५) शुभस्य सर्वा-म् । (६) अशुभस्य कर्म-  
वि १ वि २ । (७) यस्य पुण्यकर्मम् ।

उक्तासु भूमिषु<sup>१</sup> मनुष्याणा स्थितिपरिच्छेदाद्यमाह—

नूस्थितौ परापरे त्रिपत्योपमास्तमुहूर्तौ ॥ ३८ ॥

त्रीणि पत्योपमानि यस्याः सा त्रिपत्योपमा । अन्तगतौ मुहूर्तौ यस्याः सा अन्त  
हूर्ता । यथासह्येनाभिसम्बन्धः । मनुष्याणां परा उत्कृष्टा स्थितिस्त्रिपत्योपमा ।  
परा जघया अन्तर्मुहूर्ता । मध्ये अनेकविकल्पाः । तत्र पत्य त्रिविधम्—व्यवहारपत्य  
द्वारपत्यमद्वापत्यमिति । अन्वयसम्भा एताः । आद्य व्यवहारपत्यमित्युच्यते उत्तर  
त्य द्वयव्यवहारबीजत्वात् । नानेन किञ्चित्परिच्छेद्यमस्तीति । द्वितीयमुद्धारपत्यम् ।  
त उद्घृतलोमकच्छेदवर्षिसमुद्राः सख्यायन्त इति । तृतीयमद्वापत्यम् । अद्वा काल  
स्थितिरित्यर्थः । तत्राद्यस्य प्रमाणं कथ्यते<sup>२</sup>, तत्परिच्छेदनायत्वात् । तद्यथा—प्रमाणाङ्गुल  
रिमितयोजनविक्रमभायामावगाहानि त्रीणि पत्यानि कुशूला इत्यथ । एकादि  
पान्ताहारात्रजाताविवालाप्राणि तावच्छिन्नानि यावद्वितीयं कतरिच्छेद नौवाप्नुवन्ति,  
दृशालोमकच्छेदैः परिपूर्णं घनीकृत व्यवहारपत्यमित्युच्यते । ततो वपशते वपशते गते

\* तत्र भोगभूमिकी व्यवस्था ह इत्यस्मि पाँच विदहों पाँच वयकुश और पाँच उत्तरमुक इनको  
५ अत्रोमें मिलानपर कुल ४५ अत्र हीत है । इनमेंसे ५ अत्र ५ विदह और ५ एरावत म १५  
वर्षों हैं और शेष ३ भोगभूमियाँ हैं । य सब कमभूमि और भोगभूमि क्यों कहलाती ह इस  
निर्देश मूल टीकामें किया ही है ।

तत्र भूमियोमें स्थितिका ज्ञान करानेके लिये आगका सूत्र कहत ह—

मनुष्योक्ती उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्य और जघन्य अन्तर्मुहूर्तौ है ॥३८॥

त्रिपत्योपमा इस वाक्यमें त्रि और 'पत्योपमका' बहुव्रीहि समास ह । मुहूर्तक भीतरक कालका  
त कहत है । पर और अपर क साथ इन दोनोंका भ्रमस सम्बन्ध है । मनुष्योक्ती उत्कृष्ट  
तीन पत्य है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है । तथा मध्यकी स्थिति अन्तः प्रकारकी है ।  
स्य तीन प्रकारका है—व्यवहार पत्य उद्धारपत्य और अद्वापत्य । य तीनों साथक नाम ह ।  
पत्यको व्यवहारपत्य कहत है क्योंकि वह आगके ता पत्याक व्यवहारका मूल ह । इसक  
तिर किसी वस्तुका परिमाण मही किया जाता । दूसरा उद्धारपत्य ह । उद्धारपत्यमेंसं निवाक  
मक छत्रक द्वारा द्वीप और समुद्रोंकी गिनती की जाती ह । सामरा अद्वापत्य ह । अद्वा और  
ति य एकार्धवाकी शब्ध ह । इनमेंसं अद्य प्रथम पत्यका प्रमाण कहत ह—जो इस प्रकार है—  
सकी गणनास एव एक योजन लम्ब चौड और गहर तीन गडा करा और इनमेंसं एकस  
से सत्तर सात दिन तक क पटा हुए मङ्कक रोमान अत्र भागाको एव टुकड़ करके भरा त्रिसग  
सक दूसरे टुकड़ म किया जा सकें । अनन्तर सी सी बर्षमें एक-एक रामका टुकडा निवाला ।  
स जिनक कान्ठमें वह गडा लाली हो वह सब काल व्यवहार पत्योपम नामक कहा जाता ह ।

<sup>१</sup>मिषु स्थिति म । (२) द्वयस्य व्यव ह । (३) कथ्यते । तद्यथा च । (४) नाप्नु-म ( )

(५) ततो वर्षशते एक-मु ।



भरतरावतविदेहा कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुस्तारकुचभ्य ॥ ३७ ॥

भरता' ऐरावता विदेहाश्च पञ्च पञ्च एता कमभूमय इति व्यपदिश्यत ।

तत्र विदेह'ग्रहणाद्देवकुस्तारकुचग्रहण प्रसवते तत्प्रतिषेधाद्यमाह—अयत्र देवकुस्तारकु-

कुचभ्य इति । अयत्र' शरदो वर्जनाथ । दवकुरव उत्तरकुरवो ह्रमवतो हरिवर्षो' रम्यको

x हैरण्यवतोऽन्तर्द्वीपाश्च भोगभूमय इति व्यपदिश्यत । अथ कथं कमभूमित्वम् ? सुभासुम

लक्षणस्य कमणोऽधिष्ठानत्वात् । ननु सर्वं 'लोकत्रितय कमणो'धिष्ठानमव ? तत एव

प्रनपगतिविज्ञास्यते प्रकर्षेण यत्कमणो'धिष्ठानमिति । तत्राशुमकर्मणस्तावत्सप्तमनरक-

प्रापणस्य भरतादिष्ववाजनम शुभस्यै च सर्वाथसिद्ध्यादि' स्थानविषयप्रापणस्यै कर्मण

उपाजन तत्रय, कृष्यादिलक्षणस्य पञ्चविधस्य कर्मण पात्रदानादिसहितस्य तत्रवारम्भा

१० त्वमभूमिव्यपदशो वदितव्य । इतरास्तु दशविधकल्पवृक्षकल्पितभोगानुभवनविषयत्वाद्

भोगभूमय इति व्यपदिश्यन्त ।

देवकुच औद उत्तरकुचके सिवा भरत ऐरावत और विदेह ये सब कर्मभूमि हैं ॥३७॥

भरत ऐरावत और विदेह ये प्रत्येक पांच पांच हैं । ये सब कर्मभूमियाँ बन जाती हैं । इनमें

विदेहका ग्रहण किया है इसलिये देवकुच और उत्तरकुचका भी ग्रहण प्राप्त होता है अतः उनका

१२ निषेध करना किये अयत्र देवकुस्तारकुचभ्य यह पद रखा है । अग्यत्र शरदो वर्जनाथ । दवकुरव उत्तरकुरव हैमवत हरिवर्ष रम्यक हैरण्यवत और अन्तर्द्वीप ये भोगभूमियाँ कही जाती हैं ।

दवकुरव उत्तरकुरव हैमवत हरिवर्ष रम्यक हैरण्यवत और अन्तर्द्वीप ये भोगभूमियाँ कही जाती हैं ।

शका—कमभूमि यह समा कथे प्राप्त होती है ?

समाधान—जो शुभ और अशुभ कर्मोंका आश्रय हो उस कर्मभूमि कहत हैं । मद्यपि तीनों

२ लोक कर्मका आश्रय हू फिर भी इनसे उत्पन्नताका ज्ञान होता हू कि म प्रकयें रूपस कमका आश्रय

हैं । सातवें नरकको प्राप्त करने वाले अशुभ कर्मका भरतादि क्षेत्रोंमें ही अर्जन किया जाता है इसी

प्रकार सर्वाथसिद्धि आदि स्थान विषयका प्राप्त करानेवाला पुण्य कर्मका उपाजन भी यहीं पर होता

है । तथा पात्रदान आदिके साध कृपि आदि छह प्रकारके कर्मका आरम्भ यहीं पर होता है इसलिये

भरतादिकको कमभूमि जानना चाहिये ।

इतर क्षेत्रोंमें दस प्रकारके कल्पवृक्षोंस प्राप्त हुए भोगोंके उपभोगकी मुख्यता है इसलिये व

२३ भोगभूमियाँ कहलाती हैं ।

विमाराध—यह पहले ही बतला आय हू कि भरतादि क्षत्रका विभाग ढाह द्वीपमें ही है । जम्बू

द्वीपमें भरतादि क्षत्र एक-एक हैं और क्षात्रकीलक्षत्र पुच्छरार्थमें य दो-दो हू । इस प्रकार कुन क्षत्र

३५ क्षात्र हैं । उनमें भी उत्तरकुरव और देवकुच विदेह क्षत्रमें होकर भी अस्य गिने जाते हू क्योंकि

(१) भरतेरावतविदेहाश्च न ता न्ता । (२) हरिवर्षा रम्य-जा वि १ वि २ । (३) गर्वो लोपवित्तव

कर्म-जा वि १ वि २ । (४) एष प्र-भू । (५) सुभस्य नवी-भू । (६) कृष्यादिवु स्थान जा

वि १ वि १ । (७) नरकस्य पुण्यकर्म भू ।

तिरश्चा योनिस्तियग्यानि । तियग्गतिनामकर्मोदयापादित जमेत्यथ । तिय  
ग्योनी जातास्तियग्यानिजा । तेषा तियग्योनिजानामुत्कृष्टा भवस्थितिस्त्रिपल्पोपमा ।  
जघन्या अन्तमुहूर्ता । मध्येऽनेकविनल्पा ।

इति तत्त्वार्यवृत्तौ सर्वाथसिद्धिसञ्ज्ञिकायां तृतीयोऽध्याय ॥३॥

तियञ्चानी योनिको तियग्योनि कहते हैं । इसका अर्थ तियञ्चगति नामनमक उत्पन्न प्राप्त  
हुआ जन्म है । जो तियञ्चयोनिमें पैदा होत है वे तियग्योनित्र कहलात है । इन तियञ्चयोनिमें उत्पन्न  
जीवोंको उत्कृष्ट भवस्थिति तीन पल्प और जघन्य भवस्थिति अन्तमुहूर्त है । तथा बीचकी स्थिति  
अनक विनल्प है ।

विशेषार्थ—स्थिति दो प्रकारकी होती है—भवस्थिति और कायस्थिति । एक पर्यायमें रहनेमें  
बिना काय लग यह भवस्थिति है । तथा बिबक्षित पर्यायक सिवा अन्य पर्यायमें उत्पन्न न हानर पुन  
पुन उनी पर्यायमें निरन्तर उत्पन्न हानस जा स्थिति प्राण होती है यह कायस्थिति है । यहाँ मनुष्यों  
और तियञ्चोंकी भवस्थिति कही गई है । इनकी जघन्य कायस्थिति जघन्य भवस्थिति प्रमाण है  
क्योंकि एक बार जघन्य आयुष माय भव वाकर उमका अय पर्यायमें जाना सम्भव है । मनुष्योंकी  
उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्प है । पृथक्त्व यह रौडिक समा है । मुख्यतः  
इसका अर्थ तीनम ऊपर और मोस नीच हाता है । यहाँ बहुत अधमें पृथक्त्व गल आया है । तियञ्चोंकी  
उत्कृष्ट कायस्थिति अनन्तराल है जो असत्यात पुद्गल परिभतनोंक वरावर है । यह तियञ्चगति  
सामान्यकी अपेक्षा उनकी कायस्थिति कही है । यदि अस्य गतिम आकर बाद जाब निरन्तर तियञ्चगतिमें  
परिभ्रमण करना रहता है ता अधिनस अधिन इतल कामतक यह तियञ्चगति में रह मरना है ।  
इसका बाव यह तियमम अन्य गतिमें जम सता है । बेग तियञ्चकार अनक भव है इसलिय उन भवकी  
अपगा उनरी कायस्थिति जुदी जुदी है ।

अस प्रकार सर्वाथसिद्धि नामवाणी तत्त्वार्यवृत्तिमें दृमग अध्याय समाप्त हुआ ।

एककलोमापकपणविधिना यावता कालेन तद्विषय भवेत्तावान्कालो व्यवहारपत्स्योप  
मास्य । तरेव लोमच्छेद प्रत्येकमसस्येयवर्षकोटीसमयमात्रच्छिद्यैस्तत्पूणमुद्धारपत्स्यम् ।  
ततः समये समये एककस्मिन् रोमच्छेदेऽपकृष्यमाणे यावता कालेन तद्विषय भवति तावान्काल  
उद्धारपत्स्योपमास्य । एषामुद्धारपत्स्याणां दशकोटीकोटश्च एकमुद्धारसागरोपमम् । अर्धतु  
तीयोद्धारसागरोपमानां यावन्तो रोमच्छेदास्तावन्तो द्वीपसमुद्रा । पुनरुद्धारपत्स्यरोमच्छे-  
दैर्वर्षगतसमयमात्रच्छिद्यैः पूर्णमद्वापत्स्यम् । ततः समये समये एकैकस्मिन् रोमच्छेदेऽप  
कृष्यमाणे यावता कालेन तद्विषय भवति तावान्कालोऽद्वापत्स्योपमास्य । एषामद्वा  
पत्स्यानां दशकोटीकोटश्च एकमद्वासागरोपमम् । दशाम्दवासागरोपमकोटीकोटश्च एकाव  
सपिणी । तावत्येधोत्सपिणी । अनेनाद्वापत्स्येन नारकतैर्यग्योनाना देवमनुष्याणां च कर्म  
स्थितिर्भवत्यतिरामुस्थितिः कायस्थितिरश्च परिच्छेद्यम् । उक्ता च संग्रहाद्या—

‘यवैहारुद्धारद्या पत्ला तिण्णेय ह्योति षोडश्या ।

सखा वीव-ममुद्रा कम्मदिठि वणिणदा तदिण्ण ॥’

यद्यवते उच्छृष्टजघन्ये स्थिती नृणा तथव—

तिर्यग्योनिजानां च ॥ ३९ ॥

मनन्तर असत्यात् करोड वर्षोंक जितन समय हों उतने उन लोमच्छेदोंमेंसे प्रत्येक सखड करके उनसे  
दूसरे गड्ढेके भरने पर उद्धारपत्स्य होता है । और इसमेंसे प्रत्येक समयमें एक-एक रोमको निकाल  
हुए जितन कालमें वह गड्ढा खाली हो जाय उतने कालका नाम उद्धार पत्स्योपम है । इन सब बाड़ाकोड़ी  
उद्धारपत्स्योंका एक उद्धार सागरोपम काल होता है । तथा बाई उद्धार सागरके जितने रोमखण्ड हों  
उतन सब द्वीप और समुद्र है । मनन्तर सो षपक जितने समय हा उतन उद्धारपत्स्यक रोमखण्डोंमेंसे  
प्रत्येकके खण्ड करके और उनसे तीसरे गड्ढेके भरनेपर एक अद्वापत्स्य हाता है । और इनमेंसे प्रत्येक  
समयमें एक-एक रोमक निकालनपर जितन समयमें वह गड्ढा खाली हो जाय उतन कालका नाम अद्वा-  
पत्स्योपम ह । तथा एसे दस कोड़ाकोड़ी अद्वापत्स्योंका एक अद्वासागर होता है । दस कोड़ाकोड़ी अद्वा  
सागरोंका एक अवसपिणी बाल हाता है और उत्सपिणी भी इतना ही बड़ा हाता है ।

इस अद्वापत्स्यन द्वारा नारकी त्रियञ्च देव और मनुष्योंकी कर्मस्थिति भवस्थिति जासुस्थिति  
और कायस्थिति की गणना करने की चाहिये । संग्रह पाया भी नहीं है—

व्यवहार उद्धार और अद्वा य तीन पत्स्य जानन चाहिये । सन्ध्याका प्रयाजक व्यवहार पत्स्य है  
द्वारम द्वीप-ममुद्रा की गणना की जानी है और तीसरे अद्वापत्स्यमें कर्मोंकी स्थितिवा लेगा है ।

जिन प्रकार मनुष्यानी यह उच्छृष्ट और जघन्य स्थिति है उनी प्रकार—

तिर्यचों की स्थिति भी उतनी ही है ॥३०॥

चत्वारो निकाया येषां ते चतुर्णिकायाः । के पुनस्ते ? भवनवासिनो व्यन्तरा ज्योतिष्का वमानिकाश्चेति ।

तेषां लेख्यावधारणार्थमुच्यते—

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेख्याः ॥ २ ॥

आदित इत्युच्यते अन्ते मध्ये अन्यथा वा ग्रहण मा विज्ञायीति । आदौ आदित । ५  
द्वयोरकस्य च निवृत्त्यर्थं त्रि ग्रहण त्रियते । अथ चतुर्णां निवृत्त्यर्थं कस्मान्न भवति ?  
आदित इति वचनात् । पठ लेख्या उक्ता । तत्र चतसृणां लेख्यानां ग्रहणाय 'पीतान्त'  
ग्रहण त्रियते । पीत तेज इत्यर्थः । पीता अन्ते यासां ता पीतान्ता । पीतान्ता लक्ष्या  
येषां त पीतान्तलेख्याः । एतदुक्तं भवति—आदितस्त्रिषु निकायेषु भवनवासिव्यन्तर  
ज्योतिष्कनामसु देवानां कृष्णा नीला कापोता पीतेति चतस्रो लेख्या भवन्ति ।

सात ह व निकाय बहुलात् हे । निकाय शब्दका अर्थ सपात हे । 'चतुर्णिकाय' में बहुव्रीहि समास हे जिससे दशोंक मुख्य निकाय चार जात होत ह ।

पद्या—इन चार निकायोंके क्या नाम हैं ?

समाधान—भवनवासी व्यन्तर ज्योतिष्क और वमानिक ।

अथ इनकी लक्ष्याओंका निश्चय करनेके लिये आगका मूत्र कहत हैं—

आदिके तीन निकायोंमें पीत पर्यन्त चार लेख्याए हैं ॥२॥

अन्तक तीन निकायोंका मध्यक निकायका या विपरीत क्रमस निकायोंका ग्रहण न समाप्त किया जाय इसलिये सूत्रमें आदित पद दिया है । ना और एक निकायक निराकरण करनेक लिये त्रि पदका ग्रहण किया ह ।

पद्या—त्रि पदस चार की निकुलि कसो नहीं होती है ?

समाधान—सूत्रमें जो 'आदित' पद दिया है इसमें ज्ञात होता ह कि 'त्रि' पद चारकी निकुलिक लिये नहा है ।

सद्व्याएँ छह कही ह उनमें चार लक्ष्याओंक ग्रहण करनेक लिये सूत्रमें 'पीतान्त' पदका ग्रहण किया है । यहाँ पीतस तेज लक्ष्या स्तोनी चाहिये । यहाँ पहल पीत और अन्त इन शब्दोंमें और अनन्तर पीतान्त और लक्ष्या शब्दोंमें बहुव्रीहि समास ह । इसका यह अभिप्राय ह कि आदिक भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषा इन तीन निकायोंमें दशोंक कृष्ण नील कापोत और पीत य चार लक्ष्याएँ ज्ञानी हैं ।

विशयार्थ—यां तां भवनवासी व्यन्तर और ज्योतिषी-दशक एक पीत लक्ष्याही ज्ञानी ह किन्तु एता नियम ह कि कृष्ण नील और कापोत लक्ष्याक मध्यम अंशस भर हुए कमभूमियों मिथ्यावृत्ति मनुष्य और नियन्त्र और पीत लक्ष्याक मध्यम अंशस भर हुए भागभूमियों मिथ्यावृत्ति मनुष्य और नियन्त्र

(१)-उच्यते इत्यथा वा पठ दि २ ।-अथ अन्ते मध्ये वा पठ-अ ता ना । अथ अन्त इत्यथा वा पठ वा । ( ) ता पीतान्ता लेख्या नु दि २ । (१) ज्योतिष्काण देवा आ दि १ दि २ ।

## अथ चतुर्थोऽध्याय

भवप्रत्ययोऽवधिदेवनाङ्कानाम्' इत्येवमादिष्वसकृद्द्वयशब्द उक्तस्तत्र न भावत  
क दवा कतिविधा इति' तन्निगयायमाह—

देवादक्षतुणिकाया ॥ १ ॥

- २ दवगतिनामकर्मोऽप्ये सत्यम्यन्तरे [हेतौ वाहृषविभूतिविशेषे] द्वीपाद्रिसमुद्रानि  
प्रशानु यषष्ट दीव्यन्ति त्रीष्ट न्तीति देवा । इहकवधननिर्देशो युक्त 'दवचतुणिकाय'  
इति । स औप्यभिधानात् वदूना प्रतिपात्को भवति ? बहुस्वनिर्देशस्तदन्तगतभवप्रतिपत्त्यर्थः ।  
इन्द्रमामानिवाद्या बहवो भेदाः सन्ति स्थिरादिभूताश्च तत्सूचनाय । दवगतिनामक-  
र्मोऽप्यस्य स्वैकमविशपापापादितभेदस्य सामर्थ्याभिचीयन्त इति निकाया मघाता इत्यर्थः ।

## चौथा अध्याय

दव और नागकर्मोंक भवप्रत्यय अवधिज्ञान होता है इत्यादि सूत्रोंमें अनवधार दव धन्व आया  
है । किन्तु वहाँ यह न जान सक कि दव कौन है और क कितने प्रकारके हैं अतः इसका निर्णय कर्मक  
स्थि आगवा सूत्र कहत हैं—

देव चार निकायवाले हैं ॥१॥

- २५ अम्यन्तर कारण दवगति नामकर्मक उच्ये हान पर जा नाना प्रकारकी पाह्य विभूतिसे द्वीप  
गमुद्रानि अनरु म्थानामे इच्छानुसार त्रीडा करत है य दव कहलात है ।  
गवा—'दवचतुणिकाय' इस प्रकार एकवचनरूप निर्देश करना उचित था क्योंकि जातिना  
कपन कर एतम बहुवचन कपन हा ही जाता है ।  
ममापान—'दवो' अन्तर्गत अनरु भन् है इस मानका ज्ञान करानक स्थि सूत्रमें बहुवचनता  
२६ निर्णय किया है । तात्पर्य यह है कि दवों द्वा मामानिक आदि की अपेक्षा अनरु भद है और स्थिति  
भाजित अगवा भी अनरु भद है अतः उनका गुणित करानक स्थि बहुवचनता निर्देश किया है ।  
अनरु अपान्तर कर्मोंक भन्ना प्राप्त होनेवाले दवगति नामकर्म उच्ये की सामर्थ्यम जा मघह विष

(१) इति वा तन्नि-अ । (२) विश्वेश्वर द्वीपा म । (३) मुद्रादिषु प्र-अ । (४) इति न देवा मु ।  
(५) इति । शान्-अ । (६) 'शाखाङ्गायादेकस्मिन्बहुवचनव्ययनस्यात् । वा १ २ २ ३८ (७)  
स्वर्षेति वा ता वा ।

अयदेवासाधारणाणिमादिगुणयोगादिन्दन्तीति इन्द्रा । आज्ञश्वयवर्जित  
 येस्त्यानायुर्वीर्यपरिवारमोगोपभोगादि तत्समान, तस्मिन्समाने भवा सामानिका मह  
 त्तरा पितृगुरूपाध्यायतुल्या । मन्त्रिपुराहितस्थानीयास्त्रायस्त्रिणा । त्रयस्त्रिणादय  
 त्रायस्त्रिणा । वयस्यपीठमदसदृशा परिपदि भवा पारिपदा । आत्मरक्षा शिगेरक्षोप  
 माना । अर्षचरागक्षकसमाना लोकपाला । लोक पालयन्तीति लोकपाला । पवात्या  
 दीनि सप्त अनौकानि दण्डस्थानीयानि । प्रकीणका पौरजानपदकल्पा । आभियाग्या  
 तससमाना वाहनादिकमणि प्रवृत्ता । अन्तेवासिस्थानीया किल्बिपिका । किल्बिप  
 पाप येषामस्तीति किल्बिपिका ।

एकैकस्य निकायस्य एकश एते इन्द्रादयो वश विकल्पाश्चतुषु निकायपूरसर्गेण  
 प्रसक्तास्तताऽपवादायमाह—

त्रायस्त्रिणांलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्का ॥ ५ ॥

व्यन्तरेषु ज्योतिष्केषु च त्रायस्त्रिणांलोकपालांश्च वजयित्वा इतरेऽष्टौ विकल्पा  
 द्रष्टव्याः ।

जो अन्य दलोंमें असाधारण अणिमानि गुणोंके सम्बन्धसंघातमें हैं व इन्द्र कहलाते हैं । आज्ञा  
 और एववर्क सिद्धा जो आयु वीर्य परिवार, भोग और उपभोग ह व समान कहलाते ह । उन समानमें  
 वा हात है वे सामानिक कहलाते ह । य पिता गुरु और उपाध्यायके समान मवस बड़ ह । जो मन्त्री  
 और पुरोहितके समान है वे त्रायस्त्रिण कहलाते हैं । य तेंतीस ही होत ह इसलिय त्रायस्त्रिण कहलाते  
 ह । जो सामान मित्र और प्रमी जनौक समान होत है व पारिपद कहलाते ह । जो अगर्क्षक समान  
 ह व आत्मरक्ष कहलाते ह । जो रक्षक समान अर्षचर ह वे साकपाल कहलाते ह । तात्पर्य यह है कि  
 जो साकपाला पालन करत हैं व लोकपाल कहलाते ह । जस यहाँ सुना है उसी प्रकार मात प्रकारक पणति  
 आदि अनौक कहलाते ह । जो गाँव और दाहराम रहनवालोंके समान ह उन्हें प्रकीणक कहत ह ।  
 जो वासक समान बाहन मानिकमम प्रवृत्त हात है वे आभियाग्य कहलाते ह । जो सीमाक पाम रहन  
 वाणा के समान है व किल्बिपिक कहलाते ह । किल्बिप पापको कहत ह इसकी जिनक वधक्या हाती  
 है व किल्बिपिक कहलाते है ।

चारों निकायों में प्रत्येक निकायमें य इन्द्रादिक दस भेद उन्मगमे प्राप्त हुए अत जहाँ अपवाद  
 ह उनका कथन करनेक लिये आगवा सूत्र कहते हैं—

किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क दव त्रायस्त्रिण और लोकपाल इन दो भेदोंसं रहित हं ॥५॥

व्यन्तर और ज्यातिदियोंमें त्रायस्त्रिण और लोकपाल इन दो भेदोंके सिद्धा दय आत भद जानना  
 चाहिये ।

(१) यथमानायु-म । (२)-वृत्ता । अथवाति आ दि १ दि २ । (३)-स्थानीया । किल्बिप  
 म । (४) उपामग्न त किल्बि म् । (५)-वर्जा व्य-ता ना ।

तथा निकायानामन्तविकल्पप्रतिपादनार्थमाह—

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पान् कल्पोपपन्नपर्यन्ता ॥ ३ ॥

चतुर्णां देवनिकायानां दशाविभिः सख्याशब्दैयथासख्यमभिसम्बन्धो वेदितव्यः । दशविकल्पान् भवनवासिनां । अष्टविकल्पान् व्यन्तरां । पञ्चविकल्पान् ज्योतिष्कां । द्वादशविकल्पान् वमानिका इति । सर्ववमानिकानां द्वादशविकल्पान्तःपातित्वे प्रसक्तो प्रवेयकादि निवृत्त्यर्थं विशापणमुपादीयते 'कल्पोपपन्नपर्यन्ता' इति । अथ कथं कल्पसंज्ञा ? इन्द्रादयः प्रकारा दश एतेषु कल्प्यन्त इति कल्पान् । भवनवासिषु सत्कल्पनासम्भवेऽपि रुडिवशाद्दमानिकेष्वेव वर्तते कल्पशब्दः । कल्पोपपन्नाः कल्पोपपन्नाः । कल्पोपपन्नाः पर्यन्ता यथा त कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।

पुनरपि तद्विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशत्पारिषदात्स्मरक्षलोक्तपात्नानीकप्रकीर्णका

भियोग्यकित्वविकाशचक्राः ॥ ४ ॥

भवनत्रिकर्म उत्पन्न होते हैं । यत् एष कर्मभूमिर्मा मनुष्य और तिर्यञ्चोक्त मरते समय प्रारम्भकी तीन अधुम लक्ष्याएँ होती हैं अतः इनका मरकर भवनत्रिकर्म उत्पन्न होनेपर वहाँ भी अपर्याप्त अबस्थामें ये अधुम लक्ष्याएँ पाई जाती हैं । इसीसे इनका पीत तक चार लक्ष्याएँ कही हैं । अभिप्राय यह है कि भवनत्रिकोके अपर्याप्त अबस्थामें पीततक चार लक्ष्याएँ और पर्याप्त अबस्थामें एक पीत लक्ष्या होती है ।

अब इन निक योंक भीतरी में दिखानके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

ष कल्पोपपन्न देव त्रिकके चार निकयके देव क्रमसे दस, आठ, पाँच और बारह देववाले हैं ॥४॥

दश निकाय चार हैं और दश आदि सख्या शब्द चार हैं अतः इनका क्रमसे सम्बन्ध जानना चाहिये । यथा—भवनवासि तस प्रकारक हूँ व्यन्तर आठ प्रकारके हैं ज्योतिषी पाँच प्रकारके हैं और वमानिक बारह प्रकारके हैं । उपर्युक्त कथनसे सब वमानिक बारह भदोंमें आ जाते हैं अतः प्रत्येक जाति के मिराकरके करनके लिये सूत्रमें 'कल्पोपपन्नपर्यन्ता' यह पद दिया है ।

पश्चात्—कल्प इस सजाका क्या कारण है ?

समाधान—जिनमें इन्द्र आदि दस प्रकार कल्प जात हैं वे कल्प कहलाते हैं । इस प्रकार इन्द्रादिककी कल्पना ही कल्प सजाका कारण है ।

यद्यपि इन्द्रादिककी कल्पना भवनवासियोंमें भी सम्भव है फिर भी रुडि से कल्प सजाका व्यवहार वमानिकाम ही किया जाता है । जो कल्पोंमें उत्पन्न होते हैं वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं । तथा जिनके अन्तर्ग कल्पोपपन्न दश हूँ उन सबका कल्पोपपन्नपर्यन्त कहा है ।

प्रकाशान्तस इन्द्र भद्राका ज्ञान करानक सिद्ध आगवा मूत्र कहत हूँ—

उक्त दश आदि भदोंमेंसे प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंशत् पारिषद आत्स्मरस सोरुपाल अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और कित्त्विकरूप हैं ॥४॥

अथपा देवानां सुख कीदृशमित्युक्ते सुखाववाधनायमाह—

कायप्रवीचारा आ एशानात् ॥ ७ ॥

प्रवीचारो मयुनोपसेवनम् । कायेन प्रवीचारो येषां ते कायप्रवीचारा । आइ अभिविष्यय । अमहितया निर्देश अस देहाय । एते भवनवास्यादय ऐशानान्ता सभिल्ल-  
पकमत्वा मनुष्यवस्त्रीविषयसुखमनुभव तीत्यय ।

अवधिग्रहणान्तिरेषा सुखविभागेऽनिर्ज्ञाति तत्प्रतिपान्नायमाह—

शेषा स्पशरूपशब्दमन प्रवीचारा ॥ ८ ॥

उक्तावशिष्टग्रहणाय शेष'ग्रहणम् । के पुनरुक्तावशिष्टा ? कल्पवासिन ।  
स्पशश्च रूप च शब्दश्च मनश्च स्पर्शरूपशब्दमनांसि तेषु प्रवीचारो येषां त स्पशरूप  
शब्दमनःप्रवीचारा । कथमभिसम्बन्ध ? आर्षाविरोधेन । कुत पुन 'प्रवीचार' ग्रहणम् ?  
इन दवाका सुख किस प्रकारका होता है एसा पूछन पर सुखका ज्ञान करानक सिम्य आगका सूत्र  
कहत ह—

एशान तत्कक दध कायप्रवीचार अर्थात् शरीरसे विषय-सुख मोगनेवाले होते हैं ॥७॥

मयुनके उपसवनको प्रवीचार कहत ह । जिनका कायस प्रवीचार ह व कायप्रवीचारवाले कह  
जाव ह । कहातक कायस प्रवीचारकी व्याप्ति है इस बातक बतलानक सिम्य सूत्रमें आइ का निर्देश  
किया है । मन्त्र न हो इमसिम्य 'आ एशानात्' इस प्रकार सन्धिक बिना निर्देश किया है । सात्यय  
यह है कि एशान स्वय पयन्त य भवनवासी आवि दध सभिल्लपकमवाय होतक कारण मनुष्योंक समान  
स्त्रीविषयक सुखका अनुभवन करत ह ।

अगरक सूत्रमें कायस प्रवीचारकी मर्यादा कर दी है इमसिम्य इनर दवाक मूलका विभाग नहीं ज्ञान  
होता ह मत इसक प्रतिपान्न करनक सिम्य आगका सूत्र कहत ह—

शप दध स्पर्श रूप, शब्द और मनसे विषय-सुख मोगनेवाल होते हैं ॥८॥

पहल जिन दवाका प्रवीचार कहा है उनम अतिरिक्त दवाक ग्रहण करनक सिम्य 'य पय परका  
घटय किया है ।

पया—उक्त दवाक अवधिपल और कौन दध ह ?

ममाधान—कल्पवामी ।

यहाँ स्पश हय शर और मन इनका परस्पर शब्द ममाम करक अनन्तर प्रवीचार शरक  
माय बहुबाहि ममाम किया है ।

पया—इममम जिन दवाक कौनमा प्रवीचार ह इमरा सम्बन्ध कम करना चाहिय ?

ममाधान—इमका सम्बन्ध जिन प्रकार आपस बिगाय न आवे उन प्रकार कर सता चाहिय ।

पया—यन 'प्रवीचार' शब्दका ग्रहण तिसिम्य किया है ?

(१) आइ मर्यादाभिविष्यो । या २ १ १३।



अथ तेषु निकायेषु किमक इन्द्र उताय प्रतिनियम कश्चिदस्तीत्यत आह—

पूर्वयोर्द्वीन्द्रा ॥ ६ ॥

पूर्वयानिनाययोभवनत्रामिव्यन्तरनिकाययो । कथ द्वितीयस्य पूर्वत्वम् ? मामी

प्यात्पूर्वत्वमुपचर्योक्तम् । द्वीन्द्रा इति अन्तर्नीतवीप्सार्थः । द्वौ द्वौ इन्द्रो येषां ते द्वीन्द्रा इति ।

- २ यथा सप्तपर्णोऽष्टापद इति । तद्यथा—भवनवासिषु तावत्सुरनुमाराणां द्वाविन्द्री चमरो वैरोक्षनश्च । नागकुमाराणां धरणी भूतानन्दश्च । विद्युत्कुमाराणां हरिसिंहो हरि कान्तश्च । सुषणकुमाराणां वेणुदेवो वेणुधारी च । अग्निकुमाराणामग्निशिखोऽग्निमाणवश्च । वासुकुमाराणां बलम्ब प्रभञ्जनश्च । स्तनितकुमाराणां सुधोपो महाधोपश्च । उदधिकुमाराणां जलकान्तो जलप्रभश्च । द्वीपकुमाराणां पूर्णो वसिष्ठश्च । विकुमाराणां ममितगतिरमितवाहनश्चति । व्यन्तरेऽपि किन्नराणां द्वाविन्द्री किन्नर किम्पुरुषश्च । किम्पुरुषाणां मत्पुरुषो महापुरुषश्च । महोरगाणामतिनायो महाकायश्च । गन्धर्वाणां गीतरनिर्गतियशाश्च । यक्षाणां पूषभद्रो मणिभद्रश्च । राक्षसानां भीमो महाभीमश्च । भूतानां प्रतिम्पोऽप्रतिरूपश्च । पिशाचानां कालो महाकालश्च ।

उन निकायोंमें क्या एक एक इन्द्र है या और दूसरा कोई नियम है इस बात के बतलानेके लिये

११ अब आगवा सूत्र कहते हैं—

प्रथम द्वौ निकायोंमें दो दो इन्द्र हैं ॥६॥

पूर्व दो निकायोंमें भवनवासी और व्यन्तर य दो निकाय लना चाहिये ।

पांचा—दूसरे निकायको पूर्व कचे कहा जा सकता है ?

महाधान—प्रथमक मभीपवर्ती होनेसे दूसरे निकायको उपभारस पूर्व कहा है । द्वीन्द्र । इसपदमें

- २ वीप्सा रूप अर्थ गमित है मत इमका विग्रह इस प्रकार हुआ कि 'द्वौ द्वौ इन्द्रो येषां ते द्वीन्द्रा' जैसे सप्तपर्ण और अष्टापद । तात्पर्य यह है जिन प्रकार सप्तपर्ण और अष्टापद इन पदोंमें वीप्सारूप अर्थ गमित है उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिए । गुणमा इस प्रकार है—भवनवासियोंमें अमुरकुमारोंक चमर और वैरोक्षन य दो इन्द्र हैं । नागकुमारोंके धरणी और भूतानन्द य दो इन्द्र हैं । विद्युत्कुमारोंके हरिसिंह और हरिकान्त य दो इन्द्र हैं । सुषणकुमारोंके वेणुदेव और वेणुधारी य दो इन्द्र हैं । अग्निकुमारोंके अग्नि शिप और अग्निमाणव य दो इन्द्र हैं । वासुकुमारोंके बलम्ब और प्रभञ्जन ये दो इन्द्र हैं । स्तनितकुमारोंके सुधोप और महाधोप य दो इन्द्र हैं । उदधिकुमारोंके जलकान्त और जलप्रभ य दो इन्द्र हैं । द्वीप कुमाराण पूर्व और वसिष्ठ ये दो इन्द्र हैं । तथा विकुमाराओंके ममितगति और ममितवाहन य दो इन्द्र हैं । व्यन्तरगमें भी किन्नरोंके किन्नर और किम्पुरुष य दो इन्द्र हैं । किम्पुरुषोंके सत्पुरुष और महापुरुष य दो इन्द्र हैं । महोरगोंके अनिराय और महाकाय य दो इन्द्र हैं । गन्धर्वाओंके गीतरनि और गीतमय य दो इन्द्र हैं । यक्षाणके पूषभद्र और मणिभद्र य दो इन्द्र हैं । राक्षसाणके भीम और महाभीम य दो इन्द्र हैं । भूतोंके प्रतिम्प और अप्रतिरूप य दो इन्द्र हैं । तथा पिशाचाने काल और महाकाल य दो इन्द्र हैं ।

(१)-उपर्येति महो न ।

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निघातस्तनितोदधिद्वीपविक्रुमारा ॥ १० ॥

भवनेषु वसन्तीत्येवशीला भवनवासिनः । आदिनिकायस्येय सामान्यसञ्ज्ञा ।

असुरादयो विशेषमञ्ज्ञा विशिष्टनामकर्मोदयापादितवलयः । सर्वेषां देवानामवस्थितवय स्वभावस्वऽपि वेपभूपायुधयानवाहनश्रीहनादि कुमारवदेपामाभासत इति भवनवासिषु कुमारव्यपदेशो ऋत् । स प्रत्येक परिसमाप्यते असुरकुमारा इत्येवमादि । क्व तेषां भवना नीति चेत् ? उच्यते—रत्नप्रभायाः पद्मबहुलभागेऽसुरकुमाराणां भवनानि । खण्डपृथिवी भाग उन्मयघट्ट एव कथं योजनसहस्र वर्जयित्वा शेषनवानां कुमाराणामावासा ।

द्वितीयनिकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञावधारणायमाह—

व्यन्तरा किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगन्धर्वशराक्षसभूतपिशाचाः ॥ ११ ॥

विषयदेशान्तराणि येषां निवासास्ते व्यन्तरा इत्यन्वर्था सामान्यसञ्ज्ञेयमष्टा नामपि विकल्पानाम् । तेषां व्यन्तराणामष्टौ विकल्पाः किन्नरादयो वेदितव्या नामकर्मोदयविशेषोपादिताः । अत्र पुनस्तेषामावासा इति चेत् ? उच्यते—अम्माञ्जम्बूद्वीपाद्

भवनवासी देव दस प्रकार हैं—असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, घातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और विक्रुमारा ॥१०॥

जिनका स्वभाव भवनोंमें निवास करना है व भवनवासी कह जात है । प्रथम निकाय की यह सामान्य सज्ञा है । तथा असुरादिक विशेष सज्ञाएँ हैं जो विशिष्ट नामकर्म उदयस प्राप्त होती हैं । यद्यपि हा सब देवोका वय और स्वभाव अवस्थित ह तो भी इनका वप मूपा घट्ट यान बाहन और शीका आदि कुमारोंक समान होती है इसलिय सब भवनवासियोंमें कुमार शब्द रूढ़ है । यह कुमार शब्द प्रत्येकक साथ जोड़ लना चाहिय । यथा असुरकुमार आदि ।

पचा—इनक भवन कहाँ है ?

समाधान—रत्नप्रभाक पद्मबहुल भागमें असुरकुमारोंक भवन है । और सर पृथिवीभागमें ऊपर और नीच एक एक हजार योजन छोड़कर षप ती प्रकारक कुमारोंक भवन है ।

अब दूसर निकायकी सामान्य और विशेष सज्ञाक निश्चय करनक लिये आगका सूत्र कहत है—

व्यन्तर देव आठ प्रकारके हैं—किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, भूत और पिशाच ॥११॥

जिनका नानाप्रकारक दशोम निवास है व व्यन्तर देव कहलात है । यह सामान्य सज्ञा सार्यक है जो अपने आठों ही भेदोंमें लागू है । इन व्यन्तरोंक किन्नरादिक आठों भेद विशेष नामकर्म उदयसे प्राप्त होत ह एमा जानना चाहिय ।

पचा—इन व्यन्तरोंके आवाम कहाँ है ?

(१) पद्मवर्क-आ वि १ वि २ ।

दृष्टसम्प्रत्ययायमिति । कः पुनरिष्टोऽभिसम्बन्धः ? आर्षाविरोधी—मानत्कुमारमाहन्द्र  
योर्देवा देवाङ्गनोङ्गस्पर्शमात्रादेव परा प्रीतिमुपलभन्ते तथा देश्योऽपि । ब्रह्मब्रह्मोत्तर  
लान्तवकापिष्टेषु देवा दिव्याङ्गनानां शृङ्गाराकारविलासचतुरमनोऽवेपरूपावलोकन  
मात्रादेव परममुखमाप्नुवन्ति । शुक्रमहाशुक्रशतारसहस्रारेषु देवा देववनितानां मधुर  
मङ्गीतमृदुहसितललितकथितभूपणखवश्रवणमात्रादेव परा प्रीतिमास्कुन्ति ।  
आनतप्राणतारणाभ्युतकल्पेषु देवा स्वाङ्गनामनसङ्कल्पमात्रादेव पर सुखमाप्नुवन्ति ।

अथात्तरेषां किंप्रकारं सुखमित्युन्ते तन्निश्चयायमाह—

परेश्वरीचाराः ॥ ९ ॥

‘पर’ ग्रहणमितराशेषसंग्राह्यम् । अप्रवीचारग्रहणं परमसुखप्रतिपत्त्यधम् ।

प्रवीचारो हि वदनाप्रतिकारः । तन्भावे तेषां परमसुखमनवरतं भवति ।

उक्ता य आग्नििकायदेवा दशविकल्पा इति तथा सामान्यविशेषसञ्ज्ञाविज्ञाप  
नायमित्युच्यते—

समाधान—दृष्ट अथका ज्ञान करानेक लिय ।

दका—जिममें आपस विरोध न आवे एसा यह दृष्ट अर्थ क्या है ?

समाधान—सानत्कुमार और माहन्द्र स्वर्गके दश दशांगनाओंके स्पर्श मात्रसे परम प्रीतिको प्राप्त  
होत है और इसी प्रकार वहाँकी दवियाँ भी । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर सन्तक और कापिष्ठ स्वर्गके दश देवा-  
गनाओंके शृङ्गार आहृति विकास चतुर और मनोऽवेप तथा मनोऽवेपक देसन मात्रसे ही परम  
मुखको प्राप्त होत है । शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्रार स्वर्गके दश दशांगनाओंके मधुर संगीत  
कोमल ह्रास्य सलित क्या और भूपणोत्रे कोमल शार्श्रोक सुननमात्रसे ही परम प्रीतिको प्राप्त होत है ।  
तथा आनत प्राणत आरण और अभ्युत कल्पके दश अपनी अगनाका मनमें सकल्प करनमात्रसे ही परम  
मुखका प्राण हात है ।

अब आगक दशोंका किम प्रकारका सुख है ऐसा प्रश्न करनेपर उसका निदधय करनेके लिये आगका  
सूत्र कहत है—

पाक्षिक सब देव विषय-सुख से रहित होत हैं ॥९॥

अप सब दशोंका मग्रह करनेके लिये सूत्रमें ‘पर’ शब्दका ग्रहण किया है । परम सुखका ज्ञान  
करनेके लिये अप्रवीचार पदका ग्रहण किया है । प्रवीचार वेदनाका प्रतिकारमात्र है । इसका अभावमें  
उनके सदा परम सुख पाया जाता है ।

आदिक निरायक दशके दम नैः कहें हैं । अब उनकी सामान्य और विषय महाका ज्ञान करानेके  
लिय आगका सूत्र कहत है—

बहुरस्ति यगसख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणो घनोदधिपयन्त । उच्यते च—

“णउदुधससप्तसया दससीदी” चतुर्ग तियघउचक ।

ठारारविसमिरिक्खा पुहमगवगुरुअंगिरारसणी ॥१३॥

ज्यातिष्काणा गतिविशेषप्रतिपत्त्यथमाह—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरो प्रदक्षिणा मेरुप्रदक्षिणा । मेरुप्रदक्षिणा इति वचन गतिविशेषप्रतिपत्त्यथ विपरीता गतिर्मा विद्मयीति । नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतत्रिन्याप्रतिपत्त्याथम् । ‘नृलोक’ ग्रहण विपयाथम् । अघतृतीयेषु द्वीपेषु द्वयोश्च समुद्रयोज्योतिष्का नित्यगतयो नायत्रति । ज्योतिष्कविमानाना गतिहेत्वभावात्तद्वृत्त्यभाव इति चेत् ? न असिद्धत्वात् गतिरताभियाग्यधेवप्रेरितगतिपरिणामात्कमविपानस्य वचिष्यात् । तेषां हि गतिमुखेनय कम विपच्यत इति । एकादशभिर्पौजनघतरेक विशोर्मेरुमप्राप्य ज्योतिष्का प्रदक्षिणाश्चरन्ति ।

द्वीप समुद्रप्रमाण स्याद्वा हे । कदा मी हे—

‘दस पृथिवी तरुस सात सी नखे योजन ऊपर जाकर ठाराएँ हैं । पुन’ दस योजन ऊपर जाकर सूर्य हैं । पुन’ अस्ती योजन ऊपर जाकर चन्द्रमा हैं । पुन’ चार योजन ऊपर जाकर नक्षत्र और चार योजन ऊपर जाकर बुध हैं । पुन’ चार बार तीन योजन ऊपर जाकर अर्थात् तीन तीन योजन ऊपर जाकर क्रमस धृत्र गुरु मंगल और शनि हैं ॥

अब ज्यातिपी नृलोकी गतिविशेषका ज्ञान करानेके लिय आगका सूत्र कहते हैं—

ज्योतिषो दध मनुष्यलोकेमे मेरुकी प्रदक्षिणा फरनेवाले और निरन्तर गतिशील हैं ॥१३॥

‘मेरुप्रदक्षिणा’ इस पदमें पठ्ठी तत्पुरुष समास ह । ‘मेरुप्रदक्षिणा’ यह वचन गतिविशेषका ज्ञान करानेके लिय और जोई विपरीत गति न समझ बैठे इनका लिय दिया है । ‘निरन्तर गतिरूप त्रिया युक्त है इस बातका ज्ञान करानेके लिय ‘नित्यगतय’ पद दिया ह । इस प्रकारके ज्योतिषी दवोंका क्षेत्र बतलानेके लिय ‘नृलोक’ पदका ग्रहण किया ह । तात्पर्य यह है कि इहाँ द्वीप और दो समुद्रामें ज्योतिषी दध निरन्तर गमन करत रहते हैं अन्यत्र नहीं ।

धका—ज्योतिषी दवोंके विमानोंकी गतिकका कारण मही पामा जाता अत उनका गमन मही बन सकता ?

समाधान—नही क्योंकि यह हेतु अमिद्ध है । बात यह है कि गमन करनेमें गत जो आभियोग्य जालिक दध ह उनसे प्रेरित होकर ज्यातिपी दवोंके विमानोंका गमन होता रहता है ।

यदि कदा जाय कि आभियोग्य जालिक दध निरन्तर गतिमें ही क्या रत रहत ह तो उसका उत्तर यह है कि यह कर्मके परिपाककी विधिप्रता है । उनका कर्म गतिरूपम ही फलना ह । मही कारण ह ।

(१) शीघ्र चतुर्थिय बुधचक्रक । ताग-ता ना तत्का (२) ऋउदुधससप्तमए दम सीरी चतुर्थिय नियमचक्रक । तारिपतसिरिक्खबुहा मुफकपुंकारमंभवरी । ति सा या ३३२ ।

सख्ययान्दोषसमुद्धानतीत्य उपरिष्ट' खरपृथिवीभाग मप्ताना व्यन्तराणामावासा । राक्षसानां पञ्चबहुलभागे ।

तृतीयस्य निकायस्य सामान्यविशेषसञ्ज्ञाम ह्युक्तीतनायमाह—

ज्योतिष्का सूर्याचन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ॥१२॥

ज्योतिस्स्वभावत्वादेया पञ्चानामपि ज्योतिष्का इति सामान्यसञ्ज्ञा अन्वर्था । सर्वावयवस्तद्विशेषसञ्ज्ञा नामकर्मोत्पत्त्यया । सर्वाचन्द्रमसौ' इति पृथग्ग्रहण प्राधान्य व्यापनार्थम् । किञ्चित् पुन' प्रायायम् ? प्रभावादिद्वयम् । क्व पुनस्तोपामावासा ? इत्यत्रा व्यते अस्मात्प्रमाद् भूमिभागाद्बुध सप्तयोजनगतानि नवत्युत्तराणि उत्पत्त्य सबज्यो सिपामधोभागविन्यस्तास्मारकाश्चरन्ति । ततो दशयोजनान्युत्पत्त्य सूर्याश्चरन्ति । ततोऽ-  
थीतिभोजनायुत्पत्त्य चन्द्रमसो भ्रमन्ति । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्त्य नक्षत्राणि । ततश्चत्वारि योजनान्युत्पत्त्य ध्रुवा । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्य क्षुत्रा । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्य बृहस्पतय । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्या ज्वाला । ततस्त्रीणि योजनान्युत्पत्त्य क्षतश्चराश्चरन्ति । स एव ज्योतिगणगोचरो नभोजकाशो दशाधिकयोजनगत

समाधान—इस जम्बूद्वीपस्य असख्यात द्वीप और समुद्र सांघ कर ऊपर खर पृथिवी भागमें साठ

१२ प्रकारक व्यन्तरीक आवास हैं । तथा पञ्चबहुल भागमें राक्षसीक आवास है ।

अब तीसर निकायका सामान्य और विशेष सञ्ज्ञाका कथन करनेक लिय आगका सूत्र कहत हैं—

ज्योतिषी देव पांच प्रकारके हैं—सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे ॥१२॥

ये सब पाँचों प्रकारक देव ज्योतिर्मय हैं इसलिये इनकी ज्योतिषी यह सामान्य सञ्ज्ञा सार्थक है ।

तथा सूर्य आदि विशेष सञ्ज्ञाएँ विशेष नामकर्मक उदयसे प्राप्त होती हैं । सूर्य और चन्द्रमाकी प्रधानताको

२ विखलानेक लिय 'सूर्याचन्द्रमसौ' इस प्रकार इन दोनों का मेलगते ग्रहण किया है ।

सञ्ज्ञा—इनमें प्रधानता किम निमित्तसे प्राप्त होती है ?

धमाधान—इनमें प्रभाव आदिककी अपेक्षा प्रधानता प्राप्त होती है ।

सञ्ज्ञा—इनका आवास कहाँपर है ?

समाधान—इस समान भूमिभागसे सातसौ मख योजन ऊपर जाकर तारकाएँ विचरण करती हैं

२५ जो सब ज्योतिषियोंके अधोभागमें स्थित हैं । इससे दस योजन ऊपर जाकर सूर्य विचरण करत हैं ।

इससे अन्धी योजन ऊपर जाकर चन्द्रमा परिभ्रमण करत है । इससे चार योजन ऊपर जाकर नक्षत्र

है । इससे चार योजन ऊपर जाकर ध्रुव है । इससे तीन योजन ऊपर जाकर क्षुत्र है । इससे तीन योजन

ऊपर जाकर बृहस्पति है । इससे तीन योजन ऊपर जाकर मंगल है । इससे तीन योजन ऊपर जाकर

सनीधर है । यह ज्योतिषियोंसे ब्याप्त नभ-प्रवेश एकसौ दस योजन मोटा और घनोदभिपर्यन्त असख्यात

(१) नीत्य परितः वा ता ना वि १ वि २ । (२) ताराणि ७९ उत्प-मु । (३) तद्वर्षीणि योज-ता ना । तत्त्वा । (४) तद्वर्षीणि योज-ता ना तत्त्वा । (५) तद्वर्षत्वारि योज-ता ना तत्त्वा । (६) तद्वर्षत्वारि योज-ता ना तत्त्वा ।

बहुलस्तियगसख्यातद्वीपसमुद्रप्रमाणा धनोदधिपयन्त । उक्त च—

“णठदुत्तरसप्तसया दसमीदी’ चतुर्गं तियघउक्क ।

तारारधिसनिरिक्खा पुहमग्गवगुरुअगिरारसणी ॥”

ज्यातिष्काणां गतिविशेषप्रतिपत्त्यधमाह—

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके ॥१३॥

मेरो प्रदक्षिणा मेरुप्रदक्षिणा । ‘मेरुप्रदक्षिणा इति वचन गतिविशेषप्रतिपत्त्यर्थं विपरीता गतिर्मा विज्ञायीति । नित्यगतय इति विशेषणमनुपरतत्रिव्याप्रतिपत्तनाथम् । नूलाक’ ग्रहण विपयाथम् । अधतुतीयपु द्वीपेषु द्वयोदध समुद्रयोज्योतिष्का नित्यगतयो नायत्रति । ज्यातिष्कविमानानां गतिहेत्वभावात्तद्व्यूत्यभाव इति चेत् ? न असिद्धत्वात् गतिरताभियोग्यदेवप्रेरितगतपरिणामात्कमविपाकस्य वक्षिष्यात् । तेषां हि गतिमुखनव कम विपच्यत इति । एमादशभियोजनगतरेकविश्वमैरुमप्राप्य ज्योतिष्का प्रदक्षिणाश्चरन्ति ।

द्वीप समुद्रप्रमाण लम्बा है । कहा भी है—

‘इस पृथिवी तरुस सात सी नख्खे योजन ऊपर जाकर ताराएँ ह । पुन दस योजन ऊपर जाकर सूर्य है । पुन अस्ती योजन ऊपर जाकर चन्द्रमा है । पुन चार योजन ऊपर जाकर नक्षत्र और चार योजन ऊपर जाकर बुध है । पुन चार बार तीन योजन ऊपर जाकर अर्षात् तीन तीन योजन ऊपर जाकर क्रमस शुक गुरु मंगल और शनि हैं ॥

अब ज्योतिषी दबोंकी गतिविशेषका ज्ञान करानेक लिय आगना मूत्र कहत ह—

ज्योतिषी दव मनुष्यलोकेमै मेरुकी प्रदक्षिणा करनेवाले और निरन्तर गतिशील हैं ॥१३॥

‘मरुप्रदक्षिणा’ इस पदमें पठ्ठी तत्पुरुष समास है । ‘मरुप्रदक्षिणा’ यह वचन गतिविशेषका ज्ञान करानेक लिये और कोई विपरीत गति न समझ बैठे इसके लिय दिया ह । ये निरन्तर गतिरूप त्रिव्या मुक्त हैं इस बातका ज्ञान करानेक लिय ‘नित्यगतय’ पद दिया है । इस प्रकारके ज्योतिषी दबोंका क्षत्र वास्तविक लिय ‘नृलोक’ पदका ग्रहण किया ह । तात्पर्य यह है कि बड़े द्वीप और दो समुद्रामें ज्योतिषी दव निरन्तर गमन करत रहत ह अन्यत्र नहीं ।

धका—ज्यातिषी दबोंके विमानाकी गतिका कारण नहीं पाया जाता अत उनका गमन नहीं बन सकता ?

समाधान—नहीं क्याकि यह ह्म अमिद्ध हैं । वात यह ह कि गमन करनेमें रत जा आभिमार्ग जातिक दव ह उनम प्ररित होकर ज्योतिषी दबोंके विमानोंका गमन हुना रहता ह ।

यदि कहा जाय कि आभियोग्य जातिक दव निरन्तर गतिमें ही क्या रत रहत ह ता उनका उत्तर यह है कि यह कर्मके परिपाककी विक्षिप्रता ह । उनका कम गतिरूपम ही फलता ह । यही कारण ह ।

(१) सीदि चतुर्गं तियघउक्क । तारारधा ना तरुवा (२) ‘णठदुत्तरसप्तसया दस सीरी चतुर्गं तियघउक्क । तारारधिसनिरिक्खा पुहमग्गवगुरुअगिरारसणी । ति ता गा ३३३ ।

गतिमज्ज्योतिस्सम्बन्धन व्यवहारकालप्रतिपत्त्यमाह—

तत्कृत कालविभाग ॥ १४ ॥

तद् ग्रहण गतिमज्ज्योति प्रतिनिर्देशायम् । न कवलया गत्या नापि कवलज्योतिभिः काल परिच्छिद्यत अनुपलब्धपरिवर्तनाच्च । कालो द्विविधो व्यावहारिको मुख्यश्च । व्यावहारिक कालविभागस्तत्कृत समयावल्किादि क्रियाविशेषपरिच्छिन्नोऽन्यस्यापरिच्छिन्नस्य परिच्छिदहतु । मुख्योऽज्यो वक्ष्यमाणलक्षण ।

किं वे निरन्तर गमन करनेमें ही रत रहत है ।

यद्यपि ज्योतिषी दक्ष मघ पर्वतकी प्रदक्षिणा करत है तो भी व मघ पर्वतसे ग्यारहसौ इक्कीस योजन दूर रह कर ही विचरण करत ह ।

अब गमन करनेवाले ज्योतिषियोंके सम्बन्धसे व्यवहारकालका ज्ञान करानेके लिय आगका सूत्र कहत है—

उन गमन करनेवाले ज्योतिषियों के द्वारा किया हुआ कालविभाग है ॥१४॥

गमन करनेवाले ज्योतिषी दक्षोका निर्देश करनके लिय 'तत्' पदका ग्रहण किया है । कवल गतिसे कालका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि वह पार्श्व नहीं जाती और गतिके बिना कवल ज्योतिसे भी काल का निर्णय नहा हो सकता क्योंकि परिवर्तन बिना वह सदा एकसी रहेगी । यही कारण ह कि यहाँ 'तत्' पदक द्वारा गतिवाले ज्योतिषियोंका निर्देश किया है ।

काल दो प्रकारका ह—व्यवहारकाल और मुख्यकाल । इनसे समय और आबलि आवि रूप व्यावहारिक कालका विभाग गतिवाले ज्योतिषी देवोंके द्वारा किया हुआ है । यह क्रिया विशेषतः जाना जाता है और अन्य नहीं जानी हुई वस्तुओंके ज्ञानका हतु है । मुख्य काल इससे निम्न है जिसका लक्षण आग कहनकाल है ।

विशेषार्थ—मनुष्य मानुषोत्तर पर्वतके भीतर पाये जाते है । मानुषोत्तर पर्वतके एक ओरसे लेकर दूसरी ओरतक कुछ बिम्बान्तर पेटालीस लाख योजन है । मनुष्य इसी क्षेत्रमें पाये जात है । इसलिये यह मनुष्यलोक कहलाता है । इस लोकमें ज्योतिष्क सदा ग्रमण क्रिया करते हैं । इनका ग्रमण मेवक चारों ओर होता है । मरुके चारों ओर ग्यारहसौ इक्कीस योजन तक ज्योतिष्क मडल नहीं ह । इसका आगे आकाशमें सर्वत्र विलग्न हुआ ह । जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्र ह । एक सूर्य जम्बू द्वीपकी पूरी प्रदक्षिणा दो दिन रातमें करना है । इसका चार क्षेत्र जम्बूद्वीपमें १८ योजन और सब्ब समुद्रमें ३३ योजन माता गया है । सूर्य के घूमनेकी कुल गलियाँ १८४ हैं । इनमें यह क्षेत्र विभाजित हो जाटा ह । एक गम्भीरे दूसरी गम्भीमें २ योजन का अन्तर माता गया है । इसमें सूर्य बिम्बक प्रमाणका मिस्रा देनेपर वह २५ योजन होता ह । इतना उदयान्तर ह । मध्यरान्तर दो योजन का ही है । चन्द्रको पूरी प्रदक्षिणा करनेमें दो दिन रातसे कुछ अधिक समय लगता है । चन्द्रोदयम न्यूनधिकता इसीसे आती है । लवण समुद्रमें चार सूर्य चार चन्द्र घातकीलक्षमें बाएह सूर्य बाएह

इतरत्र ज्योतिषामवस्थानप्रतिपादनाथमाह—

बहिरवस्थिता ॥ १५ ॥

बहि इत्युच्यते । कुता बहि ? नूलाकात् । कथमवगम्यते ? अथवशाद्विमक्ति परिणामो भवति । ननु च नूलोके नित्यगति वचनादान्यत्रावस्थान ज्योतिष्कारणां मिद्धम् । अतो बहिरवस्थिता इति वचनमनयकमिति ? तन्न, किं कारणम् ? नूलोकादयत्र हि ज्योतिषामस्तित्वमवस्थान चासिद्धम् । अतस्तदुभयमिदृश्यथ बहिरवस्थिता इत्युच्यते । विपरीतगतितिवृत्त्यथ कादाचित्कगतितिवृत्त्यथ च सूत्रमारब्धम् ।

तुरीयस्य निकायस्य सामा यसञ्ज्ञासञ्ज्ञीतनाथमाह—

चन्द्र कालोदधिमें ब्यालीस सूर्य ब्यालीस चन्द्र और पुष्करार्धमें बहतर सूर्य बहतर चन्द्र हैं । इस प्रकार बाईं द्वीप में एक सौ बत्तीस सूर्य और एक सौ बत्तीस चन्द्र ह । इन दोनों में चन्द्र इन्द्र और सूर्य प्रतीन्द्र ह । एक एक चन्द्रका परिवार एक सूर्य अट्टाहस्र नक्षत्र अठासी ग्रह और छधामठ हजार नौ सौ कोबाकोडी तार हैं । इन ज्योतिष्कोका गमन स्वभाव ह तो भी आभियोग्य वव सूर्य आविक विमानोको निरन्तर बोया करत ह । य वव सिंह गज बल और घोड़ेका आकार धारण किय रहते हैं । सिंहाकार देवोंका मुख पूर्व दिशाकी ओर रहता है । तथा गजाकार देवोका मुख दक्षिण दिशाकी ओर, वृषभाकार देवोंका मुख पश्चिम की ओर और अस्वाकार देवोंका मुख उत्तर दिशा की ओर रहता है ।

अब बाईं द्वीपके बाहर ज्योतिषियोंके अवस्थानका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

मनुष्य-श्लोकके बाहर ज्योतिषी वष स्थिर रहते हैं ॥१७॥

सूत्र में 'बहि' पद विद्या ह ।

शका—किससे बाहर ?

समाधान—मनुष्य-श्लोकसे बाहर ।

शका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—पिछले सूत्रमें 'नूलोके' पद आया ह । अर्थके अनुसार उसकी विमक्ति वदस जाती ह, जिससे यह जाना जाता ह कि यहाँ बहि पदम मनुष्य-श्लोकके बाहर यह अर्थ दृष्ट ह ।

शका—मनुष्य-श्लोकम ज्योतिषी निरन्तर गमन करत है यह पिछले सूत्रमें कहा ही है अन अन्यत्र ज्योतिषियोंका अवस्थान सुतरा सिद्ध है । इसलिये बहिरवस्थिता यह सूत्रवचन निरर्थक ह ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं क्योंकि मनुष्यश्लोकके बाहर ज्योतिषियोंका अस्मित्व और अवस्थान ये दोनों असिद्ध हैं । अत इन दोनोंकी सिद्धिक मिय बहिरवस्थिता यह सूत्रवचन कहा है । दूसर विपरीत गतिक निराकरण करनेके लिये और कादाचित्क गतिक निराकरण करनेक लिय यह सूत्र रचा है । अत यह सूत्रवचन अनर्थक नहीं ह ।

अब चौथे निकायकी सामान्य सज्ञाने कथन करनेके लिय आगेका सूत्र कहत हैं—

(१) अथ बहिर्गो-मु ।



वमानिका ॥ १६ ॥

वमानिक ग्रहणमधिकारायम् । इत उत्तर म वक्ष्यन्ते तेषा वमानिकसम्प्रत्यया यथा स्यादिति अधिकार-त्रियते । विशेषेणात्मस्यान् सकृत्ताना मानयतीति विमानानि । विमानपु भवा वैमानिका । तानि विमानानि त्रिविधानि—इन्द्रकश्रणीपुष्पप्रकीणकभेदेन ।  
 ५ तत्र इन्द्रकविमानानि इन्द्रबन्धुष्वस्थितानि । तेषां चतसृषु दिक्षु आकाशप्रदेशश्रेणि पदवस्थानात् श्रेणिविमानानि । विदिक्षु प्रकीणपुष्पवस्थानात्पुष्पप्रकीणकानि ।  
 तेषा वमानिकानां भेदावधीषनायमाह—

कल्पोपपन्ना कल्पातीताश्च ॥ १७ ॥

कल्पोपपन्ना कल्पापन्ना कल्पानतीता कल्पातीताश्चति त्रिविधा वमानिका ।  
 १ तेषामवस्थानविशेषनिर्णयनायमाह—

उपसृपरि ॥ १८ ॥

किमयमिदमुच्यते ? तिर्यगवन्मितिप्रतिषेधार्थमुच्यते । न ज्योतिष्कवतिर्यगव स्थिता । न व्यन्तरवदसमावन्मितम् । 'उपसृपरि' इत्युच्यन्ते ? के त ? कल्पा ।

शौचे निष्कापके देव वैमानिके ॥ १९ ॥

१२ वैमानिकोका अधिकार हैं यह बतलानके किम् 'वैमानिक' पदका ग्रहण किया है । आग जिनका कथन करनेवाके हैं वे वैमानिक हैं । इनका ज्ञान जैसे ही इसके किम् यह अधिकार बचन है । जो विशेषतः अपनेमें रहनेवासे जीवोंको पुष्पात्मा मानते हैं वे विमान हैं और जो उन विमानोंमें होते हैं वे वैमानिक हैं । इन्द्रक भोजिवद्य और पुष्पप्रकीणकक सबसे विमान अनेक प्रकारके हैं । उनमेंसे इन्द्रक विमान इन्द्रके समान मध्यमें स्थित है । उनके चारों ओर आकाशके प्रदेशोंकी पक्तिसे समान जो स्थित हैं वे श्रेणिविमान हैं । तथा पिच्छर हुए फूलोंके समान विदिक्षाओंमें जो विमान अवस्थित हैं वे पुष्पप्रकीणक विमान हैं ।

उन वैमानिकोंके भेदाका ज्ञान करानेके किम् आगका सूत्र कहत है—

वे दो प्रकारके हैं—कल्पोपपन्न और कल्पातीत ॥ १७ ॥

२२ जो कल्पोंमें उत्पन्न होते हैं वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं । और जो कल्पोंके पर हैं वे कल्पातीत कहलाते हैं । इस प्रकार वमानिक दो प्रकारके हैं ।

कब उनके अवस्थान विशेषका ज्ञान करानेके किम् आगका सूत्र कहत है—

वे ऊपर-ऊपर रहते हैं ॥ १८ ॥

पका—यह सूत्र किसकिम् कहा है ?

समाधान—ये कल्पोपपन्न और कल्पातीत वैमानिक तिरछे रूपसे रहत हैं इसका गिपत्र करनेके किम् कहा है । ये ज्योतिषियोंके समान तिरछे रूपसे नहीं रहत हैं । उसी प्रकार व्यन्तरोंके समान

(२) नाति त्रिविधा नु । (१) मध्ये व्यक्त नु ।

यद्येव, कियत्सु कल्पविमानेषु त देवा भवन्तीत्यत आह—

सौधर्मेशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मह्योत्तरलाग्तयकापिच्छशुक्रमहाशुक्रशतारसह  
स्त्रारेऽवानतप्राणतपोरारण्यच्युतयोनवसु प्रवेयकेषु विजयधनयत्तजयत्ताप  
राजितेषु सर्वार्थसिद्धी च ॥ १९ ॥

कथमेपां सौधर्मादिशब्दानां कल्पाभिधानम् ? चातुर्यिकेनाणा स्वभावतो वा कल्प  
स्याभिधानं भवति । अयं कथमिन्द्राभिधानम् ? स्वभावतः साहचर्याद्वा । तत्कथमिति  
चेत् ? उच्यते—सुधर्मा नाम सभा साऽस्मिन्नस्तीति सौधर्म कल्पः । “तदस्मिन्नस्तीति”  
अण् । तत्स्वल्पमाहचर्यादिन्द्रोऽपि सौधर्मः । इशानो नाम इन्द्रः स्वभावतः । इशानस्य  
निवाम कल्प एशानः । “तस्य निवासः” इत्यण् । तत्साहचर्यादिन्द्रोऽप्यशानः । सन्तुमारो  
नाम इन्द्रः स्वभावतः । “तस्य निवामः” इत्यण् । सान्तुमारः कल्पः । तत्साहचर्यादि  
विषयकस्य नहीं रहते हैं । किन्तु ऊपर ऊपर ह ।

पृथा—य ऊपर ऊपर क्या हैं ?

समाधान—कल्प ।

यदि ऐसा है तो किन्तु कल्प विमानों के दस निवाम करत ह इस बातके मतदानके स्थिय अब  
आगवा मूत्र कहत हैं—

सौधर्म एशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ शुक्र, महानुक्र शतार  
और सहस्रार तथा आनत प्राणत, आरण-अच्युत, नौ प्रवेयक और विजय, धैजयन्त,  
जयन्त अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धिमें व निवास करत हैं ॥१९॥

पृथा—इन सौधर्मादिषु शब्दोंको कल्प सभा किस निमित्ततम मिल्नी ह ?

समाधान—व्याकरणमें चार अर्थमें अण् प्रत्यय होना है उभय गौधर्म आदि शब्दोंकी कल्प सभा  
है या स्वभावतः ही व कल्प कहलाने ह ।

पृथा—सौधर्म आदि शब्द शब्दों का क्या नाम है ?

समाधान—स्वभावतः या साहचर्यम् ।

पृथा—कथम् ?

समाधान—सुधर्मा नामका सभा है वह जहाँ है उन कल्पोंका नाम सौधर्म है । यहाँ ‘तदस्मिन्नस्मि  
इगम् अण् प्रत्यय हुआ है । और इस कल्पका सम्बन्धम यहाँका इन्द्र भी सौधर्म कहलाना है । इन्द्रका  
इशान पर नाम स्वभावतः है । वह इन्द्र जिन कल्पोंमें रहता है उगरीका नाम एशान काय है । यहाँ  
‘तस्य निवाम’ इग मूत्रम् ‘अण् प्रत्यय हुआ है । तथा इस कल्पका सम्बन्धम इन्द्र भी एशान कहलाना है ।  
इन्द्रका सान्तुमार नाम स्वभावतः है । यहाँ ‘तस्य निवाम’ इग मूत्रम् ‘अण् प्रत्यय हुआ है इसमें कल्प

(१) ‘तदस्मिन्नस्मिन्’ इति तत्रास्ति-या ४ २ ६७ । ‘तदस्मिन्नस्मिन्’ इति ली-जै-४ ४ १ २४ ।

(२) ‘तस्य निवाम’-या ४ २ ६१ । ‘तस्य निवामाङ्गुम्भो’-जै-४ १ २, ६१ ।

न्द्रोऽपि सानत्कुमार । महेन्द्रो नामेन्द्र स्वभावतः । तस्य निवास कल्पो माहेन्द्र । तत्साह  
 चर्मादिन्द्रोऽपि माहेन्द्र । एवमुत्तरत्रापि भोज्यम् । आगमापेक्षया व्यवस्था भवतीति  
 'उपयुपरि' इत्यनेन द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । प्रथमौ सौधम शानकल्पो, तयोस्परि  
 सानत्कुमारमाहेन्द्रौ, तयोस्परि ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरौ तयोस्परि लान्तवकापिष्ठौ, तयोस्परि  
 १ शुक्रमहाशुक्रौ तयोस्परि शतारसहस्रारौ, तयोस्परि आनतप्राणतौ, तयोस्परि आरण-  
 ष्युतौ । अथ उपरि च प्रत्येकमिन्द्रसम्बन्धो वेदितव्यः । मध्ये तु प्रतिद्वयम् । सौधमेशान  
 सानत्कुमारमाहेन्द्राणां सप्तुर्णां चत्वार इन्द्राः । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोरेको ब्रह्मा नाम ।  
 लान्तवकापिष्ठयोरेको लान्तवास्यः । शुक्रमहाशुक्रमोरेकः शुक्रस्यः । शतारसहस्रारयो-  
 रेकः शतारनामा । आनतप्राणसारणाच्युतानां सप्तुर्णां चत्वारः । एव कल्पवासिनां द्वादश  
 १ इन्द्रा भवन्ति ।

जम्बूद्वीपे महामन्दरो योजनसहस्रानगाहो नभनवतियोजनसहस्रोच्छायः । तस्या  
 पस्तादधोलोकः । वाहस्येन तत्प्रमाणैस्तिथयप्रसूतस्तिर्यग्लोकः । तस्योपरिष्टादूर्ध्वं  
 वा नाम सानत्कुमार पञ्चा और इसके सम्बन्धसे इन्द्र भी सानत्कुमार कहलाता है । इन्द्रका भाइ  
 नाम स्वभावसे है । यह इन्द्र जिस कल्पमें रहता है उसका नाम माहेन्द्र है । और इसके सम्बन्धसे  
 १ इन्द्र भी माहेन्द्र कहलाता है । इसी प्रकार भाग्ये भी जानना ।

'व्यवस्था आगमके अनुसार होती है इसलिये 'उपयुपरि' इस पदके साथ दो दो कल्पोंका सम्बन्ध  
 कर लेना चाहिये । सबप्रथम सौधम और ऐशान कल्प हैं । इनके ऊपर सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प  
 हैं । इनके ऊपर ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्प हैं । इनके ऊपर लान्तव और वापिष्ठ कल्प हैं । इनके ऊपर  
 शुक्र और महामुद्र कल्प हैं । इनके ऊपर शतार और सहस्रार कल्प हैं । इनके ऊपर आनत और  
 २ प्राणन कल्प हैं । इनके ऊपर आरण्य और अभ्युत कल्प हैं । नीचे और ऊपर प्रत्येक कल्पमें एक एक  
 इन्द्र है तथा मध्यमें दो दो कल्पोंमें एक एक इन्द्र है । तात्पर्य यह है कि सौधम ऐशान सानत्कुमार  
 और माहेन्द्र इन चार कल्पोंके चार इन्द्र हैं । ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तर इन दो कल्पोंका एक ब्रह्म  
 नामका इन्द्र है । लान्तव और वापिष्ठ इन दो कल्पोंमें एक लान्तव नामका इन्द्र है । शुक्र और महामुद्र  
 में एक शुक्र नामका इन्द्र है । शतार और सहस्रार इन दो कल्पोंमें एक शतार नामका इन्द्र है । तथा  
 २२ आनत प्राणन आरण्य और अभ्युत इन चार कल्पोंके चार इन्द्र हैं । इस प्रकार कल्पवासिनां द्वादश  
 इन्द्र नाम हैं ।

जम्बूद्वीपमें एक महामन्दर नामका पवन है जो मूलमें एक हजार यात्रन गर्हा है । और नियतव  
 हतार यात्रन ऊता है । उगत मीप अपानता है । मरु पर्वतनी जिगती ऊँचार्द है उनका माय और  
 निगता पर्वत हुआ नियतता है । उगत ऊपर ऊप्यता है जिगती मरु नृत्तिका पाशीग योजन

(१) अथर्ववेदम् ५ । (२) ब्रह्मसंहिता भाग ५ । (३) गार्हापत्येन ५ । (४) तात्पर्यम् ५ । (५) अथर्ववेदम् ५ ।

लोक । मेरुचूलिका चत्वारिंशद्योजनोच्छ्रया । तस्या उपरि केशान्तरमात्रे व्यवस्थित मूजुविमानमिन्द्रक सौधमस्य । सधमन्यल्लोकानुयोगाद्भेदितव्यम् । नवसु भवेयकेषु इति नवशब्दस्य पृथग्वचनं किमर्थम् ? अन्यान्वपि नवविमानानि अनुदिशसञ्ज्ञकानि सन्तीति ज्ञापनायम् । तेनानुदिशाना ग्रहणं वेदितव्यम् ।

एयामधिष्णतानां वैमानिकानां परस्परतो विशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

स्थितिप्रभावमुज्जुतिलेभ्याविशुद्धीग्निसाधविषयसोऽधिकाः ॥ २० ॥

स्वोपात्तस्यायुप उदयात्तस्मि भवे शरीरेण सहावस्थानं स्थिति । ज्ञापानुग्रहं शक्ति प्रभाव । सुक्ष्मिन्द्रियार्थानुभव । शरीरवसनाभरणादिदीप्ति द्युति । लक्ष्या उक्ता । लक्ष्याया विशुद्धिलेभ्याविशुद्धि । इन्द्रियाणामवधेरेच विषय इन्द्रियावधिविषय । तन्म्यस्तर्वाऽधिका इति तसि । उपयुपरि प्रतिफल्य प्रतिप्रस्तार च वैमानिका स्थित्यानि

वित्तुत है उसके ऊपर एक बारके अन्तरसे ऋजुविमान है जो सौधमें कल्पना इन्द्रक विमान है । शेष सब लोकानुयोगसे जानना चाहिये ।

शका—'नवसु भवेयकेषु' यहाँ 'नव' शब्दका कथन अलगसे क्यों किया है ?

समाधान—अनुविश नामके नौ विमान और हैं इस वाकके मतलबानके लिये 'नव' शब्दका अलगसे कथन किया है । इससे नौ अनुदिशोका ग्रहण कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—यद्यपि पहले वैमानिक निकायके बारह भेद कर आये हैं और यहाँ सोलह भेद गिनाये हैं इसलिय यह शका होती है कि इनमें से कौन एक कथन समीचीन होना चाहिए ? समाधान यह है कि कल्पोपपन्नोके बारह इन्द्र होते हैं, इसलिये उनके भेद भी बारह ही हू पर च रहते हैं सोलह कल्पोंमें । यहाँ कल्पोंमें रहनेवाले देवोंके भेद नहीं गिनाए हैं । यहाँ तो उनके निवासस्थानोंकी परिगणना की गई है इसलिय दोनों कथनों में कौन विरोध नहीं है । शय कथन सुगम है ।

अब इन अधिष्कार प्राप्त वैमानिकोंके परस्पर विशेष ज्ञान करानेके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

स्थिति, प्रभाव, सुख द्युति, लेभ्याविशुद्धि, इन्द्रियविषय और अवधिविषयके अपेक्षा ऊपर ऊपर के षड अधिष्क हैं ॥२०॥

अपने द्वारा प्राप्त हुई आयुके उदयसे उस भवमें शरीरक साथ रहना स्थिति कहलाती है । पाप और अनुग्रहक शक्तिको प्रभाव कहते हैं । इन्द्रियोंके विषयोंके अनुभवन करनेको सुख कहते हैं । शरीर वस्त्र और आभूषण आदिकी वान्तिको द्युति कहते हैं । लक्ष्याका कथन कर आय । लक्ष्याकी विशुद्धि लेभ्याविशुद्धि कहलाती है । इन्द्रिय और अवधिज्ञानका विषय इन्द्रियविषय और अवधि विषय कहलाता है । इनस या इनकी अपेक्षा से सब षड उत्तरोत्तर अधिष्क अधिष्क है । तात्पर्य यह है

(१)-कथन जग्या ता ता । (२)-मानानि सन्तीति जा ता ता । (३)-नामो परस्व-जा ।

(४) छह स्वार्थ आ वि १ वि २ । (५) 'अपाराने पाद्वीपरहो । पा ३, ४ ४३ ।-अपाराने-द्वीपरहो-  
-वैनत्र ४ २, ३२ । 'आपारिभ्य उपलक्ष्यात्' या ३, ४ ४४ वाति । 'आपारिभ्यन्मि वैनत्र ६०९ ।

(६) इति परिपन्पु-म् ।

भिरधिका इत्यर्थः ।

यथा स्थित्यादिरुपमपर्यधिकता एव गत्यादिभिरपीत्यतिप्रसङ्गे तत्रिवृत्त्यर्थं  
माह—

गतिशरीरपरिग्रहाभिमामतो हीना ॥ २१ ॥

देशादेशान्तरप्राप्तिहेतुर्गतिः । शरीर वैक्रियकमुक्तम् । लोभकपायोदयाद्विप  
येषु सङ्ग परिग्रहः । मानकपायादुत्पन्नोऽहङ्कारोऽभिमानः । एतगत्यादिरुपमपरिहीना ।  
देशान्तरविषयक्रीडारतिप्रकर्षाभावाद्दुपर्यपरि गतिहीना । शरीर सौघर्मशान्तमोर्वेवानी  
सप्तारत्तिप्रमाणम् । सानत्कुमारमाहन्द्रयो षडरत्तिप्रमाणम् । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तब  
कापिष्ठेषु पञ्चारत्तिप्रमाणम् । सूत्रमहासूत्रातारसहस्रारेषु चतुररत्तिप्रमाणम् । आनत  
प्राणतयोरर्द्धचतुषारत्तिप्रमाणम् । आरणाञ्च्युतयोस्त्वरत्तिप्रमाणम् । अधोप्रवेयकेषु अर्द्ध  
तुसीयारत्तिप्रमाणम् । मध्यप्रवेयकेष्वरत्तिद्वयप्रमाणम् । उपरिमप्रवेयकेषु अनुदिशत्रि  
मानकेषु च अध्वरत्तिप्रमाणम् । अनुत्तरेष्वरत्तिप्रमाणम् । परिग्रहद्वय विमानपरि  
ग्रहादिरुपमपरि हीना । अभिमानश्चोपयपरि तनुकपायत्वाद्हीना । -

कि ऊपर ऊपर प्रत्येक कल्प में और प्रत्येक प्रस्तार में बमानिक देव स्थिति आदिकी अपेक्षा अधिक अधिक है ।

जिस प्रकार ये बमानिक देव स्थिति आदिकी अपेक्षा ऊपर ऊपर अधिक हैं उसी प्रकार गति आदि  
की अपेक्षा भी प्राप्त हुए अतः इसका निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

गति, शरीर, परिग्रह और अभिमानकी अपेक्षा ऊपर ऊपरके देव हीन हैं ॥२१॥

एक दशसे दशके प्राप्त करनेका जो साधन है उसे गति कहते हैं । यहाँ शरीरसे वैक्रियक  
शरीर लिया है यह पहले कह आये हैं । लोभ कपायके उदयसे विषयोंके समको परिग्रह कहत हैं ।

मानकपायक उत्पन्ने उत्पन्न हुए महाभारको अभिमान कहत हैं । इन गति आदिकी अपेक्षा बमानिक  
देव ऊपर ऊपर हीन हैं । जिस देशमें स्थित विषयोंमें श्रीवा विषयक रतिका प्रषय नहीं पाया जाता

इसलिये ऊपर ऊपर गमन कम है । सौघर्म और गदान स्वर्गक देवोंका शरीर सात अरत्तिप्रमाण है ।  
सानत्कुमार और माहन्द्र स्वर्गक देवोंका शरीर छह अरत्तिप्रमाण है । ब्रह्म ब्रह्मोत्तर, सान्तब और

कापिष्ठ कल्पके देवोंका शरीर पाँच अरत्तिप्रमाण है । सूत्र महासूत्र, तार और सहस्रार कल्पके  
देवोंका शरीर चार अरत्तिप्रमाण है । आनत और प्राणत कल्पके देवोंका शरीर साढ़े तीन अरत्तिप्रमाण

है । आरणा और अञ्च्युत कल्पके देवोंका शरीर तीन अरत्तिप्रमाण है । अधोप्रवेयकमें अहमिन्द्रोका  
शरीर साढ़े अरत्तिप्रमाण है । मध्यप्रवेयकमें अहमिन्द्राका शरीर दो अरत्तिप्रमाण है । उपरिम

प्रवेयकमें और अनुदिशोंमें अहमिन्द्राका शरीर एक अरत्तिप्रमाण है । तथा पाँच अनुत्तर विमानोंमें  
अहमिन्द्राका शरीर एक अरत्तिप्रमाण है । विमानोंकी सम्ख्या चौड़ाई आदि रूप परिग्रह ऊपर ऊपर

कम है । अतः कपाय ज्ञानमें अभिमान भी ऊपर ऊपर कम है ।

विनोदण—ऊपर ऊपर दशमें परिग्रह कमनी-कमनी जाना है और पुष्पातिगय अधिना-अधिन

(१)-रत्तिप्रमाणम् । अनु-आ दि १ दि २ ता ।

पुरस्तात्त्रियु निनायेषु देवानां लेद्याविधिस्तन । इदानीं वमानिकेषु लेद्याविधि  
प्रतिपत्त्यमाह—

पीतपद्मशुक्ललेद्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥

पीता च पद्मा च शुक्ला चै ता पीतपद्मशुक्ला । पीतपद्मशुक्ला लेद्या  
यथा ते पीतपद्मशुक्ललेद्या । कथं ह्रस्वत्वम् ? औत्तरपदिक्म् । यथा—  
“द्वुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसम्पानम्” इति । अथवा पीतश्च  
पद्मश्च शुक्लश्च पीतपद्मशुक्ला वणवन्तोऽर्था । तेषामिव लक्ष्या येषां ते पीतपद्म  
शुक्ललेद्या । तत्र कस्य का लेद्या इति ? अत्राच्यते—मौघर्मैधानयो पीतलेद्या ।  
सानत्कुमारमाहेन्द्रयो पीतपद्मलेद्या । ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरलान्तवनपिष्ठेषु पद्मलेद्या ।

इससे ज्ञात होता है कि बाह्य परिग्रहका सचय पुष्पका फल न होकर मूर्च्छाका फल है । ऊपर ऊपर  
मूर्च्छा न्यून होती है जो उनका पूर्वमन्त्रक संस्कारका फल है, इसलिये परिग्रह भी न्यून-न्यून होता है ।

पहल तीन निकार्योंमें लक्ष्याका कथन कर आये । अब वमानिकोंमें लेद्याओंका ज्ञान करानेक  
लिये आगका मूत्र कह्य है—

दो, तीन क्रम्य युगलोंमें और क्षय में क्रमसे पीत, पद्म और शुक्ल लेद्यावाले देव हैं ॥२२॥

पीता पद्मा और शुक्लामें वृन्द समान है अनन्तर लेद्या घट्यक साथ वदुत्रीहि समाप्त है । जिनक  
य पीत पद्म और शुक्ल लेद्याएँ पाई जाती हैं वे पीत पद्म और शुक्ल लक्ष्यावाले देव हैं ।

सका—पीता पद्मा और शुक्ला ये तीनों घट्य दीर्घ हैं व ह्रस्व क्रिये नियमस हो गय ?

समाधान—जैसे दुतायां तपकरण मध्यमविलम्बितयोरुपसम्पानम् अर्थात् दुतावृत्तिमें तपकरण  
करनपर मध्यमा और विलम्बितावृत्तिमें उनका उपसम्पान होता है इसक अनुसार यहाँ ‘मध्यमा’  
घट्यमें औत्तरपदिक् ह्रस्व हुआ है । उसी प्रकार प्रहृत्यमें भी औत्तरपदिक् ह्रस्व जानना चाहिये ।  
अथवा यहाँ पीता पद्मा और शुक्ला घट्य न लेकर पीत पद्म और शुक्ल बर्णवाले पदार्थ स्तन चाहिये ।  
जिनक इन बर्णोंक समान लक्ष्याएँ पाई जाती हैं वे पीत पद्म और शुक्ल लक्ष्यावाले देव हैं । इस  
प्रकार यहाँ पीत पद्म और शुक्ल ये तीन घट्य ह्रस्व ही समझना चाहिये ।

अब जिनक तीन लक्ष्या हैं यह बतलात है—सौधम और एधान क्रममें पीत लेद्या है । सानत्कुमार  
और माहेंद्रकल्पमें पीत और पद्म दोनों लक्ष्याएँ हैं । ब्रह्मलोक ब्रह्मलोक, सान्तव और कापिष्ठ

(१) व पीत आ दि २ (२)-उत्तरपदिक्म् आ दि १ दि २। (३) यथाह् दु-मु ना ता ।

(४) ‘द्वुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयोरुपसम्पानम्’ का लक्ष्येत्वात् । दुतायां तपरकरणे मध्यमविलम्बितयो  
रुपसम्पानं कर्तव्यम् । तथा मध्यमायां वृत्तविलम्बितयो । तथा विलम्बितायां वृत्तमध्यमया । किं पुनः कारणं  
न सिद्ध्यति ? कारणेत्वात् । ये हि दुतायां वृत्ती बर्णादिनामाधिकार्यन्त मध्यमायाम् । ये च मध्यमायां  
बर्णादिनामाधिकार्यन्ते विलम्बितायाम् ।— पा म आ १ १ ६। (५) -यातमिति । इत्यमध्यमविलम्बिता  
इति । अथवा आ दि १।-व्यापमिति । इत्यमध्यमविलम्बिता इति । अथवा दि २।

शुक्रमहाशुक्रशतारमहसारेषु पद्मशुक्ललेस्या । आनतादिषु शुक्ललेस्या । तत्राप्यनुविशानु  
 त्तरेषु परमशुक्ललेस्या । सूत्रेऽभिहितं कथं मिश्रग्रहणम् ? साहचर्याल्लोकवत् । तत्रापि—  
 छत्रिणो गच्छन्ति इति अच्छत्रिषु छत्रिभ्यवहारः । एवमिहापि मिश्रयोरन्यतरग्रहण  
 भवति । अयमर्थः सूत्रतः कथं गम्यते इति चत् ? उच्यते—एवमभिसम्बन्धः किमत  
 द्वयोः कल्पयुगलयो पीतलेस्या मानत्तुमारमाहेन्द्रयोः पद्मलेस्याया अविवक्षात् । ब्रह्म  
 लोकादिषु त्रिषु कल्पयुगलेषु पद्मलेस्या शुक्रमहाशुक्रयोः शुक्ललेस्याया अविवक्षात् ।  
 शेषेषु शतारादिषु शुक्ललेस्या पद्मलेस्याया अविवक्षात् । इति नास्ति दोषः ।

आह कल्पोपपन्ना इत्युक्तं तत्रैव न ज्ञायते के कल्पा इत्यत्रोच्यते—

प्राग्प्रवेयकस्य कल्पा ॥ २३ ॥

इदं न ज्ञायते इति आरभ्य कल्पा भवतीति सौधर्मादिग्रहणमनुवर्तते । सेनाय  
 मर्थो लभ्यते—सौधर्मादयः प्राग्प्रवेयकस्य कल्पा इति । पारिशेष्यादितरे कल्पातीता इति ।  
 लौकान्तिका देवा वमानिका सन्तः नव गृहघन्ते ? कल्पोपपन्नेषु । कथमिति  
 च उच्यते—

कल्पोंमें पद्मलेस्या है । शुक्र महाशुक्र शतार और सहस्रार कल्पमें पद्म और शुक्ल ये दो लेस्याएँ हैं ।  
 तथा आनतादिकमें शुक्ल लेस्या है । उसमें भी अनुविश और अनुत्तर विमानोंमें परम शुक्ल लेस्या है ।  
 शका—सूत्रमें तो मिश्र लेस्याएँ नहीं कही हैं फिर उनका कैसे ग्रहण होता है ?  
 समाधान—सम्बन्धसे मिश्र लेस्याओंका ग्रहण होता है लोकाके समान । जैसे 'छत्री जात है  
 ऐसा कथन करने पर अछत्रियोंमें भी छत्री व्यवहार होता है । उसी प्रकार यहाँ भी दोनों मिश्र  
 लेस्याओंमें से किसी एकका ग्रहण होता है ।

शका—यह अर्थ सूत्रसे कैसे जाना जाता है ?

समाधान—यहाँ ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये कि वहाँ कल्प युगलोंमें पीत लेस्या है । यहाँ सानत्तु-  
 मार और माहेन्द्र कल्पमें पद्मलेस्याकी शिक्षा नहीं की । ब्रह्मलोक आदि तीन कल्पयुगलोंमें पद्म  
 लेस्या है । शुक्र और महाशुक्रमें शुक्ल लेस्याकी शिक्षा नहीं की । शेष शतार आदिमें शुक्ल लेस्या है ।  
 पद्म लेस्याकी शिक्षा नहीं की । इसलिये कोई दोष नहीं है ।

कल्पोपपन्न एक है यह कह आये पर यह नहीं सात हुआ कि कल्प कौन है इसलिये आगेका सूत्र  
 कहते हैं—

प्रैषेयकसे पहले तक कल्प है ॥२३॥

यह नहीं मान्य होता कि यहाँसे शककल्प है इसलिये सौधर्मादि पदकी अनुवृत्ति होती  
 है । इससे यह अर्थ प्राप्त होता है कि सौधर्मसे शक और भी प्रथमकसे पूर्वतन कल्प है । परिशेष  
 न्यायसे यह भी सात हो जाता है कि शेष सब कल्पातीत है ।

लौकान्तिक देव वमानिक हैं उनका किनमें समावेश होगा है ? वमानिकामें । कैसे ? अब इसी  
 बातके बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

### ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका ॥ २४ ॥

एष्य तस्मिन् लीयन्त इति आलय आवास । ब्रह्मलोक आलयो येषां ते ब्रह्मलोकालया लौकान्तिका देवा वेदितव्या । यद्येव सर्वेषां ब्रह्मलोकालयानां देवानां लौकान्तिकत्वं प्रसक्तम् ? अन्वर्थसञ्ज्ञाग्रहणाददोषः । ब्रह्मलोको लोक तस्यान्तो लोकान्तः तस्मिन् भवा लौकान्तिका इति न सर्वेषां ग्रहणम् । तेषां हि विमानानि ब्रह्मलोकस्यान्तेषु स्थितानि । अथवा जमज्रामरणाकीर्णो लोकः ससारः, तस्यान्तो लोकान्तः । लोकान्ते भवा लौकान्तिका । ते सर्वे परीतससाराः सतश्च्युता एक गर्भावास प्राप्य परिनिर्वास्यन्तीति ।

तेषां सामान्येनोपदिष्टानां भेदप्रदर्शनार्थमाह—

सारस्वताविरयव ह्यक्षरुणगर्भतोयतुषिताभ्यावाधारिष्ठाश्च ॥ २५ ॥

क्व इमे सारस्वतादयः ? अप्टास्वपि पूर्वोत्तरादिषु दिक्षु यथाक्रममेते सारस्वतादयो देवगणा वेदितव्याः । तद्यथा—पूर्वोत्तरकोणे सारस्वतविमानम् पूर्वस्यां दिशि आश्रित्य विमानम् पूवदक्षिणस्यां दिशि बह्वि विमानम् दक्षिणस्यां दिशि अरुणविमानम् दक्षिणापर

### लौकान्तिक देवोंका ब्रह्मलोक निवासस्थान ई ॥२४॥

आकर जिसमें लयको प्राप्त होत हैं वह आलय या आवास कहलाता है । ब्रह्मलोक जिनका घर है व ब्रह्मलोकमें रहनेवाले लौकान्तिक देव जानना चाहिये ।

धका—यदि ऐसा है तो ब्रह्मलोकमें रहनेवाले सब देव लौकान्तिक हुए ?

समाधान—सार्धक सज्ञाके ग्रहण करनेस यह दोष नहीं रहता । लौकान्तिक पदमें जो लोक पश्य ह उससे ब्रह्मलोक स्थित ह और उसका अन्त अर्थात् प्रान्तभाग लोकान्त कहलाया । वही जो होत ह वे लौकान्तिक कहलाते हैं इसलिय ब्रह्मलोकमें रहनेवाले सब देवोंका ग्रहण नहीं होता ह । इन लौकान्तिक देवोंका विमान ब्रह्मलोकके प्रान्तभागमें स्थित ह । अथवा जम्म जरा और मरणसंभ्याप्त ससार लोक कहलाता है और उसका अन्त लोकान्त कहलाता ह । इस प्रकार ससारके अन्तमें जो होते ह वे लौकान्तिक ह क्योंकि ये सब ममानके पारको प्राप्त हो गये ह । वहाँसं च्युत होकर और एक-बार गमन रहकर निर्वाणका प्राप्त हांग ।

सामान्यसे कह गये उन लौकान्तिक देवाके मदाका कथन करनेस स्थित आगका सूत्र कहत हैं—

सारस्वत, आदित्य, बह्वि, अरुण, गर्भतोय, तुषित अन्त्यावाध आर अरिष्ट ये

लौकान्तिक देव हैं ॥२५॥

धका—ये सारस्वत आदि कहाँ रहत ह ?

समाधान—पूव उत्तर आदि भाटा ही सिंघामोंम क्रमस सारस्वत आदि देवगण रहत ह गमा जानना चाहिये । यथा—पूर्वोत्तर कोणम सारस्वतोंका विमान ह । पूर्व दिगामें आश्रित्योत्तर विमान ह । पूव-दक्षिण सिंघामें बह्विदेवोंका विमान ह । दक्षिण दिगामें अरुण विमान ह । दक्षिण-पश्चिम कोण



देवादीनामिव क्षेत्रविभाग पुनर्निर्देष्टव्य ? सबलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नोक्त ।

आह स्थितिश्चत्ता नारकाणां मनुष्याणां तिरस्त्रां च । देवानां नोक्ता । तस्मां वक्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनायमाह—

स्थितिरसुरनागमुपगद्दीपक्षोषाणां सागरोपमत्रिपत्योपमाद्दहीममिता ॥ २८ ॥

अमुरादीनां सागरोपमादिभियथाक्रममत्राभिसम्बन्धो बदिदिव्य । इय स्थितिश्चुष्टा । जघन्याज्युत्तरत्र वक्ष्यते । तद्यथा असुराणां सागरोपमा स्थिति । नागानां त्रिपत्योपमानि स्थिति । सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे । क्षोषाणां पष्णामध्यर्द्धपत्योपमम् ।

आद्यदेवनिर्कायस्थित्यभिधानादनन्तर व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्तमति तदुल्लङ्घ्य वैमानिकानां स्थितिश्चक्षते । कुत ? तयोदत्तरत्र लघुनोपायेन स्थिति वचनात् । तपु चादावुद्दिष्टयो कल्पयो स्थितिविधानार्थमाह—

सौषमं शानयो सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

द्वारा ग्रहणं किमाह । ये सब तिर्यञ्च जानना चाहिये ।

शब्दा—अस प्रकार देवादिकका पुषक पुषक क्षेत्र बतलाया है उसी प्रकार इनका क्षेत्र बतसाना चाहिये ?

समाधान—तिर्यञ्च सब आकमें रहते है अतः उनका असगरो क्षेत्र नहीं कहा ।

नागकी मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी स्थिति पहलु कही जा चुकी है । परन्तु अभी सब देवोंकी स्थिति नहीं कही है । अतः उसका कथन करत हुए सर्वप्रथम प्रारम्भमें कहे गये भवनवासियोंकी स्थितिका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और क्षुप भवनवासियोंकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे एक सागर, तीन पत्थ, द्वाई पत्थ, दो पत्थ और डेढ़ पत्थ प्रमाण है ॥२८॥

यहाँ सागरोपम आदि शब्दोंक साथ असुरकुमार आदि शब्दोंका क्रमसे सम्बन्ध जान लेना चाहिये । यह उत्कृष्ट स्थिति है । जघन्य स्थिति भी आगे कहेंगे । वह उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है—असुरोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है । नागोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्थ है । सुपर्णोंकी उत्कृष्ट स्थिति द्वाई पत्थ है । द्वीपोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो पत्थ है । और क्षुप कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ पत्थ है ।

देवोंके प्रथम निकायकी स्थिति कहनेके पश्चात् व्यन्तर और ज्योतिषियोंकी स्थिति क्रमप्राप्त है किन्तु उसे छोड़कर वैमानिकोंकी स्थिति कहने हे क्पाकि व्यन्तर और ज्योतिषियोंकी स्थिति आगे घोड़ेमें कही जा सकेगी । वैमानिकों आदिमें कहे गये दो कल्पोंकी स्थितिका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सौषमं और ऐशान कल्पमें दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥२९॥

‘सागरोपमे’ इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगति । ‘अधिक’ इत्ययमधिकारः । आ कुत ? आ महस्रारात् । इदं तु कुतो ज्ञायते ? उत्तरम् ‘तु’ शब्दग्रहणात् । तेन सौधम शान योर्वेदानां द्व सागरोपमे सातिरेके प्रत्येतध्ये ।

उत्तरयो स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यपमाह—

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त ॥ ३० ॥

अनयो कल्पयोर्वेदानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा म्यिति ।

ब्रह्मलोकादिष्वच्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यर्थमाह—

त्रिसप्तमवकावशत्रयोवशपञ्चवशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

सप्तग्रहणं प्रकृतम् । तस्येह श्यादिभिर्निर्दिष्टरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । सप्त त्रिभिरधिकानि सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादि । द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । ‘तु’ शब्दो विशेषणाय । किं विशिनष्टि ? ‘अधिक’ शब्दोऽनुवर्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बन्धयति

सूत्रमें ‘सागरोपमे’ यह द्विवचन प्रयोग दिया है उससे दो सागरोपका ज्ञान होता है । अधिके यह अधिकार वचन है ।

शका—इसका कहीतक अधिकार है ?

समाधान—सहस्रार कल्पतक ।

शका—यह कसे जाना जाता है ?

समाधान—अगले सूत्रमें आ ‘तु’ पद दिया है उससे जाना जाता है ।

इससे यह निश्चित होता है कि सौधम और ऐशान कल्पमें दो सागरसे कुछ अधिक स्थिति है ।

अब आगेके दो कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्पमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥३०॥

इन दो कल्पोंमें वेदोंकी साधिक सात सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।

अब ब्रह्मलोकस लक्षण अच्युत पयन कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिय आगेका सूत्र कहते हैं—

ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगलसे लेकर प्रथमेक युगलमें आग्य अच्युत तक क्रमसे साधिक तीनसे अधिक सात सागरोपम, साधिक सातसे अधिक सात सागरोपम, साधिक नौसे अधिक सात सागरोपम, साधिक ग्यारहसे अधिक सात सागरोपम, तेरहसे अधिक सात सागरोपम और पन्द्रहसे अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है ॥३१॥

यहाँ पिछले सूत्रसे सप्त पदका ग्रहण होता है । उसका यहाँ तीन आदि निर्दिष्ट शब्दोंके साथ सम्बन्ध जानना चाहिये । यथा—तीन अधिक सात सात अधिक सात आदि । तथा इनका क्रम नौ के कल्पोंके साथ सम्बन्ध जानना चाहिये । सूत्रमें ‘तु’ शब्द विशेषणताके दिखानेके लिये आया है ।

(१) पुनरिष्ट सम्बन्ध-आ दि १ दि २ ।

कोणे गवतोयविमानम् अपरस्यां दिशि तुपितविमानम्, उत्तरापरस्यां दिशि अथ्यावाध  
विमानम् उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम् । 'च दाम्यसमुच्चितास्तेषामन्तरेषु द्वौ देव  
गणौ । तद्यथा—सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वल्लेष्टान्तरे  
चन्द्रामसत्याभा । बह्वधरणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्ट  
कामचारा । गर्दतोयतुपितमध्य निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुपिताभ्यावाधमध्ये आत्म  
रक्षितमवरक्षिता । अभ्यावाधारिष्टान्तरालं मरुदसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्व  
विष्टवा । सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिक्त्वाभावात् विषयरतिविरहादेवपयः, इतरथा  
देवानामधनीया, चतुर्वक्षपूर्वधरा, तीथकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वदितव्या ।

आह, उक्ता लोकान्तिनास्तत्तदभ्युक्ता एक गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता ।  
किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते ? इत्यत आह—

विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥

आदि'शब्द' प्रकारार्थे वदते, तत्र विजयवजयन्तजयन्तापराजितानुविधविमा  
नानामिष्टाना ग्रहण सिद्ध भवति । कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टि  
में गर्भतोयविमान है । पश्चिम दिक्षामें तुपितविमान है । उत्तर-पश्चिम दिक्षामें अभ्यावाधविमान  
है । और उत्तर दिक्षामें अरिष्टविमान है ।

सूत्रमें 'च' शब्द ह उसस इनके मध्यमें दो दो देवगण और हैं इसका समुच्चय होता है । यथा—  
सारस्वत और आदित्यके मध्यमें अग्न्याभ और सूर्याभ है । आदित्य और बल्लिके मध्यमें चन्द्राम और  
सत्याभ है । बल्लि और अरुणके मध्यमें श्रेयस्कर और क्षेमकर है । अरुण और गवतोयके मध्यमें  
वृषभेष्ट और कामचार ह । गर्दतोय और तुपितके मध्यमें निर्माणरजस् और दिगन्तरक्षित है । ?तुपित  
और अभ्यावाध के मध्यमें आत्मरक्षित और मवरक्षित है । अभ्यावाध और अरिष्टके मध्यमें मरु  
और वसु है । अरिष्ट और सारस्वतके मध्यमें अश्व और विष्टव है । ये सब देव स्वतंत्र ह क्योंकि इनमें  
हीमाधिकता नहीं पाई जाती । विषय रनिसे रहित होनेके कारण देवश्चयि हैं । दूसरे देव इनकी अर्धा  
करते हैं । शीवह पूर्वोके ज्ञाता हैं और बैराग्य कस्याणकके समय तीथ करको संबोधन करनेमें तत्पर ह ।  
लोकान्तिक देवोंका कथन किया और वहाँसे अभ्युत् होकर तथा एक गर्भको धारण करके निर्वाणको  
प्राप्त होंगे यह भी कहा । क्या इसी प्रकार अन्य देवोंमें भी निर्वाणको प्राप्त होनेके कारणमें भेद ह ?  
अब इसी बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

विजयादिषु दो चरमबाले देव होते हैं ॥२६॥

यहाँ आदि शब्द प्रकारवाची है । इससे विजय वजयन्त जयन्त अपराजित और भी अनुविधोंका  
ग्रहण सिद्ध हो जाता ह ।

शका—यहाँ कौनसा प्रकार किया है ?

समाधान—अहमिन्द्र होते हुए सम्यग्दृष्टियोंका उत्पन्न होना यह प्रकार यहाँ किया गया है ।

पपाद । सर्वायसिद्धिप्रसङ्ग इति घेत् ? न तेषां परमात्कृष्टत्वात् अन्वयसञ्ज्ञात एक-  
चरमत्वसिद्धे । चरमत्व दहस्य मनुष्यमवापेक्षया । द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमा ।  
विजयाविभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येषूपत्य सयममाराध्य पुनर्विजयाविपू-  
त्य ततश्च्युता पुनमनुष्यमवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम् ।

आह जीवन्मोदयिकेषु भावेषु तियग्यानिगतिरौदयिकीत्युक्तं पुनश्च स्थितौ ५  
तियग्यानिजानां च' इति । तत्र न ज्ञायत के तियग्योनय ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः क्षेयास्तिग्योनयः ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टा प्राण-मानुषोत्तरा म-  
नुष्या इति । एभ्योऽप्ये समारिणो जीवाः क्षेयास्ते' तियग्योनयो वेदितव्या । तेषां तिरश्चां

शका—इससे सर्वायसिद्धिका भी ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि व परम उत्कृष्ट है । उनका सर्वायसिद्धि यह साधक नाम है इसलिये  
वे एक भवावतारी होत हैं ।

वहका चरमपना मनुष्य भवकी अपेक्षा क्षिया है । जिसके दो चरम भव होत है वे द्विचरम कहलात  
ह । जो विजयादिकस च्युत होकर और सम्यक्त्वको न छोड़ कर मनुष्योमें उत्पन्न होते है और सयमका  
माराधन कर पुन विजयादिकमें उत्पन्न होत है । तथा वहीस च्युत होकर और पुन मनुष्य भवको प्राप्त  
करके सिद्ध होते है । इस प्रकार यहाँ मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना है । १५

विशयार्थ—कोई कोई विजयादिकक देव मनुष्य होते है । अनन्तर सौषम और इष्टान कल्पमें  
देव होत है । अनन्तर मनुष्य होते है । फिर विजयादिक म देव हात है और अन्तमें वहीस च्युत होकर  
मनुष्य होत है । तब वही मोक्ष जात है । इस प्रकार इस बिधिसे विचार करनेपर मनुष्यक तीन भव  
हो जाते है । इसलिये मनुष्य भवकी अपवा द्विचरमपना नहीं ठहरता ? इनका समाधान यह है कि  
विजयादिकसे तो दो बार ही मनुष्य जन्म लना पडता है इसलिये पूर्वोक्त कथन बन जाता है । एसा  
बीक यद्यपि मध्यमें एकवार अन्य कल्पमें हो आया है पर सूत्रकारने यहाँ उसका विवक्षा नहीं की है ।  
उनकी दृष्टि यही वतसानेकी रही है कि विजयादिकस अधिक्स अधिक् कितनी बार मनुष्य होकर बीक  
मोक्ष जाता है । २

बीकने औदयिक भावोंको बतलात हुए तिर्यञ्चगति औदयकी कही है । पुन स्थितिका कथन २५  
करत समय तिर्यग्योनिजानां च' यह सूत्र कहा है । पर यह न जान सके कि तिर्यञ्च कीन है इसलिये  
आगका सूत्र कहते है—

उपपाद जन्मभाले और मनुष्योंके सिद्धा क्षपं सद्य जीव तिर्यचयोनि भाले हैं ॥२७॥

औपपादिक देव और नारकी हैं यह पहले कह आय । प्राण मानुषोत्तरा मनुष्या इसका व्याख्यान  
करत समय मनुष्योंका भी कथन कर आवे । इनस अन्य जितने समारी जीव हैं उनका महीं भय पदक ३

(१) पपास्तिर्य-मु वि २ ।

कोणे गदतोयविमानम् अपरस्यां दिशि तुपितविमानम्, उत्तरापरस्यां दिशि अब्याबाध विमानम् उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम् । 'च'शब्दसमुच्चितास्तेषामन्तरेषु द्वौ देव गणौ । तद्यथा—सारस्वतादिरयान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वल्लेश्चान्तरे चन्द्राभसूर्याभा । बह्वृषणान्तरगले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्ट कामधारा । गदतोयतुपितमध्य निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुपिताब्याबाधमध्ये आत्म रक्षितसवरक्षिता । अब्याबाधारिष्टान्तराले मरुदसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्व विष्वा । सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात्, विपर्ययविरहाद्देश्यपय, इतरयां देवानामचनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ।

आह उक्ता लौकान्तिकास्तसन्च्युता एक गभवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता । किमेवमयेष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते ? इत्यत आह—

विजयाधिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥

'आदि'शब्द प्रकारार्थे वतते, तेन विजयवैजयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टानां ग्रहणं सिद्धं भवति । कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टेषु गर्दतोयविमानं ह । पश्चिम दिशाम् तुपितविमानं ह । उत्तर-पश्चिम दिशाम् अब्याबाधविमानं ह । और उत्तर दिशाम् अरिष्टविमानं ह ।

सूत्रमें 'च' शब्द है उससे इनके मध्यमें दो दो देवगण और हैं इसका समुच्चय होता है । यथा— सारस्वत और आदित्यके मध्यमें अग्न्याभ और सूर्याभ हैं । आदित्य और वल्लिके मध्यमें चन्द्राभ और सत्याभ हैं । वल्लिक और अरुणके मध्यमें श्रेयस्कर और क्षेमकर हैं । अरुण और गर्दतोयके मध्यमें वृषभेष्ट और कामधारा हैं । गर्दतोय और तुपितके मध्यमें निर्माणरजसू और दिगन्तरक्षित हैं । तुपित और अब्याबाध के मध्यमें आत्मरक्षित और सवरक्षित हैं । अब्याबाध और अरिष्टके मध्यमें मरुद और सवु हैं । अरिष्ट और सारस्वतके मध्यमें अश्व और विष्वा हैं । ये सब देव स्वतन्त्र हैं क्योंकि इनमें हीनाधिकता नहीं पाई जाती । विषय रतिसे रहित होनेके कारण वेकष्टपि ह । दूसरे देव इनकी अर्था करते हैं । चौदह पूर्वोंके ज्ञाता हैं और बराबर कन्यापक्क समय तीर्थ करके सबोधन करनेमें तत्पर ह ।

लौकान्तिक देवोंका कथन किया और वहाँसे च्युत होकर तथा एक गर्भको धारण करके निर्वाणको प्राप्त होंगे यह भी कहा । क्या इसी प्रकार अन्य देवोंमें भी निर्वाणको प्राप्त होनेके कालमें भेद है ? अब इसी बातका ज्ञान करानेके लिये जागेका सूत्र कहते हैं—

विजयाधिकर्मे दो चरमवाले देव होते हैं ॥२६॥

यहाँ आदि शब्द प्रकारवाची ह । इससे विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित और ती अनुविष्टोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता है ।

धका—यहाँ कौनसा प्रकार लिया है ?

समाधान—अहमिन्द्र होते हुए सम्यग्दृष्टियोंका उत्पन्न होना यह प्रकार मही लिया गया है ।

पपाद । सर्वायसिद्धिप्रसङ्ग इति चेत् ? न तेषां परमात्कृष्टत्वात् अन्वयमश्नात् एक चरमस्वमिदं । चरमत्व देहस्य मनुष्यमवापेक्षया । द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमा । विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वा मनुष्येपूत्वथ समयमाराध्य पुनर्विजयादिषु त्वथ ततश्च्युता पुनमनुष्यमवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमवेहत्वम् ।

आह जीवस्योदयिकेषु भावेषु तियग्योनिगतिरौदयिकीत्युक्तं पुनश्च स्थिती २  
तियग्यानिजानां च' इति । तत्र न ज्ञायते के तियग्योनय ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्य शोयास्तियग्योनय ॥ २७ ॥

औपपादिका उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टाः 'प्राण-मानुषोत्तरा मनुष्या' इति । एभ्योऽप्ये ससारिणो जीवा शपास्त' तियग्योनयो वेदितव्या । तेषां तिरश्चां

शका—इससे सर्वायसिद्धिका भी ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वे परम उत्कृष्ट हैं । उनका सर्वायसिद्धि यह साधक नाम है इसलिये वे एक मन्वान्तारी होते हैं ।

वहका चरमपना मनुष्य भवकी अपेक्षा लिया है । जिसके वा चरम भव होत है वे द्विचरम कहलात है । जो विजयादिकस च्युत होकर और सम्यक्त्वको न छोड़ कर मनुष्यमें उत्पन्न होते हैं और समयका आराधन कर पुन विजयादिकमें उत्पन्न होत हैं । तथा वहाँसे च्युत होकर और पुन मनुष्य भवको प्राप्त करके सिद्ध होत है । इस प्रकार यहाँ मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना है ।

विशेषाद्य—कोई कोई विजयादिकस देव मनुष्य होत है । अनन्तर शोधन और इष्टान कल्पमें देव होत है । अनन्तर मनुष्य हाते है । फिर विजयादिक म देव होत है और अन्तमें वहाँसे च्युत होकर मनुष्य हाते है । तब कहीं मोक्ष जात है । इस प्रकार इस विधिसे विचार करनेपर मनुष्यक तीन भव हो जाते है । इसलिये मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना नहीं ठहरता ? इसका समाधान यह है कि विजयादिकसे तो दो बार ही मनुष्य भव लना पडता है इसलिये पूर्वोक्त कथन बन जाता है । एसा भीक यद्यपि मध्यमे एकबार अन्य कल्पमें हो आया है पर सूत्रकारने यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की है । उनकी दुष्टि यही वतछानेकी रही है कि विजयादिकस अधिकस अधिक कितनी बार मनुष्य होकर भीक मोक्ष जाता है ।

जीवके औदयिक भावोंको बतलात हुए तिर्यग्भगति औदयकी कही है । पुन स्थितिका कथन करत समय तियग्योनिजानां च यह सूत्र कहा है । पर यह म जान सके कि तियग्भ कौन है इसलिये आगेका सूत्र कहते हैं—

उपपादं बन्मन्त्राले और मनुष्योके सिधा श्रप सध जीव तिर्यग्भयोनि वाले हैं ॥२७॥

औपपादिक देव और नारकी हैं यह पहले कह आया । प्राण मानुषोत्तरा मनुष्या इसका व्याख्यान करत समय मनुष्योका भी कथन कर आये । इनस अन्य जितने ससारी जीव है उनका यहाँ श्रप पणक

(१) श्रपास्तियर्व-म वि २ ।

कोणे गदतोयविमानम् अपरस्यां दिशि तुपितविमानम् उत्तरापरस्यां दिशि अब्याबाध  
विमानम् उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम् । 'च'शब्दसमुच्चितास्तेषामन्तरेषु द्वौ देव  
गणौ । तथा—सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च बह्वेष्टान्तरे  
चन्द्राभसत्याभा । बह्वेष्टान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगर्दतोयान्तराले वृषभेष्ट  
कामचारा । गर्दतोयतुपितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुपिताब्याबाधमध्ये आत्म  
रक्षितसवरक्षिता । अब्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्वसव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्व  
विश्वा । सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकन्वाभावात्, विषयरतिविरहाद्देवर्षयः, इतरपा  
देवानामचनीया, चतुर्वैशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ।

आह उक्ता लौकान्तिकास्तामश्च्युता एक गमवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता ।

किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते ? इत्यत आह—

**विजयाविषु द्विधरमा ॥ २६ ॥**

आदि'शब्द प्रकारार्थे वतते तत्र विजयवज्रयन्तजयन्तापराजितानुदिसिमा  
नानामिष्टाना ग्रहण सिद्ध भवति । कः पुनरत्र प्रकारः ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दुष्टेषु  
गर्दतोयविमान है । पश्चिम दिशामें तुपितविमान है । उत्तर-पश्चिम दिशामें अब्याबाधविमान  
है । और उत्तर दिशामें अरिष्टविमान है ।

सूत्रमें 'च' शब्द है उससे इनके मध्यमें दो दो देवगण और हैं इसका समुच्चय होता है । यथा—  
सारस्वत और आदित्यके मध्यमें अग्न्याभ और सूर्याभ ह । आदित्य और बह्वेष्टके मध्यमें चन्द्राभ और  
सत्याभ है । बह्वेष्ट और अरुणके मध्यमें श्रेयस्कर और क्षेमकर ह । अरुण और गर्दतोयके मध्यमें  
वृषभेष्ट और कामचार ह । गर्दतोय और तुपितके मध्यमें निर्माणरजसु और दिगन्तरक्षित है । ? तुपित  
और अब्याबाध के मध्यमें आत्मरक्षित और सवरक्षित है । अब्याबाध और अरिष्टके मध्यमें मरु  
और वसु है । अरिष्ट और सारस्वतके मध्यमें अश्व और विश्व है । ये सब देव स्वतंत्र हैं क्योंकि इनमें  
हीनाधिकता नहीं पाई जाती । विषय रसिने रहित होनेके कारण वेबन्धपि हैं । बूसरे देव इनकी अर्था  
करते ह । चौदह पूर्वोंके ज्ञाता हैं और पराग्य कल्याणकके समय तीर्थं करके सबोधन करनेमें तत्पर ह ।

लौकान्तिक देवोंका जयन किया और बह्वेष्टे च्युत होकर तथा एक गर्भको धारण करके निर्वाणको  
प्राप्त हाँग यह भी कहा । क्या इसी प्रकार अन्य देवोंमें भी निर्वाणको प्राप्त होनेके कालमें भेद है ?  
अब इसी बातका ज्ञान करनेके लिये मागेका सूत्र कहते हैं—

**विजयादिक्रमं दो चरमबाले देव होते हैं ॥२६॥**

यहाँ आदि शब्द प्रकारवाची है । इनसे विजय वैजयन्त जयन्त अपराजित और ती अनुविगोका  
ग्रहण सिद्ध हो जाता ह ।

पञ्चा—यहाँ जैनमा प्रकार सिमा ह ?

गमाधान—अहमिन्द्र होन हुए सम्यग्दुष्टियोंका उन्नास होता यह प्रकार यहाँ सिमा गया है ।

पपात् । सर्वायसिद्धिप्रसङ्ग इति चेत् ? न तेषां परमात्कृष्टत्वात् अन्वयसञ्ज्ञात् एक-  
चरमत्वसिद्धे । चरमत्वं देहस्य मनुष्यभवापेक्षया । द्वौ चरमौ दहौ यथा ते द्विचरमा ।  
विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यक्त्वात् मनुष्यपूतृष्य समयमाराध्य पुनर्विजयादिपू-  
तृष्य ततश्च्युता पुनमनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमवेहस्वम् ।

आह जीवस्योदयिकेषु भावेषु तिर्यग्यानिगतिरौदयिकीत्युक्तं पुनश्च स्थितौ x  
तिर्यग्योनिजानां च' इति । तत्र न ज्ञायते के तिर्यग्यानय ? इत्यत्राच्यते—

औपपाधिकमनुष्येभ्य शोपास्तिर्यग्योनय ॥ २७ ॥

आपपादिना उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्निष्ठा प्राङ्मानुपातराम  
नुष्या इति । एभ्योऽन्ये ससारिणो जीवा शोपास्ते' तिर्यग्योनयो वदितव्या । तेषां तिर्यका

शक्यः—इससे सर्वायसिद्धिका भी ग्रहण प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वे परम उत्कृष्ट हैं । उनका सर्वायसिद्धि यह साधक नाम है इसलिय  
वे एक भवावतारी होते हैं ।

यहका चरमपना मनुष्य भवकी अपेक्षा निया है । जिसके वा चरम भव होत है वे द्विचरम कहलाते  
ह । जो विजयान्त्रिकस च्युत होकर और सम्यक्त्वको न छोड़ कर मनुष्योमें उत्पन्न होत है और समयका  
आराधन कर पुन विजयान्त्रिकमें उत्पन्न होत है । तथा वहीस च्युत होकर और पुन मनुष्य भवको प्राप्त  
करक सिद्ध होते हैं । इस प्रकार यहाँ मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना है ।

विशेषण—कोई कोई विजयादिकक देव मनुष्य होत है । अनन्तर औपमं और इष्टान कल्पमें  
देव होत है । अनन्तर मनुष्य होते हैं । फिर विजयादिक में देव होत है और अन्तमें वहीमें च्युत होकर  
मनुष्य होत है । तब वही मोक्ष जात है । इस प्रकार इस विधिसे विचार करनेपर मनुष्यक तीन भव  
हो जाते हैं । इसलिय मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना नहीं ठहरता ? इसका समाधान यह है कि  
विजयान्त्रिकसे तो दो बार ही मनुष्य जन्म सुना पड़ता है इसलिय पूर्वोक्त कथन वन जाता है । एसा  
जीव यद्यपि मध्यमें एकवार अन्य कल्पमें हो आया है पर सूत्रकारने यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की है ।  
उनकी दृष्टि यही बातमानेकी रही है कि विजयादिकस अधिकसे अधिक कितनी बार मनुष्य होकर जीव  
मोक्ष जाता है ।

औपमं औपमिक भावोंको बतलात हुए तिर्यग्चरगति औदयिकी कही है । पुन स्थितिका कथन  
करते समय तिर्यग्योनिजानां च' यह सूत्र कहा है । पर यह न जान सके कि तिर्यग्चर कौन है इसलिय  
आगका सूत्र कहते हैं—

उपपाद् जन्मवाले और मनुष्योंके सिवा शेष सब जीव तिर्यचपोनि वाले हैं ॥२७॥

औपपादिक देव और नारकी हैं यह पहले कह आये । प्राङ्मानुपातरामनुष्या इसका व्याख्यान  
करत समय मनुष्योका भी कथन कर आये । इनस अन्य जितने समारी जीव हैं उनका यहाँ शेष पत्रक

(१) शोपास्तिर्यग्-चि २ ।



कोणे गर्वतोयविमानम् अपरस्यां दिशि तुपितविमानम्, उत्तरापरस्यां दिशि अध्याबाध विमानम् उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम् । च'शब्दसमुच्चितास्तोपामन्तरेषु द्वौ देव गणौ । तद्यथा—मारस्वतादित्यान्तरे अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यस्य च वल्लेश्चान्तरे चन्द्रामसत्याभा । बल्लभरुणान्तराले श्रेयस्करक्षेमकरा । अरुणगन्तोयान्तराले वृषभेष्ट कामचारा । गर्वतोयतुपितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुपिताध्याबाधमध्ये आत्म रक्षितसवरक्षिता । अध्याबाधारिष्टान्तराले मरुद्दसय । अरिष्टसारस्वतान्तराले अक्ष विश्वा । सर्वे एते स्वसन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् विषयरतिविरहाद्देवर्षय इतरेषां देवानामचनीया चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ।

आह, उक्ता लौकान्तिकास्तसश्च्युता एक गभवासमवाप्य निर्वास्यन्तीर्युक्ता । किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागो विद्यते ? इत्यत आह—

विजयादिषु द्विचरमा ॥ २६ ॥

आदि'शब्द प्रकारार्थे वर्तते, तेन विजयवज्रयन्तजयन्तापराजितानुदिशविमानानामिष्टाना ग्रहण सिद्ध भवति । कः पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्ट्यु में गर्वतोयविमान ह । पश्चिम दिशामें तुपितविमान हैं । उत्तर-पश्चिम दिशामें अध्याबाधविमान हैं । और उत्तर दिशामें अरिष्टविमान हैं ।

सूत्रमें च' शब्द है उसस इनके मध्यमें दो दो देवगण और हैं इसका समुच्चय होता ह । यथा— सारस्वत और आदित्यके मध्यमें अग्न्याभ और सूर्याभ है । आदित्य और बल्लिके मध्यमें चन्द्राम और सत्याभ ह । बल्लि और अरुणक मध्यमें श्रेयस्कर और क्षेमकर है । अरुण और गर्वतोयके मध्यमें वृषभेष्ट और कामचार है । गर्वतोय और तुपितक मध्यमें निर्माणरजसु और दिगन्तरक्षित है । ? तुपित और अध्याबाधक मध्यमें आत्मरक्षित और सवरक्षित है । अध्याबाध और अरिष्टके मध्यमें मरुद् और वनु हैं । अरिष्ट और सारस्वतके मध्यमें अक्ष और विश्व हैं । य सब देव स्वतन्त्र हैं क्योंकि इनमें हीनाधिकता नहीं पाइ जाती । विषय रतिसे रहित होनेके कारण स्वच्छपि हैं । दूसरे देव इनकी बर्ण करते ह । चौदह पूर्वोंक ज्ञाना हैं और बैराग्य कल्याणकके समय सीर्ष करको संबोधन करनेमें तत्पर ह ।

भौकान्तिक देवोंका बचन किया और बहूँसे च्युत होकर तथा एक गर्भको धारण करके निर्वाणको प्राप्त होंगे यह भी कहा । क्या इसी प्रकार अन्य देवोंमें भी निर्वाणको प्राप्त होनेके कालमें भेद है ? अब इसी बातका ज्ञान करानेके लिये आनेका सूत्र कहते हैं—

विजयादिक्रमं दो चरमघाले देव होते हैं ॥२६॥

यहाँ आदि शब्द प्रकारबाधी है । इसस विजय वज्रयन्त जयन्त अपराजित और भी अनुदिशोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता ह ।

पका—यहाँ कौनसा प्रकार लिया ह ?

समाधान—अहमिन्द्र हाँठ हुए सम्यग्दृष्टियोंका उत्पन्न होना यह प्रकार यहाँ लिया गया ह ।

पपाद । सर्वाथसिद्धिप्रसङ्ग इति चेत् ? न तेषां परमोत्कृष्टत्वात् अन्यथसञ्ज्ञात् एक-  
चरमत्वसिद्धे । चरमत्व देहम्य मनुष्यभवापक्षया । द्वौ चरमौ देहौ येषां ते द्विचरमा ।  
विजयादिभ्यश्च्युता अप्रतिपतितसम्यन्त्वा मनुष्यपूतपद्य समयमाराध्य पुनर्विजयादिपू-  
त्पद्य तदश्च्युता पुनमनुष्यभवमवाप्य सिद्ध्यन्तीति द्विचरमदेहत्वम् ।

आह जीवस्योदयिकेषु भावेषु तिर्यग्यानिगतिरौदयिकीत्युक्तं पुनश्च स्थिती ५  
तियग्योनिजानां च' इति । तत्र न ज्ञायते के तियथानय ? इत्यत्रोच्यते—

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनय ॥ २७ ॥

औपपादिना उक्ता देवनारका । मनुष्याश्च निर्दिष्टा प्राङ्मानुपोत्तराम १  
नुष्या इति । एभ्योज्ये ससारिणो जीवा शेषास्त' तिर्यग्यानयो ववित्तथ्या । तेषां तिरश्चा

शका—इससे सर्वाथसिद्धिका भी ग्रहण प्राप्त होता ह ?

समाधान—नहीं क्योंकि वे परम उत्कृष्ट हैं । उनका सर्वाथसिद्धि यह साधक नाम ह इसलिय १  
वे एक भवावतारी होते हैं ।

वहना चरमपना मनुष्य भवकी अपेक्षा लिया है । जिसक दो चरम भव होते ह वे द्विचरम कहलात १५  
ह । जो विजयादिकस च्युत होकर और सम्पत्कवनो न छोड़ कर मनुष्योंमें उत्पन्न होत ह और समयका  
आराधन कर पुन विजयादिकमें उत्पन्न होत है । तथा वहाँसे च्युत होकर और पुन मनुष्य भवको प्राप्त  
करक सिद्ध होते ह । इस प्रकार यहाँ मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना है ।

विशेषाथ—कोई कोई विजयादिकक देव मनुष्य होत ह । अनन्तर सौधर्म और इष्टान कल्पमें २  
देव होत ह । अनन्तर मनुष्य होत ह । फिर विजयादिक में देव होत है और अन्तमें वहाँसे च्युत होकर  
मनुष्य होत है । तब कहीं मोक्ष आत है । इस प्रकार इस विषय विचार करनेपर मनुष्यके तीन भव  
हो जाते ह । इसलिय मनुष्य भवकी अपेक्षा द्विचरमपना नहीं ठहरता ? इसका समाधान यह है कि २  
विजयादिकसे तो दो बार ही मनुष्य जन्म रुना पड़ता है इसलिय पूर्वोक्त कथन बन जाता ह । एसा  
जीव यद्यपि मध्यमें एकवार अन्य कल्पमें हो आया है पर सूत्रकारने यहाँ उसकी विवक्षा नहीं की ह ।  
उनकी दुष्टि यही बसलानेकी रही है कि विजयादिकस अधिकसे अधिक कितनी बार मनुष्य होकर जीव  
मोक्ष आता है ।

जीवके औदयिक भावोंको बतलात हुए तिर्यग्गति औदयकी कही है । पुन स्थितिवा कथन २३  
करते समय तिर्यग्योनिजानां च' यह सूत्र कहा ह । पर यह न जान मके कि तिर्यग्गति न ह इसलिय  
आगका सूत्र कहते हैं—

उपपाद जन्मवाले और मनुष्योंके सिवा शेष सब जीव तिर्यचयोनि बाले हैं ॥२७॥

औपपादिक देव और नारकी है यह पहले कह आये । प्राङ्मानुपोत्तरामनुष्या इसका व्याख्यान १  
करते समय मनुष्योंका भी कथन कर आये । इनस अन्य जितने सघारी जीव हैं उनका यहाँ धाप पदक १

(१) शपास्तिर्यग्-चि २ ।

कोणे गदतोयविमानम् अपरस्यां दिशि तुपितविमानम्, उत्तरापरस्यां दिशि अय्याबाध विमानम्, उत्तरस्यां दिशि अरिष्टविमानम् । 'च'शब्दसमुच्चितास्तेपामन्तरेषु द्वौ देव गणौ । तद्यथा—सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्यामसूर्याभा । आदित्यस्य षष्ठ्यन्तरे चन्द्रामसत्याभा । वज्रघृणान्तराले श्रेयस्करशेमङ्करा । अरण्यगदतोयान्तराले वृषभष्ट कामधारा । गर्दतोयतुपितमध्ये निर्माणरजोदिगन्तरक्षिता । तुपिताय्याबाधमध्ये आत्म रक्षितसवरक्षिता । अय्याबाधारिष्टान्तराले मरुत्सव । अरिष्टसारस्वतान्तराले अश्व विश्वा । सर्वे एते स्वतन्त्रा हीनाधिकत्वाभावात् विषयगतिबिरुद्धाद्देवपय इतरेषां देवानामवनीया, चतुर्दशपूर्वधरा, तीर्थंकरनिष्क्रमणप्रतिबोधनपरा वेदितव्या ।

आह उक्ता लौकान्तिकास्ततश्च्युता एक गर्भवासमवाप्य निर्वास्यन्तीत्युक्ता ।

किमेवमन्येष्वपि निर्वाणप्राप्तिकालविभागी विद्यते ? इत्यत आह—

विजयाविषु विजयमा ॥ २६ ॥

आदिशब्द प्रकारार्थे वर्तते तेन विजयवैजयन्तजयन्तापरजितानुदिशविमानानामिष्टाना ग्रहण सिद्ध भवति । क पुनरत्र प्रकार ? अहमिन्द्रत्वे सति सम्यग्दृष्टेषु गर्दतोयविमान हे । पश्चिम दिशामे तुपितविमान हे । उत्तर-पश्चिम दिशामे अय्याबाधविमान हे । और उत्तर दिशामे अरिष्टविमान हे ।

सूत्रमें 'च' शब्द हे उससे इनके मध्यमें दो दो देवगण और ह इसका समुच्चय होता है । यथा— सारस्वत और आदित्यके मध्यमें अग्न्याम और सूर्याभ हे । आदित्य और वज्रके मध्यमें चन्द्राम और सत्याम हे । वज्र और अरण्यके मध्यमें श्रेयस्कर और शेमकर हे । अरण्य और गर्दतोयके मध्यमें वृषभष्ट और कामधारा हे । गर्दतोय और तुपितके मध्यमें निर्माणरजस् और दिगन्तरक्षित हे । तुपित और अय्याबाध के मध्यमें आत्मरक्षित और सवरक्षित हे । अय्याबाध और अरिष्टके मध्यमें मरुत् और सव हे । अरिष्ट और सारस्वतके मध्यमें अश्व और विश्व हे । ये सब देव स्वतन्त्र हे क्योंकि इनमें हीनाधिकता नहीं पाई जाती । विषय रतिसे रहित होनेके कारण वेबद्ध्यपि हे । दूसरे देव इनकी जर्भा करते हे । चौदह पूर्वोंके ज्ञाता हे और बैराग्य कल्याणकके समय तीर्थंकरको संबोधन करनेमें उत्तर हे ।

लौकान्तिक देवोंका कथन किया और वहीसे च्युत होकर तथा एक गमको धारण करके निर्वाणको प्राप्त होंगे यह भी कहा । क्या इसी प्रकार अन्य देवोंमें भी निर्वाणको प्राप्त होनेके कालमें भेद हे ? अब इसी बातका ज्ञान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हे—

विजयादिकमें दो परमवाले देव होत हैं ॥२६॥

यहाँ आदि शब्द प्रकारवाची हे । इससे विजय वैजयन्त जयन्त अपरजित और मो अनुविद्योक्ता ग्रहण सिद्ध हो जाता हे ।

यथा—यहाँ कीलसा प्रकार किया हे ?

यथापान—अहमिन्द्र हाथे हुए सम्यग्दृष्टियोंका उत्पन्न होना यह प्रकार यहाँ किया गया है ।

सागरोपम' इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगति । अधिक' इत्ययमधिकार' । आ  
कुत ? आ सहस्रारत् । इदं तु कुता नायते ? उत्तरत्र तु शब्दग्रहणात् । तेन सौधमं ज्ञान  
योर्देवाना द्वे सागरोपमे मातिरेके प्रत्येतद्ये ।

उत्तरयो स्थितिविशयप्रतिपत्त्यथमाह—

सानत्कुमारमाहेद्रयो सप्त ॥ ३० ॥

अनयो कल्पयोर्देवानां सप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति ।  
ब्रह्मलोकविश्वच्युतावसानेषु स्थितिविशयप्रतिपत्त्यर्थमाह—

त्रिसप्तनक्षत्रावशात्रयोर्दशपञ्चवक्षभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

'सप्त ग्रहणं प्रकृतम् । तस्येह श्याधिभिर्निर्दिष्टैरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । सप्त  
त्रिभिरधिकानि, सप्त सप्तभिरधिकानीत्यादि । द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । 'तु'  
शब्दो विशयणाय । किं विशिनष्टि ? अधिक' शब्दोज्ज्वलमानश्चतुर्भिरभिसम्बन्धयते

सूत्रमें 'सागरोपमे' यह द्विवचन प्रयोग दिया है उससे दो सागरोपका ज्ञान होता है । अधिके यह  
अधिकार बचन है ।

शका—इसका कर्तृत्व अधिकार है ?

समाधान—सहस्रार कल्पतक ।

शका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अगले सूत्रमें जो तु पत्र दिया है उससे जाना जाता है ।

इससे यह निश्चित होता है कि सौधमं और ऐशान कल्पमें दो सागरसे कुछ अधिक स्थिति है ।  
अब आगे दो कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिय आगेका सूत्र कहते हैं—

सानत्कुमार और माहेद्र कल्पमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥३०॥

इन दो कल्पोंमें बर्षोंकी साधिक सात सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।

अब ब्रह्मलोकसे लकर अच्युत पर्यन्त कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिय आगेका  
सूत्र कहते हैं—

षडश-प्रसोत्तर युगलसे लेकर प्रत्येक युगलमें आरण प्रच्युत तक क्रमसे साधिक तीनसे अधिक  
सात सागरोपम, साधिक सातसे अधिक सात सागरोपम, साधिक नौसे अधिक सात सागरो  
पम, साधिक ग्यारहसे अधिक सात सागरोपम, तेरहसे अधिक सात सागरोपम और पन्द्रहसे  
अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है ॥३१॥

यहाँ पिछले सूत्रस 'सप्त' पत्रका ग्रहण होता है । उसका यहाँ तीन आदि निर्दिष्ट शब्दोंके साथ  
सम्बन्ध जानना चाहिये । यथा—तीन अधिक सात सात अधिक सात आदि । तथा इनका क्रमसे  
दो दो कल्पोंके साथ सम्बन्ध जानना चाहिये । सूत्रमें 'तु' शब्द विशेषताके दिक्मानक लिय आया है ।

(१) निर्दिष्ट सम्बन्ध वि १ वि २ ।

देवादीनामिष क्षेत्रविभागः पुनर्निर्देष्टव्यः ? सर्वलोकव्यापित्वात्तेषां क्षेत्रविभागो नास्ति ।

आह स्थितिरुक्ता नारकाणां मनुष्याणां तिरश्चा च । देवानां नोक्ता । तस्यां वस्तव्यायामादावुद्दिष्टानां भवनवासिनां स्थितिप्रतिपादनार्थमाह—

स्थितिरसुरमागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमक्षिपल्पोपमाद्ब्रह्मीनमिता ॥ २८ ॥

असुरादीनां सागरोपमादिभियथाक्रममन्त्राभिसम्बन्धो वेदितव्यः । इयं स्थितिः क्लृप्ता । जेषयाऽप्युत्तरत्र वक्ष्यते । तथाया असुराणां सागरापमा स्थितिः । नागानां त्रिपथ्योपमानि स्थितिः । सुपर्णानामर्द्धतृतीयानि । द्वीपानां द्वे । क्षपाणां पष्णामर्ध्वं पल्पोपमम् ।

आद्यवेधनिकायस्थित्यभिधानादनन्तरं व्यन्तरज्योतिष्कस्थितिवचने क्रमप्राप्तं सति तदुल्लङ्घनं वमानिकानां स्थितिर्दृश्यते । कुतः ? तयोश्चत्तरत्र लघुनोपायेन स्थिति वचनात् । तेषु चादावुद्दिष्टयोः कल्पयोः स्थितिर्विधानार्थमाह—

सौधमं क्षानयो सागरोपमे अधिके ॥ २९ ॥

द्वारा ग्रहणं क्रिया है । वे सब तिर्यञ्च जानना चाहिये ।

शका—जिस प्रकार देवादिकका पृथक् पृथक् क्षेत्र बतलाया है उसी प्रकार इनका क्षेत्र बतलाना चाहिये ?

समाधान—तिर्यञ्च सब लोकमें रहते हैं अतः उनका अलगसे क्षेत्र नहीं कहा ।

नागकी मनुष्य और तिर्यञ्चोंकी स्थिति पहले कही जा चुकी है । परन्तु अभी तक देवोंकी स्थिति नहीं कही है । अतः उसका बयन करते हुए सर्वप्रथम प्रारम्भमें कहे गये भवनवासियोंकी स्थितिका बयन करनेके लिये आगका मूत्र कहत है—

असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और क्षप भवनवासियोंकी उत्कृष्ट स्थिति क्रमसे एक सागर, तीन पत्थ, ढाई पत्थ, दो पत्थ और डेढ़ पत्थ प्रमाण है ॥२८॥

यहाँ सागरोपम आदि शब्दोंके साथ असुरकुमार आदि शब्दोंका क्रमसं सम्बन्ध जान लेना चाहिये । यह उत्कृष्ट स्थिति है । जबन्य स्थिति भी आगे कहेंगे । यह उत्कृष्ट स्थिति इस प्रकार है—असुरोंकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागर है । नागोंकी उत्कृष्ट स्थिति तीन पत्थ है । सुपर्णोंकी उत्कृष्ट स्थिति ढाई पत्थ है । द्वीपोंकी उत्कृष्ट स्थिति दो पत्थ है । और क्षप छह कुमारोंकी उत्कृष्ट स्थिति डेढ़ पत्थ है ।

देवोंके प्रथम त्रिकायकी स्थिति कहनेके पश्चात् व्यन्तर और ज्योतिषियोंकी स्थिति क्रमप्राप्त है किन्तु उन छोड़कर वमानिकोंकी स्थिति कहते हैं क्योंकि व्यन्तर और ज्योतिषियोंकी स्थिति आगे पाइयें कही जा सकती । वमानिकोंमें आग्निमें रह गये दो कल्पोंकी स्थिति का बयन करनेके लिये आगका मूत्र कहत है—

सौधर्मं और एशानं क्रम्यमें दो सागर से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥२९॥

'सागरोपम इति द्विवचननिर्देशाद् द्वित्वगति । अधिक' इत्ययमधिकार । आ कुत ? आ महस्रारान् । इदं तु कुतो ज्ञायते ? उत्तरम् 'तु शब्दप्रवृत्त्यात् । तेन सौधम घान योर्द्वैवाना द्वे सागरोपमे सातिरेके प्रत्येत्ये ।

उत्तरयो म्यितिविशेषप्रतिपत्त्ययमाह—

सानत्कुमारमाहे प्रयो सप्त ॥ ३० ॥

अनया कल्पयोर्द्वैवाना मप्तसागरोपमाणि साधिकानि उत्कृष्टा स्थिति ।

ब्रह्मलोकान्निष्च्युतावसानेषु स्थितिविशेषप्रतिपत्त्ययमाह—

त्रिसप्तनयकाश्चशत्रयोश्चशपञ्चवशभिरधिकानि तु ॥ ३१ ॥

मप्त ग्रहण प्रकृतम् । तस्येह श्यादिभिर्निर्दिष्टरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । सप्त त्रिभिरधिकानि, सप्त मप्तभिरघिनानीत्यादि । द्वयोर्द्वयोरभिसम्बन्धो वेदितव्यः । तु' शब्दो विशेषणार्थः । किं विशिनष्टि ? 'अधिक' शब्दोऽनुवृत्तमानश्चतुर्भिरभिसम्बन्धयते ।

सूत्रमें 'सागरोपम' यह द्विवचन प्रयोग दिया है उससे दो सागरोपका ज्ञान होना है । अधिके यह अधिकार वचन है ।

प्रा—इसका बहुवचन अधिकार है ?

समाधान—सहस्रार कल्पनक ।

प्रा—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—अगले सूत्रमें जो तु पद लिया है उससे जाना जाता है ।

इससे यह निश्चित होता है कि सौधम और एशान कल्पमें दो सागरसे कुछ अधिक स्थिति है ।

अब आगेके दो कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहने है—

सानत्कुमार और माहद्र कल्पमें सात सागरसे कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है ॥३०॥

इन दो कल्पोंमें दक्षीणी साधिक सात सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।

अब ब्रह्मलोकसे एकर अच्युत पर्यन्त कल्पोंमें स्थिति विशेषका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

ब्रह्म-अक्षोच्चर युगलसे लेकर प्रत्येक युगलमें प्रारण अच्युत तक क्रमसे साधिक तीनसे अधिक

सात सागरोपम, साधिक सातसे अधिक सात सागरोपम, साधिक नौसे अधिक सात सागरो

पम, साधिक ग्यारहसे अधिक सात सागरोपम, तेरहसे अधिक सात सागरोपम और पन्द्रहसे

अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है ॥३१॥

यहाँ विष्ट सूत्रम मग्न पत्रा ग्रहण होना है । उमका यहाँ तीन आदि निर्दिष्ट शब्दोंका साथ

सम्बन्ध जानना चाहिये । यथा—तीन अधिक सात सात अधिक सात आदि । तथा इनका क्रमम

वा नो कल्पोंमें साथ सम्बन्ध जानना चाहिये । सूत्रमें तु शब्द विशेषणार्थे लिये लाना लिये आया है ।

(१) बुद्धिपूर्वकम्-आ दि १ दि २ ।

नोत्तराभ्यामित्ययमर्थो विशिष्यते । तेनायमर्थो भवति—ब्रह्मलोकब्रह्मोत्तरयोदशसागरोपमाणि साधिकानि । सान्तवकापिष्ठयोश्चतुदशसागरोपमाणि साधिकानि । शुक्रमहाशुक्रयो दोदशसागरोपमाणि साधिकानि । शतारसहस्रारयोरष्टादशसागरोपमाणि साधिकानि । आनतप्राणतयोर्विंशतिसागरोपमाणि । आरणाच्युतयोर्द्वाविंशतिसागरोपमाणि । तत ऊर्ध्व स्थितिविशेषप्रतिपत्त्यथमाह—

आरणाच्युताब्रह्ममेककेन नवसु प्रवेयकेषु विजयावियु सर्वाथसिद्धौ च ॥ ३२ ॥

अधिकं ग्रहणमनुवतत । तनेहाभिसम्बन्धो वेदितव्यः । एकैकेनाधिकानीति । नवग्रहण किमयम् ? प्रत्येकमेकैकमधिकमिति ज्ञापनार्थम् । इतरथा हि प्रवेयकेष्वेकमेवाधिक स्यात् । विजयादिष्विति आदि शब्दस्य प्रकारार्थत्वादानुद्दिशानामपि ग्रहणम् । सर्वाथसिद्धेस्तु पृथग्ग्रहण जघन्याभावप्रतिपावनार्थम् । तेनायमर्थः अधोप्रवेयकेषु प्रथमत्रयोविंशति द्वितीये चतुर्विंशति तृतीये पञ्चविंशति । मध्यमप्रवेयकेषु प्रथम पडविं

शका—इससे क्या विशेषता मालूम पड़ती है ?

समाधान—इससे यहाँ यह विशेषता मालूम पड़ती है कि अधिक शब्दकी अनुवृत्ति होकर उसका सम्बन्ध त्रि आदि चार शब्दोंसे ही होता है अन्तके दो स्थितिबिक्तियों से नहीं ।

इससे यहाँ यह अर्थ प्राप्त हो जाता है ब्रह्मलोक और ब्रह्मोत्तरमें साधिक दस सागर उत्कृष्ट स्थिति है । सान्तव और कापिष्ठ में साधिक चौदहसागर उत्कृष्ट स्थिति है । शुक्र और महाशुक्रमें साधिक सोलह सागर उत्कृष्ट स्थिति है । शतार और सहस्रारमें साधिक अठारह सागर उत्कृष्ट स्थिति है । आनत और प्राणतमें बीस सागर उत्कृष्ट स्थिति है । तथा आरणा और अच्युतमें द्वाविंश सागर उत्कृष्ट स्थिति है ।

अब इसके आगेके विमानोंमें स्थितिविशयका ज्ञान करानेके लिये आगेका मुझ कहते हैं—

आरणाच्युतके ऊपर नौ प्रवेयकेमेंसे प्रत्येकमें नौ अनुदिष्टमें, चार विजयादिकमें एक एक सागर अधिक उत्कृष्ट स्थिति है । तथा सर्वाथसिद्धिमें पूरी सैंतीस सागर स्थिति है ॥३२॥

पूर्व सूत्रसे अधिक पदकी अनुवृत्ति होती है इसलिये यहाँ इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये कि एक एक सागर अधिक है ।

शका—सूत्रमें 'नव' पदका ग्रहण किसलिये किया ?

समाधान—प्रत्येक प्रवेयकमें एक एक सागर अधिक उत्कृष्ट स्थिति है इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'नव' पदका अलगसे ग्रहण किया है । यदि ऐसा न करते तो सब प्रवेयकोंमें एक सागर अधिक स्थिति ही प्राप्त होती ।

विजयादिषु में आदि शब्द प्रकारवाची है जिससे अनुदिष्टोंका ग्रहण हो जाता है । सर्वाथसिद्धिमें जघन्य आया नहीं है यह बतलानेके लिये 'सर्वाथसिद्धि' पदका अलगसे ग्रहण किया है । इससे यह अर्थ प्राप्त हुआ कि अधोवैयक्यमें से प्रथममें तेईस सागर, दूसरेमें बीबीस सागर और तीसरेमें पच्चीस सागर

धनि द्वितीये सप्तविंशति तृतीयेऽष्टाविंशति । उपरिमप्रवेयनेषु प्रथमे एकोनत्रिंशद्  
द्वितीये त्रिंशत् तृतीये एषत्रिंशत् । अनुदिशविमानेषु षात्रिंशत् । विजयादिषु त्रयस्त्रिंश  
शरसागणोपमाण्युत्कृष्ण स्थिति । सर्वाधमिद्वी' त्रयस्त्रिंशदेवति ।

निर्दिष्टोत्कृष्णस्थितिकेषु द्वेषु अधन्यस्थितिप्रतिपादनाथमाह—

अपरा पत्न्योपममधिकम् ॥ ३३ ॥

पत्न्योपम व्याख्यातम् । अपरा जघन्या' स्थिति । पत्न्योपम माधिकम् । अपाम् ?  
मोघम शानीयानाम् । भय गम्यते ? 'परत परत' इत्युत्तरत्र वक्ष्यमाणत्वात् ।

तत ऊर्ध्व जघन्यस्थितिप्रतिपादनाथमाह—

परत परत पूर्वापूर्वाऽनन्तरा ॥ ३४ ॥

परस्मिन्दश परत । वाप्सायां द्वित्वम् । पूव शरन्स्यापि । अधिव ग्रहणमनु ?

उत्कृष्ण स्थिति ह । मध्यम प्रेक्षकमे म प्रथममे छम्भीम मागर दूमरमे मत्ताइम मागर और तीमरमे  
अट्टाइम मागर उत्कृष्ण स्थिति ह । उपरिम प्रबयममेम पहलमे उननाम मागर दूमरमे तीम मागर  
और तीसरमे इकतीम मागर उत्कृष्ण स्थिति ह । अनुदिश विमानमे बरीम मागर उत्कृष्ण स्थिति ह ।  
विजयादिकमे तैतीस मागर उत्कृष्ण स्थिति ह और सर्वाधमिद्वीमे तैतास मागर ही स्थिति ह । यही  
उत्कृष्ण और जघन्यका भव नहा ह ।

जिनमे उत्कृष्ण स्थिति कह आय ह उनमे जघन्य स्थितिका भयन करनेक स्थि आगवा मुत्र  
कहत ह—

सौधर्म और एग्यान फन्पम जघन्य स्थिति साधिक एक पन्थ ह ॥३३॥

पत्न्योपमता व्याख्यान कर आय । यही अपरा परम जघन्य स्थिति ली गई ह । जो मापिन एत  
पन्थ ह ।

परा—यह जघन्य स्थिति जिनका ह ?

गमापान—मोघम और एगान करनेक शर्कोसी ।

परा—तम जाना जाता ह ?

गमापान—जो पूव पूव दशारी उत्कृष्ण स्थिति ह वह भगव भगव शर्का जघन्य स्थिति ह यह  
भाग बहनया ह एगम जाना जाता कि यह मोघम और एगान करनेक दशारा जघन्य स्थिति ह ।

अब मोघम और एगान करनेक आगत दशारा जघन्य स्थितिका प्रतिपादन करनेक स्थि आगवा  
मुत्र बहत ह—

आग आग पूर-न्य का उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर अनन्तरकी जघन्य स्थिति ह ॥३४॥

परी परत परत अब पर ग्यातम स्थि गवा ह । दवा स्थि बागता कर अपम भाया ह ।  
एगानकार मुत्र एगान भा योमा अपम स्थि बिया ह । अधिक परत परी प्रवदति एता ह ।



वतत । तनवमभिसम्बन्ध क्रियते—सोधम शानयोर्द्वे सागरोपमे माधिके उक्त, ते साधिके सानत्कुमारमाहेन्द्रयोर्जघया स्थिति । सानत्कुमारमाहेन्द्रयो परा स्थिति सप्तसागरोप माणि साधिकानि तानि साधिकानि ब्रह्मब्रह्मोत्तरयोर्जघन्या स्थितिरित्यादि ।

नारकाणामुत्कृष्टा स्थितिरुक्ता । जघन्यां सूत्रेऽनुपात्तामप्रकृतामपि लघुनोपा येन प्रतिपादयितुमिच्छन्नाह—

नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥

यद्यच्छ किमय ? प्रकृतसमुच्चयार्थं । किं च प्रकृतम् ? परत परत पूर्वापूर्वाऽनन्तरा' अपरा स्थितिरिति । सेनायमर्थो लभ्यते—रत्नप्रभाया नारकाणां परा स्थितिरक सागरोपमम् । सा शकराप्रभायां जघया । शकराप्रभायामुत्कृष्टा स्थितिस्त्रीणि सागरोप माणि । सा वालुकाप्रभायां जघन्येत्यादि ।

एव द्वितीयादिषु जघन्या स्थितिरुक्ता । प्रथमायां का जघन्येति तत्प्रदशनापमाह—

वशावषसहस्राणि प्रथमायाम् ॥ ३६ ॥

इमल्लिये इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये कि सोधम और ऐभान कल्पमें जो साधिक दो सागर उत्कृष्ट स्थिति कही ह उसमें एक समय मिला देनपर सानत्कुमार और माहेन्द्रकल्पमें जघन्य स्थिति होती है । सानत्कुमार और माहेन्द्रमें जो साधिक सात सागर उत्कृष्ट स्थिति कही ह उसमें एक समय मिला देने पर ब्रह्म और ब्रह्मोत्तरमें जघन्य स्थिति होती है इत्यादि ।

नारकियाकी उत्कृष्ट स्थिति कह आय ह पर सूत्र द्वारा अभी जघन्य स्थिति नहीं कही है । यद्यपि उसका प्रकरण नहीं है तो भी यहाँ उसका बोधमें कबन हो सकता है इस इच्छास आधायने आगेका सूत्र कहा है—

दूसरी आदि भूमियोंमें नारकोंकी पूर्व पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति ही अनन्तर अनन्तर की जघन्य स्थिति है ॥३६॥

शब्दा—सूत्रमें 'च' शब्द किसलिये दिया है ?

समाधान—प्रकृत विषयका समन्वय करनेके लिये 'च' शब्द दिया है ।

शब्दा—क्या प्रकृत है ?

समाधान—परत परत पूर्वा पूर्वाऽनन्तरा अपरा स्थिति यह प्रकृत ह 'च' शब्द इसका समुच्चय ह आता ह । इसमें यह अर्थ प्राप्त होता है कि रत्नप्रभामें नारकियोंकी उत्कृष्ट स्थिति जो एक सागर ह वह शकरा प्रभा में जघन्य स्थिति ह । शकराप्रभामें उत्कृष्ट स्थिति जो तीन सागर है वह वालुका प्रभामें जघन्य स्थिति ह इत्यादि ।

इस प्रकार द्वितीयादि नरकामें जघन्य स्थिति कही । प्रथम नरकमें जघन्य स्थिति कितनी ह अब यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहत ह—

प्रथम भूमिमें दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है ॥३६॥

11

12

13

14 15

16

17 18 19 20 21 22

23 24 25 26 27 28 29 30

31 32 33 34 35 36 37 38

39

'च'शब्द प्रकृतसमुच्चयार्थं । तेनवमभिसम्बन्ध । ज्योतिष्काणां परा स्थितिः पत्योपममधिकमिति ।

अथापरा कियतीत्यत आह—

तद्वष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥

२ तस्य पत्योपमस्याष्टभागो ज्योतिष्काणामपरा स्थितिरित्यथ ।

अथ लौकान्तिकानां विशेषोक्तानां स्थितिर्विशेषो नोक्तः । स किया नित्यत्रोच्यते—

सौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम् ॥ ४२ ॥

अविशिष्टाः सर्वे त शुक्ललक्ष्या पञ्चहस्तोत्सेधशरीराः ।

१ इति तत्त्वार्थवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसप्तिकायां चतुर्षोऽध्यायः ॥

सूत्रमें 'च' शब्द प्रकृतका समुच्चय करनक लिये दिया है । इससे यह अर्थ घटित होता है कि ज्योतिषियोंकी उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पत्यु है ।

ज्योतिषियोंकी अपन्य स्थिति कितनी है अब यह बतलानक लिये भागेका सूत्र कहत है—

ज्योतिषियोंकी अपन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थितिका आठवां भाग है ॥४१॥

१२ इस सूत्रका यह भाव है कि उसका अर्धान् पत्युका आठवां भाग ज्योतिषियोंकी अपन्य स्थिति है । बिनेवल्लग्नमें यह गय लौकान्तिक देवाकी स्थिति नहीं बहो है । यह कितनी है अब यह बतलात है—

अथ सौकान्तिकोंकी स्थिति आठ सागर है ॥४२॥

इत सब लौकान्तिकोंकी शुक्ल लक्ष्या होनी है । और शरीरकी ऊँचाई पाँच हाथ होती है ।

अग प्रकार सर्वार्थसिद्धि नामवाकी तत्त्वार्थवृत्तिमें चौथा अध्याय समाप्त हुआ ।

## अथ पञ्चमोऽध्यायः

हृदानीं सम्यग्दशनस्य विषयभावेनोपक्षिप्तेषु जीवादिषु जीवपदार्थो व्याख्यातः ।  
अथाजीवपदार्थो विचारप्राप्तस्तस्य सन्नाभेदसकीतनायमिदमुच्यते—

अजीवकाया धर्माधर्माकाक्षपुद्गला ॥ १ ॥

‘काय’शब्दः शरीरे व्युत्पादित इहोपचारादध्यारोप्यते । कुत उपचार ? यथा शरीरं पुद्गलद्रव्यप्रचयात्मकं तथा धर्मादिष्वपि प्रदेशप्रचयापेक्षया काया इव काया इति । अजीवाश्च ते कायाश्च अजीवकाया “विशेषण विशेष्येति” वृत्तिः । ननु च नीलोत्पलादिषु व्यभिचारे सति विशेषणविशेष्ययोगः ? इहापि व्यभिचारयोगोऽस्ति । अजीवशब्दोऽकाये कालोऽपि वर्तते कायोऽपि जीवे । किमत्र कायशब्दः ? प्रदेशबहुत्वज्ञापनाय । धर्मादीनां

### पाँचवें अध्याय

सम्यग्दर्शनके विषयरूपसे जो जीवादि पदार्थ कहे हैं उनमेंसे जीव पदार्थका व्याख्यान किया । अब अजीव पदार्थका व्याख्यान विचार प्राप्त है अतः उसकी सन्ना और भेदोंका कथन करनेके लिये भाषेका सूत्र कहते हैं—

धर्म अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीवकल्प हैं ॥१॥

व्युत्पत्तिसे काय शब्दका अर्थ शरीर है तो भी यहाँ उपचारसे उनका आरोप किया है ।

शंका—उपचारका क्या कारण है ?

समाधान—जिस प्रकार शरीर पुद्गल द्रव्यक प्रचयरूप होता है उसी प्रकार धर्मादिषु द्रव्य भी प्रदेशप्रचयकी अपेक्षा कायके समान होनेसे काय कहे गये हैं ।

अजीव और काय इनमें कमधारय समास है । जो विशेषण विशेष्यण’ इस सूत्रसे हुआ है ।

शंका—नीलोत्पल इत्यादिमें नील और उत्पल इन दोनों का व्यभिचार देखा जाता है अतः यहाँ विशेषणविशेष्य संबन्ध किया गया है किन्तु अजीवकायमें विशेषणविशेष्य सम्बन्ध करनेका क्या कारण है ?

समाधान—अजीवकायका यहाँ भी व्यभिचार देखा जाता है क्योंकि अजीव शब्द कालमें भी रहता है जो कि काय नहीं है और काय शब्द जीवमें रहता है अतः इस दोषक निवारण करनेक लिये यहाँ विशेषणविशेष्य सम्बन्ध किया है ।

शंका—काय शब्द किसलिये दिया है ?

प्रदेशा बहुव इति । ननु च असस्येया प्रदेशा धर्माधर्मकजीवानाम् इत्यनेनैव प्रदेशबहुत्व  
 शापितम् ? सत्यमिदम् । पर किन्त्वस्मिन्विधौ सति तदवधारण विज्ञायते, असस्येया  
 प्रदेशा न सस्येया नाप्यनन्ता इति । कालस्य प्रवेशप्रचयाभावज्ञापनाय च इह 'काय  
 ग्रहणम् । कालो वक्ष्यते । तस्य प्रवेशप्रतिषेधायमिह 'काय'ग्रहणम् । यथाऽणो प्रदेशमा-  
 २ ज्ञत्वाद् द्वितीयादयोऽप्ये प्रदेशा न सन्तीत्यप्रदेशोऽणु तथा कालपरमाणुरप्यकप्रदेशत्वाद्  
 प्रदेश इति । तेषां धर्मादीनाम् 'अजीव इति सामान्यसञ्ज्ञा जीवलक्षणाभावमुखेन  
 प्रवृत्ता । 'धर्माधर्माकार्षेपुद्गला इति विधापसञ्ज्ञा सामयिनय' ।

अत्राह 'सवद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' इत्यवमादिषु द्रव्याण्युक्तानि कानि तानीत्युच्यते-  
 द्रव्याणि ॥ २ ॥

यथास्व पर्यायद्रव्यन्ते द्रवन्ति वा तानि इति द्रव्याणि । द्रव्यस्वयोगाद् द्रव्यमिति

समाधान—प्रवेश बहुत्वका ज्ञान करानेके किये । धर्मादिक द्रव्योंके बहुत प्रदेश हैं यह इससे  
 जाना जाता है ।

धका—आगे यह सूत्र आया है कि 'धर्म अधर्म और एक जीवके असस्यात् प्रदेश हैं' इसीसे  
 इनके बहुत प्रदेशोंका ज्ञान हो जाता है फिर यहाँ कायशब्दके देनकी क्या आवश्यकता ?

१२ समाधान—यह ठीक है । तो भी इस कथनके होनेपर उस सूत्रसे प्रदेशोंके  
 विषयमें यह निश्चय किया जाता है कि इन धर्मादिक द्रव्योंके प्रदेश असस्यात्  
 ह, न सस्यात् ह और न अनस्त । दूसर काल द्रव्यमें प्रदेशोंका प्रचय नहीं है यह ज्ञान कराने के  
 लिय इस सूत्रमें 'काय' शब्दका ग्रहण किया है । कालका आग व्याख्यान करेंगे । उसके प्रदेशोंका निषेध  
 २ करानेके लिये यहाँ 'काय' शब्दका ग्रहण किया है । जिस प्रकार अणु एक प्रदेशरूप होनाके कारण उससे  
 २ द्वितीय आदि प्रदेश नहीं होते इसलिये अबुको अप्रदेशी कहत हैं उसी प्रकार काल परमाणु भी एक  
 प्रदेशरूप होनाके कारण अप्रदेशी है ।

धर्मादिक द्रव्यमें जीवका लक्षण नहीं पाया जाता इसलिये उनकी अजीव यह सामान्य सञ्ज्ञा है ।

उषा धर्म अधर्म आकाश और पुष्पास मे उनकी विधाप सञ्ज्ञाए हे जो कि योगिक ह ।

सवद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' इत्यादि सूत्रोंमें द्रव्य कह आय है । वे कौन हैं यह बतलानेके लिये

२४ आगका सूत्र कहते हैं—

ये धर्म, अधर्म, आकाश और पुष्पास द्रव्य हैं ॥ २ ॥

द्रव्य शब्दमें 'द्रव्' भाग है जिसका अर्थ प्राप्त करना होता है । इससे द्रव्य शब्दका व्युत्पत्तिरूप अर्थ  
 इस प्रकार हुआ कि जो यथायोग्य अपनी अपनी पर्यायोंके द्वारा प्राप्त होते है या पर्यायोंको प्राप्त होते  
 हैं वे द्रव्य कहलाते है ।

(१) सत्यं वासिन् तद् वा । (२) कायप्रवेश—आ कि १ कि २ । (३) नोऽप्य न यु । (४) धर्मोऽधर्म  
 आकाश पुष्पास इति आ कि १ कि २ ।

चेत् ? न उभयासिद्ध । यथा दण्डदण्डिनोर्योगो भवति पृथकसिद्धयो न च तथा  
द्रव्यद्रव्यत्वे पृथकसिद्धे स्तः । यद्यपृथकसिद्धयोरपि योगः स्यादाकाशकुसुमस्य प्रकृतौपु  
रुपस्य द्वितीयशिरसश्च योगः स्यादिति । अथ पृथकसिद्धिरभ्युपगम्यते, द्रव्यत्वकल्पना  
निरपेक्षा । गुणसमुदायो द्रव्यमिति चेत् ? तत्रापि गुणानां समुदायस्य च भेदाभाव  
तद्द्रव्यपदस्यो नोपपद्यते । भेदाभ्युपगमे च पूर्वोक्त एव दोषः । ननु गुणान्द्रव्येति गुणवां द्रव्यन्तौ १  
इति विग्रहेऽपि स एव दोष इति चेत् ? न कथञ्चिद्भेदाभेदोपपत्तेस्तद्द्रव्यपदेशसिद्धिः ।  
व्यतिरेकेणानुपलब्धेरभेदः सञ्चारलक्षणप्रयोजनादिभेदाद् भेद इति । प्रकृता धर्मादयो यद्व  
स्तत्सामानाधिकरण्याद् बहुत्वनिर्देशः । स्यादेतत्संस्थानुवृत्तिवत्पुल्लिङ्गानुवृत्तिरपि  
प्राप्नोति ? नैव दोष आविष्टलिङ्गा शब्दान् कदाचिल्लिङ्गं व्यभिचरन्ति । अतो  
धर्मादयो द्रव्याणि भवन्तीति । १

शका—द्रव्यत्व नामकी एक जाति है उसका सम्बन्धसे द्रव्य कहना ठीक है ?

सामान—नहीं क्योंकि इस तरह दोनोंकी सिद्धि नहीं होती । जिस प्रकार वण्ड और वण्डी  
ये दोनों पृथक् सिद्ध हैं अतः उनका सम्बन्ध बन जाता है उस प्रकार द्रव्य और द्रव्यत्व ये अलग अलग  
सिद्ध नहीं हैं । यदि अलग-अलग सिद्ध न हों पर भी इनका सम्बन्ध माना जाता है तो आकाश-कुसुम  
का और प्रकृत पुष्पक दूसरे शिरसा भी सम्बन्ध मानना पड़ेगा । यदि इनकी पृथक् सिद्धि स्वीकार १५  
करत ही तो द्रव्यत्वका अलगसे मानना निष्फल है ।

गुणोंके समुदायको द्रव्य कहते हैं यदि ऐसा मानत हो तो यहां भी गुणोंका और समुदायका भव नहीं  
रहनेपर पूर्वोक्त सजा नहीं बन सकती है । यदि भव माना जाता है तो द्रव्यत्वके सम्बन्धसे द्रव्य होता  
है इसमें जो दोष वे आये हैं वही दोष यहां भी प्राप्त होता है ।

शका—जो गुणोंको प्राप्त हों या गुणोंके द्वारा प्राप्त हों उन्हें द्रव्य कहते हैं, द्रव्यका इस प्रकार विग्रह २  
करनेपर भी वही दोष प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि कथञ्चित् भेद और कथञ्चित् अमेद बन जानसे द्रव्य इस सञ्चारी सिद्धि  
हो जाती है । गुण और द्रव्य ये एक दूसरेको छोड़कर नहीं पाये जाते इसलिये तो इनमें अमेद है । तथा  
सञ्चार लक्षण और प्रयोजन आदिकी अपेक्षा भेद होनेसे इनमें परस्पर भेद है ।

प्रकृत धर्मादिक द्रव्य बहुत हैं इसलिए उनके साथ सामानाधिकरण करनेके अनिप्रायस 'द्रव्याणि' १५  
इस प्रकार बहुवचनरूप निर्देश किया है ।

शका—जिस प्रकार यहाँ सञ्चारी अनुवृत्ति प्राप्त हुई है उसी प्रकार पुंसिगामी भी अनुवृत्ति प्राप्त  
होती है ?

(१) प्रकृतपुष्पद्वितीय—आ वि १ वि २ ता । प्रकृतपुष्पस्य द्वितीय—भू (२) गुणसंज्ञाको द्रव्य—आ,  
वि १ वि २, ता, ता । (३) तद्द्रव्यत्वर—भू, (४) इदमि आ, वि १ वि २ । (५) द्रव्ये आ वि १  
वि २ । (६) धर्माणि व्यभिचरन्त्यान् ता ता ।

अनन्तरस्वाच्चतुर्णामिव द्रव्यव्यपदेशप्रसङ्गेऽध्यारोपणायमिदमुच्यते—

जीवाश्च ॥ ३ ॥

‘जीव’शब्दो व्याख्याताय । बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातभेदप्रतिपत्त्यर्थः । ‘च’ शब्द

द्रव्यसञ्ज्ञानुकषणाय जीवाश्च द्रव्याणीति । एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह पद  
 १ द्रव्याणि भवन्ति । ननु द्रव्यस्य लक्षण वक्ष्यते ‘गुणपर्ययवद् द्रव्यम्’ इति । तल्लक्षणयोगा  
 द्वर्मादीनां द्रव्यव्यपदेशो भवति नाथ परिगणनेन ? परिगणनमवधारणार्थम् ।  
 तनान्यवादिपरिकल्पितानां पृथिव्यादीनां निवृत्तिः कृता भवति । कथम् ? पृथिव्यप्ये  
 जीवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वात् । वायुमनसो रूपादियोगा  
 भाव इति चेत् ? न वायुस्तावद्रूपादिमान् स्पशवत्त्वाद्दटादिवत् । वक्षुरादिकरण

१ समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जिस शब्दका जो लिंग है वह कभी भी अपन लिंगका  
 त्याग करके अन्य लिंगके द्वारा व्यवहृत नहीं होता । इसलिये ‘धर्मादयो द्रव्याणि भवन्ति’ ऐसा सम्बन्ध  
 यहाँ करना चाहिए ।

अव्यवहित होनेके कारण धर्मादिक चारको ही द्रव्य सज्ञा प्राप्त हुई, अतः अन्यका अध्यारोप करनेके  
 लिये आगेका सूत्र कहते हैं —

१५

जीव मी द्रव्य ई ॥ ३ ॥

जीव शब्दका व्याख्यान कर आये । सूत्रमें जो बहुवचन दिया है वह जीव द्रव्य के कहे गये वेदोंके  
 विस्तारानेके लिये दिया है । ‘च’ शब्द द्रव्य सज्ञाके लींचनेके लिये दिया है जिससे ‘जीव मी द्रव्य ई’  
 यह अर्थ फलित हो जाता है । इस प्रकार ये पाँच आगे कहे जानेवाले कालके साथ छह द्रव्य होठे हैं ।

२ शब्द—आगे ‘गुणपर्ययवद् द्रव्यम्’ इस सूत्र द्वारा द्रव्यका लक्षण करेंगे अतः उस शब्दके सम्बन्धसे  
 धर्मादिकको ‘द्रव्य’ सज्ञा प्राप्त हो जाती है फिर यहाँ उनकी अलगसे गिनती करनेका कोई कारण नहीं है ?

समाधान—गिनती निश्चय करनेके लिये की है । इससे अन्यवादिगणोंके द्वारा माने गये पृथिवी  
 आदि द्रव्याका निराकरण हो जाता है ।

शब्द—कसे ?

समाधान—पृथिवी जल अग्नि वायु और मन इनका पुद्गल द्रव्यमें अन्तर्भाव हो जाता है

२३ क्योंकि ये रूप रस गन्ध और स्पर्शवाले होते हैं ।

शब्द—वायु और मनमें रूपादिक नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वायु रूपादिवाला है स्पर्शवाला होनेसे घटके समान । इस अनुमान  
 के द्वारा वायुमें रूपादिककी मिश्रि होती है ।

(१) च शब्द संज्ञा—नृ । (२) द्रव्यव्यप—नृ । (३) ‘पृथिव्याप्येजीवायुराकाशं कालो विचारया  
 मय इति द्रव्याणि—नृ सू १ । १ ३ । (४)—स्वाच्चतुर्णामिव वायु—नृ ता, ना ।

ग्राह्यत्वाभावाद्रूपाद्यभाव इति चेत् ? न परमाण्वादिष्वतिप्रसङ्गः स्यात् । आपो गन्ध-  
 वस्य स्पशवत्त्वात्पृथिवीवत् । तेजोऽपि रसगन्धवद् रूपवत्त्वात् तद्वदेव । मनोऽपि  
 द्विविध द्रव्यमनो भावमनश्चेति । तत्र भावमनो ज्ञानम्, तस्य जीवगुणत्वादात्मयन्तर्भावः ।  
 द्रव्यमनश्च रूपादियोगात्पुद्गलद्रव्यविकारः । रूपादिव मनः ज्ञानोपयोगकरणत्वाच्चक्षु-  
 र्निन्द्रियवत् । ननु अमूर्तेऽपि शब्दे ज्ञानोपयोगकरणत्वदशनाद् व्यभिचारी हेतुरिति  
 चत् ? न तस्य पीद्गलिकत्वा मूर्तिमत्त्वोपपत्तेः । ननु यथा परमाणूनां रूपादिमत्काय-  
 दशनाद्रूपादिमत्त्व न तथा वायुमनसो रूपादिमत्काय दृश्यते इति चेत् ? न, तेषामपि  
 सद्दुपपत्तेः । सर्वेषां परमाणूनां सवर्णरूपादिमत्कायत्वप्राप्तियोग्यत्वाभ्युपगमात् । न च  
 केचित्स्वाधिवादिजातिविशेषयुक्ता परमाणव सन्ति, जातिसकरेणारम्भदशनात् ।  
 तिस्रोऽप्यानागेऽस्तर्भाव आदित्योदयाद्यपेक्षया आकाशप्रदशपरु क्तिपु इत इदमिति  
 व्यवहारोपपत्तेः ।

शब्दा—शब्द आदि इन्द्रियोके द्वारा वायुका ग्रहण नहीं होता इसलिये उनमें रूपादिका अभाव है ?

समाधान—नहीं क्योंकि इस प्रकार मानने पर परमाणु आदिमें अतिप्रसंग दोष आता है ।

अर्थात् परमाणु आदिमें भी शब्द आदि इन्द्रियां नहीं ग्रहण करतीं इसलिये उनमें भी रूपादिका अभाव मानना पड़गा ।

इसी प्रकार जल गन्धवाला है स्पश्यासा होनेसे पृथिवीके समान । अग्नि भी रस और गन्धवाली है रूपवाली होनेसे पृथिवीके समान । मन भी दो प्रकारका है—द्रव्यमन और भावमन । उनमेंसे भावमन ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान जीवका गुण है इसलिये इसका आत्मामें अन्तर्भाव होता है । तथा द्रव्यमनमें रूपादि काय ज्ञान है अतः वह पुद्गलद्रव्यकी पर्याय है । यथा—मन रूपादिवासा है ज्ञानोपयोगका कारण होनेसे शब्द इन्द्रियके समान ।

शब्दा—गन्ध अमूत्र होते हुए भी उनमें ज्ञानोपयोगकी कर्मशक्ती दली जाती है अतः मनको रूपादि वासा मित्र कर्मक लिये जो हेतु दिया है वह व्यभिचारी है ?

समाधान—नहीं क्योंकि गन्ध पीद्गलिक है अतः उनमें मूलपना बन जाता है ।

शब्दा—जिस प्रकार परमाणुओंके रूपादि गुणवाले कार्य दंग जाते हैं अतः वे रूपादिवाले मित्र होने हैं उन प्रकार वायु और मनके रूपादि गुणवाले कार्य नहीं दिग्गाह मत् ?

समाधान—नहीं क्योंकि वायु और मनके भी रूपादि गुणवाले कार्य मित्र ही जाते हैं क्योंकि सब परमाणुओंमें सब रूपादि गुणवाले कार्यके होनेकी योग्यता माना है । कोद पार्थिव आदि भिन्न-भिन्न जातिका अलग अलग परमाणु है यह बात नहीं है क्योंकि जातिका सब होकर सब कार्यका आरम्भ दंगा जाता है ।

(१) इति केनार-च आ. वि १ वि २ । (२) -योत्तारण्य-च । (३) -वार्थवर्त्य-म् । (४) दृश्यते न वेदा-आ वि १ वि २ । (५) अन्तर्भावः ।



अनन्तरत्वाच्चतुर्णामिव द्रव्यव्यपदेशप्रसङ्गेऽभ्यारोपणामिदमुच्यते—

जीवाश्च ॥ ३ ॥

‘जीव’शब्दो व्याख्यासाथ । बहुत्वनिर्देशो व्याख्यातमेदप्रतिपत्त्यर्थः । ‘च’ शब्दः द्रव्यसञ्ज्ञानुक्त्वंगाम जीवाश्च द्रव्याणीति । एवमेतानि वक्ष्यमाणेन कालेन सह षड् द्रव्याणि भवन्ति । तन्तु द्रव्यस्य लक्षण वक्ष्यते ‘गुणपर्ययवद् द्रव्यम्’ इति । तत्लक्षणयोमा-  
 २ द्धर्मादीनां द्रव्यव्यपदेशा भवति, नार्थं परिगणनेन ? परिगणनमवधारणाम् । तनान्यवादिपरिकल्पिताना पृथिव्यादीनां निवृत्ति कृता भवति । कथम् ? पृथिव्यस्त जीवायुमनांसि पुद्गलद्रव्येऽन्तर्भवन्ति रूपरसगन्धस्पर्शवत्त्वात् । वायुमनसो रूपादियोमा भाव इति चेत् ? न वायुस्तावद्रूपाविमान् स्पशवत्त्वाद्घटाविवत् । चक्षुरादिकरण

१ समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जिस शब्दका जो लिंग है वह कभी भी अपने लिंगका त्याग करके अन्य लिंगके द्वारा व्यवहृत नहीं होता । इसलिये ‘धर्माद्यो द्रव्याणि भवन्ति’ ऐसा सम्बन्ध यहाँ करना चाहिए ।

अव्यवहित होनेके कारण धर्मादिक पारको ही द्रव्य समा प्राप्त हुई, अतः अन्यका अभ्यारोप करनेके लिये आगका सूत्र कहत हैं —

१५ जीव भी द्रव्य है ॥ ३ ॥

जीव शब्दका व्याख्यान कर आवे । सूत्रमें जो बहुवचन दिया है वह जीव द्रव्य के कहे गये वेदोंके विलक्षणके लिये दिया है । ‘च’ शब्द द्रव्य समाके जीवनेके लिये दिया है जिससे ‘जीव भी द्रव्य है यह अर्थ फलित हो जाता है । इस प्रकार य पाँच आगे कहे जानेवाले कालक साथ छह द्रव्य होते हैं ।

वाक्य—आगे ‘गुणपर्ययवद् द्रव्यम्’ इस सूत्र द्वारा द्रव्यका लक्षण कहेंगे अतः उस लक्षणके सम्बन्धत

२ धर्मादिकको ‘द्रव्य’ समा प्राप्त हो जाती है फिर यहाँ उनकी अवस्था गिनती करनेका कोई कारण नहीं है ।

समाधान—गिनती निश्चय करनेके लिये की है । इससे अन्यवाचियोंके द्वारा माने गये पृथिवी आदि द्रव्योंका निराकरण हो जाता है ।

वाक्य—नैस ?

समाधान—पृथिवी अथ अग्नि वायु और मन इनका पुद्गल द्रव्यमें अन्तर्भाव हो जाता है

३ क्योंकि य रूप रस गन्ध और स्पर्शबाले होते हैं ।

वाक्य—वायु और मनमें रूपादिक नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वायु रूपादिबाला है स्पर्शबाला होनेसे घटके समान । इस अनुमान के द्वारा वायुमें रूपादिकको मिट्टि होती है ।

(१) च शब्द लङ्गा—च । (२) द्रव्यव्यपदेश—वृ । (३) पृथिव्यापत्तेर्जीवावृत्तात्वात् कालो विपाक्य भव इति द्रव्याणि ।—३ सू १ । १ ५ । (४)—रवात्पशुपिद्रव्यवत् । वायु—वृ ता, नट ।

पारादवस्थितानि । धर्मादीनि पठपि द्रव्याणि कदाचिदपि पठिति इत्यस्व नातिवतन्ते । ततोऽवस्थितानीत्युच्यन्ते । न विद्यते रूपमेपामित्यम्पाणि रूपप्रतिषेधे 'तत्सहचारिणा रसादीनामपि प्रतिषेधः' । तेन अरूपाप्यमूर्तानीत्यथः ।

यथा सर्वेषां द्रव्याणां 'नित्यावस्थितानि' इत्येतत्साधारण रक्षणं प्राप्तं तथा पुद्गला नामपि अरूपित्वं प्राप्तम् । अतस्तदपवादापमाह—

रूपिणः पुद्गलाः ॥ ५ ॥

रूप्य मूर्तिरित्यथः । का मूर्ति ? रूपादिसत्त्वानपरिणामो मूर्ति । रूपमेपामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यथः । अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनस्य । तदेषामस्तीति रूपिणः । रसाद्यग्रहणमिति चेत् ? न, तदविनाभावात्तदन्तर्भावः । 'पुद्गला' इति बहुवचन भेदप्रतिपादनायम् । भिन्ना हि पुद्गला स्क्वपरमाणुभेदात् । तद्विकल्प उपरिष्टाद्वक्ष्यते । यदि प्रधानवदस्त्वमेकत्वं चैष्ट स्यात् विष्वरूपकार्यदक्षनविरोधः स्यात् ।

आह नि पुद्गलवदधर्मादी यपि द्रव्याणि प्रत्येकं भिन्नानीत्यनोच्यते—

इसी बातको आगे कहना भी है । सख्याका कभी व्यभिचार नहीं होता इसलिये अबस्थित हैं । य धर्मादिक छहों द्रव्य कभी भी छह इस सख्याका उत्लभन नहीं करत इस लिये य अबस्थित कहे जाते हैं । इनमें रूप नहीं पाया जाता इसलिये अरूपी हैं । यहाँ केवल रूपका निषेध किया है किन्तु रसादिक उसके सहचारी हैं अतः उनका भी निषेध हो जाता है । इससे अरूपीका अर्थ अमूर्त होता है ।

जिस प्रकार सब द्रव्योंका नित्य और अबस्थित यह साधारण रक्षण प्राप्त होता है उसी प्रकार पुद्गलोंमें अरूपीपना भी प्राप्त होता है अतः इसका अपवाद करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पुद्गल रूपी है ॥ ५ ॥

रूप और मूर्ति इनका एक अर्थ है ।

प्रश्न—मूर्ति किसे कहत है ?

समाधान—रूपादिकक आकारस परिणामन होनेको मूर्ति कहत हैं । जिनका रूप पाया जाता है वे रूपी कहलात हैं । इसका अर्थ मूर्तिमानु है । अथवा रूप यह गुणविशेषका वाची शब्द है । वह जिनके पाया जाता है वे रूपी कहलात हैं ।

प्रश्न—यहाँ रसादिकका ग्रहण नहीं किया है ?

समाधान—नहीं क्योंकि रसादिक रूपके अविनाभावी हैं इसलिये उनका अर्थमात्र ही जाता है । पुद्गलोंके सर्वोका कथन करनेके लिये सूत्रमें 'पुद्गला' यह बहुवचन दिया है । स्क्व और परमाणु क भेदस पुद्गल अनेक प्रकारके हैं । पुद्गलसक य सब में आगे रहेंगे । यदि पुद्गलको प्रधानक समान एक और अरूपी माना जाय तो जो विष्वरूप काय दिसाह वेता है उसके होनेमें विरोध आता है ।

पुद्गल द्रव्यके समान क्या धर्मादिक प्रत्येक द्रव्य भी अनेक हैं । अब इस बातका ज्ञान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

(१)—यथेतत्त्वम्—यु । (२) रक्षणं तथा अरूपित्वं पुद्गलातामपि प्राप्तम् यु । (३) अर्थः । रूपा—आ-दि १, वि २ ।

उक्तानां द्रव्याणां विशेषप्रतिपत्त्यमाह—

मित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥

नित्यं द्रुवमित्यथ । 'ने' ध्रुवे स्य ' इति निष्पादितत्वात् । धर्मादीनि द्रव्याणि गतिहेतुत्वादिविशेषलक्षणद्रव्यार्थादशब्दस्त्वान्निर्दिष्टान्यान्लक्षणद्रव्यार्थाविशेषान्च कदाचि  
२ दपि न व्ययन्तीति नित्यानि । वक्ष्यते हि तद्भावाव्यय नित्यम्' इति । इयनाश्रयिनि

इसी प्रकार दिशाका भी आकाशमें अन्तर्भाव होता है क्योंकि सूर्यके उदयावधिकी अपेक्षा आकाश प्रवेशपक्षियोंमें यहाँसे यह दिशा है इस प्रकारके व्यवहारकी उत्पत्ति होती है ।

' विशेषण—जातिकी अपेक्षा य जीव पुद्गलवि जितन पदार्थ हैं वे सब द्रव्य कहलाते हैं । द्रव्य इस शब्दमें दो अर्थ छिपे हुए हैं—द्रव्यपक्षीकृता और द्रुवता । अगत्का प्रत्येक पदार्थ परिणामनशील होकर भी ध्रुव है इसलिये उस द्रव्य कहते हैं । आशय यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपन गुणों और पर्यायोंका कमी भी उत्सर्जन नहीं करता । उसका प्रवाहित होनेकी निमित्त भारा है जिसका आश्रयस वह प्रवाहित होता रहता है । द्रव्य इस शब्दका उपयोग हमें जिन वस्तुओंके सिवा विशेषिक वस्तुमें विशेष रूपस व्यवहृत  
१ दिशाई देता है । वस्तुविकल्पनमें गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान् और सामान्य-विशेषमें सबका भव माना

है इसलिये वह द्रव्यत्वस सम्बन्धस द्रव्य होता है द्रव्य शब्दका ऐसा अर्थ करता है किन्तु उसका यह अर्थ सगत प्रतीत नहीं होता । क्योंकि द्रव्यत्व नामका कोई स्वतन्त्र पदार्थ अनुभवमें नहीं आता । इस दृष्टान्त द्रव्यत्व पृथ्वी जल अग्नि, वायु, मन दिशा आदि जनक भवे किए हैं किन्तु विचार कल्पन पृथ्वी जल अग्नि और वायुका अन्तर्भाव पुद्गलमें हो जाता है । पुद्गलका स्वरूप आगे बतलानावसे  
२ हैं । वहाँ उस रूप उस गन्ध और स्पर्शबाला बतलाया है । पृथ्वी जलादि जा पदार्थ पहिले कह जाय हैं उन सबमें य भौतिक उपलब्ध होते हैं यह निश्चय है । मनके दो भवे हैं—द्रव्यमन और भावमन । उनमेंसे द्रव्यमनका अन्तर्भाव पुद्गलमें और भावमनका अन्तर्भाव जीवमें होता है । इसी प्रकार दिशा आकाशस पुष्पक भूत पदार्थ नहीं है क्योंकि सूर्यके उदयादिकी अपेक्षा आकाशमें ही दिशा व्यवहार होता है । इस प्रकार विचार करनेपर जिन वस्तुमें जो जीवादि पदार्थ गिनाए हैं वे ही द्रव्य ठहरे हैं अन्य नहीं ऐसा सिद्ध होता है ।

अब उक्त द्रव्योंके विशेषण जान करानक सिद्धे आयेका सूत्र कहत हैं—

उक्त द्रव्य नित्य है, अवस्थित है और अरूपो है ॥ ४ ॥

नित्य शब्दका अर्थ ध्रुव है । 'नद्य वेत्य' इस शब्दिकके अनुसार 'नि' शब्द स ध्रुवत्वमें त्व प्रत्यय लगकर नित्य शब्द बना है । गतिहेतुत्व आदि रूप विषय सफलताको ग्रहण करनेवाले द्रव्यादिभेद नयनी अपेक्षा और अस्तित्व आदि रूप सामान्य लक्षणको ग्रहण करनेवाले द्रव्याधिक नयनी अपेक्षा से उहाँ द्रव्य नामी भी बिनाशको प्राप्त नहीं होत इसलिये नित्य है । 'तद्भावाव्यय नित्यम्' इन सूत्र द्वारा

(१) नि ध्रुव नित्य इति आ वि १ वि २ । न प्रविशेत्येव ता । (२) त्वम्भूव इति वचनम्—वा. ४ २ ।

१ ४ शब्दिकम् । न प्रविशे—अपह ३ २ ८२ शब्दिकम् ।

चाराववस्थितानि । धर्मादीनि पठपि द्रव्याणि कदाचिदपि पठिति इयस्व नातिवतन्ते । ततोऽस्थितानीत्युच्यन्ते । न विद्यते रूपमेपामित्यरूपाणि रूपप्रतिषेधे 'तत्सहचारिणा रसादीनामपि प्रतिषेध' । तेन अरूपाण्यमूर्तानीत्यर्थः ।

यथा सर्वेषां द्रव्याणां 'नित्यावस्थितानि' इत्येतत्साधारण लक्षणं प्राप्तं तथा पुद्गला नामपि अरूपित्वं प्राप्तम् । अतस्तदपवादायमाह—

रूपिण पुद्गला ॥ ५ ॥

रूप मूर्तिरित्यर्थः । का मूर्ति ? रूपादिसंस्थानपरिणामो मूर्ति । रूपमेवामस्तीति रूपिणः । मूर्तिमन्त इत्यर्थः । अथवा रूपमिति गुणविशेषवचनार्थम् । तदेवामस्तीति रूपिणः । रसाद्यग्रहणमिति चेत् ? न तदभिनाभावात्तदन्तर्भावः । 'पुद्गला' इति बहुवचन भेदप्रतिपादनायम् । मिथ्या हि पुद्गला, स्फुटपरमाणुमेवात् । तद्विकल्प उपरिप्लव्यते । यदि प्रधानवदभ्यत्वमेकत्वं चेष्ट स्यात् विष्यरूपकार्यवदानविरोधः स्यात् ।

आह किं पुद्गलवदभ्यदीयपि द्रव्याणि प्रत्येकं मिथ्यानीत्यत्रोच्यते—

इसी बातको आगे कहनेबाले श्री हैं । सख्याका कमी ब्यभिचार नहीं होता इसलिये अवस्थित हैं । ये धर्मादिक छहों द्रव्य कमी भी छह इस सख्याका उत्स्यन नहीं करत इस लिये ये अवस्थित कह जात हैं । इनमें रूप नहीं पाया जाता इसलिये अरूपी हैं । यहाँ केवल रूपका निषेध किया है किन्तु रसादिक उसके सहकारी हैं अतः उनका भी निषेध हो जाता है । इससे अस्वीकार अर्थ अमूर्त होता है ।

जिस प्रकार सब द्रव्योंका नित्य और अवस्थित यह साधारण लक्षण प्राप्त होता है उसी प्रकार पुद्गलोंमें अरूपोपमा भी प्राप्त होता है अतः इसका अपवाद करनेके लिये आगका मूत्र कहत हैं—

पुद्गल रूपी है ॥ ५ ॥

रूप और मूर्ति इनका एक अर्थ है ।

शका—मूर्ति किस कहते हैं ?

समाधान—रूपान्तिकके आकारसे परिणामन होनेको मूर्ति कहत हैं । जिनके रूप पाया जाता है वे रूपी कहलात हैं । इसका अर्थ मूर्तिमान् है । अथवा रूप यह गुणविशेषका वाचो धर्म है । वह जिनके पाया जाता है वे रूपी कहलात हैं ।

शका—यहाँ रसादिकका ग्रहण नहीं किया है ?

समाधान—नहू । क्योंकि रसान्तिक रूपके अविनाभावी हैं इसलिये उनका अन्तर्भाव हो जाता है । पुद्गलोंके भर्त्सका कथन करनेके लिये सूत्रमें 'पुद्गला' यह बहुवचन दिया है । अन्तर्भाव और परमाणु का भेदसे पुद्गल अनेक प्रकारके हैं । पुद्गलके ये सब भेद आये रहेंगे । यदि पुद्गलको प्रधानता समान एक और अस्वी माना जाय तो जो विरहदप काय दिग्वाह वता है उसका होनमें विरोध आता है ।

पुद्गल द्रव्यका समाग कया धर्मादिक प्रत्येक द्रव्य भी जनक है । अब इस बातका मान करानेके लिये आगका मूत्र कहत हैं—

(१)—वेधेन तन्त्र-ज । (२) अरणं तथा अस्वपिबं पुरस्मानामपि प्राणम् मु । (३) तन्त्र । तेषा—आ, रि १ रि २ ।

आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥

'आकाश' अयमभिविध्यय' । सौत्रीमानुपूर्वी 'मानुत्यतदुक्तम् । तेन धर्माऽधर्माकाशानि गृह्यन्ते । 'एक शब्द' सख्यावचन । तेन द्रव्य विशिष्यते एक द्रव्य एकद्रव्यमिति । यद्येव बहुवचनमयुक्तम् धर्माद्यपेक्षया बहुत्वसिद्धिमवति । ननु एकस्थाने कार्यप्रत्यायनशक्तियो गावेककमित्यस्तु लघुत्वाद् । द्रव्य ग्रहणमनयकम् ? [सत्यम् , ] तथापि द्रव्यापेक्षया एकत्वस्यापनाथ द्रव्यग्रहणम् । क्षेत्रमावाद्यपेक्षया असंख्येयत्वानन्तरविकल्पस्यष्टत्वात् जीवपुद्गलवशेषां बहुत्वमित्येतदनेन स्याप्यते ।

अधिकृतानामेव एकद्रव्याणां विशेषप्रतिपत्यमिदमुच्यते—

निष्क्रियाणि च ॥ ७ ॥

उभयनिमित्तवशादुत्पद्यमानं पर्यायो द्रव्यस्य देशान्तरप्राप्तिहेतु क्रिया । तस्या

आकाशं तत्र एक एक द्रव्यम् ॥ ६ ॥

इस सूत्रमें आकाश अमिषिषि अर्धमें आया है । सूत्र सम्बन्धी आनुपूर्वीका अनुसरण करके यह कहा है । इससे धर्म अर्धमें और आकाश इन तीनोंका ग्रहण होता है । एक शब्द सख्यावाची है और यह द्रव्यका विशेषण है । तात्पर्य यह है कि धर्म अर्धमें और आकाश ये एक एक द्रव्य हैं ।

१३. सहा—यदि ऐसा है तो सूत्रमें 'एकद्रव्याणि' इस प्रकार बहुवचनका प्रयोग करना अयुक्त है ?

समाधान—धर्मादिक द्रव्योंकी अपेक्षा बहुवचन बन जाता है ।

सहा—एकमें अनकके शान करानकी शक्ति होती है, इसलिये 'एकद्रव्याणि' के स्थानमें 'एककम्' इतना ही रहा भाव । इससे सूत्र छोटा हो जाता है । तथा 'द्रव्य' पदका ग्रहण करना भी निष्फल है ?

१४. समाधान—ये धर्मादिक द्रव्यकी अपेक्षा एक हैं इस बातके मतलबानेके लिये सूत्रमें 'द्रव्य' पदका ग्रहण किया है । तात्पर्य यह है कि यदि सूत्रमें 'एककम्' इतना ही कहा जाता तो यह नहीं मान्य पड़ता कि ये धर्मादिक द्रव्य द्रव्य क्षेत्र काल और भाव इनमेंसे किसीकी अपेक्षा एक हैं अतः सर्वेहके निवारण करनेके लिये 'एकद्रव्याणि' पद रखा है । इनमेंसे धर्म और अर्धमें द्रव्यके क्षेत्रकी अपेक्षा असंख्यात् विकल्प इष्ट होनेसे और भाव की अपेक्षा अनन्त विकल्प इष्ट होनेसे तथा आकाशक क्षेत्र और भाव दोनों की अपेक्षा अनन्त विकल्प इष्ट होनेसे ये जीव और पुद्गलक समान बहुत नहीं हैं इस प्रकार यह १५. वाद इस सूत्रमें दिसाई गई है ।

अब अधिकार प्राप्त उन्हीं एक एक द्रव्योंका विशेष ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

तथा निष्क्रियम् ॥ ७ ॥

अन्तरंग और बहिरंग निमित्तसे उत्पन्न होनेवाली जो पर्याय द्रव्यक एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें प्राप्त

(१)—ईपरधर्मे किमाद्यपे धर्माभिप्रेक्षा च यः । एतमात्तं धितं विद्याद् भाष्यस्वरूपोपधि । (२)—पूर्वी-मनुसूत्र-म् । (३)—यदि । एक-आ. वि १ वि २ । (४)—सकं । तल्लियते इत्या-ता. वा. १-सकं । तन्नाकते इत्या-आ. वि १ वि २ । (५)—भावापेक्षया आ., ता., वा. वि १ वि २ ।

निष्क्रान्तानि निष्क्रियाणि । अत्र चोद्यते—धर्मादीनि द्रव्याणि यदि निष्क्रियाणि  
 उत्तस्तपामुत्पादो न भवेत् । क्रियापूर्वको हि घटादीनामुत्पादो दृष्टः । उत्पादाभावाच्च  
 व्ययमाव इति । अतः सबद्रव्याणामुत्पादादित्रितयकल्पनाव्याघात इति ? तत्र किं  
 कारणम् ? अन्यघोपपत्तेः । त्रियानिमित्तोत्पादाभावेऽप्येषां धर्मादीनामन्यघोत्पाद-  
 कल्प्यते । तद्यथा—द्विविध उत्पाद स्वनिमित्त परप्रत्ययश्च । स्वनिमित्तस्तावदनन्ता  
 नामगुरुलघुगुणानामागमप्राभाष्यादभ्युपगम्यमानानां पटस्थानपतितया वृद्ध्या हाया च  
 प्रवतमानानां स्वभावादतेषामुत्पादोध्ययश्च । परप्रत्ययोऽपि अश्वादिगतिस्थित्यवगाहन  
 हेतुत्वात्क्षणे क्षणे तेषां भेदात्तद्भेदत्वमपि भिन्नमिति परप्रत्ययापेक्ष उत्पादो विनाशश्च  
 व्यवहित्यसे । ननु यदि निष्क्रियाणि धर्मादीनि जीवपुद्गलानां गत्यादिहेतुत्व नोपपद्यते ।  
 जलादीनि हि क्रियावन्ति मत्स्यादीनां गत्यादिनिमित्तानि दृष्टानीति ? तप दोषः  
 बलाघाननिमित्तत्वाच्चक्षुवत् । यथा रूपोपलब्धौ चक्षुनिमित्तमिति न व्याक्षिप्तमनस्क-  
 स्यापि भवति । अधिकृतानां धर्माधर्माकाशानां निष्क्रियत्वेऽभ्युपगते जीवपुद्गलानां सक्रि-  
 यरानका कारणं ह बहु क्रिया बहुसती ह और जो इस प्रकारकी क्रियासे रहित हें व निष्क्रिय कहलात ह ।

पचा—यदि धर्मादिक द्रव्य निष्क्रिय हें तो उनका उत्पाद नहीं बन सकता क्योंकि पचाविकका  
 क्रियापूर्वक हो उत्पाद बना जाता ह । और उत्पाद नहीं बननेसे इनका व्यय भी नहा घनता । अतः  
 सब द्रव्य उत्पाद आदि तीन रूप होत हें इस कल्पनाका व्याघात हा जाता ह ?

समाधान—महीं क्योंकि इनमें उत्पाद आदिक तीन अन्य प्रकारसे बन जात हें । यद्यपि इन  
 धर्मादिक द्रव्योंमें त्रियानिमित्तक उत्पाद नहीं ह तो भी इनमें अन्य प्रकारसे उत्पाद माना गया ह । यथा—  
 उत्पाद दो प्रकारका ह स्वनिमित्तक उत्पाद और परप्रत्यय उत्पाद । स्वनिमित्तक यथा—प्रत्यय  
 द्रव्योंमें आगम प्रमाणसे अनन्त अगुरुलघु गुण स्वीकार क्रिय गये हें जिनका छह स्थानपतित बुद्धि और  
 हानिक द्वारा बतन होता रहता ह अतः इनका उत्पाद और व्यय स्वभावसे होता ह । इसी प्रकार पर  
 प्रत्यय भी उत्पाद और व्यय होता ह । यथा—य धर्मादिक द्रव्य क्रमसे अल्प आग्नि गति स्थिति और  
 अवाहनमें कारण ह । बुद्धि इन गति आग्नि में क्षण क्षणमें अल्पर पड़ता ह इसलिये इनका कारण भी  
 भिन्न भिन्न होने चाहिए इस प्रकार इन धर्मादिक द्रव्योंमें परप्रत्ययकी अपेक्षा उत्पाद और व्ययका  
 व्यवहार क्रिया जाता ह ।

पचा—यदि धर्मादिक द्रव्य निष्क्रिय ह तो य जीव और पुद्गलकी गति आग्नि क कारण नहा  
 हो मन्त क्याकि अत्याग्नि क्रियावान् हाकर ही मछकी आग्नि गति आदिमें निमित्त दत्त ज्ञान ह  
 अग्नया महा ?

समाधान—यहका जोर नहाह क्याकि बहुत इन्द्रियक समान य बलाघानमें निमित्तमात्र  
 ह । जस बहुत इन्द्रियरूपक ग्रहण करनेमें निमित्तमात्र ह समन्वित्तमन व्याधिज ह उमक बहुत

(१)—सर्वत्रपरम्—भू । (२)—अगमप्रमाणद्वय—आ. वि १ वि २ । (३)—निमित्तमपि नम ता नः ।

यत्वमर्थादापन्नम् । कालस्यापि सत्क्रियत्वमिति चेत् ? न अनधिकारात् । अत एवा सावेत सह नाधिक्रियत ।

अजीवकाया इत्यत्र कायग्रहणेन प्रदेशास्तिरत्वमात्र निश्चिन्ति न स्थित्वावधारिता प्र-  
धानामतस्तन्निर्धारणायमिदमुच्यते—

असस्येया प्रवेशा धर्माधम कजीवानाम् ॥ ८ ॥

सस्यामतीता असस्येया । असस्येयस्त्रिविध—जघन्य उत्कृष्टोऽजघन्योऽकृष्टश्चेति ।  
तत्रेहाजघन्योऽकृष्टासस्यय परिगृह्यते । प्रदिश्यन्ते इति प्रदेशा । वक्ष्यमाणलक्षण-  
परमाणु स यावति क्षत्र व्यवतिष्ठते स प्रवेश इति व्यवह्रियते । धर्माधर्मकजीवास्तुत्या  
सस्ययप्रवेशा । तत्र धर्माधमौ निष्क्रियौ लोकाकाश ध्याप्य स्थितौ । जीवस्तावत्प्रदेशोऽपि  
सन् सहरणविमपणस्वभावत्वात्कमनिवर्तित शरीरमणु महद्वाऽधितिष्ठस्तावदवगाह्य  
घतते । यदा तु लोकपूरण भवति तदा मन्दरस्याधश्चित्रवज्रपटलमध्ये जीवस्याष्टौ मध्य  
प्रदेशा व्यवतिष्ठन्ते । इतरे प्रदेशा ऊर्ध्वमधस्तिवक् च कृत्स्न लोकाकाश व्यवस्तुवत ।

इन्द्रियके रहते, हुणुभी रूपका ग्रहण नहीं होता । उसी प्रकार प्रकृतमें समस्त लेशा चाहिये ।

इसप्रकार अधिकार प्राप्त धम अधर्म और आकाश द्रव्यको निष्क्रिय मान लेने पर जीव और पुद्गल  
सक्रिय हैं यह प्रकरणसे अपने आप प्राप्त हो जाता है ।

शका—काल द्रव्य भी सक्रिय होगा ?

समाधान—महीं क्योंकि उसका यहाँ अधिकार नहीं है । इसक्रिय इन द्रव्योंके साथ उसका  
अधिकार नहीं किया है ।

अजीवकाया इत्यादि सूत्रमें कार्य पदके ग्रहण करनेसे प्रवेशोंका अस्तित्व मात्र जाना जाता है  
प्रवेशोंकी सस्या नहीं मालूम होती अतः उसका निर्धारण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

धर्म, अधर्म और एक जीवके असंख्यात प्रदेश हैं ॥ ८ ॥

जो सस्यास परे है वे असस्यात कहलाते हैं । असस्यात तीन प्रकारका है—जघन्य उत्कृष्ट और  
अजघन्योऽकृष्ट । उनमेंसे यहाँ अजघन्योऽकृष्टका ग्रहण किया है । प्रदिश्यन्ते इति प्रदेशा यह प्रवेश  
सस्यकी व्युत्पत्ति है । तात्पर्य यह है कि जिससे विवक्षित परिमाणका सकत मिलता है उसे प्रवेश कहते  
हैं । परमाणुका लक्षण आगे कहेंगे । वह जिससे क्षेत्रमें रहता है वह प्रवेश है ऐसा व्यवहार किया जाता  
है । धम अधर्म और एक जीवके प्रवेशोंकी सस्या समान है । इनमेंसे धर्म और अधर्मद्रव्य निष्क्रिय हैं  
और लोकाकाशधर्ममें फेले हुए हैं । यद्यपि जीवके प्रवेश धर्म और अधर्म द्रव्यके बराबर ही हैं तो भी  
वह सञ्चोष और विस्तारस्वभाववाला है । इसलिये कर्मके निमित्तसे छोटा या बड़ा जसा शरीर मिलता  
है उतनी अवगाहनाका होकर यह जीव रहता है । और केशलिसमुद्भातके समय जब यह लोकको  
व्यापता है उस समय जीवके मध्यके आठ प्रदेश मेरु पश्चिमके नीचे चित्रा पूर्विके मध्यम पटलके  
मध्यमें स्थित हो जाते हैं और शेष प्रवेश ऊपर, नीचे और तिरछे समस्त लोकको व्याप करते हैं ।

अथाकाशस्य कति प्रदेशा इत्यत आह—

आकाशस्यामन्ता' ॥ ९ ॥

अविद्यमानोऽन्तो येऽंते अनन्ता । के ? प्रदेशा । कस्य ? आकाशस्य । पूर्वव  
दस्यापि प्रदेशकल्पनाऽवसेया ।

उक्तममूर्तानां प्रदशपरिमाणम् । इदानीं मूर्तानां पुद्गलानां प्रदेशपरिमाण  
निर्शातव्यमित्यत आह—

सषष्टेमाप्तस्येषाश्च पुद्गलानाम् ॥ १० ॥

'च योऽनन्तानन्ताश्चरन्नुत्पद्यत । कस्यचित्पुद्गलद्रव्यस्य द्रवणुकाद सस्येया' प्रदेशा  
षस्यश्चिदस्येया अनन्ताश्च । अनन्तानन्तोपसस्थानमिति चेत् ? न अनन्तसामायात् ।  
अनन्तप्रमाण त्रिविधमुक्त परीतानन्त युक्तानन्तमनन्तानन्त चति । तत्त्वमनन्तसामा  
न्येन गृह्यते । स्यादेतदसस्यात्प्रदेशां लोक अनन्तप्रदेशस्यानन्तानन्तप्रदेशस्य च

अव आकाश इत्यत्र क्लिप्त प्रदश है यह वतस्थानक लिय आगेका मूत्र कहत है—

आकाशके अनन्त प्रदेश है ॥ ६ ॥

जिनका अन्त नहीं है व अनन्त कहलात है ?

दावा—अनन्त क्या है ?

१५

समाधान—प्रश्न ।

दावा—किसके ?

समाधान—आकाशके ।

पहलके समाप्त इमके भी प्रदेशकी कल्पना जान लेनी चाहिये । अर्थात् जितने क्षेत्रमें एक परमाणु  
रहना है उत प्रदश कहत है । प्रदशका यह अर्थ यहाँ भी जानना चाहिए ।

२

अमूल द्रव्याके प्रदश कह । अब मूल पुद्गलोंके प्रयोगोंकी मर्यादा जानव्य है अत उमका ज्ञान करानके  
लिये आगेका मूत्र कहते हैं—

पुद्गल्लोक मंस्यात्, असस्येयात् और अनन्त प्रदेश है ॥ १० ॥

मूत्रमें जो 'च' दश दिया है उममें अनन्तकी अनुबूति होती है । तात्पर्य यह है कि द्रवणुका  
आदि पुद्गल द्रव्यके सस्यात् प्रदश होत है और जिसके असस्यात् तथा अनन्त प्रदश होत है ।

१५

दावा—यहाँ अनन्तानन्तका उपसस्यात् करना चाहिये ?

समाधान—नहीं । क्योंकि यहाँ अनन्त सामान्यका प्रत्यय दिया है । अनन्त प्रमाण तीन प्रकारका  
रहता है—परीतानन्त, वक्षतानन्त और अनन्तानन्त । 'मन्त्ये' 'त' यवका अनन्त सामान्यमें प्रहण हा  
जाना है ।

दावा—और असस्यात् प्रदशवान् है इगन्त्ये च अनन्त प्रदशवान् और अनन्तानन्त प्रदशवान्

३

(१)—अन्त ॥ ॥ अन्ते-अन्ते-अन्तान्ति । अदि-च । (२) अन्तानन्तान्-च, ता अन्त ।



स्कन्धस्याधिकरणमिति विरोधस्ततो नानन्त्यमिति ? नप दोष सूक्ष्मपरिणामावगाहन शक्तियोगात् । परमाध्यादयो हि सूक्ष्मभावेन परिणता एककस्मिन्नप्याकाशप्रदेशेऽनन्तानन्ता अवशिष्टन्ते अवगाहनशक्तिश्चपामव्याहृतास्ति । तस्मादेकस्मिन्नपि प्रदेशे अनन्तानन्तानामवस्थान न विरुध्यते ।

‘पुद्गलानाम् इत्यविशेषवचनात्परमाणोरपि प्रदेशवत्त्वप्रसङ्गे तत्प्रतिषेधात्प्रमाह—  
माणो ॥ ११ ॥

अणो ‘प्रदेशा न सन्ति इति वाक्यदोष’ । कुतो न सन्तीति चेत् ? प्रदेशमात्रत्वात् । यथा आकाशप्रदेशस्यकस्य प्रदेशमभावात्प्रदेशत्वमेवमणोरपि प्रदेशमात्रत्वात्प्रदेशमवामात्र । किं च ततोऽन्यपरिमाणाभावात् । न ह्यणोरल्पीयानयोऽस्ति, यतोऽन्य प्रदेशा भिद्येरन् ।

एषामवधूतप्रदेशानां धर्मादीनामाधारप्रतिपत्त्ययमित्युच्यते—

लौकाकाशोऽवगाह ॥ १२ ॥

स्कन्धका आधारह इत्येवमतक माननेमें विरोध जाता है अतः पुद्गलक अनन्त प्रवेश नहीं बनत ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि सूक्ष्म परिणामन होनेसे और अवगाहन शक्तिके निमित्त-

स अनन्त या अनन्तानन्त प्रवेशवाले पुद्गल स्कन्धोका आकाश आधार हो जाता है । सूक्ष्मस्पर्शसे परिणत हुए परमाणु आकाशके एक एक प्रवेशमें अनन्तानन्त ठहर जात हैं । इनकी यह अवगाहन शक्ति स्याभाव रहित है इसलिये आकाशक एक प्रवेशमें भी अनन्तानन्त परमाणुओंका अवस्थान विरोधको प्राप्त नहीं होता ।

पूर्व सूत्रमें ‘पुद्गलानाम्’ यह सामान्य वचन कहा है । इसमें परमाणुके भी प्रवेशोंका प्रसंग प्राप्त होता है अतः उसका निषेध करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

परमाणुके प्रवेश नहीं होते ॥ ११ ॥

परमाणुके प्रवेश नहीं है । यहाँ ‘सन्ति यह वाक्यका शेष है ।

शका—परमाणुक प्रवेश क्यों नहीं होत ?

समाधान—क्योंकि बहुभ्ये एक प्रवेश मात्र है । जिस प्रकार एक आकाश प्रवेशमें प्रवेश-भेद नहीं होना वह अप्रदेशी मामा गया है उसी प्रकार अणु स्वयं एक प्रवेशरूप है इसलिये उसमें प्रवेशम नहीं होता । दूसरे अणुसे अन्य परिमाण नहीं पाया जाता । उसी कोई अन्य वस्तु नहीं जो परमाणुसे छोटी हो जिससे इसके प्रवेश भेदको प्राप्त होवे ।

इस प्रकार निषिद्ध प्रवेशवाले इन धर्माधिक द्रव्योंके आधारका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहने है—

इन धर्मादिक द्रव्योंका अवगाह लोकाकशमें है ॥ १२ ॥

उभयतः धर्मादीनां द्रव्याणां लोकाकाशेऽवगाहो न बहिरित्ययम् । यदि धर्मादीनां लोकाकाशमाधारः, आकाशस्य कः आधार इति ? आकाशस्य नास्त्ययः आधारः । स्वप्रतिष्ठमाकाशम् । यथाकाशः स्वप्रतिष्ठम्, धर्मादीन्यपि स्वप्रतिष्ठान्येव । अथ धर्मादीनामन्यः आधारः कल्प्यते आकाशस्याप्यन्यः आधारः कल्प्यते । तथा सत्यनवस्थाप्रसङ्ग इति चेत् ? नप दोषः नाकाशादयदधिकपरिमाणं द्रव्यमस्ति यत्राकाशः स्थितमित्युच्येत । सयतोऽनन्तं ह्यित् । धर्मादीनां पुनरधिकरणमाकाशमित्युच्यते व्यवहारनयवशात् । एवम्भूतनयापेक्षया तु सर्वाणि द्रव्याणि स्वप्रतिष्ठान्येव । तथा चोक्तम् “क्व भवानास्ते ? आत्मनि” इति । धर्मादीनि लोकाकाशात् बहिः सन्तीत्येतावदन्नाधाराधेयकल्पनासाध्यं फलम् । ननु च लोके पूर्वोत्तरकालभाविनामाधाराधेयभावो दृष्टो यथा कुण्डे वदरादीनाम् । न तथाऽऽकाशः पूवः धर्मादीन्युत्तरकालभावीनि अतो व्यवहारनयापेक्षयाऽपि आधाराधेयकल्पनानुपपत्तिरिति ? नप दोषः युगपद्भाविनामपि आधाराधेयभावाः दृश्यन्ते । घटे रूपादयः शरीरे हस्तादयः इति ।

उक्तं धर्मादिकं द्रव्योका लोकाकाशं अवगाहं ह्येवाहं नहीं यह इत्सं सूत्रका तात्पर्यम् ।

शका—यदि धर्मादिकं द्रव्योका लोकाकाशः आधारः ह तो आकाशका क्या आधारः ह ?

समाधान—आकाशका अन्य आधारः नहीं ह क्योंकि आकाशः स्वप्रतिष्ठः ह ।

शका—यदि आकाशः स्वप्रतिष्ठः ह तो धर्मादिकं द्रव्यं भी स्वप्रतिष्ठः ही होना चाहिये । यदि धर्मादिकं द्रव्योका अन्य आधारः माना जाता ह तो आकाशका भी अन्य आधारः मानना चाहिये । और एसा मानने पर अनवस्था दोषः प्राप्त होता ह ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं ह क्योंकि आकाशसे अधिक परिमाणवाला अन्य द्रव्य नहीं ह जहाँ आकाशः स्थित ह यह कहा जाय । वह सबसे अनन्त ह । परन्तु धर्मादिकं द्रव्योका आकाशः अधिकरण ह यह व्यवहारनयकी अपेक्षा कहा जाता है । एवमतः नयकी अपेक्षा तो सब द्रव्य स्वप्रतिष्ठ ही ह । कहा भी ह—

आप कहाँ रहते ह ? अपनेमें ।

धर्मादिकं द्रव्यं लोकाकाशकं बाह्यं नहीं हं यहाँ आधार-आधेय कल्पनास इतना ही फलितार्थ लिया गया ह ।

शका—शुरुमें जो पूर्वोत्तर कालभावी होते ह उन्हींका आधार-आधेयभाव देला गया ह । असे कि वेदोंका आधार कुच्छ होता ह । उस प्रकार आकाशः पूर्वकालभावी हो और धर्मादिकं द्रव्य पीछे से उत्पन्न हुए हों एसा तो ह नहीं अतः व्यवहारनयकी अपेक्षा भी आधार-आधेयकल्पना नहीं बनवी ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं ह क्योंकि एक साथ होनेवाला पदार्थों में भी आधार-आधेयभाव देला जाता ह । यथा—घटमें रूपादिकका और धरीरमें हाथ आदिका ।

(१) नत् । नतो धर्मा-ना का म् ।

लोक इत्युच्यते । को लोकः ? धर्माधर्मादीनि द्वय्याणि यत्र लोच्यन्ते स लोक इति । अधिकरणसाधनो घञ् । आकाश द्विधा विभक्त लोकाकाशमलोकाकाश चेति । लोक उच्यते । स यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो वहि सयतोऽनन्तमलोकाकाशम् । लोकालोक-विभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भाववासद्भावद्विजेग । असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलाना गतिनियमहेत्वभावाद्भिभागो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितेराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावो लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावा सद्भावाल्लोकालोकविभागसिद्धिः ।

तत्रावधिममाणानामवस्थानभेदसम्भवाद्भिषोपप्रतिपत्त्यधमाह—

धर्माधमयो हृत्स्ने ॥ १३ ॥

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रदशनायम् । अगारेऽस्मितो घट इति यथा तथा धर्माधमयो लोकाकाशोऽवगाहो न भवति । किं तर्हि ? कृत्स्ने तिलेषु तलवदिति । अन्योन्यप्रवेशप्रवेशव्याघाताभाव अवगाहनशक्तियोगाद्भेदितव्य ।

अथ लोकका स्वरूप कहत हे—

शका—लोक किस कहते हे ?

समाधान—जहाँ धर्माधिक द्रव्य विलोक जात है उसे लोक कहत है ।

सक' धातुस अधिकरण अधर्म' घञ् प्रत्यय करक लोक शब्द बना ह । आकाश दो प्रकारका ह—लोकाकाश और अलोकाकाश । लोकका स्वरूप पहले कह आये हैं । वह जितने आकाशमें होता ह वह लोककाश ह और उससे बाहर सबसे अनन्त अलोकाकाश ह । यह लोकालोकका विभाग धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायक सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षासे जानना चाहिय । अधर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जहाँ तक पाये जात हैं वह लोककाश है और इससे बाहर अलोकाकाश ह । यदि धर्मास्तिकायका सद्भाव न माना जाय तो जीव और पुद्गलोंकी गतिके नियमका हतु न रहनेस लोकालोकका विभाग नहीं बनता । उसी प्रकार यदि अधर्मास्तिकायका सद्भाव न माना जाय तो स्थितिका निमित्त न रहनेस जीव और पुद्गलोंकी स्थितिका अभाव होता है जिसस लोकालोकका विभाग नहीं बनता । इसलिय इन दोनोंके सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षा लोकालोकके विभागकी सिद्धि होती ह ।

सोकाकाशमें जितन द्रव्य बनलाय हैं उनके अवस्थानमें भेद हो सकता ह इसलिये प्रत्येक द्रव्यके अवस्थान विशेषका ज्ञान करानेक लिये आगेका सूत्र कहते ह—

धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह समग्र लोकालोकधर्मों है ॥ १३ ॥

यह लोकालोक साध व्याप्तिक दिक्कलानेके लिये सूत्रमें 'कृत्स्ने' पद रखा है । धर्मों जिस प्रकार घट अवस्थित रहता ह उस प्रकार लोकालोकधर्मों धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह मही ह । किन्तु जिस प्रकार तिलमें तल रहता ह उस प्रकार सब लोकालोकधर्मों धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह ह । यद्यपि

(१) 'कृत्स्ने' २।१।१८। 'कृत्स्ने' पापिति ३।१।२१। (२)—कल्पसूत्रादि—मु । (३)—रत्ना । तस्या अभावे कल्प—पु ता ना । (४)—अववद्भावालोका—मु ।

असौ विपरीतानां मूर्तिमतामप्रदेशसख्ययासख्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहवि  
शेषप्रतिपत्त्यथमाह—

एकप्रदेशाविषु भाज्यं पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

एक प्रदेश एकप्रदेश । एकप्रदेश आविष्येया त इमे एकप्रदेशादम । तेषु पुद्ग  
लानामवगाहो भाज्यो विकल्पम् । 'अवयवन विग्रहः समुदाय समासायः' इति एक  
प्रदेशोऽपि गृह्यत । तथाथा—एकस्मिन्नाकाशप्रदेशे परमाणोरवगाह । द्वयोरेकत्रामयत्र  
च बद्धयोरबद्धयोश्च । त्रयाणा मध्येत्र द्वयोस्त्रिपु च बद्धानामबद्धानां च । एव सख्ये  
यासख्येयानन्तप्रदेशानां स्कन्धानामेकमसख्येयासख्येयप्रदक्षपु लोकाकाशऽवस्थान प्रत्येत  
व्यम् । ननु युक्त ताववमूत्तयोधर्माभ्रमयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति । मूर्तिमता  
पुद्गलानां कथम् ? इत्यत्रोच्यते—अवगाहनस्वभावत्वात्सूक्ष्मपरिणामाश्च मूर्तिमतामप्यव  
गाहो न विरुध्यते एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् । आगमप्रामाण्याच्च तथाऽध्य  
वमेयम् । तदुक्तम्—

य सब इत्य एक जगह रहत है तो भी अवगाहन क्षितिक निमित्तसे इनक प्रवक्ष परस्पर प्रविष्ट होकर  
व्याघातको नहीं प्राप्त होत ।

अब जो उक्त दृष्टीसे विपरीत हैं और जो अप्रवेशी हैं या सख्यात असख्यात और अगन्तप्रदेशी हैं  
ऐसे मूर्तिमान् पुद्गलोंके अवगाह विशेषक ज्ञान करानेक लक्ष आगेका मूत्र कहत हैं—

पुत्रलोक्य अवगाह लोकाकाशके एक प्रदेश आदिमें विकल्पसे होता है ॥ १४ ॥

एक और प्रदेश इन दोनोंका द्वन्द्व समास है । जिनके अन्तिमें एक प्रदेश हवे एक प्रदेश आदि कह  
लात है । उनमें पुद्गलोंका अवगाह विकल्पसे ह । यहाँ पर विग्रह अवयवके साथ ह किन्तु समासायें  
समुदायस्य स्थिया ह इसलिये एक प्रवक्षका भां ग्रहण होता ह । सुलसा इस प्रकार है—

आकाशके एक प्रदेशमें एक परमाणुका अवगाह है । बन्धको प्राप्त हुए या सुल हुएदो परमाणुओंका  
आकाशके एक प्रदेशमें या वा प्रणयोंमें अवगाह है । यथको प्राप्त हुए या सुल हुए तीन परमाणुओंका  
आकाशके एक दो या तीन प्रदेशोंमें अवगाह है । इसी प्रकार सख्यात असख्यात और अगन्त प्रदेशकान्ते  
स्कन्धोंका लोकाकाशके एक सख्यात और असख्यात प्रदेशोंमें अवगाह जानना चाहिये ।

धारा—यह तो युक्त ह कि धर्म और अधर्म प्रव्य अमूर्त हैं इसलिये उनका एक जगह बिना विरोध  
के रहना संभव जाता ह किन्तु पुद्गल मूर्त ह इसलिये उनका बिना विरोधके एक जगह रहना संभव  
सकता है ?

समाधान—इसका अवगाहन स्वभाव है और सूक्ष्म रूपस परिणमन हो जाता ह इसलिये एक  
सकन्तमें जिस प्रकार अनेक शेषकोंका प्रकाश रह जाता ह उसी प्रकार मूर्तमान पुद्गलका एक जगह  
अवगाह विरोधको प्राप्त नहीं होता । तथा आयम प्रमाणस यह बात जानी जाती है । कहा भी ह—

(१)—मतामेकप्रदेशे—मु । (२) एक एक प्रदेशे मु । (३) वा न भा २, २ २४ (४)—याक-  
मेकम् ता ।

लोक इत्युच्यते । को लोक ? धर्माधर्मादीनि द्रव्याणि यत्र लानयन्ते स लोक इति । अधिकरणसाधनो घञ । आकाश द्विधा विभक्त लोकाकाशमलोकाकाश चेति । लोक उक्तः । म यत्र तल्लोकाकाशम् । ततो बहिः सवतोऽनन्तमलोकाकाशम् । लोकालोक-विभागश्च धर्माधर्मास्तिकायसद्भावासद्भावाद्भिन्नोऽपि । असति हि तस्मिन् धर्मास्तिकाये जीवपुद्गलानां गतिनियमह्रस्वभावाद्भिन्नो न स्यात् । असति चाधर्मास्तिकाये स्थितराश्रयनिमित्ताभावात् स्थितेरभावो लोकालोकविभागाभावो वा स्यात् । तस्मादुभयसद्भावात् सद्भावात्लोकालोकविभागसिद्धिः ।

तत्रावधिद्यमानानामवस्थानभेदसम्भवाद्दिशेषप्रतिपत्त्ययमाह—

धर्माधमयो कृत्स्ने ॥ १३ ॥

कृत्स्नवचनमशेषव्याप्तिप्रवेशनायम् । अगारेऽस्थितो घट इति यथा तथा धर्माधमयो लोकाकाशोऽवगाहो न भवति । किं तर्हि ? कृत्स्ने तिलेषु तलवन्ति । अन्योऽप्रवेशप्रवेशव्याघाताभाव अवगाहनशक्तियोगाद्भेदितव्यः ।

अब लोकका स्वरूप कहत हैं—

लका—लोक किसे कहत ह ?

समाधान—जहाँ धर्माधिक द्रव्य विभक्त जाते हैं उसे लोक कहते हैं ।

सकं धातुसु अधिकरण अर्थमें घञ प्रत्यय करके लोक शब्द बना है । आकाश दो प्रकारका है—लोकाकाश और अलोकाकाश । लोकका स्वरूप पहले कह आय हैं । वह जितन आकाशमें हाता ह वह लोकाकाश है और उससे बाहर सबसे अनन्त अलोकाकाश है । यह लोकालोकका विभाग धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकायके सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षासे जानना चाहिये । अर्थात् धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जहाँ तक पाये जाते हैं वह लोकाकाश ह और इससे बाहर अलोकाकाश ह । यदि धर्मास्तिकायका सद्भाव न माना जाय तो जीव और पुद्गलोंकी गतिके नियमका हतुन रहनसे लोकाकाशका विभाग नही बनता । उसी प्रकार यदि अधर्मास्तिकायका सद्भाव न माना जाय तो स्थितिका निमित्त न रहनसे जीव और पुद्गलोंकी स्थितिका अभाव होता है जिससे लोकालोकका विभाग नही बनता । इसलिये इन दोनोंके सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षा लोकाकाशका विभागकी सिद्धि होती है ।

लोकाकाशमें जितन द्रव्य बतनाये ह उनका अवस्थानमें भेद हो सकता ह इसलिये प्रत्येक द्रव्यक अवस्थान विवेकका ज्ञान करानके लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह समग्र लोकाकाशमें है ॥ १३ ॥

सकं पाराराणकं मायं व्यापिनं दिव्यलानकं स्थितं सूत्रमें 'कृत्स्नं' पठ रना ह । धर्ममें जिस प्रकार घट अवस्थित रहता ह उस प्रकार लोकाकाशमें धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह नही है । किन्तु जिस प्रकार जिसमें लक्ष रहता ह उस प्रकार सब लोकाकाशमें धर्म और अधर्म द्रव्यका अवगाह ह । यद्यपि

(१) 'अ' चैत्य १३।१८। ह्यसकं पतिपति १।१।१२१। (२)—जायनसद्भावाद्भि—मु । (३)—रथाय ।

नया अमारे लोका—यु ता का । (४)—अयनसद्भावात्लोका—मु ।

अतो विपरीतानां मूर्तिमतामप्रदेशसह्येयासह्येयानन्तप्रदेशानां पुद्गलानामवगाहवि  
शेषप्रतिपत्त्यथमाह—

एकप्रदेशादियु भास्य पुद्गलानाम् ॥ १४ ॥

एक प्रदेश एकप्रदेश । एकप्रदेश आदियेषां स इमे एकप्रदेशान्य । तेषु पुद्ग  
लानामवगाहो भाज्यो विकल्प्य । 'अवयवेन विग्रहः समुदायः समासाय' इति एक  
प्रदेशोऽपि गृह्यते । तद्यथा—एकस्मिन्नाकाशाप्रदेशे परमाणोरवगाह । द्वयोरेकत्रामयत्र  
च वदयोरवदयोश्च । त्रयाणां मय्येकत्र द्वयास्त्रिपु च वद्वानामवद्वाना च । एव सह्ये  
यासह्येयानन्तप्रदेशानां स्क्न्धानामकसह्येयासह्येयप्रदेशेषु लोकाकाशेष्वस्थान प्रत्येत  
स्यम् । ननु युक्त तावदमृतमोधमाधमयोरेकत्राविरोधेनावरोध इति । मूर्तिमतां  
पुद्गलानां कथम् ? इत्यत्रोच्यते—अवगाहनस्वभावत्वात्सुक्ष्मपरिणामाच्च मूर्तिमतामप्यव  
गाहो न विरुध्यते एकापवरके अनेकदीपप्रकाशावस्थानवत् । आगमप्रामाण्याच्च तथाऽप्य  
वसेयम् । तदुक्तम्—

य सब द्रव्य एक जगह रहते हैं तो भी अवगाहन पकितक निमित्तस इनक प्रदक्ष परस्पर प्रविष्ट होकर  
व्यापारको नहीं प्राप्त होत ।

अब जो उक्त द्रव्योंमें विपरीत है और जो अप्रदेशी ह या सख्यात असख्यात और अनन्तप्रदेशी हैं  
एसे मूर्तिमान् पुद्गलोंके अवगाह विरोधक जान करानक किय आगेबा सूत्र कहत ह—

पुद्गलोका अवगाह लोकाकाशक एक प्रदेश आदिमें विकल्पसे होता है ॥ १४ ॥

एक और प्रदेश इन दोनोबा द्रव्य समास है । जिनके आदिमें एक प्रदक्ष ह व एक प्रदक्ष आदि कह  
छात हैं । उनमें पुद्गलोंका अवगाह विकल्पसे ह । यहाँ पर विग्रह अवयवके साथ ह किन्तु समासाय  
समुदायरूप क्रिया ह इसलिये एक प्रदेशका भी ग्रहण होता ह । कुलासा इस प्रकार है—

आकाशके एक प्रदक्षाम एक परमाणुका अवगाह है । वन्धको प्राप्त हुए या लुप्त हुएनी परमाणुओका  
आकाशक एक प्रदक्षमें या दो प्रदक्षोंमें अवगाह है । वन्धको प्राप्त हुए या लुप्त हुए तीन परमाणुओका  
आकाशक एक दो या तीन प्रदक्षोंमें अवगाह ह । इसी प्रकार सख्यात असख्यात और अनन्त प्रदक्षजाले  
स्क्न्धोंका लोकाकाशके एक सख्यात और असख्यात प्रदक्षोंमें अवगाह जानना चाहिये ।

दावा—यह ता मुक्त ह कि धर्म और अधर्म द्रव्य अमूर्त हैं इसलिये उनका एक जगह बिना विरोध  
क रहना बन जाता है किन्तु पुद्गल मूल ह इसलिये उनका बिना विरोधक एक जगह रहना कसे बन  
सकता है ?

समाधान—इनका अवगाहन स्वभाव ह और सूक्ष्म रूपस परिणमन हो जाता ह इसलिये एक  
इककनमें जिस प्रकार अतक दीपकोका प्रकाश रह जाता है उसी प्रकार मूर्तिमान् पुद्गलका एक जगह  
अवगाह विरोधको प्राप्त नहीं होता । तथा आगम प्रमाणम यह जान जानी जाती ह । कहा भा ह—

(१)—व्यापकप्रदेश । (२) एक एक प्रदक्षम् । (३) या म. ध. २ २, १ २४ (४)—व्याप-

कषकम् ता ।

ओगादगादणिषिओ पुगलकाएहि सव्वदो लो गो ।

सुहुमेहिं षादरेहिं अणंठाणतिहिं विवहेहिं ॥'

अथ जीवानां कथमवगाहनमित्यत्रोच्यते—

असस्येयभागादिषु जीवानाम् ॥ १५ ॥

- १ लोकानाशे' इत्यनुवतते । तस्यासस्येयभागीकृतस्यको भागोऽसस्येयभाग इत्युच्यते । स आदिर्योपां तेऽसस्येयभागादयः । तेषु जीवानामवगाहो वेदितव्यः । तद्यथा—एकस्मिन्नसस्येयभाग एको जीवोऽवतिष्ठते । एव द्वित्रिचतुरादिष्वपि असस्येयभागेषु आसवलोकार्धवगाह प्रत्यस्यम् । नानाजीवानां तु सवलोक एव । यद्येकस्मिन्नसस्येयभाग एको जीवोऽवतिष्ठते कथं द्रव्यप्रमाणेनानन्तानन्तो जीवराशिः सप्तरीरोऽवतिष्ठति लोकाकाशे ? सूक्ष्मवायुरमेवादवस्थान प्रत्येतथ्यम् । वादरास्तावत्सप्रतिघातशरीरा । सूक्ष्मास्तु सशरीरा अपि सूक्ष्मभावादेवकनिगोदजीवावगाहोऽपि प्रवेष्टे साधारणशरीरा अनन्तानन्ता वसन्ति । न ते परस्परं वादरश्च व्याहयन्त इति नास्त्यवगाहविरोधः । अत्राह लोकाकाशतुल्यप्रदेश एकजीव इत्युक्तम् तस्य कथं लोकस्यासस्येयभागादिषु वृत्तिः ? ननु सवलोकव्याप्यव भवितव्यमित्यत्रोच्यते—

- १५ लोक सूक्ष्म और स्पृल अनन्तानन्त नाना प्रकारके पुद्गलकार्योसे चारों ओरसे लक्षालक्ष भरा है । अब जीवोंका अवगाह किस प्रकार है इस बातको अगले सूत्रमें कहत हैं—

जीवोंका अवगाह लोकाकाशक असस्ययातवें भाग आदिमें है ॥ १६ ॥

इस सूत्रमें 'साक्षात्वाये' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । उनमें असस्ययात भाग करके जो एक भाग प्राप्त हो वह असस्ययातवां भाग कहलाता है । वह जिनके आदिमें है वे सब असस्ययातवें भाग आदि हैं ।

- १ उनमें जीवोंका अवगाह जानना चाहिए । सुलासा इस प्रकार है—

एक असस्ययातवें भागमें एक जीव रहता है । इस प्रकार दो तीन और चार आदि असस्ययात भागों से मकर सब लोकपयस्त एक जीवका अवगाह जानना चाहिये । किन्तु माना जीवोंका अवगाह सब लोकमें ही होता है ।

पञ्चा—यदि लोकके एक असस्ययातवें भागमें एक जीव रहता है तो सत्सानी अपना अनन्तानन्त

- १६ मत्तरीर जीवराशि लोकाकाशमें कम रह सकती है ?

समाधान—जीव दो प्रकारके हैं सूक्ष्म और वायु अतः उनका साक्षात्वायमें सबस्थान बन जाता है । जो वादर जीव है उनका शरीर तो प्रतिघात सहित होता है । किन्तु जो सूक्ष्म है वे यद्यपि मत्तरीर हैं तो भी सूक्ष्म होने कारण एक निगोद जीव आकाशके जिनके प्रदूर्तोंमें अवगाहन करना है उतनेमें साधारण शरीरवाले अनन्तानन्त जीव रह जाते हैं । वे परस्परमें और वादरांग भाव व्यापानको नहीं

- १ प्राप्त हीन मन्विय साक्षात्वाय अनन्तानन्त जाबोंके अवगाहमें कोई विरोध नहीं आता ।

यद्यपि पर साक्षात्वाय कहता है कि जब एक जीव प्रत्येक साक्षात्वाय परावर बननाय है तो

(१) बंधनिय ता १५। (२) मत्तरीरमें ही आदि १ दि १। (३)—साक्षात्वाय म ।

प्रवेशसह्यारविसर्पान्यां प्रदीपवत् ॥ १६ ॥

अमृतस्वभावस्यात्मनोज्जादिव्य घ प्रत्येकत्वात् कथञ्चिच्च मृतता विभ्रत कामणशरीरामहदणु च शरीरमधितिष्ठतस्तद्वशात्प्रदेशसह्यारविसर्पणस्वभावस्य तावत्प्रमाणशान्त्यामसम्येयभागादिषु वृत्तिरूपपद्यते प्रदीपवत् । यथा निरावरणव्योमप्रवेशेज्जवप्रकाशपरिमाणस्य प्रदीपस्य शारावमणिकापवरकाद्यावरणवशात्तत्परिमाणतेति । १  
साह्य घमादीनामन्योन्यप्रदेशानुप्रवेशात्सकरे सति एकत्व प्राप्नोतीति ? तन्न पररमत्यन्तसद्वलेषे सत्यपि स्वभाव न जहति । उक्त च—

“अण्णोण्णं पविसता दिता ओगासमण्णमण्णस्त ।

भेल्लता वि य णिच्चं सगसम्भाव ण ज्हंति ।”

यद्येव धर्मादीनां स्वभावभेद उच्यतामित्यत आह—

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधमयोऽपकारः ॥ १७ ॥

देशान्तरप्राप्तिहेतुगति । तद्विपरीता स्थिति । उपगृह्यत इत्युपग्रह । गतिरथ

।कने असख्यातर्षे भाग आविर्भे एक जीव कसे रू सक्ता है उसे तो सब लोक म्याप्त कर ही रूना रहिये ? अब इस शकाका समाधान करनेके लिये आगका सूत्र कहत हैं—

अथोकिं प्रदीपक समान जीवक प्रदेशोका संकोष और विस्तार होता है ॥ १६ ॥ १५

भूतिक आत्मा अमृत स्वभाव ह तो भी अनादिकालीन व घने कारण एकपनेकी प्राप्त होनेसे वह तं हो रूना है और कामेण शरीरक कारण वह लोक बड़े शरीरमें रूता है । इसलिये बहुप्रदेशोके संकोष और विस्तार स्वभाववाका है और इसलिये शरीरक अनुसार दीपकक समान उसका लोकके सख्यातर्षे भाग आविर्भे रूना बन जाता ह । जिस प्रकार निरावरण आकाश प्रदेशमें यद्यपि दीपकके काशक परिमाणका निश्चय नहीं होता तथापि वह संकोश मानिक तथा आवरण करनेवाले दूसरे १  
।कारणके आवरणक बखस तत्परिमाण होता ह उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिये ।

धना—धर्मादिक द्रव्योके प्रदेशोका परस्पर प्रवेश होनेक कारण सकर होनेस अमद प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं क्या कि परस्पर अत्यन्त सम्बन्ध हो जान पर भी वे अपने अपने स्वभावकी नहीं छोड़ने इसलिये उममें अमेव नहीं प्राप्त होता । कहा भी ह—

‘सर्व द्रव्य परस्पर प्रविष्टं हं एक दूसरेको अबकाश न्त ह और सग मिककर रह रहे ह तो भी अपने स्वभावको नहीं छोड़त ।

यत्ति एसा ह तो धर्मादिक द्रव्योका स्वभावभेद कहना चाहिये इसलिये आगका सूत्र कहत ह—

गति और स्थितिमें निमित्त होना यह धमस धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकार है ॥ १७ ॥

एक स्थानसे दूसरे स्थानके प्राप्त करानम जो कारण ह उम गति कहत ह । स्थितिका स्वरूप इम १

(१)—‘चेज्जं—प. म. । (२) पञ्चम पा. ७ ।



स्थितिश्च गतिस्थिति । गतिस्थिति एव उपग्रहो गतिस्थित्युपग्रहो । धर्माधमयोनि  
 क्तु निर्देश । उपक्रियत इत्युपकार । कः पुनरसौ ? गत्युपग्रह स्थित्युपग्रहश्च । यं  
 द्वित्वनिर्देश प्राप्नोति ? नप दोष सामान्येन व्युत्पादित शब्द उपात्तसस्य शब्दाः  
 रसम्बन्धे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सस्यां जहाति । यथा—'साधोः कार्यं तप ध्रुते' इति  
 १ एसदुन्त भवति—गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहे क्तव्ये धर्मास्तिका  
 साधारणाश्रयो जलवमस्त्यगमने । तथा स्थितिपरिणामिना जीवपुद्गलानां स्थिरयु  
 ग्रह क्तव्ये अधर्मास्तिकाय साधारणाश्रय पृथिवीधातुरिवास्वादिस्थिताविति ।

ननु च 'उपग्रह वचनमनयकम् 'उपकार इत्येव' सिद्धत्वात् । 'गतिस्थिती धम  
 धमयोरुपकार इति ? नप दोष' याथासस्यनिवृत्त्ययम् 'उपग्रह' वचनम् । धर्माधमयो  
 १ तिस्थित्योश्च मयासस्य भवति एव जीवपुद्गलानां मयासस्य प्राप्नोति धमस्योपका  
 जीवाना गति अधमस्योपकार' पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्निवृत्त्ययमुपग्रहवचन क्रियत

उलटा है । उपग्रह शब्द उपकारका पर्यायवाची है जिसकी व्युत्पत्ति 'उपग्रह'पते है । गति और स्थि  
 इन दोनोंमें द्वन्द्व समास है । गति और स्थिति ही उपग्रह है इसलिये 'गतिस्थिरयुपग्रहो' यह सू  
 वचन कहा है । 'धर्माधमयो' यह कर्ता अर्थमें पठ्ठी निर्देश है । उपकारकी व्युत्पत्ति 'उपक्रियते' है

१५ वाका—यह उपकार क्या है ?

समाधान—गति उपग्रह और स्थिति उपग्रह यही उपकार है ।

वाका—यदि एमा है तो द्विबचनका निर्देश प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि सामान्यसे ग्रहण किया गया शब्द जिस सत्याको प्रा  
 २ ष्ट कर सता है दूसर शब्दके सम्बन्ध होनेपर भी वह उस सस्याको नहीं छोड़ता । जस 'साधो कार्यं तप  
 ध्रुत' इस वाक्य में 'वायम्' एकवचन है और 'तप'श्रुत द्विबचन है । यही बात प्रश्नमें जानना चाहिये

इस सूत्रका यह अन्विषय है कि जिस प्रकार मछलीके गमनमें जल साधारण निमित्त है उसी प्रकार  
 गमन करता हुए जीव और पुद्गलके गमनमें धर्मास्तिकाय साधारण निमित्त है । तथा जिस प्रकार  
 धोड़ा आग्निके ठहरनेमें पृथिवी साधारण निमित्त है उसी प्रकार ठहरनेवाले जीव और पुद्गलके ठहरने  
 अधर्मास्तिकाय साधारण निमित्त है ।

१५ वाका—सूत्रमें 'उपग्रह वचन निरपेक्ष' है क्योंकि 'उपकार' इसी स नाम प्राप्त जाता है । यथा-  
 'गतिस्थिती धर्माधमयोपकार' ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है कया कि यथाश्रमक निराकरण करनेके लिये 'उपग्रह' प  
 ३ रगा है । जिस प्रकार धर्म और अधमके माध गति और स्थितिका समस सम्बन्ध होता है उसी प्रकार  
 जीव और पुद्गलका समस सम्बन्ध प्राप्त होता है । यथा—धम इष्यता उपकार जीवोंकी गति है और  
 अधम इष्यता उपकार पुद्गलोंकी स्थिति है अतः 'मया' निगतरण करनेके लिये सूत्रमें 'उपग्रह' प  
 रगा है ।

आह धर्माधिमयोऽपकार स आकाशस्य युक्तः सवगतत्वादिति चेत् ? तदयुक्तम् तस्यान्योपकारसद्भावात् । सर्वेषां धर्मादीनां ब्रह्माणामवगाहनं तत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकोलोकविभागाभावः । भूमिजलादीन्मेव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्माधिम्यामिति चेत् ? न साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वाच्चकस्य कायस्य ।

तुल्यबलत्वात्तयोगतिस्थितिप्रतिषेध इति चेत् ? न अप्रेरकत्वात् । अनुपलब्धेन तो स्तः स्रग्विषाणवदिति चेत् ? न सर्वे प्रवाद्यविप्रतिपत्तेः । सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति । अस्माप्रति हेतोरसिद्धेश्च । सवज्ञेन निरसिषयप्रत्यक्षज्ञानवक्षुपा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते । तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि ।

अत्राह यद्यतीन्द्रियमाधर्माधिमयोऽपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवधिष्यते तदनन्तरमुद्दिष्टम्य नमसोऽतीन्द्रियस्याधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

शका—धर्म और अधर्म द्रव्यका जो उपकार है उस आकाशका मान लेना युक्त है क्योंकि आकाश सवगत है ?

समाधान—यह कहना युक्त नहीं है क्योंकि आकाशका अन्य उपकार है । सब धर्माधिक द्रव्योंको अवगाहन देना आकाशका प्रयोजन है । यदि एक द्रव्यके अनेक प्रयोजन मान जात हैं तो लोकाधिकके विभाग का अभाव होता है अतः धर्म और अधर्म द्रव्यका जो उपकार है वह आकाशका मानना युक्त नहीं ।

शका—धर्म और अधर्म द्रव्यके जो प्रयोजन है पृथिवी और जल आदिक ही उनके करनेमें समर्थ हैं, अतः धर्म और अधर्म द्रव्यका मानना ठीक नहीं ?

समाधान—नही क्योंकि धर्म और अधर्म द्रव्य गति और स्थितिके साधारण कारण हैं यह विषय स्पष्ट कहा है । तथा एक काय अनेक कारणोंसे होता है इसलिये धर्म और अधर्म द्रव्यका मानना ठीक है ।

शका—धर्म और अधर्म य दोनों द्रव्य तुल्य बलवाले हैं अतः गतिसे स्थितिका और स्थितिसे गतिका प्रतिषेध होना चाहिये ?

समाधान—नहीं क्योंकि य अप्रेरक है ।

शका—धर्म और अधर्म द्रव्य नहीं हैं क्योंकि उनकी उपलब्धि नहीं होती उसे गणके सींग ?

समाधान—नहीं क्योंकि इसमें सब वादियोंको विवाद नहीं है । तात्पर्य यह है कि जितन भागी हैं वे प्रत्यक्ष और परालक्ष दोनों प्रकारके पदाधिको स्वीकार करते हैं । इसलिये इनका अभाव नहीं किया जा सकता । दूसरे हम जनोके प्रति अनुपलब्धि हेतु अस्ति ह क्योंकि जिनके सातिषय प्रत्यक्ष ज्ञानके दो मत्र बिद्यमान है ऐसे सर्वज्ञ देव सब धर्माधिक द्रव्योंको प्रत्यक्ष जानत हैं और उनके उपदेशसे ध्युतज्ञानी भी जानत है ।

यदि मनीन्द्रिय धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकारके सम्बन्धम अस्तित्व स्वीकार किया जाता है

स्वित्तिश्च गतिस्थिति । गतिस्थिति एव उपग्रहो गतिस्वित्तिरुपग्रहो । धर्माधमयोरिति क्तु निर्देशः । उपक्रियत इत्युपकारः । न पुनरसौ ? गत्युपग्रहं स्थित्युपग्रहश्च । यद्येव द्वित्वनिर्देशः प्राप्नोति ? नय दोषः, सामान्येन व्यत्यादितं शब्दं उपाससस्य शब्दान्तरसम्बन्धे सत्यपि न पूर्वोपात्ता सस्यां जहाति । यथा— साधो कार्यं उपभूतम्' इति ।

x एतदुक्तं भवति—गतिपरिणामिना जीवपुद्गलानां गत्युपग्रहं क्तव्यं धर्मास्तिकायं साधारणाध्ययो जलव मत्स्यगमनं । तथा स्थितिपरिणामिना जीवपुद्गलानां स्थित्युपग्रहं क्तव्यं अधर्मास्तिकायं साधारणाध्ययं पृथिवीघातुरिवाश्वादिस्थिताविति ।

ननु च 'उपग्रहं यद्यनमनधक्त्तु उपकार इत्येव' सिद्धत्वात् । 'गतिस्थिती धर्माधमयोरुपकार इति 'नय दोष' याथासम्पन्नित्यर्थम् 'उपग्रहं वचनम् । धर्माधमयोरिति स्थित्योदकं यथासम्पन्नं भवति एव जीवपुद्गलानां यथासम्पन्नं प्राप्नोति धर्मस्थोपकारो जीवानां गति अधमस्थोपकारः पुद्गलानां स्थितिरिति । तन्नित्युत्थयमुपग्रहवचनं क्रियत ।

उपग्रहः । उपग्रहः शब्द उपकारका पर्यायवाची है जिसकी व्युत्पत्ति 'उपग्रहण' है । गति और स्थिति इन दोनोंमें द्वन्द्व समास है । गति और स्थिति ही उपग्रह है इसलिये 'गतिस्थित्युपग्रहो यत् सूत्रं वचनं कथा है । 'धर्माधमयो यत् कर्ता अपमं पठ्यो निर्देश है । उपकारकी व्युत्पत्ति 'उपक्रियत' है ।

१५ शका—यह उपकार क्या है ?

समाधान—गति उपग्रह और स्थिति उपग्रह यही उपकार है ।

शका—यदि ऐसा है तो द्विवचनका निर्देश प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि सामान्यसे ग्रहण किया गया शब्द जिस सस्याको प्राप्त कर लेता है दूसरे शब्दको सम्बन्ध होमपर भी वह उस सस्याको नहीं छोड़ता । जैसे 'साधो कार्यं उपभूतम्' इस वाक्यमें 'कार्यम्' एकवचन है और 'उपभूते' द्विवचन है । यही बात प्रकृतमें जानना चाहिये ।

२ इस सूत्रका यह अर्थप्राम्य है कि जिस प्रकार मच्छकीके गमनमें जल साधारण निमित्त है उसी प्रकार गमन करते हुए जीव और पुद्गलकोके गमनमें धर्मास्तिकाय साधारण निमित्त है । तथा जिस प्रकार घोड़ा आदिक ठहरनेमें पृथिवी साधारण निमित्त है उसी प्रकार ठहरनेवाले जीव और पुद्गलकोके ठहरनेमें अधर्मास्तिकाय साधारण निमित्त है ।

२५ शका—सूत्रमें 'उपग्रहं' वचन गिरथक है क्योंकि 'उपकार' इसी से काम चल जाता है । यथा—'गतिस्थिती धर्माधमयोरुपकार' ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि धर्माधमकोके निराकरण करनेके लिये 'उपग्रह' पद रखा है । जिस प्रकार धर्म और अधर्मके साथ गति और स्थितिका क्रमसे सम्बन्ध होता है उसी प्रकार जीव और पुद्गलकोके क्रमसे सम्बन्ध प्राप्त होता है । यथा—धर्म इत्येका उपकार जीवको गति है और अधम इत्येका उपकार पुद्गलकोके स्थिति है अतः इसका निराकरण करनेके लिये सूत्रमें 'उपग्रहं' पद रखा है ।

आह धर्मावमयो उपकारः स आकाशस्य युक्तः सवगतत्वादिति चेत् ? तदयुक्तम् तस्यान्योपकारसद्भावात् । सर्वेषां धर्मादीनां द्रव्याणामवगाहनं तत्प्रयोजनम् । एकस्यानेकप्रयोजनकल्पनायां लोकासोकविभागाभावः । भूमिजलादीन्येव तत्प्रयोजनसमर्थानि नार्थो धर्मावमभ्यामिति चेत् ? न साधारणाश्रय इति विशिष्योक्तत्वात् । अनेककारणसाध्यत्वान्चकस्य कायस्य ।

तुल्यबलत्वात्सयोगतिस्थितिप्रतिबन्ध इति चेत् ? न अप्रेरकत्वात् । अनुपलब्धेन तौ स्तः खरविषाणवदिति चेत् ? न सर्वप्रवाद्यविप्रतिपत्तेः । सर्वे हि प्रवादिनः प्रत्यक्षा प्रत्यक्षानर्थानभिवाञ्छन्ति । अस्मा प्रति हेतोरसिद्धेरेषः । सवज्ञेन निरतिशयप्रत्यक्षज्ञानचक्षुषा धर्मादयः सर्वे उपलभ्यन्ते । तदुपदेशाच्च श्रुतज्ञानिभिरपि ।

अत्राह यद्यस्तीन्द्रिययोर्धर्माधमयोरुपकारसम्बन्धेनास्तित्वमवधिप्रयत्ने तन्मन्तरमुद्विष्टस्य नमसोऽस्तीन्द्रियस्माधिगमे क उपकार इत्युच्यते—

शका—धर्म और अधर्म द्रव्यका जो उपकार है उस आकाशका मान लेना युक्त है क्योंकि आकाश सबगत है ?

समाधान—यह कहना युक्त नहीं है क्योंकि आकाशका अन्य उपकार है। सब धर्मादिक द्रव्योंको अवगाहन सेना आकाशका प्रयोजन है। यदि एक द्रव्यक अनेक प्रयोजन माने जात है तो लोकासोकके विभाग का अभाव होता है अतः धर्म और अधर्म द्रव्यका जो उपकार है वह आकाशका मानना युक्त नहीं है।

शका—धर्म और अधर्म द्रव्यका जो प्रयोजन है पृथिवी और जल आदिक ही उनका करनेमें समर्थ है अतः धर्म और अधर्म द्रव्यका मानना ठीक नहीं ?

समाधान—नहीं क्योंकि धर्म और अधर्म द्रव्य गति और स्थिति के साधारण कारण हैं यह विषय रूपस कहा है। तथा एक कार्य अनेक कारणोंसे होता है इसलिये धर्म और अधर्म द्रव्यका मानना ठीक है।

शका—धर्म और अधर्म य दोनो द्रव्य तुल्य बलवान् हैं अतः गतिसम्बन्धिका और स्थितिसम्बन्धिका प्रतिबन्ध होना चाहिये ?

समाधान—नहीं क्योंकि य अप्ररक है।

शका—धर्म और अधर्म द्रव्य नहीं हैं क्योंकि उनको उपलब्ध नहीं होती अतः गणेश मोग ?

समाधान—नहीं क्या कि इसमें सब धर्मादिकों का विचार नहीं है। तात्पर्य यह है कि जितने धर्म हैं वे प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकारके धर्मादिकों को स्वीकार करते हैं। इसलिये इनका अभाव नहीं किया जा सकता। दूसरे हम जनकों प्रति अनुपलब्ध हेतु सिद्ध है क्योंकि जिनके सातिशय प्रत्यक्ष ज्ञानरूपी नेत्र विद्यमान है एम सबसक सब धर्मादिक द्रव्योंको प्रत्यक्ष जानते हैं और उनका उपलब्धसे श्रुतज्ञानी भी जानते हैं।

यदि अतीन्द्रिय धर्म और अधर्म द्रव्यका उपकारक सम्बन्धम अस्तिन्व स्वीकार किया जाता है

## आकाशस्यावगाह ॥ १८ ॥

‘उपकार इत्यनुवृत्तते । जीवपुद्गलादीनामवगाहिनामवकाशदानमवगाह आकाशस्योपकारो वदितव्यः । आह जीवपुद्गलानां क्रियावतामवगाहिनामवकाशदान युक्तम् । धर्मास्तिकायादयः पुनर्निष्क्रिया नित्यसम्बन्धस्तयोः कथमवगाह इति चत् ? न उपचारस्तत्सिद्धे । यथा गमनाभावेऽपि सवगतमानाशम् इत्युच्यते सवत्र सद्भावात् एव धर्माधर्मावपि अवगाहक्रियाभावेऽपि सर्वत्र व्याप्तिदशनादवगाहिनाविर्यु पचयते । आह यद्यवकाशदानमस्य स्वभावो षड्यादिभिर्लोप्टादीनां भिस्त्यादिभिर्गोवादीनां च व्याघातो न प्राप्नोति । वृष्यते च व्याघातः । तस्मादन्यावकाशदान हीयते इति ? नय दोषः वज्रलोप्टादीनां स्थूलानां परस्परव्याघात इति नास्यावकाशदानसामर्थ्यं हीयते तत्रावगाहिनामेव व्याघातात् । षड्यादयः पुनः स्थूलत्वात्परस्पर प्रत्यवकाशदान न कुर्वन्तीति नासावाकाशदोषः । ये स्रष्टु पुद्गलाः सूक्ष्मास्त परस्पर

नो इनक अनन्तर जो अतीन्द्रिय आकाश द्रव्य कहा हू ऐसा कौन-सा उपकार है जिससे उसका ज्ञान होता है ? अब इसी बातके बतलानके लिये भागका सूत्र कहते हैं—

अवकाश देना आकाशका उपकार है ॥ १८ ॥

इस सूत्रमें ‘उपकार’ इस पदकी अनुवृत्ति होती है । अवगाहन करनेवाले जीव और पुद्गलोंको अवकाश देना आकाशका उपकार जानना चाहिये ।

शका—अवगाहन स्वभाववाले जीव और पुद्गल क्रियावान् हू इसलिये इनको अवकाश देना युक्त है परन्तु धर्माधिक द्रव्य निष्क्रिय और सदा सम्बन्धवाले हैं इसलिये उनका अवगाह कस वन सकता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि उपचारसे इसकी सिद्धि होती है । जैसे गमन नहीं करने पर भी आकाश सवगत कहा जाता है क्योंकि वह सर्वत्र पाया जाता है इसी प्रकार यद्यपि धर्म और अधर्म द्रव्यमें अब गारूप क्रिया नहीं पाई जाती तो भी आकाशधर्म से सवत्र व्याप्त है अतः अब अवगाही है ऐसा उपचार कर लिया जाता है ।

शका—यदि अवकाश देना आकाशका स्वभाव है तो ब्रह्मादिकसे छोड़ा आदिकका और भीत आदिकसे गाय आदिकका व्याघात नहीं प्राप्त होता है किन्तु व्याघात तो देना जाता है इससे मामूम होता है कि अवकाश देना आकाशका स्वभाव नहीं ठहरता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि ब्रह्म और छोड़ा आदिक स्थूल पदार्थ हैं इसलिये उनका आपसमें व्याघात होता है अतः आकाशकी अवकाश देने रूप सामर्थ्य नहीं नष्ट होती । यहाँ जो व्याघात दिखाई देता है वह अवगाहन करनेवाले पदार्थोंका ही है । तात्पर्य यह है कि ब्रह्मादिक स्थूल पदार्थ हैं इसलिये वे परस्पर अवकाश नहीं देते यह कुछ आकाशका दोष नहीं है । हाँ जो पुद्गल सूक्ष्म होते हैं वे परस्पर अवकाश देते हैं ।

प्रत्यवकाशदानं कुर्वन्ति । यद्येव नेदमाकाशस्यासाधारणं लक्षणम् हृत्तरेषामपि तत्सद्भावादिति तत्र सत्यपदार्थानां साधारणावगाहनहेतुत्वमस्यासाधारणलक्षणमिति नास्ति दोषः । अलोकाकाशे तद्भावभाव इति चेत् न स्वभावापरित्यागात् । उक्तं आकाशस्योपकारः । अथ तदनन्तरोद्दिष्टानां पुद्गलानां क उपकार इत्यत्रोच्यते—

शरीरवाङ्मनः प्राणापाना पुद्गलानाम् ॥ १९ ॥

इदमयुक्तं वतते । किमत्रायुक्तम् ? पुद्गलानां क उपकार इति परिप्रश्ने पुद्गलानां लक्षणमुच्यते शरीरादीनि पुद्गलमयानीति ? न तदयुक्तम् पुद्गलानां लक्षणमुत्तरत्रैव वक्ष्यते । इदं तु जीवान् प्रति पुद्गलानामुपकारप्रतिपादनायमेवेति उपकारप्रकरणे उच्यते ।

शरीराण्युक्तानि । औदारिकादीनि सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षाणि । तद्बुद्ध्यापादितवृत्तीन्त्यु पचयशरीराणि कानिचित्प्रत्यक्षाणि कानिचिदप्रत्यक्षाणि । एतेषां कारणभूतानि कर्माणि

शका—यदि ऐसा ह तो यह आकाशका असाधारण लक्षण नहीं रहता क्योंकि दूसरे पदार्थों में भी इसका सद्भाव पाया जाता है ?

समाधान—नहीं क्योंकि आकाश द्रव्य सब पदार्थोंको अवकाश देनेमें साधारण कारण ह यही इसका असाधारण लक्षण है इसलिये कोई दोष नहीं ह ।

शका—अलोकाकाशमें अवकाशान्न रूप स्वभाव नहीं पाया जाता इससे ज्ञात होता ह कि यह आकाशका स्वभाव नहीं है ?

समाधान—नहीं क्योंकि कोई भी द्रव्य अपन स्वभावका त्याग नहीं करता ।

आकाश द्रव्यका उपकार कहा । अब उसके अनन्तर कहे गये पुद्गलोंका क्या उपकार है यह वक्त कानेके लिये आगका सूत्र कहत ह—

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलोंका उपकार है ॥ १९ ॥

शका—यह अयुक्त ह ?

प्रतिपादना—क्या अयुक्त ह ?

शका—पुद्गलोंका क्या उपकार ह यह प्रश्न था पर उसके उत्तरमें शरीरादिक पुद्गलमय ह इस प्रकार पुद्गलोंका लक्षण कहा जाया ह ?

समाधान—यह अयुक्त नहीं ह क्योंकि पुद्गलोंका लक्षण आग कहा जाया यह सूत्र तां जीवोंके प्रति पुद्गलको उपकारका कथन करनेके लिये ही आया ह अतः उपकार प्रकरणमें ही यह सूत्र कहा ह ।

औद्योगिक आदि पदार्थों शरीराका कथन पहले कर माय है । व सूक्ष्म हानस इन्द्रियगोचर नहीं है । किन्तु उनके उदयम जो उपचय शरीर प्राप्त होते हैं उनमेंसे कुछ भौतिक इन्द्रियगोचर ह और कुछ

(१) अक्षमिति परे—आ दि १ दि २ । (२)—उच्यते भवता शरीर—शु । (३)—एव व्यापारमगच्छत्तं वन्न पुष्पमा इत्यत्र वक्ष्यते मु । (४)—गदित ( तदुत्पत्तिरिति ) वृत्ती—शु ।

प्यपि शरीरग्रहणेन गृह्यन्ते । एतानि पौद्गलिकानिति कृत्वा जीवानामुपकारे पुद्गला प्रवृत्तन्ते । म्यामत कामणमपौद्गलिकम् अनाकारत्वाद् । आकारवता हि औदारिकादीनां पौद्गलिकत्व युक्तमिति ? तत्र तदपि पौद्गलिकमेव तद्विपाकम्य मूर्तिमत्सम्बन्धनिमित्तत्वात् । दृश्यते हि व्रीह्यपादीनामूदकादिद्रव्यसम्बन्धप्रापितपरिपाकानां पौद्गलिकत्वम् । तथा कामणमपि गृहकष्टकादिमूर्तिमद्द्रव्योपनिपाते सति विपच्यमानत्वात्पौद्गलिकमित्यवसेयम् ।

वाग द्विविधा द्रव्यवाग् भाववागिति । तत्र भावनाक सावद्वीर्यान्तरायमतिश्रुतमानावरणअयापशमाङ्गोपाङ्गनामलाभनिमित्तत्वात् पौद्गलिकी । तदभावे तद्वृत्त्यभावात् । तस्मान्मध्योपेतेन त्रिव्यावताऽऽत्मना प्रेयमाणा पुद्गला वान्त्वन विपरिणमन्त इति द्रव्यवागपि पौद्गलिकी, श्रोत्रेन्द्रियविषयत्वात् । इतरेन्द्रियविषया कस्मान्न भवति ? तद्ग्रहणायोग्यत्वात् । घ्राणग्राह्ये गन्धद्रव्ये रसाद्यनुपलब्धवत् । अमूर्ता वागिति चेत् ? न मूर्तिमद्ग्रहणावरोधव्याघाताभिभवादिदशानामूर्तिमत्त्वसिद्धेः ।

इन्द्रियातीत हे ! इन पाँचों शरीरोंके कारणभूत जो कर्म हैं उनका भी शरीर पक्क ग्रहण करनेस ग्रहण हो जाता है । ये सब शरीर पौद्गलिक हैं ऐसा मान कर बीबीका उपकार पुद्गल करते हैं यह कहा है ।

शका—आत्माके समान कामण शरीरका कोई आकार नहीं पाया जाता इसलिये उसे पौद्गलिक मानना युक्त नहीं । हा जो औदारिक आदिक शरीर आकारवाले हैं उनको पौद्गलिक मानना युक्त है ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि कामण शरीर भी पौद्गलिक ही है क्योंकि उनका फल मूर्तिमान् पदार्थोंके सम्बन्धसे होता है । यह तो स्पष्ट विचार देता है कि जलादिकके सम्बन्धसे पत्तन वाले धान आदि पौद्गलिक हैं । उसी प्रकार कामण शरीर भी गूड़ और कोठे आदि मूर्तिमान् पदार्थोंके मिलने पर फल वल हैं इससे ज्ञात होता है कि कामण शरीर भी पौद्गलिक है ।

वचन दो प्रकारका है—द्रव्यवचन और भाववचन । इनमेंसे भाववचन बीर्यान्तराय और मति ज्ञानावरण तथा श्रुतज्ञानावरण कर्मोंके लयोपशम और आंगोपांग नामकर्मके निमित्तसे होता है इसलिये वह पौद्गलिक है क्योंकि पुद्गलके अभावमें भाववचनका सम्बन्ध नहीं पाया जाता । शक्ति इस प्रकारकी सामर्थ्यम युक्त त्रिव्यावाले आत्माके द्वारा प्ररित हो कर पुद्गल वचनरूपसे परिणमन करते हैं इसलिये द्रव्य वचन भी पौद्गलिक है । दूसरे द्रव्यवचन शोक इन्द्रियके विषय हैं इससे भी ज्ञात होता है कि वह पौद्गलिक हैं ।

शका—वचन इनर इन्द्रियोंके विषय क्यों नहीं होत ?

समाधान—घ्राण इन्द्रिय गन्धको ग्रहण करती है उसमें जिस प्रकार रसादिककी उपलब्धि नहीं होती उसी प्रकार इनर इन्द्रियोंमें वचनके ग्रहण करनेकी योग्यता नहीं है ।

शका—वचन अमूर्त है ?

समाधान—नहीं क्योंकि वचनका मूल इन्द्रियोंके द्वारा ग्रहण होता है वे मूल भीग आदिके द्वारा

मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति । भावमनस्तावत्सर्वद्रव्योपयोगलक्षणं पुद्गल-  
 लवलम्बनत्वात् पौद्गलिकम् । द्रव्यमनश्च ज्ञानावरणवीर्यान्तरायक्षयापशमाङ्गोपाङ्गना-  
 मलाभप्रत्यया गुणदोषविचारस्मरणादिप्रणिधानाभिमुखस्यात्मनोऽनुप्राहका पुद्गला-  
 मनस्त्वेन परिणता इति पौद्गलिकम् । कश्चिदाह मनो द्रव्यान्तरं रूपादिपरिणामरहित-  
 मणुमात्रं तस्य पौद्गलिकत्वमयुक्तमिति ? तदयुक्तम् । अथम् ? उच्यते—तन्निन्द्रियेणात्मना  
 च सम्बद्धं वा स्यादसम्बद्धं वा ? यद्यसम्बद्धम् तन्नात्मन उपकारकं भवितुमर्हति इन्द्रियस्य  
 च साक्षिण्यं न करति । अथ सम्बद्धम् एकस्मिन् प्रदेशे सवद्यं सत्तदणु इतरेषु प्रदेशेषु  
 उपकारं न कुर्यात् । अदृष्टवशादस्य अलातषक्रत्वपरिभ्रमणमिति चेत् ? न तस्मा-  
 मर्थाभावात् । अमृतस्यात्मनो निष्क्रियस्यादृष्टो गुण स निष्क्रिय सन्नयत्र  
 क्रियारम्भे न ममथ । दृष्टो हि वायुद्रव्यविशेष क्रियावान्स्पशवान्प्राप्तवनस्पती  
 परिस्पन्दहेतुस्तद्विपरीतलक्षणत्वात्तन्मिति क्रियाहस्तुरवाभावः ।

एकं जाते ह प्रतिबुद्धं वायुं भाति च द्वारा जनका भ्याभात दद्या जाता ह तथा अन्यं वाग्णोस जनका  
 भविमन्नं भाति दद्या जाता ह इत्यसं दध्यं मृतं सिद्धं होत ह ।

मन दो प्रकारका ह—द्रव्यमन और भावमन । स्थिति और उपयोग-रूपण भावमन पुद्गलको  
 आलम्बनम होता ह इसलिये पौद्गलिक ह । तथा ज्ञानावरण और वीर्यान्तरायक क्षयापशमने तथा  
 आंगोपांग नामकमक निमित्तम जो पुद्गल गुण दोषका विचार और स्मरण आदि उपयोगक सम्मुख  
 हुए आत्माक उपकारक ह ई हो मन रूपमे परिणत होत ह अतः द्रव्यमन भी पौद्गलिक ह ।

दशा—मन एक स्वतन्त्र द्रव्य ह । वह रूपादि रूप परिणमनमे रहित ह और अपुमात्र ह इसलिये  
 उम पौद्गलिक मानना अयुक्त ह ?

समाधान—दशाकारका इस प्रकार कहना अयुक्त ह । गुलामा इस प्रकार ह—वह मन आत्मा  
 और इन्द्रियमे सम्बद्ध ह या असम्बद्ध । यदि असम्बद्ध ह तो वह आत्माका उपकारक नहीं हो सकता  
 और इन्द्रियाकी सहायता भी नहीं कर सकता । यदि सम्बद्ध ह तो जिस प्रकारमें वह मन सम्बद्ध ह  
 उम प्रकारमें छोड़ कर एतर प्रकारका उपकार नहीं कर सकता ।

दशा—अदृष्ट नामका एक गुण ह उमके बगलमे यह मन अनातकतरे ममाने मर प्रयोगमें  
 प्रयुक्त रहता ह ?

समाधान—नहीं क्योंकि अदृष्ट नामके गुणमें हम प्रकारकी सामर्थ्य नहीं पाइ जाते । मन अमन  
 और निष्क्रिय आत्माका अदृष्ट गुण ह । अतः यह गुण भी निष्क्रिय ह अतलिये अन्यत्र क्रियाका आरम्भ  
 करनेमें असमर्थ ह । दद्या जाता ह त्रि वायु नामके लिये विना स्वयं क्रियावादा और स्वभावका कारण  
 ही पतनपरिमै परिणमना कारण होता ह परन्तु यह अदृष्ट उमके विरुद्ध सम्भवताका ह इसलिये  
 यह क्रियाका हेतु नहीं हो सकता ।



धीरान्तरायज्ञानावरणक्षयोपशमाङ्गोपाङ्गनामोदयापेक्षिणाऽऽत्मना उत्स्यमानः  
कोष्ठघो वायुरुच्छ्वाससक्षण प्राण इत्युच्यते । तेनवात्मना वाह्यो वायुरभ्यन्तरीक्रि-  
यमाणो निश्वासलक्षणोऽपान इत्याख्यायते । एव तावप्यात्मानुप्राहिणौ,  
जीवितहेतुत्वात् ।

तथा मनःप्राणापानानां मूर्तिमत्त्वमवसेयम् । कुत ? मूर्तिमद्भिः प्रतिघातादिदत्त-  
नात् । प्रतिभयहृतुभिरशनियातादिभिर्मनसः प्रतिघातो दृश्यते । सुरादिभिश्चाभिभवः ।  
हस्ततल्पटादिभिरास्यसवरणास्त्राणापानयोः प्रतिघात उपलभ्यते । श्लेष्मणा चाभिभवः ।  
न चामूर्तस्य मूर्तिमद्भिः प्रतिघातादयः स्युः । अत एवात्मास्ति त्वसिद्धिः । यथा यन्त्रप्रतिमा  
चेष्टित प्रयोजनरहितस्तिव गमयति तथा प्राणापानादिकर्मापि त्रिव्याघन्तमात्मानं साभयति ।

किमेतावानेव पुद्गलकृत उपकार आहोस्विदन्योऽप्यस्तीत्यत आह—

सुसद्गुणजीवितमरणोपग्रहादत्र ॥ २० ॥

सदसद्वेषो दयेऽन्तरङ्गहेतौ सति बाह्यधर्म्यान्पिरिपाकनिमित्तवशादुत्पाद्यमानः प्रीति-  
परितापस्यः परिणामः सुसद्गुणमित्याख्यायते । भयघारणकारणायुरास्यकर्मादयाद् भय

धीरान्तराय और ज्ञानावरणक क्षयोपशम तथा आंगोपांग नामकर्म क उदयकी अपेक्षा रहनेवाला  
आत्मा कोष्ठगत जिस वायुको बाहर निकालता है उच्छ्वाससक्षण उस वायुको प्राण कहते हैं । तथा  
वही आत्मा बाहरी जिस वायुको भीतर करता है निश्वासलक्षण उस वायुको अपान कहते हैं । इस  
प्रकार ये प्राण और अपान भी आत्माका उपकार करते हैं क्यों कि इनसे आत्मा जीवित रहता है ।

ये मनः प्राण और अपान मूर्त हैं क्योंकि दूसरे मूर्तपदार्थोंके द्वारा इनका प्रतिघात आदि देखा जाता  
है । जैसे-प्रतिभय पश करनेवाले बिजली पात आदिके द्वारा मनका प्रतिघात होता है और सुरा आदिके  
द्वारा अभिभव । तथा हस्ततल और श्लेष्म आदिके द्वारा मुसके डक लेनेसे प्राण और अपानका प्रतिघात  
होता है और कफके द्वारा अभिभव । परन्तु अमूर्तका मूर्त पदार्थोंके द्वारा अभिघात आदि नहीं हो सकता  
इससे प्रतीत होता है कि ये सब मूर्त हैं ।

तथा इसीसे आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि होती है । जैसे मन्त्रप्रतिमाकी चेष्टाएँ अपने प्रयोजकके  
अस्तित्वका ज्ञान कराती हैं उसी प्रकार प्राण और अपान आदि रूप कार्य भी त्रिव्याघाल आत्माके  
अस्तित्वक साधक हैं ।

क्या पुद्गलोंका इतना ही उपकार है या और भी उपकार है इस बातके बतलानेके लिये अब  
आगेका सूत्र कह्य है—

सुख, दुःख जीवन और मरण ये भी पुद्गलोंके उपकार हैं ॥ २० ॥

सामा और असात्तास्य अन्तरंग हेतुक रहते हुए बाह्य धर्म्यादिके परिपाकके निमित्तसे जो प्रीति  
और परितापस्य परिणाम उत्पन्न होते हैं वे सुख और दुःख कहे जाते हैं । पर्यायके कारण करनेमें कारण

(१)-नेत्रेणा-आ, वि १ वि २। (२) कुत ? प्रतिभा-ता । (३) हस्ततल्पटादि-ता, ता ५ ।  
(४)-चेष्टित-नु ।

स्थितिमादधानस्य जीवस्य पूर्वोक्तप्राणापानत्रिमाविशेषाव्युच्छेदो जीवितमित्युच्यते । तदुच्छेदो मरणम् । एतानि मुक्तादीनि जीवस्य पुद्गलकृत उपकारः । मूर्तिमद्वेतुसन्निधान सति तदुत्पत्तेः । उपकाराधिकारात् 'उपग्रह वचनमनयकम् ? नानयकम् । स्वोपग्रह प्रदशनायमिदम् । पुद्गलानां पुद्गलकृत उपकार इति । तथा—कांस्यादीना भस्मादि भिज्जलादीनां कतकान्निभिरयः प्रभृतीनामुदकादिभिरुपकारः क्रियते । च दारु किमय ? समुच्चयाथ । अन्योऽपि पुद्गलकृत उपकारोऽस्तीति समुच्चयते । यथा शरीरगणि एव चक्षुरादीनीन्द्रियाण्यपीति ।

एवमाद्यमजीवकृतमुपकारः प्रदस्य जीवकृतोपकारप्रदशनायमाह—

परस्पररोपग्रहो जीवानाम् ॥ २१ ॥

'परस्पर'शब्दः कमव्यतिहारे धतते । कमव्यतिहारश्च त्रियाव्यतिहारः । परस्पर स्पोपग्रह परस्पररोपग्रह । जीवानामुपकारः । कः पुनरसी ? स्वामी मृत्युः, आचाय

मृत आयुश्च उदयसे भवतिष्ठतिको धारण करनवाल जीवक पूर्वोक्त प्राण और अपानरूप त्रिमा विधापका विच्छेद नहीं होना जीवित ह । तथा उसका उच्छेद मरण ह । य मुद्यानिक जीवक पुद्गलकृत उपकार ह । क्यों कि मृत कारणोंक रहने पर ही इनकी उत्पत्ति होती है ।

पक्ष—उपकारका प्रकरण होना मूत्रमें उपग्रह दारुका प्रयोग करना निष्फल ह ?

समाधान—निष्फल नहीं ह । क्योंकि स्वतः क उपकारक दिग्गलानक लिय मूत्रमें उपग्रह दारुका प्रयोग किया है । पुद्गलका भी पुद्गलकृत उपकार हाया ह । यथा—कांस आनिका राग आनिक द्वारा अम आनिका कतक आदिक द्वारा और लोह आदिका जल आदिक द्वारा उपकार किया जाता ह ।

पक्ष—मूत्रमें च दारु किस लिय दिया ह ?

समाधान—समुच्चयक लिय । पुद्गलकृत और भी उपकार ह । इसक समुच्चयक लिय मूत्रमें 'च दारु' दिया ह । जिस प्रकार शरीर आदिक पुद्गलकृत उपकार ह उसी प्रकार श्वेतु आदि इन्द्रियां भा पुद्गलकृत उपकार ह ।

उस प्रकार अजीवकृत उपकारका दिग्गलानक अथ जावकृत उपकारक दिग्गलानक लिय आरुका मूत्र कहत ह—

परस्पर निमित्त होना यह जीवोंका उपकार है ॥ २१ ॥

परस्पर यह दारु कम व्यतिहार अपयम रचना ह । और कमव्यतिहारका अय त्रियाव्यतिहार ह । परस्परका उपग्रह परस्पररोपग्रह ह । यह जीवोंका उपकार ह ।

पक्ष—कह क्या ह

समाधान—श्यामः और मक्क तथा आचाय और गिण्य इत्यादि काम चलन करना परस्पररोपग्रह

(१)—श्याम । कुत ? मूर्ति—च आ ।

शिष्य इत्येवमादिभावेन धृति परस्पररोपग्रह । स्वामी तावद्वित्तत्यागादिना भृत्यानामुप  
 कारे वसते । भृत्याश्च हितप्रतिपादनेनाहितप्रतिपेघेन च । आचार्य उभयलोकफलप्रदो  
 पदेशवर्षनेन तदुपदेशविहितक्रियानुष्ठापनेन च शिष्याणामनुग्रहे वसते । शिष्या अपि  
 तदानुकूल्यवृत्त्या आचार्याणाम् । उपकाराधिकारे पुन 'उपग्रह' वचन निमग्नम् ? पूर्वोक्त  
 सुखादिचतुष्टयप्रवधानाय पुन 'उपग्रह' वचन क्रियते । सुखादीन्यपि जीवानां जीवकृत  
 उपकार इति ।

ह । स्वामी तो घन आदि दकर सदकका उपकार करता है और सबक हितका कषन करक तथा अहितका  
 निषेध करक स्वामीका उपकार करता ह । आचार्य दोनों लोकमें सुखदायी उपदेश द्वारा तथा उस  
 उपदेशके अनुसार क्रियामें लगाकर शिष्योंका उपकार करता ह और शिष्य भी आचार्यके अनुकूल  
 प्रवृत्ति करके आचार्यका उपकार करत हैं ।

शका—उपकारका अधिकार है इसलिए सूत्रमें फिर से 'उपग्रह' शब्द किसलिये दिया है ?

समाधान—पिछले सूत्रमें जो सुखादिक चार कह आय ह उनके दिसलानेके किये फिर से 'उपग्रह'  
 शब्द दिया ह । तात्पर्य यह है कि सुखादिक भी जीवोंके जीवकृत उपकार हैं ।

विद्यापात्र—यहाँ उपकारक प्रकरणमें कौन द्रव्य अथवा कया उपकार करता ह इस बातका निर्देश

किया गया ह इसलिए विचारणीय प्रश्न यह ह कि क्या अन्य द्रव्य अपनसे भिन्न दूसर द्रव्यका भला कुछ  
 कुछ कर सकता है । यदि कर सकता है यह मान लिया जाय तो जनदशानमें ईश्वरवादका निषेध क्यों  
 किया गया है ? यह तो मानी दुश् वात है कि एक द्रव्यक जो गुण और पर्याय होत है व उस छोड़कर अन्य  
 द्रव्यमें प्रविष्ट नही होत । इसलिए एक द्रव्य अपनसे भिन्न दूसरका उपकार करता ह यह विचारणीय  
 हो जाता है । जिन दर्शनोंने ईश्वरवादको स्वीकार किया ह व प्रत्येक कायके होनेमें प्रक रूपस इश्वर

को निमित्त कारण मानते हैं । उम्मा कहना है कि यह प्राणी अज्ञ ह अपने सुख दुःख का स्वामी नही ह ।  
 ईश्वरकी प्रेरणावश स्वयं जाता ह या नरक । इसमें स्वर्ग और नरक आदि गतियोंकी प्राप्ति जीवको  
 होती ह यह बात स्वीकार की गई ह तथापि उनकी प्राप्तिमें इश्वरका पूरा हाथ रहता ह । अगर ईश्वर  
 चाहे तो जीवको इन गतियोंमें जानेसे बचा भी सकता ह । यदि इसी अमिप्रायस एक द्रव्य को अन्य  
 द्रव्यका उपकारक माना जाता है तब तो इश्वरवादका निषेध करना न करनेके बराबर होता है और यदि

इस उपकार प्रकरणका कोई भिन्न अमिप्राय ह तो उसका दार्शनिक विस्मयण होगा अर्यावश्यक है ।  
 आगे सक्षपम इसी बातपर प्रकाश डाला जाता ह—

सोचमें जितने द्रव्य ह व सब अपने अपने गुण और पर्यायों को लिये हुए हैं । द्रव्यवृष्टिसे वे अनन्त  
 काल पहले जैसे थे आज भी जैसे ही ह और आगे भी बस ही बने रहेंगे । किन्तु पर्यायवृष्टिसे वे  
 सदा परिवर्तनशील ह । उनका यह परिवर्तन द्रव्यकी भर्थादाके भीतर ही होता ह । प्रत्येक द्रव्यका यह  
 स्वभाव है । इसलिए प्रत्येक द्रव्यमें जो भी परिणाम होता है वह अपनी अपनी योग्यतानुसार ही होता

आह यद्यवश्य सतोपकारिणा भवितव्यम् सद्य कालोऽभिमतस्तस्य क उपकार  
इत्यत्रोच्यते—

वतमापरिणामक्रिया परस्वापरत्वे च कालस्य ॥ २२ ॥

वृत्तेर्णिजन्तात्वमणि भावे वा युटि स्त्रीलिङ्गे वतनेति भवति । वस्यते<sup>१</sup> वतनमात्र  
वा वतना इति । धर्मादीनां द्रव्याणा स्वपर्यायिनवृत्ति प्रति स्वात्मनव वतमानानां बाह्यो  
पग्रहादिना तद्वृत्त्यभावात्प्रवतनोपलक्षित काल इति कृत्वा वतना कालस्यापकार ।  
को णिजय ? वतते द्रव्यपर्यायस्तस्य वतयिता काल । यद्येव कालस्य क्रियावत्त्व प्राप्नोति ।  
यथा शिष्योऽधीते उपाध्यायोऽध्यापयतीति ? नप दोष निमित्तमात्रेऽपि हेतुकतु व्यप

हे । समारी जीव पुद्गल द्रव्यस यथा हुआ है यह भी अपनी योग्यताक कारण ही और कालान्तरमें  
मुक्त होना ह यह भी अपनी योग्यतानुसार ही । तथापि प्रत्येक द्रव्यकी इस योग्यतानुसार कायक हानमें  
बाह्य पदार्थ निमित्त माना जाता ह । उस बालकमें पढ़नकी योग्यता ह इसलिए उसे अध्यापक व पुस्तक  
आदिना निमित्त मिलन पर वह पढ़कर विद्वान् बनता है इसलिए य अध्यापक आदि उसके निमित्त  
हैं । पर उरबत विचार करने पर ज्ञात होता है कि यहाँ कुछ अध्यापक या पुस्तक आदिने बालककी  
आत्मामें बुद्धि नहीं उत्पन्न कर दी । यदि इन बाह्य पदार्थोंमें बुद्धि उत्पन्न करनकी योग्यता होती तो  
जितने बालक उम अध्यापक के पास पढ़ते हैं उन सबमें बहु बुद्धि उत्पन्न कर सकता था । पर दत्ता यह  
जाता ह कि कोई मूर्ख रहता ह कोई अल्पज्ञानी हो पाता ह और कोई महाज्ञानी हो जाता ह । एक ओर  
तो अध्यापकके बिना बालक पढ़ नहीं पाता और दूसरी ओर यदि बालकमें बुद्धिक प्राप्तिवाही होनेकी  
योग्यता नहीं ह तो अध्यापकक लाभ चष्टा करने पर भी बहु मूर्ख बना रहता ह । इसमें ज्ञात जाता है  
कि कार्यकी उत्पत्तिमें अध्यापक निमित्त तो ह पर वह प्रेरक नहीं । इदरकी मान्यतामें प्रकृतापर बंध  
दिया गया ह और यहाँ उपकार प्रकरणमें निमित्तको तो स्वीकार किया गया ह पर उसे प्रेरक नहीं माना  
ह । यहाँ उपकार प्रकरणके प्रथित करनेका यही अभिप्राय ह ।

यदि एता ह कि जो है उस अवश्य उपकारी होना चाहिय तो काल भी मद्दूष माना गया ह इसलिये  
उमका क्या उपकार है इमी बातक वदल्लामके लिये अब आगेका मूत्र कहते ह—

वतना, परिणाम, क्रिया, परस्व और अपरस्व य कालक उपकार हैं ॥ २२ ॥

गिजन्तमें वृत्ति घातुमें कम या भावमें युद् प्रत्ययक करनेपर स्त्रीलिंगमें वतना पद वतना ह ।  
जिनकी व्युत्पत्ति बन्धन या वतनमात्रम् हाती ह । यद्यपि धर्मादिक द्रव्य अपनी नवीन पर्याय क  
उत्पन्न करनेमें स्वय प्रवत्त होत ह ता भी बहु बाह्य महकारी कारण क बिना नहीं हो सकती इसलिये  
उम प्रवर्तनेवाया बाल है ऐसा मान कर वतना कालका उपकार कहा ह ।

पक्षा—गिजर्व क्या ह ?

ममाधान—द्रव्यकी पर्याय बल्लनी ह और उम बल्लानवाया बाल ह ।

पक्षा—यदि एता ह ता काल श्रियावान् द्रव्य प्राप्त होता ह ? जम दिव्य पढ़ना ह और उपाध्याय

(१)—वत वतने वतन—मु ।

देशो दृष्टः । यथा "कारिणोऽग्निरभ्यापयति ।" एव कालस्य हेतुकत्वात् । स कथं काल इत्यवसीयते ? समयादीनां क्रियाविशेषाणां समयादिभिर्निर्धर्यमानानां च पाप्मादीनां समय पाक इत्येवमादिस्वसंज्ञास्त्रिसदृशत्वात् । अपि समय काल ओदनपाकं काल इति अध्यागोप्यमाण कालव्यपदेशे सद्व्यपदेशनिमित्तस्य कालस्यास्तित्वं गमयति । कुत ? गौणस्य मुख्यापेक्षत्वात् ।

द्रव्यस्य पर्यायो घर्मान्तरनिवृत्तिघर्मान्तरोपजननरूप अपरिस्पन्दात्मकं परिणाम । जीवस्य श्रोत्रादि, पुद्गलस्य वर्णादि । घर्माघर्माकाशानामगुरुधुगुणवृद्धिहानिकृत ।

क्रिया परिस्पन्दात्मिका । सा द्विविधा, प्रायोगिकवस्तुसिद्धमेवात् । तत्र प्रायोगिकी पकटादीनाम् वस्तुसिद्धी मेघादीनाम् ।

परत्वापरत्वे क्षेत्रकृते कालकृते च स्तः । तत्र कालोपकारप्रकरणकालकृते गृह्यते । त एते वतनादय उपकारा कालस्यास्तित्वं गमयन्ति । ननु वतना ग्रहणमेवास्तु, पवाता ह यहाँ उपाध्याय क्रियावान् इत्यर्थः ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि निमित्तमात्रमें भी हेतुकर्ता रूप व्यपदेश देखा जाता है । जस कबेकी अग्नि पढ़ाती है । यहाँ कबकी अग्नि निमित्तमात्र है । उसी प्रकार काल भी हेतुकर्ता है ।

घका—यह काल है यह कस जाना जाता है ?

समाधान—समयादिक क्रियाविशेषोंकी और समयादिकके द्वारा होनेवाले पाक आदिककी समय पाक इत्यादिक रूपसे अपनी अपनी रीतिक संज्ञाक रहते हुए भी उसमें जो समय काल ओदनपाककाल इत्यादि रूपसे काल संज्ञाका अध्यारोप होता है वह उस संज्ञाक निमित्तभूत मुख्यकालक अस्तित्वका ज्ञान कराता है क्योंकि गौण व्यवहार मुख्यकी अपेक्षा रहता है ।

एक धमकी निवृत्ति करने दूसरे धर्मक पैदा करने रूप और परिस्पन्दसे रहित द्रव्यकी जो पर्याय है उसे परिणाम कहते हैं । यथा जीवके श्रोत्रादि और पुद्गलके वर्णादि । इसी प्रकार धम धर्म आकाश और काल द्रव्यमें परिणाम होता है जो अगुरुधु गुणकी वृद्धि और हानि से उत्पन्न होता है ।

द्रव्यमें जो परिस्पन्दरूप परिणाम होता है उसे क्रिया कहते हैं । प्रायोगिक और वस्तुसिद्धके भासे वह दो प्रकारकी है । उनमेंसे गाढी आदिकी प्रायोगिकी क्रिया है और मघादिककी वस्तुसिद्धी ।

परत्व और अपरत्व दो प्रकारका है—क्षेत्रकृत और कालकृत । प्रकृतमें कालकृत उपकारका प्रकरण है इसलिये कालकृत परत्व और अपरत्व लिये गये हैं । ये सब वतनादिक उपकार कालक अस्तित्वका ज्ञान कराते हैं ।

(१) कारिणोऽग्नि-आ. । (२) हेतुनिर्देशक निमित्तमात्रे निष्कारिणु वर्तन्तात् । हेतुनिर्देशक निमित्तमात्र दृष्टव्य । कारक इत्यादिमित्त कारणमिति तावन्ननुमिति । किं प्रयोजनम् ? निष्कारिणु वर्तन्तात् । निष्कारिणुपि निजवृध्यन् निष्ठा नामयन्ति कारिणोऽग्निरभ्यापयति इति ।—आ. अ. भा. १. २. १६ । (३) दिव्यसंज्ञा-भू. । (४) वाक्यार्थ-भू. । (५)-रिचका । परत्वापरत्वे ता. । (६) काकोरकरथा-भू. ।

तद्भेदा परिणामादयस्तेषां पृथग्रहणमनघनम् ? नानयकम् कालद्वयसूचनायत्वात्प्र  
पञ्चस्य । कालो हि द्विविध परमाथकालो व्यवहारकालश्च । परमाथकालो वतना  
लक्षण । परिणामादिलक्षणो व्यवहारकालः । अन्येन परिच्छिन्न अन्यस्य परिच्छेदहेतु  
क्रियाविशेषः काल इति व्यवहियते । स त्रिधा व्यवतिष्ठते भूतो वतमानो भविष्यति ।  
तत्र परमाथकाले कालव्यपदेशो मुख्यः । भूतादिव्यपदेशो गौणः । व्यवहारकाले भूतादि  
व्यपदेशो मुख्यः । कालव्यपदेशो गौणः क्रियावद्ब्रव्यापेक्षत्वात्कालकृतत्वाच्च ।

अत्राह घर्माघर्माकाशपुद्गलजीवकालानामुपकारा उक्ताः । लक्षण चोक्तम् उप  
योगो लक्षणम् इत्येवमादि । पुद्गलानां तु सामान्यलक्षणमुक्तम् 'अजीवकाया' इति ।  
विशेषलक्षणं नोक्तम् । तस्मिन्मित्यत्रोच्यते—

स्पर्शरसनगन्धवर्णवन्तं पुद्गला ॥ २३ ॥

स्युक्ष्यते स्पर्शनमात्रं वा स्पृश । सोऽष्टविधः मृदुकठिनगुरुलघुपीतोष्णस्निग्धरूक्ष  
भेदात् । रस्यते रसनमात्रं वा रसः । स पञ्चविधः तिक्ताम्लकटुकमधुरकषायभेदात् ।

शब्दा—मूत्रमें केवल वतना पदका ग्रहण करना पयाप्त ह । परिणाम आविक उसक भद है मत  
उनका अरुगस ग्रहण करना निष्फल ह ।

समाधान—परिणाम आविकका अरुगस ग्रहण करना निष्फल नहीं है क्योंकि दो प्रकारक वासक  
सूचन करनके लिये इतना विस्तारसे बयन किया ह । काल दो प्रकारका है—परमाथ काल और व्यव  
हारकाल । इनमेंसे परमार्थ काल वतना लक्षणवाला ह और परिणाम आविक सक्षमवाला व्यवहार काल  
ह । तात्पर्य यह है कि जो क्रिया विशेष अन्यस परिच्छिन्न होकर अन्यके परिच्छेत्का हेतु ह उसमें काल  
इन प्रकारका व्यवहार किया गया ह । यह काल तीन प्रकारका ह—भूत वतमान और भविष्यत् ।  
उनमेंसे परमार्थ काल में काल यह सत्ता मुख्य ह और भूतान्त्रिक व्यपदेश गौण ह । तथा व्यवहार कालमें  
भूतादिक रूप सत्ता मुख्य ह और काल सत्ता गौण ह क्योंकि कि इस प्रकारका व्यवहार क्रियावात् ब्रह्मकी  
अपक्षामे होता ह तथा कालका वाय ह ।

यहाँपर शक्यकार कहता ह कि घम अघमें आकाश पुद्गल जीव और काल ब्रह्मका उपकार  
कहा तथा 'उपयोगे लक्षणम् इत्यादि मूत्र द्वारा इनका लक्षण भी कहा । इसी प्रकार अजीवकाया  
इत्यादि मूत्र द्वारा पुद्गलाका सामान्य लक्षण भी कहा किन्तु पुद्गलोंका विशेष लक्षण नहीं कहा  
इमलिय आगका मूत्र कहल ह—

स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्गल होते हैं ॥ २३ ॥

जो स्पृशं किया जाता ह उसे या स्पर्शनमात्रको स्पृश कहत हैं । कोमल कठोर, भारी हल्का  
ठहर गरम स्निग्ध और रूखके भन्म यह आठ प्रकारका ह । जो स्वात् रूप होना ह या स्वात्मात्रको  
रूप कहल ह । तीना मृदा कड आ मीठा और कमलाक भन्म यह पाँच प्रकारका ह । जो मूषा

गन्ध्यते गन्धनमात्र वा गन्ध । स द्वेषा मुरमिरसुरभिरिति । वर्ण्यते वर्णनमात्र वा वर्णः । म पञ्चविध कृष्णनीलपीतशुक्ललोहितभेदात् । त एते मूलभेदाः प्रत्येक सस्येया सस्येयानन्तभेदाश्च भवन्ति । स्पशश्च रसश्च गन्धश्च वर्णश्च स्पर्शरसगन्धवर्णस्त एतेषा सन्तीति स्पर्शरसगन्धवर्णवन्त इति । निरत्ययोगे मसुनिर्देशः । यथा क्षीरिणो न्यग्रोषा इति । ननु च रूपिण पुद्गला इत्यत्र पुद्गलाना रूपवत्त्वमुक्तं तदधिनाभाविनश्च रसाद यस्तत्रैव परिगृहीता इति व्याख्यात तस्मात्तेनैव पुद्गलानां रूपादिमत्त्वसिद्धे सूत्रमिदमनय क्रमिति ? न च दोष निरत्यावस्थितान्यरूपाणि इत्यत्र धर्मादीनां निरत्यत्वादिनिरूपणेन पुद्गलानामरूपित्वप्रसङ्गे तदपाकरणाय तदुक्तम् । इदं तु तेषां स्वरूपविशेषप्रतिपत्त्य धमुच्यते ।

अवशिष्टपुद्गलविकारप्रतिपत्त्यधमिदमुच्यते—

शब्दवर्णसौख्यस्थौल्यसंस्थानभेदसमवच्छायाऽऽतपोद्योतवन्तवच ॥ २४ ॥

शब्दो द्विविधो भापालक्षणो विपरीतश्चेति । भापालक्षणा द्विविध साक्षरोजकार

जाता हे या संघनमात्रको गन्ध कहते हैं । सुगन्ध और दुर्गन्धके भेदसे वह दो प्रकारका है । जिसका कोई वर्ण न हो या वर्णमात्रको वर्ण कहते हैं । काला नीला पीला सफेद और लालके भेदसे वह पाँच प्रकारका है । ये स्पर्श आविर्भूत मूल भवतः । बसे प्रत्येकके सख्यात असख्यात और अनन्त भेद होते हैं । इस प्रकार ये स्पर्श रस गन्ध और वर्ण जिनमें पाये जाते हैं वे स्पर्श रस गन्ध और वर्णबाले कहते हैं । इनका पुद्गलद्रव्यसंघ सदा सम्बन्ध है यह बतलानके लिये 'मसुप् प्रत्यय किया है । उस क्षीरिणो न्यग्रोषा । यहाँ न्यग्रोष नाममें दूधका सदा सम्बन्ध बतलानके लिये 'जिनी' प्रत्यय किया है । उसी प्रकार प्रकृतमें जानना चाहिए ।

२ शब्द—रूपिण पुद्गला इम सूत्रमें पुद्गलोंको रूपवाला बतला आये है । और रसादिक वही रहते हैं जहाँ रूप पाया जाता है क्योंकि इनका परस्परमें सहस्पर्श नामका अभिनामात्र सम्बन्ध है इसलिये रूपके ग्रहण करनेसे रसादिकका ग्रहण ही ही जाता है यह भी पहले बतला आये है इसलिये उसी सूत्रके बलसे पुद्गल रूपादिबाला सिद्ध हो जाता है अतः यह सूत्र निष्कल है ?

३ समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि 'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' इस सूत्रमें धर्मादिक द्रव्योंको निरत्य आदि रूपसं निरूपण किया है इससे पुद्गलोंको अरूपत्व प्राप्त हुआ अतः इस दोषके पूर करनेके लिये 'रूपिण पुद्गला' यह सूत्र कहा है । परन्तु यह सूत्र पुद्गलोंके स्वरूप विशेषता ज्ञान करानके लिये कहा है ।

अथ पुद्गलोंकी दोष रही पर्यायोंका ज्ञान करानके लिये आगका सूत्र कहत हैं—

तथा वे शब्द, ध्वज, स्रग्मत्त्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अक्षर, छाया, आतप और उद्योतबाले होते हैं ॥ २४ ॥

भाषाण्य शब्द और अभाषाण्य शब्द इस प्रकार शब्दोंके दो भेद हैं । भाषाण्य शब्द दो प्रकारके

श्चेति । अनक्षरीकृतं घान्त्रामिध्यञ्जकं सस्कृतविपरीतभेदादायम्लेष्वध्ववहारहेतु । अनक्षरात्मको द्वीन्द्रियादीनामसिधयज्ञानस्वरूपप्रतिपादनहेतु । स एष सव प्रायोगिक । अभाषात्मको द्विविध प्रायोगिको वससिकश्चेति । वससिनो बलाहकादिप्रभव । प्रायोगिकश्चतुर्धा ततषिततघनसौपिरभेदात् । तत्र चमतनननिमित्त पुष्करभेरीददु रादिप्रभव स्तत । तन्त्रीकृतवीणासुषोपादिसमुद्भवो विसत । तालघण्टालालनाद्यभिघातजो घन । वशाशङ्खाविनिमित्त सौपिर ।

व घां द्विविधा वससिक प्रायोगिकश्च । पुरुषप्रयोगानपेक्षो वससिक । तद्यथा— स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्तो विद्युदुल्काजलधारागनीन्द्रधनुरादिविषय । पुरुषप्रयोगनिमित्त प्रायोगिक अजीवविषयो जीवाजीवविषयश्चेति द्विधा भिन्न । तत्राजीवविषया जतुकाष्ठा विलक्षण । जीवाजीवविषय कमनोकमद्यघ ।

सौहम्य द्विविध अन्त्यमापेक्षिक च । तत्रान्त्य परमाणुनाम् । आपेक्षिक विल्वामल कवदरादीनाम् ।

स्थौल्यमपि द्विविधमन्त्यमापेक्षिक चेति । तत्रान्त्य जगद्व्यापिनि महास्कन्धे । आपेक्षिक वदरामलकविल्वतालादिषु ।

हैं—साक्षर और अनक्षर । जिसमें शास्त्र रचे जाते हैं और जिससे आर्य और मस्त्रोंका व्यवहार करता है ऐसे सस्कृत शब्द और इससे विपरीत शब्द य सव साक्षर शब्द हैं । जिससे उनका सातिशय ज्ञानक स्वरूपका पता लगता है एस तो इन्द्रिय आदि जीवोंके शब्द अनक्षरात्मक शब्द हैं । य दोनों प्रकारके शब्द प्रायोगिक हैं । अभाषात्मक शब्द दो प्रकारक हैं—प्रायोगिक और वससिक । मन् घां के निमित्तसे जो शब्द उत्पन्न होत हैं व वससिक शब्द हैं । तथा तत विसत घन और सौपिरक भेदस प्रायोगिक शब्द चार प्रकारके हैं । कमइस मङ्गे हुए पुष्कर, भरी और ददु रस जो शब्द उत्पन्न होता है वह तत शब्द है । ततवाले वीणा और सुषोप आदिस जो शब्द उत्पन्न होता है वह तितत शब्द है । ताल भन्ग और काछन आदिक ताडनसे जो शब्द उत्पन्न होता है वह घन शब्द है । तथा बासुरी और शक आदिक फूंकनेसे जो शब्द उत्पन्न होता है वह सौपिर शब्द है । बन्धके दो भव हैं—वससिक और प्रायोगिक । जिसमें पुरुषका प्रयोग अपक्षित नहीं है वह वससिक बन्ध है । जैसे स्निग्ध और रूक्ष गुण क निमित्तसे होनेवाला विजसी उत्का मेघ अग्नि और इन्द्रधनुष आदिका विषयमूठ बन्ध वससिक बन्ध है । और जो बन्ध पुरुषक प्रयोगक निमित्तसे होता है वह प्रायोगिक बन्ध है । इससे दो भेद हैं—अजीवसम्बन्धी और जीवाजीवसम्बन्धी । साण और सकडी आदिका अजीव सम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है । तथा कर्म और नोकर्मका जो जीवस बन्ध होता है वह जीवाजीवसम्बन्धी प्रायोगिक बन्ध है । सूक्ष्मताके दो भेद हैं—अन्त्य और आपेक्षिक । परमाणुओंमें अन्त्य सूक्ष्मत्व है । तथा वरु आंवसा और बेर आदिम आपेक्षिक सूक्ष्मत्व है ।

स्थौल्य भी दो प्रकारका है—अन्त्य और आपेक्षिक । जगद्व्यापी महास्कन्धमें अन्त्य स्थौल्य है । तथा बेर, आंवसा और वेल आदिमें आपेक्षिक स्थौल्य है ।



सस्थानमाकृति । तद् द्विविधमित्थलक्षणमनित्थलक्षण चेति । वृत्तत्रयस्यचतुरस्रामत  
परिमण्डलादीनामित्थलक्षणम् । अतोऽप्यभेदादीनां सस्थानमनकविधमित्थमिदमिति  
निरूपणाभावादनित्थलक्षणम् ।

भेदा षोडश उत्करचूणसण्डचूर्णिकाप्रतराणुषटनविकल्पात् । तत्रोत्कर काष्ठा  
दीनां करपत्रादिभिस्त्वरणम् । चूर्णो यवगोधूमादीनां समतुकणिकादि । सण्डो घटादीनां  
कपालशकरादि । चूर्णिका मापमुद्गादीनाम् । प्रतरोऽष्टपटलादीनाम् । अणुषटन  
सन्तप्तय पिण्डादिषु अयोधनादिभिरभिहन्यमानेषु स्फुलिङ्गनिगम ।

तमो वृष्टिप्रतिबन्धकारण प्रकाशविरोधि । छाया प्रकाशावरणनिमित्ता । सा द्वेषा  
वर्णादिविकारपरिणता प्रतिबिम्बमात्रात्मिका चेति । आतप आवित्यादिनिमित्त उष्ण  
प्रकाशलक्षण । उद्योतश्चन्द्रमणिस्रद्योतादिप्रभव प्रकाशः ।

त एते शब्दादय पुद्गलब्रह्मविकारा । त एषां सन्तीति शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसस्था  
नभेदतमश्छायाऽऽनयोद्योतवन्त पुद्गला इत्यभिसम्बध्यते । च शब्देन नोदनाभिधाता  
दय पुद्गलपरिणामा आगमे प्रसिद्धा समुच्चोयन्ते ।

सस्थानका अथ आकृति है । इसका दो भेद है—इत्थलक्षण और अनित्थलक्षण । जिसके विषयमें  
यह सस्थान इस प्रकारका है यह निर्देश किया जा सके वह इत्थलक्षण सस्थान है । वृत्त त्रिकोण  
चतुष्कोण आयत और परिमण्डल आदि ये सब इत्थलक्षण सस्थान हैं । तथा इससे अतिरिक्त मत्त  
आदिके आकार जो कि अनक प्रकारके हैं और जिनके विषयमें यह इस प्रकारका है यह नहीं कहा जा  
सकता वह अनित्थलक्षण सस्थान है ।

भेदक छह भेद हैं—उत्कर, चूर्ण सण्ड चूर्णिका प्रतर और अणुषटन । करोंत आविसे जो लकड़ी  
आदिके चीरा जाता है वह उत्कर नामका भेद है । जो और गेहूँ आदिका जो सत्तू और कनक आदि  
बनती है वह चूर्ण नामका भेद है । मत्त आदिके जो कपाल और शकरा आदि टुकड़े होते हैं वह सण्ड  
नामका भेद है । उजब और मूँग आदिका जो सण्ड किया जाता है वह चूर्णिका नामका भेद है ।  
मेषक जो अलग अलग पटल आदि होते हैं वह प्रतर नामका भेद है । तथाये हुए साहेके गोमे आदिके  
भन आविसे पीठने पर जो फुल्ले निकलते हैं वह अणुषटन नामका भेद है ।

जिससे वृष्टिमें प्रतिबन्ध होता है और जो प्रकाशका विरोधी है वह तम कहलाता है ।

प्रकाशको रोकनवासे पदार्थके निमित्तसे जो पैदा होती है वह छाया कहलाती है । उसके दो भेद  
हैं—एक तो वर्णान्तर विकार रूपसे परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्बरूप ।

जो सूर्यके निमित्तसे उष्ण प्रकाश होछा है उसे आतप कहते हैं । तथा चन्द्र मणि और अणुगु आवि  
के निमित्तसे जो प्रकाश पैदा होता है उस उद्योत कहते हैं ।

ये सब शब्दादिक पुद्गल ब्रह्मके विकार (पर्याय) हैं । इसीरूपसे सूक्ष्म पुद्गलको इत सब बन्ध  
सौक्ष्म्य स्थौल्य सस्थान भेद तम छाया आतप और उद्योतवासा कहा है । सूक्ष्ममें विभे हुए 'च  
शब्द से मोहन अमिवात्र आदिक जो पुद्गलकी पर्यायें आगममें प्रसिद्ध हैं उनका सम्यह करना चाहिये ।



सद् द्रव्यलक्षणम् ॥ २९ ॥

यत्सत्तद् द्रव्यमित्यथ ।

यद्येव तदेव तावद्धर्मतस्य किं सत् ? इत्यत आह—

उत्पादव्ययघ्नौघ्ययुक्तं सत् ॥ ३० ॥

चतनस्याचतनस्य वा द्रव्यस्य स्वा जातिमजहत् उभयनिमित्तवधाद् भावान्तरावा  
प्लिफुत्पादनमुत्पादः मृत्पिण्डस्य घटपर्यायवत् । तथा पूवभावविगमन व्ययः । यथा  
घटोत्पत्तौ पिण्डानुत्पत्तेः । अनादिपारिणामिकस्वभावेन व्ययोदयाभावाद् घृष्टति स्विकी  
भवतीति घृष्टः । घृष्टस्य भाव कम वा घ्नौघ्यम् । यथा मृत्पिण्डघटाद्यवस्थासु मृत्ताद्य  
न्वयः । तत्त्वाव्ययघ्नौघ्ययुक्तं उत्पादव्ययघ्नौघ्ययुक्तं सदिति ।

आह भेद सति युक्तशब्दो दृष्टः । यथा दण्डेन युक्तो देवदत्त इति । तथा सति  
तथा त्रयाणां तयक्तस्य द्रव्यस्य चाभावः प्राप्नोति ? नैप दोषः, अभेदेऽपि कथञ्चिद् भव  
नयापदाया युक्तशब्दो दृष्टः । यथा सारयुक्तं स्तम्भ इति । तथा सति सेषामविनाभावा

अग्रे मूत्र द्वारा सामान्य रक्षणं कर्तव्यं है—

द्रव्यका संक्षणं सत् है ॥ २९ ॥

जो सत् है वह द्रव्य है यह इस सूत्रका भाव है ।

यदि ऐसा है तो यही कहिय कि सत् क्या है ? इसलिय आगेका सूत्र कहते हैं—

जो उत्पाद, व्यय और घ्नौघ्य इन तीनोंसे युक्त अर्थात् इन तीनोंरूप है वह सत् है ॥ ३० ॥

द्रव्य दो है चेतन और अचेतन । वे अपनी जातिको तो कभी नहीं छोड़त फिर भी उनमें अन्तरय  
जो बहिरंग निमित्तक कारण प्रति समय जो कभीन अवस्थाको प्राप्ति होती है उस उत्पाद कहते हैं ।  
जग मिट्टीके पिण्डकी घट पर्याय । तदा पूव अवस्थाके ह्यागको व्यय कहत है । जस घटकी उत्पत्ति होत  
पर पिण्डके आकारका ह्याग तथा जो अनादित्वाकीम पारिणामिक स्वभाव है उसका व्यय और उदय  
नहीं होना चिन्तु वह घृष्टति अर्थात् स्थिर रहता है इसलिय उम घृष्ट कहत है । तथा इस घृष्टका भाव  
या कम घ्नौघ्य कहलाता है । जग मिट्टीके पिण्ड और घटादि अवस्थाओंमें मिट्टीका भावय बना रहता  
है । नम प्रकार इन उत्पाद व्यय और घ्नौघ्यजो युक्त है वह सत् है ।

उदा—भारत रत्न हुए युक्त शब्द लगा जाता है । जग रक्षणं युक्त शब्द है । यहाँ रक्ष और  
रक्षणम भार है । प्रकृतमें भी यदि रक्षा मान लिया जाय तो उन तीनोंका और उन तीनोंमें युक्त द्रव्यात्  
सभाव प्राप्त होता है ।

नयापदान—य बांड तय मनी है कथानि अमदमें भी कथयित् अन्वयानी मयकी ओदा मय  
रक्षता प्रयाग लगा जाता है । जगे मय युक्त स्तम्भ । तेगो ज्ञानमें उन तीनोंका परम्पर अविनाभाव  
मदरय तिनम यती युक्त शब्दका प्रयाग करता युक्त है ।

सद्व्यपदेशो युक्त । समाधिवाचनो वा युक्तशब्द । युक्त समाहितस्तदात्मक इत्ययम् । उत्पादव्ययध्रौष्ययुक्त सत् उत्पादव्ययध्रौष्यात्मकमिति यावत् । एतदुक्तं भवति— उत्पादादीनि द्रव्यस्य लक्षणानि । द्रव्यं लक्ष्यम् । तत्र पर्यायार्थिकनयापेक्षया परस्परतो द्रव्यान्वयान्तरभावः । द्रव्याधिकनयापेक्षया व्यतिरेकेणानुपलब्धेरनर्थान्तरभावः । इति लक्ष्यलक्षणभावसिद्धिः ।

अथवा यह युक्त शब्द समाधिवाची है । भाव यह है कि युक्त समाहित और सदात्मक य तीनों एकापवाची शब्द हैं । जिससे 'सत् उत्पाद व्यय और ध्रौष्यसे युक्त है इसका भाव सत् उत्पाद व्यय और ध्रौष्यात्मक है यह होता है । उक्त कथनका तात्पर्य यह है कि उत्पाद आदि द्रव्यक लक्षण है और द्रव्य लक्ष्य है । यदि इनका पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षा विचार करते हैं तो य आपसमें और द्रव्यसे पुष्क पुष्क हैं और यदि द्रव्याधिक नयकी अपेक्षा विचार करते हैं तो य पुष्क पुष्क उपलब्ध नहीं होनासं १  
अभिन्न है । इस प्रकार इनमें और द्रव्यमें लक्ष्य-लक्षणभावकी सिद्धि होती है ।

बिधापार्थ—यहाँ द्रव्यका लक्षण उत्पाद व्यय और ध्रौष्य स्वभाव वतलाया है । अपनी जातिका त्याग किये बिना नवीन पर्यायकी प्राप्ति उत्पाद है पूर पर्यायिका त्याग व्यय है और अनादि पारिणामिक स्वभावरूप अन्वयका बना रहना ध्रौष्य है । उदाहरणार्थ—कोयला जलकर राख हो जाता है इसमें पुद्गलकी कोयला रूप पर्यायिका व्यय होता है और धार रूप पर्यायिका उत्पाद होता है किन्तु १३  
दोनों अवस्थाओंमें पुद्गल द्रव्यका अस्तित्व बना रहता है । पुद्गलरूपका कभी भी नाश नहीं होता यही उसकी ध्रौष्यता है । आशय यह है कि प्रत्येक पदार्थ परिवर्तनशील है और उसमें यह परिवर्तन प्रति समय होता रहता है जब कुछ समय बाद नही रूपसे परिणम जाता है और फिर दहीका मट्टा बना लिया जाता है यहाँ यद्यपि दूधस दही और दहीस मट्टा य तीन भिन्न भिन्न अवस्थाएँ हैं ह पर ह य तीनों एक गोरस की ही । इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्यमें अवस्था बदके होनेपर भी उसका अन्वय पाया २  
जाता है इसलिए वह उत्पाद व्यय और ध्रौष्ययुक्त सिद्ध होता है । यह प्रत्येक द्रव्यका सामान्य स्वभाव है । अब प्रश्न यह होता है कि प्रत्येक द्रव्य एक साथ तीनरूप कय हो सकता है । तत्राचिन्त कालभेदसं उस उत्पाद और व्ययरूप मान भी लिया जाय क्योंकि जिसका उत्पाद होता है उसका कालान्तरमें माघ अवस्थ होता है । तथापि वह एसी अवस्थाओं ध्रौष्यरूप नहीं हो सकता क्योंकि जिसका उत्पाद और व्यय होता है उस ध्रौष्य स्वभाव माननेमें विरोध आता है । समाधान यह है कि अवस्थामेत्स २४  
रूपमें ये तीनों धम माने गय है । जिस समय द्रव्यकी पूर अवस्था नाशकी प्राप्ति होती है उमी समय उसकी नई अवस्था उत्पन्न होती है फिर भी उसका त्रकालिक अन्वय स्वभाव बना रहता है । इसी बातकी आशय ममलभदने इन शब्दोंमें ध्यान किया है—'घटका इच्छत उभवा नाग हानपर दुग्नी होता है मुकुटका इच्छत उसका उत्पाद होनेपर हृषित होता है और स्वर्गका इच्छत न दुग्नी होता है न हृषित होता है वह मध्यम्य रहता है । एक ही समयमें यह धाक प्रमाण और माध्यम्यभाव बिना ३  
कारणक नहीं हो सकता इसम प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौष्ययुक्त है यह सिद्ध होता है ।

आह नित्यावस्थितान्यरूपाणि इत्युक्तं तत्र न ज्ञायते किं नित्यमित्यत आह—

तद्भावाभ्यय नित्यम् ॥ ३१ ॥

'तद्भाव इत्युच्यते । कस्ताद्भावः ? प्रत्यभिज्ञानहेतुता । तदेवेदमिति स्मरणप्रत्यभिज्ञानम् । तदकस्मात् भवतीति योऽस्य हेतुः स तद्भावः । भवनं भावः । तस्य भावस्तद्भावः । येनारमना प्राग्बुद्धं वस्तु तेनवात्मना पुनरपि भावात्तदेवेदमिति प्रत्यभिज्ञायते । यद्यत्यन्तं निराघातमिनवप्रादुर्भावमात्रमव वा स्यात्ततः स्मरणानुपपत्तिः । तदधीनो लोकसम्यक्कारो विरुध्यत । ततस्तद्भावेनाव्ययं तद्भावाभ्यय नित्यमिति निश्चीयते । तत् तु कश्चित् द्वेषितव्यम् । सर्वथा नित्यत्वे अयथाभावाभावात्ससारतद्विनिवृत्तिकारणप्रक्रियाविरोधः स्यात् ।

ननु इत्येव विरुद्धं तदेव नित्यं तदवानित्यमिति । यदि नित्यं व्ययव्याभावादनित्यं ताव्याघातः । अथानित्यमेव स्थित्यभावान्नित्यताव्याघात इति ? नतद्विरुद्धम् । कुत ?

'नित्यावस्थितान्यरूपाणि' महं सूत्रं कथं आये है । वहाँ यह नहीं ज्ञात होता कि नित्य क्या है इस नित्य आगना सूत्र कहते हैं—

उसके भावसे ( अपनी जातिसे ) च्युत न होना नित्य है ॥ ३१ ॥

अब तद्भाव इस पदका सुझासा करते हैं ।

शका—'तद्भाव' क्या वस्तु है ?

समाधान—जो प्रत्यभिज्ञानका कारण है वह तद्भाव है 'वही यह है' इस प्रकारके स्मरणको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । वह अकस्मात् तो होता नहीं इसलिये जो इसका कारण है वही तद्भाव है । इसकी निश्चित मूल भाव तस्य भावः तद्भाव इस प्रकार होती है । तात्पर्य यह है कि पहले जिस रूप वस्तुका बोधा है उसी रूप उसके पुनः होनेसे 'वही यह है' इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान होता है । यदि पूर्वं वस्तुका सर्वथा नाश हो जाय या सबथा नष्ट वस्तुका उत्पाद माना जाय तो इससे स्मरणकी उत्पत्ति नहीं हो सकती और स्मरणकी उत्पत्ति न हो सकनेसे स्मरणके आधीन जितना लोकसम्यक्कार भाव है वह सब विरोधको प्राप्त होता है । इसलिये जिस वस्तुका जो भाव है उस रूपसे च्युत न होना तद्भावाभ्यय अर्थात् नित्य है ऐसा निश्चित होता है । परन्तु इस कश्चित् जानना चाहिये । यदि सर्वथा नित्यता मान ली जाय तो परिणामतया सर्वथा अभाव प्राप्त होता है और ऐसा होनेसे ससार और इसकी निवृत्तिके कारण रूप प्रक्रियाका विरोध प्राप्त होता है ।

शका—उसीको नित्य कहना और उसीको अनित्य कहना यह विरुद्ध है । यदि नित्य है तो उसका च्यय और उत्पाद न होनेसे उभयमें अनित्यता नहीं बनती । और यदि अनित्य है तो स्थितिका अभाव होनेसे नित्यताका व्याघात होगा है ?

समाधान—नित्यता और अनित्यताका एक साथ रहना विरुद्ध नहीं है क्योंकि—

(१) तद्भावः । तस्य मू । (२) त्यक्तविरोधो मू । (३) नाभ्ययं नित्य-मू ।

## अर्पितामर्पितसिद्धे ॥ ३२ ॥

अनेकान्तात्मकस्य वस्तुन प्रयोजनवशाद्यस्य कस्यचिद्धमस्य विवक्षया प्रापित प्राभा  
यमर्पितमुपनीतमिति यावत् । तद्विपरीतमनर्पितम् । प्रयाजनाभावात् सतोऽप्यविवक्षा  
भवतीत्युपसजनीभूतमनर्पितमित्युच्यते । अर्पित चानर्पित चार्पितानर्पिते । ताम्यां सिद्धे  
रर्पितानर्पितसिद्धेर्नास्ति विरोध । तथा—एकस्य देवदत्तस्य पिता पुत्रो भ्राता भागि  
नेय इत्येवमादय सम्बन्धा जनकत्वजयत्वादिनिमित्ता न विदध्यन्ते अपणाभेदात् ।  
पुत्रापेक्षया पिता, पित्रपेक्षया पुत्र इत्येवमादि । तथा द्रव्यमपि सामान्यापणया नित्यम्  
विशेषापणयाऽनित्यमिति नास्ति विरोध । तौ च सामान्यविशेषौ कथञ्चिद् भेदाभेदाभ्यां  
व्यवहारहेतु भवत ।

अत्राह सतोऽनेकनयव्यवहारतत्त्वात् उपपन्ना भेदसघातेभ्य सतां स्कृष्टात्मनो  
त्यति । इदं तु सन्दिग्धम् किं सघात संयोगादेव द्रव्यणुकादिलक्षणो भवति उत कश्चिद्धि  
घोपोऽवधिगत इति ? उच्यते सति संयोगे व घादेकत्वपरिणामात्मकात्सघातो निष्पद्यते ।

सुस्पृता और गौणहाकी अपेक्षा एक वस्तुमें विरोधी मालूम पड़नेवाले दो धर्मोंकी  
सिद्धि होती है ॥ ३२ ॥

वस्तु अनकान्तात्मक ह । प्रयोजनके अनुसार उसका किसी एक धर्मको विवक्षास जब प्रधानता  
प्राप्त होती है तो वह अर्पित या उपनीत कहलाता है और प्रयोजनके अभावमें जिसकी प्रधानता नहीं  
रहती वह अनर्पित कहलाता ह । तात्पर्य यह ह कि किसी वस्तु या धर्मके रहत हुए भी उसकी विवक्षा  
नहीं होती इसलिये जो गौण हो जाता है वह अनर्पित कहलाता ह । इन दोनोंका अर्पित व अनर्पित व  
इस प्रकार द्वन्द्व समास ह । इन दोनोंकी अपेक्षा एक वस्तुमें परस्पर विरोधी दो धर्मोंकी सिद्धि होती है  
इसलिये कोई विरोध नहीं है । खुलासा इस प्रकार है—

जब देवदत्तक पिता पुत्र माइ और भाजने इसी प्रकार और भी जनकत्व और जन्मत्व आदिके  
निमित्तस होनवासे सम्बन्ध विरोधको प्राप्त नहीं होते । जब जिस धर्मकी प्रधानता होती ह उस समय  
उसमें वह धर्म माना जाता है । उदाहरणार्थ—पुत्रकी अपेक्षा वह पिता ह और पिताकी अपेक्षा वह पुत्र  
ह आदि । उसी प्रकार द्रव्य भी सामान्यकी अपेक्षा नित्य है और विनापकी अपेक्षा अनित्य है  
इसलिये कोई विरोध नहीं है । व सामान्य और विशेष कथञ्चित् भेद और अनेक की अपेक्षा ही व्यवहारक  
कारण होते है ।

धारा—सन् अत्रक प्रकारके नय के व्यवहारके आधीन होनसे मन् सघात और मन्-सघातम  
स्वभावकी उत्पत्ति भस ही धन जान परन्तु यह सदिग्ध ह कि द्रव्यणुकादि लक्षणवाला सघात संयोगसे  
ही होता ह या उसम और कोई विशेषता है ?

समाधान—संयोगक होनपर एकत्व परिणमन रूप वचसे सघातकी उत्पत्ति हाती ह ।

यद्येवमिदमुच्यता कृतो नु खलु पुद्गलजात्यपरित्यागे सयोगे च सति भवति केषांचिद्बन्धोऽन्येषां च नेति ? उच्यते, यस्मात्तेषां पुद्गलात्मविशेषेऽप्यनन्तपर्यायाणां परस्परविलक्षणपरिणामादाहितसामर्थ्यादिभवन्प्रतीत —

स्निग्धरूपात्वाद् वक्ष्य ॥ ३३ ॥

x वाह्याभ्यन्तरकारणवशात् स्नेहपर्यायाधिर्भावात् स्निहघटे स्मेति स्निग्ध । तथा रूपाणाद्रूपा । स्निग्धश्च रूपाश्च स्निग्धरूपाः । तयोर्भाव स्निग्धरूपात्वम् । स्निग्धत्वचिक्वणगुणलक्षणं पर्याय । तद्विपरीतपरिणामो रूपात्वम् । स्निग्धरूपात्वात् इति हेतुनिर्वेश । तत्कृतो वक्षो द्वघणुकादिपरिणाम । द्वयो स्निग्धरूपायोरप्यो परस्पररूपेण लक्षणे वक्षे सति द्वघणुकस्मयो भवति । एव सख्येयामख्येयानन्तप्रदेश स्कन्धो योग्य । तत्र स्नेहगुण एकद्वित्रिचतु सख्येयासख्येयानन्तविकल्प । तथा रूपागुणोऽपि । तद्गुणां परमाणव सन्ति । यथा तोयाजागोमहिष्युष्ट्रीक्षीरघृतेषु स्नेहगुण प्रकर्षप्रकर्षेण प्रवर्तते । पांशुभणिकाशर्करादिषु च रूपागुणो दृष्ट । तथा परमाणुष्वपि स्निग्धरूपागुणयोर्वृत्तिप्रकर्षप्रकर्षेणानुमीयते ।

१५ वाक्य—यदि ऐसा है तो यह बतलाइये कि सब पुद्गलरूपातिके होकर भी उनका सयोग होनेपर किन्हींका बन्ध होता है और किन्हींका नहीं होता इसका क्या कारण है ?

समाधान—भूँकि व सब जातिस पुद्गल हैं तो भी उनकी जो अनन्त पर्यायि हैं उनका परस्पर विलक्षण परिणामन होता है इसलिये उससे जो सामर्थ्य उत्पन्न होती है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि—

स्निग्धत्व और रूपात्वंसे बंध होता है ॥ ३३ ॥

१५ वाह्य और आभ्यन्तर कारणसे जो स्नेह पर्याय उत्पन्न होती है उससे पुद्गल स्निग्ध कहलाता है । इसकी व्युत्पत्ति स्निह्यत् स्मेति स्निग्ध होगी । तथा रूपापनके कारण पुद्गल रूपा कहा जाता है । स्निग्ध पुद्गलका धर्म स्निग्धत्व है और रूपा पुद्गलका धर्म रूपात्व है । पुद्गलकी चिक्वणे गुणरूपयो पर्याय है वह स्निग्धत्व है और इससे जो विपरीत परिणामन है वह रूपात्व है । सूत्रमें स्निग्धरूपात्वात् इस प्रकार हेतुपरक निर्वेश किया है । तात्पर्य यह है कि द्वघणुक आदि लक्षणवाला जो बन्ध होता है वह इनका बंध है । स्निग्ध और रूपा गुणवासे दो परमाणुओंका परस्पर सत्यपलक्षण बन्ध होनेपर १५ द्वघणुक नामका स्वल्प बनता है । इसी प्रकार सक्यात असक्यात और अनन्त प्रवृत्तवासे स्वल्प उत्पन्न होता है । स्निग्ध गुणके एक दो तीन चार सक्यात असक्यात और अनन्त भेद है । इसी प्रकार रूपा गुणके भी एक दो तीन चार, सक्यात असक्यात और अनन्त भेद है । और इन गुणवासे परमाणु होते हैं । जिन प्रकार जल तथा बकरी गाय भैस और ऊँक वृष और भीमें उत्तरोत्तर अधिक रूपसे स्नेह गुण रहता है तथा पांशु बणिका और शर्करा आदिमें उत्तरोत्तर भूभरूपसे रूपा गुण रहता है उसी प्रकार परमाणुओंमें भी सूत्राधिकरूपसे स्निग्ध और रूपा गुण का अनुमान होता है ।

स्निग्धरूक्षत्वगुणनिमित्ते बन्धे अविशेषेण प्रसक्तते अनिष्टगुणनिवृत्त्ययमाह—

न जघन्यगुणानाम् ॥ ३४ ॥

जघन्यो निष्कृष्ट । गुणो भागः । जघन्यो गुणो येषां ते जघन्यगुणाः । तेषां जघन्यगुणानां नास्ति बन्धः । तथा—एकगुणस्निग्धस्य न गुणस्निग्धेन द्वघादिसंख्येयासंख्येया नन्तगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः । तस्यैकगुणस्निग्धस्य एकगुणरूक्षेण द्वघादिसंख्येया संख्यानन्तगुणरूक्षेण वा नास्ति बन्धः । तथा एकगुणरूक्षस्यापि योज्यमिति ।

एतौ जघन्यगुणस्निग्धरूक्षौ वजयित्वा अन्येषां स्निग्धानां रूक्षानां च परस्परेण बन्धो भवतीत्यविशेषेण प्रसक्ते तत्रापि प्रतिषेधविषयस्थापनायमाह—

गुणसाम्ये सर्वशानाम् ॥ ३५ ॥

सर्वशानं ग्रहणं तुल्यजातीयसंप्रत्ययायम् । 'गुणसाम्ये ग्रहणं तुल्यभागसंप्रत्ययायम् । एषदुक्तं भवति—द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणरूक्षं त्रिगुणस्निग्धानां त्रिगुणरूक्षं द्विगुणस्निग्धानां द्विगुणस्निग्धं द्विगुणरूक्षानां द्विगुणरूक्षश्चैत्येवमादिषु नास्ति बन्ध इति । यद्येव 'सर्वशानं ग्रहणं किमयम् ? गुणवपम्ये सर्वशानामपि बन्धप्रतिपत्त्ययं सर्वशानं ग्रहणं क्रियते ।

स्निग्धत्व और रूक्षत्व गुणके निमित्तस्य सामान्यस्य बन्धके प्राप्त होनेपर बन्धमें अप्रयोजनीय गुणक निराकरण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

जघन्य गुणवाले पुद्गलोंका बन्ध नहीं होता ॥ ३४ ॥

यहां जघन्य शब्दका अर्थ निष्कृष्ट है और गुण शब्दका अर्थ भाग है । जिनमें जघन्य गुण होता है अर्थात् जिनका शक्त्ययं निष्कृष्ट होता है वे जघन्य गुणवाले कहलाते हैं । उन जघन्य गुणवालोंका बन्ध नहीं होता । यथा—एक स्निग्ध शक्त्ययंवालेका एक स्निग्ध शक्त्ययंवालेके साथ या दो से लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्त शक्त्ययंवालोंके साथ बन्ध नहीं होता । उसी प्रकार एक स्निग्ध शक्त्ययंवालेका एक रूक्ष शक्त्ययंवालेके साथ या दोसे लेकर संख्यात असंख्यात और अनन्त रूक्ष शक्त्ययंवालोंके साथ बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार एक रूक्षशक्त्ययंवालेकी भी योजना करनी चाहिए ।

इन जघन्य स्निग्ध और रूक्ष शक्त्ययंवालोंके सिवा अन्य स्निग्ध और रूक्ष पुद्गलोंका परस्पर बन्ध सामान्य गीतसे प्राप्त हुआ इसलिये इनमें भी जो बन्धयोग्य नहीं है उनका खुलासा करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

समान शक्त्ययं होने पर तुल्यजातिवालों का बन्ध नहीं होता ॥ ३५ ॥

तुल्य जातिवालोंका ज्ञान करानेके लिये सर्वशानं पदका ग्रहण किया है । तुल्य शक्त्ययंवालोंका ज्ञान करानेके लिये 'गुणसाम्ये' पदका ग्रहण किया है । तात्पर्य यह है कि दो स्निग्ध शक्त्ययंवालोंका दो रूक्ष शक्त्ययंवालोंके साथ तीन स्निग्ध शक्त्ययंवालोंका तीन रूक्ष शक्त्ययंवालोंके साथ दो स्निग्ध शक्त्ययंवालोंका दो स्निग्ध शक्त्ययंवालोंके साथ दो रूक्ष शक्त्ययंवालोंका दो रूक्ष शक्त्ययंवालोंके साथ बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिए ।

शब्द—यदि ऐसा है तो सूत्रमें 'सर्वशानं' पद किसलिये ग्रहण किया है ?



अतो विषमगुणानां तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां चानियमेन बन्धप्रसक्तौ  
दृष्टार्थसप्रत्ययाद्यमित्मुच्यते—

**द्व्यधिकविगुणानां तु ॥ ३६ ॥**

द्वाभ्यां गुणाभ्यामधिको द्व्यधिकः । न पुनरसौ ? चतुर्गुणः । आदि शब्द प्रकाराय ।  
क पुनरसौ प्रकारः ? द्व्यधिकता । तेन पञ्चगुणादीना सप्रत्ययो न भवति । तेन द्व्यधि  
कादिगुणाना तुल्यजातीयानामतुल्यजातीयानां च बन्ध प्रसक्तौ भवति नेतरेषाम् । तद्यथा—  
द्विगुणस्निग्धस्य परमाणोरेकगुणस्निग्धेन द्विगुणस्निग्धेन त्रिगुणस्निग्धेन वा नास्ति बन्धः ।  
चतुर्गुणस्निग्धेन पुनरस्ति बन्धः । तस्यैव पुनर्द्विगुणस्निग्धस्य पञ्चगुणस्निग्धेन पदसप्ता  
ष्टसंख्ययासम्भेदान्तगुणस्निग्धेन वा बन्धो नास्ति । एव त्रिगुणस्निग्धस्य पञ्चगुण  
स्निग्धेन बन्धोऽस्ति । शेष पूर्वोत्तरर्न भवति । चतुर्गुणस्निग्धस्य पञ्चगुणस्निग्धेनास्ति

समाधान—शक्यशर्माकी असमानताको रहते हुए बन्ध होता है इस बातका ज्ञान करानेक सिद्धि  
सूत्रमें सदृश पदको ग्रहण किया है ।

इस उपर्युक्त कथनसे समानजातीय या असमानजातीय विषम शक्यशर्माकोका अनियमसे बन्ध  
प्राप्त हुआ अतः दृष्ट अर्थका ज्ञान करानेक स्थित आगेका सूत्र कहत है—

**दो अधिक आदि संख्यशर्माकोका तो बन्ध होता है ॥ ३६ ॥**

जिसमें दो शक्यशर्मा अधिक हों उस द्व्यधिक कहते हैं ।

शर्मा—यह द्व्यधिक कौन हुआ ?

समाधान—चार शक्यशर्माका ।

सूत्रमें आदि शब्द प्रकारकाही है ।

शर्मा—यह प्रकार रूप अब क्या है ?

समाधान—द्व्यधिकपता ।

इसमें पाँच शक्यशर्मा अधिक ज्ञान नहीं होता । तथा इसत यह भी तात्पर्य निकल आता है कि समान-  
जातीय या असमानजातीय दो अधिक आदि शक्यशर्माकोका बन्ध होता है दूसरोंका नहीं । जैसे—  
दो स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुका एक स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुके साथ दो स्निग्ध शक्यशर्माके  
परमाणुके साथ और तीन स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता । हाँ चार स्निग्ध  
शक्यशर्माके परमाणुके साथ अवश्य बन्ध होता है । तथा उसी दो स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुका पाँच  
स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुके साथ इसी प्रकार छह सात आठ संख्यात असंख्यात और अनन्त स्निग्ध  
शक्यशर्माके परमाणुके साथ बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार तीन स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुका पाँच  
स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुके साथ बन्ध होता है । किन्तु आगे पीछेके शेष स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणु  
के साथ बन्ध नहीं होता । चार स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुका छह स्निग्ध शक्यशर्माके परमाणुके

(१)—सक्ती विधिपटा मु ।

बन्ध । शेष पूर्वोत्तरर्नास्ति । एव शेषेष्वपि योज्यः । तथा द्विगुणरूपास्य एकद्वित्रिगुण  
रूपास्तीति बन्धः । चतुर्गुणरूपेण त्वस्ति बन्धः । तस्यैव द्विगुणरूपास्य पञ्चगुणरूपादि  
भिन्नतरर्नास्ति बन्धः । एव त्रिगुणरूपादीनामपि द्विगुणाधिकबन्धो योज्यः । एव  
भिन्नजातीयेष्वपि योज्यः । उक्तं च—

“भिद्वन्स भिद्वेन दुराधिपण लुक्त्वस्स लुक्त्वेण दुराधिपण ।

णिद्वस्स लुक्त्वेण हवेइ धंघो अहण्णवस्सो विसमे समे वा ॥”

तु शब्दो विशेषणार्थः । प्रतिषेध व्यावतयति बन्धं च विशेषयति ।

किमयमधिकगुणविषयो यद्यो व्याख्यातो न समगुणविषय इत्यत आह—

बन्धेऽधिको पारिणामिको च ॥ ३७ ॥

अधिकाराद् ‘गुण’ शब्द मन्वध्यते । अधिकगुणाधिकारिति । भावान्तरापादन  
पारिणामिकत्वं क्लिप्तगुणवत् । यथा क्लिप्तो गुणोऽधिकमधुररसः परीतानां रेष्वादीनां  
स्वगुणोपादनात् पारिणामिकः । तथाऽप्योऽप्यधिकगुण अल्पीयस पारिणामिक इति

साध बन्ध होता है किन्तु आग पीछेके शेष स्निग्ध शक्त्यशवाले परमाणुका साध बन्ध नहीं होता । इसी  
प्रकार यह क्रम आग भी जानना चाहिये । तथा दो रूपा शक्त्यशवाले परमाणुका एक दो और तीन रूपा  
शक्त्यशवाले परमाणुके साध बन्ध नहीं होता । हा चार रूपा शक्त्यशवाले परमाणुके साध अवश्य  
बन्ध होता है । उसी दो रूपा शक्त्यशवाले परमाणुका आगके पाँच आदि रूपा शक्त्यशवाले परमाणुओंके  
साध बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार तीन आदि रूपा शक्त्यशवाले परमाणुओंका भी दो अधिक शक्त्यश  
वाले परमाणुओंके साध बन्ध जान लेना चाहिये । समानजातीय परमाणुओंमें बन्धका जो क्रम बतलाया  
है विजातीय परमाणुओंमें भी बन्धका वही क्रम जानना चाहिये । कहा भी है—

स्निग्धका दो अधिक शक्त्यशवाले स्निग्धके साध बन्ध होता है । रूपाका दो अधिक शक्त्यशवाले  
रूपाके साध बन्ध होता है । तथा स्निग्धका रूपाका साध सम या बिपम गुणोंके होनेपर इसी नियमसे  
बन्ध होता है । किन्तु जघन्य शक्त्यशवालका बन्ध सर्वथा वर्जनीय है ।

सूत्र में ‘तु’ पद निषेधपरक है जिससे बन्धके प्रतिषेधका निवारण होता है और बन्धका विधान  
होता है ।

अधिक गुणवालेके साध बन्ध होता है ऐसा क्यों कहा समगुणवाले के साध बन्ध होता है ऐसा क्यों  
नहीं कहा ? अब इसी बातके बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

बन्धके समय दो अधिक गुणवाला परिणामन करानेवाला होता है ॥ ३७ ॥

‘गुण’ शब्दका अधिकार क्या आ रहा है इसलिये इस सूत्रमें उसका सम्बन्ध होता है जिसस  
अधिको’ पदसे अधिकगुणों’ अर्थका प्रहण होता है । गीले गुडके समान एक अवस्थासे दूसरी अवस्थाको  
प्राप्त कराना पारिणामिक कहलाता है । जब अधिक मीठ रसवाला मीठा गुड उम पर पकी हुई धूलिको  
अपने गुणरूपसं परिणामनके कारण पारिणामिक होता है उसी प्रकार अधिक गुणवाला अय भी अल्प

कृत्वा द्विगुणादिस्निग्धरूक्षस्य क्षतुर्गुणादिस्निग्धरूक्ष पारिणामिको भवति । तत पूर्वा  
वस्थाप्रच्यवनपूर्वकं तार्तीयिकमवस्थान्तरं प्रादुर्भवतीत्येकत्वमुपपद्यते । इतरथा हि  
शुक्लकृष्णसन्तुवत् संयोग सत्यप्यपारिणामिकत्वात्सर्व विविक्तस्म्येणभावतिष्ठेत ।  
उक्तेन विधिना बन्धे पुन सति ज्ञानावरणादीनां कमणा त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यादि

३ स्थितिरूपपन्ना भवति ।

गुणवालेका पारिणामिक होता है । इस व्यवस्थाके अनुसार दो शक्यशकाल स्निग्ध या रूक्ष परमाणुका  
कार शक्यशकाला स्निग्ध या रूक्ष परमाणु पारिणामिक होता है । इससे पूर्व अवस्थाओंका त्याग  
होकर उनसे भिन्न एक तीसरी अवस्था उत्पन्न होती है । जत उनमें एकस्यता आ जाती है । अन्यथा  
सक्य और काल तन्तुके समान संयोगक होनेपर भी पारिणामिक न होनेसे सब अलग अलग ही स्थित  
रहगा । परन्तु उक्त विधिसे बन्धके होनेपर ज्ञानावरणादि कमोंकी तीस कोशाकीही सामर स्थिति  
बन जाती है ।

विशेषात्—यहाँ एक परमाणुका अन्य परमाणुस बन्ध कैसे होता है इसका विचार किया गया है ।  
रूक्ष और स्निग्ध ये विरोधी गुण हैं । जिनमें स्निग्ध गुण होता है उसमें रूक्ष गुण नहीं होता और जिसमें  
रूक्ष गुण होता है उसमें स्निग्ध गुण नहीं होता । ये गुण ही बन्धके कारण होते हैं । किन्तु इसका अभिप्राय  
यह नहीं कि रूक्ष और स्निग्ध गुणका सम्भावनात्र बन्धका कारण है क्योंकि ऐसा माननेपर एक भी  
पुष्कल परमाणु बन्धके बिना नहीं रह सकता इसलिए यहाँपर विधिविधेय द्वारा बतलाया गया है कि  
किन्तु पुष्कल परमाणुओंका परस्परमें बन्ध होता है और किन्तु नहीं होता है । जो स्निग्ध और रूक्ष  
गुण जघन्य शक्यशकाल लिए हुए होते हैं उन पुष्कलपरमाणुओंका बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार गुणकी  
समानताके होनेपर सदृशोंका बन्ध नहीं होता किन्तु अधिका गुणवाले पुष्कलपरमाणुका ही अधीन  
गुणवाले पुष्कलपरमाणुके साथ होता है । ऐसा बन्ध स्निग्ध परमाणुका स्निग्ध परमाणुके साथ रूक्ष  
परमाणुका रूक्ष परमाणुके साथ और स्निग्ध परमाणुका रूक्ष परमाणुके साथ होता है यह नियम है ।  
इसके अनुसार निम्न व्यवस्था फलित होती है—

क्रमांक	गुणांस	समूहबन्ध	विसृष्टबन्ध
१	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२	जघन्य+एकादि अधिक	नहीं	नहीं
३	जघन्येतर+समजघन्येतर	नहीं	नहीं
४	जघन्येतर+एकाधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं
५	जघन्येतर+अधिकजघन्येतर	है	है
६	जघन्येतर+ध्यादिकाधिकजघन्येतर	नहीं	नहीं

तत्सर्वसूत्रमें विधि यह बन्ध-व्यवस्था प्रबन्धनसारका जनसंरण करती है । प्रबन्धनसारमें भी

‘उत्पादव्ययघ्नौव्यमुक्त सत् इति द्रव्यलक्षणमुक्त पुनरपरेण प्रकारेण द्रव्यलक्षण प्रतिपादनाथमाह—

गुणपययवद् द्रव्यम् ॥ ३८ ॥

गुणाश्च पययाश्च गुणपयया । तेऽप्य सन्तीति गुणपययवद् द्रव्यम् । अत्र मतोर त्पत्तावुक्त एव समाधिः । कथञ्चित् भेदोपपत्तेरिति । के गुणा के पर्याया ? अन्वयिनो गुणा व्यतिरेकिण पर्याया । उभयरूपेत द्रव्यमिति । उक्त च—

“गुण इति द्रव्यविहाण द्रव्यविकारो हि पञ्चवो मणिदो ।

तेहि षण्णू दन्व अमुदपसिद्ध इवे णिष ॥” इति ॥

एतदुक्त भवति द्रव्य द्रव्यान्तराद् येन विशिष्यते स गुण । तेन हितद् द्रव्य विशीयते ।

इसी प्रकारसे-वचन व्यबस्थाना निर्देश किया गया है किन्तु पटस्फण्डागमके वगणालक्षणमें कही गई वचन व्यबस्था इससे कुछ भिन्न है जिसका ठीक तरहसे परिज्ञान होनेके लिए आगे कोष्ठक दिया जाता है—

क्रमांक	गुणादा	सदुक्तवचन	विसदुक्तवचन
१	जघन्य+जघन्य	नहीं	नहीं
२	जघन्य+एकादिअधिक	नहीं	नहीं
३	जघन्यतर+समजघन्येतर	नहीं	है
४	जघन्यतर+एकाधिक जघन्येतर	नहीं	है
५	जघन्येतर+द्वेषधिक जघन्येतर	है	है
६	जघन्यतर+भ्यादि अधिक जघन्यतर	नहीं	है

‘उत्पादव्ययघ्नौव्यमुक्त सत्’ इस प्रकार द्रव्यका लक्षण कहा किन्तु अब अन्य प्रकार से द्रव्यके लक्षणका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहत हैं—

गुण और पर्यायबाला द्रव्य है ॥ ३८ ॥

जिसमें गुण और पर्याय दोनों हैं वह गुण पर्यायबाला कहलाता है और वही द्रव्य है । यहां ‘मनुष्य प्रत्यय का प्रयोग करते बनता है इस विषयमें पहल समाधान कर आय हैं । तात्पर्य यह है कि द्रव्यका गुण और पर्यायोंस कथञ्चित् भव है इसलिये यहाँ ‘मनुष्य प्रत्ययका प्रयोग बन आता है ।

कहा—गुण किन्हें कहत है और पर्याय किन्हें कहत है ?

समाधान—गुण अन्वयी होते हैं और पर्याय व्यतिरेकी ।

कहा इन दोनोंस मुक्त द्रव्य होता है । कहा भी है—

‘द्रव्यमें भव करनेबाला घमको गुण और द्रव्य के विकारको पर्याय कहते हैं । द्रव्य इन दोनोंस मुक्त होता है । तथा वह अपुनसिद्ध और नित्य होता है ।

तात्पर्य यह है कि जिसमें एक द्रव्य दूसरे द्रव्यस मुदा होता है वह गुण है । इसी गुणक द्वारा उस

असति तस्मिन् द्रव्यसकरप्रसङ्गे स्यात् । तद्यथा—जीव पुद्गलादिभ्यो ज्ञानादिभिर्गुणै  
 विशिष्यते पुद्गलादयश्च रूपादिभिः । ततश्चाविशेषे सकरः स्यात् । ततः सामान्या  
 पक्षया अन्वयिनो ज्ञानादयो जीवस्य गुणा पुद्गलादीनां च रूपान्य । तेषां विकारा विशे  
 पात्मना भिद्यमाना पर्यायाः । घटज्ञान पटज्ञान क्रोधा मानो गन्धो वर्णस्तीक्ष्णो मन्द इत्यव  
 मादयः । तेष्व्योऽन्यत्वं कथञ्चित्पद्यमानः समुदायो द्रव्यव्यपदेशभाक् । यन् हि भवषा  
 समुदायोऽर्थान्तरभूत एव स्यात् सर्वाभावः स्यात् । तद्यथा—परस्परविरक्षणानां समु  
 दाय मति एकानर्थान्तरभावान् समुदायस्य सर्वाभावः परस्परतोऽर्थान्तरभूतत्वात् । यदि  
 रूपं तस्मादर्थान्तरभूता रसादयः । ततः समुदायोऽर्थान्तरभूतः । यश्च रसादिभ्योऽ-  
 र्थान्तरभूताद्रूपाद्यनर्थान्तरभूतः समुदायः स कथं रसादिभ्योऽर्थान्तरभूतो न भवत् । तदश्च  
 रूपमात्रः समुदायः प्रमक्तः । न चक रूपः समुदायो भवितुमर्हति । ततः समुदायाभावः ।  
 समुदायाभावाच्च तदनर्थान्तरभूतानां समुदायिनामप्यभावः इति सर्वाभावः । एव रसादि

द्रव्यका अन्तित्वं निश्चयं होता है । यदि भवक गुण न हो तो द्रव्योंमें सांख्य हो जाय । सुखासा इस प्रकार ह—

जीव द्रव्य पुद्गलादिक द्रव्योंस ज्ञानादि गुणोंके द्वारा भवको प्राप्त होता है और पुद्गलादिक द्रव्य  
 भी अपने रूपादि गुणोंके द्वारा भेदको प्राप्त होते हैं । यदि ज्ञानादि गुणोंके कारण विशेषता न मानी  
 जाय तो सांख्य प्राप्त होता है । इसलिये सामान्यकी अपेक्षा जो अन्वयी ज्ञानादि हूँ वे जीवके गुण हैं  
 और रूपादिक पुद्गलादिकक गुण हूँ । तथा इनके विकार विशेषरूपस भेदको प्राप्त होते हैं इसलिये  
 वे पर्याय कहलाते हैं । जैसे घटज्ञान पटज्ञान श्रेष्ठ मान गन्ध वर्ण तीक्ष्ण और मन्द आदिक । तथा जो  
 इनस कथञ्चित् भिन्न हूँ और समुदाय रूप हूँ वह द्रव्य कहलाता है । यदि समुदायको सर्वथा अभिन्न  
 मान लिया जाय तो सबका अभाव प्राप्त होता है । सुखासा इस प्रकार ह—परस्परविरक्षण भव्योंका  
 समुदाय होनेपर यदि उसे एक और अभिन्न माना जाय तो समुदायका और सबका अभाव  
 प्राप्त होता है क्योंकि वे भ्रम परस्पर भिन्न हैं । जो यह रूप हूँ उससे रसादिक भिन्न हूँ । अब यदि इनका  
 समुदाय अभिन्न माना जाता है तो रसादिकस भिन्न जो रूप हूँ और उससे अभिन्न जो समुदाय हूँ वह  
 रसादिकस भिन्न कस नही होगा अर्थात् अकथ्य होगा । और इस प्रकार समुदाय रूपमात्र प्राप्त होता है ।  
 परन्तु एक रूप गुण समुदाय हो नहीं सकता इसलिये समुदायका अभाव प्राप्त होता है और समुदायका  
 अभाव ही जानेस उसस अभिन्न समुदायियोंका भी अभाव होता है इस प्रकार समुदाय और समुदायी

एवपि योज्यम् । तस्मात्समुदायमिच्छता कश्चिदवधान्तिरभाव एषितव्यः ।

उक्तानां द्रव्याणां लक्षणनिर्देशात्तद्विषय एव द्रव्याध्यवसाये प्रसन्नते अनुक्तद्रव्यसूचनायमिदमाह—

कालश्च ॥ ३९ ॥

किम् ? 'द्रव्यम्' इति वान्यशेषः । कुत ? तल्लक्षणोपेतत्वात् । द्विविधलक्षणमुक्तम्—  
'उत्पादव्ययघ्नोऽध्ययमुक्तं सत्' 'गुणपर्यायवद् द्रव्यम्' इति च । तदुभयलक्षणकालस्य

संभवा अभावः हो जाता है । जिस प्रकार रूपकी अपेक्षा कथन किया उसी प्रकार रसादिककी अपेक्षा भी कथन करना चाहिये । इसलिये यदि समुदाय स्वीकार किया जाता है तो वह कश्चित् अभिन्न ही मानना चाहिये ।

विशेषात्—पहिले उत्पाद व्यय और घ्नोऽध्ययमुक्त द्रव्य होता है यह कह आण है । यहाँ प्रकाश १  
रान्तरस द्रव्यका लक्षण कहा गया है । इसमें द्रव्यकी गुणपर्यायवाला वतलाया गया है । बात यह है कि प्रत्येक द्रव्य अनन्तगुणोंका और क्रमस होनेवाली उनकी पर्यायोंका पिण्डमात्र है । सर्वत्र गुणोंकी १  
बन्धनी और पर्यायोंकी व्यतिरक्ती वतलाया है । इसका अर्थ यह है कि जिनस धारामें एकरूपता बनी रहती है व गुण कहलाते हैं और जिनस उसमें भेद प्रतीत होता है वे पर्याय कहलाते हैं । जीवमें ज्ञानादिक १५  
की धाराका पुद्गलमें रूप रसादिककी धाराका अमद्रव्यमें गतिहस्तकी धाराका अघमद्रव्यमें स्थिति हस्तकी धाराका आकाशमें अखगाहन हस्तकी धाराका और काल द्रव्यमें वतनाका सभी विच्छन्न १  
गर्ही होता इसलिए वे ज्ञानादिक उस उस द्रव्यके गुण हैं किन्तु वे गुण सदाकाल एकरूप नहीं रहते । जो नित्य द्रव्योंके गुण हैं उन्हें यदि छोड़ भी दिया जाय तो भी जीव और पुद्गलोंके गुणोंमें प्रतिसमय स्पष्टतया परिणाम लक्षित होता है । उदाहरणार्थ—जीवका ज्ञानगुण समान अवस्थामें सभी मतिज्ञानरूप १  
होता है और सभी श्रुतज्ञान रूप । इसीलिए ये मतिज्ञानानि ज्ञानगुणकी पर्याय हैं । इसीप्रकार अन्य गुणोंमें भी जान लना चाहिये । द्रव्य सदा इन गुणरूप पर्यायोंमें रहता है इसलिए वह गुणपर्यायवाला १  
कहा गया है । फिर भी गुण और पर्यायको द्रव्यसं सर्वथा भिन्न न जानना चाहिये । वे दोनों मिलकर द्रव्यकी आत्मा है इसका अभिप्राय यह है कि गुण और पर्याय को छोड़कर द्रव्य कोई स्वतन्त्र बन्तु नहीं ।  
पूर्वोक्त द्रव्योंके लक्षणका निर्देश करनेस यह प्राप्त हुआ कि जो उस लक्षणका विषय है वही द्रव्य है, अतः अभी तक जिस द्रव्यका कथन नहीं किया उसकी सूचना करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं— २५

कालः भी द्रव्य है ॥ ३० ॥

धारा—क्या है ?

समाधान—'द्रव्य' है इतना वाक्य धार है ।

धंका—काल द्रव्य क्यों है ?

समाधान—क्यों कि इसमें द्रव्यका लक्षण पाया जाता है ।

जो उत्पाद व्यय और घ्नोऽध्ययमुक्त है वह मत् है तथा जो गुण और पर्यायवाला है वह द्रव्य है

विद्यते। तथा—धौव्य तावत्कालस्य स्वप्रत्यय स्वभावव्यवस्थानात् । व्ययोदयो परप्रत्ययो अगुरुलघुगुणवृद्धिहा यपेक्षया स्वप्रत्ययौ च । तथा गुणा अपि कालस्य साधारणा साधारणरूपा सन्ति । तत्रासाधारणो वतनाहेतुत्वम् भाधारणादचाधेतनत्वामूतत्वसूक्ष्मत्वागुरुलघुत्वावय । पर्यायाश्च व्ययोत्पादलक्षणा योज्या । तस्माद् द्विप्रकारलक्षणोपत ३ त्वादाकाशादिवत्कालस्य द्रव्यत्व सिद्धम् ।

तस्यास्तित्वलिङ्ग धर्मादिवद् व्याख्यातम् वतनालक्षण काल' इति' । ननु किमय मय काल' पृथगुच्यते ? यत्रव धर्मादय उक्तास्तत्रवायमपि वक्तव्य' अजीवकाया धर्मा धर्माकाशात्पुद्गला इति ? नव शब्द क्यम्, तत्रोद्देशो सति कायत्वमस्य स्यात् । नेप्यत च मुख्योपचारप्रदेशप्रचयकल्पनाभावात् । धर्मादीनां ताद्य-मुख्यप्रदेशप्रचय उक्त' असस्य या' प्रदेशा' इत्येवमादिना । अणोरप्येकप्रदेशस्य पूर्वोत्तरभाव'प्रज्ञापननयापेक्षयोपचार कल्पनया प्रदेशप्रचय उक्त' । कालस्य पुनर्द्वेषाऽपि प्रदेशप्रचयकल्पना नास्तीत्यकायत्वम् । अपि च तत्र पाठ निष्क्रियाणि च इत्यत्र धर्मादीनामाकाशान्तानां निष्क्रियत्वे प्रति ३ इस प्रकार द्रव्यका दो प्रकारस लक्षण कहा है । ये दोनों ही लक्षण कालमें पाये जाठ हैं । असासा इस प्रकार है—

कालमें घृणता स्वनिमित्तक ह क्यो कि बहु अपन स्वभावमें सदा स्थित है । व्यय और उत्पाद परनिमित्तक है और अगुरुलघु गुणकी हानि और वृद्धिकी अपेक्षा स्वनिमित्तक भी ह । तथा काल के साधारण और असाधारण रूप दो प्रकारक गुण भी हैं । उनमेंसे असाधारण गुण वतनाहेतुत्व है और साधारण गुण अचेतनत्व अमूर्तत्व सूक्ष्मत्व और अगुरुलघुत्व आदिह है । इसी प्रकार व्यय और उत्पादक्य पर्याय भी प्रतिष्ठ कर लेना चाहिये । इसलिये कालमें जब द्रव्यके दोनों लक्षण पाये जाठ हें तो वह आकाशके समान स्वतन्त्र द्रव्य है यह सिद्ध होता ह ।

धर्मादिक द्रव्यके समान इसक अस्तित्वके कारण का व्याख्यान किया ही ह कि कालका लक्षण वर्तना है ।

शका—काल द्रव्यको अलगसे क्या कहा ? जहाँ धर्मादिक द्रव्योंका कथन किया ह वही पर इसका कथन करना या जिससे प्रथम सूत्रका रूप निम्न होता—अजीवकाया धर्माधर्माकाशात्पुद्गला समाधान—इस प्रकार शका करना ठीक नहीं ह क्योंकि वहाँ पर यदि इसका कथन करत तो इस कायपता प्राप्त होता । परन्तु काल द्रव्य कायवान् मही कहा है क्योंकि इसमें मुख्य और उपचार दोनों प्रकारसे प्रदेशप्रथमकी कल्पनाका अभाव ह । धर्मादिक द्रव्योंका तो 'असस्यया' प्रदेशा' इत्यादिक सूत्र द्वारा मुख्यरूपसे प्रदेशप्रचय कहा ह । उसी प्रकार एक प्रदेशवाले अणुका भी पूर्वोत्तरभाव प्रज्ञापन नयकी अपेक्षा उपचारकल्पनासे प्रदेशप्रचय कहा है परन्तु कालके दोनों प्रकारसे प्रदेशप्रचयकी कल्पना नहीं बसती इसलिये वह अकाय ह । दूसरे यदि प्रथम सूत्र में कालका पाठ रखते हैं तो निष्क्रियाणि च

पादित इतरेषां जीवपुद्गलाना सक्रियत्वप्राप्तिवत्कारस्यापि सक्रियत्व स्यात् । अथाकाशात्प्राक्काल उद्दिश्येत ? तन्न, 'आ आकाशादेकद्रव्याणि इत्येकद्रव्यत्वमस्य स्यात् । तस्मात्पुषगिह कालोद्देश क्रियते । अनेकद्रव्यत्वे सति किमस्य प्रमाणम् ? लोकाकाशस्य यावन्त प्रदेशस्तावन्त कालाणवो निष्क्रिया एककाशाप्रदेशे एककवृत्त्या लोक व्याप्य व्यवस्थिता । उक्तं च—

“लोगागासपदेसे एकैकेके जे द्विया हु एकका ।

रयणाण रासीविव ते कालाणु मुणेयध्वा ॥”

रूपादिगुणधिरहादमूर्ता ।

यहांपर घमस लकर आकाश तक के द्रव्योंको निष्क्रिय कहनपर जस जीव और पुद्गलोंको सक्रियत्व प्राप्त होता है वस ही काल द्रव्यको भी सक्रियत्व प्राप्त होता है ।

शका—इस दोषको दूर करनेके लिये आकाशस पहल कालको रक्त विया जाय ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है क्योंकि 'आकाश तक एक द्रव्य ह इस सूत्र बचनके अनुसार यदि कालको आकाशके पहल रक्त है तो उसे एक द्रव्यत्व प्राप्त होता ह ।

ये सब दोष न रहें इसलिये कालका अलगसे कथन किया है ।

शका—काल अनेक द्रव्य हें इसमें क्या प्रमाण ह ?

समाधान—लोककाशाक जितन प्रदेश ह उतन कालाणु हें और वे निष्क्रिय हें । तात्पर्य यह ह कि लोककाशके एक एक प्रदेशपर एक एक कालाणु अवस्थित है । कहा भी ह—

'लोककाशाके एक एक प्रवक्ष पर जो रत्नोंकी राशिके समान अवस्थित हें उन्हें कालाणु जानो ॥

य कालाणु रूपादि गुणोंसे रहित होनेके कारण अमृत हें ।

विशेषार्थ—यहसे पौष द्रव्योंके अस्तित्वकी जरूरा कर आये है । यहाँ छठा द्रव्य काल ह इसका विचार किया जा रहा है । काल द्रव्य ह या नहीं इस विषयमें स्वताम्बर परम्परामें दो मत मिलते हैं । एक मत तो कालको द्रव्यरूपसे स्वीकार करता ह और दूसरा मत कालको स्वतंत्र द्रव्य नहीं मानता । इस दूसरे मतके अनुसार सूर्यादिक निमित्तसे जो दिन रात घड़ी-घण्टा पर-विपर आदि रूप काल अनुभवमें आता ह वह सब पुद्गल द्रव्यकी पर्याय है । किन्तु विचारणीय प्रश्न यह है कि इन जीव पुद्गल आदि द्रव्योंका परिणमन किसके निमित्तसे होता ह ? यदि कहा जाय कि उत्पन्न होना ध्वय होना और ध्रुव रहना यह प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव ह । इसके लिए अन्य निमित्तक माननेकी क्या आवश्यकता ?

तो इस प्रश्नपर यह तर्क होता है कि यदि इस तरह सर्वथा स्वभावसे ही प्रत्येक द्रव्यका परिणमन माना जाता है तो गति स्थिति और अवगाहना भी सर्वथा स्वभावसे मान लन में क्या आपत्ति ह । और एनी शास्त्रमें केवल जीव और पुद्गल ये दो द्रव्य ही अवशिष्ट रहत ह ण्य द्रव्योंका अभाव प्राप्त होना ह इतना ही क्यों जीव और पुद्गलका तथा पुद्गल और पुद्गलका बन्ध भी सर्वथा स्वाभाविक मानना



पड़ता है। निमित्त-निमित्तक भावक माननेकी कोई आवश्यकता ही नहीं रहती और ऐसी अवस्थामें मुक्त जीव भी स्वभावसं बंधन रोगेता तथा ससारी जीव भी बिना प्रयत्नके कभी भी मुक्त हो जायगा। यदि कहा जाय कि गति स्थिति आवि काय ह और जितने भी काय होत हैं व निमित्त और उपादान इन दो क मिरुने पर ही हात हैं इसलिये गति स्थिति और अवगाहन रूप कार्योंके निमित्तरूपसे घम अधर्म और आकाश द्रव्यका अस्तित्व स्वीकार किया जाता है तो प्रत्येक द्रव्यके परिणामरूपसे काल द्रव्यक अस्तित्वके स्वीकार करनेमें क्या हानि है अर्थात् कुछ भी नहीं। इस प्रकार विचार करनपर काम द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता ह।

फिर भी यह काल द्रव्य जीव आदि अय द्रव्योंके समान न तो असंख्यातप्रदशी है और न अनन्त प्रण्शी ह किन्तु लोकाकाशके जितने प्रवेश ह उतने काल द्रव्य हैं और प्रत्येक कालद्रव्य लोकाकाशक एक एक प्रवेश पर अवस्थित ह। सुलासा इस प्रकार ह—

प्रथम दो प्रकारका है—तिर्यकप्रथम और ऊर्ध्वप्रथम। प्रदर्शक प्रथमको तिर्यकप्रथम कहते हैं और कालनिमित्तक पर्यायप्रथमको ऊर्ध्वप्रथम कहते ह। आकाश अवस्थित अनन्तप्रवेशवाला होनेस घम और अधम अवस्थित असंख्यात प्रवेशवाला होनेसे जीव असंख्यात प्रवेशवाला होनेस और पुद्गल द्रव्यकी अपेक्षा अनेक प्रवेशरूप क्षणितसं मुक्त होनेके कारण इनका प्रवेशप्रथम बन जाता ह किन्तु काल द्रव्य क्षणित और व्यक्ति दोनों रूपस एक प्रवेशरूप होनेके कारण उसमें प्रवेशप्रथम नहीं बनता। ऊर्ध्व प्रथम सब द्रव्योंका होता ह किन्तु इतनी विशेषता ह कि अन्य पाँच द्रव्योंमें समयनिमित्तक पर्यायप्रथम रूप ऊर्ध्वप्रथम होता है और काल द्रव्यमें मात्र समयप्रथमरूप ऊर्ध्वप्रथम होता ह, क्यों कि अन्य द्रव्योंक परिणाममें काल द्रव्य निमित्त है और काल द्रव्यके अपने परिणाममें अन्य कोई निमित्त नहीं है। वही निमित्त ह और वही उपादान है। जिस प्रकार बहु अन्य द्रव्योंक परिणाममें निमित्त होता ह उसी प्रकार अपने परिणाममें भी निमित्त होता ह। किन्तु जिस प्रकार अन्य द्रव्य अपने अपने उपादानके अनुसार परिणाम करत हैं उसी प्रकार काल द्रव्य भी अपने उपादानके अनुसार परिणाम करता ह।

इस प्रकार यद्यपि उत्पाद भ्य और द्रौढ्यरूपस तथा गुण और पर्यायरूपस काल द्रव्यके अस्तित्वकी सिद्धि हा जाती ह पर बहु अलच्छ एकप्रदशी ह यह सिद्ध नहीं होता इसलिये आगे इसी बात का विचार करत ह—

एक पुद्गल परमाणु मल्लगतिस एक आकाश प्रवेशसे दूरमे आकाश प्रवेश पर जाता ह और इसमें कुछ समय भी लगता है। यदि विचार कर दया जाय तो ज्ञात होगा कि यह समय ही काल द्रव्य भी पर्याय ह जो कि अतिदूरम होनेस निर्गम ह। यदि कालद्रव्यका लोकाकाशके बराबर अगण्ड और एक मात्रा जाता ह तो इस अगण्ड समय पर्यायकी निरूपित नहीं हाती क्याकि पुद्गल परमाणु जब एक कालानुरो छोटा र दूरमे कालानुर प्रति गमन करता ह तब वही दोनों कालानु पुनः पुनः होनेस समयका मप बन जाता ह। और यदि एक अगण्ड लोकेके बराबर काल द्रव्य होवे तो समय पर्यायकी सिद्धि किम तरह हो सकती ह? यदि कहा जाय कि कालद्रव्य लोकाकाशक असंख्यात प्रण्शी ह उमर एक प्रदशम दूगरे प्रवेश प्रति जानवर समय पर्यायकी सिद्धि हा जायगी ता इगका समाधान यह ह कि एका मानन पर

वतनालक्षणस्य मुख्यस्य कालस्य प्रमाणमुक्तम् । परिणामादिगम्यस्य व्यवहार  
कालस्य किं प्रमाणमित्यत इदमुच्यते—

सौप्तस्तसमय ॥ ४० ॥

साम्प्रतिकस्यकममयिकस्त्रेऽपि अतीता अनागताश्च समया अनन्ता इति वृत्त्वा  
'अनन्तसमय इत्युच्यते । अथवा मुख्यस्यैव कालस्य प्रमाणावधारणायमिदमुच्यते । १  
अनन्तपर्यायवतनाहेतुत्वादेवोऽपि कालाणुरनन्त इत्युपचयते । समय पुन परमनिश्चये  
कालाशस्तप्रचयविशेष आवलिनादिखगन्तव्यम् ।

आह गुणपययवद् द्रव्यमित्युक्तं तत्र के गुणा इत्यत्रोच्यते—

द्रव्याश्रया निगुणा गुणा ॥ ४१ ॥

द्रव्यमाश्रयो येषां ते द्रव्याश्रयाः । निष्प्रान्ता गुणेश्चो निगुणा । एवमुभयलक्षणो १०

एक अलक्ष्यद्रव्यक एक प्रदत्तस दूयरे प्रदेदापर जान पर समय पर्यायका भन् नहीं बनता । अस्मिन्  
समय पर्यायमें भद्र सिद्ध करनक लिए काल द्रव्यको अणुरूपमें स्वीकार कर लिया गया है । इस प्रकार  
काल द्रव्य क्या है और वह एक प्रदत्तो कम् है इस बातका बिचार किया ।

वतना लक्षणवाल मुख्य कालका प्रमाण कहा । परन्तु परिणाम आदिग डाय जानने योग्य व्यवहार  
कालका क्या प्रमाण है ? इस बातका जान करानक लिय अब भागका सूत्र कहत हैं— १५

यह अनन्त समयवाला है ॥ ४० ॥

यद्यपि वतमान काल एक समय वाला है तो भी अतीत और अनागत अनन्त समय है एसा मानकर  
कालको अनन्त समयवाला कहा है । अथवा मुख्य कालका निश्चय करनक लिय यह सूत्र कहा है ।  
तात्पर्य यह है कि अनन्त पर्याय वतना गुणक निमित्तम होती हैं इसलिय एक कालाणुरो भी  
उपचारमें अनन्त कहा है । परन्तु समय अर्थमें सूत्र कालीय है और उसका समुदायको आदि २  
आदि जानना चाहिये ।

बिधायार्थ—समय एव द्रव्य और पर्याय शर्तो अर्थमें व्यवहृत होता है । यहाँ पर्यायरूप अथ  
लिया गया है । इसमें व्यवहार काल और निश्चय काल दोनोंकी सिद्धि होती है । एक एक समयका  
समुच्चय होकर वा आदिनि पक्ष आदि कालका व्यवहार होता है वह व्यवहारकाल है और यह  
समय-पर्याय विना पर्यायिक महा हो गतनी अगम निश्चय कालका ज्ञान होता है यह उक्त २५  
कथनका तात्पर्य है ।

गुण और पर्यायवाला द्रव्य है यह परम कह आय है । सब गुण क्या है यह वतनाक लिय  
भागका सूत्र कहत है —

जो निरन्तर द्रव्यमें रहत है आर गुणरहित है वे गुण है ॥ ४१ ॥

द्रव्यक रहनका आशय द्रव्य है द्रव्याश्रय कहलान है और जो गुणोंमें रहत है वे निगुण क ३

पेता गुणा इति । 'निर्गुणा' इति विशेषण द्रव्यणुकादिनिवृत्त्ययम् । ता यपि हि नारण भूतपरमाणुद्रव्याश्रयाणि गुणवन्ति तु तस्मात् निर्गुणा' इति विशेषणान्तानि निवर्तितानि भवन्ति । ननु पर्याया अपि घटसस्थानादयो द्रव्याश्रया निर्गुणाश्च, तेषामपि गुणत्व प्राप्नोति ? 'द्रव्याश्रया' इति वचनात् नित्य द्रव्यमाश्रित्य वसन्त' येत गुणा इति विशया त्पर्याया निवर्तिता भवन्ति । ते हि कावाचित्का इति ।

जात हैं । इसप्रकार इन दोनों लक्षणोंस युक्त गुण होत हैं । सूत्रमें 'निर्गुणा' यह विशेषण द्रव्यणुक आदिके निराकरण करनेक लिये दिया है । व भी अपन कारणभूत परमाणु द्रव्यक आश्रयसे रहत हैं और गुणबालु हैं इसलिये निर्गुणा' इस विशेषणसे उनका निषेध किया गया है ।

संज्ञा—घटसस्थान आदि जितनी पर्याय हैं व सब द्रव्यके आश्रयसे रहती हैं और निर्गुण होती ह अतः गुणक उक्त लक्षणक अनुसार उन्हें भी गुणत्व प्राप्त होता है ?

समाधान—सूत्रमें जो 'द्रव्याश्रया' विशेषण ह उसका यह अर्थिप्राय है कि जो सदा द्रव्यक आश्रयसे रहत है व गुण है । इस प्रकार सदा' विशेषण सगनेस पर्यायोंका निषेध हा जाता है अर्थात् गुणका लक्षण पर्यायोंमें नहीं जाता ह क्योंकि पर्याय कावाचित्क होती है ।

विशयार्थ—पहिले गुण और पर्यायवाला द्रव्य है यह कह आये हैं । यहाँ गुणके स्वरूपका विचार किया गया है । जब कि द्रव्यका गुण और पर्यायवाला वतलाया ह तब इसीसे स्पष्ट ह कि द्रव्य गुणक आश्रयसे रहत है अर्थात् द्रव्य आधार है और गुण आश्रय है । पर इसस आधार और आश्रयमें दही और कुम्हक समान संवधा मदपक्षका ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि गुण द्रव्यक आश्रयसे रहत हुए भी व उससे कथञ्चिन्तु अमिश्र है जैसे—तल तिलके सब अवयवोंमें ब्याप्त होकर रहता ह वस ही प्रत्येक गुण द्रव्यक सभी अवयवोंमें समान रूपसे ब्याप्त होकर रहता है पर इसस द्रव्यणुक आदिमें भी यह लक्षण घटित हा जाता है क्योंकि द्रव्यणुक आदि भी अपन आधारभूत परमाणु द्रव्यक आश्रयसे रहते हैं । अतएव जो स्वयं विशेष रहित हों व गुण हैं यह कहा ह । एसा नियम है कि जैसे द्रव्यमें गुण पाय जाते हैं वस गुणमें अग्य गुण नहीं रहते । अतएव गुण स्वयं विशेष रहित रहते हैं इस प्रकार यद्यपि जो द्रव्यक आश्रयसे रहते हैं और स्वयं विशेष रहित हैं व गुण हैं गुणका इतना स्वरूप फलित हो जाता ह पर यह पर्यायोंमें भी पाया जाता ह । क्योंकि व भी द्रव्यक आश्रयसे रहती हैं और स्वयं विशेषरहित हामी ह । इसलिये इस अतिव्याप्ति दोषका निराकरण करनेक लिये जो द्रव्यक आश्रय से रहत है इसका अर्थ—जो द्रव्यक आश्रयसे सदा रहते ह इतना समझना चाहिये । इसप्रकार गुणोंके स्वरूपका विचार किया । गुणका एक नाम विशेष भी है । जिनके निमित्तस एक द्रव्य अथ द्रव्यसे भव को प्राप्त हों व विशेष अर्थात् गुण ह यह उक्त कथनका सात्वर्थ है । ऐसे गुण प्रत्येक द्रव्यमें अनन्त हात ह । जनमें कुछ नाममाय हाते ह और कुछ विशेष । जो एकाधिक द्रव्योंमें उपलब्ध होत ह व नामान्यगुण कहलाते हैं और जो प्रत्येक द्रव्यकी विशेषताको व्यक्त करत हैं व विशेषगुण कहलाते हैं ।

असकृत् 'परिणाम'शब्द उक्त । तस्य कोऽय इति प्रश्ने उत्तरमाह—

तद्भावा परिणामः ॥ ४२ ॥

अथवा गुणा द्रव्यादर्शान्तरभूता इति कोऽयश्चिद्वेशन तत्किं भवतोऽभिमतम् ? न इत्याह—यद्यपि कथञ्चिद् व्यपदेशादिभन्हे त्वपेक्षया द्रव्यादये तथापि तदव्यतिरेकात्तत्परिणामान्च नान्ये । यद्येव म उच्यता क परिणाम इति ? तद्विद्वेषयायमिदमुच्यते—धर्मादीनि द्रव्याणि येनात्मना भवन्ति स तद्भावास्तत्त्व परिणाम इति आख्यायते । स द्विविधोऽनादिरादिमाश्च । तत्रानादिधर्मादीनां गत्युपग्रहादि सामान्यापेक्षया । स एवादिमाश्च भवति विधेयापेक्षया इति ।

इति सत्त्वायवृत्तौ मर्वायमिद्विसञ्ज्ञिकायां पञ्चमोऽध्यायः ।

परिणाम शब्दा अनवधार उल्लेख विधा परन्तु उक्तया क्या तात्पर्य ह ऐमा प्रश्न होनापर १  
अगळे मूत्र द्वारा इसीचा उत्तर गेत है—

उत्पत्ता होना अथात् प्रति समय यदल्लते रहना परिणाम है ॥४२॥

अथवा गुण द्रव्यम अलग हं यह किन्हीका मत ह । वह क्या आपक (अम) मतमें स्वीकार ह ? नहीं इमामिय कहत ह कि सजा आदिक निमित्तम प्राप्त होतबास भदक कारण गुण द्रव्यम कथयित् मित्र ह तो भी व द्रव्यम मित्र नहा पाय जात ह और द्रव्यम परिणाम ह इमामिय मित्र नही भी ह । यदि एमा ह ता वह बात कथिय जिमम परिणामका स्वरूप ज्ञात हा । कस एसी बातना निश्चय करनक शिय कहत ह—

धर्मान्नि द्रव्य जिम रूपम हात हे कह तद्भावा या तत्त्व ह और इस ही परिणाम कथ्ये हे । यह वा प्रकारका ह—अनादि और माणि । उनमें धर्मान्नि द्रव्यम आ गत्युपग्रहादि हात ह क सामान्यकी अपेक्षा अनादि ह और विधाकी अपेक्षा माणि ह ।

एत प्रकार मर्वायमिद्वि नामत तत्त्वायवृत्तिमें पांचवा अध्याय समाप्त हुआ ।

## अथ षष्ठोऽध्याय

आहं अजीवपदार्थो व्याख्यात । इदानीं तदनन्तरोद्देशभागात्प्रवचनपदार्थो व्याख्येय इति ततस्तत्प्रसिद्धपद्यमिदमुच्यते—

कायवाङ्मनःकर्म योगः ॥ १ ॥

१. कायादयः शब्दा व्याख्यातार्थाः । कर्म क्रिया इत्यनर्थान्तरम् । कायवाङ्मनसा कर्म कायवाङ्मनःकर्म योग इत्याख्यायते । आत्मप्रवेशपरिस्पन्दो योगः । स निमित्तमन्तः त्रिधा भिद्यते । काययोगो वाग्योगो मनोयोग इति । तद्यथा—वीर्यान्तरायक्षयोपशमसद्भावे सति औत्तारिकादिसप्तविधकायवगणायतमालम्बनापेक्ष आत्मप्रवेशपरिस्पन्दः काययोगः । शरीरनामकर्मोदयापादिसप्तवाग्वगणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्प्रक्षाराद्याव  
१. रणक्षयोपशमापादिताम्यन्तरवाग्वगणालम्बने सति वीर्यान्तरायमत्प्रक्षाराद्याव  
स्पन्दो वाग्योगः । अभ्यन्तरवीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमात्मकमनोऽलम्बिसन्निधाने  
वाहृषनिमित्तमनोवगणालम्बने च सति मनपरिणामाभिमुखस्यात्मप्रवेशपरिस्पन्दो मनो

## छठ्वां अध्याय

जीव और अजीवका व्याख्यान किया । अब उसके भाव आत्मव पदार्थका व्याख्यान रूप प्राप्त  
११. ह । अब उस स्पष्ट करनेके लिये भागका सूत्र कहते हैं—

काय, वचन और मनकी क्रिया योग है ॥१॥

- काय आदि छठ्ठोंका व्याख्यान पहले कर आये हैं । कर्म और क्रिया ये एकार्थवाची नाम हैं । काय वचन और मनकी क्रियाको योग कहते हैं यह इसका तात्पर्य है । आत्माके प्रवेशोंका परिस्पन्द-  
हस्तचक्रन योग है । यह निमित्तोंके भेदसे तीन प्रकारका है—काययोग वचनयोग और मनोयोग ।  
२. लुलासा इस प्रकार है—वीर्यान्तराय कर्मके क्षयोपशमके होनेपर औत्तारिकः आदि सात प्रकारकी काय-  
वगणाप्रोमसं किमी एक प्रकारकी वर्गव्याजोंके आलम्बनसे होनेवाला आत्मप्रवेश परिस्पन्द काययोग  
कहलाता है । शरीर नामकर्मके उत्पत्ति प्राप्त हुई वचन-वर्गणाओंका आलम्बन होनेपर तथा  
वीर्यान्तराय और मत्प्रक्षारादि आत्मवचन क्षयोपशमसे प्राप्त हुई भीतरी वचनलम्बिक मिश्रणपर  
वचनरूप पर्यायक सम्मुख हुए आत्माके होनेवाला प्रवेश-परिस्पन्द वचनयोग कहलाता है । वीर्यान्त-  
३. राय और मो इन्द्रियावरणक्षयोपशमरूप आत्मरिक्त मनोऽलम्बिसन्निधाने होनेपर तथा बाहरी निमित्तमूल  
मनोवगणाप्रोमसं आलम्बन मिश्रणपर मत्प्रक्षारादि पर्यायक सम्मुख हुये आत्माके होनेवाला प्रवेश-परिस्पन्द

योगः । क्षयेऽपि त्रिविधवगणापेक्षं सयोगकेवलिन आत्मप्रवेशपरिस्पन्दो योगो वेदितव्य ।

आह अम्युपेम आहितत्रविध्यक्रियो योग इति । प्रकृत हृदानीं निर्दिश्यता  
किरुक्षण आस्रव इत्युच्यते । योऽप्य योगशब्दाभिधेय ससारिणं पुरुषस्य—

स आस्रवः ॥ २ ॥

यथा सरस्सलिलावाहिद्वारं तदाऽऽश्रवकारणत्वात् आस्रव इत्याख्यायत तथा योग २  
प्रणालिकया आत्मनः कम आस्रवतीति योग आस्रव इति व्यपदेशमहति ।

आह कम द्विविधं पुण्यं पापं चेति । तस्य किमविशेषेण योग आस्रवहेतुराहोस्विदस्ति  
कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

शुभं पुण्यस्याशुभं पापस्य ॥ ३ ॥

कं शुभो योग को वा अशुभः ? प्राणातिपातादत्तादानमैशुनादिरशुभं काययोगः । १  
अनुत्तभाषणपरुपासभ्यवचनादिरशुभो वाग्योगः । वधश्चिन्तनेष्व्यामूयादिरशुभो मनोयोगः ।  
ततो विपरीतं शुभं । कथं योगस्य शुभाशुभत्वम् ? शुभपरिणामनिवृत्तो योगः शुभः ।

मनोयोगः कृष्णता ह । शीर्यान्तराय और ज्ञानावरण कमक क्षय हो जान पर भी सयोगकवलीक  
ओ तीन प्रकारकी वर्गणाओंकी अपेक्षा आत्मप्रवेश-परिस्पन्द होता ह वह भी योग है एसा जानना चाहिये ।

यह तो जाना कि तीन प्रकारकी क्रिया योग है । अब यह बतलाए कि आस्रवका क्या लक्षण १५  
है ? ससारी बीबक जो यह योग शब्दका वाच्य कहा है—

बही आस्रव है ॥ २ ॥

जिस प्रकार सासाबमें बस सानेका दरवाजा जरूरी आनका कारण होनेस आस्रव कहलाता  
है उसी प्रकार आरमाक साथ भ्रमनक लिय कर्म योगरूपी मालीक द्वारा आस्र है इसलिय योग  
आस्रव सज्ञाको प्राप्त होता ह । २

कर्म दो प्रकारका ह—पुण्य और पाप इसलिय क्या योग सामान्यरूपम उनक आश्रयका कारण  
है या कोई विशेषता ह ? इसी बातक बतलानके लिय आगका सूत्र कहते ह—

शुभयोग पुण्यका और अशुभयोग पापका आस्रव है ॥ ३ ॥

शुभयोग—शुभ योग क्या ह और अशुभ योग क्या ह ?

समाधान—हिमा शोरी और मधुन आन्तिक अशुभ काययोग है । असत्य बचन कठोर बचन २५  
और असत्य बचन आदि अशुभ बचनयोग है । मारनका विचार, ईर्ष्या और डाह आदि अशुभ मनो  
योग है । तथा इनसे विपरीत शुभ काययोग शुभ बचनयोग और शुभ मनोयोग ह ।

शुभयोग—योगके शुभ और अशुभ य मत् किम कारणस ह ?

समाधान—जा योग शुभ परिणामक निमित्तम जाता ह यह शुभ योग है और जा पाप

क्रिया । इयापषनिमित्तेर्यापषक्रिया । ता एता पञ्च क्रियाः । श्रोधावेशाभ्रादोपिकी क्रिया । प्रदुष्टस्य सप्तोऽम्बुस्य मायिकी क्रिया । हिसापकरणात्पानादाधिकरणिकी क्रिया । दुःखोत्पत्तितत्रत्वात्पारितापिकी क्रिया । आयुरिन्द्रियैवल्लोच्छ्वासनिश्वासप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया । ता एता पञ्च क्रियाः । रागाद्रीकृतत्वात्प्रमादिनो रमणीयरूपालोकनाभिप्रायो दशनक्रिया । प्रमादवशात्स्पृष्टव्यसञ्चेतनानुबन्ध स्पक्षन क्रिया । अपूर्वाधिकरणतोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया । स्त्रीपुरुषपशुसम्पातिवैशेष्येऽन्तमलोत्सग करण समन्तानुपातक्रिया । अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षपोज्जायोगक्रिया । ता एता पञ्च क्रियाः । या परेण निवर्त्यो क्रिया स्वयं करोति सा स्वहस्तक्रिया । पापादानादिप्रवृत्तिविधोपाम्यनुज्ञान निसगक्रिया । पराचरितसावद्यान्निप्रकाशन विदारणक्रिया । ययोक्तामा ज्ञामावश्यमादिपुं चारित्रमोहादयात्कृतमशक्नुवतोऽप्यथा प्ररूपणादाज्ञाव्यापादिकी क्रिया । शाठ्यालम्ब्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकतस्यतानात्परोज्जाकाङ्क्षक्रिया । ता एता पञ्च क्रियाः । छेदनभेदनविंशसनादिक्रियापरस्वमन्येन वाऽऽरम्भ क्रियमाणे प्रहर्ष प्रारम्भ

क्रिया ह । इयापषकी कारणभूत क्रिया इयापष क्रिया है । ५ पांष क्रिया है ।

श्रोत्रक आभेधसे प्रावापकी क्रिया होती है । दुष्ट भाव युक्त होकर उद्यम करना कापिकी क्रिया है । हिसाने साधनोंको ग्रहण करना आधिकरणकी क्रिया है । या दुःखकी उत्पत्तिक कारण ह वह पारितापिकी क्रिया ह । आयु, इन्द्रिय बल और स्वातोच्छ्वास रूप प्राणोंका वियोग करने वाली प्राणातिपातिकी क्रिया है । ये पांष क्रिया है ।

रागवशा प्रमादीका रमणीय रूपके देखनका अभिप्राय दशनक्रिया है । प्रमादवशा स्पर्श करने लायक सञ्चेतन पदार्थका अनुबन्ध स्पक्षन क्रिया है । नम अधिकरणोंको उत्पन्न करना प्रात्ययकी क्रिया ह । स्त्री पुरुष और पशुओंके जाने आन उठने और बैठनके स्वानमें भीतरी मलका त्याग करना समन्तानुपात क्रिया है । प्रमाजन और अबलोकन नहीं की यह भूमिपर शरीर आदिका रहना अनाभोग क्रिया है । ५ पांष क्रिया है ।

जो क्रिया दूसरों द्वारा करनेकी हो उसे स्वयं कर रुना स्वहस्तक्रिया ह । पापादान आदिरूप प्रवृत्ति विक्षपके लिये सम्मति घेना निसर्ग क्रिया है । दूसरेत जो साधनकार्य क्रिया हो उस प्रकथित करना विदारणक्रिया है । चारित्रमोहनीयके उत्पत्तये आशय्यक आदिके विषयमें धाम्मिक आश्राको न पाल सकनके कारण अयथा निरूपण करना आश्राव्यापादिकी क्रिया है । घृष्टा और आश्रम्यके कारण शास्त्रमें उपदेशों गई विधि करनेका अनावर अनाकाङ्क्षक्रिया है । ये पांष क्रिया है ।

छेदना भेदना और रचना आदि क्रियामें स्वयं तत्पर रहना और दूसरे के करन पर हर्षित

(१) क्रिया । घट्टुको-ता ता नु । (२) बरुमाणानां-नु । (३)-स्वकाविरा-नु ।  
(४) विसर्गोपदि-आ वि १ वि २ । (५) वा क्रिय-नु ।

क्रिया । परिग्रहाविनाशार्था पारिग्रहिकी क्रिया । ज्ञानदर्शनादिषु निवृत्तिवञ्चन माया क्रिया । अन्य मिथ्यादर्शनक्रियाकरणकारणाविष्ट प्रशसादिभिर्दुष्यति यथा साधु कर्गोपीति सा मिथ्यादर्शनक्रिया । समयमघातिनर्मोदयवशादनिवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया । सा एता पञ्च क्रियाः । समुदिता पञ्चविंशतिक्रियाः । एतानोन्द्रियादीनि कार्यकारण-भेदाद्भेदमापद्यमानानि साम्प्रदायिकस्य क्रमण आस्रवद्वाराणि भवन्ति ।

अत्राह योगप्रयस्य सर्वात्मकार्यत्वात्सर्वेषां ससारिणां साधारणं ततो वधफलानु भवन प्रत्यविशेष इत्यत्रोच्यते—नतदेवम् । यस्मात् सत्यपि प्रत्यात्मसम्भवे तेषां जीवप रिणामेभ्योऽनन्तविकल्पेभ्यो विघापोऽभ्यनुज्ञायते । कथमिति चेदुच्यते—

तीव्रमन्वन्नातामातभाषाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥

वाहधाम्यन्तरहतुदीरणवशादुद्विक्त परिणामस्तीव्रः । तद्विपरीतो मन्वः । अय प्रौणी मया हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिर्जातमित्युच्यते । मदात्प्रमावाद्वाज्जवदुष्य प्रवृत्तिर ज्ञातम् । अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्था इत्यधिकरण द्रव्यमित्यथ । द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो

होना प्रारम्भ क्रिया ह । परिग्रह का माया न हो इसलिये वा क्रिया की जाती है वह पारिग्रहकी क्रिया है । ज्ञान दर्शन आदि बिषयमें छल करना मायाक्रिया है । मिथ्यादर्शन क साधनों स युक्त पुरुषको प्रशसा आदिके द्वारा दुःख करना कि 'तू ठीक करता ह' मिथ्यादर्शन क्रिया है । समयका घात करन बाल कर्मक उदयसे त्यागव्यप परिणामोंका न होना अप्रत्याख्यान क्रिया है । य पाप क्रिया हैं । य सब मिलकर पञ्चोस क्रियाएँ होती हैं । काय-कारणक भेदसे अलग अलग भेदको प्राप्त होकर ये इन्द्रियादि साम्प्रदायिक कर्मके आस्रवक द्वार हैं ।

शका—तीनों योग सब आत्माओंक काय हैं इसलिय वे सब ससारी जीवोंक समान रूपसे प्राप्त होत हैं इसलिय कर्मवन्धक फलक अनुभवके प्रति समानता प्राप्त होती चाहिय ?

समाधान—यह बात ऐसी नहीं है, क्यों कि यद्यपि योग प्रत्यक आत्माक होता ह परन्तु जीवोंके परिणामोंक अनन्त भेद है इसलिये कर्मवन्धक फलक अनुभवकी विशेषता माननी पड़ती है ।

शका—किस प्रकार ?

समाधान—जब अगल सूत्रद्वारा इसी बातका समाधान करत हैं—

तीव्रमाव मन्दमाव, ज्ञातमाव, अज्ञातमाव, अधिकरण और वीर्य विशेषे के भेदसे उसकी (आस्रवकी) विघ्नपता होती है ॥ ६ ॥

बाह्य और आन्तर हतुकी उदीरणवशात् प्राप्त होनक कारण जो उत्कट परिणाम होता है वह तीव्र माव ह । मन्द माव इससे उल्टा ह । इस प्राणीका मुझ हनन करना चाहिय इस प्रकार जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञात माव है । मन् या प्रमादक कारण विना ज्ञान प्रवृत्ति करना अज्ञात माव ह । जिसमें पक्षय अधिकृत किय जात है वह अधिकरण ह । यहाँ अधिकरणसे द्रव्यका ग्रहण किया है ।

(१) दर्शनकरक-वा नर म् । (२)-रगस्य तथा म । (३) प्राणी हन्त-मन्, ता मा ।



अशुभपरिणामनिवृत्तश्चाशुभः । न पुनः शुभाशुभमकारणत्वेन । यद्येवमुच्यते शुभयोग एव न स्यात् शुभयोगस्यापि ज्ञानावरणादिव घहेतुत्वाभ्युपगमात् । पुनात्यात्मानं पूयतेऽनेनेति वा पुण्यम् । तत्सद्वेद्यादि । पाति रक्षति आत्मानं शुभादिति पापम् । तदसद्वेद्यादि ।

१ आह किमयमासन्न सयससारिणा समानफलारम्भहेतुराहोस्वित्कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

सकृपायाकृपाययो साम्परायिकोपपत्तयो ॥ ४ ॥

स्वामिभेदादासन्नभेदः । स्वामिनो द्वौ सकृपायोऽकृपायश्चति । कृपायः क्रोधादिः । कृपाय इव कृपाय । क उपमाभ १ यथा कृपायो नर्यग्रोधादि दृष्टेयहेतुस्तथा क्रोधादिरप्यात्मनः कमदलोपहेतुत्वात् कृपाय इव कृपाय इत्युच्यते । सह कृपायेण घतन इति सकृपायं न विद्यते कृपायो यस्येत्यकृपाय । सकृपायश्चाकृपायश्च सकृपायाकृपायौ तयो सकृपाया अशुभ परिणामोक्ते निमित्तस्य होता है वह अशुभ योग है । चायद बोई यह मान कि शुभ और अशुभ कर्मका कारण होनस शुभ और अशुभ योग होता है सो बात नहीं है क्योंकि यदि इस प्रकार हमका कृपाय कहा जाता है तो शुभयोग ही नहीं हो सकता क्योंकि शुभयोगको भी ज्ञानावरणादि १५ कर्मोके बन्धका कारण माना है । इसलिये शुभ और अशुभ योगका जो लक्षण यहाँ पर किया है वही सही है ।

जो आत्माको पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होता है वह पुण्य है । जैसे साताबदनीय आदि तथा जो आत्माको शुभसे बचाता है वह पाप है जैसे असाता बेनीय आदि ।

क्या यह आसन्न सब ससारी जीवोंके समान फलको पैदा करता है या कोई विशेषता है ? अब

१ इसी बातके बतलानेके लिय आगेका सूत्र कहते हैं—

कृपायसहित और कृपायरहित आत्माका योग क्रमसे साम्परायिक और ईयापय कर्मके आसन्न रूप है ॥ ४ ॥

स्वामीक भवम आसन्नभेद है । स्वामी दो प्रकारके हैं—कृपायसहित और कृपायरहित । कृपाय अर्थात् प्रीत्यादि कृपायक समान होनस कृपाय कहलाता है । उपमाकय अथ क्या है ? जिन १५ प्रकार नमप्राप्त आदि कृपाय कल्पका कारण है उसी प्रकार आत्माका क्रोधादि रूप कृपाय भी कर्मोके कल्पका कारण है इसलिये कृपायक समान यह कृपाय है ऐसा कहते हैं ।

जिनके कृपाय है वह अकृपाय जीव है और जिनके कृपाय नहीं है वह अकृपाय जीव है । यहाँ इन दोनों परदेरा पहले 'सकृपायश्च अकृपायश्चति सकृपायाकृपायौ' इस प्रकार इष्ट ममाम करत अनन्तर स्वामिण्य लिखलानके लिय पञ्जीका प्रिवचन दिया है ।

कपाययो । सम्पराय ससार । तत्प्रयोजन कम साम्परायिकम् । इरणमीर्या योगो गति रित्यथ । तद्द्वारक कम इर्यापथम् । साम्परायिक च इर्यापथ च साम्परायिकेयपिथे । तयो साम्परायिकेयपिथयो । यथासख्यमभिसम्बन्ध । सकपायस्यात्मनो मिष्यादृष्ट्यादे साम्परायिकस्य कमण आस्रवो भवति । अकपायस्य उपशान्तकपायादेरीर्यापिथस्य कमण आस्रवो भवति ।

आदावृष्टिस्यास्रवस्य भेदप्रतिपादनाथमाह—

इन्द्रियकपायाद्रतक्रिया पञ्चचतु पञ्चपञ्चविंशतिसख्याः पूषस्य मेवा ॥ ५ ॥

अत्र इन्द्रियादीनां पञ्चादिभियथासख्यमभिसवघो वेदितव्य । इन्द्रियाणि पञ्च । चत्वार कपाया । पञ्चाद्रतानि । पञ्चविंशति क्रिया इति । तत्र पञ्चेन्द्रियाणि स्पश नादीन्युक्तानि । चत्वार कपाया क्रोधादय । पञ्चाद्रतानि प्राणव्यपरोपणादीनि यदयन्ते । पञ्चविंशति क्रिया उच्यन्ते—क्षत्यगुरुप्रवचनपूजादिलक्षणा सम्यक्त्ववधनी क्रिया सम्यक्त्वक्रिया । अन्यदेवतास्तवनादिरूपा मिष्यात्वहेतुकी प्रवृत्तिमिष्यात्वक्रिया । गमना गमनादिप्रवतन कायादिभिः प्रयोगक्रिया । सयतस्य सत अविरति प्रत्याभिमुख्य समादान

सम्पराय ससारका पर्यायवाची है । जो कर्म ससारका प्रयोजक है वह साम्परायिक कर्म है । ईर्यानी भ्युत्पत्ति 'इरण' होगी । इसका अर्थ गति है । जो कर्म इसके द्वारा प्राप्त होता है वह इर्यापथ कर्म है । यहाँ इन दोनों पदोंका पहले साम्परायिक च इर्यापथ च साम्परायिकेयपिथ' इस प्रकार द्वन्द्व समास करके तदनन्तर सम्बन्ध विलक्षणक सिय पट्टीका द्विवचन दिया है ।

सकपायके साथ साम्परायिक शब्दका और अकपायक साथ इर्यापथ शब्दका यथाक्रम सम्बन्ध है । जिससे यह अर्थ हुआ कि मिष्यादृष्टि आदि कपायसहित जीवक साम्परायिक कर्मका आस्रव होता है । तथा उपशान्त कपाय आदि कपाय रहित जीवक इर्यापथ कर्मका आस्रव होता है ।

अब आदिमें कह गये आस्रवक भेद दिखलानेक लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पूषके अर्थात् साम्परायिक कर्मास्रवक इन्द्रिय, कपाय, अथत और क्रियारूप भेद है ।

जो क्रमस पाँच, चार, पाँच और पञ्चीस है ॥५॥

यहाँ इन्द्रिय आदिका पाँच आदिके साथ क्रमस सम्बन्ध जामना चाहिये । यथा इन्द्रियां पाँच है कपाय चार है अथत पाँच है और क्रिया पञ्चीस है । इनमेंसे स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियोंका कथन पहले कर आये है । क्रोधादिक चार कपाय है और हिंसा आदि पाँच भद्रत आग कह्य । पञ्चीस क्रियाओंका बगन यहाँ करत है—

चैत्य गुरु और शास्त्र की पूजा आदिरूप सम्यक्त्वको यज्ञानवाली सम्यक्त्वक्रिया है । मिष्यात्व क उदयसे जो अन्यदवठाके स्तवन आदि रूप क्रिया हाती है वह मिष्यात्व क्रिया है । शरीर आदि द्वारा गमनागमन आदि रूप प्रवृत्ति प्रयोगक्रिया है । सयतका अविरतिके समुल्ल होना समादान

(१) दृष्ट साम्य-यु । (२)-उठिक्रिया यु । (३) हनुका कर्मयु-वि १ वि २ आ ।

क्रिया । इयंपिषनिमित्तर्थापयक्रिया । ता एता पञ्च क्रिया । क्रोधावशात्प्रावोपिकी क्रिया । प्रवृष्टस्य सतोऽभ्युद्यम कायिकी क्रिया । हिंसोपकरणवादानादाधिकरणिकी क्रिया । दुःसोत्पत्तित त्रस्तात्पारितापिकी क्रिया । आयुरिन्द्रियैबलोच्छ्वासनिश्वासप्राणानां वियोगकरणात्प्राणातिपातिकी क्रिया । ता एता पञ्च क्रिया । रागाद्रीकृतत्वात्प्रमादिनो  
 ५ रमणीयरूपालोकनामिप्रायो दशनक्रिया । प्रमादवशात्सुष्टव्यसञ्चेतनानुबन्ध स्पशन क्रिया । अपूर्वाधिकरणोत्पादनात्प्रात्ययिकी क्रिया । म्त्रीपुरुषपशुसम्प्रातिदक्षेऽन्तमलोत्सग करण समन्तानुपासक्रिया । अप्रमृष्टादृष्टभूमौ कायादिनिक्षेपोऽज्ञाभोगक्रिया । ता एता पञ्च क्रिया । यां परेण निवर्त्या क्रियां स्वय करोति सा स्वहस्तक्रिया । पापादानादिप्रवृत्तिवि दोषाभ्यनुज्ञान निसगक्रिया । पराचरितसावद्यादिप्रकाशन विचारणक्रिया । यथोक्तामा  
 १ सामावश्यकादिपुं चारित्रमोहोत्पात्कलुमणकनुवतोऽन्यथा प्रवृत्तपणावासाव्यापादिकी क्रिया । शाठशालस्याभ्यां प्रवचनोपदिष्टविधिकतव्यतानादराऽज्ञाकाङ्क्षक्रिया । ता एता पञ्च क्रिया । छदनभेदनविशेषनादिक्रियापरत्त्वमन्येन वाऽऽरम्भे क्रियमाणे प्रहर्षे प्रारम्भ

क्रिया ह । इयंपिषकी कारणमूत क्रिया इयंपिष क्रिया है । य पांष क्रिया ह ।

क्रोधक भाववास प्रावोपिकी क्रिया होती है । वृष्ट भाव युक्त होकर उद्यम करना कायिकी  
 १५ क्रिया है । हिंसाके साधनोंको ग्रहण करना आधिकरणकी क्रिया है । जो दुःखकी उत्पत्तिका कारण ह वह पारितापिकी क्रिया ह । आयु, इन्द्रिय बल और दवामोच्छ्वास रूप प्राणोंका वियोग करने वाली प्राणातिपातिकी क्रिया है । य पांष क्रिया ह ।

रागवशात् प्रमादिका रमणीय रूपक वसनका अभिप्राय दशनक्रिया ह । प्रमादवशात् स्पशन करने लायक सञ्चतन पदायका अनुबन्ध स्पशन क्रिया है । नये अधिकरणोंको उत्पन्न करना प्रात्ययिकी  
 २ क्रिया ह । म्त्री पुरुष और पशुओंके जाने आने उठने और बैठकन स्थानमें भीतरी मलका त्याग करना समन्तानुपास क्रिया है । प्रमादजन और अवलोकन नहीं की गई भूमिपर धारीर आदिका रसना अनाभोग क्रिया है । ये पांष क्रिया ह ।

जा क्रिया दूसरों द्वारा करनेकी हो उस स्वयं कर लना स्वहस्तक्रिया है । पापादान आदिरूप प्रवृत्ति विगणक क्रिये सम्मति देना निमर्ग क्रिया है । घूमरेने जो सावधानता क्रिया हो उसे प्रका-  
 २५ शित करना विचारणक्रिया है । चारित्रमोहनीयके उदमसे आवश्यत्वात् आन्धिके विषयमें साम्प्रोक्त आज्ञाका म पाप सवनक कारण अग्यथा निरूपण करना आज्ञाव्यापादिकी क्रिया है । धर्मज्ञ और आत्मन्यक कारण धान्त्रमें उपदेशी गई विधि करनेका अनावर अनावागक्रिया ह । य पांष क्रिया है ।

छन्दना भेदना और रचना आदि क्रियामें स्वयं तत्पर रहना और दूसरे के करन पर हर्षित

(१) क्रिया । नरवृष्टो-उत्पन्न वा नु । (२) कप्रमाणो-मु । (३) अवादिवादि-मु ।

(४) विगणकादि-आदि १ रि २ । (५) वा क्रिय-मु ।

क्रिया। परिग्रहाविनाशार्थां पारिग्राहिकी क्रिया। ज्ञानदशनादिषु निकृतिवञ्चन माया क्रिया। अन्य मिथ्यादशनक्रियाकरणकारणाविष्ट प्रशसादिभिर्दुष्यति यथा साधु करोपीति सा मिथ्यादशनक्रिया। समयघातिकर्मोदयवशादनवृत्तिरप्रत्याख्यानक्रिया। ता एता पञ्च क्रिया। समुदिता पञ्चविंशतिक्रिया। एतान्निन्द्यादीनि कायकारण भेदाद्भेदमापद्यमानानि साम्प्रदायिकस्य कर्मण आस्रवद्वाराणि भवन्ति।

अत्राह योगत्रयस्य सर्वात्मकायत्वात्सर्वेषां ससारिणा साधारणैः ततो वच्यफलानु भवन प्रत्यविशेष इत्यत्रोच्यते—नतवेवम्। यस्मात् सत्यपि प्रत्यात्मसम्भवे तेषा जीवप रिणामेभ्योऽनन्तविकल्पेभ्यो विशेषोऽभ्यनुज्ञायते। कथमिति चेदुच्यते—

तीव्रमन्वजाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषे ॥ ६ ॥

याहधाम्यन्तरहेतुदीरणवशादुद्विक्त परिणामस्तीव्र। तद्विपरीतो मन्दः। अय प्रौणी मया हन्तव्य इति ज्ञात्वा प्रवृत्तिर्जातिमित्युच्यते। मदात्प्रमादाद्वाऽनवबुध्य प्रवृत्तिर ज्ञातम्। अधिक्रियन्तेऽस्मिन्नर्थी इत्यधिकरण द्रव्यमित्यथ। द्रव्यस्य स्वशक्तिविशेषो होना प्रारम्भ क्रिया है। परिग्रह का नाश न हो इसलिय जो क्रिया की जाती है वह पारिग्रहकी क्रिया है। ज्ञान वर्धन आदिक विषयमें छल करना मायाक्रिया है। मिथ्यादशन क साधनों से युक्त पुरुषको प्रशसा आदिके द्वारा बुद्ध करना कि 'तू ठीक करता है' मिथ्यादर्शन क्रिया है। समयका घात करने वाले कर्मके उदयसे त्यागरूप परिणामोंका न होना अप्रत्याख्यान क्रिया है। य पाप क्रिया है। य सब मिलकर पञ्चीस क्रियाएँ होती हैं। कार्य-कारणके भेदसे अलग अलग भेदको प्राप्त होकर य इन्द्रियादिक साम्प्रदायिक कर्मक आस्रवक द्वार हैं।

शका—तीनों योग सब आत्माओंके कार्य हैं इसलिय वे सब ससारी जीवोंके समान रूपसे प्राप्त होत हैं इसलिय कर्मबन्धक फलक अनुभवके प्रति समानता प्राप्त होनी चाहिय ?

समाधान—यह बात एसी नहीं है क्यों कि यद्यपि योग प्रत्यक आत्माके होता है परन्तु जीवोंके परिणामोंके अनन्त भेद हैं इसलिय कर्मवत्थक फलके अनुभवकी विद्यपता माननी पड़ती है।

शका—किस प्रकार ?

समाधान—अब अगले सूत्रद्वारा इसी बातका समाधान करत हैं—

तीव्रभाव मन्दभाव, ज्ञातभाव अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्य विशेष के भेदसे उसकी (आस्रवकी) विद्यपता होती है ॥ ६ ॥

बाह्य और आन्तरिक हेतुकी उदीरणवशात् प्राप्त होनेके कारण जो उत्कृष्ट परिणाम होता है वह तीव्र भाव है। मन्द भाव इससे उल्टा है। इस प्राणीका मुक्त हतन करना चाहिय इस प्रकार जानकर प्रवृत्ति करना ज्ञात भाव है। मन् या प्रभावके कारण विना जान प्रवृत्ति करना अज्ञात भाव है। जिसमें पदाव अधिकृत किय जात है वह अधिकरण है। यहाँ अधिकरणसे द्रव्यका ग्रहण किया है।

वीर्यम् । भावशब्द प्रत्येक परिसमाप्यते—तीव्रभावा मन्दभाव इत्यादि । एतेभ्यस्त  
स्यास्रवस्य विशेषो भवति । कारणभेदाद्भि कायभेद इति ।

अत्राह अधिकरणैमुक्तम् तत्स्वरूपमनिर्ज्ञातमतस्तदुच्यतामिति । तत्र भेदप्रति  
पादनद्वारेणाधिकरणस्वरूपनिर्ज्ञानायमाह—

अधिकरण जीवाजीवा ॥ ७ ॥

उक्तलक्षणा जीवाजीवा । यद्युक्तलक्षणा पुनवचन किमयम् ? अधिकरणविशेषज्ञा  
पनाय पुनवचनम् । जीवाजीवा अधिकरणमित्यय विशेषो ज्ञापयितव्य इति । कः पुन  
रसौ ? हिंसायुपकरणभाव इति । स्यादेत मूलपदार्थयोर्द्वित्वाज्जीवाजीवाविति द्विवचन  
न्यायप्राप्तमिति ? तन्न पर्यायानामधिकरणत्वात् । येन केनचित्पर्यायेण विशिष्ट द्रव्यम  
धिकरणम् न सामान्यमिति बहुवचन कृतम् । जीवाजीवा अधिकरण कस्य ? आस्रव  
स्येति । अर्थवशादभिसम्बन्धो भवति ।

द्रव्य की अपनी शक्तिविशेष थीय है । सूत्रमें जो भाव शब्द आया है वह सब शब्दोंक साथ जोड़  
लेना चाहिये । यथा—तीव्रभाव मन्दभाव इत्यादि । इन सब कारणोंसे आस्रवमें विशेषता आ  
जाती है क्यों कि कारणके भेदसं कायमें भेद होता है ।

पूरुब सूत्रमें 'अधिकरण' पद आया है पर उसका स्वरूप अज्ञात है इसलिये वह कहना चाहिये ?  
अब उसके भेदोंके कथन द्वारा उसका स्वरूपका ज्ञान करानेक लिये आगेका सूत्र कहत हैं—

अधिकरण जीव और अजीवरूप हैं ॥ ७ ॥

जीव और अजीवक लक्षण पहले कह आये है ।

प्रश्न—यदि इनके लक्षण पहले कह आये हैं तो फिरसे इनका उल्लेख किसलिये किया ?

समाधान—अधिकरण विशेषता ज्ञान करानेक लिये फिरसे इनका उल्लेख किया है जिससे  
जीव और अजीव अधिकरण हैं यह विषय जताया जा सक ।

प्रश्न—यह कौन है ?

समाधान—हिंसादि उपकरणभाव ।

प्रश्न—मूल पदार्थ दो हैं इसलिये 'जीवाजीवो' इस प्रकार सूत्रमें द्विवचन रखना न्यायप्राप्त है ?

समाधान—यह कहना ठीक नहीं है क्यों कि उनकी पर्यायोंको अधिकरण माना है । तात्पर्य  
यह है कि किसी एक पर्यायसं युक्त द्रव्य अधिकरण होता है केवल द्रव्य नहीं इसलिये सूत्रमें  
बहुवचन रखा है ।

जीव और अजीव किसके अधिकरण हैं ? आस्रवके । इस प्रकार प्रयोगमक अनुसार  
यहाँ आस्रव पदका सम्बन्ध होता है ।

तत्र जीवाधिकरणभेदप्रतिपत्त्यथमाह—

आद्य सरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषस्थित्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चकम् ॥८॥

प्राणव्यपरोपणादिषु प्रमादवत् प्रयत्नावेश सरम्भ । साधनसमम्भासीकरण समा  
रम्भ । प्रक्रम आरम्भ । 'योग' शब्दो व्याख्याताय । कृतवचन स्वात् त्र्यप्रतिपत्त्यथम् ।  
कारिताभिधान परप्रयोगापेक्षम् । अनुमतशब्दः प्रयोजकस्य मानसपरिणामप्रदशनाय । ५  
अभिहितलक्षणा कषाया क्रोधादय । विशिष्यतेऽर्जोऽर्जान्तरादिति विशेष । स  
प्रत्येकमभिसम्बध्यते—सरम्भविशेष समारम्भविशेष इत्यादि । आद्य जीवाधिकरण  
मतविशेष 'मिच्छते इति वाक्यशेष । एते चत्वारः सुजन्तास्त्र्यादिष्व्या यथाक्रममभि  
सम्बध्यन्ते—सरम्भसमारम्भारम्भास्त्रय योगास्त्रय, कृतकारितानुमतास्त्रय, कषाया  
श्चत्वार इति । एतेषां गणनाभ्यावृत्तिं सूचा द्योत्यते । एकश इति वीप्सानिर्देश । १  
एकक त्र्यादीन् भेदान् नयदित्यथ । तद्यथा—क्रोधकृतकायसरम्भ मानकृतकायसरम्भ  
मायाकृतकायसरम्भ लोभकृतकायसरम्भ क्रोधकारितकायसरम्भ मानकारितकायस  
रम्भ मायाकारितकायसरम्भ लोभकारितकायसरम्भ क्रोधानुमतकायसरम्भ मानानु

अद्य जीवाधिकरणके भेद त्रिसप्तत्येक लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

पहला जीवाधिकरण सरम्भ, समारम्भ और आरम्भके भेदसे तीन प्रकारका, योगोंके भेदसे १५  
तीन प्रकारका, कृत, कारित और अनुमतके भेदसे तीन प्रकारका तथा कषायोंके  
भेदस चार प्रकारका होता हुआ परस्पर मिलानेसे १०८ प्रकारका है ॥८॥

प्रमादी जीवका प्राणोंकी हिंसा आदिकाय में प्रयत्नधील होना सरम्भ ह । साधनोंका जुटाना  
समारम्भ है । कार्य करन रगना आरम्भ ह । योग शब्दका व्याख्यान पहले कर आय ह । कर्ताकी  
कायविषयक स्वभावता विद्वत्तानक लिये सूत्रमें 'कृत' वचन रखा है । काममें दूसरेक प्रयोगकी २  
अपेक्षा त्रिसप्तत्येक लिये 'कारित' वचन रखा ह । तथा प्रयोजकक मानस परिणामको विद्वत्तानक  
लिये अनुमत शब्द रखा ह । क्रोधादि कषायोंके लक्षण कहे जा चुक हैं । जिसस एक अर्थ दूसरे  
अर्थस विशेषताको प्राप्त हो वह विशेष है । इस प्रत्येक शब्दक साथ जोड़ लेना चाहिये । यथा  
सरम्भविशेष समारम्भविशेष आदि । यहाँ 'मिच्छते' यह वाक्यपक्ष है जिसस यह अर्थ होता है कि  
पहला जीवाधिकरण इन विषयताओंस भेदको प्राप्त होता है । सूत्र प्रत्ययान्त य चारों 'तीन' आदि २५  
शब्द क्रमस सम्बन्धको प्राप्त होत हैं । यथा—सरम्भ समारम्भ और आरम्भ य तीन योग तीन  
कृत कारित और अनुमत ये तीन और कषाय चार । इनक गणनाकी पुनरावृत्ति 'सूत्र' प्रत्यय द्वारा  
प्रकट की गई ह । 'एकश' यह वीप्सामें निर्देश है । सात्यय यह ह कि तीन आदि भदोंको प्रत्येक प्रति  
छगा रना चाहिये । जैसे क्रोधकृतकायसरम्भ मानकृतकायसरम्भ मायाकृतकायसरम्भ लोभकृतका  
यसरम्भ क्रोधकारितकायसरम्भ मानकारितकायसरम्भ मायाकारितकायसरम्भ लोभकारितकाय

मतकायसरम्भ मायानुमतकायसरम्भ लोभानुमतकायसरम्भश्चेति द्वादशधा कायसरम्भः । एव वाग्योगे मनोयोगे च द्वादशधा सरम्भः । त एते सपिण्डिता पटत्रिंशत् तथा समाग्न्ना अपि पटत्रिंशत् आरम्भा अपि पटत्रिंशत् । एते सपिण्डिता जीवाधिकरणस्य भेदा अष्टोत्तरशतमस्थ्या सम्भवन्ति । 'ब' शब्दोजन्तानुषध्यप्रत्यास्थानप्रत्यास्थानसञ्ज्वलनरूपायभेदकृतान्तर्भेदसमुच्चयाय ।

परम्याजीवाधिकरणस्य भेदप्रतिपत्त्यमाह—

निवृत्तनानिक्षेपसयोगनिसर्गा द्विषतुद्वित्रिभेदा परम् ॥ ६ ॥

निर्वृत्यत इति निवृत्तना निष्पादना । निक्षिप्यत इति निक्षेप स्थापना । समुज्यते इति सयोगो मिश्रीकृतम् । निमुज्यत इति निसर्ग प्रवृत्तनम् । एते द्वेषादिभिययाक्रममभिसम्बन्धश्चे—निवृत्तना द्विभेदा निक्षेपश्चतुर्भेदः सयोगो द्विभेदः निसर्गस्त्रिभेद इति । त एते भेदा अजीवाधिकरणस्य वेदितव्याः । परवचनमनयकम् पूर्वसूत्रे आश्रमिति वचनादिदमवशिष्टाय भवतीति ? नानयकम् । अन्यायः परशब्दः । सरम्भादिभ्योऽप्यानि निवृत्तनादीनि । इतरथा हि निवृत्तनादीनामात्मपरिणामसत्त्वाभावाज्जीवासरम्भः क्रोधानुमतकायसरम्भः मानानुमतकायसरम्भः मायानुमतकायसरम्भः लोभानुमतकायसरम्भः । इत्यप्रकारः कायसरम्भः वारहू प्रकारका है । इसी प्रकार बचनयोग और मनोयोगकी अपेक्षा सरम्भ वारहू वारहू प्रकारका है । ये सब मिला कर छत्तीस भव होत हैं । इसी प्रकार समाग्न्ना और आरम्भक भी छत्तीस छत्तीस भव होते हैं । ये सब मिला कर जीवाधिकरणक १८ भव होत है । सूत्रमें 'ब' शब्द अन्तानुषन्धी अप्रत्यास्थान प्रत्यास्थान और सञ्ज्वलनरूप कषायोंके अन्तर्भेदोंका समुच्चय करनेके लिये दिया है ।

अब अजीवाधिकरणक भेदोंका ज्ञान करानके लिये आगका सूत्र कहत हैं—

पर अघात् अजीवाधिकरण क्रमसे दो, चार, दो और तीन भेदवाले निर्बर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्गरूप है ॥ ७ ॥

निवृत्तनाका अर्थ निष्पादना अर्थात् रचना है । निक्षेपका अर्थ स्थापना अर्थात् रचना है । सयोग का अर्थ मिश्रित करना अर्थात् मिलाप है और निसर्गका अर्थ प्रवृत्तन है । ये क्रमसे दो आदि शब्दोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त होते हैं । यथा—निवृत्तना दो प्रकारका है । निक्षेप चार प्रकारका है । सयोग दो प्रकारका है । निसर्ग तीन प्रकारका है । य सब अजीवाधिकरणके भेद हैं ।

एका—सूत्रमें पर' बचन निरर्थक है क्योंकि पिछले सूत्रमें आघ' बचन दिया है जिससे यह ज्ञात होता है कि यह शेषक लिये है ।

समाधान—अनर्थक नहीं है क्योंकि यहाँ पर शब्दका अन्य अर्थ है । जिससे यह ज्ञात होता है कि निवृत्तना आदिक सरम्भ आदिकस अर्थ है । यदि पर शब्द न लिया जाय तो निवृत्तना आदि

(१) एते निष्पि-बु । (२) जीवस्याधि-बु ।

धिकरणविकल्पा एवेति विशायेत । निवर्तनाधिकरण द्विविध मूलगुणनिवर्तनाधिकरण  
मुत्तरगुणनिवर्तनाधिकरणञ्चेति । तत्र मूलगुणनिवर्तन पञ्चविधम् शरीरवाङ्मन  
प्राणापानाश्च । उत्तरगुणनिवर्तन काष्ठपुस्तचित्रकर्मदि । निक्षेपश्चतुर्विधः अप्रत्यवे  
क्षितनिक्षेपाधिकरण द्रुप्रमृष्टनिक्षेपाधिकरण सहस्रानिषपाधिकरणमनाभोगनिक्षेपाधि  
करण चेति । सयोगो द्विविधः—भक्तपानसयोगाधिकरणमुपकरणसयोगाधिकरण चेति । ५  
निसर्गस्त्रिविधः—कायनिसर्गाधिकरण याग्निसर्गाधिकरण मनोनिसर्गाधिकरणञ्चेति ।

उक्तं सामान्येन कर्माश्रवभेदः । इदानीं कर्मविशेषोपाश्रवभेदो वक्तव्यः । तस्मिन्  
वक्तव्ये आद्ययोर्भक्तिदशनावरणयोरान्नवभेदप्रतिपत्त्ययमाह—

तत्प्रबोधनिष्कृत्वमात्सर्यान्तरामासादनीपघाता ज्ञानबन्नावरणयोः ॥ १० ॥

तत्त्वज्ञानस्य मोक्षसाधनस्य भीतने कृते कस्यश्चिदनभिव्याहरत अन्तःपशुयपरि १  
णाम प्रदोषः । कुतश्चित्कारणाश्राप्ति न वेक्षीत्यादि ज्ञानस्य व्यपलपन निष्कृत्व ।  
कुतश्चित्कारणाद् भावितमपि विज्ञान दानाहमपि यद्यो न दीयते तन्मात्सर्यम् । ज्ञानस्य  
वच्छेदकरणमन्तराम । कायेन वाचा च परप्रकाश्यज्ञानस्य वजनमासादनम् । प्रशस्त-

कारमाक परिष्णाम ह एसा हो जानेस य भी नीवाधिकरणक भद समझ जमिग ।

निवर्तनाधिकरण दो प्रकारका ह—मूलगुण निवर्तनाधिकरण और उत्तरगुण निवर्तनाधिकरण । १५  
उनमेंसे मूलगुण निवर्तनाधिकरण पांच प्रकारका ह—शरीर, वचन मन प्राण और अपान । तथा  
काष्ठकर्म पुस्तकर्म और चित्रकर्म आदि उत्तरगुण निवर्तनाधिकरण हैं । निक्षेप चार प्रकारका है—  
अप्रत्यवेक्षितनिषपाधिकरण द्रुप्रमृष्टनिषपाधिकरण सहस्रानिषपाधिकरण और अनाभोग  
निषेपाधिकरण । सयोग दो प्रकारका है—भक्तपानसयोगाधिकरण और उपकरणसयोगाधिकरण ।  
निसर्ग तीन प्रकारका ह—कायनिसर्गाधिकरण वचननिसर्गाधिकरण और मननिसर्गाधिकरण । २

सामान्यसे कर्माश्रवक भेद कहे । इस समय अरुम अलग कर्मोंके आश्रवक भदोंका बचन करना  
चाहिये । उसमें सर्वप्रथम प्रारम्भके ज्ञानावरण और दशनावरणक आश्रवक भदोंका बचन  
करनेक सिद्ध आगका सूत्र कह्ये है—

ज्ञान और दर्शनके विषयमें प्रदोष, निष्कृत्व, मात्सर्य, अन्तराय आसादन और

उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरणके आश्रव हैं ॥ १० ॥ १५

तत्त्वज्ञान मोक्षका साधन ह उसका गुणगान कत समय उस समय नहीं बोलनबालक जो भीतर  
पेशुन्यरूप परिष्णाम होता ह वह प्रदोष है । किसी कारणस एसा नहीं है में नहीं जानता एसा  
कहेकर ज्ञानका अपराध करना निष्कृत्व ह । विज्ञानका अस्मास किया ह वह देन योग्य भी है तो भी  
जिस कारणस वह नहीं दिया जाता ह वह मात्सर्य है । ज्ञानका विच्छेद करना अन्तराय है । दूनग  
कोई ज्ञानका प्रकाश कर रहा हो तब शरीर या वचनस उसका निषेध करना आसादन है । प्रपसनीय ३  
ज्ञानमें दूषण लगाना उपघात है ।



ज्ञानरूपणमुपधात' । आसादनमेवति चेत् ? सतो ज्ञानस्य विनयप्रधानादिगुणकीतनान  
 नुष्ठानमासादनम् । उपधातस्तु ज्ञानमज्ञानमेवेति ज्ञाननाशाभिप्रायः । इत्यनमाग्य भद' ।  
 'तत्'शब्दन ज्ञानदशनया प्रतिनिर्देश क्रियते । कथं पुनरप्रवृत्तयोरनिर्दिष्टयोस्तच्छब्देन  
 परामशः कर्तुं शक्यः ? प्रश्नापेक्षया । ज्ञानदक्षनावरणयोः क आसन्न इति प्रश्ने कृते तद  
 पेक्षया तच्छब्दो ज्ञानदक्षने प्रतिनिर्दिशति । एतेन ज्ञानदक्षनावत्सु तत्साधनेषु च प्रदोषात्प्रयो  
 योग्याः सन्निमित्तत्वात् । त एते ज्ञानदक्षनावरणयोगसन्नवहेतवः । एककारणसाध्यस्य  
 कायस्यानेकस्य दक्षनात् तुल्येऽपि प्रदोषादौ ज्ञानदक्षनावरणसन्नवसिद्धिः । अथवा विषय  
 भेदासन्नवभेदः । ज्ञानविषया प्रदोषादयो ज्ञानावरणस्य । दक्षनविषया प्रदोषादयो  
 दक्षनावरणस्येति ।

यथाऽनयो कमप्रकृरयोरासन्नवभेदास्तथा—

दुःखश्लोकतापाङ्गन्धनवधपरिबेचना यास्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य ॥ ११ ॥

पीडालक्षण परिणामो दुःखम् । अनुग्राहकसम्बन्धविच्छेदे वक्त्रव्यविशेषः शोकः ।

शका—उपधातका जो रक्षण किया है उससे वह आसादन ही ज्ञात होता है ?

समाधान—प्रसन्न ज्ञानकी विनय न करना उसकी अच्छाईकी प्रशंसा न करना आदि

१५ आसादन है । परन्तु ज्ञानको अज्ञान समझकर ज्ञानक नाशका इरादा रखना उपधात है इस प्रकार  
 इन दोनोंमें अन्तर है ।

सूत्रमें 'तत्' पद ज्ञान और दक्षनका निर्देश करनेके लिय दिया है ।

शका—ज्ञान और दर्शन अप्रकृत है तथा उनका निर्देश भी नहीं किया है फिर यहाँ तत्  
 शब्दके द्वारा उनका ज्ञान कैसे हो सकता है ?

२ समाधान—प्रश्नकी अपेक्षा अर्थात् ज्ञानावरण और दर्शनावरणका क्या आसन्न है ऐसा प्रश्न  
 करनेपर उसकी अपेक्षा 'तत्' शब्द ज्ञान और दर्शनका निर्देश करता है ।

इससे यह अभिप्राय निकला कि ज्ञान और दक्षनवाचक विषयमें तथा उनका साधनोंके विषयमें  
 प्रदोषादिककी योजना करनी चाहिये क्योंकि ये उनका निमित्तसे होते हैं । ये प्रदोषादिक ज्ञानावरण  
 और दक्षनावरण कर्मके आसन्नके कारण हैं । एक कारणसे भी उनका काय होते हुए दक्ष ज्ञात है

२५ इसलिये प्रदोषादिकके एक समान रहते हुए भी इनसे ज्ञानावरण और दक्षनावरण दोनोंका आसन्न  
 सिद्ध होता है । अथवा विषयक भेदसे आसन्नमें भेद होता है । ज्ञानसम्बन्धी प्रदोषादिक ज्ञानावरणक  
 आसन्न है और दक्षनसम्बन्धी प्रदोषादिक दर्शनावरणके आसन्न है ।

विद्य प्रकार इन दोनों कर्मोंका आसन्न अनेक प्रकारका है उसी प्रकार—

अपनेमें, दूसरेमें या दोनोंमें विद्यमान दुःख, शोक, साय, आङ्गन्दन, वध और  
 परिदेषन ये आसाता वेदनीय कर्मके आसन्न हैं ॥ ११ ॥

पीडारूप आत्माका परिणाम दुःख है । उपकार करनेवालेसे सम्बन्धक दूरे जानपर जो विक-

परिवादादिनिमित्तादाविलान्त करणस्य तीव्रानुशयस्ताप । परितापजाताश्रुपातप्रचुर  
विप्रलापादिभिव्यक्तक्रन्दनमाक्रन्दनम् । आयुरिन्द्रियबलप्राणवियोगकरण यथा । सकले  
शपरिणामावलम्बन गुणस्मरणानुकीतनपूषक स्वपरानुग्रहामिलापविषयमनुकम्पाप्रचुर  
रोदन परिदेवनम् । ननु च शोकादीनां दुःखविशेषत्वाद् दुःखग्रहणमेवास्तु ? सत्यमवम्  
तथापि कतिपयविशेषप्रतिपादनेन दुःखजात्यनुविधान क्रियते । यथा गौरित्युक्ते अनिज्ञति  
विशये तत्प्रतिपादनाथ सण्डमुण्डहृष्यशुक्लाद्युपादान क्रियते तथा दुःखविषयसत्त्वात्सत्येय  
लोकभेदसम्भवाद् दुःखमित्युक्ते विशेषानिर्ज्ञानात्कतिपयविशेषनिर्देशेन तद्विशेषप्रतिपत्ति  
क्रियते । तान्येतानि दुःखादीनि क्रोधाद्यावेशादात्मस्थानि भवन्ति परस्पायुभयस्थानि च ।  
एतानि सर्वाण्यसद्वेद्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि । अत्र शोधते—यदि दुःखादीन्यात्म  
परोभयस्यान्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानि किमयमाहृत केशलुञ्चनानशनातपस्थानादीनि दुःख  
निमित्तायाम्भीयन्ते परेषु च प्रतिपाद्यन्ते इति ? नय दोष—अन्तरङ्गक्रोधाद्यावेशसूच  
काणि दुःखादीन्यसद्वेद्यास्रवनिमित्तानीति विशेष्योक्तत्वात् । यथा कस्यचिद् भियज

रुता होती है वह शोक है । अपवाद आदिके निमित्तस मनके सिद्ध होनेपर जो तीव्र अनुशय-सताप  
होता है वह ताप है । परितापके कारण जो आसू गिरनेके साथ बिसाप आवि होता है, उसस सुलकर  
रोना आक्रन्दन है । आयु, इन्द्रिय बल और स्वासोच्छ्वासका सुदा कर देना यथा है । सकलेशरूप  
परिणामोंक होनेपर गुणोंका स्मरण और प्रशंसा करते हुए अपन और दूसरेक उपकारकी अभि  
लापास कदगाजनक रोना परिवेदन है ।

शका—शोकादिक दुःखक भव है इसलिय दुःखका ग्रहण करना पर्याप्त है ?

समाधान—यह कहना सही है तो भी यहाँ कुछ मदोंका कपन करके दुःखकी जातिमें बिसलाह  
है । जैसे गौ एसा कहनपर अवान्तर मदोंका ज्ञान नहीं होता इसलिय खाड़ी मुँडी काली सफे  
आदि बिसाधन लिय जात है उसी प्रकार दुःखविषयक आस्रव असत्मात शोकप्रमाण समव है ।  
परन्तु दुःख इतना कहनेपर उन सब मदोंका ज्ञान नहीं होता अतएव कुछ भेदोंका उल्लेख करके  
उनको पूषक पूषक जान लिया जाता है ।

श्रेयादिकक आबशयस ये दुःखादिक कमी अपनमें होत है, कमी दूसरोंमें होते हैं और कमी  
योग्य होत है । य सब असाता वेदनीयक आस्रवक कारण जानन चाहिये ।

शका—यदि अपनमें परमें या योग्योंमें स्थित दुःखादिक असातावदनीयक आस्रवक कारण है  
तो अरिहृतक मतकी माननबाल मनुष्य दुःखको पैदा करनबाले कशालोंक अनशन और आतपस्थान  
(अतापनयोग) आदिमें क्यों बिदबाध करत है और दूसरोंको इनका उपवेश क्यों बेटे है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि अन्तरगमें क्रोधादिकके आवद्यते जो दुःखादिक  
पदा होते हैं व असातावदनीयक आस्रवक कारण है इतना यहाँ बिसाध कहा है । जस अत्यन्त

(१)—अम्बत स्वपरा—आ दि १ दि २। (२)—आत्मन्तरविना—नृ। (३) शोकावेशा—नृ।

परमकरुणाशयस्य निःशत्यस्य सयतस्योपरि गण्ड पाटयतो दुःखहेतुस्त्वे सत्यपि न पापबन्धो  
बाह्यनिमित्तमात्रादेव भवति । एष ससारविषयमहादुःखादुद्विग्नस्य भिक्षोस्तद्विवृत्यु-  
पाय प्रति समाहितमनस्कस्य शास्त्रविहिते कमणि प्रवतमानस्य सबलशपरिणामाभावाद्  
दुःखनिमित्तत्वे सत्यपि न पापबन्धः । उक्तञ्च—

“न दुःखं न सुखं यद्वृषेत्तुर्दृष्टमिच्छित्तित्त ।

चिक्त्सियायां तु युक्तस्य स्याद् दुःखमथवा सुखम् ॥

न दुःखं न सुखं यद्वृषेत्तुर्मोक्षस्य साधने ।

मोक्षोपाये तु युक्तस्य स्याद् दुःखमथवा सुखम् ॥”

उक्ता अमद्वेषात्प्रवहतव । सद्देशस्य पुन के इत्यत्रोष्प्यते—

भूतव्रत्यनुकम्पावानसारागसयमार्थियोगं क्षान्तिं शौचमिति सद्देशस्य ॥ १२ ॥

तासु तासु गतिषु कर्मोदयवशाद्भवन्तीति भूतानि प्राणिन इत्यर्थः । व्रतान्यहिंसा  
दीनि यक्षयन्ते तद्वन्तो व्रतिनः । ते द्विविधाः । अगारम्प्रति निवृत्तौऽनुकम्पा सयता  
गृहिणश्च सयतासयता । अनुग्रहार्थीवृत्तचतसः परपीठामात्मस्थामिव भुवतोऽनुकम्पन  
मनुकम्पा । भूतषु व्रतिषु चानुकम्पा भूतव्रत्यनुकम्पा । परानुग्रहवुद्ध्या स्वन्यातिसजन

दयालु किन्ती बचके फोडकी कीर-फाड और मरहमपट्टी करते समय निःशस्य सयतको दुःख इतमें  
निमिषा होतपर भी कबल बाह्य निमित्त मात्रस पापबन्ध नहीं होता उसी प्रकार जो भिक्षु ससार  
सम्बन्धी बुझसे उद्विग्न है और जिसका मन उसका दूर करनक उपायोंमें लगा हुआ है उसका पाप  
विहित कर्ममें प्रवृत्ति करत समय सकलरूप परिजामोंक नहीं होतस पापबन्ध नहीं होता । कहा भी है—

जिम प्रकार चिकित्साक साधन में स्वयं दुःखरूप है और न सुखरूप है किन्तु जो चिकित्सामें  
सग रहा है उस दुःख भी होता है और सुख भी । उसी प्रकार मोक्ष-साधनक जो हेतु है स्वयं न  
दुःखरूप है और न सुखरूप किन्तु जो मोक्षमागपर आरुह्य है उसे दुःख भी होता है और सुख भी ।

असातावेदनीयक आश्रयके कारण कह परन्तु मातावेदनीयक आश्रयक कारण कौन है ? इसी  
बातको घतमानक लिय अब भागेका सूत्र कहते हैं—

भूत अनुकम्पा व्रती अनुकम्पा, दान और सारागसयम आदि का योग तथा क्षान्ति और

शौच ये मातावेदनीय कर्मक आश्रय हैं ॥ १२ ॥

जो कर्मोदयक कारण विविध गतिधर्मोंमें हात है व भूत कहलात है । भूत यह प्राणीका पर्याय  
बापी पाया है । अहिंसादि व्रतोंका व्रतन भाग करेग । जो उसमें युक्त है वे व्रती कहलात हैं । वे  
दा प्रकाशक हैं—गहन क जो परम निवृत्त होतस सयत हां गये हैं और दूसर गृहस्थ सयतासयत ।  
अनुग्रह दयालु चित्तवालेक दूगरकी पीडाको अपनी ही माननेका जो भाव होता है उस अनुकम्पा  
कहत है । सब प्राणियोंपर अनुकम्पा रखता भूतानुकम्पा है और व्रतियोंपर अनुकम्पा रखता व्रत्य  
अनुकम्पा है । दूगरका उपकार जो हम बुद्धिग अपनी वस्तुका अर्थण करना बात है । जो सगारके

दानम् । सप्ताङ्कारणविनिवृत्तिं प्रत्यागूर्णोऽग्नीनाशयः सगग इत्युच्यते । प्राणोद्दिश्येज्य  
धूमप्रवृत्तेर्विगतिं सयम । सगगम्य सयम सरता वा सयम सगगमयम । 'आदि  
गन्धन सयमासयमाकामनिजरावाग्गतपोऽजुराधः । योग समाधि सम्यक्प्रणिधानमियथ' ।  
भूतप्रत्यनुकम्पादानसरागसयमादीनां योगो भूतप्रत्यनुकम्पादानसरागसयमादियोगः ।  
क्राधादिनिवृत्तिं क्षान्तिं । लोभप्रकाराणामुपरमं शोचम् । इति' एतत् प्रकाराथ । २  
के पुनस्त प्रकारा ? अहन्पूजाकरणतत्परतावात्सृज्यद्वतपस्त्रिवयाधृत्याभ्य । 'भूत ग्रहणात्  
सिद्धे प्रति ग्रहण तद्विषयानुकम्पाप्राधायास्थापनायम् । त एते सद्देहस्थात्रवा शेषा ।  
अथ तन्मन्त्रोद्देशभाप्रो मोहस्याश्रवहेतौ वक्तव्ये तद्भेदेऽस्म्य दशनमाहस्याश्रवहेतु  
प्रतिपात्नापमिदमुच्यते—

केवलसिद्धतसधमदेवावणवाखो दशनमोहस्य ॥ १३ ॥

निराकरणज्ञानां केवलिनः । तदुपविष्टं वृद्ध्यतिशयद्वियुक्तगणधराणुस्मृतं ग्रन्थ  
रचनं श्रुतं भवति । रत्नप्रयापेत धमणगण सध । अहिंसारक्षणस्तदागमदेहिता धम ।  
दवाश्चतुर्णिकाया उक्ता । गुणवस्सु मह्यम् अमवभूतत्पोद्भावनमवणवाद । एतेष्व

कारणोंक त्यागके प्रति उम्भू ह् परन्तु जिनके मनस रागक सम्कार नल् नहीं ह्ण हैं वह सराग  
कहलाता है । प्राणी और इन्द्रियोंक विषयमें मनुष्य प्रवृत्तिक त्यागका सयम कहत हैं । रागा जीवका  
सयम या रागमहित सयम मरागसयम कहलाता है । मूत्रमें मरागसयमक आग दिये गये आदि  
पन्म सयमासयम अकामनिजरा और वात्तपका ग्रहण होता ह् । योग समाधि और सम्यक्प्रणि  
धान ये एकाश्रवाची नाम हैं । पहल जो भूतानुकम्पा प्रत्यनुकम्पा दान और सरागसयम आदि  
कहे हैं इनका योग अर्थात् इनमें मल प्रकार मन लगाना भूतप्रत्यनुकम्पादानसरागसयमादियोग  
है । क्रीधादि दोषोंका निराकरण करना क्षान्ति है । तथा लोभके प्रकारोंका त्याग करना शोच ह् ।  
मूत्रमें आया हुआ इति धृष्ट प्रकारवाची है । वे प्रकार यहे—अरुहतकी पूजा करनेमें तत्परता  
तथा वास और बूद्ध तास्त्रियोंकी वयाधृत्य आदि करना । यद्यपि भूत पदक ग्रहण करनेस प्रतियाका  
ग्रहण हो जाता है तो भी प्रतीविषयक अनुकम्पाकी प्रधानता दिक्कसानेक लिय सूत्रमें 'प्रती' पदको  
अल्पमें ग्रहण किया है । य मत्र साताश्रवनीयके आश्रव हैं ।

अब इसके बाद मोहनीयक आश्रवक कारणोंका कथन करना क्रमप्राप्त ह् । उगमें भी पहले  
उमक प्रथम भन् दशनमोहनीयक आश्रवक कारणोंका कथन करनेक लिय आगेका मूध कहत है—

कषठी, भुत, सध, धम और देव इनका अर्पणवाद् दर्शनमोहनीय कर्मका आश्रव हैं ॥१३॥

जिनका ज्ञान आवरण रहित ह् वे केवली कहलात हैं । अतिगम वदिकाल गणधरदव उनक  
उपशोको स्मरण करक जो धर्मोंकी रचना कखे हे वह श्रुत कहलाता है । रत्नत्रयस यक्त  
धमणोंका समुदाय सध कहलाता है । सर्वज्ञदाग प्रतिपादित आगममें उपलि अहिंसा ही धम है ।  
चार तिकायबाल शैबोंका कथन पहल कर आये हैं । गुणकारे यह पुरुषोंमें जो दोष नहीं ह् उनका

वणवादी वशानमोहस्यास्रवहेतु । कवलाम्यवहारजीविन कवलिन इत्येवमादि वचन  
केवलितानामवणवाद । मासमक्षण सनवधामिधान श्रुतावणवाद । शूद्रत्वाशुषित्वाद्या  
विभक्ति सधावणवाद । जिनोपदिष्टो धर्मो निगुणस्तदुपसधिनो य त चासुर भविष्य  
न्तीत्येवमौद्यभिधान धर्मावणवाद । सुरामासोपसधाद्याधोपण देवावणवाद ।

द्वितीयस्य मोहस्यास्रवभेदप्रतिपादनायमाह—

कषायोद्ययास्तीक्ष्णपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥

कषाया उक्ता । उदयो विपाक । कषायानामुदयास्तीक्ष्णपरिणामश्चारित्रमोहस्या  
स्रवो वेदितव्य । तत्र स्वपरकषायोत्पादन तपस्विजनवृत्तसूषण सक्लृष्टलिङ्गप्रतधार  
णादि कषायवेदीयस्यास्रव । सद्धर्मोपहसनदीनातिहासकन्दर्पोपहासवहुविप्रलापोप  
हासशीलतादिर्हाम्यवेदनीयस्य । विचित्रक्रीडनपरताव्रतशीलारुच्यादि रतिवेदनीयस्य ।  
परारनिप्राडुर्भयनरतिविनाशनपापशीलसर्गादि अरतिवेदनीयस्य । स्वसोकार्थोदतपर

उत्तमं उद्भावन करना अवर्णवाह है । इन केवली आदिने विषयमें किया गया अवर्णवाह दर्शन  
मोहनीयक आस्रवका कारण है । यथा कवली कवलाहारसे पीत है इत्यादि रूपसे कथन करना  
केवलियोंका अणववाद है । सास्त्रमें मासमक्षण आदि को निर्दोष कहा है इत्यादि रूपसे कथन करना  
भुक्तका अवणवाद है । य शूद्र हैं, असुषि हैं इत्यादि रूपसे अपवाद करना सधका अवणवाद है ।  
जिनवचन द्वारा उपदिष्ट धर्ममें कोई सार नहीं जो इसका सबन करत हैं व असुर होंगे इस  
प्रकार कथन करना धमका अवर्णवाद है । वेव सुरा और मांस आदिका सबन करत हैं इस  
प्रकारका कथन करना देवोंका अवर्णवाद है ।

अब मोहनीयका दूसरा भव जो चारित्र मोहनीय है उसके आस्रवने भदोंका कथन करनेके  
लिय आगका सूत्र कहते हैं—

कषायक उदयसे होनेवाला तीक्ष्ण आत्मपरिणाम चारित्रमोहनीयका आस्रव है ॥ १४ ॥

कषायोंका व्याख्यान पहले कर आम हैं । विपाकको उदय कहत हैं । कषायोंक उदयस जो  
आत्माका तीक्ष्ण परिणाम होता है वह चारित्रमोहनीयका आस्रव जानता चाहिय । स्वम कषाम  
करना दूसरोंमें कषाम उत्पन्न करना तपस्वीजनोके चारित्रमें दूषण लगाना सकलराको पदा  
करनवासे लिंग (भय) और व्रतको धारण करना आदि कषायवदनीयक आस्रव है । मर्य  
धमका उपहास करना दीन मनुष्यकी शिल्पी उड़ाना कुस्तिर रागको दहनवाका हँसो  
मजाह करना बहुश दहन और हँसनकी आन्त रमता आदि हाम्यवदनीयक आस्रव  
है । नाता प्रकारकी प्रीक्षाओंमें लग रहना व्रत और लीलने पासन करणमें रचिन रचना  
आदि रतिवदनीयक आस्रव है । दूसरोंमें अरति उत्पन्न हो और रतिना बिनाश हो एगो

(१)—गायत्रिचतुर्षु क्त । (२)—येवमदि-पु । (३)—आपिहासकन्द-पु । (४)—आस्रव परमोपाविपाक

प्लुताभिनन्दनादि शोकवेदनीयस्य । स्वभयपरिणामपरभयोत्पादनाभियवे  
स्य । कुशलक्रियाचारजुगुप्सापरिवादशीलत्वादिजुगुप्सावेदनीयस्य । अलीकाभिधा  
तिसंघानपरत्वंपररघ्रप्रसिद्धत्वप्रबुद्धनागादि स्त्रीवेदनीयस्य । स्तीकक्रोधानु  
त्त्वस्वदारसन्तोषादि पुषेदनीयस्य । प्रचुरकपायगुह्येन्द्रियव्यपरोपणपराङ्मनावस्व  
दिनपु सकवेदनीयस्य ।

निर्दिष्टो मोहनीयस्यास्रवभेद । इदानीं तदनन्तरनिर्दिष्टस्यायुष आस्रवहेतो वक्तव्ये  
स्य नियतकालपरिपाकस्यायुष कारणप्रदघनायमिदमुच्यते—

बह्वारम्भपरिग्रहस्य नारकस्यायुष ॥ १५ ॥

आरम्भ प्राणिपीडाहेतुव्यापार । ममेदबुद्धिलक्षण परिग्रह । आरम्भाश्च परि  
ग्रह आरम्भपरिग्रहा । बहव आरम्भपरिग्रहा यस्य स बह्वारम्भपरिग्रह । तस्य  
वो बहु आरम्भपरिग्रहत्वम् । हिमादिकूरकमजिस्रप्रवतनपरस्वहरणविषयातिगृद्धि  
श्लेष्माभिजातरीद्रघ्यानमरणकालतादिलक्षणो नारकस्यायुष आस्रवा भवति ।

आह उक्तो नारकस्यायुष आस्रव । तयंग्योनस्येदानीं वक्तव्य इत्यत्रोच्यते—

जि करना और पापी लोगोकी संगति करना आदि अरतिबेदनीयके आस्रव हैं । स्वय शोकतुर  
॥ दूसरोके शोकको बढ़ाना तथा घस मनुष्योका अभिनन्दन करना आदि शोकवन्नीयके आस्रव  
भयरूप अपना परिणाम और दूसरोको मय पत्न करना आदि भयवन्नीयके आस्रव कारण हैं ।  
कर त्रिया और सुसकर आचारस घुषा करता और अपवाद करने में रति रखना आदि जुगुप्सा  
नीयके आस्रव है । अमत्य बोलनकी आदत अतिसम्भानपरता दूसरेके छिद्र ईड़ना और बढ़ा हुआ  
ग आदि स्त्रीवेदके आस्रव हैं । शोधका अस्य होना ईर्ष्या नहीं करना अपनी स्त्रीमें सन्तोष करना  
दि पुरुषवत्के आस्रव हैं । प्रचुर मात्रामें कपाय करना गुप्त इन्द्रियोका विनाश करना और  
स्त्रीस बलात्कार करना आदि नपुंसक वेदनीयके आस्रव है ।

मोहनीयके आस्रवके मशोका कथन किया । इसके बाद आयुक्तके आस्रवके कारणोका कथन  
मप्राप्त है । उसमें भी पहल जिसका नियत वास्तव फल मिलता है उस आयुके आस्रवके कारण  
कालानके निय आगका सूत्र कहत हैं—

बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहवालेका माय नरकायुष आस्रव है ॥ १६ ॥

प्राणियोको कुछ पहुँचानेवाली प्रकृति करना आरम्भ है । यह वस्तु मरी है इन प्रकारका सकल  
तना परिग्रह है । जिसके बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह हो वह बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रह  
का कहसाता है और उसका भाव बहुआरम्भपरिग्रहत्व है । हिंसा आदि कूर कार्योंमें निरन्तर  
ति दूसरेके धनका अपहरण इन्द्रियोके विषयोमें अत्यत मायकित तथा मरनके समय कृष्ण  
त्वा और रीद्रघ्यान आदिका होना नरकायुष आस्रव है ।

नरकायुष आस्रव कहा । अब तिर्यग्ध्यायुका आस्रव कहता पाहिय इसमिय आगका सूत्र कहत है—

(१) -रत्न परगघ्राये-मु । -रत्न रघ्राये-घ्रा (२) -जा स्कन्दा-मु । (३) निर्दिष्टस्यायुष कारण-मु ।

माया तयग्योनस्य ॥ १६ ॥

चारित्रमोहकमविशेषस्योदयान्ताविभूत आत्मन कुटिलभावो माया निकृति तयग्यो नस्यायुष आस्रवो वेदितव्य । तत्प्रपञ्चो मिथ्यात्वोपेतघमदेगना नि शीलतातिसन्धान प्रियता नीलकपोतलक्ष्यात ध्यानभरणकालतादि ।

ग्राह व्याख्यातस्तयग्योनस्यायुष आस्रव । इदानीं मानुषस्यायुष को हेतुरित्य त्रोच्यते—

अत्पारम्भपरिग्रहत्वा मानुषस्य ॥ १७ ॥

नारकायुगस्रवो व्याख्यात । तद्विपरीतो मानुषस्यायुष इति संक्षेप । तद्व्यास — विनीतस्वभाव प्रकृतिभद्रता प्रगुणव्यवहारता तनुकपायत्व मरणकालासकलेशतादि ।

किमतावानेव मानुषस्यायुष आस्रव इत्यत्रोच्यते—

स्वभावभावव च ॥ १८ ॥

भूदोर्भावो मादवम् । स्वभावेन मादव स्वभावभाववम् । उपदेशानपेक्षमित्यथ । एतदपि मानुषस्यायुष आस्रव ।

माया तिर्यचायुक्ता आस्रव है ॥ १६ ॥

माया नामक चारित्रमोहनीयक उत्पन्न जो आत्मामें कुटिल भाव पैदा होता है वह माया है । इसका दूसरा नाम निकृति है । इस त्रिय चायुका आस्रव जानना चाहिये । इसका विस्तारसे बुझाना— धर्मोपदेशमें मिथ्या बातोंको मिसाकर उनका प्रचार करना शीलरहित जीवन बिताना अतिवधान प्रियता तथा मरणक समय नील व कपोत लक्ष्या और अतध्यानका होता आदि तिर्यचायुक् आस्रव है ।

त्रिय चायुक् आस्रव कह । सब मनुष्यायुका क्या आस्रव है यह घटलक्षके सिमे भावेका सूत्र कहत है—

अन्य आरम्भ और अन्य परिग्रहवालेका भाव मनुष्यायुका आस्रव है ॥ १७ ॥

नरचायुका आस्रव पहल कह आप है । उससे विपरीत भाव मनुष्यायुका आस्रव है । संक्षेपमें यह हम सूत्रका अभिप्राय है । उनका विस्तारसे बुझाना—स्वभावका बिनभ्र होना भद्र प्रकृतिका होना मरण व्यवहार करना अन्य कपायका होना तथा मरण क समय मकलदास्य परिष्पदिका नहीं होना

आदि मनुष्यायक आस्रव है ।

क्या मनुष्यायका आस्रव इनका ही है या और भी है । इसी बातक वतकानक त्रिय भागका सूत्र कहत है—

स्वभावकी मृदुता भी मनुष्यायुका आस्रव है ॥ १८ ॥

मृदुता भाव मादव है । स्वभावसे मादव स्वभाव भाव है । आस्रव यह है कि बिना किसी ममताय बुझाय मृदुता आन जीवनेमें उतगी हुई हो इसमें किसीक उपदेशकी आवश्यकता न पड़े । यह भा मनुष्यायुका आस्रव है ।

पूषणयोगकरण किमयम् ? उत्तरायम देवायुष आस्रवा अमपि मया स्यात् ।

किमेतदेव द्वितयं मानुषस्यास्रव ? न इत्युच्यते—

निशशीलव्रतत्व च सर्वेषाम् ॥ १९ ॥

‘च शब्दोऽधिकृतसमुच्चयाथ’ । अत्मारम्भपरिग्रहत्वञ्च नि शीलव्रतत्वञ्च ।  
शीलानि च व्रतानि च शीलव्रतानि तानि वक्ष्यन्ते । निष्क्रान्त शीलव्रतेभ्यो नि शीलव्रत ।  
तस्य भावो नि शीलव्रतत्वम् । ‘सर्वेषां’ ग्रहण सकलयास्रास्रवप्रतिपत्त्ययम् । किं देवायुषो-  
पि भवति ? सत्यम् भवति भोगभूमिजापेक्षया ।

अयं चतुष्पत्यायुष क आस्रव इत्यप्रोच्यते—

सरागसयमसयमासयमाकामनिजरावास्तपांसि ववस्य ॥ २० ॥

सरागसयम सयमासयमश्च व्याख्याता । अकामनिजरा अकामश्चारकनिगध  
वधनवद्वेषु क्षुत्तृष्णानिरोधत्रहाषयभूषय्यामलधारणपरितापादि । अकामेन निजरा

शका—इस सूत्रको अलगस कयो घनाया ?

समाधान—स्वभावकी मृदुता देवायुषा भी आस्रव ह इस बातक वतलानक लिय इस सूत्रको  
अलगस घनाया ह ।

क्या म वा ही मनुष्यायक आस्रव हैं ? नहीं, किन्तु और भी ह । इसी बातक वतलानक लिय  
अत्र आगका सूत्र कहत हैं—

शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुषोंका आस्रव है ॥ १९ ॥

सूत्रमें जा ‘च’ पर ह वह अधिकार प्राप्त आस्रवोंक समुच्चय करतक लिय ह । जिसस यह  
अर्थ निकलता ह कि अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रहस्वरूप मात्र तथा शील और व्रतरहित होना  
सब आयुषोंक आस्रव ह । शील और व्रतोंका स्वरूप आग कहतबाले ह । इनस रहित शीलका ओ  
मात्र होता है उमम सब आयुषोंका आस्रव होता ह यह इस सूत्रका भाव ह । यहाँ अत्र आयुषोंका  
आस्रव इष्ट ह यह दिखलानक लिय सूत्रम सर्वेषाम् पदका ग्रहण किया ह ।

शका—क्या शील और व्रत रहितपना देवामुका भा आस्रव ह ?

समाधान—हाँ भोगमभियं प्राणियोंकी अपक्षा शील और व्रतरहितपना देवायुषा भी आस्रव ह ।

अत्र शीपी आयुषा क्या आस्रव ह यह वतलानक लिय आगका सूत्र कहत हैं—

सरागर्मयम, संयमासयम अकामनिजरा और चास्तप च देवायुष आस्रव है ॥ २० ॥

सरागमयम और मयमासयमका व्याख्यान पहल कर आय है । चारकमें रोक रत्नपत्र मा रम्भी  
आदिम शीघ रत्नपत्र जा मत्र प्याम सहनी पड़ती है ब्रह्मचर्य पालना पड़ता ह मुनिपत्र मोना  
पड़ता है मत्र सूत्रका रोजना पड़ता ह और मत्राप आनि होना ह य सब अत्राम ह और इनम जा

(१) यातकोपि च । (२) शिगीव म् । (३)—प्राणि वच्य-म् ।



अकामनिजरा । बालतपो मिथ्यादक्षनोपतेमनुपायकायन्धेशप्रचुर निष्कृतिबहुलव्रतधारणम् । तान्यतानि दैवस्यायुष आस्रवहृतवो वदितव्या ।

किमेतावानेव दवस्यायुष आस्रव ? नेत्याह—

सम्यक्त्व च ॥ २१ ॥

किम् ? दवस्यायुष आस्रव इत्यनुवतते । अविशपाभिधानेऽपि सौघर्मादिविशेषगति । कुत ? पूषककरणत् । यद्येवम् पूवसूत्रे उक्त आस्रवविधिरविशेषेण प्रसक्त तन सरागस्य ममयमानयमावपि भवनवास्याद्यायुष आस्रवो प्राप्नुत ? नप दोष सम्यक्त्वाभावे सति तद्वक्ष्यदेशाभावात्तदुभयमप्यत्रान्तभवति ।

आयुषोऽन्तरमुद्दिष्टस्य नाम्न आस्रवविधौ वक्तव्ये तत्राऽशुभनाम्न आस्रवप्रतिपत्त्यपमाह—

योगवक्रता विसर्वावन चाशुभस्य नाम्न ॥ २२ ॥

निजरा होती है वह अकामनिजरा है । मिथ्यात्वक कारण मोक्षभागमें उपयोगी न पड़नेबाल काम कल्याणबहुल मायास व्रतोंका धारण करना बास्तव है । य सब देवायुष आस्रवक कारण जानने चाहिये ।

क्या देवायुष आस्रव इतना ही है या और भी है ? अब इसी बातको बतलानके लिये आगका सूत्र कहत हैं—

सम्यक्त्व भी देवायुष आस्रव है ॥ २१ ॥

प्रश्न—सम्यक्त्व क्या है ?

समाधान—देवायु का आस्रव है' इस पदकी पूष सूत्र से अनुवृत्ति होती है ।

यद्यपि सम्यक्त्वको सामान्यस देवायुष आस्रव कहा है तो भी इससे सौघम आदि विभय दर्वोंका ज्ञान होता है ।

प्रश्न—किस कारणसे

समाधान—अल्प सूत्र वनात्स ।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो पूर्व सूत्रमें जो विधान किया है वह सामान्यरूपस प्राप्त होता है और इगम सरागस्यम और मयमास्यम य भवनवासी आदिकी मायक भी आस्रव है यह प्राप्त होता है ?

समाधान—यह कोई दाप नहीं है क्योंकि सम्यक्त्वक अभावमें सरागस्यम और मयमास्यम महा ज्ञान इत्यस्य उन दानाका यही अन्तर्भाव होता है ! अर्थात् य भी सौघर्मादि देवायुष आस्रव है क्योंकि य सम्यक्त्वक हानेपर ही होता है ।

आयुष बाद नामक आस्रवका वचन क्रमप्राप्त है । उनमें भी पहलक अशुभ नामक आस्रवका ज्ञान वर्गनक लिये आगका सूत्र कहत हैं

योगवक्रता आर विसर्वाद य अशुभ नाम फर्मके आस्रव इ ॥ २२ ॥

योगस्त्रिप्रकारो व्याख्यात । तस्य वक्रता कौटिल्यम् । विसवादनमयथाप्रवतनम् । ननु च नाथभेद । योगवक्रतवान्यथाप्रवतनम् ? सत्यमेवमेतत्—स्वगता योगवक्रतोत्युच्यत । परगत विसवादनम् । सम्यग्भ्युदयनिश्रेयसार्थासु क्रियासु प्रवतमानमन्य तद्विपरीतकायवाङ्मनोभिविसवादादयति मेव कार्पीरेव कुर्वति । एतदुभयमशुभनामकर्मास्रवकारण वेदितव्यम् । 'च'शब्देन मिथ्यावदानपशुन्यास्थिरचित्तताकूटमानतुलाकरणपरनिन्ताऽऽमप्रशसादि समुच्चयते ।

अथ शुभनामकर्मण क आस्रव इत्यत्रोच्यते—

तद्विपरीत शुभस्य ॥ २३ ॥

कायवाङ्मनसामुजुत्वमविसवादन च तद्विपरीतम् । 'च'शब्देन समुच्चितस्य च विपरीत प्राहृषम् । धार्मिकवशनसम्भ्रमसद्भावोपनयनससरणभीस्ताप्रमादवर्जनादि । तदतच्छुभनामकर्मास्रवकारण वेदितव्यम् ।

आह किमेतावानेव शुभनाम्न आस्रवविधिरुत कश्चिदस्ति प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते— यदिद तीक्ष्णकरनामकर्मान्तानुपमप्रभावमचिन्त्यविभूतिविशेषकारण त्रलोक्यविजयकर

तीन प्रकारक योगका व्याख्यान पहले कर आये हैं । इसकी कुटिलता योगवक्रता है । अन्यथा प्रवृत्ति करना विसवाद ह ।

[ धका—इस तरह इनमें अभिभेद नहीं प्राप्त होता क्योंकि योगवक्रता और अन्यथा प्रवृत्ति करना एक ही बात ह ?

समाधान—यह कहना सही है तब भी योगवक्रता स्वगत है और विसवादन परगत । जो स्वर्ग और मोक्षक योग्य समीचीन क्रियाओंका आचरण कर रहा ह उसे उसक विपरीत मन बचन और कायकी प्रवृत्ति द्वारा रोचना कि ऐसा मत करो ऐसा करो विसवादन है । इस प्रकार ये दोनों एक नहा हैं किन्तु अलग-अलग ह ।

य दोनों अशुभ नामकर्मक आस्रवक कारण जानने चाहिये । सूत्रमें आय हुए 'च' पदस मिथ्यावचन बुगलशोरी चित्तका स्थिर न रहना मापने और तीक्ष्णक वाट घट बढ़ रहना धूमरोंकी निन्दा करना और अपनी प्रशसा करना आदि आस्रवोंका समुच्चय होता है ।

अथ शुभ नामकर्मका आस्रव क्या है यह बतलानक लिये आगका सूत्र कहत हैं उससे विपरीत अर्थात् योगकी सरलता और अविसवादा ये शुभ नामकर्मके आस्रव हैं ॥२३॥

काय वचन भीर मनकी सरलता तथा अविसवादा ये उसस विपरीत ह । उसी प्रकार पून सूत्रकी व्यवस्था करत हुए 'च' शब्दस जिनका समुच्चय क्रिया गया ह उनक विपरीत आस्रवोंका ग्रहण करना चाहिये । जस—धार्मिक पुरुषों व स्वानोंका वचन करना आदर सस्कार करना सद्भाव रहना उपनयन ससरण करना और प्रमादका त्याग करना आदि । य सब शुभ नामकर्मक आस्रवक कारण है ।

धका—क्या इतन ही शुभ नामकर्मक आस्रव हैं या और भी कोई बिद्यगता है ? समाधान—जी यह अनस्त और अनुपम प्रभाववाला अभिन्त्य विभूति विगणका कारण और

तस्यास्त्रविधिविधेयोऽस्तीति । यद्येवमुच्यतां के तस्यास्त्रवा ? इत्यत इदमारभ्यते—  
 ब्रह्मनविशुद्धिर्ब्रह्मियसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्षणज्ञानोपयोगसंबेगौ क्षणिततस्या  
 गतपत्नी साधुसमाधिब यावृत्त्यकरणमहवाचायबहुभुतप्रवचनभक्तिरारावश्यतापरिहा  
 षिमिगिप्रभावता प्रवचनवत्सस्त्वमिति तीर्थंकरस्वस्य ॥ २४ ॥

५ जिनन भगवताऽहृत्परमष्ठिनोपदिष्टे निम्नन्धलक्षणे भोक्षवर्मनि रुचिदशनविशुद्धि  
 प्रागुक्तलक्षणा । तस्या अष्टावङ्गानि निरुच्छिदितत्व नि काष्ठ क्षिता विधिभित्त्वाविग्रहता  
 अमूढदृष्टिता उपबृ हण स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावन घति । सम्यग्ज्ञानादियु मोक्ष  
 मार्गेषु तत्साधनेषु च गुर्वादिषु स्वयोग्यवृत्त्या सत्कार आदरो विनयस्नेन सम्पन्नता विनय  
 सम्पन्नता । अहिंसादिषु वृत्तेषु तत्प्रतिपालनाद्येषु च क्रोधवचनादिषु शीलेषु निरवद्या  
 १ वृत्ति शीलव्रतेष्वनतीचार । जीवादिपदार्थस्वतस्त्वविषये सम्यग्ज्ञाने निरत्य युक्तता अभीक्षण  
 ज्ञानोपयोग । ससारदुःखान्धित्यभीष्टता संबेग । त्यागो दानम् । तत्रिविधम्—आहारदानम  
 भयदान ज्ञानदान चेति । तच्छक्तितो यथाधिधि प्रयुज्यमान त्याग इत्युच्यते । अनिगूहित

शील लोकादी विषय करनबाला तीर्थंकर पामकर्म हे उसक आस्रभमें विधेयता हे अत अगळ सूत्र  
 द्वारा उसीका कवन करत हे—

१२ दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शील और व्रतोंका अविचार रहित पालन करना, ज्ञानमें  
 सतत उपयोग, सतत संबेग, शक्तिके अनुसार त्याग, शक्तिके अनुसार तप, साधु  
 समाधि, धैर्यावस्था करना, अरिहतमक्ति, आचार्यमक्ति, बहुभुतमक्ति, प्रवचन  
 भक्ति आवश्यक क्रियाओंको न छोड़ना, मोक्षमार्गकी प्रभावना और  
 प्रवचनवात्सल्य ये तीर्थंकर नामकर्मके आस्रव हैं ॥ २४ ॥

२ (१) जिन भगवान् अरिहत परमपुत्री द्वारा कह हुए निर्द्वन्द्व स्वरूप भोक्षमार्गपर रुचि रखना दर्शन  
 विशुद्धि हे । इसका विषय लक्ष्य पहले कह आये हैं । उसके आठ अंग हे ? निश्चिन्तित्व निष्काशिता  
 निर्विचिकित्सितत्व अमूढदृष्टिता उपबृ हण स्थितीकरण वात्सल्य और प्रभावना । (२) सम्यग्  
 ज्ञानादि मोक्षमार्ग और उनके साधन मुच आदिक प्रति अपने योग्य आचरण द्वारा आदर सत्कार  
 करना विनय हे और इसस युक्त होना विनयसम्पन्नता हे । (३) अहिंसादिक व्रत हे और इनक  
 पालन करनक विषय त्रयोविधका त्याग करना शील हे । इन दोनोंके पालन करनमें निर्दोष प्रकृति  
 २३ रखना शीलव्रतनामविचार हे । (४) जीवादि पदार्थरूप स्वतस्त्वविषयक सम्यग्ज्ञानमें निरन्तर समे  
 रहना अभीक्षण ज्ञानोपयोग हे । (५) ससारके दुर्भावसे निरन्तर डरन रहना संबेग हे । (६) त्याग  
 दान हे । वह तीन प्रकारका हे—आहारदान भयदान और ज्ञानदान । उन दानिने अनुसार  
 विधिपूर्वक दान यथापचित त्याग हे । (७) दानिने न छिपाकर मोक्षमार्गक अनुसार चारीरने

धीर्मस्य मार्गाविरोधि कायकलेशस्तप । यथा भाण्ठागारे दहने समुत्थिते तत्प्रथममनु-  
 ष्ठीयते बहूवकारत्वात्तयाज्जक्रव्रजशीलसमूहस्य मुनेस्तपस कुतश्चित्प्रत्यूहे ममुपस्थिते  
 तत्प्रचारण समाधि । गुणवद्दुःखीपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरण वमावृत्यम् ।  
 अर्हदाचार्येण बहुध्रुतेषु प्रवचन च भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्ति । पण्णामावस्यक  
 क्रियाणा यथाकाल प्रवचनमावस्यकापरिहाणि । ज्ञानतर्पादानजिनपूजाविधिना धम  
 प्रकाशन मागप्रभावना । वत्से घेनुवत्सधमणि स्नेह प्रवचनवत्सलत्वम् । तान्मेतानि  
 पोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीक्ष्णरनामकर्मास्त्रिव  
 कारणानि प्रत्येतव्यानि ।

इहानीं नामास्त्राविधानानन्तर गोत्रास्त्रवे वक्तव्य सति नीचगोत्रस्यास्त्रविधानाद्य  
 मिमाह—

परात्मनिन्दाप्रशसे सबसद्गुणोच्छारनोद्भावने च नीचगोत्रस्य ॥ २५ ॥

तैय्यस्य वाज्यस्य वा दोषस्योद्भावन प्रति इच्छा निन्दा । गुणोद्भावनाभिप्राय-  
 प्रशसा । यथासर्म्ममभिसम्यन्ध —परनिन्दा आत्मप्रशसेति । प्रतिव धकहेतुसन्निधाने

क्लेश बना यथाशक्ति तप ह । (८) जस भाङ्गमें आग लग जानपर बहुत उपकारी होनेसे आगको  
 शान्त क्रिया जाता है उसी प्रकार अनक प्रकारके व्रत और क्षीर्णस समूह मुनिक तप करते हुए  
 किसी कारणस विघ्नक उत्पन्न होनेपर उसका सधारण करना—शान्त करना साधुसमाधि ह । (९) गुणी  
 पुढपक दुःखमें आ पडतपर निर्दोष बिधिस उसका दु ख दूरकरना यथावृथ है । (१३) अर्द्धित  
 आचार्य बहुधुन और प्रवचन इनमें भाषोंकी विद्युत्प्रिण साथ अनुराग रखना अरिहतभक्ति आचार्य  
 भक्ति बहुधुतभक्ति और प्रवचनभक्ति ह । (१४) छह आवस्यक क्रियाओंका यथा समय करना  
 आवस्यकापरिहाणि ह । (१५) ज्ञान तप दान और जिनपूना इनक द्वारा धर्मका प्रकाश करना  
 मागप्रभावना ह । (१६) जस गाय वच्छपर स्नह रखती है उसी प्रकार साधमिर्दोषपर स्नह रखना  
 प्रवचनवत्सलत्व है । ये सब सोकह कारण हैं । यदि अलग-अलग इनका भस प्रकार चिन्तन क्रिया  
 जाता ह तो भी ये तीक्ष्णर नामकमक आस्त्रबने कारण होते हैं और समुदायरूपस सदका भसे  
 प्रकार चिन्तन क्रिया जाता ह तो भी ये तीक्ष्णर नामकमक आस्त्रबक कारण होते हैं ।

नामकमक आस्त्रकोंका कथन करनेक बाद अब मात्र कमके आस्त्रकोंका कथन क्रमप्राप्त ह ।  
 उसमें भी पहल नीचगोत्रक आस्त्रकोंका कथन करनेके छिम आगका सूच कहत हैं—

परनिदा, आत्मप्रशसा सद्गुणोंका उच्छादन और असद्गुणोंका उद्भावन

ये नीचगोत्रके आस्त्र हैं ॥ २५ ॥

सच्चे या झूठे दोषको प्रकट करनेकी इच्छा निन्दा है । गुणोंक प्रकट करनेका भाव प्रशसा है ।  
 पर और आत्मा घन्दके साथ इनका क्रमस सम्बन्ध होता ह । यथा परनिन्दा और आत्मप्रशसा ।

(१)—चार्यवद्दुःख । (२)—जोभित्तु । (३) तप्यस्य वा दो-मु । (४)—संस्पमिति घन्व-आ वि  
 १ वि. २।

सति अनुद्भूतवृत्तिता अनाविभक्ति उच्छादनम् । प्रतिबन्धकाभावे' प्रकाशवृत्तिता उद्भावनम् । अत्रापि च यथाक्रममभिसम्बन्ध—सद्गुणोच्छादनमसद्गुणोद्भावनमिति । तायेतानि नीचगोत्रस्यास्रवकारणानि वेदितव्यानि ।

अथोच्चगोत्रस्य क आस्रवविधिरत्रोच्यते—

तद्विषययो मोक्षैव ह्यनुत्सेको चोत्तरस्य ॥ २६ ॥

'तत्' इत्यनेन प्रत्यासत्तेर्नीचगोत्रस्यास्रव प्रतिनिदिश्यते । अन्येन प्रकारेण वृत्तिविषयय । तस्य विषययस्तद्विषयय । क पुनरसौ विषयय ? आत्मनिन्दा परप्रशंसा सद्गुणोद्भावनमसद्गुणोच्छादन च । गुणोत्कृष्टेषु विनयेनावनतिर्नीचवृत्ति । विज्ञानादिभिर्लक्ष्यस्यापि सतस्तत्त्वसमदविरहोऽज्ञहङ्कारताज्जुत्सेक । तान्येतान्युत्तरस्योच्चगोत्रस्यास्रवकारणानि भवन्ति ।

अथ गोत्रानन्तरमुद्दिष्टस्यान्तरायस्य क आस्रव इत्युच्यते—

विघ्नकरणमन्तरायस्य ॥ २७ ॥

रोकनेवास कारणोक्त रहनपर प्रकट नहीं करनेकी वृत्ति होना उच्छादन है और रोकनेवासे कारणोंका अभाव होनेपर प्रकट करनेकी वृत्ति होना उद्भावन है । यहाँ भी क्रमस सम्बन्ध होता है । यथा—सद्गुणोच्छादन और असद्गुणोद्भावन । इन सबको नीच गोत्रके आस्रवके कारण जानना चाहिये ।

अथ उच्च गोत्रक आस्रवक कारण क्या है यह बतलानक लिये आगका सूत्र कहत ह—

उनका विषयय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणोंका उच्छादन और असद्गुणोंका उच्छादन तथा नम्रइष्टि और अनुत्सेक ये उच्च गोत्रक आस्रव हैं ॥ २६ ॥

इसके पहल नीच गोत्रक आस्रवोंका उल्लेख कर आये हैं अत 'तत्' इस पक्षे उनका ग्रहण होता है । अन्य प्रकारस वृत्ति होना विषयय है । नीच गोत्र का जो आस्रव कहा है उससे विषयय तद्विषयय ह ।

यथा—३ विपरीत कारण कौन हैं ।

ममाधान—आत्मनिन्दा परप्रशंसा सद्गुणोंका उद्भावन और असद्गुणोंका उच्छादन ।

जो गुणामें उत्कृष्ट ह उनके प्रति विनयस नम्र रहना नीचवृत्ति ह । ज्ञानादिकी अज्ञेया श्रेय हात हुए भी उसका मत् न करना अर्थात् अहंकार रहित होना अनुत्सेक ह । य उत्तर अर्थात् उच्च गोत्रके आस्रवक कारण हैं ।

अथ गोत्रके बाद त्रम प्राप्त अन्तराय कर्मका क्या आस्रव ह यह बतलानक लिय आगका सूत्र कहत है—

दानादिकर्मै विघ्न जालना अन्तर्गम कर्मका आस्रव है ॥ २७ ॥

दानादीन्युक्तानि 'दानलाभभोगोपभोगबीर्याणि च इत्यत्र । तेषां विहृतन विघ्न । विघ्नस्य करण विघ्नकरणमन्तरायस्यास्रवविधिर्वन्तिव्य । अत्र चोच्यते—तत्प्रदोपनि ह्लावादयो ज्ञानाद्यास्त्रवहेतवो प्रतिनियता आस्रवहेतवो वर्णिता, किं ते प्रतिनियत ज्ञानावरणाद्यास्त्रवहेतव एव उताविशेषेणेति । यदि प्रतिनियतज्ञानावरणाद्यास्त्रवहेतव एव आगमविरोध प्रमज्यते । आगमे हि सप्त कर्माणि आयुषज्यानि प्रतिक्षण युगपदास्रवन्तीत्युक्तम् । तद्विरोध म्यात् । अथाविशेषेण आस्रवहेतवो विशेषनिर्देशो न युक्त इति ? अत्रोच्यते—यद्यपि तत्प्रदोपादिभिर्ज्ञानावरणादीनां सर्वासां कमप्रवृत्तीनां प्रदेशवचनियमो नास्ति, तथाप्यनुभागनियमहेतुत्वेन तत्प्रदोपनि ह्लावादयो विभज्यन्ते ।

इति तत्त्वावबृत्ती सर्वाथसिद्धिसञ्ज्ञिकायां पण्डोऽध्याय ।



'दानलाभभोगोपभोगबीर्याणि च इत्यत्र सूत्रकी म्यास्या करत समय दानादिकका व्याख्यान कर आय हैं । उनका नाश करना विघ्न है । और इस विघ्नका करना अन्तराय कमका आस्रव जानना चाहिये ।

शब्द—सत्प्रदोप और मिह्लाव आदिक ज्ञानावरण और दशनावरण आदि कर्मोंक प्रतिनियत आस्रवके कारण कह तो क्या वे ज्ञानावरण और दर्शनावरण आदि प्रतिनियत कर्मोंक आस्रवके कारण हैं या सामान्यस सभी कर्मोंक आस्रवके कारण हैं ? यदि ज्ञानावरणादिक प्रतिनियत कर्मोंक ही आस्रवके कारण हैं तो आगमस विरोध प्राप्त होता है क्योंकि आयुष सिखा शेष सात कर्मोंका प्रति समय आस्रव होता है ऐसा आगममें कहा है, अतः इसस विरोध होता है । और यदि सामान्यस सब कर्मोंक आस्रवके कारण हैं ऐसा माना जाता है तो इसप्रकार विशेषरूपस कथन करना युक्त नहीं ठहरता ?

समाधान—यद्यपि तत्प्रदोप आदि से ज्ञानावरणादि सब कम प्रवृत्तियोंका प्रदेश दन्ध होता है ऐसा नियम नहीं है तो भी वे प्रतिनियत अनुभागवर्गक हतु हैं इसलिये तत्प्रदोप निह्लाव आदिका असंग अलग कथन किया है ।

इस प्रकार सर्वाथसिद्धि नामक तत्त्वावबृत्तिमें छठा अध्याय समाप्त हुआ ।

## अथ मत्तमोऽध्याय

आश्रवणार्थो व्याख्यात । तत्रारम्भकाले एवोक्त 'शुभ पुण्यस्य इति तत्सामान्य नोक्तम् । सद्बोधोपप्रतिपत्त्यय च पुन शुभ इत्युक्ते इदमुच्यते—

हिंसाऽनृतस्तेषामह मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥ १ ॥

५. 'प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपण हिंसा इत्येवमान्निभि सूत्रहिंसादयो निर्देक्ष्यन्ते । तस्यो विरमण विरतिव्रतमित्युच्यते । व्रतमभिसन्धिकृतो नियम इद क्तव्यमिध न क्तव्यमिति वा । ननु च हिंसादम परिणामविशेषा अध्वा कथ तेषामपादानत्वमुच्यत ? बुद्धघपाय घृत्वत्वविवक्षोपपत्ता । यथा धर्माद्विरमतीत्यत्र य एव मनुष्य सन्निभयुद्धि स पश्यति— दुष्करो धम फल चास्य श्रद्धामात्रगम्यमिति से बुद्ध्या सम्प्राप्य निवसते । एवमिहापि य

## सातवाँ अध्याय

आश्रवण पदार्थका व्याख्यान करत समय उसक आरम्भ में शुभ पुण्यस्य यह कहा है पर वह सामान्य स्पष्ट ही कहा है अत विषय रूपस उसका ज्ञान करानके लिए शुभ क्या है ऐसा पूछन पर आगवा सूत्र कहत हैं—

हिंसा, असत्य, चोरी अमस और परिग्रहसे निवृत्त होना व्रत है ॥ १ ॥

१२. 'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा' इत्यादि सूत्रों द्वारा हिंसादिकका जो स्वरूप आग कहने उनस चिरन होना व्रत कहलाता है । प्रतिज्ञा करके जो नियम लिया जाता है वह व्रत है । या यह करन योग्य है और यह नहीं करन योग्य है इस प्रकार नियम करना व्रत है ।

प्रश्न—हिंसा धार्मिक परिणाम विशेष घृत् अर्थात् सत्ता काल स्थिर नहीं रहत इसलिये उनका अपादान कारकम प्रयोग कस बन सकता ह ?

२. समाधान—बुद्धिपूर्वक त्यागमें घृत्पणकी विवक्षा बन जानेस अपादान कारकका प्रयोग बन जाता है । जैसे धमस चिरन होता है यहाँ जो मह धर्मस विमुक्त बुद्धिवासा मनुष्य ह वह विचार करता है कि 'धर्म दुष्कर ह और उसका फल श्रद्धामात्रगम्य ह' इस प्रकार वह बुद्धिस समझ कर

(१) 'अहिंसान्ध्यास्तैषां च अमसपरिग्रहा यथा ।—वा.पो सू २. ३ । (२) 'अभिसन्धिकृता विरतिविरतौ चोप्यावृत्तमिति ।—रत्न ३४ । (३) शुभमपायेपारातम् ।—वा. १. ४. २४ । (४) 'धर्माद्विरमति X X च एव मनुष्य सन्निभयुद्धिमिति स पश्यति ।—वा. म. भा. १. ४. ३. २४ (५) स्वबुद्ध्या मु. 'स बुद्ध्या विवर्तते ।—प. म. भा. १. ४. ३. २४ । (६) 'य एव मनुष्य प्रेलापूर्वकारौ मति स पश्यति ।—प. म. भा. १. ४. ३. २४ ।

एष मनुष्य प्रेक्षापूर्वकारी स पश्यति—य एषे हिंसादयः परिणामास्ते पापहेतवः । पाप  
 कमणि प्रवृत्तमानान् जनानिह्व राजानो दण्डयन्ति परत्र च दुःखमाप्नुवन्तीति स बुद्ध्या  
 सम्प्राप्य निवर्तते । ततो बुद्ध्या ध्रुवत्वविवक्षोपपत्तेरपादानत्वं युक्तम् । विरति'शब्द  
 प्रत्येक परिसमाप्यते हिंसाया विरति अनृताद्विरतिरित्येवमादि । तत्र अहिंसाव्रतमादौ  
 क्रियते प्रधानत्वात् । सत्यादीनि हि तत्परिपालनार्थानि मत्स्यस्य वृत्तिपरिक्षेपवत् । सव  
 सावद्यनिवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एक व्रत तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पञ्चविध  
 मिहोच्यते । ननु च अस्य व्रतस्यास्रवहेतुत्वमनुपपन्न सवरहेतुत्वन्तर्भावात् । सवरहेतयो  
 वक्ष्यन्ते गुप्तिसमित्यादयः । तत्र दशविधे धर्मेषु यमे वा व्रतानामन्तर्भाव इति ? नपदोप  
 तत्र सवरो निवृत्तिलक्षणो वक्ष्यते । प्रवृत्तिश्चात्र दृश्यते ; हिंसानृतादत्तानानादिपरित्यागे  
 अहिंसासत्यवचनदशादानान्नित्रियाप्रतीते गुप्त्यादिसवरपरिक्रमत्वान्च । व्रतेषु हि कृत  
 परिक्रमा साधु सुखेन सवर करोतीति तत पूषक्त्वेनोपदेश क्रियते । ननु च पष्ठमणु  
 धर्मसि विरत हो जाता ह । इसी प्रकार यहाँ भी जो यह मनुष्य विचारपूर्वक काम करनेवाला ह  
 वह विचार करता है कि जो ये हिंसादिक परिणाम हें व पापकारण हें और जो पाप माय में  
 प्रवृत्त होत है उन्हें इसी भयमें राजादोग दण्ड दते हैं और व पापाकारी परलोकमें दुःख  
 उन्त है, इस प्रकार वह बुद्धिस समझ कर हिंसाविकस विरत हो जाता ह । इसलिये बुद्धिस  
 ध्रुवत्वपन की विवक्षा वन जाने स अपादान कारकका प्रयोग करना उचित ह ।

विरति शब्दका प्रत्येक शब्दके साथ जाड छना चाहिये । यथा हिंसास विरति असत्य स  
 विरति आदि ।

इन पाँच व्रतोंमें अहिंसा व्रतकी प्रारम्भमें रक्षा है क्योंकि वह सबसे मुख्य ह । धान्य के  
 क्षेत्रके लिय जस उसका चारों ओर कानोंका घरा होता ह उसी प्रकार सत्याविक सभी व्रत  
 उसकी रक्षाके लिय ह ।

सब पापोंस निवृत्त हानरूप सामायिककी अपेक्षा एक व्रत है । वही व्रत छेदोपस्थापनाकी  
 अपेक्षा पाँच प्रकारका ह और उन्हींका यहाँ कथन किया है ।

धर्मा—यह व्रत आस्रवका कारण ह यह बात नहीं घतती क्या कि सवरक कारणमें इसका अन्त  
 र्भाव होता ह । आगे गुप्ति समिति इत्यादि सवरक कारण कहनवाले ह । वहाँ दस प्रकारक धर्मोंमें  
 एक समय नामका धर्म बतलाया है उसमें व्रतोंका अन्तर्भाव होता ह ?

समाधान—यह बोध दाप नहीं ह क्योंकि यहाँ निवृत्तिरूप सवरका कथन करेगे और यहाँ प्रवृत्ति  
 दली जाती ह क्यों कि हिंसा भयग्य और अदत्तानन आदिबा त्याग करम पर अहिंसा सत्यवचन और  
 सी हूइ बस्तुका ग्रहण आदि रूप त्रिया दली जाती है । दूसर य व्रत गुप्ति आदि रूप सवरक अङ्ग ह ।  
 जिस सामुन व्रतोंकी मर्यादा कर ली ह वह सुलपूर्वक सवर करता ह इसलिय व्रतोंका अलगम  
 उपदेश दिया ह ।



१ व्रतमस्ति रात्रिभोजनविरमण तदिहोपसख्यातव्यम् ? न भावनोस्वन्तर्भावात् । अहिंसा व्रतभावना हि वदन्त्ये । तत्र आलोकितपानभोजनभावना कायति ।

तस्य पञ्चतयस्य व्रतस्य भेदप्रतिपत्त्ययमाह—

वैशसर्वतोऽणुमह तो ॥ २ ॥

२ देश एवदेश । सद्य सकल । वैशद्य सवद्य देशसदो ताभ्या दशसद्यत । विरति इयनुवतते । अणु ष महच्चाणुमहतौ । प्रतामिसम्ब घासपुसकलिकुनिर्वेश । यथासस्य मभिमम्यध्यते । वैशतो विरतिरणुव्रत सवतो विरतिमहाव्रतमिति द्विधा भिद्यते प्रत्येक व्रतम् । एतानि व्रतानि भावितानि वरीपधवद्यत्नवते धु च्छनिवृत्तिनिमित्तानि भवन्ति । किमय स्य वा भावन तेपामित्यत्रोच्यते—

१ तस्त्वयार्थं भावनतं पञ्च पञ्च ॥ ३ ॥

तेषां व्रतानां स्थिरीकरणायकस्य व्रतस्य पञ्च पञ्च भावना वेदितव्या ।

शब्दा—रात्रिभोजनविरमण नाम छटा अणुव्रत है उसकी महत् परिगणना करनी थी ?

समाधान—नहीं क्योंकि उसका भावनाओंमें अन्तर्भाव ही जाता है । आये अहिंसा व्रतकी भाषणाएँ कहेंगे । उनमें एक आलोकितपानभोजन नामकी भाषणा है उसमें रात्रिभोजनविरमण नामक

१२ व्रतका अन्तर्भाव ही जाता है ।

उस पाँच प्रकारक व्रतक मशोका कर्त्तव्य करनक लिय आगेका सूत्र कहत हैं ।

हिंसादिक्से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकारसे निवृत्त होना महाव्रत है ॥२॥

वैश शब्दका अर्थ एकदश है और सर्व शब्दका अर्थ सकल है । सूत्रमें वैश और सर्व शब्दका इन्द्र समास करके तसि प्रथम्य करके वैशसर्वत पद बनाया है । इस सूत्रमें विरति शब्दकी अनुवृत्ति पूर्ण

२ सूत्रसे होती है । यहाँ अणु और महत् शब्दका इन्द्र समास होकर अनुमहत्तौ पद बना है । व्रत शब्द नपुंसक लिंग है इसलिये अणुमहतौ यह नपुंसक लिंगपरक निर्वेश किया है । इनका सम्बन्ध क्रमसे होता है । यथा—एकदश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकारसे निवृत्त होना महाव्रत है इस प्रकार अहिंसादि प्रत्येक व्रत वा प्रकारके हैं । प्रयत्नशील भी पुष्ट्य उत्तम औपधिक समान इन व्रतोंका चर्चन करता है उसक दुर्बलका नाश होता है ।

३ इन व्रतोंकी किसलिये और किस प्रकार भावना करनी चाहिये अब इसी बातको यथमानक लिय आगेका सूत्र कहत हैं—

उन व्रतोंको स्थिर करनेके लिये प्रत्येक व्रतकी पाँच पाँच भावनाएँ हैं ॥ ३ ॥

उन व्रतोंको स्थिर करनेके लिये एक एक व्रतकी पाँच पाँच भावनाएँ जाननी चाहिये ।

(१)—व्यन्ते । भाषी—आ वि १ वि ३ । (२) 'एते आतिवैशकाव्रतमपानविरमिता' शार्वभौमा महाव्रतम् ।  
—वा. वी. सु. २ ३१ । (३) नपुंसकत्वात् पु. ल.—आ. ।

यद्येवमाद्यस्याहिंसाव्रतस्य भावना का इत्यत्रोच्यते—

वाङ् मनोगुप्तीर्यावाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥ ४ ॥

वाग्गुप्ति मनागुप्ति इर्यासमिति आदाननिक्षेपणसमिति आलोकितपानभोजन  
मित्येताः पञ्चाहिंसाव्रतस्य भावना ।

अथ द्वितीयस्य व्रतस्य वा इत्यत्रोच्यते—

क्रोधलोमभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानानुवीचीभाषणं च पञ्च ॥ ५ ॥

क्रोधप्रत्याख्यान लोमप्रत्याख्यान भीरुत्वप्रत्याख्यान हास्यप्रत्याख्यानम् अनुवीची  
भाषणं चेत्येताः पञ्च भावनाः सत्यव्रतस्य ज्ञेयाः । अनुवीचीभाषणं निरवधानुभाषणं  
मित्यथ ।

इत्यनीं तृतीयस्य व्रतस्य वा भावना इत्यत्राह—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोषाकरणभक्षशुद्धिसधमाचिसवादः पञ्च ॥ ६ ॥

शून्यागारेषु गिरिगुहातरुकोटरादिष्वावासः । परकीयेषु च विमोचितेष्व्वावासः ।  
परोपामुपरोषाकरणम् । आचारशास्त्रमार्गेण भक्षशुद्धिः । ममेद तवेदमिति सधमभिर-

यन्ति एसा हे ता प्रथम अहिंसा व्रतकी भावनाए कौनसी हे ? अब इस बातको घटकाकर लिए  
भागवा सूत्र कहते हैं—

वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्ष्यासमिति, आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपान-  
भोजन ये अहिंसाव्रतकी पाँच भावनाए हैं ॥ ४ ॥

वचनगुप्ति मनोगुप्ति इर्यासमिति आदाननिक्षेपणसमिति और आलोकितपानभोजन ये अहिंसा  
व्रतकी पाँच भावनाए हैं ।

अब दूसरे व्रतकी भाषनाए कौनसी है यह बतलाने के लिये भागवा सूत्र कहते हैं—

क्रोधप्रत्याख्यान, लोमप्रत्याख्यान, भीरुत्वप्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और  
अनुवीचीभाषण ये सत्य व्रतकी पाँच भावनाए हैं ॥ ५ ॥

क्रोधप्रत्याख्यान लोमप्रत्याख्यान भीरुत्वप्रत्याख्यान हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण ये  
सत्य व्रतकी पाँच भावनाए हैं । अनुवीचीभाषणका अर्थ निर्दोष भाषण है ।

अब तीसरे व्रतकी कौनसी भावनाए है यह बतलाने के लिये भागवा सूत्र कहते हैं—

शून्यागारावास, विमोचितावास, परोपरोषाकरण, भक्षशुद्धि और सधमाचिसवाद  
ये अर्थात् व्रतकी पाँच भावनाए हैं ॥ ६ ॥

वचनकी गुण और कृपा कोश आदि शून्यागार है इसमें रहना शून्यागारावास है । दूसरों द्वारा  
छोड़े हुए मराने आदिमें रहना विमोचितावास है । दूसरोंका टहलाने नहीं रहना परोपरोषाकरण है ।  
भाषण मार्गमें चलना ही विदित अन्याय निरासना भक्षणशुद्धि है । यह सब है यह सब है यह सब है

विसर्वाद । इत्येतां पञ्चादस्तादानविरमणव्रतस्य भावना ।

अथेदानीं ब्रह्मचयव्रतस्य भावना वक्ष्यते इत्यत्राह—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीरसंस्कार  
त्यागाः पञ्च ॥ ७ ॥

१ त्यागशब्दः प्रत्येक परिशमाप्यते । स्त्रीरागकथाश्रवणत्यागः तन्मनोहराङ्गनिरी  
क्षणत्यागः पूर्वरतानुस्मरणत्यागः वृष्येष्टरसत्यागः स्वशरीरसंस्कारत्यागश्चेति चतुश्च  
व्रतस्य भावनाः पञ्च विज्ञेयाः ।

अथ पञ्चमव्रतस्य भावना का इत्यत्रोच्यते—

मनोभ्रामनोभ्रोन्मियविषयरागद्वेषवज्जनानि पञ्च ॥ ८ ॥

१ पञ्चानामिन्द्रियाणां त्यक्तनादीनामिष्टानिष्टेषु विषयेषु निपतितेषु स्पर्शादिषु राग  
वर्जनानि पञ्च आकिञ्चन्यस्य व्रतस्य भावनाः प्रत्येतद्व्याः ।

किञ्चायद्यथाऽमीषां व्रतानां द्विमाद्य भावनाः प्रतीयन्ते तद्विपश्चिद्भिरिति  
भावनोपदेशः तथा तदथ तद्विरोधिष्वपीत्याह—

१२ प्रकार सभविषयते विसर्वाद नहीं करना सभर्माविसर्वाद है । ये अदस्तादानविरमण व्रतकी पांच  
भावनाएँ हैं ।

अब इस समय ब्रह्मचय व्रतकी पांच भावनाओंका कथन करना चाहिये इसलिये आगेका सूत्र  
कहल है—

स्त्रियोंमें रागको पैदा करनेवाली कथाके सुननेका त्याग, स्त्रियोंके मनोहर अंगोंको देखनेका  
त्याग, पूर्व भोगोंके स्मरणका त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा अपने शरीरक  
२ संस्कारका त्याग ये प्रार्ष्येष्ट व्रतकी पांच भावनाएँ हैं ॥ ७ ॥

त्याग शब्दको प्रत्येक शब्दक साथ जोड़ लेना चाहिये । यथा-स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग तन्मनोह  
रानिरीक्षणत्याग पूर्वरतानुस्मरणत्याग वृष्येष्टरसत्याग और स्वशरीरसंस्कारत्याग ये ब्रह्मचय  
व्रतकी पांच भावनाएँ हैं ।

अब पांचवें व्रतकी कौनसी भावनाएँ हैं यह बतलाने के लिये आगेका सूत्र कहल है—

२२ मनोह्र और अमनोह्र इन्द्रियों के विषयोंमें क्रमस राग और द्वेषका त्याग करना य  
अपरिग्रहव्रतकी पांच भावनाएँ हैं ॥ ८ ॥

स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियाके इष्ट और अनिष्ट स्पृश आदिक पांच विषयके प्राप्त होत पर राग  
और द्वेषका त्याग करना ये आकिञ्चय व्रतकी पांच भावनाएँ जाननी चाहिय ।

३ क्रिम प्रकार नन व्रतकी बुद्धताके लिये भावनाएँ हैं इमलिये भावनाओंका उपदेश दिया ह उसी  
प्रकार विद्वान् पुण्याका व्रतकी बुद्धताके लिये विरोधी भावोंके विषयमें क्या करना चाहिय ? यह  
बतलानाके लिये अब आगेका सूत्र कहल है—

(१)-वेदुर्गणितोत्तु आ वि १ वि १।

हिंसाविधिहामुद्रापायावद्यवशनम् ॥ ९ ॥

अभ्युदयनि श्रेयसार्थानां त्रिधाणां विनाशकं प्रमोगोऽप्यायः । अवद्य गृहपम् । अपाय  
 इवावद्य चापायावद्ये तयोदयनमपायावद्यवशनं भावयितव्यम् । नव ? इहामुत्र च । केयु ?  
 हिंसादिषु । कथमिति चेदुच्यते—हिंसामा तावत् हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततानु  
 वदवदच इह च वधवचपरिक्लेशादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभा गतिं गृहितदच  
 भवतीति हिंसामा व्युपरम श्रेयान् । तथा अनृतवादी अश्रद्धेयो भवति इहव च जिह्वाच्छे-  
 द्वादीन् प्रतिलभते मिथ्याभ्याख्यानदुस्त्रितेभ्यश्च यदवरेभ्यो घहूनि व्यसनान्यवाप्नोति  
 प्रेत्य चाशुभा गतिं गृहितदच भवतीति अनृतवधनादुपरम श्रेयान् । तथा स्तेन परद्रव्या  
 हरणामकन सवम्प्योद्वेजनीयो भवति । इहव चाभिघातवधवधहस्तपादकणनासोत्तरोष्ठ-  
 च्छेदनभेदनमवस्वहरणादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभा गतिं गृहितदच भवतीति स्तेयाद्  
 व्युपरति श्रेयसी । तथा अन्नह्यचारी मदविभ्रमोद्भ्रान्तचित्तो यनगज इव वासिता

हिंसादिक पांच दोषोंमें ण्डिक और पारलौकिक अपाय और अवद्यका दर्शन भावने योग्य है ॥९॥

स्वग और मांसकी प्रयोजक क्रियाओंका विनाश करनेवाली प्रवृत्ति अपाय है । अवद्यका अर्थ  
 गृहप है । अपाय और अवद्य इन दोनोंक दशनकी भावना करनी चाहिये ।

शका—कहाँ ?

समाधान—इस लोक और परलोकमें ।

शका—किनमें ?

समाधान—हिंसानि पांच दोषोंमें ।

शका—कौन ?

समाधान—हिंसामें यथा—हिंसक निरन्तर उद्वेजनीय है वह मनुष्य वरको बांध रूढ़ता है । इस  
 लोकमें वध कथ और कनक भादिको प्राप्त होता है तथा परलोकमें अधुम गतिको प्राप्त होता है  
 और गतिन भी होता है इस विषय हिंसका त्याग शयस्कर है । सम्यक्वाणीका क्रोड श्रदान नहीं करता ।  
 वह इस लोकमें जिह्वाछेद आदि दुःखा को प्राप्त होता है तथा सम्यक् बोधनम दुःखी हुए अतएव  
 जिह्वाछेद वर बांध दिया है उनम बहुत प्रकारकी आपत्तियोंको और परलोकमें अधुम गतिको प्राप्त  
 होता है और गतिन भी होता है इसविषय अमरव वचनना त्याग शयस्कर है । तथा परद्रव्यका अपहरण  
 करनेवाले पाण्डका सब निरन्तर करण है । इस लोकमें वह तराईना मारना बांधना तथा हाथ पर,  
 जान दाब आरक भागाछेदना भ्रान्त और स्वस्वहरण आदि दुःखाको और परलोकमें अधुम गतिको  
 प्राप्त होता है और गतिन भी होता है इसविषय चारोना त्याग शयस्कर है । तथा जो अन्नह्यचारी है  
 उनका चित्त मन्म भ्रमना रहता है । त्रिम प्रकार बनना हापी ह्यिनीम जुग कर दिया जाता है और

घञ्चितो विद्यशो घघघ घनपरिवलेशाननुभवति मोहाभिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानभिन्नो न किञ्चित्कुशलमाचरति पराङ्मनालिङ्गनसङ्गृह्यतिश्चहव वैरानुबन्धिनो लिङ्गच्छेदनवधवघसवस्वहरणादीनपायान् प्राप्नोति प्रत्य चाशुभां गतिमप्नुते गहितश्च भवति अतो विरतिरारमहिता । तथा परिग्रहवान् शकुनिरिव गृहीतमासखण्डोऽप्यपी तदर्धितां पतत्रिणामिहव तस्करादीनामभिभवनीयो भवति तदजनरक्षणप्रक्षयकृतांश्च दोषान् वह्नवाप्नोति न चास्य तृप्तिर्भवति ह्यघनरिवाम्ने लोभामिभूतत्वाच्च कार्याकार्यानपेक्षो भवति प्रेत्य चाशुभा गतिमास्वन्दते लुम्बोऽप्यमिति गहितश्च भवतीति तद्विरमण श्रेयः । एष हिंसादिष्वपायावधवगन भावनीयम् ।

हिंसादिषु भावनान्तरप्रतिपादनायमाह—

दुःखमेव वा ॥ १० ॥

हिंसादयो दुःखमेवेति भावयितव्याः । कथं हिंसादयो दुःखम् ? दुःखकारणत्वात् । यथा “अन्नं वै प्राणाः” इति । कारणस्य कारणत्वाद्वा । यथा “घनं प्राणाः” इति । घनकारण

विषय होकर उस वध घन्घन और कलश आदि दुःखोंका भोगना पड़ता है ठीक यही अवस्था अन्नहारी की होती है । मोहसे अभिभूत होकर कर्म बहुत कार्य और अकार्यके विषयसे रहित होकर कुछ भी उचित व्याख्यान नहीं करता । परम्प्रीक आसिगन और ससर्गमें ही इसकी रति रहती है इसलिये यह बरको बड़ानबाले लिंगका छत्र जाना मारा जाना बाँधा जाना और सबस्वका अपहरण किया जाना आदि दुःखोंको और परलोकमें अशुभ गतिको प्राप्त होता है तथा गहित भी होता है इसलिये अन्नहारीका त्याग आरमहितकारी है । जिस प्रकार पक्षी मांसक टुकड़को प्राप्त करके उसको चाहनेवाले दूसर पक्षियोंके द्वारा परामुच होता है उसी प्रकार परिग्रहवाण भी इसी लोक में उसको चाहनेवाले चोर आदिक द्वारा परामुच होता है । तथा उसके अर्जन रक्षण और नामसे होनेवाले अन्न दोषोंको प्राप्त होता है । अन्न ईं घनस अग्निकी तृप्ति नहीं होती जैसे ही इसकी कितने ही परिग्रहम कभी भी तृप्ति नहीं होती । यह लोभातिरकक कारण काय और अकार्यका विषय नहीं करता परलोकमें अशुभ गतिको प्राप्त होता है । तथा यह लोभी है इस प्रकारस इसका तिरस्कार भी होता है इसलिये परिग्रहका त्याग व्ययस्कर है । इस प्रकार हिंसा आदि दोषोंमें अपाय और अवयके दर्शनकी मानना करनी चाहिये ।

अब हिंसा आदि दोषोंमें दूसरी भावनाका कथन करने क लिये आगका सूत्र कहते हैं—

अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी भावना करनी चाहिये ॥१०॥

हिंसादिक दुःख ही हैं ऐसी निश्चय करना चाहिये ।

शका—हिंसादिक दुःख कैसे हैं ?

समाधान—दुःखके कारण होनेसे । यथा—अन्न ही प्राण है । अन्न प्राणधारणका कारण है पर

कारणमें कायका उपचार करके जिस प्रकार अन्नको ही प्राण कहते हैं । या कारणका कारण होनेसे हिंसादिक दुःख हैं । यथा—घन ही प्राण है । महा अन्नपानका कारण घन है और प्राणका कारण

मध्रपानमध्रपानकारणा प्राणा इति । तथा हिंसावयोऽसद्वेद्यकमकारणम् । असद्वेद्यकम  
 च दुःखकारणमिति दुःखकारणे दुःखकारणकारणे वा दुःखोपचार । तदेते दुःखमेवेति  
 भावन परात्मसाक्षिकमवगन्तव्यम् । ननु च तत्सर्वं न दुःखमेव विपर्ययति सुखसद्भावात् ?  
 न तत्सुखम् । वदनाप्रतीकारत्वात्कञ्चूकपण्डूयनवत् ।

पुनरपि भावनैन्तरमाह—

मन्त्रीप्रमोदकारण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिककिल्बिष्यमानाविनेयेषु ॥ ११ ॥

परेषां दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मन्त्री । वदनप्रसादादिभिर्गन्धियज्यमाना तमनितराग  
 प्रमोद । दीनानुग्रहभाव कारण्यम् । रागद्वेषपूर्वकपक्षपाताभावो माध्यस्थ्यम् । दुष्कम  
 विपाकवसाभ्रानायोनिषु सीदन्तीति सत्त्वा जीवा । सम्पज्ञानादिभिः प्रकृष्टा गुणाधिका ।  
 असद्वेद्योदयापादितक्लेशा किल्बिष्यमाना । तत्त्वाध्रवणग्रहणाभ्यामसपादितगुणा अवि  
 नेया । एतेषु सत्त्वादिषु यथासस्य मन्त्र्यादीनि भावयितव्यानि । सर्वसत्त्वेषु मन्त्री

अध्रपान ह इत्यस्मि ज्ञिस प्रकार भनको प्राण कहत हँ उसी प्रकार हिंसादिक असाता बवनीम कमक  
 कारण है और असाता वन्नीम दुःखका कारण हँ इसलिये दुःखक कारण या दुःखक कारणक कारण  
 हिंसादिकमें दुःखका उपचार हँ । ये हिंसादिक दुःख ही हँ इस प्रकार अपनी और दूसरोंकी साक्षीपूर्वक  
 भावना करनी चाहिये ।

क्षका—य हिंसादिक सबक सब कबलु दुःख ही हँ यह बात नहीं है क्यों कि विपर्ययके सवनमें मुक्त  
 उपलब्ध होता है ?

समाधान—विपर्ययके सवनसे जो सुखानास होता हँ वह सुख नहीं हँ किन्तु दादको सुखमानक  
 समान कबलु वेदनाका प्रतिकारमात्र हँ ।

और जो अन्य भावना करनक लिय आगका मूत्र कहत हँ—

प्राणीमात्रमें मैत्री, गुणाधिक्यमें प्रमोद, किल्बिष्यमानोंमें क्रुणा हृदि और अविनेयोंमें

माध्यस्थ्य भावकी भावना करनी चाहिये ॥ ११ ॥

दूसरोंको दुःख न हो एसी अभिलाषा रखना मन्त्री हँ । मुक्तकी प्रसन्नता आदिक द्वारा भीतर मक्ति  
 और अनुरागका व्यक्त होना प्रमोद हँ । दीनो पर दयाभाव रखना कारुण्य हँ । रागद्वेषपूर्वक पक्षपात  
 का न करना माध्यस्थ्य हँ । बुर कर्मोंक फलस जो नाता योनियोंमें जन्मत और मरत हँ वे सत्त्व हँ । सत्त्व  
 यह जीवका पर्यायवाची नाम हँ । जो सम्पज्ञानादि गुणोंमें बड़ बड़ हँ व गुणाधिक कहलाते हँ ।  
 अमानावन्नीयके उदयस जो दुःखी हँ व किल्बिष्यमान कहलात हँ । जिनमें जीवानि पदार्थोंका सुनन  
 और ग्रहण करनका गुण नहीं हँ व अविनय कहलात हँ । इस सत्त्व आदिकमें प्रमथ मन्त्री आदिकी

(१) तदेते दुःखमेवेति भावन परमात्मता—आ । तदेतद् दुःखमेवेति भावन परमात्मता—भू । तदेते दुःखमेवेति  
 भावन परमात्मता—आ । (२) ननु च सर्वं दुःखमेव तत् । (३) भावनापमाह आ कि १ कि २ । (४)  
 मैत्रीक इषामुक्तिनेषामां मुक्तदुःखानुत्पत्त्युत्पत्तिपरिपाका भावकप्रतिपत्तपदानवत् । —वद यो-भू १ ३३ ।

गुणाधिक्येपु प्रमोदः, निरुद्यमानेषु कारुष्यम् अविनेयेषु माध्यस्थ्यमिति । एव भावयत  
पूर्णाचिहिमादीनि व्रतानि भवन्ति ।

पुनरपि भावनान्तरमाह—

जगत्कायस्वभावौ वा सवेगयरागदायम् ॥ १२ ॥

जगत्स्थभावस्तावदनादिरनिषनो वेत्रासनमत्सरीमुत्कृन्निभ । अत्र जीवा अनादि  
ससारेऽनन्तकाल नानायानिषु दुःख भोज भाज पयटन्ति । न चात्र किञ्चिद्विद्यमयतमस्ति ।  
जलबुद्बुदापम जावितम् विद्युमेघादिविकाररूपला गमम्पद इति । एवमाविजगत्स्व  
भावचिन्तनात्समागत्सवगा भवति । कायस्वभावश्च अनित्यता बुद्धहेतुत्व निःसारता  
अशुचित्वमिति । एवमात्कायस्वभावचिन्तनाद्विषयरागनिवृत्तेव राग्यमुपजायते । इति  
जगत्कायस्वभावौ भावयितव्यौ ।

अत्राह उक्त भवतौ हिमादिनिवृत्तिव्रतमिति तत्र न जानीम के हिंसाय  
क्रियाविशेषा इत्यत्रोच्यते । युगपद्वक्तुमशक्यत्वात्तल्लक्षणनिर्देशस्य क्रमप्रसङ्गे याज्या  
यादी चोदिता सव तावदुच्यते—

भावना करनी चाहिये । जो सब जीवोंमें मत्री गुणाधिक्यमें प्रमोद निरुद्यमानोंमें कारुष्य और  
अविनेयोंमें माध्यम्य भावकी भावना करता है उसका अहिंसा आवि धन पूर्णताको प्राप्त होत है ।

अब फिर भी और भावनाक लिय आगका सूत्र कहते हैं—

सवेग और वैराग्यक लिये जगत्के स्वभाव और शरीरके स्वभावकी भावना  
करनी चाहिये ॥१२॥

जगत्का स्वभाव यथा—यह जगत् अनादि है, अनिषन है वेत्रासन मत्सरी और मृदगक समान है ।  
इम अनादि ससारमें जीव अनन्त काल तक नाना योगियोंमें दुःखको पुनः पुनः भोगत हुए भ्रमण करते  
ह । इसमें कोई भी वस्तु निमत नहीं है । जीवन जलक बुलबुलक समान है । और भोग-सम्प्राप  
विजुली और इन्द्रधनुषक समान चंचल है । इत्यादि रूपसे जगत्का स्वभावका चिन्तन करनेसे ससारस  
सवेग-भय होता है । कामका स्वभाव यथा—यह शरीर अविश्य है दुःखका कारण है, निःसार है और  
अमृत्ति है इत्यादि । इस प्रकार कायक स्वभावका चिन्तन करनेसे विषयोंस आसक्ति हटकर बराग्य  
उत्पन्न होता है । अतः जगत् और कायके स्वभावकी भावना करनी चाहिये ।

यहाँ पर क्षणाकार कहता है कि आपन यह तो बतलाया कि हिंसाविकल्प निवृत्त होना व्रत है ।  
परन्तु यहाँ यह न जान सक कि हिंसाविक क्रियाविशेष क्या है ? इसलिये यहाँ कहते हैं । तथापि उन  
मदका एक साथ कथन करना अशक्य है किन्तु उनका स्थाप प्रमस ही कहा जा सकता है अतः  
प्राग्भूम्य जिसका उल्लेख किया है उसीका स्वरूप वतमानक लिये आगका सूत्र कहते हैं—

(१) धीमात्स्वाङ्गबुद्बुदा परैरतसर्ग ।—वा यो नू १,४०। (२) भवता सु, तां ना ।

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा ॥ १३ ॥

प्रमाद सक्रपायत्व तद्भानात्मपरिणाम प्रमत्त । प्रमत्तस्य योग प्रमत्तयोग । तस्मात्प्रमत्तयोगात् इन्द्रियादयो दशप्राणास्तेषां यथासमव व्यपरोपणं वियोगकरणं हिंसेत्यभिधीयते । सा प्राणिनो बुद्धहेतुत्वादधमहेतुः । 'प्रमत्तयोगात् इति विशेषणं केवल प्राणव्यपरोपणं नाधर्म्येति ज्ञापनायम् । उक्तं च—

वियोज्येति चासुभिर्न च वधेन संयुज्यते ॥” इति ॥

उक्तं च—

“उर्ध्वालिङ्गि पादे श्रियासमिदस्त गिग्गमद्वाणे ।

आवादे [धि] अङ्गुलिगो मरेज्ज सञ्जोगमासेज्ज ॥

ण हि तैस्स तण्णिमिचो वंधो सुद्धमो वि देसिदो समए ।

सुच्छापरिमाहो चि य अज्जप्पपमाणदो मणिदो ॥”

ननु च प्राणव्यपरोपणाभावेऽपि प्रमत्तयोगमात्रादेव हिंसेष्यते । उक्तं च—

“मरुद् न जियदु व जीवो अयदाधारस्त पिच्छिद्धा हिंसा ।

पयदस्स णत्थि वधो हिंसामिचेण समिदस्स ॥”

प्रमत्तयोगसे प्राणोक्ता वध करना हिंसा है ॥ १३ ॥

प्रमाद कृपाय सहित अवस्थाको कहत ह और इस प्रमादस मुक्त जो आत्माका परिणाम होता ह वह प्रमत्त कहलाता है । तथा प्रमत्तका योग प्रमत्तयोग है । इसक सम्बन्धस इन्द्रियादि दश प्राणोका यथासम्भव व्यपरोपणं अर्थात् वियोग करना हिंसा कही जाती ह । इसस प्राणियोंको दुःख होता ह इसस्थिे वह अधमका कारण ह । केवल प्राणोंका वियोग करनेस अधम नहीं होता है यह मतलबनेके लिये सूत्रमें 'प्रमत्तयोगसे' यह पद दिया ह । कहा भी ह—

‘यह प्राणी दूसरेका प्राणास वियुक्त करता ह तो मां उसे हिंसा कही लगती ॥ और भी कहा ह—

‘इयंसिमितिम मुक्त साधुक् अपन पैरक उताम पर चरुनक स्थानमें यनि कोई धुद प्राणी उनक परस दव जाय और उसक सम्बन्धस मर जाय तां भी उस निमित्तस बोडा भी बन्ध आगममें नहीं कहा है, क्यों कि अस अध्यात्म दृष्टिस मूर्च्छाको ही परिग्रह कहा ह बस महों भी रागादि परिणामका हिंसा कहा ह ॥

धका—प्राणोंका विनाश न होने पर भी कबल प्रमत्तयोगसे ही हिंसा कही जाती ह । कहा भी ह—

‘जीव मर जाय या बीता रहे तो भी मत्लाधारस रहित पुरुषक नियमस हिंसा होती है और जो यत्लाधारपूर्वक प्रवृत्ति करता ह हिंसाक हो जान पर भी उस बन्ध नहीं होता ॥



नप दोष । अत्रोपि प्राणव्यपरोपणमस्ति भावलक्षणम् । तथा चोक्तम्—

“स्वयमेधात्मनाऽऽत्मानं हिनस्त्यात्मा प्रमादवान् ।

पूर्वं प्राण्यन्तराणान्तु पश्चात्स्याद्वा न वा वच ॥”

आह अभिहितलक्षणा हिंसा । तदनन्तरोद्दिष्टमनूत किरक्षणमित्यत्रोच्यते—

असदभिधानमनूतम् ॥ १४ ॥

सञ्छन्द प्रशसावाचो । न सदसदप्रशस्तमिति यावत् । असतोऽपस्याभिधानमसत्  
भिधानमनूतम् । ऋत सत्य न ऋतमनूतम् । किं पुनरप्रशस्तम् ? प्राणिपीडाकर यत्तद  
प्रशस्त विद्यमानाथविषय वा अविद्यमानाथविषय वा । उक्तं च प्रागेवाहिंसाव्रतपरि  
पालनाथमितरद्ब्रतम् इति । तस्माद्विसाकर<sup>१</sup> वधोऽनूतमिति निश्चेयम् ।

अधानूतानन्तरमुद्दिष्ट यस्तेय तस्य किं लक्षणमित्यत आह—

अवसाधान स्तेयम् ॥ १५ ॥

आदान ग्रहणमदत्तादातमदत्तादान स्तेयमित्युच्यते । यद्येव कर्मनोकमग्रहणमपि

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्यों कि यहाँ भी भावरूप प्राणियोंका नाश हुआ है । कहा भी है—  
‘अमांसं मुक्त आत्मा पहलु स्वयं अपन द्वारा ही अपना घात करता है इससे बाद दूसरे प्राणियोंका

१५ वध होब या मत होब ॥

हिंसाका रक्षण कहा अब उसका बाद असत्य का रक्षण घतमानके लिये आगेका सूत्र कहत है—

असत् षोडशाना अनूत है ॥ १४ ॥

सत् यत्र प्रशसावाची है । जो सत् नहीं कह असत् है । असत् का अर्थ अप्रशस्त है । तत्पर्य  
यह है कि जो पदार्थ नहीं है उसका कपन करना अनूत—असत्य कहलाता है । ऋतका अर्थ सत्य है  
२ और जो ऋत—सत्य नहीं है वह अनूत है ।

उक्त—अप्रशस्त किस कहत है ?

समाधान—जिसस प्राणियोंको पीडा होती है उस अप्रशस्त कहत हैं । भले ही वह चाहे विद्यमान  
पदार्थको विषय करता हो या चाहे अविद्यमान पदार्थको विषय करता हो । यह पहले ही कहा है कि  
दोष व्रत अहिंसा व्रतकी रक्षाके लिये है । इसलिये जिसस हिंसा हो वह वचन अनूत है ऐसा निश्चय

१५ करना चाहिये ।

असत्यके बाद जो स्तय कहा है उसका क्या रक्षण है यह बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहत है—

बिना दी हुई वस्तुका छेना स्तेय है ॥ १५ ॥

आदान छव्यका अर्थ ग्रहण है । बिना दी हुई वस्तुका छेना अवसाधान है और यही स्तेम बोरी  
कहलाता है ।

१ उक्त—यदि स्तेयका पूर्वोक्त अर्थ किया जाता है तो कर्म और नोकर्मका ग्रहण करना भी स्तय

(१) तथापि वा दि १ दि २। (२)—हिंसाप्रतिपाक—मु । (३) कर्मवचो य ।

स्तय प्राप्नोति जयेनादत्तत्वात् ? नप दोष, दानादाने यत्र सम्भवतस्तत्रय स्तय  
 व्यग्रहार । कुत ? 'अदत्त ग्रहणसामर्थ्यात् । एवमपि भिक्षोर्भूमिनगरादिषु भ्रमणमाल  
 रथ्याद्वागन्निप्रवेगादत्सादान प्राप्नोति ? नप दोष, सामान्येन मुक्तत्वात् । तथाहि—  
 अय भिक्षु पिहितद्वागन्पि न प्रविशति अमुक्तत्वात् । अथवा 'प्रमत्तयोगात् इत्यनुवर्तते ।  
 प्रमत्तयोगाददत्सादान यत् तस्तेयमित्युच्यते । न च रथ्यादि प्रविशत प्रमत्तयोगोऽस्ति ।  
 तनतदुक्त भवति, यत्र सक्त्येवपिगणामेन प्रवृत्तिस्तत्र स्तेय भवति याहृषवस्तुनो' ग्रहण  
 चाग्रहण च ।

अथ चतुषमग्रह्य किलक्षणमित्युच्यते—

मयुनमग्रह्य ॥ १६ ॥

स्त्रीपुंसयोश्चाग्निमोहोऽप्ये सति रागपणिणामाविष्ट्या परस्परस्पर्शन प्रति इच्छा  
 मियुनम् । मियुनस्य कम मयुनमित्युच्यते । न सुव कम । कुत ? एतन् गास्त्र च तथा  
 टन्ता ह कया कि य विमात्र द्वारा निय नहीं जात ?

गमाधान—यह बोद नाप नहा ह कया कि जहाँ दना भोग सेना सम्भव ह वही मयका व्यवहार  
 जाता ह ।

गवा—यह अप विम दास्य पलित होता ह ?

गमाधान—मूत्रमें जो अन्न पदका ग्रहण किया है उमम जान जाता ह कि जहाँ दना कना सम्भव  
 ह वही मयका व्यवहार जाता ह ।

गवा—जतपरा उत अथ कान पर भी भिक्षुन धाम नगरादिमें भ्रमण करन समय गयी कृपा  
 दरवाजा आनिमें प्रवण करन पर बिना ही ह वस्तुना ग्रहण प्राण्य जाता ह ?

गमाधान—य वी नाप नहा ह कया कि य गयी कृपा भोग दरवाजा आनि गवा निय मुक्त  
 ह । य भिक्षु जिनमें किया आनि लग ह उन दरवाजा आनिमें प्रवण नहीं करता कयाकि य मवा  
 गित मुक्त ना ह । अथवा प्रमत्तयोगान् एग पत्नी अनुपमि हानी ह निय म यह अप जाता ह कि प्रमत्त  
 क योग्य बिना ही ह वस्तुना ग्रहण करता स्वय ह । गवा कृपा आनिमें प्रवण करनवा भिक्षु  
 प्रमत्तयोग ना ह ना । इगनिय वगा करन हए उग मयका नाप ना लगता । एग मय कयनरा य अभि  
 प्राय ह कि कान्य गन्तु ना जाय वा न ना जाय बिन्तु का मवाक्य पणिममन गाव प्रमि जाता ह  
 वना स्वय ह ।

अथ पीता त्रि अश्वत्थ उगका वरा एता ह वा वरान क वि र आका मूत्र कता ह—

मैयुन अग्रह्य ॥ १६ ॥

जाति यातनाकरा उत जानत गा पणिममन वर कया प्रीर पुपक जो एग दुमका एता  
 कयका इगता हता ह हट मियन कयता ह और एका वय कपुन कय जाता ह । मय कय मयुन

प्रसिद्धे । लोके तावदागापालादिप्रसिद्ध स्त्रीपुंसयो रागपरिणामनिमित्त चेष्टित मधुन मिति । शास्त्रेऽपि “अथवहृपमयोमैधुनेच्छायाम्” इत्येवमादिषु तदेव गृह्यते । अपि च प्रमत्तयोगात् इत्यनुवतते तेन स्त्रीपुंसमिधुनविषय रतिसुखाय चेष्टित मधुनमिति गृह्यते न सधम् । अहिंसादयो गुणा यस्मिन् परिपाल्यमाने षु हन्ति वृद्धिमुपयान्ति तद् ब्रह्म । न ब्रह्म अब्रह्म इति । किं तत् ? मधुनम् । तत्र हिंसादयो दोषा पुप्यन्ति । यस्मा मधुन सेवनप्रवणं स्यात्स्नैश्चरिष्यन्तु प्राणिनो हिनन्ति मृपावादाभाष्ये अदत्तमावृत्ते अचेतन मितरं च परिग्रहं गृह्णाति ।

अथ पञ्चमस्य परिग्रहस्य किं लक्षणमित्यत आह—

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

मूर्च्छेत्पुच्यते । मा मूर्च्छा ? बाह्यघाना गोमहियमणिमुक्ताफलादीना चेतनाचेतनीनामाभ्यन्तराणां च रागादीनामुपधीना सरक्षणार्जनसस्काराविलक्षणाव्यावृत्तिमूर्च्छा । ननु नहीं कहलाता क्योंकि लोकमें और शास्त्रमें इसी अर्थमें मधुन शब्दकी प्रसिद्धि है । लोकमें बाह्य गोपाल आदि तक यह प्रसिद्ध है कि स्त्री पुंस्यकी रागपरिणामके निमित्तसे होनेवाली चष्टा मधुन है । शास्त्रमें भी ‘बोड़ा और बेलकी मधुनच्छा होनापर’ इत्यादि वाक्योंमें यही अर्थ लिया जाता है । दूसरे ‘प्रमत्तयोगात्’ इस पदकी अनुवृत्ति होती है इसलिये रतित्रय सुखके लिये स्त्री-पुंस्यकी मिथुनविषयक जो चष्टा होती है वही मधुन रूपसे ग्रहण किया जाता है सब नहीं ।

अहिंसादिक गुण जिसके पालन करनेपर बढ़ते हैं वह ब्रह्म कहलाता है और जो इससे रहित हैं वह अब्रह्म है ।

शका—अब्रह्म क्या है ?

समाधान—मैधुन ।

मधुनमें हिंसादिक दोष पुष्ट होत है क्योंकि जो मधुनके सेवनमें वसा है वह चर और अचर सब प्रकार के प्राणियोंकी हिंसा करता है झूठ बोलता है, बिना भी दुर्ई वस्तु लेता है तथा चेतन और अचेतन दोनों प्रकारके परिग्रहको स्वीकार करता है ।

अथ पांचवा जो परिग्रह है उसका क्या लक्षण है यह बतलानके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

मूर्च्छा परिग्रहः ॥ १७ ॥

अथ मूर्च्छाका स्वरूप कहते हैं ।

शका—मूर्च्छा क्या है ?

समाधान—गाय भंस मणि और मोती आदि चेतन अचेतन बाह्य उपधिवा तथा रागादिरूप

आभ्यन्तर उपधिवा सरक्षण अन्नन और सस्कार आदि रूप व्यापार ही मूर्च्छा है ।

(१)—नृसपान-मु । (२) पा सू ७।१।५१ इत्यत्र शक्तिम् । (३)—क्या क्या य-मु । (४) अब्रह्म । किं मु । (५) सचेतनमित्यत्र मु । (६)—अतः । केयं मूर्च्छां नृ-मा वि १ वि २ । (७)—मुक्तादी-मु ता । (८)—तनाभा च यमा-मु ।

च लोके वातादिप्रकोपविशेषस्य मूर्च्छेति प्रसिद्धिरस्ति तद्ग्रहणं कम्मात्रं भवति ? सत्यमेव  
 मेतत् । मूर्छिरयं मोहमामान्ये वतते । “सामान्यचोदनाच्च विशेषेष्ववतिष्ठन्ते” इत्युन्ते  
 विशेषे व्यवस्थित परिग्रहघटे परिग्रहप्रकरणात् । एवमपि बाह्यस्य परिग्रहत्वं न  
 प्राप्नोति आध्यात्मिकस्य सप्रहात् ? सत्यमेवमेतत् प्रधानत्वावस्थान्तर एव सगृहीत ।  
 असत्यपि बाह्ये ममेदमिति सङ्कल्पवान् सपरिग्रह एव भवति । अथ बाह्यस्य परिग्रहो न  
 भवत्येव भवति च मूर्च्छाकारणत्वात् यदि ममेदमिति सङ्कल्प परिग्रह सञ्जानाद्यपि  
 परिग्रहं प्राप्नोति तदपि हि ममेदमिति सङ्कल्प्यते रागादिपरिणामवत् ? नप दोष  
 प्रमत्तयोगात् इत्यनुवसते । ततो ज्ञानदधानचारित्र्यवतोऽप्रमत्तस्य मोहमावाप्त मूर्च्छाऽस्तीति  
 निष्परिग्रहस्य सिद्धम् । किञ्च तेषां ज्ञानादीनामहेयत्वादात्मस्वभावत्वादापरि  
 ग्रहत्वम् । रागादयं पुन कर्मोदयतत्रा इति अनात्मस्वभावत्वाद्येया । ततस्तपु सङ्कल्प  
 परिग्रह इति यूज्यते । तमूला सर्वे दोषा । ममेदमिति हि सति सङ्कल्पे सरक्षणवाय

शका—लोकमें वातादि प्रकोप विशेष का नाम मूर्च्छा है एसी प्रसिद्धि है इसलिये यहाँ इस  
 मूर्च्छाका ग्रहण क्यों नहीं किया जाता ?

समाधान—यह कहना सत्य है तथापि मूर्च्छा धातुका सामान्य अर्थ मोह है और सामान्य अर्थ  
 उद्गम विशेषोंमें ही रहता है ऐसा मान लन पर यहाँ मूर्च्छाका विशेष अर्थ ही लिया गया है क्यों कि  
 यहाँ परिग्रहका प्रकरण है ।

शका—मूर्च्छाका यह अर्थ लेने पर भी बाह्य वस्तुको परिग्रहपना नहीं प्राप्त होता क्यों कि मूर्च्छा  
 इस अर्थस आभ्यन्तर परिग्रहका सग्रह होता है ।

समाधान—यह कहना सही है क्यों कि प्रधान होनेस आभ्यन्तरका ही सग्रह किया है । यह स्पष्ट  
 ही है कि बाह्य परिग्रहके न रहन पर भी ‘यह मेरा है’ एसा सकल्प बाला पुत्र्य परिग्रहसहित ही होता है ।

शका—यदि बाह्य पदार्थ परिग्रह नहीं है और मूर्च्छाका कारण होनेस ‘यह मेरा है’ इस प्रकारका  
 सकल्प ही परिग्रह है तो ज्ञानादिक भी परिग्रह ठहरत हैं क्यों कि रागादि परिणामोंके समान ज्ञानादिक  
 में भी ‘यह मेरा है’ इस प्रकारका सकल्प होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्यों कि ‘प्रमत्तयोगात्’ इस पदकी अनुवृत्ति होती है इसलिय  
 ओ ज्ञान दर्शन और चारित्र्यबाला होकर प्रमादरहित है उसका मोहका अभाव होनेसे मूर्च्छा नहीं है  
 अतएव परिग्रहग्रहितपना सिद्ध होता है । दूसर के ज्ञानादिक अहम है और आत्माके स्वभाव है इसलिय  
 उनमें परिग्रहपना नहीं प्राप्त होता । परन्तु रागादिक तो कर्मोंके उत्पन्न होते हैं अतः ये आत्माका  
 स्वभाव न होनेसे हय है इसलिय उनमें होनेवाला सकल्प परिग्रह है यह बात बन जाती है । सब दोष  
 परिग्रहमूलक ही होते हैं । ‘यह मेरा है’ इस प्रकारके संकल्पके होने पर सरक्षण आदि रूप भाव होते हैं ।

(१)—गृहणे । एकत्रपि ता. न. । (२) अनुवृत्ते । अणपि मु । (३)—ग्रहो भवति मु । (४)—सति ।  
 ज्ञान-आ रि १ रि ९ ।

सजायन्ते । तत्र च हिंसाज्वरस्यम्भाविनी । तद्वधमनुत् जल्पसि । चौर्यं चो आचरति । मधुने च कर्मणि प्रयत्नः । तत्प्रभवा नरकादिषु दुःखप्रकाराः ।

एवमुक्तेन प्रकारेण हिंसादिदोषदर्शिनोऽहिंसादिगुणाहितचेतसः परमप्रयत्नस्याहिंसा नीनि व्रतानि यस्य सन्ति स —

निश्शस्यो व्रती ॥ १८ ॥

शुणाति हिनस्तीति शल्यम् । शरीरानुप्रवेशि काण्डादिप्रहरणं शल्यमिव शल्य यथा तन् प्राणिनो बाधाकर तथो शारीरमानसबाधाहेतुत्वात्कर्मोदयविकारः शल्यमित्यु पच्यते । तत् त्रिविधम्—मामाशल्य निदानशल्य मिथ्यादशनशल्यमिति । माया निवृत्ति वञ्चना । निदान विषयभोगाकाठ क्षा । मिथ्यादशनमतत्त्वग्रहानम् । एतस्मात्त्रि विधाच्छल्याग्निष्क्रान्तो निश्शस्यो व्रती इत्युच्यते । अत्र चोद्यते—शल्यभावाग्निघटयो व्रताभिसम्बन्धाद् व्रती न निश्शस्यत्वाद् व्रती भवितुमर्हति । न हि देवदत्तो दण्डमन्वधा च्छत्री भवतीति ? अत्रोच्यते—उभयविशेषणविशिष्टैस्त्वैष्टत्वात् । न हिंसाद्युपरति

और हममें हिंसा अवश्यभाविनी है । इसका स्मित्य असत्य बोलता है चोरी करता है मधुन कर्मों प्रवृत् होता है । नरकादिकर्मों जितन दुःख है व सब इससे उत्पन्न होता है ।

इस प्रकार उक्त विषय जो हिंसादिमें दोषोंका दर्शन करता है जिसका पित्त अहिंसादि गुणोंमें सगा रहता है और जो प्रयत्नशील है वह यदि अहिंसादि व्रतोंको पाले तो किस सजाको प्राप्त होता है इसी बातका खुलासा करनेके लिये अब आगका मूल कहते हैं—

जो सम्परहित है वह व्रती है ॥१८॥

‘शुणाति हिनस्ति इति शल्यम्’ यह शल्य शस्त्रकी सम्युत्पत्ति है । शल्यका अर्थ पीड़ा देनेवाली वस्तु । जब शरीरमें बाण आदि चुभ जाता है तो वह शल्य कहलाता है । यहाँ उभय समान जो पीडाकर भाव है वह शल्य शस्त्रम लिया गया है । जिस प्रकार काँटा आदि शल्य प्राणियोंको बाधाकर होती है उसी प्रकार शरीर और मन सम्बन्धी बाधाका कारण जानने कर्मोत्पन्नमित्त विकारमें भी शल्यका उपचार कर मत है अर्थात् उभे भी शल्य कहते हैं । वह शल्य तीन प्रकारकी है—माया शल्य निदान शल्य और मिथ्यादशन शल्य । माया निवृत्ति और वचना अर्थात् टगनकी कृति यह माया शल्य है । भोगोंका त्यागमा निदान शल्य है और अनर्थाका ध्यान मिथ्यादशन शल्य है । इन तीन शल्योंमें जो रहित है वही नि शल्य व्रती कहा जाता है ।

व्रता—शल्यका न जानने नि शल्य होता है और व्रताका धारण करनेका व्रती होता है । शल्यरहित जानने व्रती नहीं है। गतता । उपाहरणाय दक्षत्स व हायमें लागे जानेपर वह छत्री नहीं हो गतता ?

गमापात—व्रती जानने लिये दाना विगपयाम मुक्त जाना आवश्यक है यदि किसीने शल्योंका

(१) शरीर का चर्चन का । (२) एवमुक्तेन उपेक्षा-या । (३)-व्रतम् । नरकादि-यु । (४) नरकादि-यु । (५) विशिष्टत्वात् ।

मौत्रव्रताभिसम्बन्धाद् व्रती भवत्यन्तरेण शल्याभावम् । सति शल्यापगमे व्रतसम्बन्धाद् व्रती विवक्षितो यथा बहुक्षीरघृतो गोमानिति व्यपत्तिश्यते । बहुक्षीरघृताभावात्मतीप्सुपि गोपु न गोमास्तथा मदात्यत्वासत्स्वपि व्रतेषु न व्रती । यन्तु निशाल्य स व्रती ।

तस्य भेदप्रतिपत्तमथमाह—

अगायनगारश्च ॥ १९ ॥

प्रतिश्रयाथिभि अङ्गभत इति अगार वेदम तद्वानगारी । न विद्यते अगारमस्येत्यन गार । द्विविधो व्रती अगारी अनगारश्च । ननु चात्र विषययोऽपि प्राप्नोति श्रूया गारदेवकुलाद्यावासस्य मुनेरगारित्वम् अनिवृत्तविषयतत्त्वस्य कृतद्विषत्कारणाद् गृह विमुच्य वने वसताज्जगारस्वश्च प्राप्नोतीति ? नप दोष भावागारस्य विवक्षितत्वात् । चारित्रमाहादये मत्यगारसम्बन्ध प्रत्यनिवृत्त परिणामो भावागारमित्युच्यते । स यस्यास्यमावगारी वने वसन्नपि । गृहे वसन्नपि तदभावात्नगार इति च भवति । ननु चागारिणो व्रतित्व न प्राप्नोति अमकलव्रतत्वात् ? नप दोष नगमान्निपापक्षया

त्याग नही किया और बबल हियादि लपाको छोड़ लिया तो वह व्रती नहीं हो सकता । यहाँ ऐसा व्रती इच्छा है जिसने शल्याका त्याग करके व्रताको स्वीकार किया है । जैसे जिसके यहाँ बहुत धी दूध होता है वह गायवाला कहा जाता है । यदि उसके धी दूध नहीं होता और गाए हैं तो वह गायवाला नहीं कहा जाता उसी प्रकार जो सशाल्य है व्रतोंके हानपर भी वह व्रती नहीं हो सकता । किन्तु जो निशाल्य है वह व्रती है । अब उसका भणोंका कथन करने के लिय आगका सूत्र कहत हैं—

उसके अगारी और अनगार ये दो भेद हैं ॥ १९ ॥

आथम चाहनवाल जिस अगीकार करत है वह अगार है । अगारका अर्थ वध्न अर्थात् घर है । जिसके घर है वह अगारी है । और जिसके घर नहीं है वह अनगार है । इस तरह व्रती को प्रकारका है—अगारी और अनगार ।

पक्ष—अभी अगारी और अनगारका जो प्रमाण कहा है उसमें विपरीत अर्थ भी प्राप्त होता है क्या कि उपयुक्त स्थानके अनुसार जो मुनि श्रूय घर और दक्षकुलमें निवास करते हैं वे अगारी हो जायग और विजयनृणाका त्याग किया बिना जो किसी कारणसे घरको छोड़कर वनमें रहने लग्य है वे अनगार हो जायग ?

समाधान—यह काइ दाप नहीं है क्या कि यहाँ पर भावागार विवक्षित है । चात्रिण माह्नीयका उच्य होन पर जो परिणाम धर्म निवृत्त नहीं है वह भावागार कहा जाता है । वह जिसके है वह वनमें निवास करत हुए भी और घरमें रहत हुए भी अगारी है और जिसके इस प्रकारका परिणाम नहीं है वह अनगार है ।

पक्ष—अगारी व्रती नहीं हुआ सकता क्यों कि उसका पूषा व्रत नहीं है ?

समाधान—यह काइ दोष नहीं है क्योंकि नगम आदि नय की अपला नगराशामक नमान अगारी

अगाग्निोऽपि प्रतिस्वमुपपद्यत नगरावामवत् । यया गृह अपवर्क या वसप्रपि नगरावास इत्युच्येत तथा अमकलद्रतोऽपि नगमसंग्रह-व्यवहारनयापशया प्रतीति व्यपदिश्यत ।

अत्राह किं हिमाग्नीनाम-यतमम्माद्य- प्रतिनिवृत्त- स म्त्वगाग्नी प्रती ? नवम् । किं तर्हि ? पञ्चतम्या अपि विरतवै मल्पेन विवक्षित इत्युच्यत—

अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

अणु दण्डोऽप्यवचन । अणुनि व्रता-यस्य अणुव्रता-गारी युष्यत । कथमस्य व्रताना मणुत्वम् ? मधसाधद्यनिवृत्त्यसम्भवात् । भुतस्त-ह्यमी निवृत्त । यसप्राणिभ्यपरोपणाप्रि वृत्त अगारीत्याद्यमणुव्रतम् । स्तहमाहादिवशाद् गृहविनाश- भ्रामविनाशे वा कारणमित्य भिमता-मत्यवचनाप्रिवृत्तो गृहीति द्वितीयमणुव्रतम् । अयपीडाकर- पाधिवभयाग्निवशात् वदय परित्यक्तमपि यन्दत् सप्त प्रतिनिवृत्ताद- श्रावक इति तृतीयमणुव्रतम् । उपासाया अनुपात्तायाश्च पराङ्गनाया- सङ्गाप्रिवृत्त-गतिगृहीति चतुर्थमणुव्रतम् । धनधान्यक्षत्रा- के भी प्रतीपना यत जाता ह । जस काइ परमं या क्षोपडीमं र्हता ह तो भी 'मै' मगरमं र्हता हूं यह कहा जाता ह उमी प्रभार जिमक पूर व्रत नहीं हें बह नगम संग्रह और व्यवहारनयकी अपशा प्रती कहा जाता ह ।

१२ शका—ओ हिमादिकमें स किसी एकसे निवृत्त ह वह क्या अगारी प्रती ह ?

समाधान—एसा नहीं ह ।

शका—तो क्या ह ?

समाधान—जिसक एक देवास पाँचों प्रकारकी विरति ह वह अगारी ह यह अर्थ यहाँ विवक्षित ह । अथ इमी बातको बतलानिक निब- आगका सूत्र कहत ह—

अणुव्रतोऽगारी अगारी ह ॥ २० ॥

अणु शब्द अल्पवाची ह । जिसक व्रत अणु अर्थात् अल्प हें बह अणुव्रतवासा अगारी कहा जाता ह ।

शका—अगारीक व्रत अल्प कस होत ह ?

समाधान—अगाराक पूरे हिमादि-क्षोयोका त्याग सम्भव नहीं ह इसलिये उसक व्रत अल्प होत ह ।

शका—तो यह किसका त्यागी ह ?

१३ समाधान—यह तस जीवोकी हिमाका त्यागी ह इसलिये उसके पहला अहिंसा अणुव्रत होता ह ।

गृहस्य स्तह और मोहादिकक वशात् गृहविनाश और ग्रामविनाशके कारण अस्तस्य कथनस निवृत्त हें इसलिये उसक दूसरा सस्थाणुव्रत होता ह । श्रावक राजाक भय आदिके कारण दूसरको पीडाकारी काम कर बिना दी हुइ वस्तुको कना यद्यपि अवश्य छोड़ बेना ह तो भी बिना दी हुई वस्तुके सनेसे उसकी प्रीति भट जाती ह इसलिये उसके तीसरा अर्थाणुव्रत होना ह । गृहस्यके स्वीकार की हुई या बिना स्वीकार की हुई परस्त्रीका संग करनेसे रति हट जाती ह इसलिये उसके परस्त्रीत्याग नामका चौथा

(१)—ऊर्वादि-म् ।

दीनामिच्छावशात् कृतपरिच्छेदां गृहीति पञ्चममणुव्रतम् ।

आह अपरित्यक्तागारस्य विभेतावानेव विशेष आहोस्विदस्ति ऋचिचदन्योऽपीत्यत आह—

विग्नेशानभवण्डविरतिसामायिकप्रोपघोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणानिधित

विभागव्रतसम्पन्नद्वय ॥ २१ ॥

विरति शब्द प्रत्येक परिसमाप्यते । दिग्विरति देशविरति अनघदण्डविरति रिति एतानि त्रीणि गुणव्रतानि व्रत शब्दस्य प्रत्येकमभिसम्बन्धात् । तथा सामायिकव्रत प्रोपघोपवासव्रत उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत अतिधिसविभागव्रत एतानि चत्वारि शिक्षाव्रतानि । एतव्रत सम्पन्नो गृही विगताविरत इत्युच्यते । तद्यथा—दिक्प्राप्त्यादि तत्र प्रसिद्धरभिमानरन्धि कृत्वा नियमन दिग्विरतिव्रतम् । ततो वहिम्प्रसस्थावर व्यपरोपनिवृत्तेमहाव्रतत्वभावसेयम् । तत्र लाभ मत्स्यपि परिणामस्य निवृत्तेर्लोभनिगसदृक् कृतो भवति । ग्रामादीनामवधृतपरिमाणं प्रदेशो देश । ततो वहिर्निवृत्तिर्वेधविरति व्रतम् । पूर्ववद्वहिमहाव्रतत्व व्यवस्थाप्यम् । असत्युपकारे पापादानहेतुरनघदण्ड । ततो मणुव्रत होता ह । तथा गृहस्य धन धान्य और क्षत्र आदिका स्वच्छास परिमाण कर कता ह इमल्लिय उत्सव पाषवां परिग्रहपरिमाण अणुव्रत होता ह ।

गृहस्थकी क्या इतनी ही विज्ञपता ह कि और भी विज्ञपता ह अब यह वतस्मानक सिय भागका सूत्र कहत ह—

यद् दिग्विरति, देशविरति अनघदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोपघोपवासव्रत, उपभोगपरिभोग परिमाणव्रत और अतिधिसविभागव्रत इन व्रतोंसे भी सम्पन्न होता है ॥२१॥

विरति शब्द प्रत्येक शब्द पर लागू होता ह । यथा-दिग्विरति देशविरति और अनघदण्डविरति । ये तीन गुणव्रत ह क्या कि व्रत शब्द का हर एकक साथ सम्बन्ध ह । तथा सामायिकव्रत प्रोपघोपवासव्रत उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिधिसविभागव्रत ये चार विदाव्रत ह । इस प्रकार इन व्रतोंमें जो सम्पन्न ह वह गृही विगताविरत कहा जाता ह । गुणानाम् इम प्रकार ह—

जो पूर्वादि शिक्षाएँ हें उनमें प्रसिद्ध विद्वानोंके द्वारा मर्यादा करके नियम करना दिग्विरतिव्रत ह । उम मर्यादाके बाहर नम और म्यावर हिमाका त्याग हा जानम उनमें अगममें महाव्रत हाता ह । मर्यादाके बाहर लाभ होन हुए भी उममें परिणाम न रहनक कारण लाभका त्याग हा जाता ह । ग्रामाधिकी निश्चिन मर्यादाके प्रदण दण कहलाना ह । उममें बाहर जानका त्याग कर दना देशविरतिव्रत ह । यही भी पहलक समान मर्यादाके बाहर महाव्रत हाता ह । उपकार न हाकर जा प्रभृति कवाए पापना

(१) व्रतम् । इत्यने-म । (२) मीमांसाना परत स्मृत्यनुरूपव्यवहारग्यापारम् । देशविरतिविरत च महाव्रतानि प्रमाप्यन्ते ॥—रत्न ३ ५ । (३)—माघव्रतम् । (४) 'पराशरदेवमिच्छादानात्प्यातदुच्यते पञ्च । प्राशरपाराशरपरिभोगव्रत' इत्यत्र ॥—रत्न ३ ५ ।



विरतिर्नभदण्डविरति । अनभदण्ड पञ्चविध—अपध्यान पापोपदेश प्रमादाचरित  
 हिंसाप्रदान अशुभश्रुतिरिति । तत्र परेषां जयपराजयवधवधनाङ्गच्छेदपरस्वहर  
 णादि कथं स्यादिति मनसा चिन्तनमपध्यानम् । तियक्त्वदेशवाणिज्यप्राणिवधकारम्भा  
 विपु पापसंयुक्त वचन पापोपदेश । प्रयोजनमन्तरेण वृक्षाच्छेदनभूमिकृष्टनसलिल  
 सेचनाद्यवद्यकम प्रमादाचरितम् । विपकण्टकसप्राग्निरज्जुकशादण्डादिहिंसोपकरणप्रदान  
 हिंसाप्रदानम् । हिंसारागादिप्रवधनदुष्टकथाश्रवणशिक्षणव्यापृतिरशुभश्रुति ।

समेकीर्णव वतते । तद्यथा सङ्गत घृत सङ्गत सलमित्युच्यते एकीभूतमिति गम्यते ।  
 एकत्वेन अयन गमन समय, समय एव सामायिक, समय प्रयोजनमभ्यति वा विगृह्य  
 सामायिकम् । इयति देशे एतावति काले इत्यवधारिते सामायिके स्थितस्य महाप्रतत्व  
 पूर्ववद्वदितव्यम् । कुत ? अणुस्थूलकृतहिंसादिनिवृत्ते । समयप्रसङ्ग इति चेत् ? न

कारणं ह वह अनर्षदण्ड ह । इसस विरत होना अनयदण्डविरति ह । अनभदण्ड पांच प्रकारका  
 ह—अपध्यान पापोपदेश प्रमादाचरित हिंसाप्रदान और अशुभश्रुति । दूसरोंका जय पराजय  
 मार्गना वधना अर्गोका छटना और मनका अपहरण आदि कस किमा जाय इस प्रकार मनस विचार  
 करना अपध्यान नामका अनभदण्ड ह । तिय चोको कसय पहचानबास बणिजका प्रसार करनबास  
 और प्राणियोकी हिंसाके कारण भूत आरम्भ आदिक विषयमें पापवहुस वचन घोळना पापोपदेश  
 नामका अनर्षदण्ड ह । बिना प्रयोजनक वृक्षादिका छटना भूमिका कूटना पानीका सीपना आदि पाप  
 काम प्रमादाचरित नामका अनर्षदण्ड ह । विप कांटा दाम्त्र अग्नि रस्सी चाबुक और लकड़ी आदि  
 हिंसाके उपकरणोका प्रदान करना हिंसाप्रदान नामका अनभदण्ड ह । हिंसा और राग आदिको बढ़ान  
 वाली दुष्ट कथाओका सुनना और उनकी शिक्षा देना अशुभश्रुति नामका अनर्षदण्ड ह ।

‘सम्’ उपसर्गका अर्थ एक रूप ह । जैसे ‘भी संगत ह तरु संगत ह’ जब यह कहा जाता है तब समय  
 का अर्थ एकीभूत होता ह । सामायिकमें मूल शब्द समय ह । इसका दो अवयव हें सम् और अय ।  
 सम् का अर्थ कहा ही ह और अय का अर्थ गमन ह । समुदायाद्य एक रूप हो जाना समय ह और समय ही  
 सामायिक ह । अथवा समय अर्थात् एक रूप हो जाना ही जिसका प्रयोजन ह वह सामायिक ह । इतने  
 यद्यमें और इतने काल तक इस प्रकार निदिशत की गई सामायिकमें स्थित पुस्तक पहल्लेक समान  
 महाप्रत जायना चाहिये क्योंकि इसक सूक्ष्म और स्मूक्ष दोनों प्रकारके हिंसा आदि पापोंका समाप  
 हो जाता है ।

(१)—अभदण्डस्वहर—आ । अभदण्डस्वहर—वि १ व २ । (२) ‘वधवधनाङ्गच्छेदपरास्वहर परकण्ठार’ ।  
 अपध्यानमपध्यानं सासति विनयायने विषया ॥—रत्न ३ ३२ । (३)—अभानम् । प्राणिवधका—आ वि १ वि  
 २ । (४) ‘तिरिक्त्वदेशवाणिज्याहिंसारम्भप्रकम्भनापीनाम । कथाप्रसङ्गप्रवचनं स्मृतव्यं पाप उपवेश ॥—  
 रत्न ३ ३ । (५) ‘वितिसलिलकवहनपकारम्भं विप्रलं वनस्पतिच्छेदम् । धरमं सारणमपि च प्रमादवधौ प्रमा-  
 पन्ते ॥—रत्न ३ ३४ । (६) ‘उपचा तावदेकार्थीमानं सामर्थ्यलक्षितं विप्रहं करिष्यते—सङ्गतार्थं समर्षचुष्टार्थं  
 समर्ष इति । उच्यते सङ्गतं भूतं सङ्गतं तैरभित्युच्यते एकीभूतमिति वन्ते ।—आ न भा २, १ १ ।

तद्वातिकर्मोदयसद्भावात् । महाव्रतत्वाभाव इति चेत् ? तन्न उपचाराद् राजकुले सर्वं गतचत्राभिधानवत् ।

प्रोषधशब्दः पवपर्यायवाची । शब्दादिग्रहण प्रति निवृत्तौत्सुक्यानि पञ्चापीन्द्रियाभ्युपेत्य तस्मिन् वसन्तीत्युपवासः । चैतुर्विधाहारपरित्याग इत्यथ । प्रोषधे उपवासः प्रोषधोपवासः । स्वैशरीरसस्कारकारणस्नानगन्धमाल्याभरणादिविरहित शुष्णाववकाशे साधुनिवासे चत्यालये स्वप्रोषधोपवासगृहे वा धमकथाश्रवणश्रावणचिन्तनविहितान्त-  
करणः सन्नोपवसेधिरारम्भ श्रावकः ।

उपभोगोऽश्नपानगन्धमाल्यादिः । परिभोग आच्छादनप्रावरणालङ्कारक्षयनासनगृहयानवाहनादिः । तयोः परिमाणमुपभोगपरिभोगपरिमाणम् । मधु मास मद्यश्व सदा परिहृतव्यं त्रसघाताग्निवृत्तघेत्सा । फेसक्यर्जुनपुष्पादीनि द्यूङ्गवेरमूलकाशीनि बहुजन्तु-

धका—यदि ऐसा ह तो सामायिकमें स्थित हुए पुष्पक सकससयमका प्रसंग प्राप्त होता ह ?

समाधान—नहीं क्यों कि इसक सयमका घात करनवाल कर्मोका उदय पामा जाता ह ।

धका—तो फिर इसक महाव्रतका अभाव प्राप्त होता ह ?

समाधान—नहीं क्यों कि उस राजकुलमें अन्नको सवगत उपचारस कहा जाता ह उसी प्रकार इसक महाव्रत उपचारस जानना चाहिये ।

प्रोषधका अर्थ पव ह और दांभा इन्द्रियोंक शान्ति विषयोंक त्यागपूर्वक उसमें निवास करना उपवास ह । अर्थात् चार प्रकारके आहारका त्याग करना उपवास ह । तथा प्रोषध दिनमें जो उपवास किया जाता ह उसे प्रोषधोपवास कहत हैं । प्रोषधोपवासी श्रावकको अपन शरीरक सुस्कारके कारण स्नान गन्ध माला और आभरण आदिका त्याग करक किसी पवित्र स्थानमें मधुज्योक्त रहक स्थानमें शैत्यालयमें या अन्न प्रोषधोपवासक नियम नियत किय गय घरमें धमकधाक मुनन मुमान और चिन्तवन करनमें मनको लगा कर उपवास करना चाहिय और सब प्रकारका भारम्भ छोड दना चाहिय ।

भोजन पान गन्ध और माला आदि उपभोग कहलात हैं तथा ओढ़ना बिछाना अलंकार धयन आमन घर यान और बाहन आदि परिभोग कहलात ह । इनका परिमाण करना उपभोग-परिभोग परिमाण घत ह ।

त्रिंशत्कालित त्रमाहिमास निवृत्त ह उस सदाक किय मधु मांस और मन्त्रिका त्याग कर दना चाहिय । जो बहुत जन्तुओंकी उत्पत्तिक आहार ह और जिन्हें अन्नलकाय कहते हैं एम कृत्वीक

(१) कपुटाहारविनर्जनस्यवायम् ॥ -एत ५ १६। (२) पञ्चानां पापानामधकियाग्भमस्यपुण्यतागाम् । स्नानान्त्रयनस्यानामुपवासो परिहृति कुर्मन् ॥ कर्मोन् सन्पुत्र धनधाम्या पिबन् पायरश्याम् । ज्ञानध्यानरा वा भवन्तु वयमप्यत्राम् ॥ -एत ५ १७ १८। (३) त्रमाह्निर्गृह्यार्कं शीघ्रं विगिड प्रमादादिहृत्वे । मर्षं च कर्त्वीर्यं विनश्रीको दारयन्पुत्रानि ॥ -एत ३ ३८। (४) अन्नदपददृक्विषाताम्युलकाग्राणि शृण्वेत्पि । नवनीलकिम्बहुतुर्गं कंनरकियवमवदेयम् ॥ -एत ३ ३९।

योनिस्त्वानायनन्तकायव्यपदेशार्हाणि परिहृतव्यानि बहुधातात्पफलत्वात् । यानवाहृता भरणादिष्वेतावदेवेष्टमन्तोऽज्यदनिष्टमित्यनिष्टाश्रितवतन कस्य कालनियमेन यावज्जीव वा यथाशक्ति ।

सयममविनाशयन्नततीत्यतिथि । अथवा नास्य तिथिरस्तीत्यतिथि अनियतकाला गमन इत्यथ । अतिथये सविभागोऽतिथिसविभाग । स चतुर्विधः भिक्षोपकरणौषध प्रतिश्रयभेदात् । भिक्षाधमम्युद्यतायातिथये सयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवशा भिक्षा देया । धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनाद्युपबृंहणानि दातव्यानि । औषधमपि योग्यमुपयोजनीयम् । प्रतिश्रयश्च परमधमश्च यथा प्रतिपादयितव्य इति । 'च' शब्दो वक्ष्यमाणगृहस्थधमसमुच्चयाय ।

क पुनरसौ ?—

मारणान्तिकीं सस्लेक्ष्मां औषिता ॥ २२ ॥

स्वपरिणामोपात्तस्यामुप इन्द्रियार्णां बलानां च कारणवशात्संशयो मरणम् । अन्त ग्रहण तद्भवमरणप्रतिपत्त्ययम् । मरणमन्तो मरणान्त । स प्रयोजनमस्येति मारणा-

फूल और अब्जुक फूल आदि तथा अवरक्त और मूली आदिका त्याग कर बना चाहिये क्यों कि इनके सेबनमें फल कम है और घात बहुत जीर्णोका है । तथा मान वाहन और आभरण आदिकमें हमारा लिये इतना ही इष्ट है जब सब अनिष्ट है इस प्रकारका विचार करके कुछ काल के लिये या जीवन मरके लिये शक्यतनुसार जो अपन लिये अनिष्ट हो उसका त्याग कर बना चाहिये ।

सयमका विनाश न हो इस विधिसे जो आता है वह अतिथि है या जिसके आनकी कोई तिथि नहीं नहीं उसे अतिथि कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जिसके आनका कोई काल निश्चित नहीं है उस अतिथि कहते हैं । इस अतिथिके लिये विभाग करना अतिथिसविभाग है । यह चार प्रकारका है—भिक्षा उपकरण औषध और प्रतिश्रय अर्थात् रहनका स्थान । जो मोक्षके लिये बद्धकक्ष है सयमक पालन करनेमें उत्तर है और शुद्ध है उस अतिथिके लिये शुद्ध मनसे निर्दोष भिक्षा देनी चाहिये । सम्यग्दर्शन आदिके ब्रह्मज्ञानवाले धर्मोपकरण देन चाहिये । योग्य औषधकी योजना करनी चाहिये तथा परम धर्मकी श्रद्धापूर्वक निवास-स्थान भी देना चाहिये ।

सूत्रमें जो 'च' शब्द है वह आग कहे जानबाल गृहस्थधमके सग्रह करनेके लिये दिया है ।

वह और कौन-सा गृहस्थ धर्म है—

तथा वह मारणान्तिके संलेखनाका प्रीति पूर्वक सेवन करनेवाला होता है ॥ २२ ॥

अपन परिणामसे प्राप्त हुई आभूषण इन्द्रियोंका और मन बचन काय इन तीन बलोंका कारण विषयके मिलन पर नाश होना मरण है । उसी भवक मरणका ज्ञान करानेके लिये सूत्रमें मरण शब्दके साथ अन्त पक्षकी ग्रहण किया है । मरण यही अन्त मरणान्त है और जिसका वह मरणान्त ही प्रयोजन

न्तिकी । सम्यक्कायकपायलेखना सल्लेखना । कायस्य बाह्यस्याभ्यन्तराणां च कपायाणां तत्कारणहापनक्रमेण सम्यग्लेखना सल्लेखना । तां मारणान्तिकी सल्लेखना जोषिता सेविता गृहीत्यभिसम्यध्यते । ननु च विस्पष्टाय सेवितेत्येव वक्तव्यम् ? न, अथ विशेषोपपत्तेः । न केवलमिह सेवनं परिगृह्यते । किं तर्हि ? प्रीत्यर्थोऽपि । यस्मादसत्यां प्रीती बलाघ्न सल्लेखना भायते । सत्यां हि प्रीती स्वयमेव करोति । स्यात्तत्तत्प्रमाणं प्राप्नोति स्वाभिसन्धिपूर्वकायुरादिनिवृत्ते ? नप दोषः, अप्रमत्तत्वात् । प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरांषणं हिंसा इत्युक्तम् । न चास्य प्रमादयोगोऽस्ति । कुत ? रागाद्यभावात् । रागद्वेषमोहादिष्विष्टस्य हि विपश्चात्प्राणव्यपरांषणप्रयोगवशादात्मानं घ्नत स्वघातो भवति । न सल्लेखना प्रतिपन्नस्य रागादयः सन्ति ततो नात्मवधदोषः । उक्तं च—

“रागादीणमणुष्या अहिंसगच्छति वैसिद् समये ।  
तेसि चोत्पत्ती हिंसेति जिणेहि पिदिह्वा ॥”

हं बहु मारणान्तिकी कहलाती ह । अर्थात् प्रकारसं काय और कपायका लेखन करना अर्थात् कृप्य करना सल्लेखना ह । अर्थात् बाहरी घरीरका और भीतरी कपायकोका उत्तरोत्तर काय और कपायको पुष्ट करनवाला कारणको घटात हुए, मरु प्रकारसं लेखन करना अर्थात् कृप्य करना सल्लेखना ह । मरणको मन्तमं होनवाली इस सल्लेखनाको प्रीतिपूर्वक संभन करनवाला गृह्यत होता हं महं इस सूत्रका तात्पर्य ह ।

शका—सहज तरीकासं अथवा स्पष्टीकरण हो इसके लिये सूत्रमें जोषिता इसके स्थानमें सेविता कहना ठीक ह ?

समाधान—नहीं क्योंकि जोषिता क्रियाक रत्ननेस उससं अर्थ-विषय ध्वनिसं हो जाता ह । यहाँ केवल संभन करना अर्थ नहीं लिया गया ह किन्तु प्रीति रूप अर्थ भी लिया गया ह क्योंकि प्रीतिके न रहन पर वरुपूर्वक सल्लेखना नहीं कराइ जाती । किन्तु प्रीति न रहने पर जीव स्वयं ही सल्लेखना करता है । तात्पर्य यह ह कि प्रीतिपूर्वक सेवन करना यह अर्थ जोषिता क्रियासं निकल आता है सेविता से नहीं अतः सूत्रमें जोषिता क्रिया रखी ह ।

शका—क्या सल्लेखनामें अपन अभिप्रायसं आयु आदिका त्याग किया जाता है इसलिये यह आत्मघात हुआ ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि सल्लेखनामें प्रमादका अभाव ह । प्रमत्तयोगसे प्राणोंका संभन करना हिंसा हं महं पहलू कहा जा चुका ह । परन्तु इसक प्रमाद नहीं हं क्योंकि इसक रागादिक नहीं पाय जात । राग द्वेष और मोहसं मुक्त होकर जो विप और क्षत्र आदि उपकरणोंका प्रयोग करके उनसे अपना धान करता हं उसे आत्मघातका दोष प्राप्त होता ह । परन्तु सल्लेखनाको प्राप्त हुए जीवके रागादिक तो ही नहीं इसलिये इसे आत्मघातका दोष नहीं प्राप्त होता । कहा भी ह—

घातत्रमं यह उपपद्यते कि रागादिकका नहीं उत्पन्न होना अहिंसा ह । तथा जिनवचनं जननी उत्पत्ति को हिंसा कहा ह ॥

किञ्च मरणस्यानिष्टत्वाद्यथा घण्टिजो विविधपम्पदानादानसञ्चयपरस्य स्वगृह्णि-  
नाशोऽनिष्ट । तद्विनाशकारणे च भुतश्चिदुपस्थिते यथाशक्ति परिहरति । दुष्परिहारे  
च पम्पविनाशो यथा न भवति तथा यतत । एव गृहस्थोऽपि व्रतशीलपम्पसचये प्रवतमान  
तदाश्रयस्य न पासमभिवान्छति । तदुपप्लवकारणे शोपस्थिते स्वगुणाविरोधेन परि-  
हरति । दुष्परिहारे च यथा स्वगुणविनाशो न भवति तथा प्रयतत इति कथमात्मवधो  
भवेत् ।

अत्राह निःशस्यो व्रती इत्युक्तं तत्र च तृतीय शस्य मिथ्यादशनम् । तत् सम्पद्दृष्टिना  
व्रतिनो निःशस्येन भवितव्यमित्युक्तम् । तत्सम्पद्दशनं किं सापवाद निरपवादमिति ?  
उच्यते—कस्यचि मोहनीयावस्याविशेषात्कदाचिदिमे भयन्त्यपवादा—

शक्काकाः आदिचिक्त्साऽन्यदृष्टिप्रशसासस्तवाः सम्पद्दृष्टेरतिचारः ॥ २३ ॥

निःशक्कित्वात्मनो व्याख्याता 'दशनविशुद्धि' इत्यत्र । तत्प्रतिपक्षमूता शक्कादयो  
वेदितव्याः । अथ प्रशसासंस्तवयो को विशेष ? मनसा मिथ्यादृष्टेर्नानिचारिप्रगुणो-

दूसर मरण किसी को भी इष्ट नहीं है । उसे नाना प्रकारकी विक्रय वस्तुओंका बेन लेन और सचप-  
में लगे हुए किसी व्यापारीको अपने घरका नाश होना इष्ट नहीं है । फिर भी परिस्थितिवश उसके  
विनाशक कारण भा उपस्थित हों तो यथाशक्ति वह उनको दूर करता है । इतम पर भी यदि वे दूर  
न हो सकें तो जिससे विक्रय वस्तुओंका नाश न हो ऐसा प्रयत्न करता है उसी प्रकार पम्पस्थानीय व्रत  
और शीलक संभयमें जुटा हुआ गृहस्थ भी उनका आधारमूत मामु आदिका पतन नहीं चाहता । यथा  
कथाचित् उनके विनाशक कारण उत्पन्न हो जाय तो जिससे अपने गुणोंमें बाधा नहीं पड़े इस प्रकार  
उनको दूर करनेका प्रयत्न करता है । इतन पर भी यदि वे दूर न हों तो जिससे अपने गुणोंका नाश न  
हो इस प्रकार प्रयत्न करता है इसलिये इसका आत्मघात नामका दोष कस हो सकता है । अपरि-  
नहीं हो सकता है ।

यहाँ पर शक्काकार कहता है कि व्रती निःशस्य होता है ऐसा कहा है और वहाँ तीसरी शस्य  
मिथ्यादर्शन है । इसलिये सम्पद्दृष्टि व्रतीको निःशस्य होना चाहिये यह उसका अभिप्राय है तो अब  
यह बतलाइय कि वह सम्पद्दशन सापवाद होता है या निरपवाद होता है ? अब इसका समाधान  
करत हैं—किसी भीको मोहनीयकी अवस्था विशेषक कारण से अपवाद होत है—

शक्का, काँसा, विचिक्त्सा अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव ये सम्पद्दृष्टि के  
पाँच अतिचार हैं ॥ २३ ॥

'दशनविशुद्धि' इत्यादि सूत्रका व्याख्यान करत समय निःशक्कित्व आदिका व्याख्यान किया ।  
य शक्काविक उनके प्रतिपक्षमूत जानना चाहिये ।

शक्का—प्रशंसा और संस्तवमें क्या अन्तर है ?

दुभावान् प्रशसा, भूताभूतगुणोद्भाववचनं सस्त्व इत्ययमनयोर्भेदः । ननु च सम्यग्दानमप्याङ्गमुक्तं तस्यातिचाररूप्यष्टभिभूषितव्यम् ? नप दोषः व्रतशीलेषु पञ्च पञ्चातिचारा इत्युत्तरं विवक्षुणाऽऽचार्येण प्रशमासस्त्वयोरित्तरानतिचारानन्तभाव्य पञ्चवातिचारा उक्ताः ।

आह सम्यग्दृष्टेरतिचार उक्ताः । किमेव व्रतशीलेष्वपि भवन्तीति ? ओमित्युक्त्वा तदतिचारसंस्थानिदेषामाह—

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम् ॥ २४ ॥

व्रतानि च शीलानि च व्रतशीलानि तेषु व्रतशीलेषु । शीलग्रहणमनघनम् व्रतग्रहणेन वसिद्धे ? नानघनम् विशेषशापनाय व्रतपरिरक्षणाय शीलमिति दिग्घिरयादीनीह 'शील'ग्रहणेन गृह्यन्ते ।

अगायधिकारादगारिणो व्रतशीलेषु पञ्च पञ्चातिचारा वक्ष्यमाणा यथाश्रमं वसिद्ध्या । तद्यथा—आद्यस्य तावदहिंसाव्रतस्य—

समाधान—मिथ्यादृष्टिकं ज्ञान और चारित्र गुणोंका मनस उद्भावन करना प्रथमा ह और मिथ्यादृष्टिमें जो गुण है या जो गुण नहीं है इन दोनोंका मद्भाव यथालाभ हुए कथन करना सम्यक है, इस प्रकार यह दोनोंमें अन्तर ह ।

पश्चात्—सम्यग्दर्शनक आठ अंग बहू हैं इसलिए उसक अतिचार भी आठ ही हान चाहिए ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं ह क्योंकि आग आचार्य व्रतों और शीला क पाँच-गान अतिचार कहना चाह ह मन्त्रिय अयदृष्टिप्रणाम और अयदृष्टिमन्त्रव इन दो अतिचारोंमें पाप अतिचाराका अन्तर्भाव करके सम्यग्दृष्टिके पाँच ही अतिचार कह ह ।

सम्यग्दृष्टिक अतिचार कह क्या इसी प्रकार व्रत और शीलेंक भी अतिचार हान ह ? हा यह कह कर अब उन अतिचाराकी संख्याका निर्देश करना किय भागका मूत्र कह ह—

व्रतों और शीलेंमें पाँच पाँच अतिचार हैं जो क्रमसे इस प्रकार हैं ॥ २४ ॥

शोक और व्रत इन दोनोंका समभारय समास होकर व्रतशोक पत्र बना ह । उनमें अर्थात् व्रत-शीलामें ।

पश्चात्—मूत्रमें शोक पदका ग्रहण करना निष्पन्न ह क्या कि व्रत पदक ग्रहण करनेम ही उगकी सिद्धि हो जाती ह ?

समाधान—मूत्रमें शोक पदका ग्रहण करना निष्पन्न महा ह क्यों कि बिनापका ज्ञान करानर निय और व्रतों की रक्षा करनेक निय शोक ह इत्यनिय यहाँ शील पदक ग्रहण करनेम निश्चरदि आनिय ज्ञान ह ।

यह मूत्रयत्ना प्रारम्भ ह मन्त्रिय मूत्रयत्न व्रता और पाकाक जाग बहू जानवान् प्रथम पाँच पाँच अतिचार जानन चाहिये जो निम्न प्रकार ह । उनमें भी पत्रक प्रथम अहिंसावचनक अतिचार यत्न करनेक निय आगना मूत्र वचन ह—

अन्यवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः ॥ २५ ॥

अभिमतदेशगतिनिरोधहेतुवध । दण्डकशावेत्रादिभिरभिघात प्राणिना वधः  
न प्राणव्यपरोपणम्, तत प्रागेवास्य विनिवृतत्वात् । कर्णनासिकादीनामवयवानामप  
नयन छेदः । याव्यभारारोपणवतिरिक्तवाहनमतिभारारोपणम् । गवादीनां कुत्पिपासाबाधा  
करणमभ्रपाननिरोध । एते पञ्चाहिसाणुव्रतस्यातिचाराः ।

मिथ्योपदेशरहोभ्यास्यामकूटलेखक्रियाभ्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ॥ २६ ॥

अभ्युदयतिश्रेयसार्थेषु क्रियाविशेषेषु अन्यस्यान्यथा प्रवतनमतिस्थापन वा मिथ्यो-  
पदेश । यत्पत्नीपुसाभ्यामकान्तेजुच्छित्तस्य क्रियाविशेषस्य प्रकाशन तद्वहोभ्यास्यान  
वेदितव्यम् । अन्येनानुक्तोभननुच्छित्त यत्किञ्चित्परप्रयोगवशादेव तेनोक्तमनुच्छित्तमिति  
वञ्चनानिमित्त लेखन कूटलेखक्रिया । हिरष्यान्द्रव्यस्य निक्षेप्तुर्विस्मृतसस्यस्याल्पसस्येय  
माददानस्यबमित्यनुशासचन यासापहार । अधप्रकरणाङ्गविकारभ्रविषोपादिभिः परा  
कृतमुपलभ्य तदाविष्करणमसूयाविनिमित्त यत्परसाकारमन्त्रभेद इति कथ्यते । स एत  
सत्याणुव्रतस्य पञ्चातिचाराः बोद्धव्याः ।

वध, वध, छेद, अतिभारका आरोपण और व्यक्तपानका निरोध ये अहिंसा

अणुव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ २५ ॥

किसीको अपन इच्छा स्वानमें जानस रोकनक कारणको वन्ध कहत हैं । उदा पानुक और बेट  
आदिस प्राणियोंको मारना वध ह । यहाँ वधका अर्थ प्राणोंका विधोय करना नहीं किया ह क्योंकि अति  
चारक पहल ही हिंसाका त्याग कर दिया जाता ह । कान और नाक आदि अवयवोंका भदना छेद ह ।  
उचित भारस अतिरिक्त भारका लाटना अतिभारारोपण ह । गौ आदिको भूख-भ्यासके लगने पर अन्न  
पानका रोकना असपाननिरोध ह । य पाँच अहिंसाणु व्रत के अतिचार हैं ।

मिथ्योपदेश, रहोभ्यास्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकारमन्त्रभेद ये

सत्याणुव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ २६ ॥

अभ्युदय और मोक्षकी कारणभूत क्रियाओंमें किसी दूसरको विपरीत मार्गस लगा देना वा  
मिथ्या वचना द्वारा दूसरोंको ठगना मिथ्योपदेश ह । स्त्री और पुरुष द्वारा एकान्तमें  
किय गय आचरण विगणना प्रकट कर देना रहोभ्यास्यान ह । दूसरन न तो कुछ बड़ा और न कुछ  
दिया तो भी अत्य गिनी की प्रणामे उभन एसा बहा ह और एसा किया ह इस प्रकार छसो-सिगना  
कू न सकिया ह । परोक्षमें पाँगे आँकिको रयनवादा काइ उयकी मय्या भूलकर यदि उम बमता सन  
सगाता ठीक ह इस प्रकार स्वीकार करना म्यासापहार ह । अर्थकम प्रकरणकम धरीरक बिचारकम  
या भूक्षर आदिस कारण दूसरन अभिप्रायको जान कर बाहने उयका प्रकट कर एसा मारारमन्त्रभेद  
ह । इस प्रकार य सत्याणुव्रतके पाँच अतिचार जानन चाहिय ।

(१)-नवपाँच वृ । (२)-अतिभारारोपण-व ।

स्तेनप्रयोगतद्वाहृतावानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूप्य  
कथ्यवहारा ॥ २७ ॥

मुष्णन्त स्वयमेव वा प्रयुक्तोऽन्येन वा प्रयोजयति प्रयुक्तमनुमयते वा यत स स्तेन  
प्रयोग । अप्रयुक्तोऽनानुमतेन च चौरैणानीतस्य ग्रहणं तदाहृतादानम् । उचितं या  
मान्येन प्रकारेण दानग्रहणमतिक्रम । विरुद्धं राज्यं विरुद्धराज्यं विरुद्धराज्येऽतिक्रम  
विरुद्धराज्यातिक्रम । सत्र हृद्यत्वमूल्यलभ्यानि महाध्याणि द्रव्याणीति प्रयत्न । प्रस्थादि  
मानम् तुलाद्युमानम् । एतेन न्यूननायस्म देयमधिकेनात्मनो ग्राह्यमित्येवमादिकूटप्रयोगो  
हीनाधिकमानो मानम् । मृत्रिमहिरप्यादिभिवञ्चनापूर्वको व्यवहारः प्रतिरूपकव्यवहारः ।  
त एते पञ्चादत्तादानानुव्रतस्यातिचाराः ।

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीतागमनामङ्गकीडाकाम  
सीवामिनिवेशः ॥ २८ ॥

कन्यादानं विवाहः । परस्य विवाहः परविवाहः । परविवाहस्य करणं परविवाह  
करणम् । परपुरुषानेति गच्छतीत्येवशीलो इत्वरी । कुत्सिता इत्वरी कुत्सायां क

स्तेनप्रयोग, स्तेन आहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और  
प्रतिरूपकव्यवहार ये अचौर्य अणुव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ २७ ॥

किसीको चोरीक लिय स्वयं प्ररित करना या दूसरक द्वारा प्ररणा दिलाना या प्रयुक्त हुए की  
अनुमोदना करना स्तेनप्रयोग ह । अपन द्वारा अप्रयुक्त और असम्मत चोरक द्वारा लोह हृद्य वस्तुका ल  
रना तदाहृतादान ह । यहाँ न्यायमागको छोड़ कर अन्य प्रकारस वस्तु ली गई ह इसलिय अतिचार ह ।  
विरुद्ध ओ राज्य वह विरुद्धराज्य ह । राज्यमें किसी प्रकारका विरोध होन पर मर्यादाका न पासना  
विरुद्धराज्यातिक्रम ह । यदि वहाँ अल्प मूल्यमें वस्तुएं मिल गईं तो उन्हें महंगा बचनका प्रयत्न करना  
विरुद्धराज्यातिक्रम ह । मानपद स प्रत्य आदि मापनक बाँट लिय जाते हैं और उमानपदसे तराजू  
आदि तोलनक बाँट लिय जात ह । कमती माप-सौलस दूसरको वना और बढ़ती माप-सौलस स्वयं  
रना इत्यादि कुटिलतास लन-बन करना हीमाधिकमानोमान ह । बनावटी चाँदी आदिस कपटपूर्वक  
व्यवहार करना प्रतिरूपक व्यवहार ह । इस प्रकार य अदत्तादान अणुव्रतक पाँच अतिचार हैं ।

परविवाहकरण, इत्वरिकापरिगृहीतागमन, इत्वरिका-अपरिगृहीतागमन, अमङ्गकीडा  
और कामरीवामिनिवेश ये स्पदारसन्तोष अणुव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ २८ ॥

कन्याका ग्रहण करना विवाह ह । किसी अन्यका विवाह परविवाह ह और इसका करना परविवाह  
करण ह । जिसका स्वभाव अन्य पुरुषको पास जाना आना ह वह इत्वरि कहलाती ह । इत्वरि अर्थात्  
अभिमारिका । इसमें भी जो अत्यन्त आचरत होती ह वह इत्वरिका कहलाती ह । यहाँ कुत्सित अर्थमें



प्रयुक्त कौकुब्धम् । घाष्टधराय<sup>१</sup> यत्किञ्चनानथम् बहुप्रलापित्व मौक्ष्यम् । असमीक्ष्य प्रयोजनमाधिक्येन करणमनमौक्ष्याधिकरणम् । यावताऽप्येनोपभोगपरिभोगी सोऽप्रस्ततोऽप्यस्याधिक्यमानमक्यम् । त एते पञ्चानयदण्डविरलेरतिचारा ।

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३५ ॥

यागो व्याख्यातस्त्रिविधः । तस्य दुष्ट<sup>२</sup> प्रणिधान योगदुष्प्रणिधानम्—कायदुष्प्रणिधानं वाग्दुष्प्रणिधानं मनोदुष्प्रणिधानमिति । अनादरोऽनुत्साह । अनकार्य स्मृत्यनुपस्थानम् । त एते पञ्च सामामिकस्मातिक्रमाः ।

अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्गाभिमसस्तरूपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३५ ॥

जन्तव सन्ति न सन्ति वेति प्रयवक्षणं क्षुत्पर्यापार । मुहुनोपकरणेन यत्त्रियते प्रमा-  
जनं तत्प्रमाजितम् । तदुभय प्रतिपक्षविशिष्टमत्सर्गादिभिस्त्रिभिरभिसम्बध्यते—अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्ग इत्येवमादि । तत्र अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितायां भूमौ मूत्रपुरीपोत्सर्ग अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितात्मग । अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितस्याहदाचायपूजापकरणस्य गन्ध-

इन दोनोंक साथ दूसरेक लिय घारीरिक् कुछघटाए करना कौकुब्ध ह । घीठताको लिये हुए नि सार कुछ भी बहुत बकावास करना मौक्ष्य ह । प्रयोजनका विचार किय बिना मर्यादाक बाहर अधिक काम करना असमीक्ष्याधिकरण ह । उपभोग परिभोगक लिय जितनी वस्तुकी आवश्यकता ह वह अब ह उसस अतिरिक्त अधिक वस्तु रखना उपभोगपरिभोगानर्थक्य ह । इस प्रकार य अनर्थाव्यवहारि प्रतिक पाँच अतिचार ह ।

काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृतिका अनुपस्थान ये सामायिक प्रतिके पाँच अतिचार हैं ॥ ३५ ॥

तीन प्रकारक योगका व्याख्यान किया जा चुका ह । उसका बुरी तरहस चलत रहना योगदुष्प्रणिधान ह जो तीन प्रकारका ह—कायदुष्प्रणिधान वचनदुष्प्रणिधान और मनोदुष्प्रणिधान । उत्साह का न होना अनुत्साह ह और बही अनादर ह । तथा एकाग्रताका न होना स्मृत्यनुपस्थान ह । इस प्रकारय सामायिक प्रतिक पाँच अतिचार हैं ।

अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित भूमिमें उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित वस्तुका आदान,

अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित संस्तरका उपकरण, अनादर और स्मृतिका अनुपस्थान ये

प्रोषोपवास प्रतिके पाँच अतिचार हैं ॥ ३५ ॥

जीव ह या नहीं ह इस प्रकार जितस दयना प्रथमबलाय बहुलाता ह और कोमल उपकरणस जो प्रयोजन माया जाता ह वह प्रमाजित बहुलाता ह । निषय मुक्त इन दोना पदोना उत्सर्ग मानि अप्रत्यवेक्षित पदाम सम्बन्ध होना ह । यथा—अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितात्सर्ग आदि । बिना दली और बिना प्रमाजित भूमिस चल मूत्रका त्याग करना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्ग ह । अग्रहृत और आचायकी पूजाक

(१)—शाय वर—आ. दि १ दि २ । (२)—यवपिण् मी—२ । (३)दप्रणि—४ । (४)—वविरति—५ ।

माल्यधूपपादेरात्मपरिधानाद्यस्य च वस्त्रादरादानमप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितादानम् । अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितस्य प्रावरणादे सस्तरस्मोपक्रमण अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितसस्त्रोपक्रमणम् । क्षुदम्यदितत्वादावश्यकेष्वनादरोऽनुत्साह । स्मृत्यनुपस्थान व्याख्यातम् । त एत पञ्च प्रोपघोपवासस्यातिचारः ।

सच्चित्तसम्बन्धसम्मिभामिपववुष्पक्वाहाराः ॥ ३५ ॥

मह चित्तेन वतते इति सचित्त चेतनावद् द्रव्यम् । तदुपश्रुष्ट सम्बन्ध । तद्रव्यतिक्कीण सम्मिथः । कथ पुनरस्य सचित्तादिषु प्रवृत्तिः ? प्रमांसम्मोहाभ्याम् । द्रवो वृष्यो यामिपव । अमम्यक्पक्वा दुष्पक्व । एतैराहारो विशेष्यते—सच्चित्ताहार सम्बन्धाहार सम्मिथाहारोऽभिपवाहारो दुष्पक्वाहार इति । त एते पञ्च भोगोपभोगपरिसंख्यान स्यातिचारः ।

सच्चित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥ ३६ ॥

सचित्ते पक्षपत्रादौ निक्षेप सचित्तनिक्षेप । अपिधानमावरणम् । सचित्तेनैव सम्बन्ध्यते उपकरण गन्ध मास्य और धूप आन्त्रिके तथा अपन ओङ्कन आत्रिक वस्त्रादि पवार्योको बिना वस्त्र और बिना परिमार्जन किम्य हुए ल लना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितावान ह । बिना दक्ष और बिना परिमार्जन किम्य हुए प्रावरण आन्त्रि सम्नरका विछाना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितसस्त्रोपक्रमण ह । भूलस पीडित होनक कारण आवश्यक कामों अनुरसाहित होना अनावर ह । स्मृत्यनुपस्थानका व्याख्यान पहलु निया ही ह । इस प्रकार य प्रोपघोपवास व्रतक पाँच अतिचार ह ।

सच्चित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिथाहार, अभिपवाहार और दुष्पक्वाहार ये

उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ ३५ ॥

जो चित्त सहित ह वह सचित्त कहलाता ह । सचित्त स चेतना सहित द्रव्य लिया जाता ह । इसस सम्बन्धको प्राप्त हुआ द्रव्य सम्बन्ध(हार ह । और इसस मिलित द्रव्य सम्मिथ ह ।

धका—यह गृहस्थ सचित्तादिकमें प्रवृत्ति किस कारणस करता ह ?

समाधान—प्रभाव और सम्मोहक कारण ।

द्रव धूप्य और अभिरव इनका एक अर्थ ह । जो तीव्र तरहस नहीं पका ह वह दुष्पक्व ह । य पाँचों क्षण आहारक बिभाषण ह या इनस आहार पाँच प्रकारका हो जाता ह । यथा—सच्चित्ताहार सम्बन्धाहार सम्मिथाहार अभिपवाहार और दुष्पक्वाहार य सब भोगोपभोग परिसंख्यान व्रतक पाँच अतिचार हैं ।

सच्चित्तनिक्षेप, सच्चित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये

अतिथिमविभाग व्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ ३६ ॥

सचित्त कमलपत्र आन्त्रि रखना सच्चित्तनिक्षेप ह । अपिधानका अर्थ आवरण ह । इस पाठको

(१)—नि स्यात् ? प्रमा—म् ।

इत्वरिका । या एकपुरुषमतु सा परिगृहीता । या गणिकात्वेन पुरुषलीत्वेन वा परपुरुषगमनशीला अस्वामिका सा अपरिगृहीता । परिगृहीता चापरिगृहीता च परिगृहीता परिगृहीते । इत्वरिके च ते परिगृहीतापरिगृहीते च इत्वरिकापरिगृहीताऽपरिगृहीततयोगमन इत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमने । अङ्ग प्रजनन योनिश्च ततोऽन्यत्र श्रीवा अनङ्गश्रीवा । कामस्य प्रवृद्ध परिणाम कामतीव्रान्निवेश । त एते पञ्च स्वदारसन्तोषव्रतस्यातिचारा ।

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णघनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमा ॥ २९ ॥

क्षेत्र सस्याधिकरणम् । वास्तु अगारम् । हिरण्य रूपादिव्यवहारतन्त्रम् । सुवर्ण प्रतीतम् । घन गवादि । धान्य व्रीह्यादि । दासीदास भृत्यस्त्रीपुसवर्गः । कुप्य क्षौमका पिसकौशेषचन्दनादि । क्षेत्र च वास्तु च क्षेत्रवास्तु, हिरण्य च सुवर्ण च हिरण्यसुवर्णम् घन च धान्य च घनधान्यम् दासी च दासश्च दासीदासम् । क्षेत्रवास्तु च हिरण्यसुवर्ण च घनधान्य च दासीदास च कुप्य च क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णघनघान्यदासीदासकुप्यानि । एतावानेव परिग्रहो मम नान्य इति परिच्छिन्नाणुप्रमाणात्क्षेत्रवास्तवादिविषयादितरिका अतिलोभवशात्प्रमाणातिक्रमा इति प्रत्यास्मान्यन्त । त एते परिग्रहपरिमाणव्रतस्यातिचारा ।

क' प्रथम होकर इत्वरिका खस्य बना ह । जिसका कोई एक पुरुष भर्ता ह वह परिगृहीता कहलाती ह । तथा जो बसया या ब्यभिचारिणी होनस दूसर पुरुषोंक पास जाती आती रहती ह और जिसका कोई पुरुष स्वामी नही ह वह अपरिगृहीता कहलाती ह । परिगृहीता इत्वरिकाका गमन करना इत्वरिकापरिगृहीतागमन ह और अपरिगृहीता इत्वरिकाका गमन करना इत्वरिका अपरिगृहीता गमन है । यहाँ अङ्ग खस्यका अथ प्रजनन और योनि ह । तथा इनक सिवा अन्यत्र श्रीवा करना अनङ्गश्रीवा ह । कामविषयक बड़ा हुआ परिणाम कामतीव्रान्निवेश ह । य स्वदारसन्तोष अनुव्रतके पाँच अतिचार है ।

क्षेत्र और वास्तुके प्रमाणका अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्णके प्रमाणका अतिक्रम, घन और

धान्यके प्रमाणका अतिक्रम दासी और दासके प्रमाणका अतिक्रम तथा कुप्यके

प्रमाणका अतिक्रम ये परिग्रहपरिमाण अनुव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ २९ ॥

धान्य पशु करना आधारभूत स्थान क्षत्र ह । मकान वास्तु ह । जिसमें कूप्य आदि व्यवहार होता ह वह हिरण्य ह । सुवर्णका अथ स्पष्ट ह । अगस गाम आदि स्थि जाते हैं । घान्य च व्रीहि आदि स्थि जाते हैं । नौकर स्त्री पुत्र मिलकर दासी-दास कहलाते हैं । रथम कपास और कोसाक बरु तथा चन्दन आदि कुप्य कहलाता ह । क्षेत्र-वास्तु, हिरण्य-सुवर्ण घन-धान्य दासी-दास और कुप्य इनक विषयमें मेरा इतना ही परिग्रह ह इसस अधिक नही एमा प्रमाण निदिशत करक सोमबध क्षेत्र वास्तु आदिक प्रमाणको बड़ा रना प्रमाणातिक्रम ह । इस प्रकार य परिग्रहपरिमाण अनुव्रतके पाँच अतिचार ह ।

उक्ता व्रतानामतिचारा शीलानामतिचारा वक्ष्यन्ते । तद्यथा—

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानामि ॥ ३० ॥

परिमितस्य दिग्बधेरतिलब्ध घनमतिक्रम । स समामतस्त्रिविध — ऊर्ध्वातिक्रम  
अधोऽतिक्रममन्यगतिक्रमश्चेति । तत्र पवताद्याराहणादूर्ध्वातिक्रम । रूपावतरणादेर  
घोऽतिक्रम । विरुप्रवशादेस्त्रियगतिक्रम । परिगृहीताया दिशो लोभावेशादाधिन्यामि  
सन्धि क्षेत्रवृद्धि । स एपोऽतिक्रम प्रमादा मोहाद् व्योमज्जात्वा भवतीत्यवसेय । अननु  
स्मरण स्मृत्यन्तराधानम् । त एते दिग्विरमणस्यातिचारा ।

आनयनप्रेष्यप्रयोगक्षेत्ररूपानुपातपुद्गलक्षेपा ॥ ३१ ॥

आत्मना सङ्कल्पिते देशे स्थितस्य प्रयोजनवशाद्यस्थिञ्चिह्नानयेत्स्योज्ञापनमानयनम् ।  
एव कुर्विति नियोग प्रेष्यप्रयोग । व्यापारकरानुपुष्टयान्प्रत्यभ्यूत्कासिकान्किरण शब्दानु  
पात । स्वविग्रहवसान रूपानुपात । छोट्टादिनिपात पुद्गलक्षेप । त एते देशविरमणस्य  
पञ्चातिचारा ।

कन्दर्पकौस्तुभ्रमौल्यसमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥ ३२ ॥

रागाद्रेकात्प्रहाममिश्रोऽशिष्टवानप्रयागं कन्दप । तदेवोभय परत्र दुष्टकायकम

व्रतैक अतिचार बहु अव गीलोक अविचार महत् ह जो दस प्रकार ह—

ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान ये  
द्विनिरतिव्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ ३० ॥

विदाकी जो मर्यादा निश्चित की हो उनका उल्लंघन करना अतिक्रम ह । यह सक्षय तीन प्रकार  
का ह—ऊर्ध्वातिक्रम अधोतिक्रम और तिर्यगतिक्रम । इनमें मर्यादाक बाहर पवतादिक पर चढ़नस  
ऊर्ध्वातिक्रम होना ह । भ्रूआ आदिम उतरन आदिस अभाऽतिक्रम होना ह और बिल आदिमें घुसनस तिर्य  
गतिक्रम होना ह । लोमक कारण मर्यादा की हुई निष्ठाक बदलनका अभिप्राय रखना क्षत्रवृद्धि ह ।  
यह व्यतिक्रम प्रमादस मोहस मा व्यासगत होना ह । मर्यादाका स्मरण न रखना स्मृत्यन्तराधान ह ।  
य दिग्विरमण व्रतके पाँच अतिचार ह ।

आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप ये देशविरति व्रतके  
पाँच अतिचार हैं ॥ ३१ ॥

अपन द्वारा सङ्कल्पन दशमें ठहर हुए पुरुषको प्रयोजन वद किमी भी वस्तुको सानकी आज्ञा करना  
आनयन ह । ऐसा करो इस प्रकार काममें लगाना प्रेष्यप्रयोग ह । जो पुरुष किसी उद्योगमें जुट ह  
उस उद्देश्य कर घांसना आदि दाश्रानुज्ञात ह । उन्हा पुण्याको अपन शरीरको दिखलाना रूपानु  
पात ह । डेला आदिका फेंकना पुद्गलक्षेप ह । इस प्रकार दशविरमण व्रतके पाँच अतिचार हैं ।

कन्दर्प, कान्कुष्य, मौखुर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगानर्थक्य ये अनर्थ

दण्डविरति व्रतके पाँच अतिचार ह ॥ ३२ ॥

रागभावकी तीव्रतावद हास्यमिथिन असम्भ वचन बोलना कल्प ह । परिहाम और असम्भवचन

प्रयुक्त षोडशोद्यम् । घाटघप्राय<sup>१</sup> यत्किञ्चनानयकं बहुप्रलापित्व मौख्यम् । असमीक्ष्य प्रयोजनमाधिक्येन करणमसमीक्ष्याधिकरणम् । यावताऽर्थेनोपभोगपरिभोगो मोऽयस्ततोऽयस्याधिक्यमानयक्यम् । त एते पञ्चानयकदण्डधिरतररतिचारा ।

योगदुष्प्रणिधानामावरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥

योगो व्याख्यातस्त्रिविधः । तस्य दृष्टं<sup>२</sup> प्रणिधानं यागदुष्प्रणिधानम्—कायदुष्प्रणिधानं वाग्दुष्प्रणिधानं मनोदुष्प्रणिधानमिति । अनादरोऽनुत्साहः । अनवाप्नोय स्मृत्यनुपस्थानम् । त एते पञ्च सामायिकस्यातिक्रमाः ।

अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्गविधानसस्तरूपश्मणानावरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३४ ॥

जन्तव मन्ति न मन्ति वेति प्रत्यवेक्षणं चक्षुष्यापारः । मृदुनोपकरणेन यत्किञ्चिदप्रयोजनं तत्प्रमाजितम् । तदुभयं प्रतिषेधविशिष्टमूत्सर्गादिभिस्त्रिभिरभिसम्बध्यते—अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्ग इत्येवमस्ति । तत्र अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितायां भूमौ मूत्रपुरीषोत्सर्ग अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्गः । अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितस्याहृदाचायपूत्रोपकरणस्य गन्ध-

इत दोनोको साधु इमरक लिय घारोकि कुनप्याए करना षोडशोद्यम् ह । घोटनाको लिय हुए नि सार कछ भी बहुत वकबास करना मौख्य ह । प्रयोजनका विचार किय बिना मर्यादाक बाहर अधिक काम करना असमीक्ष्याधिकरण ह । उपभोग परिमाणक लिय जितनी वस्तुकी आवश्यकता ह वह अय ह उसस अनिरिकन अधिक वस्तु रक्ता उपभोगपरिभोगानयक्य ह । इस प्रकार य अनर्थपञ्चधिरनिघनक पाँच अतिचार ह ।

काययोगदुष्प्रणिधानं, वचनयोगदुष्प्रणिधानं, मनोयोगदुष्प्रणिधानं, अनादर और

स्मृतिका अनुपस्थानं य सामायिकं षटकं पाँच अतिचारं ह ॥ ३३ ॥

तीन प्रकारक योगका अभावान किमा जा चुका ह । उतका घुरी तरहस चल्त रहना योगदुष्प्रणिधान ह जा तीन प्रकारका ह—कायदुष्प्रणिधानं वचनदुष्प्रणिधानं और मनोदुष्प्रणिधानं । उल्साह का म हाना अनुत्साह ह और वही अनादर ह । तथा एकाघटाका न हाना स्मृत्यनुपस्थान ह । इन प्रकारक सामायिक षटक पाँच अतिचार ह ।

अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित भूमिमें उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित वस्तुका आदानं,

अप्रत्यवेक्षित अप्रमाजित संस्तरका उपक्रमण, अनादर और स्मृतिका अनुपस्थान ये

श्रोत्रोपवास षटके पाँच अतिचार ह ॥ २४ ॥

जाब ह या नही ह तय प्रकार औपम्य रचना प्रत्यवेक्षण कहलाता ह और कामक उपकरणस जा प्रवाहन माया जाता ह वह प्रमाजित कहलाता ह । निगध मुक्त दन दाना पदोंका उत्सर्ग आदि अगत तान पदाग सम्बन्ध होना ह । यथा—अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितायाग आदि । बिना ग्या और बिना प्रमाजित भूमिमें मूत्र मूत्रा ग्याग करना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितोत्सर्ग ह । अरुहण और आचायां पुराण

(१)—नायक—आ दि १ दि २ । (२)—प्रकृत मो—दृ । (३)—दृष्टि—मु । (४)—स्मृति—दृ ।

(५)—जातिनपूरीआ दि १ दि २ ।

मायधूपादेरात्मपरिधानाद्यथस्य च वस्त्रादेरादानमप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितादानम् । अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितस्य प्रावरणादे सस्तरस्योपक्रमण अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितसस्तरोपक्रमणम् । मुदम्भान्तिस्त्वादावश्यकेष्वनादरोऽनुत्साह । स्मृत्यनुपस्थान व्याख्यातम् । त एते पञ्च प्रोपधोपवामस्यातिचारः ।

सच्चित्तसम्बन्धसम्मिथामिपववृष्यकवाहाराः ॥ ३५ ॥

सह चित्तेन वतते इति सच्चित्तचेतनावद् द्रव्यम् । तदुपश्लिष्ट सम्बन्ध । तद्द्रव्यसिद्धि कीण सम्मिथ । नथ पुनरग्न्य सच्चित्तान्पि प्रवृत्ति ? प्रमादसम्मोहाम्याम् । द्रव्यो वृष्यो वामिपव । असम्यक्पक्वो वृष्यपक्व । एतेराहारो विशोप्यते—सच्चित्ताहार सम्बन्धाहार सम्मिथ्राहारोऽमिपवाहारो वृष्यकवाहार इति । त एते पञ्च भोगोपभोगपरिसंख्यान स्यातिचारः ।

सच्चित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्स्यकालातिक्रमा ॥ ३६ ॥

सच्चित्ते पक्षपत्रादौ निक्षेप सच्चित्तनिक्षेप । अपिधानमावरणम् । सच्चित्तेनैव सम्बन्धते

उपकरण गन्ध माला और धूप आदिको तथा अपन ओड़न आन्तिक वस्त्रादि पदार्थोंकी बिना वस्त्र और बिना परिमाणन किय हुए ल रत्ना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितानान ह । बिना वस्त्र और बिना परिमाणन किय हुए प्रावरण आन्ति सन्तरका भिछाना अप्रत्यवेक्षिताप्रमाजितसस्तरोपक्रमण ह । भूखस पीडित होनक कारण आवश्यक कार्योम अनुत्साहित होना अतावर ह । स्मृत्यनुपस्थानका व्याख्यान पहल किया ही ह । इस प्रकार य प्रोपधोपवाम व्रतके पाँच अतिचार हैं ।

सच्चित्ताहार, सम्बन्धाहार, सम्मिथ्राहार, अमिपवाहार और वृष्यकवाहार ये उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ ३५ ॥

जो चित्त सहित ह वह सच्चित्त कहलाता ह । सच्चित्त स चेतना सहित द्रव्य सिया जाता ह । इसस सम्बन्धको प्राप्त हुआ द्रव्य सम्बन्धाहार ह । और इसम मिथित द्रव्य सम्मिथ ह ।

पक्व—ग्रह गूठल्य सच्चित्तादिकर्म प्रवृत्ति किस कारणस करता ह ?

समाधान—प्रमाद और सम्मोहक कारण ।

द्रव वृष्य और अमिपव इनका एक अर्थ ह । जो ठीक तरहम नहीं पका ह वह वृष्यपक्व ह । य पाँचो पद आहारक विभाषण ह या इनस आहार पाँच प्रकारका ह । यथा—सच्चित्ताहार सम्बन्धाहार सम्मिथ्राहार अमिपवाहार और वृष्यकवाहार य सब भोगोपभोग परिमख्यान व्रतके पाँच अतिचार ह ।

सच्चित्तनिक्षेप, सच्चित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम ये अतिथिमविभाग व्रतके पाँच अतिचार हैं ॥ ३६ ॥

सच्चित्त कमलपत्र आदिम रत्नना सच्चित्तनिक्षेप ह । अपिधानका अर्थ भाँकना ह । इस व्रतको

(१)—नि स्यात् ? प्रमा—म् ।

सच्चित्ताविधानमिति । अन्यदातृदेवापण परव्यपदेश । प्रयच्छन्तोऽप्यादराभावोऽन्यदातृ  
गुणासहन वा मात्सयम् । अकाले भोजन कालातिक्रम । त एते पञ्चातिथिसविभाग  
शीलातिचारा ।

जीवितमरणाशसाभिन्नानुरागसुखानुबन्धनिवानानि ॥ ३७ ॥

१ आशसनमाशमा आकाङ्क्षा क्षणमित्यय । जीवित च मरण च जीवितमरणम् जीवित  
मरणस्याशस जीवितमरणाशसे । पूवसुहृत्नहपासुक्तीडनाद्यनुस्मरण मित्रानुराग । अनु  
भूतप्रीतिविशयस्मृतिमन्वाहार मुखानुबन्ध । भोगाकाङ्क्षा नियात दीयते चित्त  
तस्मिन्स्तेनेति वा निदानम् । त एत पञ्च सल्लेखनाया अतिचारा ।

१ अत्राह उक्तं भवती तीयकरत्वकारणकर्मनिबन्धेन शक्तिस्तस्यागतपसी इति  
पुनश्चोक्त शीलविधान अतिथिसविभाग इति । तस्य दानस्य लक्षणमनिर्ज्ञाति तदुच्यता  
मित्यत आह—

अनुग्रहाय स्वस्यातिसर्गो दानम् ॥ ३८ ॥

स्वपरोपकारोऽनुग्रहः । स्वोपकार पुष्पसचय परोपकार सम्यग्ज्ञानादिवृद्धि ।

१ श्री मन्त्रित शस्त्रम जीवित्वा चाहिय जिसम सच्चित्ताविधानका मन्त्रित करुणपत्र आदिस शोकना यह  
अथ फलित होना ह । इस दानकी वस्तुका वाता अन्य छ यह कह कर वना परव्यपदेश ह । दान करत  
हुए भी आदरका न होना या दूसर शताक गुणोंको न सह सकना मात्सय ह । मित्राकासक सिवा दूसरा  
काक अनाह ह और उसमें भोजन कराना कालातिक्रम ह । य सब अतिथिसविभाग शीलव्रतक पाँच  
अतिचार हैं ।

जीविताशमा, मरणाशमा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान ये

सल्लेखनाक पाँच अतिचार हैं ॥ ३७ ॥

१ मायासाका मय चाहता ह । जीवनकी चाह करना जीविताशमा ह और मरणका चाह करना मरणा-  
शमा ह । पहले मित्राक साथ पाँचुक्तीडन आदि नाना प्रकारकी श्रेष्ठाण की रही उनका स्मरण करना  
मित्रानुराग ह । अनुभवमें आय हुए विविध सुखोंका पुन-पुन स्मरण करना मुखानुबन्ध ह । भोग  
काशाना जिसमें या जिसके कारण जित्त नियमम दिया जाता ह वह निषान ह । य सब सल्लेखनाक पाँच  
१ अतिचार ह ।

तीयकर पदक कारणभूत आश्रयक कारणोना बचन करत समय दानिपुत्रक त्याग और ठा  
कहा पुन पाँचोंका बचन करत समय अतिथिसविभाग व्रत कहा परन्तु दानका त्याग अमीउक प्रात  
नहीं हुआ इत्ययि शमका स्वल्प वदनामक मिय आगया गूत कहत ह—

अनुग्रहके लिय अपनी वस्तुका त्याग करना ठान है ॥ ३८ ॥

१ स्वय भागना और दूसरका उदारता करना अनुग्रह ह । दान दमम पुष्पना सबव हाता ह यह जना

स्व'गन्ता घनपर्यायवचन । अनुग्रहाथ स्वस्यातिमगम्यागो णन वेन्तितव्यम् ।

अत्राह—उक्त दानं तत्किमविशिष्टफलमाहास्विदस्मिन् कश्चित्प्रतिविशेष इत्यत आह—

विधिद्रव्यवात्पात्रविशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

प्रतिग्रहात्क्रमो विधि । विशेषा गुणकृत । तस्य प्रत्येकमभिमन्त्रवच त्रियस—  
विधिविशेषो द्रव्यविशेषो वात्विशेष पात्रविशेष इति । तत्र विधिविशेष प्रतिग्रहादिप्ला  
दरानान्तरकृतो भेद । तपस्वाध्यायपरिवृद्धिहेतुत्वादिद्रव्यविशेष । अनमूयाविपादान्ति  
दानविशेष । माक्षनारणगुणमयाग पात्रविशेष । ततश्च पुष्यफठविशेषे क्षित्वादि  
विशेषाद् बीजफलविशेषवत् ।

इति तत्त्वापवृत्तो सर्वाधिमिद्धिमञ्जिकाया सप्तमाध्याय समाप्त ।

उत्कार ह तया बिन्हें दान दिया जाता ह उनका सम्मान आत्तिका वृद्धि होगी ह यह परका उपकार ह ।  
सूत्रम आय भुग स्वघाणका अम घन ह । तात्पर्य यह ह कि अनग्रहक त्रिय जा घनका अतिमग अधिन्  
रयाग किया जाता ह वह णन ह ।

दानका स्वरूप कहा तब भी उमका फल एकमा होना ह या उममें कुछ विगायना ह यह वतगानक  
त्रिय अत्र आगका सूत्र कहन ह—

विधि, देय घस्तु दाता और पात्रकी विशेषतासे उमकी विशेषता है ॥ ३० ॥

प्रतिग्रह आत्तिका क्रम ह कह विधि ह । विगायना गणम आती ह । दम दिगाय घाणका  
बिदि आत्तिका प्रत्येक घाणक माय जोड़ लता आत्तिका । यथा—विधिविशेष द्रव्यविशेष णानाविशेष और  
पात्र विगाय । प्रतिग्रह आत्तिका में जात्र और अनान्तर हानम आ भन होता ह वह विधिविगाय । क्रिमम  
तप और स्वाध्याय आत्तिका वृद्धि होता ह वह द्रव्यविगाय ह । अनमूया बी-विपात्तिका न हाता  
तानाकी विगायना ह । तथा मादाक भारणभूत गुणाम युक्त गठना पात्रका विगायना ह । जय वृद्धि  
आत्तिका विगायना हानम उमम उरत्र हूय बीमम विगायना आ जानी ह कय ही विधि आदिबकी विगायना  
म णानम प्राणक हानकाल पुण्य फलमें विगायना आ जानी ह ।

दम प्रकार सर्वाधिमिद्धि नामक तत्त्वापवृत्तिसप्तमाध्याय समाप्त ह आ ।



## अथाष्टमोऽध्याय

व्याख्यात आसन्नवपत्नाय । तन्तन्तरोद्देशभावव्यवधानाय इत्यादीं व्याख्येय । तस्मि  
न्याख्येय मति पूव वचनहनुपयास क्रियत तत्पूर्वत्वाद् वचस्यति—

मिथ्यादशनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव ॥ १ ॥

- ५ मिथ्यादशनादय उक्तता । क्व ? मिथ्यादशान तावदुक्तम् तत्त्वायश्चद्धाने सम्प्रदशनम्  
इत्यत्र तत्प्रतिपक्षभूतम् आसन्नवविधाने च क्रियासु व्याख्यात मिथ्यादशनक्रियेति । विर  
तिरुक्ता । तत्प्रतिपक्षभूता अविरतिप्रहिद्या । आज्ञाव्यापानक्रिया अनाकाङ्क्षाक्रियेत्यनयो  
प्रमादस्यान्तर्भाव । स च प्रमात् कुशलेष्वनात्तर । कषायान् क्रोधादय अनन्तानुबध्य  
प्रत्याख्यानप्रत्याख्यानमज्जलनविकल्पा प्रोक्ता । क्व ? 'इन्द्रियकषाया इत्यत्रव ।  
१ योगा कायात्त्रिविकल्पा प्रोक्ता । क्व ? 'कायवाङ्मन कम योग इत्यत्र ।

## आठवाँ अध्याय

आसन्नवपत्नायका व्याख्यान क्रिया अथ उक्त वाद कह गय वच पदायका व्याख्यान करना चाहिये ।  
उक्तका व्याख्यान करत हुए पहल बन्धक कारणाँ का निर्दोष करत हें कयो कि वच तत्पूर्वक होता ह—

मिथ्यादशने अविरति, प्रमाद, कषाय और योग सं बंधके हेतु हैं ॥ १ ॥

- १३ मिथ्यादशन आँका व्याख्यान पहल किया जा चुका ह ।  
पत्ना—इतका व्याख्यान पहल कहाँ किया ह ?  
तत्त्वायश्चद्धाने सम्प्रदशनम् इस सूत्रमें सम्प्रदशनका व्याख्यान किया ह । मिथ्यादशन उक्तका  
उक्त ह अथ इसमें उक्तका भी व्याख्यान हो जाता ह । या आसन्नवका कषय करत समय पक्षय  
क्रियाओंम मिथ्यादशनका व्याख्यान किया ह । विरतिका व्याख्यान पहल कर आय ह । उक्तका उक्ती  
२ अविरति लनी चाहिये । प्रमादका अन्तर्भाव आज्ञाव्यापानक्रिया और अनाकाङ्क्षाक्रिया इन दोनोंम  
हो जाता ह । अष्ट कार्योंम करतमें आसन्नभावका स होना मह प्रमाद ह ।  
कषाय कायात्त्रिविक ह त्रि अथ तानुबन्धी अत्र्याख्यान प्रत्याख्यान और मज्जलनक मेदस अन्त  
प्रकारक ह । इतका भी पहल कषय कर आय हें ।

पत्ना—रही पर ?

- २२ समाधान— ई द्विवरणाया द यात्रि मुत्रका व्याख्यान करत समय ।  
तथा कायात्त्रिक भस्म तीन प्रकारक यागका व्याख्यान भी पहल कर आय हें ।

पत्ना—रही पर ?

समाधान— कायवाङ्मन कम योग त्रय मत्रमें ।

(१) अज्ञान इत्यत्र वा वि १ वि २ ।

मिथ्यादशन द्विविधम् नैसर्गिक परोपदेशपूर्वक च । तत्र परोपदेशमन्तरेण मिथ्यात्व कर्मोन्वयवशाद् यदाविभवति तत्स्वार्थाश्रयानलक्षण सन्ननर्गिकम् । परापदेशनिमित्त चतुर्विधम् क्रियात्रियावाद्यज्ञानिकवनयिकविकल्पात् । अथवा पञ्चविध मिथ्यादशनम्— एकान्तमिथ्यादशन विपरीतमिथ्यादशन सशयमिथ्यादशन वनयिकमिथ्यादशन अज्ञानिकमिथ्यादशन चेति । तत्र इदमेव इत्यमवेति घमिधमयोरभिनिवेश एकान्त । “पुरुष एवेष्ट सवम्” इति वा नित्य एव वा अनित्य एवेति । सग्रन्था निग्रन्थ भेदली कवलाहारी स्त्री सिध्यतीत्यवमादि विषयः । सम्पन्नानज्ञानचार्ित्राणि किं मोक्षमागं स्याद्वा न वेत्यमतरपक्षापरिग्रह सशय । मयदेवताना सवसमयाना च समदशन वनयिकम् । हिताहितपरीक्षाविरहाज्ञानिकत्वम् । उक्तञ्च—

“अमिदिसं दं किरियाण अकिरियाणं वह य होइ सुलसीदी ।

सचट्टमण्णाणीण वेणइयाणं तु वणीम ॥”

अथिरतिद्वादशविधा पटकायपट्करणविषयभदात् । पाठय कपाया नव नोकपायी

मिथ्यादशन दो प्रकारका है—नैसर्गिक और परोपदेशपूर्वक । इनमें जो परोपदेशक बिना मिथ्या दशन कर्मक उन्वयस जीवादि पदार्थोंका अश्रयानरूप भाव हुना है वह नैसर्गिक मिथ्यादशन है । तथा परोपदेशक निमित्तम होनेवाला मिथ्यादशन चार प्रकारका है—क्रियावाची अक्रियावाची अज्ञानी और वनयिक । अथवा मिथ्यादशन पाँच प्रकारका है—एकान्त मिथ्यादशन विपरीतमिथ्यादशन सशयमिथ्यादशन वनयिक मिथ्यादशन और अज्ञानिक मिथ्यादशन ।

यही है इसी प्रकारका है इस प्रकार घम और घर्मोंम एकान्तरूप अमिधाय रचना एकान्त मिथ्या दशन है । जस यह सब जग परगृह्य रूप ही है या सब पक्षा अनित्य ही है या नित्य ही हैं । सग्रन्थका निग्रन्थ मानना कवलीको कवलाहारी मानना और स्त्रा सिद्ध होती है इत्यादि मानना विषय मिथ्या दशन है । सम्पन्नदशन सम्पन्नान और सम्पन्नचार्ित्र य तीनों मिल कर क्या मोक्षमाग है या नहीं इस प्रकार किसी एक पक्षको स्वीकार नहीं करना सशय मिथ्यादशन है । मय देवता और सब मतोंका एक समान मानना वनयिक मिथ्यादशन है । हिताहितकी परीक्षा रहित होना अज्ञानिक मिथ्यादशन है । कहा भा है—

त्रियावाशियाण एकमी अग्नी अक्रियावाशियाणं जोगमी अज्ञानियाणं मग्गयं और वनयिकाक वतोम मरु है ।

छत्रकायक जीवोंकी दया न करनेम और छह इत्यादि विषयभदम अथिरति वारह प्रकारकी होती है । सोलह कपाय और नौ नोकपाय य पञ्चम कपाय है । यद्यपि कपायाम

(१)—आनिवे-२ । (२) अज्ञानिमिथ्या-२ । (३) इति वा नियमवेति घ., दि १ दि २ भा । (४) या कय पा २७६ । (५)—याय च पा २७६ । (६) मत्तपट्णा-२ । (७)—याया विपुं-दि वि ९, भा ।

स्तथामीषद्भेदो न भद इति पञ्चविंशति कपायाः । चत्वारो मनोयोगाश्चत्वारो वाग्योगाः  
पञ्च काययोगा इति त्रयोदशविकल्पो योगः । आहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगो  
प्रमत्तसयते सम्भवात्पञ्चदशार्थे भवन्ति । प्रमादोऽनकविधेः शुद्धघटकात्मकमादि  
विषयभेदात्<sup>१</sup> । त एत पञ्च वचनहृतव समस्ताः व्यस्ताश्च भवन्ति । सत्तथा—

५ मिथ्यादृष्ट पञ्चापि समुत्तिता बन्धहृतयो भवन्ति । सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग् मिथ्यादृ  
ष्टसयतसम्यग्दृष्टीनामविरत्याप्यश्चत्वारः । सयतासयतस्याधिरतिविरतिमिथ्या प्रमाद  
कपाययोगाश्च । प्रमत्तमयतस्य प्रमादकपाययोगाः । अप्रमत्तादीनां चतुर्णां योगकपायौ ।  
उपशान्तकपायक्षीणकपायसयोगकेवलिनामक एव योगः । अयोगकेवलिनो न बन्धहेतुः ।

उक्ता बन्धहृतवः । इदानीं बाधो वभस्तव्य इत्यत आह—

१ सकपायस्वास्त्रीयः कमणो योग्यानुबुद्गलानाबन्धो स बन्धः ॥ २ ॥

सह कपायण वतत इति सकपायः । सकपायस्य भावः सकषायत्वम् । तस्मात्सकपाय  
त्वादिति । पुनर्हेतुनिर्देशं जट्टराग्न्याशयानुरूपाहारग्रहणवत्तीव्रमन्दमध्यमकपायाशयानुरू

नोकपायार्थे षोढा मद ह पर बह यहाँ विवक्षित नहा ह इत्यस्य सबको कपाय कहा ह । चार मनोयोग  
चार बचनयोग और पांच काययोग य योगक तरहू भद ह । प्रमत्तसयत गुणस्थानम आहारक ऋषि  
१५ घारी मुनिक आहारककाययोग और आहारक मिश्रकाययोग भी सम्भव हें इस प्रकार योग पन्द्रह ही  
होत ह । शुद्धघटक और उत्तम क्षमा आदि विषयक मत्तस प्रमाण अनेक प्रकारका ह । इस प्रकार  
य मिथ्यादर्शन आदि पाँचों मिलकर या पृथक् पृथक् बन्धक हेतु ह । सुकामा इस प्रकार ह—

मिथ्यादृष्टि जीवक पाचो ही मिर कर बन्धक हेतु ह । सासादनसम्यग्दृष्टि सम्मिथ्यादृष्टि  
और अविगतसम्यग्दृष्टिक अविरति आदि चार बन्धक हेतु ह । समतासयतक विरति और अविरति म  
२ दानों मिश्रक तथा प्रमाण कपाय और योग य बन्धक हेतु ह । प्रमत्तसयतके प्रमाद कपाय और  
योग य तीन बन्धक हेतु ह । अप्रमत्तममन आदि चारक योग और कपाय य दो बन्धके हेतु ह ।  
उपशान्तकपाय क्षीणकपाय और सयोगकबन्धी इनक एक यांग ही बन्धका हेतु ह । अयोगकबन्धी  
बन्धका हेतु नहीं ह ।

बन्धक हेतु कह । अब बन्धका कषय करना चाहिय इसलिय आगका सूत्र कहत ह—

२५ कपाय सहित होनेसे जीव कर्मके योग्य पुद्गलोंको ग्रहण करता है वह बन्ध है ॥२॥

कपायक साथ रहता ह इसलिय सबपाय कहलाता ह और सकपायका भाव सकपायत्व ह । इस  
अर्थान् सकपाय होनाम । यह हेतुनिर्देश ह । जिस प्रकार जट्टराग्निक आशयक अनुरूप आहारका ग्रहण

(१)—एग सबलि आ रि १ रि २ । (२)—नेकविष पञ्चकमिमिनिप्रिगुणिगुडप-मु आ  
रि १ रि ३ । (३)—मगन् । शुद्धघटकम्याप- भावरायबिनयवीरबमिधायमिठानमसमानकवाता  
गुडयोनी इगवसता कम-क । त एते म् आ रि १ रि २ । (४)—निहम विमर्षम् ? जट्ट-मु रि १ ।

पस्थित्यनुभवविशेषप्रतिपत्त्यर्थम्' । अमूर्तिरहस्त आत्मा कथं कर्मदत्त इति चोदितं सन्  
 'जीव इत्याह । जीवनाज्जीव' प्राणधारणादायु सम्बन्धाभायुविरहाण्टि । 'कमयोग्यान्'  
 इति लघुनिर्देशात्सिद्धं कमणो योग्यान् इति 'पृथग्विभक्त्युच्चारण वाक्यान्तरभाषनाथम् ।  
 किं पुनस्तद्वाक्यान्तरम् ? कमणो जीव' सकृपायो भवतीत्येकं वाक्यम् । एतदुक्तं भवति—  
 'कमण' इति हेतुनिर्देशं कमणो हेतोर्जीव सकृपायो भवति नाकमकस्य कपायलेपोऽस्ति ।  
 ततो जीवकमणोरनादिसम्बन्ध इत्युक्तं भवति । तेनामूर्तो जीवो मूर्तेन कमणा कथं वध्यते  
 इति चोद्यमपाकृतं भवति । इतरथा हि बन्धस्यादिमत्त्वे आत्यन्तिकीं शुद्धिं दधत सिद्ध  
 स्येव बन्धाभावः प्रसज्येत । द्वितीयं वाक्यं कमणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते इति । अथवशाद्  
 विभक्तिपरिणाम इति 'पूर्वहेतुसम्बन्धं त्यक्त्वा पट्टीसम्बन्धमुपति कमणो योग्यान्' इति ।  
 'पुद्गल'वचनं कमणस्तादात्म्यस्यापनाथम्' । तेनात्मगुणोऽप्युपट्टो निराकृतो भवति तस्य  
 संसारहेतुत्वानुपपत्तेः । आदत्ते इति हेतुहेतुमद्भावस्यापनाथम् । अतो मिथ्यादर्शनाद्या

होता ह उसी प्रकार तीव्र मन्द और मध्यम कपायाद्ययक अनुस्य ही स्थिति और अनुभाग होता ह ।  
 इस प्रकार इस विषयपताका ज्ञान करानक स्थिय सूत्रमें सकृपामत्वात्' इस पदद्वारा पुन हेतुका निवेदन  
 किया ह । अमूर्ति और बिना हाथवाला आत्मा कर्मको कस ग्रहण करता ह । इस प्रश्नका उत्तर दनक  
 अभिप्रायस सूत्रमें जीव' पद कहा ह । जीव शब्दका व्युत्पत्तिरुभ्य अथ ह—जीवनाज्जीव—ओ जीवा ह  
 मर्षति ओ प्राणोंको धारण करता ह जिसक आयुका सद्भाव ह आयुका अभाव नहीं ह वह जीव ह ।  
 सूत्रमें कमयोग्यान्' इस प्रकार लघु निवेदन करनस काम चल जाता फिर भी कमणो योग्यान्'  
 इस प्रकार पृथक विभक्तिका उच्चारण वाक्यान्तरका ज्ञान करानक स्थिय किया ह ।

यह वाक्यान्तर क्या ह ? कमणो जीव सकृपायो भवति यह एक वाक्य ह । इसका यह अभिप्राय  
 ह कि कमण यह हेतुपरक निर्देश ह । जिसका अर्थ ह कि कमक कारण जीव कपायसहित  
 होता ह । कर्मरहित जीवक कपायका रूप नहीं होता । इस जीव और कर्मका अनादि  
 सम्बन्ध ह यह बंधन निष्पन्न होता ह । और इस अमूर्त जीव मूर्त कमक साथ कस  
 बधता ह इस प्रश्नका निराकरण हो जाता ह । अन्यथा बन्धनो सादि मानन पर आत्यन्तिक शुद्धि  
 को धारण करनकाल सिद्ध जीवक समान समारी जीवक बधका अभाव प्राप्त होता ह ।

कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्त यह दूसरा वाक्य ह क्योंकि अथक अनुसार विभक्ति बदल जाती  
 है इसस्थिय पहल ओ हृत्कथम विभक्ति थी यह अब कमणो योग्यान्' इस प्रकार पट्टी धपको प्राप्त  
 होती ह ।

सूत्रम पुद्गल पद कमक साथ तादात्म्य दिक्मान के स्थिय दिया ह । इसम अदृष्ट आत्माका गुण  
 ह इस ज्ञानका निराकरण हो जाता ह क्योंकि उस आत्माका गुण मानन पर वह संसारका कारण नहीं  
 बन सकता । सूत्रम आदत्त पद हेतुहेतुमद्भावका स्थापन करनक स्थिय किया ह । इसम मिथ्यादर्शन

वेशादाद्रीकृतस्यात्मनः सत्त्वतो योगविशेषात्तेषां सूक्ष्मकक्षेत्रावगाहिनामनन्तानन्तप्रदेशानां पुद्गलानां कमभावयोग्यानामविभागोनापश्लेषो वक्ष्य इत्याख्यायते । यथा भाजनविशेषः प्रक्षिप्तानां विविधरसश्रीजपुष्पफलानां मदिराभावेन परिणामस्तथा पुद्गलानामप्यात्मनि स्थितानां योगकषायवशात्कमभावेन परिणामो वेदितव्यः । स वचनमन्यनिवृत्त्ययम् ।

१ स एव वक्षो नान्याऽस्तीति । तत्र गुणगुणिवन्धो निर्वर्तितो भवति । कर्मादिसाधनो 'वक्ष्य' शब्दो व्याख्ययः ।

आह किमयं वक्ष्य एकरूप एव आहोस्वित्प्रकारा अप्यस्य सन्तीत्यत इदमुच्यते—  
प्रकृतिस्त्वित्यमुभवप्रवेशास्तद्विषयः ॥ ३ ॥

प्रकृतिः स्वभावः । निम्बस्य का प्रकृतिः ? तिक्तता । गुडस्य का प्रकृतिः ? मधुरता ।  
१ तथा ज्ञानावरणस्य का प्रकृतिः ? अर्थावगमः । दशनावरणस्य का प्रकृतिः ? अर्थानाला

आदिक अभिनिबन्धनं गीर्णं कियं गय आत्माक सब अबन्धाओंमें योग विषयसे उन सूक्ष्म एक क्षेत्रावगाही अन्तःजानत कमभावका प्राप्त होत योग्य पुद्गलका उपस्लप होना बन्ध हू यह कहा गया हू । जिस प्रकार पात्रविशेषमें प्रक्षिप्त हुए विविध रसवाले बीज फल और फलोंका मन्दिरारूपसं परिणमन होता हू उन्ही प्रकार आत्मामें स्थित हुए पुद्गलोंका भी योग और कषायक निमित्तसं कर्मरूपसे परिणमन जानना चाहिये । मूलमें स पद अन्यथा निराकरण करनक लिय विद्या हू कि यह ही बन्ध हू अन्य नहीं । त्वम गुणगुणीक वका निराकरण हो जाता हू । यहाँ बन्ध धारणा कर्मादि साधनमें व्याख्यान कर सना चाहिये ।

विशेषण— त्वम मूलमें मूलरूपसं वक्षकी व्याख्या की गई हू । जीव त्वम्यथा स्वतन्त्र अस्तित्व हांत हुए भी अनादि कालसं बहु कर्मोंक आधीन हो रहा हू जिससं उस तत्र नाशक आत्मा नाना गतियोंमें परिणमन करना पन्ता हू । प्रश्न यह हू कि जीव कर्मोंक आधीन क्या होता हू और उन कर्मोंका स्वभाव क्या हू ? प्रश्न मूलमें इन दोनों प्रश्नोंका समर्थ उत्तर लिया गया हू । मूलमें बतलाया गया हू कि कर्मोंक कारण जीव कषायविहित होता हू और इससं उसक कमक योग्य पुद्गलका उपस्लप होता हू । यही वक्ष्य हू । इससं दो बातें कल्पित होती हू । प्रथम तो यह कि कमक निमित्तसे जीवमें अनुदता आता हू और त्वम अनुदताक कारण कमका बन्ध हाता हू और दूसरी यह कि जीव और कर्मका यह बन्ध परस्पर स अनानि हू । इस प्रकार वक्ष्य क्या हू और बहु विम कारणम होता हू यह बात इस मूलमें जानी जाती हू ।

यह वक्ष्य क्या एत हू या इससं भद हू यह बतलान त लिय आगवा मूल कहत हू—

उपकं प्रकृतिः, स्थितिः, अनुभवः और प्रदणं ये चार भेद ई ॥ ३ ॥

प्रतिज्ञा अथ स्वभावः हू । जिस प्रकार नीमकी क्या प्रतिज्ञा हू ? बट आपन । गुरकी क्या प्रतिज्ञा हू ? मीठापन । उन्ही प्रकार ज्ञानावरण कम की क्या प्रतिज्ञा हू ? अथवा ज्ञान स हाता । दशनावरण

कनम् । वेधस्य मदसल्लक्षणस्य सुखदुःखसवेदनम् । दघनमोहस्य तत्त्वार्थाश्रद्धानम् । चारित्रमोहस्यासयम् । आयुषो भवधारणम् । नाम्नो नारकोत्तिनामकरणम् । गात्रस्थो भवर्त्तच स्थानमशान्तम् । अन्तर्गायस्य दानादिविघ्नकरणम् । तदेवलेक्षण काम-प्रक्रियते प्रभवत्यस्या इति प्रकृति । तत्त्वभावादप्रच्युति स्थिति । यथा—अजागोमहिष्यान्क्षी राणां माधुयस्वभावादप्रच्युति स्थिति । तथा ज्ञानावरणादीनामर्षाविगमात्स्वभावाद प्रच्युति स्थिति । सद्रमविशपोऽनुभव । यथा—अजागोमहिष्यान्क्षीराणा तीव्रमन्नादि भावेन रसविशेष । तथा कमदुपुद्गलानां स्वगतमामस्यविशपोऽनुभव । इयतावधारण प्रदेश । कमभावपरिणतपुद्गलस्व घाना परमाणुपरिच्छेदेनावधारण प्रदेश । विधि दात् प्रकारवचन । त एते प्रकृत्यादयश्चत्वारस्तस्य वेधस्य प्रकारा । तत्र यागनिमित्तौ प्रकृतिप्रदेशौ । कपायनिमित्तौ स्थित्यनुभवौ । तत्प्रकृतिप्रकृतिमेदासद्व्यवविचित्रभाव । तथा चोक्तम्—

“योगो पयष्टि-पयसा टिदिअणुमागा कसायदो कुणदि । ,  
अपरिणदुष्छिण्णेषु य बंधद्विदिकारण पत्थि ॥”

कर्मकी क्या प्रकृति ह ? अर्थात् आलाकन नही होना । मूल-दुःखका सबदन कराना साता और असाता वेद नोयकी प्रकृति ह । तत्त्वभावा अज्ञान न होना तथा दघनमोहकी प्रकृति ह । असयमभाव चारित्रमाहकी प्रकृति ह । भवधारण आयु कर्मकी प्रकृति ह । नारक आत्ति नामकरण नामकर्मकी प्रकृति ह । उष्ण और तीव्र स्थानका मशान्त गोत्र कर्मकी प्रकृति ह तथा दानादिमें विघ्न कर्मा अन्तराय कर्मकी प्रकृति ह । इन प्रकारका काय किया जाता ह अर्थात् जिमम होता ह वह प्रकृति ह । जिमका जो स्वभाव ह उमम स्थित न होना स्थिति ह । जिम प्रकार बकरी गाय और भेस आदिक दूषका माधुयस्वभावत स्थित न होना स्थिति ह । उमी प्रकार ज्ञानावरण आत्ति कर्मकी अथवा ज्ञान न होना आत्ति स्वभावत स्थित न होना स्थिति ह । इन कर्मोंक रमविधायका नाम अनुभव ह । जिम प्रकार बकरी गाय और भेस आत्तिक दूषका अलग-अलग तीव्र मन् आदि रमविधाय हाता ह । उमी प्रकार कम पुद्गलोंका अलग अलग स्वगत मानस्यविधाय अनुभव ह ; तथा इयताका अवधारण करना प्रदय ह । अर्थात् कमरूपम परिणत पुद्गलस्व घोषा परमाणुआकी ज्ञानकारी कर्ष निदधय करना प्रदयवच ह । विभि दात् प्रकारकाचो ह । य प्रकृति भात्तिक चार उम कल्पक प्रकार ह । तन्मैंग यागन निमित्तम प्रकृतिवच्य और प्रदयवच्य हाता ह तथा कपायक निमित्तम स्थितियच और अनुभववच्य हाता ह । योग और कपायम त्रमा प्रकृतिप्रदयमत्र हाता ह उमक अनुसार वच्य भी माना प्रकारका हाता ह । क्या भी ह—  
यह जोक यागम प्रकृति और प्रदय कल्पका तथा कपायम स्थिति और अनमाग कपायका करता ह । विन्नु जो तीव्र याग और कपायरूपम परिणत नहा ह और जिमक याग और कपायका उच्छ्र हो गया ह तबक कमवच्यती स्थितिरा कारण महा पाया जाता ॥

विधायक—य मृत्रम वच्य चार भन्ना निमित्त किया ह । साम्यगयिक भाव्यकम जा भी कम

तत्राद्यस्य प्रकृतिवचस्य भदप्रदशनाद्यमाह—

आद्यो ज्ञानदशनावरणवेदनीयमोहनीयामुर्धामगोष्ठान्तरामा ॥ ४ ॥

आद्य प्रकृतिवचो ज्ञानावरणाद्यष्टविकल्पो वेदितव्य । आवृणोत्यात्रियतेऽनेनति वा आवरणम् । तत्प्रत्येकमभिसम्बध्यते—ज्ञानावरण दशनावरणमिति । वेदयति वदति इति वा वेदनीयम् । मोहयति मोहयतेऽनेनति वा मोहनीयम् । एत्यनेन नारकात्मिव

वैयता ह उस हम इन चार रूपोंमें वदत है । बंध हुए कर्मका स्वभाव क्या है स्थिति कितनी है अपन स्वभावानुसार वह न्यूनधिक कितना काम करणा और आत्मास कितने प्रमाणमें व किस रूपमें वह बन्ध को प्राप्त होता है । यही वे चार प्रकार हैं । कमक इन चार प्रकारोंक मुख्य कारण दो हैं—योग और कर्माय । योगक निमित्तसे प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध होता है तथा कर्मायक निमित्तसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध होता है । इसका अर्थ है कि जहाँ योग और कर्माय नहीं है वहाँ कमबन्ध भी नहीं है । कर्माय दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है । ग्यारहवें गुणस्थानमें जीव कर्मायरूपसे परिणत नहीं होता और बारहवें गुणस्थानमें उसका उच्छेद अर्थात् अभाव है इसलिये इस जीवके स्थितिबन्ध और अनुभाग बन्ध दसवें गुणस्थान तक ही होता है । आग ग्यारहवें बारहवें और तरहवें गुणस्थानमें मद्यपि साठा वदनीयका बंध होता है पर वहाँ कर्माय न होनेसे उसका प्रकृति और प्रवेशबन्ध ही होता है । यहाँ प्रश्न होता है कि यदि इन गुणस्थानोंमें साठावेदनीयका विना स्थितिक बन्ध होता है तो उसका आत्माक साध अवस्थान कैसे होगा और यदि विना अनुभागक बन्ध होता है तो उसका विपाक नातारूप क्या होगा ? समाधान यह है कि इन गुणस्थानोंमें ईयपिथ आस्य होनेसे कम आत है और चल जात है । उनका दो तीन आदि समम तक अवस्थान नहीं होता । इसलिये तो यहाँ स्थितिबन्धका निषेध किया है और अनु भाग भी कर्मायक निमित्तसे प्राप्त होनेवाले अनुभागसे यहाँ प्राप्त होनेवाला अनुभाग अनन्तगुणा हीन होता है इसलिये यहाँ अनुभागवच का भी निषेध किया है । योग तरहवें और कर्माय दसवें गुणस्थान तक जाता है इसलिये स्थिति और अनुभागबन्ध १ वें तक और प्रकृतिबन्ध और प्रदेशबन्ध ११ व तक जात है । अयोगिकबन्धी गुणस्थानमें योगका अभाव है इसलिये वहाँ किसी प्रकारका भी बन्ध नहीं जाता । इस प्रकार यहाँ बन्धके नष्ट और उनका कारणोंका विचार किया ।

अथ प्रकृतिबन्धक भद दिग्गणक किय भागका सूत्र कहत है—

पदसा अर्थात् प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायरूप है ॥ ४ ॥

आत्माक प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरणादि आठ प्रकारका जतना चाहिये । जो आवृण करणा है या जिनक द्वाग भावुन किया जाता है वह आवरण कहलाता है । यह प्रत्येकके साथ सम्बन्धको प्राप्त होना है यथा—ज्ञानावरण और दर्शनावरण । जो वदत करता है या जिनक द्वाग बदा जाता है वह वेदनीय कम है । जो माहित करता है या जिनक द्वाग मोहा जाता है वह मोहनीय कम है । जिनक द्वाग नाम

मित्यायुः । नमयस्यात्मानं नम्यतेऽनेनेति वा नाम । उच्चनीचश्च गूयते शब्दत इति वा शोत्रम् । दातृदेयादीनामन्तरं मध्यमेतीत्यन्तराय । एकेनात्मपरिणामेनादीयमाना पुद्गला ज्ञानावरणाद्यनेभ्यो भेद प्रतिपद्यन्ते सकृदुपभुक्ताप्रपरिणामरसरुधिरादिवत् ।

आह उक्ता मूलप्रकृतिवर्धोऽष्टविधः । इदानीमुत्तरप्रकृतिवर्धो वक्तव्य इत्यत आह—

पञ्चमवद्विषष्टाविंशतिषतुद्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चमेवा यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

द्वितीयग्रहणमिह क्तव्यं द्वितीय उत्तरप्रकृतिवन्ध एवविनल्प इति ? न क्तव्यम् पारिशेष्यात्सिद्धे । आद्यो मूलप्रकृतिवर्धोऽष्टविकल्प उक्तः । ततः पारिशेष्यादयमुत्तर प्रकृतिविकल्पविधिमवति । भेदशब्द पञ्चादिभियथाक्रममभिसम्बध्यत—पञ्चभेद ज्ञानावरणीय नवभेद दशनावरणीय द्विभेद वेदनीय अष्टाविंशतिभेद मोहनीय चतुर्भेदमायुः द्विचत्वारिंशद्भेद नाम द्विभेद शोत्रं पञ्चभेदोऽन्तराय इति ।

यदि ज्ञानावरणं पञ्चभेदं तत्प्रतिपत्तिरुच्यतामित्यत आह—

मांसभूतावधिममपययकेवलानाम ॥ ६ ॥

आदि मक्को जाता ह बहु आयुः कम ह । जो आत्माको नमता ह या जिसको द्वारा आत्मा नमता ह वह नामकम ह । जिसको द्वारा जीव उच्च नीच गूयत अर्थात् कहा जाता ह बहु शोत्र कम ह । जो दाता शीर वय आदिका अन्तर कराता है अर्थात् वीचम जाता ह बहु शोत्र कम ह । एक बार न्याय गय अन्नका जिस प्रकार रम रुधिर आदि रूपस अन्नक प्रकारका परिणमन होता ह उसी प्रकार एक आत्म-परिणामके द्वारा ग्रहण क्रिये गये पुद्गल ज्ञानावरण आदि अन्नक सर्वोको प्राप्त होत ह ।

मूल प्रकृतिवन्ध आठ प्रकारका कहा । अब उत्तर प्रकृतिवन्धका कथन करत है—

आठ मूल प्रकृतियोंके अनुक्रमसे पाँच, नौ, दस, अद्वाइस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद हैं ॥ ५ ॥

शका—यहाँ द्वितीय पदका ग्रहण करना चाहिय जिससे मालूम पडे कि द्वितीय उत्तर प्रकृतिवन्ध इतन प्रकारका ह ?

समाधान—सही करना चाहिये क्यों कि पारिभाष्य न्यायसे उसकी मिथि हा जाती ह । आग्निका मूल प्रकृतिवन्ध आठ प्रकारका बहु आयु ह । इसलिये पारिभाष्य न्यायसे व उत्तर प्रकृतिवन्धक भेद समझन चाहिये । भेद शब्द पाँच आदि शब्दाक साथ यथाक्रमसे सम्बन्धको प्राप्त होता ह । यथा—पाँच भेदवाला ज्ञानावरण नौ भेदवाला ज्ञानावरण दस भेदवाला वेदनीय अद्वाइस भेदवाला मोहनीय चार भेदवाला आयु ब्यालीस भेदवाला नाम दो भेदवाला शोत्र और पाँच भेदवाला अन्तराय ।

यदि ज्ञानावरण कम पाँच प्रकारका ह तो उसका ज्ञान कराना ह अन्न आगका भूत्र कहत ह—

मतिज्ञान, भुवज्ञान अवधिज्ञान मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान इनको आवरण करनेवाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं ॥ ६ ॥

(१)—दुपुष्पा—आ दि १ दि २ तत्, नत् । (२) मूल-प्र-मु ।



मत्यादीनि ज्ञानानि व्याख्यातानि । तेषामावृतेरावरणभेदो भवतीति पञ्चोत्तर  
 प्रकृतयो वेत्तिव्या । अत्र चोद्यते—अमध्यस्य मनःपययज्ञानशक्तिः केवलज्ञानशक्तिरथ  
 स्याद्वा न वा ? यदि स्यात् तस्यामध्यत्वाभावः । अथ नास्ति तत्रावरणद्वयकल्पना व्यर्थेति ।  
 उच्यते—आवेशवचनात्प्र दौष । इत्यादिदेशान्मनःपययनेवल्ज्ञानशक्तिसम्भवः । पर्याय-  
 २ धादशात्तच्छक्त्यभावः । यद्यपि भव्यामव्यविकल्पो नोपपद्यते उभयत्र तच्छक्तिसद्भा-  
 वात् ? न शक्तिभावाभावापक्षया भव्यामव्यविकल्प इत्युच्यते । कुतस्तर्हि ? व्यक्ति-  
 सद्भावामद्भावापक्षया । सम्यग्दर्शनादिभिः व्यक्तियस्य भविव्यति स भव्यः । मस्य तु न  
 भविव्यति साऽभव्य इति । कनकेत्तरपापाणवत् ।

मनि आनि ज्ञानोका व्याख्यान कर आय ह । उनका आवरण करनस आवरणोंमें भव होता ह  
 १ इत्यस्य ज्ञानावरण कमकी पाँच उत्तर प्रकृतियों जानना चाहिये ।

शका—अमध्य औपक मनःपययज्ञानशक्ति और केवलज्ञानशक्ति होती ह या नहीं होती । यदि  
 होती ह तो उसके अमध्यपना नहीं घनता । यदि नहीं होती ह तो उसके उक्त दो आवरण-कर्मोंको  
 कल्पना करना व्यर्थ ह ?

समाधान—आशय वचन होनस कोइ दौष नहीं है । अमध्यक इत्याधिक मयकी अपेक्षा मन  
 २३ पययज्ञान और केवलज्ञान शक्ति पाई जाती ह पर पर्यायाधिक मयकी अपेक्षा उसके उसका अभाव ह ।

शका—यदि ऐसा ह तो भव्यामव्य विकल्प नहीं बन सकता है क्योंकि दोनोंक मनःपययज्ञान और  
 केवलज्ञान शक्ति पाई जाती ह ?

समाधान—शक्तिके सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षा भव्यामव्य विकल्प नहीं कहा गया ह ।

शका—तो किस आधारस यह विकल्प कहा गया है ?

२ समाधान—व्यक्तिकी सद्भाव और असद्भावकी अपेक्षा यह विकल्प कहा गया ह । किन्तु  
 कनक पदार्थ और इतर पापाजकी तरह सम्यग्दर्शनादि रूपस व्यक्ति होगी वह भव्य ह और अज्ञ  
 नहीं होगी वह अमध्य है ।

विधानार्थ—यहाँ ज्ञानावरण कमक पाँच उत्तर-अर्थोंका निद द्वा किया गया ह । मूक में ज्ञान एक  
 ह । उसके य पाँच भद्र आवरणकी विशेषतास प्राप्त होत है । यद्यपि टीकामें इस विषयका स्पष्टीकरण  
 २४ करनक विषय मूक और मध्यादसका उदाहरण दिया गया ह । वहाँ बतलाया ह कि जिस प्रकार अग्नि  
 मयन मध्यादस मूकको आच्छादित करत है तो भी अतिमन्य मूक किरणें मध्यादसमेंसे प्रसृजित होती  
 रहती ह उसी प्रकार कनकज्ञानावरण कमके द्वारा ज्ञानक आवृत होनपर भी कुछ न कुछ ज्ञानोद्य प्रसृ-  
 त्त होना रहता ह और उसीको आवृत करनस चार उत्तर आवरण कम प्राप्त होत ह । इस प्रकार कुल  
 ३ ज्ञानावरण कम पाँच ह जों भव्य और अमध्य दोनों क पाय जात ह । धातु में मध्य और अमध्य  
 मक्षा रूप विचारकी अपेक्षा धी गई ह । जीव क ये भद्र इसी अपेक्षा से जानत चाहिये । उन मनों

आह उक्तो ज्ञानावरणोत्तरप्रकृतिविकल्प । इदानीं दशनावरणस्य वक्तव्य इत्यत आह—

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृह्यद्वय ॥ ७ ॥

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानामिति दशनावरणापेक्षया भेदनिर्देश — चक्षुदशनावरणम चक्षुदशनावरणमवधिदशनावरण केवलदशनावरणमिति । मदस्यदकलमविनाशनाथ स्वापो निद्रा । तस्या उपरि वृत्तिनिद्रानिद्रा । या क्रियाऽऽत्मान प्रचलयति सा प्रचला शाकत्रम मदादिप्रमवा आसौनस्यापि नेत्रगात्रविक्रियासूचिका । सब पुनपुनरावतमाना प्रचला प्रचला । स्वप्न यमा वीयविषापाविर्भाव सा स्त्यानगृह्णि । स्त्यायतेरनकायत्वात्स्वप्नाय इह गृह्यते गृह्यरपि दीप्यते । स्त्याने स्वप्ने गृह्यति दीप्यते यदुदयात्मा रौद्र बहुकम करोति सा स्त्यानगृह्णि । इह निद्रादिभिदशनावरण सामानाधिकरष्येनामिसम्बध्यते—निद्रा

का अन्य कोह निमित्त नहीं ह । वन्व दो प्रकार का होता ह—एक वन्व वह जो सन्तान की अपेक्षा अनादि अनन्त होता ह और दूसरा वह जो अनादि सान्त होता ह । जिन जीवोंक कमका अनादि-अनन्त वन्व होता है व अभग्य कहलात है और जिनक अनादि घात वग्य होता है व भग्य मान गय है । इसलिय सकित सब जीवोंक एकसो होकर भी उसक ब्यक्त होनेमें आगर हो जाता ह । शास्त्रमें इस भेदको समझानक लिय कनकपापाण और अचपापाण उन्हा हरण रूपम उास्विन किये गय ह सो इस दुष्णान्तस भी उक्त कथनकी ही पुष्टि होता ह । इस प्रकार ज्ञानावरण कमक पाँच भव क्यों हैं इस बातका कुलासा किया ।

ज्ञानावरण कमके उत्तर प्रकृतिविकल्प कहे । अब दशनावरण कमक कहन चाहिय इसलिय आग का सूत्र कहत हैं—

चक्षुदर्शन, अक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन इन चारोंके चार आवरण तथा निद्रा निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचला प्रचला और स्त्यानगृह्णि ये पाँच निद्रादिक ऐसे नौ दर्शनावरण हैं ॥ ७ ॥

चक्षु अचक्षु अवधि और कबकका दशनावरणकी अपेक्षा भन्निर्देश किया ह । यथा—जबदशना वरण अक्षुदशनावरण अवधियदशनावरण और कबकदशनावरण । मद लव और पश्चिममन्व्य पकावत्को दूर करनेके लिय तौद मना निद्रा ह । इसकी उत्तरोत्तर प्रकृति हाना निद्रानिद्रा ह । जो दोक यम और मद आदिने कारण उत्पन्न हुई ह और जो वड हुए प्राणीक भी नत्र गात्रकी विक्रिया की सूचक ह एसी जो क्रिया आत्माको चलायमान करती ह वह प्रचला ह । तथा उमीकी पुन पुन आवृत्ति होना प्रचलाप्रचला ह । जिनक निमित्तस स्वप्नमें वीयविषापावता आविर्भाव होता ह वह स्त्यानगृह्णि ह । स्त्यायति घानुक अनक अय हैं । उनमेंम यहाँ स्वप्न अय किया गया ह और गृह्णि दीप्यत सो स्वप्नमें प्रदाल्य होनी ह स्त्यानगृह्णि का ब्युत्पत्तिरन्वय अर्थ ह—स्त्यान स्वप्न गृह्यति घानुका दीप्यि अय किया गया ह । अर्थात् जिनके उदयम आत्मा रौद्र बहु कम करता ह वह स्त्यानगृह्णि

(१) वर्णमाना आ रि १, रि २ । (२) स्वप्नेति यथा पृ ४ भा, रि १ रि २ ।

वधनावरण निद्रानिद्रादशनावरणमित्यादि ।

तृतीयस्या प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिप्रतिपादनायमाह—

सवसद्वेषे ॥ ८ ॥

यदुन्म्याहेवादिगतियु शारीरमानसमुत्प्राप्तिस्तत्सद्वेषम् । प्रशस्त वेद्य सद्वेषमिति ।

५ यत्फलं यु स्वमनेकविधं तदसद्वेषम् । अप्रशस्तं वद्यमसद्वेषमिति ।

चतुर्थ्या प्रकृतेरुत्तरप्रकृतिविकल्पनिदशनायमाह—

वशनचारित्रमोहनीयाकषायकषायबेवनीयास्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्व

मिध्यात्स्वतद्बुभयाम्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयभुगुप्तास्त्रोपुम्न

पुसकषेदा अनन्तामुग्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसञ्चलनयिक-

१ स्याद्व्यकशः क्षोभमानमायालोभा ॥ ९ ॥

ह । यहाँ निद्राविषयोंके साथ वधनावरण पदका समानाधिकरण रूपसे सम्बन्ध होता है । यथा—  
निद्रावधनावरण निद्रानिद्रावधनावरण आदि ।

विषयार्थ—यहाँ वधनावरण कर्मके नौ भेद गिनाये हैं । दर्शनके कुछ भेद आर ह उनको अपरा  
प्रारम्भिक आर भेद गिनाये हैं । निद्राविक सामान्य आवरण कम हैं पर ससारी जीवन पहलु र्भनोप  
२४ योग होता है और य निद्राविक उस उपयोगमें बाधक है इसलिये इन निद्रा आदि पांच कर्मोंको वधना  
वरणक भवामें परिगणना की जाती है । इससे वर्धनावरण कर्मके नौ भेद सिद्ध होते हैं ।

सद्वेष और असद्वेष ये दो वेदनीय हैं ॥ ८ ॥

जिनके उदयस वनादि गतियोंमें शरीर और मन सम्बन्धी सुखकी प्राप्ति होती है वह सद्वेष है ।  
प्रशस्त वचना नाम सद्वेष है । जिनके फलस्वरूप अनक प्रकारके दुःख मिलते हैं वह असद्वेष है । अत्र  
२ समस्त वेद्यका नाम असद्वेष है ।

विषयार्थ—यहाँ वदनीय कर्मके दो भेद गिनाये हैं । यह जीवविषाकी वम है । जीवना साता  
और अनातारूप परिणाम इसके उदयके निमित्तस होता है । अन्यत्र बाह्य सामग्रीको इसका फल  
बना है पर वह उपचार कचन है । वस्तुतः बाह्य सामग्री साता और असाताक उदयमें निमित्त है  
इसलिये बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति वदनीय कर्मका फल नहीं माना जा सकता । दबगति नरकगति और  
२४ भोगभूमिमें बाह्य सामग्रीकी प्राप्तिका कारण तत्तत्पर्यायिकी लक्ष्या है और वमभूमिमें बाह्य  
सामग्रीकी प्राप्तिके अनक कारण है । इस प्रकार वदनीय कर्मके दो भेद और उनका वाय जानना  
आहिय ।

अत्र चौथी मूल प्रकृतिक उत्तर प्रकृति विषय दिग्गमानन लिय आगना सूत्र कहते हैं—

१ दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अरूपायवदनीय और कषाय वेदनीय इनके क्रमसे धीन,  
दो, नी आर सोलह भेद हैं । सम्यक्त्व मिध्यात्स्व और तद्बुभय य तीन दर्शनमोहनीय हैं,  
अरूपायवेदनीय और कषायवेदनीय ये दो चारित्र मोहनीय हैं । हास्य, रति, अरति, शोक,

दशनायश्चत्वारः श्यादयोऽपि । तत्र यथासंख्येन सम्बन्धो भवति—दशानमोहनीय त्रिभेदम् चारित्रमाहनीय द्विभेदम् अक्षपायवेदनीय नवविधम् क्षपायवन्नीय पौडगविध मिति ।

तत्र दशानमोहनीय त्रिभेदम्—सम्यक्त्व मिथ्यात्व तदुभयमिति । तद् घञ प्रत्येक भूत्वा सत्कर्मपक्षेया त्रिधा व्यवतिष्ठते । तत्र यस्योदयात्सवज्ञप्रणीतमागपरामुल्लसत्त्वाद्यद्वा ननिरुत्सुको हिताहितविचारासमर्षो मिथ्यादृष्टिर्भवति तन्मिथ्यात्वम् । तदेव सम्यक्त्व दृग्भपरिणामनिरुद्धस्वरस यदौदासीन्येनावस्थितमात्मन श्रद्धान न निरुणद्धि तद्भेदयमान पुरुष सम्यग्दृष्टिरित्यभिधीयते । तदेव मिथ्यात्व प्रक्षालनविधेपारक्षीणाक्षीणमदगन्ति कोद्रववत्सामिदुद्धस्वर्गम् तदुभयमित्याख्यायत सम्यग्मिथ्यात्वमिति यावत् । यस्योदया दात्मनोऽयद्बुद्धमदकोद्रवौदनोपयोगापादितमिध्रपरिणामवदुभयात्मको भवति परिणाम । चाग्निमोहनीय द्विवा अक्षपायक्षपायभेदात् । इपदर्शे नञ प्रयोगादीपत्क्षपायोऽक्षपाय इति । अक्षपायवेदनीय नवविधम् । कुत ? हास्यादिभेदात् । यस्योदया दास्याविभक्तिस्तदास्यम् । यदुत्पादेधादिबौत्सुभ्य सा रति । अर्गतिस्तद्विपरीता ।

मय, ष्टुगुप्ता, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपु सक्षेप ये नौ अक्षपायवन्नीय हैं । तथा अनन्तानुषांसी, अमरपारम्पान, प्रत्याख्यान और सञ्चलन ये प्रत्येक श्लोच, मान, माया और लोमक भेदसे सोलह क्षपायवदनीय हैं ॥ ६ ॥

दशान आग्नि चार हैं और तीन आग्नि भी चार ह । इनका यथाक्रम सम्बन्ध होता ह । यथा—दशानमोहनीय तीन प्रकारका ह चारित्रमोहनीय दो प्रकारका ह अक्षपायवदनीय नौ प्रकारका ह और क्षपायवन्नीय सोलह प्रकारका ह ।

उत्तमोऽदशानमोहनीयक तीम भय है—सम्यक्त्व मिथ्यात्व और तदुभय । यह बन्धनी भयदा एक होकर सम्क्रमनी अस्था तीम प्रकारका ह । इन तीनामंगे त्रिमक उत्तमय यह जीव सबज्ञप्रणीत मागस त्रिमूल तत्त्वार्थोक्त श्रद्धान कर्तव्ये निरुत्सुक हिताहितका विचार कर्तव्ये अममय एसा मिथ्या दृष्टि होता ह वह मिथ्यात्व दशानमोहनीय ह । वही मिथ्यात्व जब दृग्भ परिणामोक्त कारण भवन स्वरम (विपाक) का रोक दनाह और उत्तमीन क्तम अभिमत रहकर आत्माक श्रद्धानको नह्रा रोचना ह तब सम्यक्त्व ह । इसका बदन कर्तव्यता पुरुष सम्यग्दृष्टि कहा जाता ह । वही मिथ्यात्व प्रक्षालन विगउक कारण क्षीपाक्षीण मदगन्तिबात् बोत्तान समान भयदुद्ध स्वर्गसत्त्वा होनपर तदुभय कहा जाता ह । इसीका दूसरा नाम सम्यग्मिथ्यात्व ह । इसक उत्तम अधगद मन्गन्तिबात् बोदो और भोदत के उत्तमंगम प्राज्ञहुए मिध परिणामक समान उत्तमामक परिणाम होता ह ।

चारित्रमाहनीय नौ प्रकारका ह—अक्षपायवदनाय और क्षपायवदनीय । यहाँ इन्द्र अर्पान् किञ्चिन् अथम नञ का प्रयोग होना किञ्चिन् क्षपायका अक्षपाय कहा ह । हास्य आग्नि मन्म अक्षपायवन्नीय क नौ भय ह । त्रिमक उत्तमय इया आनी ह वह हास्य ह । त्रिमक उत्तमय दग आदिमें

(१)—आत्मादि क्षपाय । नच च ता ना । ( )—आत्मादीनी—य । (१)—दशानिपरि—य, ता वा । ४६

यद्विपाकाच्छोचन स शोक । यदुदयादुद्वेगस्तद्भयम् । यदुदयावात्मदोषसवरण परदोषा  
विष्करण मा जुगुप्सा । यदुदयास्त्रणा भावान्प्रतिपद्यते स स्त्रीवेद । यस्योदयात्सोस्ता-  
भावानास्कन्दति स पूवेद । यदुदयाध्नापुसका भावानुपद्रजति स नपुसकवेद ।

कपायवेदनीय पोडशविधम् । कुत ? अनन्तानुबन्धादिविकल्प्यात् । तद्यथा—  
कपाया क्रोधमानमायालोभा । तेषां षतस्रोऽवस्था—अनन्तानुबन्धिनोऽप्रत्याख्याना  
वरणा प्रत्याख्यानावरणा सज्वलनादृषति । अनन्तससारकारणत्वात् मिथ्यादर्शनमनन्तम् ।  
तदनुबन्धिनोऽनन्तानुबन्धिन क्रोधमानमायालोभा । यदुदयादृशविरति सयमासयमा  
न्यामल्पामपि कर्तुं न शक्नोति ते देशप्रत्याख्यानाभाववृन्तोऽप्रत्याख्यानावरणा क्रोध  
मानमायालोभा । यदुदयाद्विरति कृस्नां सयमाख्यां न शक्नोति क्तु ते कृस्न प्रत्याख्याना  
भाववृन्त प्रत्याख्यानावरणा क्रोधमानमायालोभा । समेकीभावे वसते । सयमेन सहा  
वस्थानावेकीभूयै ज्वलन्ति सयमा वा ज्वलत्येपु सत्स्वपीति सज्वलना क्रोधमानमाया  
लोभा । त एते समुदिता सन्त पोडश कपाया भवन्ति ।

उत्सुकता होती है वह रति है । अरति इससे विपरीत है । जिसके उदयसे शोक होता है वह शोक है ।  
जिसके उदयसे उद्वेग होता है वह भय है । जिसके उदयसे आत्मदोषोंका सवरण और परदोषोंका आवि-  
ष्करण होता है वह जुगुप्सा है । जिसके उदयसे स्त्रीसम्बन्धी भावोंको प्राप्त होता है वह स्त्रीवेद है ।  
जिसके उदयसे नपुंसकसम्बन्धी भावोंको प्राप्त होता है वह पुंसवेद है और जिसके उदयसे नपुंसकसम्बन्धी  
भावोंको प्राप्त होता है वह नपुंसकवेद है ।

अनन्तानुबन्धा आदिषु विकल्पस कपायबदनीयसु सोमह भव हैं । यथा—क्रोध मान माया और  
लोभ ये कपाय हैं । इनकी चार अवस्थाएँ हैं—अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानावरणा प्रत्याख्यानावरणा  
और सज्वलन । अनन्त ससारका कारण होनेसे मिथ्यादर्शन अनन्त कहलाता है तथा जो कपाय उसके  
अनुबन्धी है वह अनन्तानुबन्धी क्रोध मान माया और लोभ है । जिनके उदयसे जिसका दूसरा नाम  
सयमासयम है एसा दशविरतिवो मह जीव स्वल्प भी करनेमें समर्थ नहीं होता है वह दशप्रत्याख्यानाको  
आवृत्त करनेवाले अप्रत्याख्यानावरणा क्रोध मान माया और लोभ है । जिनके उदयसे सयम नामवाली  
परिपूर्ण विरतिवका यह जीव करनेमें समर्थ नहीं होता है वह सकल प्रत्याख्यानाको आवृत्त करनेवाले प्रत्या  
ख्यानावरणा क्रोध मान माया और लोभ हैं । ये एकीभाव अवस्था में रहता है । सयमके साथ  
अवस्थान हास्य एक हास्य जो उबकित होत है अर्थात् कमबलत है या जिनके मद्भावेमें सयम कमबलता  
रहता है वह सज्वलन क्रोध मान माया और लोभ है । यह सब मिलकर सोमह कपाय होत है ।

विद्ययाव—माह्वानय कमरु दा भद है—दशानमोहनीय और चारित्र्यमोहनीय । जो ममीपीन दर्शन  
के हास्य बाया कम है वह दशानमोहनीय है और जो ममीपीन दर्शनके अनुकूल चारित्र्य होनेमें बायन

(१)—अप्यशीत्याचार्य वि १ वि १ । अयतोपाविष्करणो । (२)—दशानपीना भाषा—आ वि १  
वि २ । (३)—दशानपीना उष-आ वि १ वि २ न ।

न मे ते मह आरिभवात्त तिमि है । त्वोत्तमोत्तमीयत मिश्राल्प बाधित नीत भवते । मिश्राल्प सती तिन  
 धर्मेनत प्रतिपत्तय मे है । मह नीत अनादि मालम् मिश्राल्पुत्ति त्तो र्वाते । द्रव्य योग्य प्रत्याविव  
 भा । तिन मि उन पर की सती तिन धर्मेनत शब्दत प्रोवा है । सतीयवत मह शब्दत प्रका प्रतिपत्त  
 भूत मिश्राल्प नय र्मेन । अध्याय ही शोता है । साधारणत र्मेयस्य र्दततता पा ३ तन अर्धवृत्तमत्तपरिवर्तन  
 प्रवाश्र वा र र्दतत र्मेन मह शोता है द्रव्य । महत्त सती शोता । प्रलय भा उक्तय र्दतत पर शोता ही आर्तिये  
 प्रवाश्र र्मे तिमय सती है । द्रव्य भी त म ताल्प दय र्दतत पर महत्त शोता है । द्रव्यत साध प्रवयाश्र  
 साधयर्धतत । साधयर्धतता अर्धते सतीनीत धर्मेत । अतयर्धत । अतुसा र्ध्यात र्वा त्मन्ती प्राण  
 प्रतिपत्त तन र्वा अर्धी अन्वयर्धत त र्वातला धर्मेत सती तिन धर्मेत प्रोवा भवते । अत द्रव्य प्रवाश्र ।  
 साधयर्धत शोता है तन द्रव्य धर्मेत । प्रतिपत्त भूत त मे नीत भाषांम विधतत ही प्रवाता है । तिन त नाम  
 मिश्राल्प, साधयर्धत्या र्धी साधयत्त साधयर्धत्या र्धोत है । प्रवाश्रत सती योग्य है । प्रवयाश्र और  
 मीयस्य अत साधयर्ध्याश्र प्रवाश्र र्मेन है । अनौत्त सतीयर्ध्यात्त तिन परिष्कारत साधय तिमिन्त तो त  
 है और साधयत्त प्रवाश्र तिमि माला सतीनीत धर्मेतत । परिष्कारत सवाश्र सवाश्र तिमिन्त ही त है ।  
 द्रव्य प्रवाश्र तन मिश्राल्प त मे साधय र्वा तिमिन्त प्रवाश्र मीन भाषांम । अतत तो त त है द्रव्यतय  
 न मत्त । साधारणतमीयत पर शोता र्धी म सती शोता तन मीन प्रवाश्रत प्रोवा भवते । शोत  
 नीयतत प्रवयाश्र अत आरि शोत तिमि है । शोतत साधयर्धती प्रवयाश्रत र्वा र्वा साधयर्धती ही साधय  
 धर्मेत है मह प्रवाश्रत प्रवयाश्र साधय है । अत साधयर्ध्याश्र प्रवयाश्र त नो साधयर्धती ही सती सवा  
 अत साधय र्वा साधय र्धती । सती प्रवाश्र है त अतयर्धतत वा प्रवाश्र र्वा त अत तन अर्धय  
 अनाश्रत ही सवाश्र तत प्रवाश्र है । सती सवा शोतत प्रवयाश्र साधय र्वा तिमिन्त है । तो त मे द्रव्य  
 म आरिभवा शोतत साधय शोता है । सती साधयर्ध्याश्र आरिभवाश्रतमीयतत है । द्रव्य सु त अत यी है ।  
 प्रवयाश्रत तिम और अतयर्ध्याश्रतय । अतयर्ध्याश्रतयि वर्यार्धती त मे शोतत मह साधयत्त आरिभवाश्र  
 साधयर्ध्याश्रत सती है । त साधयर्ध्याश्रतय आरिभवाश्रत । अतयर्ध्याश्रतयान्ती शोत, साधय साधय और  
 शोत अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रत र्वातलाश्रतत । साधयत । नीतयत महत्त प्रवयाश्रत । सती तिन प्रवाश्र  
 द्रव्यत द्रव्य अत न अनौत्त र्वाश्रत र्वाश्रत मत्त है । अर्ध्याश्रतत त न और र्वातलाश्रतत अर्ध्याश्रतयान्ती  
 साधयर्ध्याश्रत । अर्ध्याश्रत अर्ध्याश्रतयान्ती शब्दत शोता तन र्वातलाश्रतत महत्त अत । आरिभवाश्रत अर्ध्याश्र  
 तयत है । मह सती ही साधय र्धती । अर्ध्याश्रत अत नीतयत अर्ध्याश्रतयान्ती यत शोता तो न प्रवयाश्र  
 र्ध्याश्रत यती त तिन नीतयतत र्वातलाश्रत अर्ध्याश्रतत और र्वातलाश्रतयान्ती सती प्रवाश्रत है  
 तिन अत साधयर्ध्याश्रत त मे तिमि प्रवाश्रत वा प्रवयाश्रत ही साधय भवते । द्रव्य प्रवाश्र और अर्ध्याश्रतयान्ती  
 न न्य और प्रवयाश्रत र्वातलाश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतत । त्तो साधय र्ध्याश्रतयान्ती प्रवयाश्रत तिमिन्त  
 तयत शोता है । तिन अर्ध्याश्रतत तिन तन र्वातलाश्रतत महत्त प्रवयाश्रत । अर्ध्याश्रतयान्ती प्रवयाश्रत  
 र्ध्याश्रत अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती  
 प्रवयाश्रत ही तिन अर्ध्याश्रतत प्रवयाश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती  
 प्रवयाश्रत ही तिन अर्ध्याश्रतत प्रवयाश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती  
 प्रवयाश्रत ही तिन अर्ध्याश्रतत प्रवयाश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती अर्ध्याश्रतयान्ती

मोहनीयानन्तरोद्देशभाज आयुष उत्तरप्रकृतिनिर्माणनाथमाह—

नारकतपय्योममानुषवदामि ॥ १० ॥

नारकान्पि भवसम्बन्धनायुषो व्यपदेश क्रियते । नरकेषु भव नारकमायु त्रिययो-  
निषु भव तपय्योमन् मानुषेषु भव मानुषम् देवेषु भव देवमिति । नरकेषु तीव्रशीतोष्णवदनपु  
यन्निमित्त दीघजीवन तन्नारकम् । एव शेषेष्वपि ।

आयुश्चतुर्विध व्याख्यातम् । तदनन्तरमुद्दिष्ट यन्नामकम् तदुत्तरप्रकृतिनिर्णयाथमाह—

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहननस्पृशरसगन्धवर्णानु  
पूर्व्यांगुल्लघूपघातपरधातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतय प्रत्येकशरीरप्रस  
सुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरावेयमशक्नोतिसेतराणि तीयकरत्न च । ११ ॥

निमित्त है । यही कारण है कि इन कथार्योंको आशिक्ष स्वावलम्बनका बाधक कहा है । और पूज  
स्वावलम्बनमें बाधक कारण प्रत्याख्यातावरण क्रोध मान माया और सोम मान गये हैं । सज्जन  
क्रोध मान माया और सोम स्वावलम्बनक आचरणको सर्वोप तो करत है पर बाधक नहीं हो पावे ।  
इस प्रकार मोहनीय और उसक अवान्तर भर्षोका क्या काय है इसका मही सक्षपमें विचार किया ।

मोहनीयके अनन्तर उद्देशभाज आयु कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंका विद्यव ज्ञान करानेक लिय कहत है—

नरकायु त्रियंवायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार आयु हैं ॥ १० ॥

नारक आनि गतियोंमें भवके सम्बन्धस आयुक्रमका नामकरण किया जाता है । यथा—नरकोंमें  
होनेवाली नारक आयु है त्रिययोनिवासोंमें होनेवाली त्रिययोनि आयु है मनुष्योंमें होनेवाली मानुष  
आयु है और देवोंमें होनेवाली देवायु है । तीव्र शीत और उष्ण बेदनावास नरकोंमें जिसक निमित्तसे  
दीर्घ जीवन होता है वह नारक आयु है । इसी प्रकार शय आमुओंमें भी जानना चाहिये ।

विद्यार्थ—इस प्राणोंमें आयु प्राण मुख्य है । यह जीवित रहनका सर्वोत्कृष्ट निमित्त माना गया  
है । इसक सद्भावमें प्राणोंका जीवन है और इसके अभावमें वह मरा हुआ माना जाता है । अन्ना  
दिक तो आयुको कायम रखनमें सहकारीमात्र है । भवकारण करनेका मुख्य कारण आयु कर्म ही है  
ऐसा यहाँ समझना चाहिये ।

चार प्रकारके आयुका व्याख्यान किया । इसक अनन्तर जो नामकर्म कहा गया है उसकी उत्तर  
प्रकृतियोंका ज्ञान करानेक लिय आगेका सूत्र कहत है—

गति जाति शरीर, आङ्गोपाङ्ग, निर्माण बन्धन, संघात, संस्थान संहनन, स्पृश, रस,  
गन्ध वर्ण, आनुपूर्वी अगुल्लघु उपघात परघात आतप उद्योत, उच्छ्वास और विहा-  
योगति तथा प्रतिपन्नभूत प्रकृतियोंके साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्पर्श  
और प्रस दुर्भग और सुभग दुस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ पादर भीर छल्लम, अप

यदुदयादात्मा भवान्तर गच्छति सा गति । सा चतुर्विधा—नरकगतिस्त्रियगतिमनुष्यगतिर्द्वैवैगतिश्चेति । यन्निमित्त आत्मनो नारको भावस्तन्नरकगतिनाम । एव शेषेष्वपि योज्यम् । तामु नरकादिगतिष्वव्यभिचारिणा भावक्षयेनकीकृताऽर्थात्मा जाति । तन्निमित्त जातिनाम । तत्पञ्चविधम्—एकेन्द्रियजातिनाम द्वीन्द्रियजातिनाम त्रीन्द्रियजातिनाम चतुरिन्द्रियजातिनाम पञ्चेन्द्रियजातिनाम चति । यदुदयात्मा एकेन्द्रिय इति शब्दते तदेकन्द्रियजातिनाम । एव शेषेष्वपि योज्यम् । यदुदयादात्मनः शरीरनिवृत्तिस्त्वच्छरीरनाम । तत्पञ्चविधम्—औद्योगिकशरीरनाम ब्रह्मिकशरीरनाम आहारकशरीरनाम तजसशरीरनाम कामणशरीरनाम चति । तेषां विशेषो व्याख्यात । यदुदयादङ्गोपाङ्गविवेकस्तदङ्गोपाङ्गनाम । तत् त्रिविधम्—औद्योगिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम ब्रह्मिकशरीराङ्गोपाङ्गनाम आहारकशरीराङ्गोपाङ्गनाम चति । यन्निमित्तात्परिनिष्पत्तिस्तन्निर्माणम् । तद् द्विविध—स्थाननिर्माण प्रमाणनिर्माण चेति । तज्जजातिनामोदयापेक्ष चक्षुरादीनां स्थान प्रमाण च निर्वृतयति । निर्मायतेऽनेति निर्माणम् । शरीरनामकर्मोदय

प्राप्त और पयाप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय अयश कीर्ति और यशःकीर्ति एव हीर्षकरत्व ये धयालीस नामकर्मके भेद हैं ॥ ११ ॥

जिसक उदयस आत्मा भवान्तरका जाता ह वह गति ह । वह चार प्रकारकी ह—नरकगति त्रियगति मनुष्यगति और दवगति । जिसका निमित्त पाकर आत्मामा नारक भाव होता ह वह नरकगति नामकर्म ह । इसी प्रकार शेष गतियोंमें भी योजना करनी चाहिय । उन नरकादि गतियोंमें जिस अन्वभिचारी सादृश्यस एकपन का बोध होता ह वह जाति ह । और इसका निमित्त जाति नामकर्म ह । वह पांच प्रकारका ह—एकन्द्रिय जाति नाम कर्म द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म और पञ्चेन्द्रिय जाति नामकर्म । जिसक उदयस आत्मा एकन्द्रिय कहा जाता ह वह एकेन्द्रिय जाति नामकर्म ह । इसी प्रकार चार जातियोंमें भी योजना करनी चाहिय ।

जिसके उदयस आत्माक शरीरकी रचना होती ह वह शरीर नामकर्म ह । वह पांच प्रकारका ह—औद्योगिक शरीर नामकर्म ब्रह्मिक शरीर नामकर्म आहारक शरीर नामकर्म तजस शरीर नामकर्म और कामण शरीर नामकर्म । इनका विषय व्याख्यान पढल कर आय ह । जिसक उदयस आंगोपांगका भेद होता ह वह आंगोपांग नामकर्म ह । वह तीन प्रकारका ह—औद्योगिक शरीर आंगोपांग नामकर्म ब्रह्मिक शरीर आंगोपांग नामकर्म और आहारक शरीर आंगोपांग नामकर्म । जिसक निमित्तम परिनिष्पत्ति धर्मान् रचना होती ह वह निर्माण नामकर्म ह । वह दो प्रकारका ह—स्थाननिर्माण और प्रमाण निर्माण । वह जाति नामकर्मक उदयका अवलम्बन कर चक्षु आदि अक्षयवर्षा स्थान और प्रमाणकी रचना करता ह । निर्माण धर्माका ध्युत्पत्ति एव्य अथ ह— निर्मायतेऽनेति निर्माणम् जिसक द्वारा रचना का जाती ह वह निर्माण कहलाता ह । शरीर नामकर्म क उदयस प्राप्त हुए पुद्गलोंका अन्वयोग्य



वशाद्गुपात्तानां पुद्गलानामथोयप्रदेशसङ्श्लेषणं यतो भवति तद्बन्धननाम । यदुवयादौ-  
 धारिकादिशरीराणां विवरविरहिताभ्याम्यप्रदेशानुप्रवेशेन एकत्वापादनं भवति तत्सघात  
 नाम । यदुवयादौ धारिकादिशरीराभूतिनिवृत्तिर्भवति तत्सस्थाननाम । तत् पोढा विभज्यत-  
 समचतुरस्रसस्थाननाम न्यग्रोषपरिमण्डलसस्थाननाम स्वातिसस्थाननाम कुञ्जसस्थाननाम  
 \* वामनसस्थाननाम दृण्डसस्थाननाम चेति । मस्योदयाद्यस्थियं धनविधेर्वो भवति उत्सहन-  
 नाम । तत् पृष्ठविधम्—वज्रघननाराचसहननाम वज्रनाराचसहननाम नाराचसहन-  
 नाम अघनाराचसहननाम कीलिकोसहननाम असम्प्राप्तसुपाटिकासहननाम चेति ।  
 यस्योदयात्स्पर्शप्रादुर्भावस्तत्स्पर्शनाम । तवष्टविधम्—ककशनाम मूढनाम गुधनाम लघु-  
 नाम स्निग्धनाम रूक्षनाम शीतनाम उष्णनाम चेति । यन्निमित्तो रसविकल्पस्तद्रसनाम ।  
 † तत्पञ्चविधम्—तिक्तनाम कटुकनाम कषायनाम आम्लनाम मधुरनाम चेति । यदुपयप्रभवो  
 गन्धस्तद्गन्धनाम । तद्विधम्—सुरभिगन्धनाम असुरभिगन्धनाम चेति । यद्वेतुको वण-  
 विभागस्तद्रणनाम । तत्पञ्चविधम्—कृष्णवणनाम नीलवणनाम रक्तवणनाम हारिद्रवर्ण-  
 नाम शुक्लवणनाम चेति । पूर्वशरीराकारविनाशो यस्योदयाद् भवति तवानुपूर्व्यनाम ।

प्रत्येकसंस्कारव्यसिकनिमित्तसंज्ञा होता है वह बन्धन नामकम् है । जिसके उदयसे औदारिक भावि  
 † शरीरोंकी छिद्र रहित होकर परस्पर प्रवेशके अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है वह सघात नामकम् है ।  
 जिसके उदयसे औदारिक भावि शरीरोंकी आकृति बनती होती है वह सस्थान नामकम् है ।  
 वह छह प्रकारका है—समचतुरस्रसस्थान नामकम् न्यग्रोषपरिमण्डलसस्थान नामकम् स्वातिसस्थान  
 नामकम् कुञ्जकसस्थान नामकम् वामनसस्थान नामकम् और दृण्डसस्थान नामकम् । जिसके उदयसे  
 अस्विकर्षका बन्धन विधय होता है वह सहन नामकम् है । वह छह प्रकारका है—वज्रघननाराच  
 † सहन नामकम् वज्रनाराचसहन नामकम् नाराचसहन नामकम् अघनाराचसहन नामकम्  
 कीलिकासहन नामकम् और असम्प्राप्तसुपाटिकासहन नामकम् ।

जिसके उदयसे स्पर्शकी उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकम् है । वह आठ प्रकारका है—ककश  
 नामकम् मूढ नामकम् गुध नामकम् लघु नामकम् स्निग्ध नामकम् रूक्ष नामकम् शीत नामकम् और  
 उष्ण नामकम् । जिसके उदयसे रसमें भेद होता है वह रस नामकम् है । वह पाँच प्रकारका है—तिक्त  
 † नामकम् कटु नामकम् कषाय नामकम् आम्ल नामकम् और मधुर नामकम् । जिसके उदयसे गन्धकी  
 उत्पत्ति होती है वह गन्ध नामकम् है । वह दो प्रकारका है—सुरभिगन्ध नामकम् और असुरभिगन्ध  
 नामकम् । जिसके निमित्तसे वर्णमें विभाग होता है वह वर्ण नामकम् है । वह पाँच प्रकारका है—कृष्ण  
 वर्ण नामकम् नीलवर्ण नामकम् रक्तवर्ण नामकम् हारिद्रवर्ण नामकम् और शुक्लवर्ण नामकम् ।  
 जिसके उदयसे पूर्व शरीरके आकारका विनाश नहीं होता है वह आनुपूर्व्य नामकम् है । वह चार

(१) कीलिकसं-पृ. १। कीलिक-वि २। (२)-प्राप्तसुपाटिका-आ वि १ वि २। (३)-नाम सुरभिगन्ध-  
 ना-वि-वि २। (४) हारिद्रवर्ण-पृ. १।

सत्त्वसुविषयम्—नरकगतिप्रायोग्यानुपूष्यनाम त्रियगतिप्रायोग्यानुपूष्यनाम मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूष्यनाम देवगतिप्रायोग्यानुपूष्यनाम चेति । यस्योदयादय पिण्डवद् गुस्त्वाभाघ पतति न चाकतूलवल्गुत्वाद्बुध गच्छति तद्गुणलघुनाम । यस्मोदयात्स्वयकृतीद्वयन मरुप्रपतनादिनिमित्त उपभातो भवति तदुपघातनाम । यन्निमित्त परशस्त्रादेश्याघात स्तत्परघातनाम । यदुदयाशिवृत्तमातपन तदातपनाम । तदादित्ये वतत । यन्निमित्त मुद्योतन तद्दुद्योतनाम । तच्चन्द्रबद्धोतादिषु वतत । यद्देसुरुच्छ्वासस्तदुच्छ्वासनाम । विहाय आकाशम् । तत्र गतिनियतक तद्विहायोगतिनाम । तद्विषयम् प्रशस्ताप्रशस्तम दात् । शरीरनामकर्मोदयाशिवत्यमान शरीरमेकार्थोपभोगकारण यतो भवति, सत्प्रत्येक- शरीरनाम । बहूनामात्मनामुपभोगहेतुरखेन साधारण शरीर यतो भवति तत्साधारणशरीर नाम । मदुदयाद् द्वीन्द्रियादिषु जम तत्प्रसनाम । यन्निमित्त एकेन्द्रियेषु प्रादुर्भावस्तत्स्थावर नाम । यदुत्पादयप्रोत्तिप्रभवस्तत्सुभगनाम । मदुदयाद्रूपादिगुणोपेतोऽप्यप्रोत्तिकरस्तद् दुभगनाम । यन्निमित्त मनोज्ञस्वरनिवतन तत्सुस्वरनाम । तद्विपरीत दुस्वरनाम ।

प्रकारका ह—नरकगतिप्रायोग्यानुपूष्य नामकम् त्रियगतिप्रायोग्यानुपूष्य नामकम् मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूष्य नामकम् और देवगतिप्रायोग्यानुपूष्य नामकम् । जिसक उत्पन्न ओहक पिण्डके समान गुण होनस न तो नीचे गिरता ह और न अकतूलक समान लघु होनेसे ऊपर जाता ह वह अगुणलघु नामकम् ह । जिसक उत्पन्न स्वयकृत उद्बन्धन और पहाडस गिरना आदि निमित्तक उपघात होता ह वह उप घात नामकम् ह । जिसक उदयम परशस्त्रादिकना निमित्त पाकर व्याघात होता ह वह परघात नाम कम् ह । जिसक उदयस शरीरमें आतपकी प्राप्ति होती ह वह आतप नामकम् ह । वह सुमबिन्धमें होता ह । जिसक निमित्तम शरीरमें उद्योत होता ह वह उद्योत नामकम् ह । वह कल्पबिन्ध और जुगुनु आविमें होता है । जिसक निमित्तम उच्छ्वास होता ह वह उच्छ्वास नामकम् ह । विहायस्का अथ आकाश ह । उसमें गतिना निवतक कर्म विहायोगति नामकम् ह । प्रशस्त और अप्रशस्तक भवम वह दो प्रकारका ह ।

शरीर नामकम्क उदयस रथा गया जो शरीर जिसक निमित्तम एक आत्माके उपभोगका कारण होता ह वह प्रत्येक शरीर नामकम् ह । बहुत आत्माओंक उपभोगका हेतुस्वरूपसे साधारण शरीर जिसक निमित्तम होता ह वह साधारणशरीर नामकम् ह । जिसक उत्पन्न द्वीन्द्रियादिकमें जम होता ह वह जम नामकम् ह । जिसक निमित्तम एकन्द्रियमें उत्पत्ति हाती ह वह स्थावर नामकम् ह । जिसक उदयमें अम्यजनप्रातिवर अवस्था हाती ह वह सुमग नामकम् ह । जिसक उदयस रूपादि गुणोंके मुक्त होकर ना अप्रोत्तिकर अवस्था होनी ह वह दुमग नामकम् ह । जिसक निमित्तम मनोज्ञ स्वरकी रचना हाता ह वह सुस्वर नामकम् ह । इमम विपरीत दुस्वर नामकम् ह । जिसक उत्पन्न

यदुदयाद्रमणीयत्व तच्छुभनाम । तद्विपरीतमशुभनाम । सूक्ष्मशरीरनिवतक सूक्ष्मनाम ।  
अथवाधाकरशरीरकारण यादरनाम । यदुदयादाहारादिपर्याप्तिनिवृत्ति तत्पर्याप्तिनाम ।  
तन् पञ्चविषयम्—आहारपर्याप्तिनाम शरीरपर्याप्तिनाम इन्द्रियपर्याप्तिनाम प्राणापान-  
पमाप्तिनाम भाषापमाप्तिनाम मन-पर्याप्तिनाम चेति । पञ्चविषयपर्याप्त्यभावहेतुरपर्याप्ति  
नाम । स्थिरभावस्य निवतक स्थिरनाम । तद्विपरीतमस्थिरनाम । प्रभोर्पतशरीरकारण  
मादेयनाम । निष्प्रमशरीरकारणमनादेयनाम । पुष्पगुणस्थापनकारण यशकीर्तिनाम ।  
तत्प्रत्यनीकफलमयशकीर्तिनाम । आहृत्यकारण तीक्ष्णत्वनाम ।

रमणीय होता है वह शुभ नामकम है । इससे विपरीत अशुभ नामकम है । सूक्ष्म शरीरका निवतक  
कम सूक्ष्म नामकम है । अन्य बाधाकर शरीरका निवतक कम बावर नामकम है ।

जिसके उदयसे आहार आदि पर्याप्तियोंकी रचना होती है वह पर्याप्ति नामकम है । वह छह  
प्रकारका है—आहारपर्याप्ति नामकम शरीरपर्याप्ति नामकम इन्द्रियपर्याप्ति नामकम प्राणापान-  
पर्याप्ति नामकम भाषापर्याप्ति नामकम और मन-पर्याप्ति नामकम । जो छह प्रकारकी पर्याप्तियोंके  
अभावका हेतु है वह अपर्याप्ति नामकम है । स्थिरभावका निवतक कम स्थिर नामकम है । इससे  
विपरीत अस्थिर नामकम है । प्रमायुक्त शरीरका कारण आप्त्य नामकम है । निष्प्रम शरीरका कारण  
मनादेय नामकम है । पुष्प गुणोंकी प्रसिद्धिका कारण यश कीर्ति नामकम है । इससे विपरीत फल-  
बाष्प अयश कीर्ति नामकम है । आहृत्यका कारण तीक्ष्णत्व नामकम है ।

विधाया—यहाँ नामकमकी उत्तर प्रकृतियोंके कार्योंको धरना की गई है । मूल कम आठ है ।  
उनमेंमें सात कम जीवविधाकी मान गये हैं । नामकम जीवविधाकी और पुद्गलविधानी दोनों प्रकार  
का है । जिन कमोंका विधाक जीवमें होता है व जीवविधाकी है और जिनका विधाक पुद्गलमें होता  
है व पुद्गलविधाकी है । यह इनका धारणा है । इन ध्यानमें रहते हुए इनके अर्थकी विस्तृत धरना  
करना आवश्यक है । साधारणतः सभी कम जीवनके राग द्वेष आदि परिष्कारोंका निमित्त पाकर  
बैठते हैं अतएव उनका विधाक जीवमें ही होता है । अर्थात् उनके उदयका निमित्त पाकर जीवमें तत्-  
त्प्रकारका धारणा आती है । फिर भी कमोंके जीवविधाकी पुद्गलविधाकी दोषविधाकी और सब  
विधाकी एक सब करनेका क्या कारण है यही बात यहाँ दखनी है । जीवका उत्सार जीव और पुद्गल  
एक ही कम माना जाता है । वहाँ रहते हुए वह विविध गतियोंमें जम जाता है मरता है और उनका अनु-  
सन्धाना धरनीको धारणा करता है । यह सब अज्ञानकी ही मरता इसलिये इनकी प्राणिक निमित्त-  
भूतमाना प्रकारक कम माने जाते हैं । जिनका धारणाके भवविधाकी कहा है व उस उस पर्याप्तमें अवस्थाके  
व कारण ज्ञानमें उस गताको प्राणिक जानें हैं । जिनका धारणाकी कहा है व एक गतिमें दूसरी गतिके  
लिये जान समये अज्ञानमें जीवका धारणा बनाये गता है । जिनमें पुद्गलविधाकी कहा है व माना  
प्रकारक शरीर और भावनाके प्राणिकमें गताये गता है और जो जीवविधाकी कहें जाते हैं

उक्तो नामकमण उत्तरप्रकृतिभेदः । तदनन्तरोद्देशभाजो गोत्रस्य प्रकृतिभेदो व्याख्यायते—

उच्चर्माचद्वय ॥ १२ ॥

व जीवक विविध प्रकारके परिष्कार और उसकी विविध अवस्थाओंके होनेमें सहायता करत हैं। इस प्रकार कामभेदसे कर्मोंको इन चार भागोंमें विभक्त किया गया है। वस्तुतः सभी कर्म जीवकी उस उस कर्मके नामानुरूप योग्यताके होनेमें सहायता करते हैं और उस उस योग्यतास युक्त जीव तदनुरूप काय करता है। उदाहरणार्थ—श्रीशारिक धारीर नामकमक उदयका निमित्त पाकर जीवमें एसी योग्यता उत्पन्न होनी है जिससे वह योग्यता धारीर निर्माणक लिये श्रौशारिक बगणाओंको ही ग्रहण करता है अन्य बगणाओंका नहीं। बशर्पभताराजसहनन और समचतुरस्रसत्पान नामकमक उदयका निमित्त पाकर जीवमें एसी योग्यता उत्पन्न होती है जिससे वह ग्रहण की गई औदारिक बगणाओंको उस रूपस परिणामाता है। प्रश्न यह है कि पुद्गलविपाकी कर्मोंके उत्पन्नके निमित्त पाकर यदि जीवमें कर्मोंके नामानुरूप योग्यता उत्पन्न होती है तो फिर इन्हें पुद्गलविपाकी कर्म क्या कहते हैं? क्या य कर्म जीवको माध्यम बनाकर ही अपना काम करते हैं। इनका जो काम है वह यदि सीधा माना जाय तो क्या आपत्ति है? उत्तर यह है कि जब तक जीवको औदारिक आदि नोकमवगणाका निमित्त नहीं मिलता है तब तक पुद्गलविपाकी कर्म अपना काम करनेमें समर्थ नहीं होत है। इनका विपाक पुद्गलका निमित्त पाकर होता है इसलिए इन्हें पुद्गलविपाकी कहत हैं। उदाहरणार्थ—बाइ एम जीव दो मोड़ा लेकर यदि जन्म लेता है तो उसका प्रथम और द्वितीय विग्रहक समय धारीर आदि पुद्गलविपाकी प्रकृतियांका उत्पन्न नहीं होता है। तीसरे समयमें जब वह नवीन धारीरको ग्रहण करता है तभी उसका इन प्रकृतियोंका उदय होता है। इस प्रकार विचार करनेमें ज्ञात होता है कि धारीर आदि नामकर्मकी प्रकृतियोंकी पुद्गलविपाकी सत्ता क्यों है? इसी प्रकार भवविपाकी और क्षत्रविपाकी प्रकृतियोंके सम्बन्धमें भी लुप्तासा जानना चाहिये। भवकी कारणभूत ओ आयुक्रमकी प्रकृतियां हैं और जिनका उत्पन्न तत्तन भव तक ही सीमित है इसीसे इनकी भवविपाकी सत्ता है। क्षत्रविपाकी प्रकृतियां दो भवक अन्तःकालवर्ती क्षत्रमें अपना काम करती हैं इसलिए इनकी क्षत्रविपाकी सत्ता है। यद्यपि बाह्य सुपुत्रादिक निमित्तम मातादि जीवविपाकी प्रकृतियोंका भी उदय दत्ता जाता है पर य बाह्यनिमित्त उनका उत्पन्नक अविनाभावी कारण नहीं है। तथापि इन बाह्य निमित्तोंके रहन हुए भी उनमें प्रतिकल प्रकृतियांका उत्पन्न दत्ता जाता है और तथापि इन निमित्तोंके अभावमें भी उनका उत्पन्न दत्ता जाता है मूलिण निमित्तोंकी प्रधानता न होनेम मातादि प्रकृतियोंकी जीवविपाकी सत्ता है। इस प्रकार सब कर्मप्रकृतियां कितन भागोंमें दटी हुई हैं और उनकी जीवविपाकी आत्ति सत्ता हानका क्या कारण है इसका विचार किया।

नामकमक उत्तर प्रकृतिविकल्प कह। इसका नाम कहन योग्य गोत्रकर्मके प्रकृतिविकल्पोंका व्याख्यान करत है—

उच्चगोत्र और नीचगोत्र य दो गोत्रकर्म हैं ॥१२॥

गोत्र द्विविधम्—उच्चगोत्र नीचगोत्रमिति । यस्योदयाल्लोकपूजितेषु कुलेषु जम तदुच्चगोत्रम् । यदुषयाद्गर्हितेषु कुलेषु जम' तस्त्रीचगोत्रम् ।

अष्टम्याः कर्मप्रकृतेरुत्तरप्रकृतिनिर्देशाथमाह—

दानस्त्रामभोगोपभोगवीर्याणाम् ॥ १३ ॥

अन्तरायापेक्षया भेदनिर्देशः क्रियते—दानस्यान्तरायो लाभस्यान्तराय इत्यादि । दानादिपरिणामव्याघातहेतुत्वात्तद्व्यपदेशः । यदुषयाद्गतुकामोऽपि न प्रयच्छति लब्धु कामोऽपि न लभते भोक्तुमिच्छन्नपि न भुङ्क्ते—उपभोक्तुमभिलाच्छन्नपि नोपभुङ्क्ते उत्सहितुकामोऽपि नोत्सहते स एते पञ्चान्तरायस्य भेदाः ।

गोत्रकर्म दो प्रकारका ह—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । जिसके उदयस लोकपूजित कुलोंमें जन्म होता है वह उच्चगोत्र ह । जिसके उदयस गर्हित कुलोंमें जन्म होता है वह नीचगोत्र ह ।

विशयाथ—एसा निमित्तनमित्तिक सम्बन्ध ह कि जिसके उच्चगोत्रका उदय होता है वह एस माता पिता क यहाँ जन्म लता है जहाँ सदाचार की प्रवृत्ति हो या उस और भुक्ताव हो या ऐसी प्रवृत्ति वाले व्यक्तिपोंके साथ सम्पर्क हो । और जिसके नीचगोत्र कर्मका उदय होता है वह बिच्छ प्रवृत्तिकासे माता पिताके यहाँ जन्म लता है । कुल गोत्र सन्तान और परम्परा इनका एक अब ह । परम्परा दो प्रकार से चलती है एक पुत्र पौत्र प्रपौत्रमूलक परम्परा और दूसरी आचार-विचार मूलक परम्परा । यहाँ दूसरी प्रकारकी परम्परा ली गई है । गोत्रका सम्बन्ध शरीर या रक्तसे न होकर जीवक आचार विचारस ह । गोत्रकर्मको जीवविषयी कहना कारण भी यही ह । इस प्रकार गोत्रकर्म उसक भव और उनके स्वरूपका संक्षेपमें विचार किया ।

माठमी कर्म प्रकृतिकी उत्तरप्रकृतिपोंका निर्देश करनके लिए आगया सूत्र कहत हैं—

दान स्त्राम भोग उपभोग और वीर्य इनके पाँच अन्तराय हैं ॥ १३ ॥

यहाँ अन्तरायकी अपेक्षा भवनिर्देश किया है । यथा—दानका अन्तराय लाभका अन्तराय इत्यादि । इन्हें दानानि परिणामक व्याघातका कारण होतस यह सत्ता मिली है । जिनके उदयस इनकी इच्छा करता हुआ भी नहीं देता है प्राप्त करनकी इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता है भोगनकी इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता है उपभोग करनकी इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं क सकता है और उत्साहित होनकी इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता है इस प्रकार ये पाँच अन्तरायक भेद ह ।

विशयाथ—जीवकी दान लाभ भोग उपभोग और वीर्य ये पाँच भविष्यी हैं । अन्तरायकर्म

व्याख्याता प्रकृतिवर्धविकल्पा । इदानीं स्थितिबर्धविकल्पो वक्तव्य । सा स्थिति द्विविधा—उत्कृष्टा जघन्या च । तत्र यासा कमप्रभृतीनामुत्कृष्टा स्थिति समाना तन्निर्वे-  
शायमुच्यते—

आवितस्त्रिसुणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः परा स्थिति ॥१४॥

मध्येऽन्ते वा तिसुणां ग्रहण मामूदिति आदित इत्युच्यते । 'अन्तरायस्य इति वचन ५  
व्यवहितग्रहणायम् । सागरोपममुक्तपरिमाणम् । कोटीनां कोटयः कोटीकोटयः ।  
परा उत्कृष्टेऽप्यथ । एतदुक्तं भवति—ज्ञानावरणदर्शनावरणवेदनीयान्तरायाणामुत्कृष्टा  
स्थितिस्त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटय इति । सा कस्य भवति ? मिथ्यादृष्टे सञ्ज्ञान-  
पञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्य । अन्येषामागमात्सम्प्रत्ययः कथम् ।

हृत्त पाँच जीवमावोंकी अभिव्यक्तिसमें वाक्क कारण हू यह उक्त कथनका तात्पर्य हू । कहीं कहीं अन्त १  
राय कमक क्षय व क्षयोपशमका फल बाह्य सामग्रीकी प्राप्ति कहा गया हू पर वह उपचार कथन हू ।  
तत्काल वाह्य सामग्री पर हू । उसकी प्राप्ति जीवविपाकी अन्तराय कर्मक क्षय व क्षयोपशमका फल  
नहीं हो सकता । परमें स्वका भाव मिथ्यात्वका फल हू और उसका स्वीकार कपामका फल हू एसा यहाँ  
समझना चाहिय ।

प्रकृतिबन्धक भव कहू । इस समय स्थितिबन्धके भव कहन चाहिय । वह स्थिति दो प्रकारकी १५  
हूँ—उत्कृष्ट स्थिति और जघन्य स्थिति । उनमें जिन कमप्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थिति समान हू उसका  
निर्देश करनेके लिय आगका सूत्र कहत हूँ—

आदिकी तीन प्रकृतियों अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन  
चारकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥ १४ ॥

बीचमें या अन्तमें तीनका ग्रहण न होवे इसलिय सूत्रमें आवित पद कहा हू । अन्तरायकमका २  
पाठ प्रारम्भक तीन कर्मोंके पाठस्य व्यवहित हूँ उसका ग्रहण करनेके लिय अन्तरायस्य वचन लिया हू ।  
सागरोपमका परिमाण पहलू कहू आथ हूँ । काटियोंका कोटि कांटाकाटि कहलाती हू । पर शब्द  
उत्कृष्ट शब्दा हू । उक्त कथनका यह अभिप्राय हू कि ज्ञानावरण दर्शनावरण वेदनीय और अन्तराय  
कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम होती हू ।

शका—यह उत्कृष्ट स्थिति किस प्राप्त होती हू ?

समाधान—मिथ्यादृष्टि सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय और पर्याप्तक जीवको प्राप्त होती हू । अन्य २५  
जीवोंके आगमस्य दसकर ज्ञान कर लेना चाहिय ।

विशेषाथ—कर्मोंकी स्थिति तीन प्रकारस प्राप्त होती हू—बन्धसे सक्रमस और सत्त्वस । यहाँ  
पर बन्धकी अपेसा उत्कृष्ट और अजघन्य स्थिति बतलाइ गई हू । अतितीव्र सकलस्य परिणामोंस मिथ्या

मोहनीयस्योत्कृष्टस्थितिप्रतिपत्त्ययमाह—

सप्ततिर्मोहनीयस्य ॥ १५ ॥

‘सागरोपमकोटीकोट्य’ परा स्थिति इत्यनुवर्तते । इयमपि परा स्थितिर्मिथ्या दृष्टे सन्नि पञ्चेन्द्रियस्य पर्याप्तकस्यावसेया । इतरेषां यथागममवगम क्तव्य ।

नामगोत्रयोस्तृप्तस्थितिप्रतिपत्त्ययमाह—

विंशतिर्नामगोत्रयो ॥ १६ ॥

सागरोपमकोटीकोट्य परा स्थिति इत्यनुवर्तते । इयमप्युत्कृष्टा स्थितिर्मिथ्या दृष्ट सन्निपञ्चेन्द्रियपर्याप्तकस्य । इतरेषां यथागममवबोद्धव्या ।

अमायुष कोत्कृष्टा स्थितिरित्युच्यते—

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुष ॥ १७ ॥

पुन सागरोपम ग्रहण कोटीकोटीनिवृत्त्ययम् । ‘परा स्थिति इत्यनुवर्तते । इयमपि पूर्वोक्तस्यैव । शेषाणामागमतोऽवसेया ।

पृष्टि सन्नि पञ्चन्द्रिय पर्याप्तक जीव ज्ञानावरण दधनावरण बवनीय और अन्तराय कमकी टीस कोटाकोटि सागरोपमप्रमाण उत्कृष्ट स्थिति बांधता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका ज्ञान करानक लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम है ॥ १५ ॥

इस सूत्रम सागरोपमकोटीकोट्य परा स्थिति पदकी अनुवृत्ति होती है । यह भी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्यादृष्टि सन्नि पञ्चन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ज्ञानना चाहिये । इतर जीवोंके आगमक अनुसार ज्ञान कर लना चाहिये ।

नाम और गोत्रकमकी उत्कृष्ट स्थितिका ज्ञान करानके लिये आगेका सूत्र कहत है—

नाम और गोत्रकी उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है ॥ १६ ॥

सागरोपमकोटीकोट्य परा स्थिति पदकी अनुवृत्ति होती है । यह भी उत्कृष्ट स्थिति मिथ्या दृष्टि सन्नि पञ्चन्द्रिय पर्याप्तक जीवके ज्ञानना चाहिये । इतर जीवोंके आगमक अनुसार ज्ञान करना चाहिये ।

अथ आयु कमकी उत्कृष्ट स्थिति क्या है यह बतलानक लिये आगेका सूत्र कहत है—

आयुकी उत्कृष्ट स्थिति सतीस सागरोपम है ॥ १७ ॥

इस सूत्रम पुन सागरोपम पदका ग्रहण कोटीकोटी पदकी निवृत्तिक लिये दिया है । यहाँ परा स्थिति पदकी अनुवृत्ति होती है । यह भी पूर्वोक्त जीवके ज्ञानना चाहिये । जोप जीवोंके आगमक ज्ञान सेना चाहिये ।

उक्तोत्कृष्टा स्थिति । इदानीं जघया स्थितिवक्तव्या । तत्र समानजघन्यस्थिती  
पञ्च प्रकृतीग्यम्भाप्य तिसृणा जघयस्थितिप्रतिपत्त्यय सूत्रद्वयमुपयम्यते लघ्वयम्—

अपरा द्वादश मुहूर्ता वेदनीयस्य ॥ १८ ॥

अपरा जघया इत्ययम् । वेदनीयस्य द्वादश मुहूर्ता ।

नामगोत्रयोरष्टौ ॥ १९ ॥

'मुहूर्ता' इत्यनुवतते । अपरा स्थिति' इति च ।

अवस्थापितप्रकृतिजघयस्थितिप्रतिपादनाधमाह—

शेषाणामन्तमुहूर्ता ॥ २० ॥

शेषाणा पञ्चानां प्रकृतीनामन्तमुहूर्ताऽपरा स्थिति । ज्ञानदशनावरणान्तरायाणा  
जघया स्थिति' मूकमसाम्पराये, मोहनीयस्य अनिवृत्तिवादरसाम्पराये । आयुषः सख्येय  
वर्षायुष्यु' तियक्षु मनुष्येषु च ।

विधवाय—यहाँ टीकामें आयुषमका उत्कृष्ट स्थितिबधका स्वामी मिथ्यादृष्टि कहा ह । सो  
यह स अभिप्रायस कहा ह कि मिथ्यादृष्टि सती पचन्द्रिय पर्याप्तक जीव भी नरकायु वधके योग्य  
उत्कृष्ट सकल्य परिणामक होन पर नरकायुका उत्कृष्ट स्थितिवध करता ह । इसका यह अभिप्राय  
नहीं कि अन्य गुणस्थानवालाक आयुषमका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता । देवायुका संतीक्ष मागरोपम  
उत्कृष्ट स्थितिवन्ध सकल समयक जारी सम्प्रादृष्टिक ही होता ह । पर टीकाकारन महा उसक कहन  
की बिवक्षा नहीं की ।

उत्कृष्ट स्थिति कही । अब अधन्य स्थिति कहनी चाहिये । उसमें समान अधन्य स्थितिवाली  
पाँच प्रकृतिमैके स्थिति करक षोडशमें कहनक अभिप्रायस तीन प्रकृतियोंकी अधन्य स्थितिका ज्ञान  
करणके लिये दो सूत्र कहत ह—

वेदनीयकी अधन्य स्थिति बारह मुहूर्त है ॥ १८ ॥

अपरा अर्थात् अधन्य । यह वेदनीयकी बारह मुहूर्त ह ।

नाम और गोत्रकी अधन्य स्थिति आठ मुहूर्त है ॥ १९ ॥

यहाँ मुहूर्ता पदकी अनुवृत्ति होती ह और अपरा स्थिति' पदकी भी ।

अत्र स्मृतिगण की यह प्रकृतियोंकी अधन्य स्थितिका कथन करनक लिये आगका सूत्र कहत है—

षाकीके पाँच क्रमों की अधन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है ॥ २० ॥

षा पाँच प्रकृतिमैके अन्तर्मुहूर्त अधन्य स्थिति ह । ज्ञानावरण दशनावरण और अन्तरायकी  
अधन्य स्थिति मूकमसाम्पराय गुणस्थानमें मोहनीयकी अधन्य स्थिति अनिवृत्ति वादरसाम्पराय गुण  
स्थानमें और आयुकी अधन्य स्थिति सख्येय वर्षकी आयुवासे तिर्यञ्चों और मनुष्योंमें प्राप्त होती है ।



आह, उभयो स्थितिरभिहिना । भानावरणादीनाम् अथानुभव किलक्षण इत्यत आह—  
विपाकोऽनुभव ॥ २१ ॥

विशिष्टो नानाविधो वा पाको विपाक । पूर्वोक्तकषायतीव्रमन्दादिभावास्त्रविशेषा  
द्विशिष्ट पाको विपाक । अथवा द्रव्यक्षेत्रकालभवभावलक्षणनिमित्तमेवजनितवपवस्थ्यो  
५ नानाविध पाको विपाक । असावनुभव इत्याख्यायते । शुभपरिणामानां प्रकर्षभावाच्छुभ  
प्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभव अणुमप्रकृतीनां निकृष्ट । अणुमपरिणामानां प्रकर्षभावाद्युभ  
प्रकृतीनां प्रकृष्टोऽनुभव शुभप्रकृतीनां निकृष्ट । स एव प्रत्ययवशाद्दुपात्तोऽनुभवो द्विधा  
प्रवर्तते स्वमुखेन परमुखेन च । सर्वासां मूलप्रकृतीनां स्वमुखेनधानुभव । उत्तरप्रकृतीनां  
सुख्यजातीयानां परमुखेनापि भवति आयुर्वर्षणचारित्रमोहवर्जानाम् । न हि नरकामुमुखेन  
१ निर्वयगामुमनुष्यायुर्वा विपच्यते । नापि दधानमोहवचारित्रमोहमुखेन चारित्रमोहो वा  
वर्षणमोहमुखेन ।

आह अस्म्युपम प्रागुपचितनानाप्रकारकमविपाकोऽनुभव । इयं तु न विजानीम  
किमय प्रसख्यातोऽप्रमख्यात ? इत्यत्रोच्यते प्रसख्यातोऽनुभूयत इति ब्रूमहे । कुत ? यत—

दोनां प्रकारकी निश्चिन्ति नही । अब ज्ञानावरणादिकके अनुभवका क्या स्वभाव है इतलिय आगका

१२ सूत्र कहत है—

विपाक अर्थात् विविध प्रकारके फल देनेकी शक्तिका पड़ना ही अनुभव है ॥ २१ ॥

विशिष्ट या नाना प्रकारक पाकका नाम विपाक है । पूर्वोक्त कषायोंके तीव्र मत्व आदिकरूप भावा  
स्त्रवक मत्व विशिष्ट पाकका होना विपाक है । अथवा द्रव्य क्षेत्र काल भव और भावलक्षण निमित्त  
मत्व उत्पन्न हुआ बभवरूप नाना प्रकारका पाक विपाक है । इसीको अनुभव कहत हैं । शुभ परिणामों-  
२ क प्रकर्षभावाक कारण शुभ प्रकृतियोंका प्रकृष्ट अनुभव होता है और अणुम प्रकृतियोंका निकृष्ट अनु-  
भव होता है । तथा अणुम परिणामोंक प्रकर्षभावाक कारण अणुम प्रकृतियोंका प्रकृष्ट अनुभव होता है  
और शुभ प्रकृतियोंका निकृष्ट अनुभव होता है । इस प्रकार कारणवशस प्राप्त हुआ वह अनुभव दो  
प्रकारस प्रवृत्त होता है—स्वमुखसे और परमुखसे । सब मूल प्रकृतियोंका अनुभव स्वमुखसे ही प्रवृत्त  
होता है । आयु, वर्षणमोहनीय और चारित्रमोहनीयक सिवा सुख्यजातीय उत्तरप्रकृतियोंका अनुभव  
३ परमुखसे भी प्रवृत्त होता है । नरकामुक मुखसे तिर्यग्जायु या मनुष्यायुका विपाक नहीं होता । और  
वर्षणमोह चारित्रमोहमुखसे और चारित्रमोह वर्षणमोहमुखसे विपाकको गही प्राप्त होता ।

धका—पहल सचिंत हुए नाना प्रकारक कर्मोंका विपाक अनुभव है यह हम स्वीकार करत हैं  
किन्तु यह नहीं जानत कि क्या यह प्रसख्यात होता है या अप्रसख्यात होता है ?

सपाषाण—हम कहत है कि यह प्रसख्यात अनुभवमें आता है ।

धका—किस कारण से ।

स यथानाम ॥ २२ ॥

ज्ञानावरणस्य फलं ज्ञानाभावो दशनावरणस्यापि फलं दशानशक्त्युपरोध इत्येवमाद्य-  
न्वयमज्ञाननिर्देशात्सर्वासा कमप्रकृतीना सविकल्पानामनुभवसम्प्रत्ययो जायते ।

आह यदि विपाकोऽनुभव प्रतिज्ञायते तत्कर्मानुभूतं सत् किमाभरणवदवतिष्ठते  
आहोस्विन्नप्यीतमार प्रप्यवते ? इत्यत्रोच्यते—

ततश्च निजरा ॥ २३ ॥

पीडानुग्रहावारमने प्रदायाम्यवहृतौदनादिविकारवत्पूवस्थितिक्षयादवस्थानाभावात्क-  
मणो निर्वासनिजरा । सा द्विप्रकारा—विपाकजा इतरा च । तत्र चतुगतावनेकजाति  
विषयावर्णिते ससारमहाणवे चिर परिभ्रमत शुभाशुभस्य कमणः क्रमेण परिपाककालं  
प्राप्तस्यानुभवोदयावलिक्षितोऽनुप्रविष्टस्यारखफलस्य या निवृत्ति सा विपाकजा  
निजरा । यत्कर्मप्राप्तविपाककालमौपक्रमिकक्रियाविषेपमामप्यदिनुदीणं बलादुदीर्यो  
दयावलि प्रवेक्ष्य वेद्यते आम्रपनसादिपाकवत् सा अविपाकजा निजरा । च'शब्दो निमित्ता  
न्तरसमुच्चयाथ । 'तपसा निजरा इति वक्ष्यते ततश्च भवति अयतपचेति सूत्रार्थो योजितः ।

यह जिस कर्मका जैसा नाम है उसके अनुरूप होता है ॥ २२ ॥

ज्ञानावरणका फल ज्ञानका अभाव करना है । दशनावरणका भी फल दशानशक्तिका उपरोध  
करना है इत्यादि रूपस सब कर्मोंकी सार्थक सहाका निर्णय किया है अतएव अपन अवान्तर मन्महित  
उनमें किसका क्या अनुभव है इसका ज्ञान हो जाता है ।

यदि विपाकका नाम अनुभव है एसा स्वीकार करते हो तो अनुभूत होने पर वह कर्म आभरणक  
समान अवस्थित रहता है या फल भोग करनेका बाद वह क्षर जाता है ? इस बातको बतलानेक स्थिय  
आगका सूत्र कहत है—

इसके बाद निर्जरा होती है ॥ २३ ॥

जिस प्रकार भात आदिका मस निवृत्त होकर निर्जीव हो जाता है उसी प्रकार आत्माका भला दुग  
करके पूव प्राप्त स्थितिका नाश हो जानस स्थिति न रहनेक कारण कमकी निवृत्तिका होना निजरा  
है । वह दो प्रकारकी है—विपाकजा और अविपाकजा । उनमें अनेक जाति विषय रूपी भवर मुक्त  
कार गतिरूपी समार महामुद्रमें चिरकाल तक परिभ्रमण करनेवाले इस जीवक क्रमम परिपाक काल-  
की प्राप्त हुए और अनुभवोदयावलि रूपी सोते में प्रविष्ट हुए एय शुभाशुभ कमकी फल दकर जो निवृत्ति  
होती है वह विपाकजा निर्जरा है । तथा आम और पनसको औपक्रमिक क्रियाविषय द्वारा जिस  
प्रकार अकालम पका लत है उसी प्रकार जिसका विपाककाल अभी नहीं प्राप्त हुआ है फिर भी औप-  
क्रमिक विषयविषयकी सामम्यम उत्पावलिख बाहर स्थित जो कम बलपूर्वक उदयावलिमें प्रविष्ट  
करके अनुभवा जाता है वह अविपाकजा निजरा है । सूत्रमें य शब्द अन्य निमित्तका समुच्चय करनेक  
स्थिय लिया है । तपसा निजरा य' यह आग कहेंगे इसलिय य शब्दक रनका यह प्रयोजन है कि पूर्वोक्त

(१) यस्य क्व प्र । (२) भूत किमा-भू । (३)-वृणित जा., वि १, वि २ ।

किमयमिह निजरातिर्णः क्रियते सवरात्परा निर्दोष्टव्या उद्देशवत् ? लघ्वयमिह वचनम् ।  
तत्र हि पाठे विपाकोऽनुभव इति पुनरनुवाद क्तव्य स्यात् ।

प्रकारस निजरा होती है और अन्य प्रकारस भी ।

शका—यहाँ निजराका उल्लेख किसलिय किया है क्योंकि उद्देशक अनुसार उसका सवरक बाद उल्लेख करना ठीक होता ?

समाधान—धोरेमें धोष करानक लिये यहाँ निजराका उल्लेख किया है । सवरक बाद पाठ दत्त पर विपाकोऽनुभव इसका फिरस अनुवाद करना पड़ता ।

विशेषात्—अनुभव अनुभाग या फलदानशक्ति इनका एक अर्थ है । कर्मका बन्ध होते समय जिस कर्मकी जो प्रकृति होनी है उसक अनुरूप उसे फलदानशक्ति प्राप्त होती है । उदाहरणार्थ ज्ञानावरणकी ज्ञानको आवृत्त करनकी प्रकृति है इसलिय इस इसीक अनुरूप फलदानशक्ति प्राप्त होती है । प्रकृतिका अर्थ स्वभाव है और अनुभवका अर्थ है उस स्वभावक अनुरूप उस भोगना । साधारणतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि यदि प्रकृति और अनुभवका मही अर्थ है तो इन्हें अलग अलग मानना उचित नहीं है क्योंकि जिस कर्मकी जसी प्रकृति होगी तसक अनुरूप उसका भोग सुतरां सिद्ध है । इसलिय प्रकृतिबन्ध और अनुभवबन्ध में दो स्वतन्त्र मिश्र नहीं होत किन्तु अनुभवबन्धका अन्तर्भाव प्रकृतिबन्धमें ही हो जाता है । यदि कहा जाय कि ज्ञानावरण आदि रूपस कमकी प्रकृति फलदानशक्ति क निमित्तस होती है इसलिय प्रकृतिबन्धमें अनुभवबन्धका अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता सो इसका यह समाधान है कि जब कि प्रकृतिबन्धका कारण योग है और अनुभवबन्धका कारण कर्माय है तब फिर फलदान शक्तिक निमित्तस कमकी प्रकृति बनती है यह कैसे माना जा सकता है । थोड़ी बरको यह मान भी किया जाय तब भी यह प्रश्न बढ़ा रहता है कि प्रकृतिबन्ध और अनुभवबन्धको अलग अलग क्यों माना गया है और उनक अलग अलग माननके योग और कर्माय दो स्वतन्त्र कारण क्यों बतलाय गये हैं । सूत्रकारस वचक बाद मव करक भी विपाक अर्थात् कर्मभोगको अनुभव कहा है और उसे प्रकृतिके अनुरूप बतलाया है । इसस तो मही सिद्ध होता है कि वस्तुतः म दो मही हैं किन्तु वच समयकी अपक्षा जिसका नाम प्रकृति है उदयकारकी अपक्षा उस ही अनुभव कहत हैं ? समाधान यह है कि कर्मबन्धके समय कर्मका विविधरूपस विभाग योगक निमित्तस ही होता है और विभागको प्राप्त हुए कर्मोंमें हीना धिक फलदानशक्तिका प्राप्त होना कर्मायक निमित्तस होता है इसलिय य दोनों स्वतन्त्र माने गय है । यद्यपि यह ठीक है कि बिना शक्तिक किसी कमकी प्रकृति नहीं बन सकती । स्वतन्त्र प्रकृति कहनेस उसकी शक्तिका बोध हो ही जाता है फिर भी एसी शक्तिकी एक सीमा होती है । उसका उल्लेख कर जो म्यूताधिक शक्ति पाव जाती है उसीका बोध कराना अनुभागबन्धका काम है । उदाहरणार्थ ग्यान्हें बाह्रहें और तरहें गुणस्थानमें साक्षात्कीयका प्रकृति बन्ध होता है और यह प्रकृतिबन्ध एक नियत मर्यादमें अनुभागको क्रिय हुए ही होता है फिर भी यही अनुभागबन्धका निषेध किया गया है सो इनका कारण यह है कि जो अनुभाग सत्पाय अबध्यामें साक्षात्कीयका प्राप्त होता था वह मही प्राप्त नहीं जाता । सत्पाय अबध्यामें प्राप्त होनबाल अबध अनुभागमें भी यह अनन्तमें भागमात्र

होता है। इतना कम अनुभाग सक्तपाय अवस्थामें नहीं प्राप्त हो सकता। इससे प्रकृतियवधम अनुभाग बन्धन अलग बहनकी उपयोगिता सिद्ध हो जाती है। तात्पर्य यह है कि प्रकृतियवधमें कमभक्तो स्वीकार करके भी न्यूनाधिक फलान्तरादि नहीं स्वीकार की गई है किन्तु अनुभागवधमें इसका और इसका कारणका स्वतंत्र रूपसे विचार किया जाता है इसलिये प्रकृतियवध और उसका कारण स्वतंत्र है तथा अनुभागबन्ध और उसका कारण स्वतंत्र है यह निश्चित होता है। अब रही सूत्रकारके विधानके अनुभव कहनाका बात सो इस कथनमें भी यही अभिप्राय छिपा हुआ है। सब जीवोंका विधान एक प्रकारका नहीं होता वह न्यूनाधिक दत्ता जाता है और विधाककी यह न्यूनाधिकता अकारण नहीं हो सकती। यही कारण है कि सूत्रकार अनुभवबन्धकी स्वतंत्र परिगणना करत है और उसकी पुष्टि विराकके द्वारा दिखलात है। इस प्रकार अनुभववधक्या है और उस स्वतंत्र क्यों कहा इसका विचार किया।

फिर भी यह अनुभाग वचकारमें जसा प्राप्त होता है एतान्तत वसा ही नहीं बना रहता है। अपन अवस्थान कारक भीतर यह बदल भी जाता है और नहीं भी बनता है। बदलनम इसकी तीन अवस्थाय होती हैं—सकमण उत्त्पण और अपकपण। सकमण अवान्तर प्रकृतियवधमें होता है मूल प्रकृतियवधमें नहीं होता। उममें भी आयुक्रमकी अवान्तर प्रकृतियाका सकमण नहीं होता और दधन मोहनीयका चारिमोहनीय रूपसे तथा चाग्रिमोहनीयका दधनमोहनीयरूपसे सकमण नहीं होता। सकमणक चार भक्त—प्रकृतिसकमण स्थितिसकमण अनुभागसकमण और प्रदधनसकमण। जहां प्रकृति सकमण और प्रदधनसकमणकी मुख्यता होती है वहां यह सकमण घट्ट द्वारा मनोपिन किया जाता है और जहां मात्र स्थितिसकमण और अनुभागसकमण होता है वहां यह उत्त्पण और अपकपण घट्ट द्वारा मनोपिन किया जाता है। वचकारमें जो स्थिति और अनुभाग प्राप्त होता है उममें कमी होना अपकपण है और घटी हुई स्थिति व अनुभागमें वृद्धि होना उत्त्पण है। इस प्रकार विविध अवस्थाओंमें स गृहणत हुए उत्त्पणकमें जो अनुभाग रहता है उसका परिपाक होता है। अनुभव अवस्थाकी प्राप्त प्रकृतियाका परिपाक उत्त्प अवस्थाको प्राप्त सत्ताया प्रकृति रूपमें होता है। सब विषयमें यह नियम है कि उत्त्पणाका प्रकृतियाका परम्भुगम मित्ता है और अनुभवका प्रकृतियाका परम्भुगम मित्ता है। उपाहरणाय—माताका उत्त्प रहत पर उसका भाग सातागम ही होता है किन्तु सब अमाता स्थितुक सकमण साग सातागम परिणमन करती है अर्थात् उसका उत्त्प परम्भुगम होता है। उत्त्प कालक एक समय पहले अनुदयत्त प्रकृतिक निपकता उत्त्पको प्राप्त हुए प्रकृति साग परिणम जाना स्थितुक सकमण है। जो प्रकृतिदा जिय कालमें उत्त्पमें नहा जाती है किन्तु मता काम विद्यमान रहता है उन गबरा प्रति समय कमी प्रकार परिणमन होता रहता है।

पाति और अघातिक भक्त अनुभाग को प्रसारका होता है। एता साग अग्नि और घट्ट यह चार प्रारणा पाति प्रकृतियवध अनुभाग है। अघाति प्रकृतियाक पुण्य और पाप गम ही भक्त है। पुण्य प्रकृतियवध अनुभाग यह साग चक्रा और अमृत एत चार भागाम घटा हुआ है तथा निम्न कांक्षा

आह अभिहितोऽनुभववधः । इहानी प्रदेशवधो वक्तव्यः । तस्मिन् च वक्तव्ये सति इमे निर्देष्टव्या—किं हतव कदा कृतं किं स्वभावा वस्मिन् किं परिमाणाश्चति ? तदथ मिद क्रमेण परिगृहीतप्रश्नापक्षभद सूत्र प्रणीयत—

नामप्रत्ययाः सयतो योगविशेषात्सूक्ष्मक्षेत्रावगाहस्थिताः

सर्वात्मप्रवेशेष्वमन्तानन्तप्रवेशाः ॥ ॥ २४ ॥

१

१

नाम्न प्रत्यया नामप्रत्यया 'नाम' इति सर्वा कर्मप्रकृतयोऽभिधीयन्त 'स यथानाम' इति वचनात् । अनेन हेतुभाव उक्तः । सर्वेषु भवेषु सवत 'वृष्यन्ते अन्यतोऽपि' इति तसि कृत सवत । अनन कालोपादान इति कृतम् । एककस्य हि जीवस्यातिश्रान्ता अनन्ता भवा आगामिन सख्याया असख्येया' अनन्तानन्ता वा भवन्तीति । योगविशेषाभिधिसात्कर्म भावन पुद्गला आदीयन्त इति निमित्तविशेषनिर्देशः कृतो भवति । सूक्ष्म आधिग्रहण कर्मग्रहणयोग्यपुद्गलस्वभावानुवतनाथम् ग्रहणयोग्या पुद्गला सूक्ष्मा न स्थूला इति । 'एकक्षेत्रावगाह' वचन क्षेत्रान्तरनिवृत्त्यथम् । स्थिता' इति वचन क्रियान्तरनिवृत्त्यथम्

त्रिप और हलाहल बहु चार प्रकारका पाप प्रकृतियोंका अनुभाग ह । इस प्रकार सामान्यरूपम अनुभाग वन्धका विचार किया ।

१२

अनुभववन्धका कथन क्रिया । अब प्रदशवन्धका कथन करमा ह । उसका कथन करत समय इतनी धाते निर्देश करन योग्य हें—प्रवसवन्धका हतु क्या ह बहु कब होता ह उसका निमित्त क्या ह उसका स्वभाव क्या ह वह किसमें होता ह और उसका परिमाण क्या ह । इस प्रकार क्रमस इन प्रश्नोंको स्पष्टप रस कर आगका सूत्र कहत हें—

कर्म प्रकृतियोंके कारणभूत प्रति समय योगविधेपसे सूक्ष्म एकक्षेत्रावगाही और स्थित

अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्मप्रदेशोंमें (सम्बन्धको प्राप्त) होते हैं ॥ २४ ॥

२

नामप्रत्यया—नामक कारणभूत कर्मपरमाणु नामप्रत्यय कहलात ह । नाम इस पद द्वारा सब कर्मप्रकृतिया कही जाती ह । त्रिसती पुष्टि 'स यथानाम' इस सूत्रवचनस होती ह । इस पदद्वारा हेतुका कथन किया गया ह । सवत—प्रवसवन्ध सब भवोंमें होता ह । सर्वेषु भवेषु इति सर्वत यह इसकी व्युत्पत्ति है । सर्व शब्दसे व्युत्पन्तऽन्यतोऽपि इस सूत्र द्वारा तसि प्रत्यय करन पर सवत पद बनता ह । इस पदद्वारा कालका ग्रहण किया गया ह । एक एक जीवक व्यतीत हुए अनन्तानन्त भव हीत है और आगामी सख्यात असख्यात व अनन्तानन्त भव हीत है । योगविशेषात्—योगविशेषरूप निमित्तस कर्मरूप पुद्गल ग्रहण किय आत ह । इस पद द्वारा निमित्तविधयका निर्देश किया गया ह । कर्मरूपस ग्रहण योग्य पुद्गलोंका स्वभाव विश्वज्ञानके सिन्ध सूक्ष्म भावि पक्षका ग्रहण किया ह । ग्रहणयोग्य पुद्गल सूक्ष्म होत है स्थूल नहीं होते । क्षेत्रान्तरका निराकरण करनेक क्रिय एकक्षेत्रावगाह' वचन किया ह ।

३३

स्थिता न गच्छत इति । 'सर्वात्मप्रदेशेषु इति वचनमाधारनिर्देशाथ नकप्रदेशादिषु कम प्रदशा वतन्ते । कथं तर्हि ? ऊर्ध्वमधस्तिथक च सर्वेष्व्वात्मप्रदेशेषु व्याप्य स्थिता इति । अनन्तानन्तप्रदेश वचन परिमाणान्तरव्यपौहायम्, न सस्येया न चामस्येया नाप्यनन्ता इति । ते खलु पुद्गलस्कन्धा अभव्यानन्तगुणा सिद्धान्तन्तभागप्रमितप्रदेशा घनाङ्गुलस्या सम्येयभागाक्षेत्रावगाहिन एकद्वित्रिचतु सस्येयासस्येयसमयस्थितिका पञ्चवणपञ्चरस २ द्विगधचतु म्पशस्वभावा अष्टविधकमप्रकृतियोग्या योगवशादात्मनाऽऽत्मसात्किन्त्यन्ते । इति प्रदेशवच समासतो वेदितव्य ।

आह वचपदार्यानन्तर पुण्यपापोपसम्भान बोधित तद्वन्धेऽन्तमूतमिति प्रत्याख्यातम् । तत्रेद वक्तव्य कोऽत्र पुण्यवच क पापवन्ध इति । तत्र पुण्यप्रकृतिपरिगणनायमिदमार म्यते—

त्रिपान्तर्की निवृत्तिके लिय स्थिता वचन दिया ह । ग्रहणयोग्य पुद्गल म्मित होते ह गमन करत हुए नहीं । आधारका निदश करनके लिय सर्वात्मप्रवशपु' वचन दिया ह । एकप्रदश आत्मि कर्म प्रवश नहीं रहत । फिर कहा रहत ह ? ऊपर नीच तिरछ सब आत्मप्रदर्शोमें व्याप्त होकर स्थित होत हैं । दूसर परिमाणका वारण करनक लिय अनन्तानन्तप्रदश वचन दिया है । यन सख्यात होसेहें न असख्यात होत हैं और न अनन्त होसे हैं । अमस्योस अनन्तगुण और सिद्धो क अनन्तवें भागप्रमाण सख्यावाधे चर्ताङ्गुलक असख्यातवें भागप्रमाण कर्त्रकी अवगाहनावाल एक दो तीन चार सख्यात और असख्यात समयकी स्थितिवाल तथा पाँच षण पाँच रस दो गध और चार स्पर्शवाल क कर्म स्कन्ध भोगविद्यपस आरमाद्वारा आत्मसात् किय जात हैं । इस प्रकार महापमें प्रदशवच जानना चाहिय ।

विशयार्थ—इस सूत्रमें प्रवेशकर्मका बिचार किया गया ह । जो पुद्गल परमाणु कर्मरूपस ग्रहण किय जाते है क ज्ञानावरण आदि आठ प्रकारस परिष्मन करत ह । उनका ग्रहण ससार अवस्थामें सदा होता रहता ह । ग्रहणका मुख्य कारण योग ह । व सूक्ष्म होत ह । जिस क्षत्रम आत्मा म्मित होता है उसी क्षत्रक कर्मपरमाणुओंका ग्रहण होता ह अन्यका नहीं । उसमें भी म्मित कर्मपरमाणुओंका ही ग्रहण होता ह अन्यका नहीं । ग्रहण किय गय कर्मपरमाणु आत्माक सब प्रवशोमें म्मित रहत हैं और क अनन्तानन्त होसे है यह इस सूत्रका भाव ह । इसस प्रवेशकर्मकी सामाय रूपरसा और उसके कारण का ज्ञान हो जाता ह ।

वच पवाचक अनन्तर पुण्य और पापकी गणना की ह और उसका वन्धम अन्तर्भाव किया ह इसलिये यहाँ यह बतलाना चाहिय कि पुण्यबन्ध क्या ह और पापबन्ध क्या ह । उसमें सबप्रथम पुण्य प्रकृतियोंकी परिगणना करनक लिय यह सूत्र आरम्भ करत है—

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम् ॥ २५ ॥

शुभ प्रशस्तमिति यावत् । तदुत्तर प्रत्येकमभिसम्बध्यते शुभमायु शुभ नाम शुभ गोत्रमिति । शुभायुस्त्रितय तियगायुमनुष्यायुर्देवायुरिति । शुभनाम सप्तत्रिंशद्विकल्पम् । तद्यथा—मनुष्यगतिर्द्वैवगति पञ्चन्द्रियजाति पञ्च शरीराणि त्रीण्यङ्गोपाङ्गानि सप्त चतुरस्रसस्थान वज्रपभनाराचसहनन प्रशस्तवणरसगन्धस्पर्शा मनुष्यदेवगत्यानुपूर्व्यद्वय मगुरुलघुपरघातोच्छ्वासातपोद्योतप्रशस्तविहायोगतयस्त्रसद्वादरपर्याप्तिप्रत्येकशरीरस्थिर शुभसुभगमुस्वरगदेययण कीतयो निर्माण तीर्षकरनाम घेति । शुभमेकमुच्चर्गात्र सद्वेद्य मिति । एसा द्वाचत्वारिंशत्प्रकृतय 'पुण्य'सञ्ज्ञा ।

अतोऽप्यस्थापम् ॥ २६ ॥

अस्मात्पुण्यसंशिक्षमप्रकृतिममहादयत्कम पापम् इत्युच्यते । तद् द्रष्टव्यमिति विधम् । तद्यथा—ज्ञानावरणस्य प्रकृतय पञ्च वशनावरणस्य नव मोहनीयस्य षड्विंशति पञ्चान्तरायस्य नरकगतितियगती चतस्रो जातयः पञ्च सम्पानानि पञ्च सहननाय

साक्षात् वेदनीय शुभ आयु शुभ नाम और शुभ गोत्र ये प्रकृतियां पुण्यरूप हैं ॥ २५ ॥

शुभका अर्थ प्रशस्त है । यह आगक प्रत्येक पक्ष साप्त सम्बन्धको प्राप्त होता है । यथा-शुभ आयु,

शुभ नाम और शुभ गोत्र । शुभ आयु तीन हैं—यिष्य आयु मनुष्यायु और देवायु । शुभ नामक सतीस भेद है । यथा—मनुष्यगति दशगति पञ्चन्द्रियजाति पाँच शरीर, तीन आंगोपांग सप्तचतुरस्रसस्थान वज्रपभनाराच सहनन प्रशस्त वण प्रशस्त रस प्रशस्त गन्ध और प्रशस्त स्पर्श मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी य दो अगुरुलघु परघात उच्छ्वास आतप उद्योत प्रशस्तविहायोगति त्रसद्वादर पर्याप्ति प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ सुभग सुस्वर आदय यशकीति निर्माण और तीर्षकर ।

एक उच्च गोत्र शुभ है और साक्षात् वेदनीय य व्याप्तीस प्रकृतियां पुण्यसञ्ज्ञक हैं ।

विधायाव—यहाँ ब्याप्तीस पुण्य प्रकृतियां गिनाई हैं । प्रशस्त परिणामोंसे जिनमें अधिक मनु भाग प्राप्त होता है व पुण्य प्रकृतियां हैं । यह स्थान इन प्रकृतियोंमें धरित होता है इसलिये य पुण्य प्रकृतियां मानो गई हैं । बन्धकी अपेक्षा कुल प्रकृतियां १२ परिगणित की जाती हैं । इसी अपेक्षासे यहाँ ब्याप्तीस गत्या निरिच्छ की गई है । यहाँ वर्णाधिकक मन्वान्तर भेद बीस ग गिना कर कुल चार भेद गिनाय है । मन्वाभ्याप्यकार आचार्य उमास्वाति न मन्मन्वप्रकृति ह्यम् रति और पुरुषवद इन चारकी भी पुण्यप्रकृतियोंमें परिगणना की है । तथा धीरमन स्वामीने जयघमसा टीनामें भा इन्द्र पुण्यप्रकृतियां गिद्ध किया है । इस प्रकार कुल पुण्यप्रकृतियां जिनती हैं हमका निर्देश किया ।

इनके विधा छप सप्त प्रकृतियां पापरूप हैं ॥ २६ ॥

यस्य पुण्यमज्ञावात् कमप्रकृतिममह्य जा भिन्न कमममूह है वह पापरूप कहा जाता है । वह ब्याप्ती प्रसारका है । यथा—ज्ञानावरणकी पाँच प्रकृतियां वानावरणका भी प्रकृतियां माहनीयकी छद्मीय प्रकृति अन्धरायता पाँच प्रकृतियां नरकगति विषयवगति चार जाति पाँच मस्थान

प्रदम्नवणरमगपम्यया नरुक्गनितितियगत्यानुपुव्यद्वयमुपपधाताप्रदम्नविहायगितिस्थायर  
 मरुमावयापिमाधारणगीगम्यिरागुभुदुभगदुस्वरानायेयायग कीतयदचिति नामप्रवृत्त  
 याननुस्मिदन् । अमद्वष्ट नरुवायुर्नोच्चर्गोत्रमिति । एव ध्याभ्याना मप्रपञ्च वधपनाय ।  
 अयधिमन पययव यल्लजानप्रत्यक्षप्रमाणगम्यम्नहुपिष्ठागमानुमय ।

इति तत्त्वापवृत्ती मर्वापमिद्धिमस्मिन्नायामष्टमाध्याय ममान् ॥८॥

५

पाप मन्तन अप्रगम्ल वण अप्रगम्ल रम अप्रगम्ल गाघ ओर अप्रगम्ल म्यग नरुक्गत्यानुपूर्वी ओर  
 गिदगत्यानुपूर्वी य ए उरपात पप्रगम्ल विहायागति स्यावर गृ ग अपर्वाणि मासाग्लगार  
 अग्दर अगुम रमग दुस्वर भनात्य ओर भयग कीति य नामकमका कीनाम प्रवृत्तिना अगता  
 पनाय नगाय ओर नोम गात्र । एम प्रगम्ल विहायक माप यथ पनायना स्याम्वान रिचा । य  
 अग्निजान मन पययजात ओर कवल्लजानरुग प्रत्यक्ष प्रमाणगम्य ह ओर एत जानवाक त्रावा द्वाग  
 अग्निज जाकमम अनुमय ।

१०

रिचाराव—एत पाप प्रवृत्तियां कीने कीने ह एतका नाम रिच व रिचा स्या । अप्रगम्ल परि  
 लाभात् रिचिगम रिचिम भिचि अनुभाग प्राप्ते राजा ह व पाप प्रवृत्तिवा । एत पाप प्रवृत्तियां कु  
 यवाग रिचा । पाप वरुपत ओर गवात एतका पाप गरागामे अन्तर्नि । राजा ह गवा मिथ्यमा  
 गाव ओर मन्तनायमात्रोप य ए पाप प्रवृत्तिया म । ओर कीर्ति बाग प्रगम्ल भा राज ओर  
 अन्तर्नि भा । एत कावण । रिच एत एत प्रवृत्तियामे भा रिचावा । ओर पाप प्रवृत्तियामे भा । ए  
 एतार क । पाप प्रवृत्तिया गता । विनका नामनिर्ण राजान रिचा । ।

१५

ग प्रगम्ल मर्वापमिद्धिमस्मिन्नायामष्टमाध्याय ममान् ॥८॥



## अथ नवमोऽध्याय

वचनार्थो निर्दिष्ट । इतानो तदनन्तरोद्देशमात्रं सवरस्य निर्देशं प्राप्तकाल इत्यत  
इत्याह—

आस्रवनिरोधं सवर ॥ १ ॥

३ अभिनयकर्मदानहेतुरास्रवो व्याख्यात । तस्य निरोधं सवर इत्युच्यते । स द्विविधो  
भावसवरो द्रव्यसवरश्चेति । तत्र ससारनिमित्तक्रियानिवृत्तिर्भासवरः । तन्निरोध  
तत्पूर्वकमपुद्गलादानविच्छेदो द्रव्यसवरः ।

इदं विचार्यते—कस्मिन् गुणस्थाने कस्य सवर इति । अत्र उच्यते मिथ्यादर्शनकर्मो  
व्यवशीकृत आत्मा मिथ्यादृष्टिः । तत्र मिथ्यादर्शनप्राधान्येन यत्कर्म आस्रवति तन्निरोधा  
१ च्छेदे सासादनमम्यग्दृष्टघादो तत्सवरो भवति । किं पुनस्तत् ? मिथ्यात्वमपु सववेदनर  
थायुनरनगत्येकद्वित्रिषत्तुरिन्वियाजातिदृष्टसंस्थानासम्प्राप्तासुपाटिकासहननरनरगतप्रा  
योग्यानुपूर्व्यतिपस्यावरसूक्ष्मापर्याप्तमसाधारणशरीरसन्नकथोददाप्रकृतिलक्षणम् ।

## नौवा अध्याय

वचनपदार्थका निर्देशं क्रिया । इत समय उच्यते वाद कहन योग्य सवर पदावक निर्देशाका समय आ  
१५ गमा ह इतकिय यह सूत्र कहत है—

आस्रवका निरोध करना संघर्ष है ॥ १ ॥

नूतन कर्मक ग्रहणमें हेतु रूप आस्रवका व्याख्यात क्रिया । उसका निरोध करना संघर्ष है । वह  
वो प्रकारका है—भाव सवर और द्रव्य सवर । नसारकी निमित्तमूत क्रियाकी निवृत्ति होगा भावसवर  
ह और इसका (ससारकी निमित्तमूत क्रियाका) निरोध होनपर तत्पूर्वक होनवाल कम-मुद्गमर्मेन ग्रहण  
३ का विच्छेद होना द्रव्यसवर है ।

अब इस बातका विचार करना है कि किस गुणस्थानमें किस कमप्रवृत्तिका सवर होता है इत्यस्मि  
इसो जानको भाग कहत है—जो आत्मा मिथ्यादर्शन कम उदयक आधीम है वह मिथ्यादृष्टि है ।  
इसक मिथ्यादर्शनकी प्रबानतामे जिस कर्मका आस्रव होता है उसका मिथ्यादर्शनक अभावमें सप यह  
सामादनमम्यग्दृष्टि आदिम सवर होता है । वह कर्म कौम है ? मिथ्यात्व मपु सवबद नरकामु  
२५ नरकगति एकन्द्रिय जाति द्वीन्द्रिय जाति त्रीन्द्रिय जाति चतुरिन्द्रिय जाति हुषइसंस्थान असंप्राप्त्यामु  
पान्तिरामहनन मरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी आतप स्यावर मुदम अपर्यायक और साधारणशरीर यह

अमयमस्त्रिविध, अनन्तानुबन्धप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानोदयविकल्पात् । तत्प्रत्ययस्य  
 कमणस्तदभावे सवरोऽवसेय । तथा—निद्रानिद्राप्रचलाप्रचलास्थानगुदुष्यनन्तानुबन्धि  
 शोधमानमायालोभस्त्रीवैदतियगायुन्तियगगतिचतु सम्मानचतु सहनतियगगतिप्रायोग्यानु  
 पूर्व्यांशोताप्रशस्तविहायोगतिदुमगदु स्वर्गनादेयनीषर्गोत्रसन्निकानां पञ्चविधतिप्रकृतीना  
 मनन्तानुबन्धिकपायोदयकृतासयमप्रघातास्त्रवाणामेकेन्द्रियादय सासादनसम्यग्दृष्टघन्ता २  
 वषका । तदभावे तासामुत्तरत्र सवर । अप्रत्याख्यानावरणक्रोवमानमायालोभमनुप्यायुमनुप्य  
 गत्यौदारिकदारोस्तदङ्गोपाङ्गव्यप्रभनाराचसहननमनुप्यगतिप्रायोग्यानुप्यनाम्ना दशाना  
 प्रकृतीनामप्रत्याख्यानकपायोदयकृतासयमहेतुकानामेकेन्द्रियादमोऽसयतसम्यग्दृष्टघन्ता वष  
 का । तदभावाद्ब्रूष सासांसवर । सम्यग्मिष्यात्यगुणनायुन वध्यते । प्रत्याख्यानावरणक्रोव  
 मानमायालोभाना चतसृणा प्रकृतीना प्रत्याख्यानकपायोदयकारणासयमास्त्रवाणामे १  
 केन्द्रियप्रभृतय सयतासयतावसाना वषका । तदभावाद्ब्रुपरिप्यत्तासा सवर । प्रमादोप  
 नीतस्य तदभावे निरोध । प्रमादेनोपनीतस्य कमण प्रमत्तसयताद्ब्रूष तदभावात्निरोध

सोलह प्रकृतिरूप कम ह । अनयमक तीन भ ह—अनन्तानुबन्धीका उदय अप्रत्याख्यानावरणका  
 उदय और प्रत्याख्यानावरणका उदय । इसलि इसक निमित्तय जिम कमका आस्यक होता ह उसका  
 इसक अभावमें सवर जानना चाहिय । यथा—अनन्तानुबन्धी कपायक उदयस हानवाक असयमकी १२  
 मुख्यतास आस्यकको प्राप्त होनवाली निद्रानिद्रा प्रचला प्रचला स्थानगुदु अनन्तानुबन्धी शोध  
 अनन्तानुबन्धी मान अनन्तानुबन्धी माया अनन्तानुबन्धी लाभ स्त्रीवैद तिय चाय तिय चगति  
 मध्यक चार सम्मान मध्यक चार सहनन तिय चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी उद्यात अप्रशस्त विहायोगति  
 बुमग दु स्वर्ग अनादय और नीचगात्र इन पञ्चोम प्रकृतियोंका एकत्रियस स्वर सामादनसम्यग्दृष्टि  
 गुणस्थान मकर जीव वष करत ह अत अनन्तानुबन्धीक उदयस हानवाक असयमक अभावमें आग २  
 इनका मवर होता ह । अप्रत्याख्यानावरण कपायक उदयस हानवाक असयमकी मुख्यतास आस्यकको  
 प्राप्त हानवाली अप्रत्याख्यानावरण शोध अप्रत्याख्यानावरण मान अप्रत्याख्यानावरण माया अप्रया  
 ग्यानावरण मोभ मनुप्यायु मनुप्यगति जीशरिक्गरीर, औशरिक् आयायांग वस्यप्रनाराच सहनन  
 और मनुप्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इन त्सा प्रकृतियोंका एकत्रियस स्वर असयममध्यग्दृष्टि गुणस्थान  
 मकर जीव वष करत ह अत अप्रत्याख्यानावरण कपायक उदयस हानवाक असयमका अभाव हान २४  
 पर आग इनका मवर होता ह । सम्यग्मिष्यास्व गुणक हान पर भायुषमका बन्ध नहीं होता यहाँ इतनी  
 विषय घात ह । प्रत्याख्यानावरण कपायक उदयस हानवाक असयमस आस्यकका प्राप्त हानवाली  
 प्रत्याख्यानावरण शोध मान माया और लाभ इन चार प्रकृतियोंका एकत्रियस स्वर मयतामयत  
 गुणस्थान मकर जीव वष करत ह अत प्रत्याख्यानावरण कपायक उदयस हानवाक असयमक अभावमें  
 आग इनका मवर होता ह । प्रमादक निमित्तय आस्यकका प्राप्त हानवाक कमता उमक अभावमें मवर  
 जान ३ । जो कम प्रमादक निमित्तय आस्यकका प्राप्त होता ह उमका प्रमत्तसयत गुणस्थानक आग

प्रयेतव्यं । किं पुनस्तत् ? असद्वेद्यारतिशोभास्विराशुभायशकीर्तिविनल्पम् । देवाम्  
 वेंधारम्भस्य प्रमात् एव हेतुरप्रमादोऽपि तत्प्रत्यासन्न । तदूर्ध्वं तस्य सवरः । कृपाय एवा  
 स्रवो यस्य कर्मणो न प्रमाणादि तस्य सन्निरोधे निरामोञ्जसेय । स च कृपाय प्रमादान्वि  
 रहितस्तीव्रमध्यमजघन्यभावेन त्रिषु गुणस्थानेषु व्यवस्थितः । सत्रापुवकरणस्यादौ मध्यम  
 भाग इव कर्मप्रकृती निद्राप्रचल वध्यते । तत ऊर्ध्वं सख्येयभागे त्रिषु प्रकृतयो  
 ववगतिपञ्चन्द्रियजातिवक्रियिकाहारकृतजसकामणक्षरीरममचतुरस्रसम्पानवक्रियिकाहा  
 रकक्षरीराङ्गोपाङ्गवणगघरमस्पशदवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्याङ्गुलघूपघातपरघातोच्छ्वासप्र  
 शस्तविहायोगतित्रसधान्तरपर्याप्तप्रत्येकक्षरीरस्थिरशुभसुभगसुस्वरदेयनिर्माणतीक्षकराम्या  
 वन्धन्ते । तस्यैव चरमसमये घतस्र प्रकृतयो हास्परतिमयजुगुप्सासमा बन्धमुपयान्ति ।  
 ता एतास्तीक्ष्णकृपायास्रवास्तत्भावाभिहिष्टिष्ठाद्भागदूर्ध्वं सन्धियन्ते । अनियुतिवादरमाप्परा  
 यस्यादिसमयादारम्भ सख्येयेषु भागेषु पुषेदत्रोधसञ्ज्वलनी वध्यते । तत ऊर्ध्वं शेषेषु  
 मध्येयेषु भागेषु मानमज्वलनमायासञ्ज्वलनी बन्धमुपगच्छत । तस्यैव चरमसमये लोभ  
 मज्वलनी वन्धमेति । ता एता प्रकृतयो मध्यमकृपायास्रवास्तदभावे निहिष्टम्य भागस्यो

प्रमात् न रज्जुक कारण सवर जानना चाहिय । बहु कर्म कौन ह ? असाताबदनीय अरति धोक  
 अन्धिर अणुम और अयस कीर्तिरूप प्रकृतियोंक मयस बहु कर्म छह प्रकारका है । देवामुक बन्धका  
 आरम्भ प्रमावहेतुक भी होता है और उसक नजदीकका अप्रमावहेतुक भी अत इसका अभाव हान पर  
 भाग उसका सवर जानना चाहिय । जिस कर्मका मात्र कृपायक निमित्तस आश्रव होता ह प्रमादादिकक  
 निमित्तस नही उमका कृपायका अभाव होनेपर सवर जानना चाहिय । प्रमादादिकक अभावमें होने  
 वाला वह कृपाय तीव्र मध्यम और जघन्यरूपस तीन गुणस्थानोंमें अवस्थित ह । उनमेंस अपूवकरण  
 गुणस्थानक प्रारम्भिक मध्यम भागमें निद्रा और प्रचला य दो कर्मप्रकृतियां बन्धको प्राप्त होती ह ।  
 इमस आग सख्यय भागम दबगति पञ्चन्द्रिय जाति वक्रियिक क्षरीर आहारक क्षरीर, त्रसस क्षरीर  
 कामण क्षरीर समधतुरस्र सम्पान वक्रियिक क्षरीर आंगोपांग आहारक क्षरीर आंगोपांग वण वन्ध  
 र्म स्यां वेवगति प्रायोग्यानुपूर्वी अङ्गुलघु, उपघात परघात उच्छ्वासस प्रशस्त विहायोगति त्रस  
 धान्तर पर्याप्त प्रत्येकक्षरीर स्थिर, शुभ सुभग सुस्वर आश्रय निर्माण और तीक्षकर य तीस प्रकृतियां  
 बन्धको प्राप्त होनी ह । तथा इमी गुणस्थानक अन्तिम समयमें हास्य रति भय और जुगुप्सा य चार  
 प्रकृतिया बन्धका प्राप्त होती ह । ये तीव्र कृपायम आस्रबको प्राप्त होनवासी प्रकृतियां हैं इसलिय  
 तीव्र कृपायका उत्तरोत्तर अभाव हानिम विवक्षित भागके आगे उनका सवर होना ह । अनिबृति बान्तर  
 साधारणक प्रथम समयम सवर उसके सम्प्राप्त भागोंमें पु वद और क्रोध मज्वलमका बन्ध होता ह ।  
 इममे आग दोष रह मध्यम भागमे मान सञ्ज्वलन और माया सञ्ज्वलन य दो प्रकृतियां बन्धको प्राप्त  
 होनी ह और उसीक अन्तिम समयम लोभ सञ्ज्वलन बन्धको प्राप्त होना ह । इन प्रकृतियोंका मध्यम

परिप्यात्सवरमाप्नुवन्ति । पञ्चाना ज्ञानावरणानां चतुर्णां दशानावरणानां यश कीर्तौ चैर्गोत्रस्य पञ्चानामन्तरायार्णां च मन्दकपायास्त्रवाणां सूक्ष्मसाम्परायां वधक । तदभावाद्दुःस्तरत्र तेषां सवर । केवलैव योगेन सद्देशस्यापशान्तकपायक्षीणकपायमयोगानां वधो भवति । तदभावाद्योगकेवलिनस्तस्य सवरौ भवति ।

उक्तं सवरैस्तद्देतुप्रतिपादनायमाह—

स गुप्तिसमितिघमानुप्रेक्षापरिपहजयचारित्र्य ॥ २ ॥ १

यत् ससारकारणादात्मनो गोपनं भवति सा गुप्तिः । प्राणिपीडापरिहाराय सम्यगयनसमितिः । इष्टे स्थाने घटे इति घमः । शरीरादीनां स्वभावात्तुचिन्तनमनुप्रेक्षा । द्युदादिबेदनोत्पत्ती कमनिजगम्य सहन परिपहः । परिपहस्य जय परिपहजयः । चारित्र्यशब्द आदिसूत्रे व्याख्यातायः । एतेषां गुप्त्यादीनां सवरणक्रियायां साधकतमत्वात् करणनिर्देशः । सवरोऽधिकृताऽपि स' इति तच्छब्दन परामृश्यते गुप्त्यादिभिः साक्षात्सम्यग्

कपायक निमित्तस आस्रव होता ह असएव मध्यम कपायका उत्तरोत्तर अभाव हानपर विवक्षित भागक आग उनका सवर होता ह । मन्व कपायक निमित्तस आस्रवको प्राप्त होनेवाली पात्र ज्ञानावरण चार दशनावरण यश कीर्ति उच्चगोत्र और पांच अन्तराय इन सोएह प्रकृतियाका सूक्ष्मसाम्पराय जीव बन्ध करता ह अत मन्द कपायका अभाव होनेस आग इनका सवर होता ह । कवल् योग्य निमित्तस आस्रवको प्राप्त होनेवाली असादा बवनीयका उपशान्तकपाय क्षीणकपाय और सयोगकवली जीवोंक बन्ध होता ह । योगका अभाव ही जानस अयोगकवलीक उसका सवर होता ह ।

विशयार्थ—सवर जीवतम नय दोष और दोषोंक कारण एकत्रित न होने दनका माग ह । सवरक वाव ही सचित हुए दोषो क उनक कारणोंका परिमाजन किया जा सकसा ह और तभी मुक्ति-लभ होता ह । साधारणत क दोष और उनक कारण क्या हैं यहाँ इनकी गुणस्थानक्रमस विस्तृत चरना की गई ह । प्राणीमात्रको इन्हें समझकर सवरक मागमें एगना चाहिये महे उक्त कथनका भाव ह ।

सवरका कथन किया । अब उसक हेतुओंका कथन करनक लिय आगका मूत्र कहत हैं—

षड् सवर गुप्ति, समिति, घर्म अनुप्रेक्षा, परिपहजय और चारित्र्यसे होता है ॥ २ ॥

जिसक बलम ससारक कारणोंस आत्माका गोपन अर्थात् रक्षा होनेी ह वह गुप्ति ह । प्राणिपीडाका परिहार करनके लिय भस् प्रकार आना-जाना उठाना-धरना ग्रहण करना व मोचन करना समिति ह । जा इष्ट स्थानम धारण करता ह वह घम ह । शरीरादिकक स्वभावका बार बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षा ह । क्षयात् बचनाक होनेपर कर्मोंकी निजरा करनक लिय उस महे रना परिपह ह और परिपहका जीतना परिपहजय ह । चारित्र्य शब्दका प्रथम सूत्रम ध्यायमान कर आय ह । य गुप्ति आश्रित सवरण्य त्रिधाक अत्यन्त महकारी ह अतएव सूत्रम इनका करण रूपम निर्देश किया ह । सवर

(१)—आवाहयु-स । (२) तच्छब्दप्रति-स । (३) मयानुभवत मन्वाभ्यो धर्युत्तमे मन् । एत गुण २ ४ । (४)—मन्वाभ्यो । प्रया-स ।

नाथ । किं प्रयोजनम् ? अवधारणायम् । स एष सवरौ गुण्यादिभिरथ नान्येनोपायनेति । तेन तीर्थाभिषेकदीक्षाशीर्षोपहारदेवताराधनादयो निवृत्तिता भवन्ति रागद्वेषमोहोपासस्य कमणोज्ञ्यया निवृत्त्यभावात् ।

सवरनिजराहेतुविशेषप्रतिपादनायमाह—

तपसा निजरा च ॥ ३ ॥

तपो धर्मोऽन्तर्भूतमपि पृथगुच्यते उभयसाधनत्वस्यापनाथ सवर प्रति प्राधायप्रतिपादनाय च । ननु च तपो भ्युदयाङ्गमिष्ट देवेन्द्रादिस्थानप्राप्तिहेतुत्वाभ्युपगमात् तत् कथं निजराङ्ग स्यादिति ? नप दोष एकस्थानककायदशानादग्निवत् । यथाग्निरेकोऽपि विक्लोदनमस्माङ्गादिप्रयोजन उपलभ्यते तथा तपो भ्युदयकमक्षयहेतुरित्यत्र वा विरोधः ।

वा अधिकार ह तथापि गुप्ति आधिक्य साध साक्षात् सम्बन्ध दिसलानक लिय इस सूत्रमें उसका 'स' इस पदक द्वारा निर्देश किया ह ।

शुभा—इसका क्या प्रयोजन ह ?

समाधान—अवधारण करना इसका प्रयोजन ह । यथा—वह सवर गुप्ति आधिक्य द्वारा ही हो सकता ह अन्य उपायस नही हो सकता ।

इस कथनसे तीर्थ यात्रा करना अभिषेक करना दीक्षा लना उपहार स्वल्प सिरको अपण करना और दबताकी आराधना करना आदिका निराकरण हो जाता ह क्योंकि राग द्वेष और मोहक निमित्तसे ग्रहण किये गये कमका अन्यथा अभाव नही किया जा सकता ।

अब सवर और निजराक हेतु विधापना कथन करनेक लिय आगका सूत्र कहत हैं—

तपसे सवर और निजरा होतो है ॥ ३ ॥

तपसा धर्म अन्तर्भूत होता ह फिर भी वह सवर और निजरा इन दोनोंका कारण ह और सवरका प्रमुख कारण ह यह बलवानके लिय उसका असंगत कथन किया ह ।

शुभा—तपको भ्युदयका कारण मानना इष्ट ह क्योंकि वह दबन्त आदि स्थान विशेषकी प्राप्ति क हेतुत्वाभ्युपगमात् स्वीकार किया गया ह इसलिय वह निजराका कारण कस हू सकता ह ?

समाधान—यह कोई दोष नही ह क्या कि अग्निक समान एक होत हुए भी इसके अनेक काय दान जात ह । जस अग्नि एक ह ता भी उसका विकल्पादन मस्य और अगार आदि अनेक काय उपलब्ध होत ह वम ही तप अम्युदय और कमदाय इन दोनोंका हेतु ह एसा माननमें क्या विरोध ह ।

(१)—पाप । न नु । ( ) शीर्षोपहारगतिनिर्गमहेतुत्वेर्षात् । निजराय्य भुगमिपुत्रका । निवृत्त्यति कारणकयातरता पुरन च तथा लक्ष्मिर्न पयाम् ॥ वक्तव्य इति ३६ । (३)—साम् कथ नु । (४)—कोऽपि कथय्यमनात्कवादि—आ ।—कोऽपि निरुत्तरमन्त्रगात्मावादित्र—दि २ ।—कोऽपि पञ्चविंशत्येवमनात्मावादित्र—दि १ ।

सवरहेतुपञ्चादावुद्दिष्टाया गुप्ते स्वरूपप्रतिपत्त्ययमाह—

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्ति ॥ ४ ॥

योगो व्याख्यात कायवाङ्मनःकम योग इत्यत्र । तस्य स्वच्छाप्रवृत्तिनिवतन निग्रह । विषयसुखाभिलाषाप्रवृत्तिनिषेधाय सम्यग्विशेषणम् । तस्मात् सम्यग्विशेषण विशिष्टात् सकलेशाप्रादुर्भावपरत्कायादियोगनिरोधे सति तन्निमित्त कम नास्त्वतीति २  
सवरप्रसिद्धिरवगन्तव्या । सा त्रितयी कायगुप्तिर्वाग्गुप्तिमनोगुप्तिरिति ।

तत्राशक्तस्य मुनेनिरवद्यप्रवृत्तिरूपानाथमाह—

ईयामायेषणादाननिक्षेपोत्सर्गा समितय ॥ ५ ॥

'सम्यग् इत्यनुवतते । तनेर्यादयो विशेष्यन्ते । सम्यगीर्या सम्यग्भाषा सम्यगेपणा सम्यगादाननिक्षेपो सम्यगुत्सर्ग इति । ता एता पञ्च समितयो विदितजीवस्थानादिवि १०  
धेमुने प्राणिपीडापरिहाराभ्युपाया वेदितव्या । तथा प्रवतमानस्यासयमपरिणामनिमित्त कर्मास्त्रिवात्सवरो भवति ।

तृतीयस्य सवरहेतोषमस्य भेदप्रतिपत्त्ययमाह—

गुप्तिका सवरक हतुर्बोक् प्राग्भर्मे निर्देग विधा ह अत उक्त स्वरूपका कथन करनक लिय आग का सूत्र कहते हैं— १५

योगोक्त्वा सम्यक् प्रकारसे निग्रह करना गुप्ति है ॥ ४ ॥

कायवाङ्मनःकम योग इस सूत्रमें योगका व्याख्यान कर आय है । उसकी स्वच्छन्द प्रवृत्तिको रोकना निग्रह है । विषय-सुखको अभिलाषाके लिये की जानवाली प्रवृत्तिका निषेध करनके लिये सम्यक शिक्षण दिया है । इस सम्यक शिक्षण सुक्त सकलका नहीं उत्पन्न होत दन रूप योगनिग्रहस कायाणि योगोक्त्वा निरोध होत पर तन्निमित्तक कमका आस्रव नहीं होता है इसलिये सवरकी सिद्धि जान लेना चाहिये । यह गुप्ति तीन प्रकारकी है—कायगुप्ति, बचनगुप्ति और मनोगुप्ति । २

अब गुप्तिक पारन करनमें अक्षरक मुनिक निर्दोष प्रवृत्तिकी प्रसिद्धिके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

ईर्या भाषा एपणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग ये पाँच समितियाँ हैं ॥ ५ ॥

यहाँ 'सम्यक' इस पदकी अनुवृत्ति होती है । उसमें इयादिक विदित्यपनका प्राप्त होत है—सम्यगीर्या सम्यग्भाषा सम्यगपणा सम्यगादाननिक्षेप और सम्यगुत्सर्ग । इस प्रकार कही गई ये पाँच २५  
समितिर्दो जीवस्थानादि विधिको जाननवान् मुनिक प्राणियोंकी पीडाको दूर करनके उपाय जानन चाहिये । इस प्रकारसे प्रवृत्ति करनेवाला असयमरूप परिणामिक निमित्तस जो कर्मका आस्रव होता है उसका सवर होता है ।

तीसरा सवरका हतुषम है । उसका मर्त्तिका जान करनके लिये आगका सूत्र कहते हैं—

(१) -इतुञ्चादा-(२)-यापवृत्तिवियमतायं सम्य-ता ता । (३) नति बचन ता ।

उत्तमक्षमाभावाद्भवतीचसत्यसयमतपस्त्रयागाकिञ्चन्यद्ब्रह्मचर्याणि धम ॥ ६ ॥

किमथमिदमुच्यते ? आद्य प्रवृत्तिनिग्रहायम् तत्रासमर्पानां प्रवृत्त्युपायप्रदर्शनाय द्वितीयम् । इदं पुनरुपश्लेषधर्माभ्यान् समितियु प्रवर्तमानस्य प्रमादपरिहाराय वदितव्यम् । शरीरस्मितिहस्तुमागणाय परकुलान्युपगच्छतो भिक्षोःपुष्टजनाक्रोशप्रहसनावज्ञाताङ्गन शरीरव्यापादनादीनां मन्निघाने कालुष्यानुत्पत्ति क्षमा । जात्यादिमदावेशादभिमाना भावां मादव माननिहरणम् । योगस्मावक्रता आजवम् । प्रनर्पप्राप्तलोभाभिवृत्ति शौचम् । सत्सु प्रशस्तपु जनपु साधु वचन सत्यमित्युच्यते । ननु अतद् भाषासमितावन्तभवति ? नव दोष समितौ प्रवर्तमानो मुनि साधुष्वसाधुषु च भाषाव्यवहार कुर्वन् हित मितञ्च व्रूयात् अथवा रागादनभदण्डदोष स्यादिति वाक्यसमितिरित्यथ । इह पुन सन्त प्रव्रजिता स्तद्भक्त्या वा तेषु साधु सत्य ज्ञानचारित्र्यशिक्षणादिषु बहवपि कृतव्यमित्यनुज्ञायते धर्मोप वृह्णायम् । समितियु वतमानस्य प्राणीन्द्रियपरिहारस्तस्यम् । कमक्षयाय तप्यत इति

उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम सयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिञ्चन्य और उत्तम प्रनर्पयं यह दस प्रकारका धर्म है ॥ ६ ॥

शका—यह किसलिय कहा है ?

समाधान—सबरत्ना प्रथम कारण प्रवृत्तिका निग्रह करनेके लिय कहा है । जो वसा करनेमें अस मर्थ है उच्छ प्रवृत्तिका उपाय दिखलानेके लिय दूसरा कारण कहा है । किन्तु यह दश प्रकारके धमकु वचन समितियोंमें प्रवृत्ति करनेबालके प्रमादका परिहार करनेके लिय कहा है । शरीरकी स्मितिक कारणकी लोड करनेके लिय परकुलोंमें जात हुए भिक्षुको पुष्ट जन गासी गन्नीव करत हैं उपहास करत है निरस्कार करत है मारत पीटत है और शरीरको तोडत-मरोडत हैं तो भी उनके कसपताका उत्पन्न न होना क्षमा है । जाति आदि मर्त्तिक जाकपावण होनेवाले अभिमानका अभाव करना मादव है । मादवका अर्थ है मानका नाश करना । योगोंका बरु न होना आजव है । प्रकृपापट सोमका त्याग करना शौच है । अच्छ पुस्त्योक साधु साधु वचन बोलना सत्य है ।

शका—सका भाषासमितियों अन्तर्भाव होता है ?

समाधान—यह कोड दोष नहीं है क्योंकि समितिक अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि साधु और अमाय दाना प्रशस्तक मनुष्योंमें भाषाव्यवहार करता हुआ हितकारी परिमित वचन बोल अथवा गग हानम अतपस्त्रयका दोष रगता है यह वचनसमितिका अभिप्राय है । किन्तु सत्य धर्मके अनुसार प्रवृत्ति करनेवाला मुनि मज्जल पुरय शीघ्रत या उनके भक्त्योंमें साधु मरय वचन बोलता हुआ भी ज्ञान चारित्र्यक गिदम आदिक निमित्तम बहुविध कृतधर्मोंकी भूषणा वता है और यह सब धमकी अभिवृद्धिके अभिप्रायम करता है । अस्मित्य सत्य धमना भाषासमितियों अन्तर्भाव नहीं होता ।

मनितियाम प्रवृत्ति करनेबाल मुनिव उनका परिपादन करनेके लिय जो प्राणियोंका और इन्द्रियों

तप । तदुत्तरत्र वक्ष्यमाण द्वादशविकल्पमवसेयम् । समतस्य योग्य ज्ञानादिदान त्याग । उपात्तेष्वपि शरीरादिषु सम्कारापोहाय ममेदमित्यभिसन्निवृत्तिराकिञ्चन्यम् । नास्य किञ्चनास्तीत्यकिञ्चन । तस्य भाव कम वा आकिञ्चन्यम् । अनुभूताङ्गनास्मरणकथा श्रवणश्रीमसक्तशयनासनादिवजनाद् ब्रह्मचर्य परिपूर्णं भवतिष्ठते । स्वतन्त्रवृत्तिनिवृत्त्यर्थो वा गुणभुलवासो ब्रह्मचर्यम् । दष्टप्रयोजनपरिवजनाथमुत्तमविशेषणम् । तान्यव भाव्यमानानि धमव्यपदेशमाञ्जि स्वगुणप्रतिपक्षदोषसद्भाषनाप्रणिहितानि सवरकारणानि भवन्ति ।

आह त्रौघाद्यनुत्पत्ति क्षमादिविशेषप्रत्यनीकालम्बनादिस्पृक्तम् तत्र कस्मात्क्षमादीनयमवलम्बते नान्यथा प्रवसत इत्युच्यते । यस्मात्तप्ताय पिण्डवत्क्षमादिपरिणतेनात्महितविणा क्तव्या —

अमित्याशरणसंसारकृतवान्यत्बाहुष्यात्प्रवसवरनिजरालोकबोधिवुल्लभधमस्वा

स्यात्तत्वानुचिन्तनमनुपेक्षा ॥ ७ ॥

इमानि शरीरेन्द्रियविषयउपभोगद्रव्याणि समुदयरूपाणि अलवुद्बुद्बुदवदनवस्थितस्व

का परिहार होता ह वह समय ह । कमक्षयक स्थि जो तपा जाता ह वह तप ह । वह आग कहा जानेवाला वारह प्रकारका जानता चाहिये । समतक योग्य ज्ञानानिका दान करना त्याग ह । जो शरीरादिक उपात्त ह उनमें भी सम्कारका त्याग करना किय यह मरा ह इस प्रकारक अमिप्रायका त्याग करना आकिञ्चन्य ह । इसका कुछ नहीं ह वह अकिञ्चन ह और उसका भाव या कम आकिञ्चन्य है । अनुभूत श्रौका स्मरण न करनेस स्त्रीविषयक कथाक सुननका त्याग करनेस और श्रौसे सत्कर सोन क वन्दनका त्याग करनेस परिपूर्ण ब्रह्मचर्य होता ह । अथवा स्वतन्त्र वृत्तिका त्याग करनेक स्थि गुणकुसमें निवास करना ब्रह्मचर्य ह । दिवाइ वनेवाले प्रयोजनका निषेध करनेक स्थि क्षमादिके पहल उत्तम विधायन विद्या ह । इस प्रकार जीवनमें उठार गय और स्वगुण तथा प्रतिपक्षमृत दोषोंक सद्भावमें यह लाभ और यह हानि ह इस तरहकी भावनास प्राप्त हुए य धमसञ्जावाप्त उत्तम क्षमानिक सवरके कारण होत ह ।

क्षमादि विषय और उनक उत्त कारणोंका अबलम्बन आदि करनेस त्रौघादिकी उत्पत्ति नहीं होती ह यह पहल कह आय ह । उसमें किस कारणस यह जीव क्षमानिकका अबलम्बन सता ह अन्यथा प्रवृत्ति नहीं करना ह इसका कथन करत हैं । यत तपाय हुए लोहक गोशक समान क्षमादिक रूपस परिणत हुए आत्महितपीको करन योग्य—

अनित्य अशरण संसार, एकत्र अन्यत्व, अनुधि, व्यासव, सवर, निर्बरा लोक, बोधिवुर्लभ

और धर्मस्वाख्यातत्वका धार-धार चिन्तवन करना अनुपेक्षाएँ हैं ॥ ७ ॥

य समुदायरूप शरीर इन्द्रियविषय उपभोग और परिभोग इव्य जलक वुल्लभुद्बु क समान अन

(१)—नाम्नि क्विनात्कारिक-यु., वि १ वि २। (२)—कुलावामो मु., ता. ।



भावानि गर्भादिष्ववस्थाविशेषेषु मन्त्रापलभ्यमानसयागधिपययाणि माहात्म्याज्ञानित्यता मन्वत । न किञ्चित्समार समुत्ति घृत्वमस्ति आरमना ज्ञानान्नापयागस्वभावात्प्रति चिन्तनमनित्यतानुप्रक्षा । एव हृषम् भ्रम्यस्य चित्तयतस्तन्त्वभिन्वङ्गाभावाद् भुक्ताज्जित गधमाल्यानिष्विव त्रियागकालेऽपि विनिपाता नात्यघत ।

- २ यथा—मृगशावस्यवान् वल्दना क्षुधिननामिपपिणा व्याघ्रेणाभिभूतस्य न किञ्चिच्छरणमस्ति तथा जमजगामृत्युव्याधिप्रभृतिष्यसनमध्य परिभ्रमता जन्तो धरण न विद्यत । परिपुष्पमपि धरार भाजन प्रति महायी भवति न व्यमनोपनिपात । यत्नन सकिता अर्या अपि न भवान्तरमनुगच्छन्ति । सविभक्तमुखदुःखा सुहृदोऽपि न मरणकाल परि प्रायन्ते । वाधवा समुद्रितापच राजा पगीत न परिपालयन्ति । अस्ति वेत्सुस्वरितो घर्मो व्यमनमहाणव तारणापाया भवति । मृत्युना नीयमानस्य महस्त्रनयनादयोऽपि न धरणम् । तस्माद् भवव्यसनसङ्घट्ट घम एव धरण सुहृत्पर्योऽप्यनपायो, नायकिञ्चिच्छरणमिति भावना अघरणानुप्रेक्षा । एव हृषम्याध्यवस्यतो नित्यमधरणोऽस्मीति मृगमुद्रिनस्य सांसारिकेषु भावेषु भमत्वविगमा भवति । भगवदहस्त्ववज्ञप्रणीत एव मार्गं प्रयन्तो भवति ।

- १५ वसिष्ठ स्वभावनाम् हात हे तथा गर्भाणि अवस्थाविशेषों मे मदा प्राप्त होनकार सयोगों मे विपरीत स्वभावना होत ह । मोहवध अन्न प्राणी इतमें नित्यताका अनुभव करता ह पर वस्तुत आत्माक ज्ञानो पयाग और दशयोगयोगक सिवा इस ससारमें कोह भी पदाध घ न नही ह इस प्रकार चिन्तन करना अनित्यानुप्रक्षा ह । इस प्रकार चिन्तन करनेवाक इस भ्रम्यक उन धरीराणिमें भासकितका अभाव होनसे भोगकर छोड दुःख गन्ध और माला आदिक समान वियोग कारुमें भी सत्ताप नही होता ह ।

- २ जिस प्रकार एकात्ममें क्षुधित और मांसक लोभी वसवान् व्याघ्रक द्वारा दबोने गये मृगशावकक लिए कुछ भी धरण नही होता उसी प्रकार जम जरा मृत्यु और व्याधि भाणि बुद्धोंक मध्यमें परिभ्रमन करनेवाक जीवका कुछ भी धरण नहा ह । परिपुष्प धरीर ही भोजन के प्रति सहायक ह बुद्धोंक प्राप्त होतपर नही । मलस सचित किया हुआ घन भी मदान्तरमें साध नही जाता । जिन्होंने मूल और दुःखको समान रूपक बाँट लिया ह एस मित्र भी मरणक समय रक्षा नही कर सकत । मिलकर बन्धुजन भी रोप स व्याप्त इस जीवकी रक्षा करनेम असमक होत ह । यदि सुचरित घम हो तो वह ही बुद्धरूपी महा समुद्रम तरनका उपाय हो सकता ह । मृत्युस ले जानवाले इस जीवक सहस्त्रनयन आवि भी धरण नही ह इसलिये ससार विपतिरूप स्थानम घम ही धरण ह । वही मित्र ह और वही कभी भी न क्षुत्नवाला कर्म ह अथ कुछ धरण नही ह इस प्रकारकी भावना करना अधरणाानुप्रक्षा ह । इस प्रकार विचार करनेवाक इस जीवक 'म मदा अधरण हूँ' इस तरह अतिशय उद्विग्न होनेक कारण ससारक कारणमूल पदाधोंमें ममता नही रहती और वह भगवान् अरहत सर्वज्ञ प्रणीत मागम ही प्रयत्नशील होता ह ।

(१) इत्य विल-३ ता । (२) सचितोऽपि न भवान्तरमनुगच्छति नु । (३) ममत्वनिपत्तो मक-प्र- वि १ वि २ मू., ता. । (४) माग प्रतिपत्तो भव-भा., वि १ वि २, नु ।

कमविपाकवशादात्मनो भवान्तरावाप्ति ससार । म पुरस्तात्पञ्चविधपरिवतन रूपेण व्याख्यात । तस्मिन्नेक्यानि कुलकोटिवहुशतसहस्रसकटे समारे परिभ्रमन् जीव कमयत्र प्ररित पिता भूत्वा भ्राता पुत्र पौत्रश्च भवति । माता भूत्वा भगिनी भार्या दुहिता च भवति । स्वामी भूत्वा दासो भवति । दासो भूत्वा स्वाम्यपि भवति । नट इव रङ्ग । अथवा कि बहुना स्वयमात्मन पुत्रो भवतीत्येवमादि ससारस्वभावचिन्तन समागनुप्रेक्षा । एव ह्यस्य भावयत ससारदु स्वभयादुद्भिन्नस्य तदा निर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च समा- प्रहाणाय प्र यतने ।

जमजगमरणावृत्तिमहादु खानुभवन प्रति एक एवाह न कश्चिमे स्व परो वा विद्यत । एक एव जायर्हम् । एक एव म्रिये । न मे कश्चित् स्वजन परजना वा व्याधि जगमरणादीनि दुःखान्यपहरति । य धूमित्राणि स्मृष्टान नातिवतन्त । धम एव मे सहाय मया अनपायीति चिन्तनमेवत्वानुप्रेक्षा । एव ह्यस्य भावयत स्वजनेषु प्रीत्यनुबन्धा न भवति । परजनेषु च द्वेषानुबन्धो नोपजायते । ततो निमङ्गतामभ्युपगता माशायव घटत । धारीगद यस्वचिन्तनमन्यत्वानुप्रेक्षा । तद्यथा—यद्य प्रत्यक्त्व सत्यपि लक्षणभेदा

कमक विपाकक वशात् आत्माको भवान्तरकी प्राप्ति हाता समाग ह । उमका पहल पांच प्रकारक परिवतन रूपम व्याख्यात कर आय हैं । अनक योनि ओर कुल बाटिकात्मम प्याप्त उम ससारमें परि भ्रमण करता हुआ यह जीव कमयत्रम प्ररित होकर पिता होकर भाइ पुत्र और पौत्र हाता ह । माता होकर भगिनी भार्या और सठकी होता ह । स्वामी होकर दास होता ह तथा दास हाकर स्वामी भी होता ह । जिस प्रकार रङ्गस्यलमें नट माना रूप धारण करता ह उम प्रकार यह हाता ह । अथवा बहुत बहनम क्या प्रयोजन स्वय अपना पुत्र हाता ह । इत्यादि रूपम समागक स्वभावका चिन्तनम करना समागनुप्रेक्षा ह । उम प्रकार चिन्तनम करन हुए समागक दुःखक भयम उन्निन हुए दमक समागक निर्वेद हाता ह और निर्विण्ण हाकर समागका नाश करनक लिए प्रयत्न करता ह ।

जम जग और मरणकी आवृत्ति रूप महादुःखका अनुभवन करनक लिए अकला ही म हूँ न काइ मरा स्व ह और न पर न अकला ही में जमता हूँ और अकला ही मरता हूँ । मरा को स्वजन या परजन व्याधि जग और मरण आति दु पात्रो दूर नहीं करता । बन्पु और मित्र समानम आग नहीं जात । धम हां मरा कसी माध न छाड़नवाला मया काल महायत ह । उम प्रकार चिन्तनम करना एतन्वानुप्रेक्षा ह । उम प्रकार चिन्तनम करनवाला हम जीवक स्वजनमें प्रीतिका अनुभव नहा हाता और परजनाम कतना प्रनकाय मरा हाता हमलिये निमङ्गताका प्राप्त हाकर मागक लिए हा प्रयत्न करना ह ।

परागम अदम्यका चिन्तन करना प्रयत्नानुप्रेक्षा ह । यथा—यपत्री अपथा अमद हातपर भा

(१)—परजन-पति । (२)—परिवतन कृ । (३)—परजनकृति-प । (४) जायर्हम् । एव तत् । (५)—स्वाम्यपि कर्तव्य-प ।

वन्त्योऽहमन्द्रियक शरीरमतीन्द्रियोऽहमज्ञ शरीर ओऽहमनित्य शरीर नित्योऽहमाद्यन्त  
वच्छरीरमनाद्यन्तोऽहम् । यद्गुण म शरीरशतसहस्राण्यतीतानि ससारे परिग्रमत । स एवाह  
मन्यस्तोम्य इत्येव शरीरादप्यन्यत्व मे किमङ्ग पुनर्वाह्यम्य परिग्रहेम्य । इत्येव ह्यस्य  
मन समादधानस्य शरीरादिषु स्पृहा नोत्पद्यते । ततस्तत्त्वज्ञानभावनापूर्वके वराग्यप्रकर्षे  
५ सति आत्यन्तिकस्य मोक्षसुखस्यावाप्तिर्भवति ।

शरीरमिवमत्यन्ताशुचियोगिनि शुक्लशोणिताशुचिसर्वाधितमवस्करवदशुचिभाजन त्वरु  
मात्रप्रच्छादितमतिपूतिरसनिष्यन्दिस्रोतोविलमङ्गारवदात्ममावमाश्रितमप्याश्वेवापादय  
ति । स्नानानुलपनधूपप्रघर्षवासमाल्यादिभिरपि न शक्यमशुचित्वमपहर्तुमस्य । सम्य  
ग्दधनादि पुनर्माश्रयमान जीवस्यात्यन्तिकीं शुद्धिमाविर्भावयतीति तत्त्वतो भावनम  
१ शुचित्वानुप्रक्षा । एव ह्यस्य सस्मरत शरीरनिर्वेदो भवति । निर्विण्णश्च जन्मोदधितर  
णाय चित्त समाधत्ते ।

आस्रवसवरनिजरा पूर्वोक्ता अपि इहोपन्यस्यन्त तद्गतगुणदोषभावनाधम् । तद्यथा  
आस्रवा इहामुत्रापाययुक्ता महानदीस्रोतोवेगतीक्ष्णा इन्द्रियकषायाम्रसादय । तत्रेन्द्रि

१२ स्मरणक भदस 'म अय हूँ । शरीर एन्द्रियक हूँ मैं अतीन्द्रिय हूँ । शरीर अज्ञ हूँ म ज्ञाता हूँ ।  
शरीर अनित्य हूँ म नित्य हूँ । शरीर आवि-भन्तवाला हूँ और मैं अनाद्यन्त हूँ । ससारमें  
परिग्रमअ करते हुए मर साखों शरीर अतीत हो गये । उनस मित्र बह ही में हूँ इस प्रकार शरीरम भी  
जब म अस्य हूँ तब हे बत्स ! म बाह्य पदार्थोंस मित्र होऊँ तो इसमें क्या आश्चय ? इस प्रकार मनको  
समाधान युक्त करनबाल इसक शरीरादिकमें स्पृहा उत्पन्न नहीं होती हूँ और इसस तत्त्वज्ञानकी भावना-  
पूर्वक बेराग्यका प्रकर्ष होतपर आत्यन्तिक मोक्ष सुखकी प्राप्ति होती हूँ ।

५ यह शरीर अत्यन्त अशुचि पदार्थोंका योगि है । शुक्ल और शोभितरूप अशुचि पदार्थोंसे शुद्धिको  
प्राप्त हुवा हूँ शौचगृहक समान अशुचि पदार्थोंका भाजन हूँ । त्वचाभाजस आच्छादित हूँ । अति  
पुगन्ध रसको बहानवाला भरना हूँ । अङ्गारक समान अपने आश्रयमें आय हुए पदार्थोंको भी क्षीण  
हो मष्ट करता हूँ । स्नान अनुलेपन धूपका माश्रय और सुगन्धिमाला आविक द्वारा भी इसकी अशु  
चित्ताको दूर कर सकना शक्य नहीं है किन्तु अशुचित्व भावना क्रिय गय सम्यग्दर्शन आविक जीवकी  
२५ आत्यन्तिक शुद्धिको प्रकट करत है । इस प्रकार वास्तविकरूपसे चिन्तन करना अशुचि अनुप्रक्षा  
हूँ । इस प्रकार चिन्तन करनबाले इसक शरीरस निर्वेद होता है और निर्विण्ण होकर जन्मोदधिको  
ठरनक लिए चित्तको लगाता हूँ ।

आस्रव सवर और निजराका कथन पहल कर भाए हूँ तथापि उनक गुण और दोषोंका विचार  
करनक लिए यहाँ उनका फिरस उपस्थास किया गया हूँ । यथा-आस्रव इस लोक और परलोकमें दुख

(१)—अतिन्द्रियो मू वि १ वि २ ता । (२)—आश्रितं—मू । (३)—ताशुचिशुक्लशोणितोविलमङ्गारवदशुचि-  
म । (ताशुचिशुक्लशोणितं—वि १ ।—ताशुचिशुक्लशोणितं—वि २ । (४) उपगुद—मू ।

याणि तावत्स्पशनादीनि वनगजवायसपद्मगपतङ्गहरिणादीन् व्यसनाणवमवगाहयन्ति तथा कपायादयोऽभीहृ वधवचापयशपरिवलेशादीन् जनयन्ति । अमुत्र च नानागतिषु बहुविध दुःखप्रवृत्तिसु परिभ्रमयन्तीत्येवमास्रवदोषानुचिन्तनमास्रवानुप्रेक्षा । एव हृषस्य चिन्तयत क्षमादिषु श्रेयस्त्वबुद्धिर्न प्रच्यवते । स एत आस्रवदोषा कूमवत्सवृतात्मनो न भवन्ति ।

यथा महाणवे नावो विवरपिधानेऽस्ति त्रमात्स्रुतजलाभिप्लवे मति तत्राश्रयाणां विनाशोऽवश्यमावी छिद्रपिधानं च निरुपद्रवमभिलषितदशान्तरप्रापणं तथा कर्मागमद्वारमवरणं मति नास्ति श्रेयःप्रतिवध इति सवरगुणानुचिन्तनं सवरानुपेक्षा । एव हृषस्य चिन्तयत सधरे नित्योद्युक्तता भवति । सतश्च निःश्रयसपदप्राप्तिरिति ।

निजरा वस्त्राविपाक इत्युक्तम् । सा द्वेषा—अबुद्धिपूर्वा कुशलमूला चेति । तत्र नरखादिषु गतिषु कमफलविपाकजा अबुद्धिपूर्वा सा अनुशान्तनुवधा । परिग्रहजये वृते कुशलमूला सा दुभानुवधा निरनुवधा चेति । इत्येव निजराया गुणदापभावनं निजरानुप्रेक्षा । एव हृषस्यानुस्मरत कमनिजराय प्रवृत्तिर्भवति ।

दायो ह । महानदीक प्रवाहकं बगव समान तीक्ष्णं ह तथा इन्द्रिय कपाय और अत्रतरूप ह । उनमें स स्वयानादिक इन्द्रियां वनगज कौआ सप पतङ्ग और हरिण आदिकां सुखस्य समुद्रमें अबगाहन कराती ह । कपाय आदिक मी इस लक्षमें वध वध अपयश और कल्याणिक दुःखाको उत्पन्न करत ह तथा परलोचन माना प्रकारक दुःखमें प्रवृत्ति नाना गतियोंमें परिभ्रमण करात ह । इन प्रकार आत्यक कपायाका चिन्तन करना आत्यवानुप्रेक्षा ह । इस प्रकार चिन्तन करनेवाला हम जीवक क्षमादिमें कल्याणस्य बुद्धिका त्याग नहीं होता ह तथा कष्टुणक समान जिनमें अपनी आरसाका मूलक कर लिया ह उसक ये सब आत्यक तोप नहीं होते ह ।

जिन प्रकार महाणवमें मावक छिद्रक नहा इव रहनेपर प्रथम क्षिण हुण जलमें उमक घ्याज्य हानेपर उमक आश्रयमें बठ हुण मनुष्योंका बिनाश अवश्यम्भावा ह और छिद्रक इव रहनेपर निरुपद्रवकल्पमें अभिलषित स्वान्तरका प्राप्त होना अवश्यम्भावा ह उगी प्रकार कर्मागमक द्वारा इव हानेपर कल्याण का प्रतिबन्ध नहीं होता । हम प्रकार सवरक गलाका चिन्तन करना सवरानुप्रेक्षा ह । इन प्रकार चिन्तन करनेवाला हम जीवक सवरमें निरन्तर उद्युक्तता होती ह और हममें माधवकी प्राप्ति जाता ह ।

वस्त्रा विपाकका नाम निजरा ह यह पदक कह आण ह । वह दो प्रकारका ह—अबुद्धिपूर्वा और कुशलमूला । मरुवादि गतिषु कमफल विपाकय जायमान जा अबुद्धिपूर्वा निजरा जाता ह वह अनुशान्तनुवधा ह । तथा परलोचन जातनेपर जा निजरा जाता ह वह कुशलमूला निजरा ह । वह दुभानुवधा और निरनुवधा जाता ह । हम प्रकार निजराक गलापका चिन्तन करना निजरा अनुप्रेक्षा ह । हम प्रकार चिन्तन करनेवाला हमारा कमनिजराय लिए प्रवृत्ति जाता ह ।

लोकसस्यानानिविधिव्याख्यात । समन्तादनन्तस्यालोकाकाशस्य बहुमध्यदेगभावितो लोकस्य सम्पानानिविधिव्याख्यात । तस्वभावानुक्षिन्न लोकानुप्रेक्षा । एव हृषस्माभ्य षस्यतस्तत्त्वज्ञानविगुडिभवति ।

एनस्मिन्निगोतशरीर जीवा सिद्धानामनन्तगुणा । एव सर्वलोको निरन्तर निधित स्थावररतस्तत्र त्रसता बालुकासमुद्र पतिता वज्रसिकताकणिकव दुलभा । तत्र च विक्लेन्द्रियाणां भूयिष्ण्वात्पञ्चन्द्रियता गुणेषु कृतज्ञतेव कृच्छलम्या । तत्र च तियक्षु पशुमृगपक्षि मरीसृपादिविषु बहूपुमन्सु मनुष्यभावश्चतुष्पथ रत्नराशिरिव दुरासन् । तत्प्रच्यवे च पुनस्तदुपसिद्गवत्तदुपुद्गलतद्भावोपपत्तिवद् दुलभा । तल्लाम च देशकुलेन्द्रियसम्पन्नरोग त्वायुरोत्तरखोऽतिदुलभानि । सर्वेष्वपि तनु लब्धेषु मद्मप्रतिलम्भो यदि न स्याद् व्यथजम वदनमिव दृष्टिकलम् । तमेव कृच्छलभ्य घममवाप्य विषयसुखे रञ्जन भस्माय चन्दनदहनमिव विफलम् । विरक्तविषयसुखस्य तु तपोभावनाघमप्रभावनासुखमरणादिलक्षण समाधिवु र्वाप । तस्मिन् सति बोधिलाम फलवान् भवतीति चिन्तन बोधिदुल

लोकसस्यान आदिकी विधि पहने कह आय हैं । अर्थात् चारो ओरस अनन्त अलोकाकाशके बहु मध्यमशमें स्थित लोकके सस्यान आदिकी विधि पहल कह आय हैं । उसक स्वभावका अनुचिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा ह । इस प्रकार विचार करनबाल इसक तस्वमानकी विगुडि होती ह ।

एक निगोतशरीरमें सिद्धोस अनन्तगुण जीव ह । इस प्रकार स्थावर जीवोंस सब लोक निरन्तर भरा हुआ ह । अत इस लोकमें त्रस पर्यायका प्राप्त होना इतना दुर्लभ ह अतना कि बालकाके समुद्रमें पडी हुई बज्रसिकताकी कणिकाका प्राप्त होना दुर्लभ होता ह । उसमें भी विक्लेन्द्रिय जीवोंकी बहुलता होनक कारण गुणोंमें जिस प्रकार कृतज्ञता गुणका प्राप्त होना बहुत दुर्लभ होता ह उसी प्रकार पञ्चन्द्रिय पर्यायका प्राप्त होना बहुत दुर्लभ है । उसमें भी पशु मृग पक्षी और मरीसृप तियञ्चोंकी बहुलता होती ह इसलिए जिस प्रकार चौपथपर रत्नराशिका प्राप्त होना अति कठिन ह उसी प्रकार मनुष्य पर्यायका प्राप्त होना भी अति कठिन ह । और मनुष्य पर्यायक मिरुनके बाद उसके श्पुत हो जान पर पुन उसकी उत्पत्ति होना इतना कठिन ह जितना कि अस हृष्ट वृक्षक पुद्गल्लोका पुन उस वृक्ष पर्यायरूप उत्पन्न होना कठिन होता है । कदाचित् पुम इसकी प्राप्ति हो जाय तो वेश कुल इन्द्रिय सम्पत् और नीरोगता इनका प्राप्त होना उत्तरोत्तर दुर्लभ है । इन सबक मिल जाग पर भी यदि मरी जीव धर्मकी प्राप्ति न होब ता जिस प्रकार दृष्टिक विना मूल व्यर्थ होता ह उसी प्रकार मनुष्यक मका प्राप्त होना व्यथ ह । इस प्रकार अनिकठिनतास प्राप्त होन योग्य उस घमको प्राप्त कर विषयसुखमें रममाण होना भस्मक स्थि चन्दनको अस्थानक समान निष्फल ह । कदाचित् विषयसुखस विरक्त हुआ तो भी इसक स्थि तपकी भावना धर्मकी प्रभावना और मूलपूर्वक मरणरूप समाधिका प्राप्त होना अतिदुर्लभ ह । इसक होन पर ही बोधिलाम सफल ह एसा विचार करमा बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा ह ।

मानुप्रक्षा । एव हृद्यस्य भावयतो वीर्ध प्राप्य प्रमादो न कृत्वाचिदपि भवति ।

अयं जिनोपदिष्टा धर्मोऽहिमालक्षण सत्याधिष्ठितो विनयमूलः । क्षमावलो ग्रह्यचय  
गुप्त उपशमप्रधानो नियतिलक्षणो निष्परिग्रहमालम्बनः । अस्यालाभादनादिससारे  
जोवा परिभ्रमन्ति दुष्कमविपाकज दुस्त्वमनुभवन्तः । अस्य पुनः प्रतिलम्भे विविधाभ्यु  
दयप्राप्तिपूर्विका निश्रेयसोपलब्धिनिवृत्ति चिन्तन धमस्वाख्यातत्वानुप्रक्षा । एव  
हृद्यस्य चिन्तयता धर्मानुरागात्मदाः प्रतियत्नो भवति ।

एवमनित्यत्वाद्यनुप्रासासन्निधाने उत्तमक्षमादिधारणा महान्सवरा भवति । मध्ये  
अनुप्रेक्षा वचनमभयार्थम् । अनुप्रेक्षा हि भावयन्तुत्तमक्षमादीन् प्रतियालयन्ति परीप  
हाश्च जतुमुत्सहते ।

कः पुनस्तं परिपहा किमयं वा' ते सह्यन्त इतीदमाह—

मागाश्च्यवनमिजरायः परिवोढय्याः परीपहा ॥ ८ ॥

सवरस्य प्रकृतत्वात्तेन मार्गो विधिष्यते । सवरमाग इति । तच्छ्रव्यवनाथ निजगद्य  
च परिवोढय्याः परीपहा । क्षुत्पिपासादिमहनं कुवन्तः जिनोपदिष्टा मागाश्च्यवमानास्त  
मागपरिभ्रमणपरिचयनं कर्मगमद्वारं सवृष्वन्त औपशमिकं यमफलमनुभवन्तः भ्रमण

इस प्रकार विचार करनेवाले इस जोबक वाकिको प्राप्त कर कभी भी प्रमाद नहीं होता ।

जिन प्रदत्त यह जो महिमालक्षण धर्म कहा है सत्य उसका आधार है विनय उसकी जरूरत है  
क्षमा उसका बल है ब्रह्मचर्यम रक्षित है उपशमकी उममें प्रधानता है नियति उसका लक्षण है परिग्रह  
रहितपना उसका आलम्बन है । इसकी प्राप्ति महा हानिम दुष्कम विपाकम जायमान दुस्त्वम अनुभव  
करते हुए य जोबक अनानि समारम्भे परिभ्रमण करते हैं । परन्तु इसका साम होना पर माना प्रकारक  
जम्यत्याकी प्राप्तिपूर्वक मागकी प्राप्ति होना निश्चित है एसा चिन्तन करना धमस्वाख्यातत्वानुप्रक्षा  
है । इस प्रकार चिन्तन करनेवाले इस जोबक धर्मानुरागवशा उसकी प्राप्ति मिले मन् यत्न होता है ।

इस प्रकार भक्तिव्याप्ति अनुप्रेक्षाओंका मान्निष्य मित्र पर उत्तमक्षमादि धारण करनेम महान्  
सवर होता है । अनुप्रेक्षा दानाका निमित्त है इसलिये अनप्रेक्षा वचन मध्यमें दिया है । अनप्रेक्षाका  
चिन्तन करना तथा यह जोबक उत्तमक्षमादिवा ठीक तरहम पाठन करना है और परीपहाका जापनक  
लिये उन्माहित होता है ।

य परीपहा कौन कौन है और क किमलिय महन किं जात है यह बतानेक लिये यह सूत्र बतल है—

मागसं व्युत्स न होतक लिये आर कर्मोक्ती निजरा फरनेक लिये

ओ महन करने योग्य हों वे परीपह हैं ॥ ८ ॥

सवरका प्रारम्भ होनेम वह मागका विभाजन है इसलिये सूत्रमें प्रायः माग परम सवरमागका  
ग्रहण करना चाहिए । उसम फल न होनेक लिये और निजरा मित महन करने योग्य पर उर होता है ।

माग विनामा आदिने महन करनेवाले जिनप्रदत्त शराक इत मागमना ध्यम होनेवाले उस

(१) माग इत्यर्थ-मा । (२) वा मत्त-व ।

निर्जीणकर्माणो मोक्षमाप्नुवन्ति ।

तत्स्वरूपसख्यासम्प्रतिपत्त्ययमाह—

क्षुत्पिपासाक्षीतोष्णवशमशकमाग्न्यारतिस्त्रीधर्यानिपद्याशम्याक्रोशवधयाच

माज्जामरोगक्षुभास्पदामससरक्षारपुरस्कारप्रप्ताप्ताप्तानाश्शमानि ॥ ९ ॥

क्षुदान्त्यो वेदनाविधेयो ह्यविशति । एतेषा सहन मोक्षार्थिना कृतव्यम् । तद्यथा—

मिथोनिर्वखाहारगवैपिणस्नदलाम्ने इप्लाम्ने च अनिवृत्तवेदनस्याकाले अक्षेप च मिथो प्रति निवृत्तेच्छम्यावश्यकपरिह्राणि मनागप्यसहमानस्य स्वाध्यायध्यानभावनापरस्य बहु कृत्व स्वकृतपरकृतानशनावमोक्षस्य नीरमाहारस्य सतप्तप्राप्तपतितजलविन्दुकसिप यवत्सहसा परिशुष्कपानस्योदीणक्षुद्धेदनस्यापि सतां मिथालामादलाममधिकगुण मन्य मानस्य क्षुद्द्वार्या प्रत्यश्चिन्तन क्षुद्धिजय ।

जलस्नानावगाह्ननपरिपेकपरित्यागिन पतत्रिवन्नियतासनावसथस्यातिलवणस्ति ग्धस्त्वविरुद्धाहारप्रप्तासपित्तज्वरानशनाग्निभिरुदीर्णा शरीरेन्द्रियोभाधिनी पिपासां

मागक सतत शम्यासम्प परिचयके द्वारा कर्मागमशरको सञ्जुत करनवाळ तथा श्रीपत्रमिक कर्मपरको अनुभव करमवाल क्रमम कर्मोनी निबरा करक मोक्षको प्राप्त होत ह ।

अव उन परीपहोके स्वल्प और सख्याका ज्ञान करानेके लिए आगका सूत्र कहत ह—

क्षुधा त्वा क्षीण, उष्ण, दशमशक नगता अति स्त्री, धर्या, निपद्या, क्षया,

आक्रोश धष याधना अलाम, रोग, सुणस्पर्श, मल, सत्कारपुरस्कार, प्रप्ता,

अघ्नान और अदर्शन इन नामवाले परीपह है ॥६॥

क्षुधादिक वदनाविधय बाह्य ह । मोक्षार्थी पुरयको इनको सहन करना चाहिए । यथा—

जो मिथु निर्दोष आहारका पोष करता ह जो मिथक नही मिथन पर या अल्पमात्रामें मिथन पर दुषावेदनाको नहीं प्राप्त होता अकारममें या अक्षममें जिस मिथा लनकी इच्छा नही होती आवश्यककोही हानिको जो षोडा भा सहन नही करता जो स्वाध्याय और ध्यानभावनामें तत्पर रहता ह जिनम बहुत वार स्वहन और परकृत अनपम ब अकमोत्थ तप किया ह जो नीरम आहारको खता है अत्यन्त गरम मोक्ष विरोही हुइ अल्पको कतिपय बुद्धिक समान जिनका जलपान मूल गया ह और क्षुधा बदलाकी उदीरणा होनपर मी जो मिथालामको अपदा उमके अस्मानका अधिक गुणकारी मानता ह उसका दुषाजन्य बाधाका चिन्तन नहो करना क्षयापरीपहजय ह ।

जिनम जयम स्नान करन उयमें अबगाह्न करन और उमम मिथन करनका त्याग कर लिया है जिनका परीक ममान आमन और आशाम नियत नहा ह जो अतितार अतिस्निग्ध और अतिमद प्रहति बिच्छ आहार धीप्मकापीन आतप पित्तज्वर और अनपम आत्तिक कारण उत्पन्न हुइ तथा

प्रत्यनाश्रियमाणप्रतीकारस्य पिपासानलशिखा धृतिनवमृद्घटपूरितशीतलसुगन्धिसमाधिधारिणा प्रशमयत पिपासासहन प्रशस्यते ।

परित्यक्तप्रच्छादनस्य पक्षिवदनवधारितालयस्य वृक्षमूलपयिशिलातलादिषु हिमा नीपतनशीतत्रानिलमम्पाते तत्प्रतिकारप्राप्तिं प्रति निवृत्तेच्छस्य पूर्वानुभूतशीतप्रतिकारहेतुवस्तूनामस्मरतो ज्ञानभावनागभागारे वसत शीतवेदनासहन परिकीर्त्यते ।

निवाते निजले श्रीष्मरविकिरणपरिदुष्कपतितपणव्यपेतच्छायातरुष्यटव्यन्तरे यदृच्छमोपनिपतितम्यानशानाद्यम्यन्तरसाधनोत्पादितवाहस्य दवाग्निनाहपरपदातातपज नितगलतालुशोषम्य सत्प्रतीकारहेतून् यद्गुणानुभूतानश्चिन्तयत प्राणिपीडापरिहागवहितचेतसश्चाग्नित्ररक्षणमुष्णसहनमित्युपवर्ष्यते ।

‘दशमशक’ ग्रहणमुपलक्षणम् । यथा “क्वाक्यो रक्ष्यतां सर्पिः” इति उपघातकोर्पे लक्षण काकग्रहण तेन दशमशकमक्षिकापिष्टाकपुत्तिकात्मलुणकीटपिपीलिकावदिचकादयो

शरीर और इन्द्रियोंका मन्थन करनेवालो पिपासाका प्रतीकार करनेमें आदरभाव नहीं रखता और जो पिपासारूपी अग्निजिवाको सन्तोषरूपी नूतन मिट्टीक घड़में भर हुए शीतल सुगन्धि समाधिरेपी जलस घान्त कर रहा हू उनक पिपासाजय प्रशसाक योग्य हू ।

जिसेन आवरणका त्याग कर लिया हू पक्षीक समान जिसका आवाम निदिचत नहीं हू वृक्षमूल शोष और शिलातरु आदिपर निवास करते हुए बर्फ गिरन पर और शीतल हवाका झोंका आने पर उनका प्रतीकार करनेकी इच्छास या निवृत्त हू पहल अनुभव किये गये शीतके प्रतीकारक हेतुभूम वस्तुओंका जो स्मरण नहीं करता और जो ज्ञानभावनारूपी गर्भागारमें निवास करना हू उसके शीत वेदनाजय प्रशसाक योग्य हू ।

निर्वाण और निजल तथा श्रीष्मकालीन मूयकी चिरणोंस मूल कर पत्तोंक गिर जानेस छायारहित वृक्षोंस युक्त एस वनक मध्य जो अपनी इच्छानुसार प्राप्त हुआ हू अनगन भाग्नि आभ्यन्तर साधनबध जिस ताह उत्पन्न हुई हू दवाग्निजय वाहू बतिकठोर वायु और आतपक कारण जिस गल और तालुमें शोष उत्पन्न हुआ हू जो उनक प्रतीकारक बहुमम अनुभूत हेतुओंका जानता हुआ भी उनका चिन्तन नहीं करता हू तथा जिसका प्राणियोंकी पीडाके परिहारमें पित्त लगा हुआ हू उस साधुके आग्निजक रक्षणस्य उष्णपरीपहजय कही जाती हू ।

मूत्रमें दशमशक पदका ग्रहण उपलक्षण हू । जम कौशाम घीकी रक्षा करनी चाहिए महां काक पदका ग्रहण उपधानक जिसेन जीव हू उनका उपलक्षण हू इसलिए ‘दशमशक’ पदम दशमशक मकली पिसुं छोटी मकली अटमल कोट शोटी और धिच्छू आदिका ग्रहण हाता हू । जो इनक द्वारा की गई बापाको बिना प्रतीकार किये महन करता हू मन वचन और वायम उन्हें बाधा नहीं पहुँ

(१)—गीतानिक—ब्रह्म, वि १ वि २ । (२)—ग्रहण दशमशकपदक । यथा आ वि १ वि २ ना । (३) उष्णपरीपहजय—मू ।



गृह्यन्ते । तत्कृता वाधामप्रतीकारां सहमानस्य तेषां याथा त्रिधाऽप्यकुर्वाणस्य निर्वाणं प्राप्तिमात्रसकल्पप्रावरणस्य तद्वदनासहन दशमशकपरिपहस्यमत्युच्यते ।

जातरूपवशिकल्पक जातरूपधारणमशक्यप्रार्थनीय याचनरक्षणहिंसनादिषोपत्रिनिमित्त निष्परिग्रहत्वाभिर्वाणप्राप्तिं प्रत्येकं साधनमनन्यबाधन नाग्न्य विभ्रतो मनोविक्रियाविष्णुतिविरहात् स्त्रीरूपाप्यत्यन्ताशुचिकुणपरूपण भावयतो रात्रिन्दिव ब्रह्मचर्यमखण्डमातिष्ठमानस्याचेतप्रतधारणमनवद्यमवगन्तव्यम् ।

सयतम्येन्द्रियपटविषयसम्बन्ध प्रति निरस्तुकस्य गीतनृत्यवादित्रादिविरहितेषु शून्या गारदेवकुलतरुकोटरशिलागुहादिषु स्वाध्यायध्यानभावनातरतिमास्कन्दतो वृष्टश्रुतानुभूतरतिस्मरणतत्कथाश्रवणकामशरप्रवर्षनिर्विवरहृदयस्य प्राणिषु सदा सदयस्यारतिपरिपहजयोज्यसेम् ।

एकान्तेष्वारामभवनादिप्रदेशेषु नवयौवनमदविभ्रममदिरापानप्रमत्तासु प्रमदासु वाधमानासु क्रूमवत्सवृत्तन्द्रियहृदयविकारम्य ललितस्मितमृदुकथितसविलासवीक्षणप्रहसनमर्दमन्धरगमनममयशरव्यापारविफलीकरणस्यै स्त्रीवाधापरिपहसहनमवगन्तव्यम् ।

याता है और निर्वाणकी प्राप्तिमात्र सकल्प ही जिसका जोड़ना है उसका उनकी वदनाको सह रना दशम शक परीपहस्य कहा जाता है ।

वाक्कक स्वकक समान जो निष्कक जातरूपको धारण करने रूप है जिसका याचना करने से प्राप्त होना अशक्य है जो याचना रसा करना और हिंसा आवि दोषोय रहित है जो निष्परिग्रहक हानम निर्वाण प्राप्तिका अनन्य साधन है और जो अन्य बाधाकर नहीं है एत नाग्न्यको जो धारण करणा है जो मनके विक्रियारूप उपद्रव रहित होना कारण स्त्रियोंके रूपको अग्न्यन् अविविक्त बन्धुनर अनुभव करता है और जो दिन रात अन्ध ब्रह्मचर्यको धारण करना है उसका निर्वाण अचलद्वय धारण जानना चाहिए ।

जो मयत इन्द्रियोंके इष्ट विषय सम्बन्धक प्रति निरस्तुक है जो गीत नृत्य और वाग्नि आदिमें रहित शून्यधर शकुल तरुकोटर और शिलागुहा आदिमें स्वाध्याय ध्यान और भावनामें मीन है पहनना हुक मुक हुक और अशक्य क्रिय हुक विषय भोगक स्मरण विषयभोग सम्बन्धी कथाके श्रवण और कामगार प्रकाश किमिका हृदय निदिष्ठ है और जो प्राणियोंके ऊपर सदाकाल सदय है उसका अतिरिचीपहस्य जानना चाहिए ।

एकान्तगम वगैरि और भवन आदि स्थाना पर नवयौवन मन्त्रिभ्रम और मदिरापानस प्रमत्त हृदयत्रिपाक ढाग याथा पठुषान पर कछाकमान जिनम इन्द्रिय और हृदयक विकारको रोक लिया है तदा जिनम मन्त्र मुखात् सम्प्रापण निरच्छो मन्त्ररौत दयना हेमता मदभरी धीमी चाम्पक लला

(१)-गणपतार्च-ना ना दि ० आ । (२) 'मुरगिषिचालुमुखा सम्बन्ध वि कामनावर्षणता ।

-नववया ना ६ । (३) नहृदे-च । (४) परपण-म । (५)-नववयगण्य आ दि १ दि २ ।

दीर्घकालमुपितगुरुमुत्तद्रहाद्यस्याविगतव घमोक्षपदाथतत्त्वस्य समयमायतनभक्तिह-  
 नोदेशान्तरातिष्येरुणाऽभ्यनुज्ञातस्य पवनवसि मङ्गतामङ्गीकृतवतो वृद्धोऽजगनाबमोदय  
 वृत्तिपरिमख्यानरसपरित्यागादिवाधापरिकलान्तकामस्य दधानालप्रमाणापेतमध्वगमन  
 समयविरोधि परिहृततो निराकृतपादावरणस्य परुषशकराकष्टकाविष्य<sup>१</sup> घनजातचरणश्वद  
 स्यापि सत पूर्वोचितयानवाहनादिगमनमम्मरतो यथाकालमावश्यकापरिहाणिमास्वन्दत  
 स्वर्गापरिपट्टमहनमवसेयम् ।

स्मणानोद्यानधून्यायतनगिरिगुहागह्वरादिष्वनम्यस्तपूर्वेषु निवसत आदित्यप्रकाशं  
 स्वेन्द्रियज्ञानपरीक्षितप्रदेधे कृतनियमक्रियस्य निपद्यां नियमितकालामास्यितवत्स मिह  
 व्याघ्रादित्रिविधभीषणध्वनिश्रवणाग्निभूतभयस्य चतुर्विधोपसगसहनादप्रभ्युतमोक्षमागस्य  
 धीरासनात्कुटिकाद्यामनादविचलितविग्रहस्य तत्कृतवाधासहन निपद्यापरिपट्टविजय  
 इति निदधीयते ।

स्वाध्यायध्यानाध्वश्रमपरिलेदिस्य माहूतिकी खरविषमप्रचुरशकराकपालसङ्कटा<sup>२</sup>

और कामबाण मारणा आदिको विफल कर दिया है उसका स्त्रीबाधापरीपट्टजय जानना चाहिए ।

जिसने दीर्घकाल तक गुरुकुलमें रहकर ब्रह्मचर्यको धारण किया है जिसने बन्ध-मोक्ष पदार्थोंक  
 स्वरूपको जान लिया है समयक आयतन धारणको भाजन बनक लिए जो दधानतरका अतिथि बना है  
 गुणक द्वारा जिस स्वीकृति मिली है जो मायुक समान नि सगताको स्वीकार करता है बहुत धार अनमन  
 अक्षमोक्ष्य कृतिपरिमख्यान और रसपरित्याग आदि अन्य बाधाक कारण जिनका धरीर परिकल्पान्त है  
 ददा और कालक प्रमाणास रहित तथा समयविरोधी मागगमनका विषय परिहार कर दिया है जिसमें  
 मङ्गाङ्ग आदिका त्याग कर दिया है तीक्ष्ण ककड़ और बाँस आदिक विषयन चरणमें सत्क उन्मत्त होने  
 पर भी पहल योग्य यान और वाहन आग्निस गमन करन का जो स्मरण नहीं करता है तथा जो यथाकाल  
 आभयकाणा परिपूषण परिपालन करना है उसका शर्गापरीपट्टजय जानना चाहिए ।

जिनमें पहल रहनका अभ्यास नहीं किया है एम समणान उद्यान धूम्यधर, निरिगुफा और गहू कर  
 आदिमें जा निवास करता है आग्नियक प्रकाश और स्वन्द्रिय ज्ञानम परामित्त प्रथममें जिसने नियमक्रिया  
 की है जो नियमकाल निपद्या लगा कर करता है मिह और व्याघ्र आदिकी माना प्रकारकी भीषण  
 ध्वनिक मूननम जिन किन्ही प्रकारका भय नहो होना चार प्रकारक उपसगक सहन करनम जो भीष  
 मागम ध्यन नहो हुआ है तथा बागमन और उच्छुनिका आगि आमनक म्गानम जिनका धाराग चलाय  
 मान नहो हुआ है उसक निपद्याकृत बाधाका सहन करना निपद्यापरीपट्टजय निदिशत हाता है ।

जो स्वाध्याय ध्यान और अध्वश्रमक कारण शककर जा कठोर विषय तथा प्रचुरमात्रामें कष्टक

(१)-सौम्यान्त-क । (२)-स्यक-म् । वि १ वि २ । (३) श्रियि क्षारियस्येन्द्रियज्ञान प्रकारपरीक्षि  
 नप्रयग न्नि पात्र । (४)-वेत्ता प्रहृत-क । (५)-नकारविधी-म ।



बाह्याभ्यन्तरतपोऽनुष्ठानपरस्य तद्भावनावशेन निम्सारीकृतमूर्ते पटुतपनताप  
निष्पीतसारतरोरिव विरहितच्छायस्य त्वगम्पिशिराजाल्मात्रतनुयत्रस्य प्राणात्यये  
मत्स्यप्याहारवसतिभेषजादीनि दीनान्मिधानमुल्लववर्णार्थं गसञ्ज्ञादिभिरयाचमानस्य मि  
क्षाकालेऽपि विद्युदुद्योतवत् दुरुपलक्ष्यमूर्तर्याचिनापरिपहसहनमवसीयते ।

वायुवदसङ्गाधनेकदेशचारिणोऽभ्युपगतककालसम्मोजनस्य वाच्यमस्य तत्समितस्य  
वा सकृत्स्वतनुदशनमात्रत त्रस्य पाणिपुटमात्रपात्रस्य घट्टपु दिवसेषु घट्टपु च गृहेषु मिक्षा  
मनवाप्याप्यसकिलष्टचेतसो दातृविद्यपपरीक्षानिस्तमुकस्य लाभादप्यलाभो मे परम  
तप इति सन्तुष्टस्यालाभविजयोऽवसेय ।

सर्वाङ्गचिनिधानमिदमनित्यमपत्रिणाणमिति शरीर निःशङ्कल्पत्वाद्दिगतसंस्कारस्य  
गुणरत्नभाण्डसञ्चयप्रवधनसरक्षणसंभारणकारणत्वाद्भ्युपगतस्थितिविधानम्याक्षप्रक्षण  
यद् व्रणानुलेपनवद्वा घट्टपनारमाहारमभ्युपगच्छतो विरुद्धाहारपानसेवनवम्यजनितवा  
तादिधिकाररोगस्य युगपधनकदातसस्यव्याधिप्रकोपे सत्यपि तद्भवतिता विजह्नो जस्ली  
पक्षिप्राप्याद्यनेकतपोविशेषद्विभोगे सत्यपि शरीरनिस्मृहत्वात्तत्प्रतिवारानपक्षिणो  
रोगपरिपहमहनमवगन्तव्यम् ।

जो बाह्य और अन्त्यतर तपक अनुष्ठान करनेमें तत्पर हूँ जिससे उपकी भावनाक कारण  
अपन शरीरको सुखा डाला है जिसका तीक्ष्ण सूयके तापक कारण सार क छाया रहित युक्त  
समान स्वभा अस्थि और शिराजाल्मात्रस युक्त शरीरयत्र रह गया हूँ जो प्राणोंका वियोग  
होने पर भी आहार वसति और दवाई आदिकी चीज घालू कहकर मुझकी विवशता दिखाकर क  
सजा आदिसे द्वारा याचना नहीं करता तथा भिक्षाक समय भी जिसकी मूर्ति विजलीकी धमकक  
समान दुरुपलक्ष्य रहती हूँ एस साधुन याचना परिपहजय जानना चाहिए ।

वायुक समान नि मग होतय जो अतक दशामें विषरण करता हूँ । जिसने दिनमें एक कालक भोजनको  
स्वीकार किया हूँ जो मौन रहता हूँ या भावासमितिका पालन करता हूँ एक बार अपन शरीरको निम  
शानामात्र जिसका मिडाल हूँ पाणिपुट ही जिसका पात्र हूँ बहुत दिन तक या बहुत भरामें भिक्षाक  
महा प्राण होने पर भी जिसका क्षित मकल्लास रहित हूँ ताताविद्यपकी परीक्षा करनेमें जो निरस्तुन  
हूँ तथा कामम भी अक्षान मर सिंग परम तप हूँ इम प्रकार जा मनुज हूँ उमक अमान परिपहजय  
ज्ञानना चाहिए ।

यह सब प्रकारक अगुषि पदायोंका आशय हूँ यह अनित्य हूँ और परित्राणम रहित हूँ म प्रकार  
इम शरीरक मकम्परहित होनाम जो विगतमस्कार हूँ गुणरत्नो रत्नाक पात्रक मस्य बधन मरक्षण  
और मन्धारणका कारण होनाम जिसने शरीरकी स्थितिविधानका मल प्रकार स्वीकार किया हूँ युक्त  
भोजन पगानक समान या दश पर तप करनेक समान जो बहुत उपकारकाल आहारको स्वीकार करता  
हूँ बिना आहार पात्रक मवतल्प विषमनाम जिसका ताता विद्यारण उपनत हूँ हूँ एकमात्र मकल्ला

(१) शार्ङ्गविद्या अर्थ-म । (२) अन्तमस्य वा आ., हि १ रि-२। (३)-मः ५ अ. १। (४)-  
रत्नाकार-का हि २ अ. १।

तृणग्रहणमुपलक्षण कस्यचिद्व्यघनदुःखकारणस्य । तेन शुष्कतृणपरुषशकराकण्ठक  
निशितमृत्तिकाशूलादिव्यघनकृतपादवेदनाप्राप्तौ सत्यां तत्राप्रणिहितचेतसश्चर्याशाम्या  
निपद्यासु प्राणिपीडापरिहारे नित्यमप्रमत्तचेतसस्तृणादिस्पशनाधापरिपहविजयो वेदितव्य ।

अप्यायिकजन्तुपीडापरिहारया मरणान्स्नानद्रतधारिणः पट्टरविकिरणप्रताप  
जनितप्रस्रवदाक्षतपवनानीतपासुनिचयस्य सिध्मकच्छुद्रद्वुदीणकण्डूयायामुत्पन्नायामपि कण्डू  
यनविमदनसघट्टनविबर्जितमूर्ते स्वगतमलोपचर्यपरगतमलोपचययोरसकल्पितमनस  
संज्ञानाचारित्रविमलसलिलप्रक्षालनेन कममलपक्व निराकरणाय नित्यमुद्यतमतेमलोपीडा  
सहनमास्थायत ।

सत्कारः पूजाप्रशमात्मकः । पुरस्कारो नाम क्रियारम्भादिष्वभ्रतः करणमामन्त्रण  
वा तत्रानादरो मयि क्रियते । शिरोधितग्रहणार्थस्य महातपस्विन स्वपरसममनिणयमस्य  
बहुकृत्व परवाधिविजयिनः प्रणामभक्तिसम्भ्रमासनप्रदानादीनि मे न कश्चित्करोति ।  
मिथ्यादृष्ट्य एवातीव भक्तिसन्तः किञ्चिद्विज्ञानन्तमपि सवस्रसम्भावनया सम्मान्य स्वर्स  
म्याधिर्योका प्रकोप होन पर भी जो उनक आधीन नहीं हुआ है तथा तपोविधायक अलौपधि और प्राप्ति  
आदि अनक श्रद्धिर्योका सम्बन्ध होने पर भी शरीरस निस्पृह होनक कारण जो उनक प्रतीकारकी अपेक्षा  
नहीं करता उसक रोगपरीपहसहन जानना चाहिए ।

जो कोई विषमरूप दुःखका कारण है उसका तृण पक्का ग्रहण उपलक्षण है । इसीप्रकार सूखा  
विनका कठोर कण्डू कटाटा तीक्ष्ण मिट्टी और शूल आदिके विषमरूप परोंमें घटनाके होन पर उसमें  
जिसका चित्त उपयुक्त नहीं है तथा चर्या शाम्या और निपद्यामें प्राणिपीडाका परिहार करनक सिद्ध  
जिसका चित्त निरन्तर प्रमादरहित है उसक तृणस्पर्शादि धाधापरीपहजय जानना चाहिए ।

अप्यायिक जीवोंकी पीडाका परिहार करनक लिए जिसन मरणपयन्त अस्नानद्रत स्वीकार किया  
है तीक्ष्ण सूयकी बिरणोंक तापस उत्पन्न हुए पसीनामें जिसक पवनक द्वारा शाम्या गया घृत्सिन्धय शिपक  
गया है सिध्म लाज और दादक होनेस सुखकीक होन पर भी जो सुखसाधन मन्त्र करने और दूसर  
पदाक्षय घिसनेरूप क्रियास रहित है स्वगत मलका उपचय और परगत मलका अपचय होनपर जिसके  
मनमें किसी प्रकार विकल्प नहीं होता तथा सम्पन्नान और सम्पन्नधारित्ररूपी विमल जलके प्रक्षालन  
द्वारा जो कममलपक्वको दूर करनक लिए निरन्तर उद्यतमति है उसक मलोपीडासहन कहा गया है ।

सत्कारका अर्थ पूजा प्रशसा है । तथा क्रिया-आरम्भ आदिकमें श्राय करना या आमत्रवेदना पुरस्कार  
है । इस विषयमें यह मरा अनादर करता है । बिरकासस मन ब्रह्मचर्यका पालन किया है महातपस्वी है  
स्वममय और परममयका निणयज्ञ है मन बहुत बार परवाधियोंको जीता है तो भी कोई मुझे प्रणाम  
और भक्ति नहीं करता और उल्लाहम आमन नहीं दता मिथ्यादृष्टि ही अत्यन्त भक्तिवास ही है कुछ

(१)-व्यघन-मु । (२)-श्वेताशय-मु । (३)-जोषकवन-मु । (४) संज्ञान-मु । (५)-पञ्चकाल-  
विश-मु । (६)-न्यायन । वैगमन्त्रमस्ताराभ्यामुत्पन्नग्रहणहनं मलमामाभ्यहनं श्रद्धर्कनीति न पूषगुणम् ।  
सन्तारः मु । (७)-दरोऽपि-मु । (८) स्वगाहनप्रमा-ता ।

मयप्रभावन कुर्वन्ति । व्यन्तरादयः पुरा अस्युग्रततपसा प्रत्यग्रपूजां निवतयन्तीति मिथ्या  
 द्युतियदि न स्यादितानीं कस्मात्मादृशान न कुर्वन्तीति दुष्प्रणिधानविरहितचित्तस्य सत्कार  
 पुरस्कारपरिपहृजय इति विज्ञायते ।

अङ्गपूर्वप्रकीर्णकविदारदस्य शब्दन्यायाध्यात्मनिपुणस्य मम पुरस्तादितरे भास्कर  
 प्रभाभिभूतखद्योतोद्योतवन्नितरां नावभासन्त इति विज्ञानमदनिरास प्रज्ञापरिपहृजय  
 प्रत्यतथ्य ।

अज्ञोऽयं न वेत्ति पशुमम इत्येवमाद्यधिधोपवचन सहमानस्य परमदुस्वरतपोऽनुष्ठा  
 यिनो नित्यमप्रमत्तचेतसो मेऽप्यौपि ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते इति अनभिसन्देवतोऽज्ञानपरि-  
 पहजयोऽवगन्तव्य ।

परमवराग्यभावनाशुद्धहृदयस्य विदितसकलपदाघतस्वस्याहृदायतनसाधुधमपूजकस्य  
 चिरन्तनप्रव्रजितस्याद्यापि मे ज्ञानातिशयो नोत्पद्यते । महोपवासानुष्ठायिना प्रतिहाय  
 विधोषा प्रादुरभूवन्निति प्रलापमात्रमनधिकेय प्रव्रज्या । विफलं व्रतपरिपालनमित्येवमम  
 मादधानस्य दशनविदुश्चियोगाददशनपरिपहृसहनमवसातथ्यम् ।

नही जाननवाक को भी सबज्ञ समझ कर आदर सत्कार करके अपन समयकी प्रभावना करते हैं व्यन्तरा  
 दिवः पहलू अत्यन्त उग्र तप करनेवालोंकी प्रत्यग्र पूजा रखत व यह यदि मिथ्या धृति नहीं ह तो  
 इस समय व हमारे समान तपस्वियोंकी क्यों नहीं करते ह इस प्रकार जोट अभिप्रायम जिनका  
 चित रहित ह उमक सत्कारपुरस्कारपरिपहृजय जानना चाहिए ।

म अङ्ग पूर्व और प्रकीर्णक पास्त्रोंमें बिचारद हूँ तथा अध्यात्मन न्यायमात्र और अध्यात्मगान्धर्मों  
 निपुण हू । मर भाग दूसरे जन मूढकी प्रमाण अभिभूत हुए गद्योतक उद्योतक समान बिस्तृत नहीं  
 सुनोमित होत हैं इस प्रकार विज्ञानमत्का निरास होमा प्रज्ञापरिपहृजय जानना चाहिए ।

यह मूढ ह कुछनहा जानता ह पशुम समान ह इत्यादि तिरस्कारक बचनोंकी में सहन करना ह  
 मन परम दुस्वर तपना अनुष्ठान किया ह मरा चित निरन्तर अप्रमत्त रहता ह तो भा मर अभी तक  
 भी ज्ञानका अतिशय नहा उत्पन्न हुआ ह इस प्रकार बिचार महा करनेवाले अज्ञानपरिपहृजय जानना  
 चाहिए ।

परम वराग्यकी भावनाम मरा हृदय मुद्ध ह मन समस्त पक्षोंक रहस्यको जान लिया ह में  
 अग्रहन्त आयतन मापु और धमका उपामक हें चिरकालम म प्रव्रजित हूँ तो भी मर अभी भा जानति  
 मम मनी उत्पन्न हुआ ह । महोपवास आदिका अनुष्ठान करनेवालाक प्रतिशयविशय उत्पन्न हत  
 पर प्रमापमात्र ह यह प्रव्रज्या अनपक ह वर्तोंका पासन करना निरर्थक ह इत्यादि बातोंका ज्ञानविगुडि  
 क पापम मनमें नही बिचार करनेवाक अज्ञानपरिपहृमहन जानना चाहिए ।



यत्वाच्च क्षदादिवेत्नाभावात्तत्सहनकृतपरिपहृष्यपदेशो न युक्तिमवतरति ? तन्न । किं भाग्यम् ? शक्तिमात्रस्य विवक्षितत्वान् । सर्वोद्यमिद्विदेवस्य मध्यमपुषिवीगमन सामर्थ्यपदेशवत् ।

अहं यदि शरीरवत्त्वात्मनि परिपहमन्निधान प्रतिज्रायते अयं भगवति उत्पन्नमेव शान कमचतुःशक्यफलानुभवनवद्यवर्तिनि कियन्त उपनिपतन्तीत्यत्राध्यते । तस्मिन्मुन — एकादश जिने ॥ ११ ॥

निगम्यतातिवमचतुष्टये जिने वेदनीयमद्भावात्तथाप्या एकादशपरिपहा सन्ति । ननु च मोहनीयोप्यसहायाभावात्क्षुणादिवेदनाभावे परिपहृष्यपदेशो न युक्त ? मत्पमेव मतन्—वेत्नाभावेऽपि द्रव्यकममद्भावापेक्षया परिपहापचार क्रियते निगम्यपनिगम्य ज्ञानातिशय चिन्तानिरोधामात्रेऽपि तत्फलकमनिगम्यफलापेक्षया ध्यानपिचारवत् । अथवा—एकादश जिने 'न मन्ति' इति वाक्ययोप मत्पनीय सोपस्कारत्वात्पुत्राणाम् ।

प्राक्—इत स्थायीं मोहक उन्मयकी महायत्ना नहीं होनेय और मन्द उन्मय ज्ञानस दुषाणि बढनाका अभाव ह इमिण्ड इनक कायरूपस परीपह सजा युक्तिको नहीं प्राप्त हाती ।

ममाधान—ममा नहीं ह क्योंकि यहाँ शक्तिमात्र विवक्षित ह । जिस प्रकार सर्वोद्यमिद्विक दबके मानका पृथीक समनक सामर्थ्यका निष्पादक ह उमी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिए ।

यदि शरीरवत् आत्मामें परीपहाक मन्निधानकी प्रतिज्ञा की जाती ह ता कबलज्ञानका प्राप्त और चार बमोंक फलक अनमवनके वनवर्ती भगवान्क विगत परापह प्राप्त हात ह इमिण्ड यहाँ कहत ह । उनम मो—

मिममें ग्यारह परीपह सम्भव हैं ॥ ११ ॥

त्रिगम्य चार पातिया बमोंका नाप कर दिया ह एम जिन भगवान्में बन्नीयकमका मद्भाब जिनम तिमिमितक ग्यारह परीपह होत ह ।

प्राक्—माहनीयक उन्मयका महायत्ना न हानस दुषाणि बढनाक न हानपर परापह सजा युक्त नहा ह ।

ममाधान—यह कथन मत्प ही ह तथापि बन्नाका अभाव हानपर भी उन्मयकमक मद्भाबकी अपराध ग यहाँ परापहासा उपचार किया जाता ह । जिस प्रकार ममम्य ज्ञानाकरणक नाप ही जानकर एक गाय समनक पदायोंक श्रव्यको प्रकाशित करनकाय कबलज्ञानातिशयक ज्ञानपर चिन्ता-निगम्यका अभाव हानपर भा बमोंक नाप रूप उमक फलका अपथा ध्यानका उपचार किया जाता ह उमी प्रकार परी परीपहासा उपचारम कथल प्राप्तना चाहिए, अथवा जिन भगवान्में ग्यारह परापह नहीं ह ममा थापयान बन्नाक कर गना चाहिए क्योंकि मुन उपस्कारमहिण हात ह । वाक्य पापको बन्ना

(१) परिपहामुत्पत्तीनादि कैत्रा गणा बडा मया । परापही चरिता ह इमकारम प्रादिमु ॥ - ४२९ ॥ ११ ॥ (२) नत वाह-क ।



“कल्प्यो हि वाक्वपशेषो वाक्यं च वक्तव्यधीनम्” इत्युपगमात् मोहोदयसहायीकृतश्रुत्वादि  
‘वेदनाभावात् न सन्ति’ इति वाक्यशेषः ।

करनी चाहिए और वाक्य वक्ताक अधीन होता है। ऐसा स्वीकार भी किया गया है। मोहक उदमकी महा  
यतास होनवाली क्षुधादि वदनाओंका अभाव होनेसे ‘नहीं है यह वाक्यशेष उपन्यस्त किया गया है।

२. विशयार्थ—जिन भगवान्क असाता वेदनीयता उदय होता है और यह क्षुधादि वदनाका कारण  
है इसलिए यहाँ जिन भगवान्क कारणकी दृष्टिस क्षुधादि ग्यारह परीपह कहे जात है। पर क्या सच  
मुझमें जिन भगवान्क क्षुधादि ग्यारह परीपह होत है यह एक प्रश्न है जिसका समाधान टीकामें दो  
प्रकारसे किया है। पहल तो जिन भगवान्क क्षुधादि परीपहोंक होनेक कारणक सद्भावकी अपेक्षा  
उनक अस्तित्वका निद श किया है पर कायरूपमें य क्षुधादि ग्यारह परीपह जिन भगवान्क नहीं होत  
इसलिए इस दृष्टिस न सन्ति’ इस वाक्यशेषकी योजना कर वहाँ उनका मिषेय किया है। अब यहाँ  
यह दखना है कि जिन भगवान्क क्षुधादि ग्यारह परीपह नहीं होत यह कस समझा जाय। य इस कालमें  
पाम तो जात नहीं इसलिए प्रत्यक्ष देखकर तो यह जाना नहीं जा सकता। एक मात्र आगमको पुष्ट  
करनवाली युक्तियाँ ही शाय रहती हैं जिनक अबलम्बनसे यह बात समझी जा सकती है अतः यहाँ  
उन्हीका निद श करत हैं—

१. कबली जिनक शरीरमें निगोद और त्रस जीव नहीं रहत। उनका क्षीणमोह गुणस्वानमें  
अभाव होकर य परम औदारिक शरीरके धारी होते हैं। अतः भूष प्यास और रोगाधिकता कारण  
नहीं रहनस उन्हें भूष प्यास और रोगाधिककी बाधा नहीं होती। वेवोंके शरीरमें इन जीवोंक न होनेसे  
यो बिधपता होती है उससे अनन्तगुणी बिधपता इनक शरीरमें उत्पन्न हो जाती है।

२. धैयि आरोग्य करन पर प्रघमत्त प्रवृत्तियोंका अनुभाग उत्तरोत्तर अनन्तगुणा बढ़ता जाता है  
और अपघमत्त प्रवृत्तियोंका अनुभाग प्रति समय अनन्तगुणा हीन होता जाता है। इसलिये तेरहवें  
गुणस्वानमें होनेवाला असाता प्रवृत्तिका उदय इतना बलवान् नहीं होता जिससे उस क्षुधादि कार्योंका  
सम्बन्ध माना जा सक।

३. असाताको उगीरणा छठ गुणस्यान तक ही होती है आगे नहीं होती इसलिये उगीरणाक  
अभावसे वदनीय कम क्षुधादिरूप कायका वदन करानमें असमर्थ है। अब कि कबली जिनक शरीरको  
पानी और भोजनकी ही आवश्यकता नहीं रहती तब इनक न मिलनेसे जो क्षुधा और तुषा होती है वह  
उनके हो ही कैस सकती है। वदनीय कर्मका काय कुछ शरीरमें पानी सत्त्व और भोजन तत्त्वका अभाव  
करना नहीं है। वास्तवमें इनका अभाव अन्य कारणोंसे होता है। हाँ इनका अभाव होनेपर इनकी  
पूतिक लिए जो बेचना होती है वह वदनीय कमका काम है। सो अब कि कबली जिनक शरीरको  
उनकी आवश्यकता ही नहीं रहती तब वदनीयक निमित्तसे तज्जित वदना कस हो सकती है? अर्थात्  
नहीं हो सकती।

आह, यदि सूक्ष्मसाम्परायादियु व्यस्ता परिषदा अथ समस्ता' ता भवेति—

बादरसाम्पराये सर्वे ॥ १२ ॥

साम्पराय कषाय । बादर साम्परायो यस्य स बादरसाम्पराय इति । नेद गुणस्थान विशेषग्रहणम् । किं स हि ? अथनिर्देशः । तत्र प्रमत्तादीना समतानां ग्रहणम् । तेषु हि अक्षीण'नपायदोषत्वात्सर्वे सम्भवन्ति । कस्मिन् पुनश्चारित्र्ये सर्वेषा सम्भव ? सामायिक ५  
च्छदोपस्थापनपरिहारविधुद्धिसयमेपु प्रत्येक सवया सम्भव ।

४ केवली जिनके साक्षात् आख्य सदाकाल होनेस उसकी निजरा भी सदाकाल होती रहती ह इसलिये जिस कालमें असाताका उदय होता ह उस कालमें कबल उसका ही उदय नहीं होता किन्तु अनन्तगुणी शक्तिवाला साताक साथ वह उदयमें आता ह । माना कि उस समय उसका स्वमुलन उदय १ पर वह प्रति समय वधनवाले साता कर्मपरमाणुआंकी निजराक साथ ही होता ह इसलिये असाताका उदय वहां क्षुभादिरूप बदनाका कारण नहीं हो सकता ।

५ सुख दुःखका बदल बदनीय कमका साथ होन पर भी वह मोहनीयकी सहायतास ही होता है । यत केवली जिनक मोहनीयका अभाव होता ह अत वहां क्षुभादिरूप बदनाओंका सद्भाव मानना युक्ति समत प्रतीत नहीं होता । इन प्रमाणोंसे निश्चित होता ह कि कवली जिनक क्षुभादि ग्यारहू परीपह नहीं होत ।

कहत हैं—यदि सूक्ष्मसाम्पराय आदिमें अलग-अलग परीपह होत हैं तो मिलकर क कहाँ होन ह यह मतलानक लिए आगका सूत्र कहत हैं—

बादरसाम्परायमें सब परीपह सम्भव हैं ॥ १२ ॥

साम्पराय कषायको कहत ह । जिसक साम्पराय बादर होता ह वह बादरसाम्पराय कहलाता ह । यह गुणस्थान विनापका ग्रहण नहीं ह । तो क्या ह ? सायकनिर्देश ह । इसस प्रमत्त आदिक समतोंका ग्रहण होता ह । इनमें कषाय और दोषोंक क्षीण न होनेस सब परीपह सम्भव हैं ।

पका—तो किस चारित्र्यमें सब परीपह सम्भव ह ?

समाधान—सामायिक छनोपस्थापना और परिहारविधुद्धिसयमे इनमें प्रत्येकमें सब परापह सम्भव हैं ।

विशेषण—बादरसाम्पराय अनिर्दिष्टकण नामक नौवें गुणस्थानका दूसरा नाम ह । नौवें गुणस्थान तक स्पृश कषायका सद्भाव होता ह इसलिये अन्तर्गोपक न्यायस इस गुणस्थानका नाम भी बादरसाम्पराय है । यहाँ बादरसाम्पराय' पदस इस गुणस्थानका ग्रहण न हो इसीलिये टीकामें इसका निषेध किया ह क्यों कि बादरसाम्परायमें तो बादर परीपह सम्भव हैं बादरसाम्पराय नामक नौवें गुणस्थानमें नहीं । कारण कि इस गुणस्थानमें दानमोहनीयका उदय नहा जाता । नानमोहनीय २५

(१) नवमोऽध्यायः । (२) निरुद्धा ज्ञानपारायो अर्था इन्द्रियन्याया । पारायो दंगण मोहा कारीता शब्द रात्रि ॥—कच्छत इ. ४ वा २३ । (३) जलीराण्येकस्य—आ दि १ दि २ ता

(४)—नवमोऽध्यायः सर्वे—५, ता ।

आह गृहीतमेतत्परिग्रहाणा स्मानविशेषावधारणम् इव तु न विप्र कस्या प्रकृते  
क काय इत्यत्रोच्यते—

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ज्ञाने ॥ १३ ॥

इदमयुक्त वतत । किमत्रायुक्तम् ? ज्ञानावरणे सत्यज्ञानपरिग्रह उपपद्यत, प्रज्ञापरि  
१ यह पुनस्तदपाये भवतीति कथं ज्ञानावरणे स्यात् ? इत्यत्रोच्यते—क्षायोपशमिकी प्रज्ञा  
अयस्मिन् ज्ञानावरण सति मद जनयति न सकलावरणक्षये इति ज्ञानावरणे सतीत्युपपद्यते ।  
पुनरपरयो परिग्रहयो प्रकृतिविधेयनिर्देशाभमाह—

क तीन मद हे । उनमेंस सम्यक्त्वमोहनीयका उदय सातवें गुणस्थान तक ही सम्भव ह क्योंकि यहीं  
तक वदक सम्यक्त्व होता ह इसलिए यहाँ पर बादरसाम्पराय अर्थात् स्पृक कपायमें सब परीपह सम्भव  
१ है यही अथ मना चाहिए ।

कहत है—इम परीपहोंक स्वातबिषयका अवधारण किया किन्तु हम यह नहीं जानत कि किस  
प्रकृतिका क्या काय ह इसलिए यहाँपर यह कहत है—

ज्ञानावरणके सद्भावमें प्रज्ञा और अज्ञान परीपह होते हैं ॥ १३ ॥

प्रश्ना—यह अयुक्त ह ?

१५ प्रतिप्रश्ना—यहाँ क्या अयुक्त है ।

प्रश्ना—माना कि ज्ञानावरणके होनपर अज्ञान परीपह उत्पन्न होता ह परन्तु प्रज्ञा परीपह  
उत्पन्न अभावमें होता ह इसलिए यह ज्ञानावरणक सद्भावमें कस हो सकता ह ?

समाधान—यहाँ कहत है—क्षायोपशमिकी प्रज्ञा अन्य ज्ञानावरणके होनपर मदको उत्पन्न करती  
ह समस्त ज्ञानावरणक क्षय होनपर नहीं इसलिए ज्ञानावरणक होनपर प्रज्ञा परीपह होती ह यह कथन  
२ बन जाता ह ।

विधापर्य—बिबल्यका अथ श्रुतज्ञान ह इसलिए जहाँ तक श्रुतज्ञान होता ह वहाँ तक 'म अधिक  
जानता हूँ यह कुछ भी नहीं जानता' ऐसा बिबल्य देखा जाता ह । यद्यपि इस प्रकारका विकल्प  
करनबाल व्यक्तिको अधिक ज्ञानका लाभ ज्ञानावरण कमक प्रकृष्ट क्षायोपशमस होता ह तथापि जब  
तक क्षायोपशमिक ज्ञान होता ह तभी तक यह बिबल्य होता ह और क्षायोपशमिक ज्ञान उदयसापण  
२३ होता ह इसलिए यहाँ पर इस प्रकारक बिबल्यका मुख्य कारण ज्ञानावरण कमका उदय कहा ह ।  
बहुतम जीवाकी मोहका उदय रहत हुए भा एसा भाव होता ह कि म महाप्राज्ञ हूँ मरी धराधरी करन  
बाया अस्य कोई नहीं । पर यहां माँहक उत्पन्न होनबाल इस भावका ग्रहण नहीं किया ह । यहाँ तो  
अपनी अज्ञानताका जो अस्यज्ञानका महामान माननका बिबल्य होता ह उसीका ग्रहण किया ह ।  
एन प्रकार ज्ञानावरणक सद्भावमें प्रज्ञा और अज्ञान दो परीपह हात ह यह निरदिष्ट होता ह ।

पुन भयना परीपहकी प्रकृति विधापर्य ज्ञान करनक मित्त भागका सूत्र कहत ह—



पु वेदोदयादिनिमित्तत्वाद्वाग्म्यादिपरिपहाणां मोहोदयनिमित्तत्व प्रतिपद्यामह ।  
निपद्यापरिपहस्य कथम् ? तत्रापि प्राणिपीडापरिहाराद्यत्वात् । मोहोदये सति प्राणि  
पीडापरिणाम सजायत इति ।

अवशिष्टपरिपहप्रकृतिविशेषप्रतिपादनाद्यमाह—

वेदनीये शेषा ॥ १६ ॥

उक्ता एकादश परिपहा । तेभ्योऽप्ये शेषा वेदनीये सति भवन्ति इति वाक्यस्येव ।  
क पुनस्त ? क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकचर्याशम्यावधरोगतृणस्पशमलपरिपहा ।

शका—नाम्यादि परीपह पुनरोदय आविक निमित्तस हीत है इसलिए मोहोदयको उनका निमित्त  
कहते हैं पर निपद्यापरीपह मोहोदयक निमित्तस कसे होता है ?

समाधान—उसमें भी प्राणिपीडाके परिहारकी मुख्यता होनास बहु मोहोदय निमित्तक माना गया  
है क्योंकि मोहोदयक होना पर प्राणिपीडाके परिणाम होता है ।

विशयाद्य—आप चर्या और शम्याको बधनीयनिमित्तक कहा है और यहाँ निपद्याको मोहनीय  
निमित्तक । य दोनों परीपह एक शकिक हैं । फिर क्या कारण है कि इनमेंसे निपद्याको मोहोदय निमि  
त्तक कहा है । यदि चर्या और शम्या परीपह बधनीयनिमित्तक होत है तो इस बधनीयनिमित्तक क्यों  
नहीं माना जाता । यह एक प्रश्न है जिसका उत्तर टीकामें दिया है । वहाँ बतलाया है कि प्राणिपीडा  
के परिणाम मोहोदयस हीना है और निपद्यापरीपहजयम इस प्रकारक परिणामपर विजय पानकी  
मुख्यता है । यही कारण है कि निपद्याको चारित्रमोहनिमित्तक माना है । माना कि इस विशयास  
चर्या और शम्या परीपहको भी मोहोदयनिमित्तक मान सकत है पर वहाँ कष्टकाविकक निमित्तस  
होनावाली बधनाकी मुख्यता करके उक्त दोनों परीपह वेदनीयनिमित्तक कहा है । सात्यम यह है कि  
चर्या शम्या और निपद्या इनमें प्राणिपीडा और कष्टकाविनिमित्तक बधना य दोनों काय सम्भव हैं ।  
इसलिए इन दोनों कार्याका परिज्ञान करानके लिए निपद्याको मोहनिमित्तक और शेष दोको बधनीय  
निमित्तक कहा है ।

अब अवशिष्ट परीपहोंकी प्रकृति विशयाका कथन करतके लिए आगका सूत्र कहते हैं—

वाक्कीके सब परीपह वेदनीयके समझावमें होते हैं ॥ १६ ॥

व्याख्य परीपह पहलू कह आय हैं । उनस अन्य शेष परीपह हैं । वे वेदनीयक सद्भावमें होते  
हैं । यहाँ भवन्ति यह वाक्यस्य है ।

शका—ब कौन कौन है ?

समाधान—क्षुधा पिपासा शीत उष्ण दशमशक चर्या शम्या बध रोग तृणस्पश और  
मलपरिपह ।

विशयाद्य—शरीरमें मोहनका कम होना पानीका कम होना कष्टका सूखना आदिमें ठण्डी या  
गरमीका होना डाम-मच्छरका काटना गमन व शयन करत समय कष्ट आदिका धुभना किसीक

आह व्याख्यातमिहितलक्षणविकल्पा प्रत्यात्मनि प्रादुर्भवन्त कति युगपदवतिष्ठन्त इत्यत्रोच्यते—

एकाद्वयो भाव्या युगपदेकस्मिन्नैकाग्रविशते ॥ १७ ॥

आहभिधिष्यथ । तेन एकोनविंशतिरपि वचन्ति युगपत्सम्भवतीत्यवगम्यते । सत्कथ मिति चेदुच्यते—शीतोष्णपरिग्रहयोरेक श्वाभ्यानिषद्याचर्याणां 'चायतम एव भवति एक स्मिन्नात्मनि । कुत ? विरोधात् । तत्रयाणामपगमे युगपदेकात्मनीतरेयां सम्भवादेकोन विंशतिविकल्पा बोद्धव्या । ननु प्रज्ञाज्ञानयोरपि विरोधाद्युगपदसम्भव ? श्रुतज्ञानापेक्षया प्रज्ञापरिग्रह अवधिज्ञानौघभावापेक्षया अज्ञानपरिग्रह इति नास्ति विरोध ।

आह उक्ता गुप्तिसमिनिघमनिप्रोक्षापरिग्रहजया सवरहेतव पञ्च । सवरहेतुश्चा रिपसञ्ज्ञो वक्षतव्य इति तदभदप्रदक्षनायमुच्यते—

द्वारा मार्गना गालो-गलोज करना शरीरमें रोगका होना तिनका आदिका चुभना और शरीरमें मलका जमा होना आदि अपन अपन कारणोंसे होते हैं । इनका कारण बढनीय कमका उदय मही ह पर इन कामोंक होन पर मूसकी बढना होती है प्यास रुगती ह आदि वह बढनीय कमका काम ह । एसा मही अमिप्राय समझना चाहिए ।

कहते हैं परीपहोंक निमित्त लक्षण और भव कह । प्रत्येक आत्मामें उत्पन्न होत हुए व एक साथ कितन हो सकत है इन बातको बतलानके लिए आगका सुम कहते हैं—

एक साथ एक आत्मामें एकसे लेकर उभोस तक परीपह विकल्पसे हो सकते हैं ॥ १७ ॥

यहाँ आह अमिर्विभि अममें आया ह । इससे किसी एक आत्मामें एक साथ उभोस भी सम्भव है यह ज्ञान होता ह ।

पना—यह कस ?

समाधान—एक आत्मामें शीत और उष्ण परीपहोंमें कोई एक तथा श्व्या निषद्या और चर्या इनमेंसे कोई एक परीपह ही होत है क्योंकि शीत और उष्ण इन दोनों क तथा श्व्या निषद्या और चर्या इन तीनोंक एक साथ होनेमें विरोध आता ह ।

इन तीनोंक निकाल दन पर एक साथ एक आत्मामें इन परीपह सम्भव होनेस व सब मिलकर उभोस परीपह जानना चाहिए ।

पना—प्रज्ञा और अज्ञान परीपहमें भी विरोध ह इसलिये इन दोनोंका एक साथ होना असम्भव ह ?

समाधान—एक साथ एक आत्मामें श्रुतज्ञानकी अपक्षा प्रज्ञा परीपह और अवधिज्ञान आदि अभावकी अपक्षा अज्ञान परीपह रह सकत ह इसलिये कोई विरोध मही ह ।

कहते ह गुप्ति समिनि घम अनुप्रक्षा और परीपहत्रय य पांच सवरह हनु कह । अब पाणित्र

(१)—वर्षाशरत्पयम व । (२)—रक्षा बाउष्णा । नत आ दि १ दि २ । (३)—ज्ञानापेक्षया म ।

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्परायणपाठ्यात्मिति  
चारित्रम् ॥ १८ ॥

- अत्र चोद्धत—दशविध धर्मो समय उक्त स एव चारित्रमिति पुनर्ग्रहणमनघकमिति ?  
नानघकम् धर्मोऽन्तमूतमपि चारित्रमन्त गृह्यते मोक्षप्राप्ते साक्षात्कारणमिति ज्ञापनायम् ।  
४ सामायिकमुक्तम् । क्व ? दिग्देशानघदण्डविरतिसामायिक— इत्यत्र । तद् द्वित्रिषु  
नियतकालमनियतकालञ्च । स्वाध्यायादि नियतकालम् । इर्यापथाद्यनियतकालम् ।  
प्रमादकृतानघप्रयघविलोप सम्यक्प्रतिक्रिया छेदोपस्थापना विकल्पनिवृत्तिर्वा । परिहृरण  
परिहार प्राणिवघाशिवृत्ति । तेन विशिष्टा शुद्धिर्यास्मिस्तत्परिहारविशुद्धिचारित्रम् ।  
अतिसूक्ष्मकषायत्वात्सूक्ष्मसाम्परायणचारित्रम् । मोहनीयस्य निरवशेषस्योपशमात्समाञ्च  
१ आरमस्वभावावस्थापेक्षालक्षण अथाभ्यातचारित्रमिमास्थायते । पूर्वचारित्रानुष्ठायिमिरा  
स्थायत न तत्प्राप्त प्राक्ष्मोहक्षयोपशमाम्यामित्यथास्थातम् । अथशब्दस्थानन्त र्याधनुत्तिवा

सत्रक सवरका हतु कहना चाहिए इसलिये उसका मद दिक्कानक लिए आगेका सूत्र कहत हैं—

सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथास्थात यह  
पाँच प्रकारका चारित्र है ॥ १८ ॥

- १५ सत्ता—एष प्रकारक धर्मो समयका कथन कर आय ह और वह ही चारित्र ह इसलिये उसका  
किरण ग्रहण करना निरर्थक ह ?  
समाधान—निरर्थक नहीं ह क्योंकि धर्मो अन्तर्भाव होतपर भी चारित्र मोक्ष प्राप्तिका साक्षात्  
कारण ह यह दिक्कानक लिए उसका अन्तमें ग्रहण किया ह ।  
सामायिकका कथन पहल कर आय हैं ।  
२ सत्ता—कहाँ पर ?  
समाधान— दिग्देशानघदण्डविरतिसामायिक—इस सूत्रका व्याख्यान करत समय ।  
वह दो प्रकारका ह—नियतकाल और अनियतकाल । स्वाध्याय आदि नियतकाल सामायिक ह  
और इर्यापथ आदि अनियतकाल सामायिक ह । प्रमादकृत अनर्थप्रवचका अर्थात् हिंसादि अवर्तको  
अनुष्ठानका विलोप अर्थात् सवघा त्याग करत पर जो अस प्रकार प्रतिक्रिया अर्थात् पुनः प्रतौका ग्रहण  
होता है वह छेदोपस्थापना चारित्र ह । अथवा विकल्पोकी निवृत्तिका नाम छेदोपस्थापनाचारित्र ह ।  
३ प्राणिवघसे निवृत्तिको परिहार कहत ह । इस युक्त शुद्धि जिन चारित्रमें होती है वह परिहारविशुद्धि  
चारित्र ह । जिन चारित्रमें कषाय अतिसूक्ष्म हो जाता ह वह सूक्ष्मसाम्परायणचारित्र ह । समस्त मोह  
नीम कर्मक उपशम या क्षयते अथा आरामका स्वभाव ह उस अवस्था रूप जो चारित्र होता है वह अथा  
कषायचारित्र कहा जाता ह । पूर्व चारित्रका अनुष्ठान करतकालमें जिनका कथन किया ह पर मोहनीय  
क क्षय या उपशम होतक पहले जिन प्राप्त नहीं किया इसलिये उन अथाख्यात कहत ह । अथ शब्द

(१)—कालञ्च । प्रमा—या । (२) प्रत्यारम्भति—मु । ता ।

द्विग्वक्षोपमोहक्षयोपशमानन्तरमाविभवतीत्यथ । 'यथाऽऽस्थातम् इति वा यथाऽऽमस्व भावोऽवस्थितस्तथास्यातत्वान् । 'इति शब्द परिसमाप्तिं द्रष्टव्यम् । ततो यथास्थात चारित्रात्सकलकमक्षयपरिसमाप्तिभवेतीति ज्ञाप्यते । सामायिकादीनामानुपूर्व्यवचनमुत्तोत्तरगुणप्रकथनं स्यापनाय क्रियते ।

अनन्तर' अर्थावर्ती होनेसे समस्त मोहनीय कर्मक क्षय या उपशमक अनन्तर बहु आविर्भूत होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अथवा इस चारित्रिका एक नाम यथास्थात भी है । जिस प्रकार आत्माका स्वभाव अवस्थित है उसी प्रकार यह कहा गया है इसलिए इस यथास्थात कहत हैं ।

सूत्रमें आया हुआ 'इति शब्द परिसमाप्ति अर्थमें जानना चाहिए । इसलिए इससे यथास्थात चारित्रसे समस्त कर्मोंक क्षयकी परिसमाप्ति होती है यह जाना जाता है । उत्तरोत्तर गुणोंके प्रकथनका स्थापन करने के लिए सामायिक छदोपस्थापना इत्यादि क्रमसे इनका नामनिर्देश किया है ।

विद्यवाय—चारित्र यह एक प्रकारका होकर भी उसके पांच भेद विवक्षाविशेषसे किया गया है । सामायिकमें सबभावधकी निवृत्तिरूप सकल्यकी मुख्यता है । छदोपस्थापनामें चारित्रमें समनेवासे दोषोंके परिमात्रनकी मुख्यता है । परिहारविद्युद्धि चारित्र इस समयके होता है जो तीसरे बपतक गृहस्थ भवत्साम सुसपूर्वक बिना कर समय होत पर तीसरेकरके पादमूलकी परिचर्या करते हुए आठ वष तक प्रमास्थानपूर्वक अध्ययन करता है । यह अनुष्ठानकी रक्षा कैसे करनी चाहिए व किम द्रव्यक निमित्तस किंस क्षत्र और किम कालमें विगतत उत्पन्न होत हैं जीवोकी योगि और जम कितन प्रकारक होत हैं इत्यादि बातोंको मत्र प्रकार जानता है । यह प्रमापरहित महाबलशाली कर्मोकी महानिजरा करने वाला और अति दुष्कर अर्थका अनुष्ठान करनेवाला होता है । तथा यह तीनों सध्याकाशोको छोड़कर दो कोस गमन करनेवाला होता है । इन सब कारणोंसे इस समयक एसी सामग्य उत्पन्न होती है जिसके बन्धस यह अन्य जीवोंको बाधा पहुंचाय बिना चर्या करनेमें समर्थ होता है । सूक्ष्मसांपराय और यथा स्थात चारित्रिका अर्थ स्पष्ट ही है । इस प्रकार विवक्षामदस एक चारित्र पांच प्रकारका कहा गया है ।

इतमेंसे सामायिक और छदोपस्थापना की जपन्य विद्युद्धिसिद्धि सबसे अल्प होती है । इससे परिहारविद्युद्धि चारित्रकी जपन्य विद्युद्धिसिद्धि अनन्तगुणी होती है । इससे इतीकी उत्कृष्ट विद्युद्धिसिद्धि अतन्तगुणी होती है । इससे सामायिक और छदोपस्थापनाकी उत्कृष्ट विद्युद्धिसिद्धि अनन्तगुणी होती है । इससे इतीकी उत्कृष्ट विद्युद्धिसिद्धि अनन्तगुणी होती है । इससे यथास्थात चारित्रकी विद्युद्धिसिद्धि एक प्रकारकी होकर भी अनन्तगुणी होती है । यही कारण है कि सूत्रमें सामायिक छदोपस्थापना इत्यादि क्रमसे इन पांचोंका नाम निर्देश किया है ।

पहले क्रम प्रकारक धमका निर्देश करत समय समयमें बहु आय है इसलिए चारित्रिका अल्पमत्रि उममें ही जानक कारण वही इसका अन्तगम कथन करनेकी आवश्यकता नहीं है एसा प्रकृत होता है ।

(१) -अर्थ । तथा-म., ता. ता । (२) कथनानाथम् मु. ।



आह उक्त चारित्रम् । तदनन्तरमुद्दिष्टं यत् 'तपसा निर्वर्त्ता च' इति तस्येदानीं तपसो विधानं कृतव्यमित्यत्रोच्यते । तद् द्विविधं बाह्यमाभ्यन्तरं च । तत्प्रत्येकं पद्विधम् । तत्र बाह्यमेदप्रतिपत्त्यथमाह

अनशानावमौद्ध्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा  
बाह्य तपः ॥ १९ ॥

दुष्फलानपेक्षं मयमप्रसिद्धिरागोच्छेदकमविनाशध्यानागमावाप्त्यथमनशनम् । मयमप्रजा गरवोपप्रशमसन्तोपस्वाध्यायादिसुखमिदृध्यथमवमौदयम् । मिक्षाधिनी मुनरकागारादिविषयं सकल्पं चिन्तावरोधो वृत्तिपरिसंख्यानमाशानिवृत्त्यथमवगन्तव्यम् । इन्द्रियदपनिर्ग्रहनिद्राविजयस्वाध्यायसुखसिद्ध्या यथो घृतादिवृष्यरसपरित्यागश्चतुषु तपः । शूयागारादिषु विविक्तेषु जन्तुषोऽविरहितेषु समयतस्य शय्यासनमाभाषात्ययं ब्रह्मचर्यस्वाध्यायध्यानादिप्रमिदृध्यर्थं कृतव्यमिति पठन्वम तपः । आतपस्थानं वृक्षमूलनिवासो निरावरणशयनं बहुविधप्रतिमास्थानमित्येवमादि कायक्लेशं तत् पठ्ये तपः ।

फिर भी समस्त कमका समय चारित्रसं होता है यह दिखाने के लिए यहाँ चारित्रका पृथक रूपसे व्याख्यान किया है ।

कहते हैं चारित्रका कथन किया । सबके हेतुओंका निर्देश करने के बाद तपसा निर्वर्त्ता च' यह सूत्र कहा है इसलिए यहाँ पर तपका विधान करना चाहिए, अतः यहाँ कहते हैं—यह दो प्रकारका है—बाह्य और अभ्यन्तर । उसमें भी यह प्रत्येक छह प्रकारका है । उनमेंसे पहल बाह्य तपके भदों का कथन करने के लिए आगका सूत्र कहते हैं—

अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और  
कायक्लेश यह छह प्रकारका बाह्य तप है ॥ १९ ॥

दुष्फल मात्र साधना आविर्त्ता अपेक्षा किन्तु बिना समयकी सिद्धि रागका उच्छेद कमोंका विनाश ध्यान और आगमकी प्राप्ति के लिए अवधान तप किया जाता है । समयको जागृत रखने योग्ये प्रथम करने मन्तोप और स्वाध्याय आविर्त्ता सुखपूर्वक सिद्धि के लिए अवमौदर्य तप किया जाता है । मिक्षाके इच्छुक्त मुनिका एक घर आवि विषयक सकल्प अर्थात् चिन्ताका अवरोध करना वृत्तिपरिसंख्यान तप है । आशानकी निवृत्ति इसका फल जानना चाहिए । इन्द्रियोंके दर्पका निग्रह करने के लिए निद्रापर विजय पान के लिए और ससुखं स्वध्यायकी सिद्धि के लिए घृतादि गरिष्ठ रसका त्याग करना भीषा तप है । एकाग्र जन्तुओंकी पीड़ासे रहित धूम्य घर आदिमें निर्वास ब्रह्मचर्य स्वाध्याय और ध्यान आदिकी प्रमिदृध्यर्थं लिए समयको शय्यासन लगाना चाहिए । यह पाञ्चमी तप है । आतापयोग वृक्ष मूलमें निवास निरावरण शयन और नाना प्रकारके प्रतिमास्थान इत्यादि करना कायक्लेश है

(१) अन्तर्गत-आ वि १ वि २ म १ । (२)-विषयसंख्यानपिताव-ता म ।-विषय संख्यान चिन्ता-वि १ वि २ । (३)-गिर्यको वृ वि २ । (४)-अभय पठ्ये तप ।

तत्किमर्थम् ? देहदुःखतितिक्षासुखानभिव्यङ्गप्रवचनप्रभावनाद्यथम् । परिपहस्यास्य च  
का विधेय ? यदुच्छ्रयोपनिपतित परिपह । स्वयमृत भायकलेदा । बाहूपत्व  
मस्य मृत ? बाहूपद्रव्यापेक्षत्वात्परप्रत्यक्षत्वाच्च बाहूपत्वम् ।

अभ्यन्तरतपोभेदप्रदर्शनायमाह—

प्रायश्चित्तविनयवयावृत्त्यस्वाध्यायभ्युत्सगध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥

कथमस्याभ्यन्तरत्वम् ? मनोनियमनायत्वात् । प्रमाददोषपरिहारः प्रायश्चित्तम् ।  
पूज्यप्यादरो विनय । कायधेष्टया द्रव्यान्तरेण चोपासनं वयावृत्त्यम् । ज्ञानभावनाऽऽ  
स्यत्यागः स्वाध्यायः । आत्माऽऽमीयसङ्कल्पत्यागो भ्युत्सगः । चित्तविक्षपत्यागो ध्यानम् ।

तद्वभेदप्रतिपादनायमाह—

नवचतुर्विधपञ्चविभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥ २१ ॥

यह छठवाँ तप ह । यह चित्तविक्षेप किया जाता ह ? यह दह-दुःखको महिम करनक लिए, मुनविषयक  
आसक्तिको कम करनक लिए और प्रवचनकी प्रभावना करनक लिए किया जाता ह ।

पचा—परीपह और भायकलेषमें क्या अन्तर ह ?

ममाधान—अपन आप प्राप्त हुआ परीपह और स्वय किया गया भायकलेष ह यही इन दोनोंमें  
अन्तर ह ।

पचा—इस तपको बाहूप क्यों कहते ह ?

ममाधान—यह बाहूप-ऋषिक आत्मवचन होता ह और दूसराक तपमें आता ह इसलिए तस  
बाहूप तप कहत ह ।

अब आभ्यन्तर तपक भेदाको दिखानक लिए भागका सूत्र कहत हैं—

प्रायश्चित्त, विनय, वयावृत्त्य, स्वाध्याय, भ्युत्सर्ग और ध्यान यह छह  
प्रकारका आभ्यन्तर तप हैं ॥ २० ॥

पचा—इस आभ्यन्तर तप क्यों कहत ह ?

ममाधान—मनका नियम करनकामा हेतिस इस आभ्यन्तर तप कहत ह ।

प्रमादजन्य शोषका परिहार करना प्रायश्चित्त तप ह । पूज्य पुरुषोंका भाव्य करना विनय तप  
ह । पत्नीर का पत्नी या दूगर द्रव्यद्वारा उपामना करना वयावृत्त्य तप ह । आत्म्यया त्यागकर  
ज्ञानकी भाग्यना करना स्वाध्याय तप ह । अहंकार और ममकारणद्व मकल्प का त्याग करना भ्युत्सर्ग  
तप ह तथा चित्तक विक्षेपना त्याग करना ध्यान तप ह ।

अब तपक भेदारा दिखानक लिए भागका सूत्र कहत हैं—

ध्यानस पूषक आभ्यन्तर तपोंक अनुक्रमस ना, चार, तन पाँच और षे भेद ह ॥ २१ ॥

यथाक्रमम् इति वचनात्प्रथमं प्रायश्चित्तम् विनयश्चतुर्विधं वैद्यावृत्त्य दशविधम् स्वाध्याय पञ्चविधं, द्विभेदो व्युत्सर्ग इत्यभिसवध्द्यते । प्राग्ध्यानात् इति वचनं ध्यानस्य बहुवचनव्युत्सर्गात्पश्चाद्दक्ष्यते इति ।

आद्यस्य भेदस्वरूपनिर्ज्ञानाद्यमाह—

५ आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपक्षेवपरिहारोपस्थापना ॥ २२ ॥

तत्र गुरुवे प्रमादनिवेदन दशदोषविवेकजितमालोचनम् । सिध्यादुष्कृताभिधानान्भिव्यक्तप्रतिक्रम प्रतिक्रमणम् । [तदुभय] ससर्गं सति विशोधनात्तदुभयम् । ससक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकं । कायोत्सर्गादिकरणं व्युत्सर्गं । अनशानावमोदर्यादिलक्षणतपः । दिवसपक्षमासादिनां प्रख्याहापनं छेदः । पक्षमासादिविभागेन दूरतः परिव्रजनं परिहारः । पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना ।

सूत्रमें 'यथाक्रमम्' यह वचन दिया है । इसमें प्रायश्चित्त नौ प्रकारका है विनय चार प्रकारका है ब्यावृत्त्य दश प्रकारका है स्वाध्याय पाँच प्रकारका है और व्युत्सर्ग दो प्रकारका है ऐसा सम्बन्ध होता है । सूत्रमें— प्राग्ध्यानात्' यह वचन दिया है क्योंकि ध्यानक विषयमें बहुत कुछ कहना है इसलिये उसका आग वचन करेगा ।

१५ अब पहले आभ्यन्तर तपके भेदोंके स्वरूपका ज्ञान करानेके लिये आगका सूत्र कहत है—

आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना यह नव प्रकारका प्रायश्चित्त है ॥ २२ ॥

गुरुक समक्ष दश दोषोंको टालकर अपन प्रमादका निवर्जन करना आलोचना है । मरा दोष सिध्या हो गुरुस एमा निवर्जन करके अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करना प्रतिक्रमण है । आलोचना और प्रतिक्रमण इन दोनोंका ससर्ग होनपर दोषोंका क्षोभन होनसे तदुभय प्रायश्चित्त है । ससक्त हुए भ्रम पात और उपकरण आदिका विभाग करना विवेक प्रायश्चित्त है । कायोत्सर्ग आदि करना व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त है । अनशन अवमोदय आदि करना तप प्रायश्चित्त है । विवस पक्ष और महीना आदिकी प्रख्याना छेद करना छेद प्रायश्चित्त है । पक्ष महीना आदिके विभागसे सघसे पूर रत्नकर त्याग करना परिहार प्रायश्चित्त है । पुनर् दीक्षा वना उपस्थापना प्रायश्चित्त है ।

२५ विधाया—यहाँ प्रायश्चित्तके नौ भेद गिनाये हैं । प्राय शब्दका अर्थ साधुलाक है । उसका जिस क्रममें चित्त होता है वह प्रायश्चित्त कहलाता है । अबका प्राय शब्दका अर्थ अपराध है और चित्त शब्द का अर्थ मुक्ति है । अतिस प्रायश्चित्तका अर्थ अपराधाका क्षयन करना होता है । य ही नौ भेद हैं जिनके द्वारा माधु दोषोंका परिमार्जन करता है । पहला भेद आलोचना है । आलोचना नन दश दोषोंमें

(१) द्विविधो व्युत्सर्ग—(१)—लोचनम् । आर्कणियं अनुमानियं ज रिण्यं वारं च मुहुन च । छेदं महात्मियं बहुदयं बभूव नरकेदि ॥ इति दश दोषाः । सिध्या—मु । (२)—जागरीना प्रयः मु । (३) परिव्रजनं नीय परि—अ. ।

विनयविकल्पप्रतिपत्त्यथमाह—

ज्ञानवशनचारिप्रोपचारा ॥ २३ ॥

विनय इत्यधिकारेणऽभिसम्बन्ध क्रियते । ज्ञानविनयो दशनविनयश्चा  
रित्रविनय उपचारविनयश्चेति । सर्वदुःखान् मोक्षाय ज्ञानग्रहणाम्यासस्मरणादिर्जनि  
रहित होकर की जाती है । दश दोष यथा—उपकरणेन पर मुक्त रूप प्रायश्चित्त दोगे ऐसा विचारकर  
उपकरण प्रदान करना यह प्रथम आलोचना दोष है । म प्रकृतिस दुबल है ग्लान है उपवास आदि नहीं  
कर सकता । यदि रूप प्रायश्चित्त दे तो दोष कहेगा ऐसा कहना दूसरा दोष है । अन्य अदृष्ट (गुप्त)  
दोषोंको छिपा कर प्रकाशमें आये हुए दोषमा निवेदन करना तीसरा मायाचार दोष है । आत्मस्वयं  
या प्रमादवश अपन अपराधोंकी भ्रान्तकारी प्राप्त करनेमें निरस्तुक्त होने पर स्फूर्त दोष कहना चौथा  
दोष है । महा बुद्धि पर प्रायश्चित्तक मयसे महा दोष छिपा कर उससे हलक दोषका ज्ञान कराना पांचवां  
दोष है । श्रतमें इस प्रकार दोष लगन पर हमें क्या प्रायश्चित्त करना पड़ेगा इस विधिसे गुप्तकी उपासना  
करना छठा दोष है । पाक्षिक और चालुमार्गिक आदि क्रिया कमक समय बहुत साधुओं द्वारा की जाने  
वाली आलोचना अन्य शब्दोंसे प्रवचने व्याप्त ह्यानपर पूव दोष कहना साठवां दोष है । गुह्यद्वारा दिया हुआ  
प्रायश्चित्त क्या मुक्त है आगममें इसका विधान है या नहीं इस प्रकारकी दावा अन्य साधुके समक्ष  
प्रकट करना आठवां दोष है । किसी प्रयोजनवश अपन समान साधुके समक्ष दोष कह कर प्रायश्चित्त  
करना नौवां दोष है । इस विधिसे लिया हुआ बड़ा बड़ा प्रायश्चित्त भी फलदायक नहीं होता । मरा  
दोष इसक अपराधके समान है । इस यह भी जानता है । इस जो प्रायश्चित्त मिलेगा वह मुक्त भी मुक्त  
है इस प्रकार अपन दोषको छिपाना दसवां दोष है ।

अन्यत्र इन दश दोषोंके आकम्पित अनुमानित दृष्ट वाचर सूक्ष्म छद्म संख्याकुलित बहुजन  
अभ्यक्त और उत्सवी य नाम आय हैं ।

प्रायश्चित्तका दूसरा भव प्रतिक्रमण है । मेरा दोष मिथ्या हो ऐसा निर्वान करना प्रतिक्रमण  
है । यह शिष्य करता है और गुरुके द्वारा जो आलोचनापूर्वक प्रतिक्रमण किया जाता है वह तदुभय  
कहलाता है । यह प्रायश्चित्तका तीसरा भव है । आगम प्रायश्चित्तोंके जितके जो नाम हैं तदनुसार  
उपका स्वल्प है । यहाँ प्रायश्चित्त क य नो भव कह है किन्तु मूलाचारमें इसक आलोचना प्रतिक्रमण  
तदुभय विवक भ्युत्सय तप छान मूल परिहार और ध्यान इस प्रकार दस भव क्रिय है । टीकाकारने  
इनका स्पष्टीकरण करत समय मूलका बही अथ किया है जो यहाँ उपस्थापनाका किया गया है । तथा  
मानसिक दोषके होने पर उसक परिमाजनके लिये मरा दोष मिथ्या हो ऐसा अभिव्यक्त करनेको  
यद्वाच नामका प्रायश्चित्त बतलाया है ।

विनयके श्लेषोका ज्ञान करानके लिये आगमका सूत्र कहत है—

ज्ञानविनय, दर्शनविनय चारित्रविनय और उपचारविनय यह चार प्रकारका विनय है ॥२३॥

अधिकारके अनुसार विनय हम पत्रका सम्बन्ध होता है—ज्ञानविनय दर्शनविनय चारित्र

विनय । गङ्गादिदोषविरहित तत्त्वाथश्रद्धान दशनविनय । तद्वत्तश्चारित्र समाहितचित्तता  
 चारित्रविनय । प्रत्यक्षेष्व्वाचार्यादिष्वभ्युत्थानाभिगमनाञ्जलिभरणादिक्रमधारविनय ।  
 परोक्षेष्वपि कामवाङ् मनोऽभिरञ्जलिक्रियागुणसङ्कीर्तनानुस्मरणादि ।

वयावृत्त्यभ्युत्थानप्रतिपादनाथमाह—

आचार्योपाध्यायतपस्विक्षेपग्लामगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम् ॥ २४ ॥

वयावृत्त्य दशधा भिद्यते । कुत ? विषयभेदात् । आचार्यवैयावृत्त्यमुपाध्यायवया  
 वृत्त्यमित्यादि । तत्र आचरन्ति<sup>१</sup> तस्माद् व्रतानीत्याचार्य । मोक्षाथ शास्त्रमुपेत्य<sup>२</sup> तस्माद्  
 धीयत इत्युपाध्याय । महोपवासाद्यनुष्ठायी तपस्वी । शिक्षाशीलं शक्य । रुजादिकिलष्ट  
 धारीरो ग्लान । गण स्पविरसन्तति । दीक्षकाध्यायशिष्यसस्त्यार्यं कुलम् । चातुर्वर्ण्यं श्रमण  
 निवहं मघं । चिरप्रव्रजित साधु । मनोज्ञो लोकसम्मत । तेया ध्याधिपरिपहमिष्यात्वाद्यु  
 पनिपाते कामघेष्टया द्रव्यान्तरेण वा तत्प्रतीकारो वयावृत्त्य समाध्याषा<sup>३</sup>नविधिचित्साऽ-

विनय और उपचारविनय । बहुत आवरक साथ मोक्षके लिए ज्ञानका ग्रहण करना अभ्यास करना  
 और स्मरण करना आदि ज्ञानविनय ह । गङ्गादि दोषोस रहित तत्त्वाथका श्रद्धान करना दर्शनविनय  
 ह । सम्यग्दुष्टिका चारित्र्ये चित्तका रचना चारित्रविनय ह तथा आचार्य आदिकक समस  
 आनपरक्षड् हो जाना उनक पीछ पीछ चलना और ममस्कार करना आदि उपचारविनय ह तथा उनक  
 परोक्षमें भी काम बंधन और मनस ममस्कार करना उनक गुणोका कीर्तन करना और स्मरण करना  
 आदि उपचारविनय ह ।

अथ वयावृत्त्यक भवोंका बधन करनेक लिए आगका सूत्र कहत ह—

आचार्य, उपाध्याय तपस्वी, शैल, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ

इनकी वैपाद्यस्यके भेदसे वैपाद्यस्य दस प्रकारका है ॥ २४ ॥

वयावृत्त्यक दस भेद ह, क्योंकि उसका विषय दस प्रकारका ह । यथा—आचार्य-वयावृत्त्य और उपा  
 ध्याय-वयावृत्त्य आदि । जिसक भिमिसम प्रतीका आचरण करत ह वह आचार्य कहलाता ह । मोक्षाथ  
 लिए पाम जाकर विनय शास्त्र पढ़त ह वह उपाध्याय कहलाता ह । महोपवास आदिका अनुष्ठान  
 करनेवाला तपस्वी कहलाता ह । गिणानील पदा कहलाता ह । रोग आत्मि बलात् धारीवाला  
 ग्लान कहलाता ह । स्वधियोकी सम्पत्तिको गण कहत ह । दीक्षकाध्यायक शिष्यसमुदायको कुल कहत  
 ह । चार वर्णक समान समुदायको मघ कहत ह । चिरकाल्य प्रव्रजितको साधु कहत ह ।  
 मोरसम्मत गायुना मनोज्ञ कहत ह । इह ध्याधि हानपर, परागहक हानपर य मिष्याथ्य आत्मिक  
 प्राप्त पान पर धारीकी चष्टा द्वारा या अन्य द्रव्यद्वारा उनका प्रतीकार करना वयावृत्त्य तप

(१) आचरन्ति-य । (२)-रति मया-आ दि १ दि २ ता ना । (३) 'उपोपाधीपते  
 तत्रादुपाध्याय । -वा न अ ३ ३ ११ । (४)-अभ्यस्य न । (५) चातुर्वर्ण्य-न । (६)-आध्यायान-न ।

माषप्रवचनवात्मल्याद्यमिव्यक्त्ययम्' ।

स्वाध्यायविकल्पविज्ञानायमाह—

वाचनाप्रच्छन्नाऽनुप्रेक्षाऽऽम्नायधर्मोपदेशा ॥ २५ ॥

निरवद्यग्रन्थार्षोभयप्रदान वाचना । सशयच्छेदाय निश्चितबलाघानाय वा परानुयोग-  
प्रच्छन्ना । अधिगतायस्य मनसाऽध्यासोऽनुप्रेक्षा । घोषशुद्ध परिवतनमाम्नाय । धमकथाद्य २  
नुष्ठान धर्मोपदेश । स एष पञ्चविध स्वाध्याय किमय ? प्रज्ञातिशय प्रशस्ताध्यवसाय  
परमसवेगस्तपोवृद्धिरतिचारविशुद्धिरित्येवमाद्यय ।

व्युत्सगमेदानिज्ञानायमाह—

बाह्याभ्यन्तरोपधयो ॥ २६ ॥

व्युत्सर्जन व्युत्सगस्याग । स द्विविध — बाह्योपधित्यागोऽभ्यन्तरोपधित्यागश्चेति । १  
अनुपास्त वास्तुधनधान्यादि बाह्योपधि । क्राधादिगत्मभावोऽभ्यन्तरोपधि । कायत्यागश्च  
नियतकालो यावज्जीव वाभ्यन्तरोपधित्याग इत्युच्यते । स किमय ? निम्सङ्गस्वनिमयत्व  
जावितागाव्युत्सगमाद्यय ।

ह । यह समाधिकी प्राप्ति विचिकित्साका अभाव और प्रवचनवात्सल्यकी अमिव्यक्तिक लिए किया  
जाता ह । १५

अब स्वाध्यायके नवोंका ज्ञान करानेके लिए आगका सूत्र कहत ह—

वाचना, पृच्छन्ना, अनुप्रेक्षा आम्नाय और धर्मोपदेश यह पाँच प्रकारका स्वाध्याय है ॥ २५ ॥

निर्दोष गन्थ अर्थ और दोनोंका प्रदान करना वाचना ह । सधामका उच्छेद करनेके लिए अथवा  
निश्चित बलका पुष्ट करनेके लिए प्रयत्न करना प्रच्छन्ना ह । जान हुए अथका मनमें अम्नास करना  
अनुप्रेक्षा ह । उच्चारणकी शुद्धिपूर्वक पाठको पुन-पुन दुहरना आम्नाय ह और धमकथा आदि २  
का अनुष्ठान करना धर्मोपदेश ह ।

दका—यह पूर्वोक्त पाँच प्रकारका स्वाध्याय किसलिए किया जाता ह ?

समाधान—प्रज्ञाम अतिशय लानके लिए, अथबसायको प्रशस्त करनेके लिए, परम सवेगके लिए,  
गपमें वृद्धि करनेके लिए और अनोचारीमें विशुद्धि लान आत्मिक लिए किया जाता ह ।

अब व्युत्सग तपक मदोका ज्ञान करानेके लिए आगका सूत्र कहत ह—

बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है ॥ २६ ॥

व्युत्सर्जन करना व्युत्सग ह । जिसका भय त्याग होता ह । वह दो प्रकारका ह—बाह्य उपधि  
त्याग और अभ्यन्तर उपधित्याग । आत्मास एकत्वकी नहीं प्राप्त हुए एम वास्तु, धन और धान्य आदि  
बाह्य उपधि ह और त्रीभास्वरूप आत्मभाव अभ्यन्तर उपधि है । तथा नियत काल तक या माषरजीवन  
तक कायका त्याग करना भी अभ्यन्तर उपधि त्याग कहा जाता ह । यह निःसंगता निमयता और ३

(१)—प्राप्तार्थम् वा रि १ रि २ का ।

यद् बहुवक्तव्य ध्यानमिति पृथग्व्यवस्थापित तस्यार्थानां भेदाभिन्नान प्राप्तकालम् । तदुल्लेख्य तस्य प्रयोजितस्वरूपकालनिर्धारणायमुच्यते—

उत्तमसहननस्यकाप्रचिन्तानिरोधो ध्यानमाप्तमूर्ततात् ॥२७॥

आद्य त्रितय सहननमुत्तम वज्रपमनाराचसहनन वज्रनाराचसहनन नागाचसहनन मिति । तन्त्रितयमपि ध्यानस्य साधन भवति । मोक्षस्य तु आद्यमेव । तदुत्तम सहनन यस्य नोऽप्यमुत्तमसहनन तस्योत्तमसहननस्येति । अनेन प्रयोजितनिर्णय कृत । अग्र मुखम् । एकमग्रमस्येत्येकाग्र । नानार्थावलम्बनेन चिन्ता परिस्पन्दवती तस्या अयाशेषमुखेभ्यो व्यावृत्त्य एकस्मिन्नाग्रे नियम एकाग्रचिन्तानिरोध इत्युच्यते । अनेन ध्यानस्वरूपमुक्त भवति । मुहुत इति कालपरिमाणम् । अन्तगतो मुहुतांस्तमहुत । आ अन्तमूर्ततात्

१ जीविनाशाका स्युत्सग आदि करनक सिण बिया जाना ह ।

विद्यवाप—यहा यह प्रश्न होता है कि जब कि पांच महाव्रतोंमें परिग्रहत्यागका उपदेश किया है तब धर्मोंमें त्याग धर्मका उपदेश दिया है तथा नौ प्रकारके प्रायश्चित्तोंमें स्युत्सग नामका प्रायश्चित्त अलग कहा है एसी अबध्यामें पुन स्युत्सग तपका अलगसे कथन करना कोई मायने नहीं रखता क्योंकि इस प्रकार एक ही तत्त्वका पुन-पुन कथन करनेसे पुनरुक्त दोष आता है । समाधान यह है कि पांच महाव्रतोंमें जो परिग्रह त्याग महाव्रत है उसमें गृहस्थसम्बन्धी उपधिक त्यागकी मुख्यता है । त्यागधर्ममें आहारानि विषयके आसक्तिके कम करनेकी मुख्यता है स्युत्सग प्रायश्चित्तमें परिग्रह त्याग धर्ममें लगनवाले दोषके परिमार्जनकी मुख्यता है और स्युत्सग तपमें वसतिका व्याधि बाह्य के मनोविकार तथा शरीर आदि सम्बन्ध उपधिमें आसक्तिके त्यागकी मुख्यता है इसलिये पुनरुक्त दोष नहीं आता ।

२ जो बहुवक्तव्य ध्यान पृथक स्थापित कर आया है उसके भदोंका कथन करना इस समय प्राप्तकाल है तथापि उस उल्लेखन करके इस समय ध्यानके प्रयोजिता स्वरूप और कालका निर्धारण करने के लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

उत्तम सहननवालेका एक विषयमें चित्तचुचिका रोकना ध्यान है जो अन्तमूर्तता काल तक होता है ॥ २७ ॥

२ आदिक वज्रपमनाराचसहनन वज्रनाराचसहनन और नाराचसहनन ये तीनों सहनन उत्तम है । ये तीनोंही ध्यानके साधन हैं । मोक्षका साधन तो प्रथम ही है । जिसमें ये उत्तम सहनन होते हैं वह उत्तम सहननवाला कहलाता है उस उत्तम सहननवाले का । यहाँ इस पदद्वारा प्रयोजिताका निर्देश किया है । अर्थ पत्रका अर्थ मुख है । जिसका एक अर्थ होता है वह एकाग्र कहलाता है । माना पदार्थोंका अब सम्बन्ध रखने चिन्ता परिस्पन्दवती होती है । उसे अन्य अथ मुसोंम शूटा कर एक अर्थ अर्थात् एक विषयमें नियमित करना एकाग्रचिन्तानिरोध कहलाता है । इस द्वारा ध्यानका स्वरूप कहा गया है । मुहुत यह कालका विनिश्चित परिमाण है । जो मुहुतके भीतर होता है वह अन्तमूर्तता कहलाता है ।

(१) ध्यान विविषय धन ।—तां सू १ २१ ।

इत्यनेन कालावधि कृत । तत पर दु'घरत्वादेकाप्रचिन्ताया । चिन्ताया निरोधो यदि ध्यान निराधश्चाभाव तेन ध्यानमसत्स्वरविषाणवत्स्यात् ? नप दोष अयच्चिन्ता निवृत्त्यपेक्षयाऽस्मिन्ति चोच्यते, स्वविषयान्कारप्रवृत्ते मर्दिति च अभावस्य भावान्तरत्वाद् हेत्वङ्गत्वादिभिरभावस्य वस्तुधमत्वसिद्धेश्च । अथवा नाय भावसाधन निरोधत निरोध इति । किं तर्हि ? कमसाधन निरुध्यत इति निरोधः । चिन्ता चासौ निरोधश्च चिन्तानिरोध इति । एतदुक्तं भवति—ज्ञानमेवापरिस्पन्दाग्निगिक्त्वावदवभासमान ध्यानमिति ।

तद्भदप्रन्थानायमाह—

आसरोद्ब्रधम्यक्षुक्तानि ॥ २८ ॥

ऋत दुःखम् अदनमर्तिर्वा तत्र भवमातम् । रुद्र क्रूराशयस्तस्य कम तत्र भव वा रौद्रम् । धर्मो व्याख्यात । धर्मादिनपेत धर्म्यम् । शुद्धिगुणयोगाच्छुक्लम् । तदेतच्चतुर्विध ध्यान द्विविध्यमश्नुते । कुत ? प्रशस्ताप्रशस्तभेदात् । अप्रशस्तमपुण्याश्रयकारणत्वात् ।

अन्तर्मद्वैत काल तर्क' इस पद द्वारा कालकी अवधि की गई है । इसन कालक वाद एकाग्रचिन्ता दुःखर होती है ।

शका—यदि चिन्ताक निराध का नाम ध्यान है और निरोध अभावस्वरूप होता है इसलिए गमक सीगक समान ध्यान असत् ठहरता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि अग्य चिन्ताकी निवृत्ति की अपेक्षा वह असत् कहा जाता है और अपन विषयरूपस प्रवृत्ति होनेक कारण वह सत् कहा जाता है क्योंकि अभाव भावान्तरस्वभाव होता है और अभाव वस्तुका घम है यह बात सप्त सत्त्व विषयभ्यावृत्ति इत्यादि हतुन अग आदिन द्वारा सिद्ध होती है ।

अथवा यह निरोध शब्द निराधन निरोध इस प्रकार भावसाधन नहीं है । तो क्या है ? निरुध्यत निरोध —जो रोका जाता है इस प्रकार कमसाधन है । चिन्ताका जो निरोध वह चिन्तानिरोध है । आशय यह है कि निरुक्त अग्निशक्ताक समान निरुक्त रूपस अवभासमान ज्ञान ही ध्यान है ।

अत्र उक्तं भद विश्वरानक किण आगका भूत्र कहत है—

आर्त, रीद्र, धर्म्य और शुक्ल ये ध्यानके चार भेद हैं ॥ २८ ॥

आत शब्द ऋत अथवा अति इनमेंसे किन्हीं एकस बना है । इनमेंसे ऋतका अर्थ दुःख है और अर्तिकी अर्थ अति एसी निरुक्ति होकर उक्तका अर्थ पीडा पहुँचाना है । इसमें (ऋतमें या अर्तिकमें) जो होता है वह आत है । रुद्रका अर्थ क्रूर आशय है । इसका कम या इसमें होनेकाका रौद्र है । धमका व्याख्यान पहलक कर आय है । जो धमम युक्त होता है वह धर्म्य है । तथा जिनमें शुद्धि गुणका मन्व्यथ है वह शुक्ल है । यह चार प्रकारका ध्यान दो भागोंमें विभक्त है क्योंकि प्रथम और अप्रशस्तक भदस



कमनिदहनसामर्थ्यप्रणस्तम् ।

किं पुनस्तन्नि चेतुष्यते--

परे मोक्षहेतु ॥२६॥

परमुत्तरमन्य । तस्मात्प्राप्तमपि 'परम्' इत्युपचयते । द्विष्यन्निर्देशमामर्ष्यात्  
गौणमपि गृह्यते । 'पर मोक्षहेतु' इति वचनान्तर्वे आतरोद्रे ससारहेतु इत्युक्तं भवति ।  
कुत ? तृतीयस्य साध्यस्याभावात् ।

तत्रात वस्तुविषयम् । तत्रादिविकल्पलक्षणनिर्देशायमाह--

आत्ममनोज्ञस्य सम्प्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥३०॥

अमनाज्ञमप्रिय विषयकृच्छ्रशस्त्रादि तद्वाधाकारणत्वाद्'अमनोज्ञम्' इत्युच्यते ।  
तस्य सम्प्रयोग म कय नाम म न स्यादिति सकल्पस्त्विन्न्ताप्रवच स्मृतिसमन्वाहार  
प्रथममात्मित्याख्यायते ।

द्वितीयस्य विकल्पस्य लक्षणनिर्देशायमाह--

विपरीत मनोज्ञस्य ॥३१॥

वह दो प्रकारका है । जो पापान्मयता कारण है वह अप्रशास्त है और जो कर्मों के निदहन करने की सामर्थ्य  
स युक्त है वह प्रशस्त है ।

तो वह क्या है ऐसा प्रश्न करने पर भाग्यका सूत्र कहत हैं--

उत्तमैसे पर अर्थात् अन्तके दो स्थान मोक्षके हेतु हैं ॥२६॥

पर उत्तर और अन्त्य इनका एक अर्थ है । अन्तिम भुक्तध्यान है और इसका समीपवर्ती होनेस  
धमध्यान भी पर है एमा उपचार किया जाता है क्योंकि सूत्रमें पर यह द्विवचन दिया है इसलिये  
उपकी सामर्थ्यस गौणता भी यहूग जाता है । पर अर्थात् धर्म और मुक्तय मोक्षक हेतु है इस वचनस  
पहलक अर्थात् आत और रौद्र ये सवारक हेतु हैं यह तात्पर्य फलित होता है क्योंकि मोक्ष और ससारक  
मिवा और कोइ तीसरा माध्यम नहीं है ।

आत्मध्यान चार प्रकारका है । उत्तम प्रथम भवन संशयका निर्देश, करनेक लिए भाग्यका  
सूत्र कहत हैं--

अमनोज्ञ पदार्थके प्राप्त होने पर उसक वियोगके लिए चिन्तासाधकका

होना प्रथम आर्तध्यान है ॥३०॥

विषय वचनक मनु और शस्त्र अग्नि आ अप्रिय पदार्थ है व वाधाकारण होनेस अमनोज्ञ कह  
जाते हैं । उनका मयोग होने पर व भेद कस न हो इस प्रकारका सकल्प चिन्ता प्रवचन अर्थात् स्मृति  
समन्वाहार यह प्रथम आत्मध्यान कहलाता है ।

अब दूसर भक्त लक्षणका निर्देश करनेक लिए भाग्यका सूत्र कहत हैं--

मनोज्ञ वस्तुके वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा आर्तध्यान है ॥३१॥

(१)-वचननाम-मु । (२) पर धर्मयुक्त नेत्र-जा, वि १ वि २ ता ना ।



पञ्चदशप्रमादापत्ता क्रियानुष्ठापिनः । तत्राविरतदेशविरतानां चतुर्विधमप्यात भवति असयमपरिणामोपेतत्वात् । प्रमत्तसयतानां तु निदानवर्ज्यमप्यतत्रय प्रमादोदयोद्रेकाल्कचिद्विद्युत्वात् ।

व्याख्यातमात्रं सञ्ज्ञादिभिः । द्वितीयस्य सञ्ज्ञाहेतुस्वामिनिर्धारणायमाह—

हिंसाञ्जतस्तेयविषयसरक्षणेष्वो रौद्रमविरतबेशविरतयो ॥३५॥

हिंसादीन् युक्तलक्षणानि । तानि रौद्रध्यानोत्पत्तेर्निमित्तीभवन्तीति हेतुनिर्देशो विज्ञायत । तेन हेतुनिर्देशनानुवृत्तमानं 'स्मृतिसमन्वाहार' अभिसम्बध्यते । हिंसायां स्मृति समन्वाहार इत्यादि । तद्रौद्रध्यानमविरतदेशविरतयोर्बोधितव्यम् । अविरतस्य भवतु रौद्रध्यान देशविरतस्य कथम् ? तस्यापि हिंसाद्यावेशाद्विज्ञादिसरक्षणतन्त्रत्वाच्च कदाचिद् भवितुमर्हति । तत्पुनरौद्रकावीनामकारणं सम्पद्दशनसामर्थ्यात् । सयतस्य तु न भवत्येव तन्त्रारम्भे सयमप्रच्युते ।

हे और पन्द्रह प्रकारके प्रमाण युक्त क्रिया करनेवाले जीव प्रमत्तसयत कहलाते हैं । इनमेंसे अविरत और दशविरत और्द्विके चारों ही प्रकारका आतम्भान होना है क्यों कि ये असयमरूप परिणामसे युक्त होते हैं । प्रमत्तसयतोंके तो निदानके सिवा वाक्यके तीन प्रमादकी तीव्रतावश कदाचित् होते हैं ।

विशेषण—पुराण साहित्यमें मुनियों द्वारा निदान करनेके कई उदाहरण हैं पर इन उदाहरणोंमें प्रमत्तसयत अवस्थामें उन माधुर्जन निष्ठा क्रिया एसा नहीं लना चाहिए । एक ही भावसिमी माधुर्ज आगामी भोगोकी आकांक्षा होती ही नहीं और कल्पित् होती है तो उस समयसे वह भावसिमी नहीं रहता म्मा अथ यहाँ ग्रहण करना चाहिए ।

युग्म आदि द्वारा आतम्भानका व्याख्यान किया । अब दूसरे ध्यानकी सजा हेतु और स्वामीका

निर्दय करनेके लिए आगका मूत्र कहत हैं—

हिंसा, असत्य श्रोत्रो और विषयसंरक्षणके लिए सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान

है । यह अविरत और दशविरतके होता है ॥ ३५ ॥

हिंसादिकके सङ्ग पहलू कह आये हैं । वे रौद्रध्यानकी उत्पत्तिके निमित्त होते हैं इसलिये हेतु निर्देश जाना जाता है । हेतुका निर्देश करनेवाले इन हिंसादिकके साथ अनुभूतिको प्राप्त होनेवाले स्मृतिमन्वाहार पत्रका सम्बन्ध होता है । यथा—हिंसाका स्मृतिमन्वाहार आदि । यह रौद्रध्यान प्रविश्य और अभिश्यत के जानना चाहिए ।

यथा—रौद्रध्यान अविरतके होओ दशविरतके जैसे ही राक्षता है ?

समाधान—हिंसादिकके आरम्भमें या विनाशिके संरक्षणके परमन्त्र हानिस कल्पित् उमक भी होकरना है ।

रिन्दु दशविरत होनेवाला वह रौद्रध्यान नारकादि दुर्गणियाँका कारण नहीं है क्योंकि सम्पद्दशन

आह 'परे मोक्षहेतू' उपदिष्टे । तत्राद्यस्य मोक्षहेतोर्ध्यानस्य भेदस्वरूपस्यामिनिर्देशो  
कृतव्य इत्यन आह—

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम् ॥३६॥

विचयन विचयो विवेको विचारणेत्यथ । आज्ञापायविपाकसंस्थानानां विचय आज्ञा  
पायविपाकसंस्थानविचय । स्मृतिसमन्वाहार इत्यनुवतते । स प्रत्येक सम्बध्यते—आज्ञा  
विचयाय स्मृतिसमन्वाहार इत्यादि । तद्यथा—उपवेष्टुरभाषामन्दबुद्धित्वात्त्रमोदया  
न्सूक्ष्मत्वाच्च पदार्थानां हेतुदृष्टान्तोपरमे सति सर्वज्ञप्रणीतमागम प्रमाणीकृत्य इत्यभेदे  
'नान्यथावादिनो जिनाः' इति गहनपदाथश्रद्धानां दर्शविधारणमाज्ञाविचय । अथवा—  
स्वयं विदितपदाद्यतत्त्वस्य सतः परं प्रति विपादयिषो स्वसिद्धान्ताविरोधेन तत्त्वसममनाथ  
तकनयप्रमाणयोजनपरं स्मृतिसमन्वाहारं सर्वज्ञाज्ञाप्रकाशनाथत्वादाज्ञाविषय इत्युच्यते ।  
जात्यन्धवामिष्पावृष्टयः सब्रह्मप्रणीतमार्गाद्विमुक्ता मोक्षार्थितं सम्यक् मार्गापरिज्ञानास्तु  
की एसी ही सामर्थ्य है । परन्तु समतके तो यह होता ही नहीं है क्योंकि उसका आरम्भ होनेपर समयस  
पतन हो जाता है ।

कहते हैं अन्तर्के दो ध्यान मोक्षक हतु हैं यह कह आय है । उनमेंसे मोक्षक हतुस्वयं प्रथम ध्यानके  
मद स्वरूप और स्वामीका निर्देश करना चाहिए इसलिए आगेका घृत्त कहते हैं—

आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान इनकी विचारणाके निमित्त मनको एकाग्र  
करना धर्म्यध्यान है ॥ ३६ ॥

विचयन करना विषय है । विषय विवेक और विचारणा य पर्याय नाम हैं । आज्ञा अपाय  
विपाक और संस्थान इनका परस्पर द्वन्द्व समाप्त होकर विषय शब्दक साथ पठ्योतत्पुत्रप समाप्त है  
और इस प्रकार आज्ञापायविपाकसंस्थानविचय पद बना है । 'स्मृतिसमन्वाहार' पदकी अनुवृत्ति  
होती है । और उसका प्रत्येकक साथ सम्बन्ध होता है । यथा—आज्ञाविषयक लिए स्मृतिसमन्वाहार  
आदि । लुप्तासा इम प्रकार है—

उपदेश वनबालका अभाव होनेस स्वयं मन्दबुद्धि होनेस कर्मोका उदय होनेस और पलायन  
मूढम होनेस तथा उत्सुक सममनस हतु और वृष्टान्तका अभाव होनेपर सब्रह्मप्रणीत आगमको प्रमाण  
करके यह ही प्रकार है क्योंकि जिन जन्मवाणी नहीं होत इम प्रकार गहन पदाथक श्रद्धानद्वारा  
ममना अथवागण करना आज्ञाविषय धर्म्यध्यान है । अथवा स्वयं पदाधीन रहस्यको जानता है और  
दूसरोंक प्रति उमका प्रतिपादन करना चाहता है इमलिए स्व सिद्धान्तक अविराधद्वारा उत्सुक मममन  
करनेस लिए उमका जो नक नय और प्रमाणकी याचनाकर निरन्तर चिन्तन होता है वह मवज्ञकी आज्ञाको  
प्रतिपादन करनेवाया होनेस आज्ञाविषय कहा जाता है ।

मिष्पावृष्टि कीज जन्मस्य पुण्यक समान मवज्ञप्रणीत मागम विमृश हतु है उन्हें समागका परि

(१) विचारणमित्यर्थं नु । विचारणित्यर्थं ता । (२)—उपमर्षा—नु ।

दूरमेवापयन्तीति स-मार्गापायचिन्तनमपायविचय । अथवा—मिथ्यादर्शनज्ञानचारि  
त्रेम्य-कथ नाम इमे प्राणिनोऽप्येयुरिति स्मृतिसमन्वाहारोऽपायविचय । कमणा ज्ञानावरणा  
दीना द्रव्यक्षेत्रकालमवभावप्रत्ययफलानुभवन प्रति प्रणिधान विपाकविचय । लोकसंस्थान  
स्वभावविचयाय स्मृतिसमन्वाहार-संस्थानविचय । उत्तमक्षमादिलक्षणो घम उक्तः ।  
तस्मादनपत घम्य ध्यान चतुर्विकल्पमवसेयम् । तद्विरतदेशविरतप्रमत्ताप्रमत्तसयतानां  
भवति ।

ज्ञान न हानेस य मोक्षार्थी पुष्पको दूरस ही त्याग दत्त हे इस प्रकार सन्मार्गक अपायका चिन्तन करना  
अपायविचय धर्म्यध्यान ह । अथवा य प्राणी मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्रस कस  
दूर होंग इस प्रकार निरन्तर चिन्तन करना अपायविचय धर्म्यध्यान ह ।

ज्ञानावरणादि कर्मोंक द्रव्य क्षत्र काल भव और भावनिमित्तक फलके अनुभवक प्रति उपयोगका  
हानत विपाकविचय धर्म्यध्यान ह । तथा लोकके आकार और स्वभावका निरन्तर चिन्तन करना  
संस्थानविचय धर्म्यध्यान ह ।

पहल उत्तम कामादिरूप धर्मका स्वरूप कह आये ह । उसस अनपत अर्थात् युक्त धर्म्यध्यान चार  
प्रकारका जानना चाहिए । यह अचिरत वेषचिरत प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत जीवोंक होता ह ।

विशेषाप—संसार, शरीर और भोगोंस विरक्त होनक लिए या विरक्त होनपर उस भावको स्थिर  
बनाय रखनक लिए जो प्रणिधान होता ह उस धर्म्यध्यान कहत ह । यह उत्तम कामादिरूप धर्मस युक्त  
होता ह इसलिये इस धर्म्यध्यान कहत ह । यहाँ निमित्तभवस इसक चार भव क्रिय गय ह । यथा—  
आज्ञाविचय अपायविचय विपाकविचय और संस्थानविचय । आज्ञाविचय तत्त्वमिच्छामे सहायक  
होता ह अपायविचय संसार, शरीर और भोगोंस विरक्ति उत्पन्न करता ह । विपाक विचयसे कर्मफल  
और उसक कारणोंकी विचित्रताका ज्ञान बुद्ध होता ह और संस्थानविचयस सोदकी स्थितिका ज्ञान  
बुद्ध होता ह ।

मूल टीकाम विपाकविचयक स्वरूपका निर्देश करत हुए जो द्रव्य क्षत्र और काल आदिक निमित्तस  
कर्मफलकी चरणा की ह उसका आशय यह ह कि यद्यपि कर्मोंक उदय या उदीरणास जीवक मौदयिक  
मात्र और विविध प्रकारक शरीरादिककी प्राप्ति होती ह पर इन कर्मोंका उदय और उदीरणा बिना  
अन्य निमित्तके नहीं होती बल्कि द्रव्य क्षेत्र आत्मिका निमित्त पाकर ही कर्मोंका उदय और उदीरणा  
होती ह । आग इमी बातको विशेप रूपस स्पष्ट करत हे ।

द्रव्यनिमित्त—मान लो एक व्यक्ति हस चल रहा ह वह अपन बालबच्चेके साथ ग्ल्यामोष्ठीमें  
तम्पनी ह । इनमें अबस्मात् मकानकी छत टूटती ह और वह उसस घायक होकर दुःखका बदन बन  
एगता ह तो यहाँ उमक दुःखजनक कारणभूत अमाता बदनीयक उदय और उदीरणामें दूट कर गिरन  
बानी छतका संयोग निमित्त ह । टूट कर गिरनवाली छतक निमित्तस उस व्यक्तिक अमाताबेत्सीयकी  
उदय उदीरणा हूद और अमाताबदनीयक उदय उदीरणामे उस व्यक्तिको दुःखका अनुभवन हुआ यह

उक्त कथनका तात्पर्य है। इसी प्रकार अन्य कर्मोंक उदय-उदीरणामें बाह्य द्रव्य कस निमित्त होता है इसका विचार कर लेना चाहिये।

कालनिमित्त—कालक निमित्त होनेका विचार दो प्रकारस किया जाता है। एक तो प्रत्येक कर्म का उदय उदीरणा काल और दूसरा वह काल जिसक निमित्तस धीरमें ही कर्मोंकी उदय-उदीरणा बदल जाती है। आगममें अधुवोच्य रूप कर्मक उदय-उदीरणा कालका निर्देश किया है उसक समाप्त होत ही विवक्षित कर्मक उदय-उदीरणाका अभाव होकर उसका स्थान दूसर कर्मकी उदय-उदीरणा ल गती है। इस सामान्यस हान्य और रतिक उच्छेद उदय-उदीरणाकास छह महीना है। इसक बाद इनकी उदय-उदीरणा न होकर अरति और शोककी उदय-उदीरणा होने लगती है। किन्तु छह महीनाक भीतर यदि हास्य और रतिक विकृत निमित्त मिलता है सो बीचमें ही इनकी उदय-उदीरणा बदल जाती है। यह कर्मका उदय-उदीरणा काल है। अब एक ऐसा जीव सो जो निमय होकर दशान्तरको जा रहा है किन्तु किसी दिन मागमें ही एस जगलमें रात्रि हो जाती है जहां हिल जन्तुओंका प्रावत्य है और विश्राम करनेक लिए कोई निरापद स्थान नहीं है। यदि दिन होता तो उस रजमात्र भी भय न होता किन्तु रात्रि होनेस वह भयभीत होता है इसस डमक अमाता अरति शोक और भय कर्मकी उदय-उदीरणा होने लगती है। यह कालनिमित्तक उदय उदीरणा है। इसी प्रकार क्षत्र भव और भावनिमित्तक उदय और उदीरणा जान लनी चाहिए।

काल प्राप्त कर्म परमाणुओंक अनुभव करनेको उदय कहत हैं और उपावन्तिक बाहर स्थित कर्म परमाणुओंको कपायसहित या कपायरहित योग सञ्जाबाल बीयविषयक द्वारा उदयावलिमें स्पर्क उत्तका उदयप्राप्त कर्मपरमाणुओंक साथ अनुभवन करनेको उदीरणा कहत हैं। इस प्रकार कर्म परमाणुओंका अनुभवन उदय और उदीरणा दोनोंमें लिया जाता है। यदि इनमें अन्तर है तो काल-प्राप्त और अकालप्राप्त परमाणुओंका है। उदयमें कालप्राप्त कर्मपरमाणु रहत हैं और उदीरणामें अकालप्राप्त कर्मपरमाणु रहत हैं। सामान्य नियम यह है कि जहां जिस कर्मका उदय होता है वहां उसकी उदीरणा अवश्य जानी है। फिर भी इनमें जो विशेषता है उसका यहाँ निर्देश करत हैं—

मिथ्यात्वका उदय और उदीरणा मिथ्यात्व गुणस्थानमें होता है। इसनी विवक्षता है कि उपपन्न मय्यत्वक अभिवृत्त हुए जीवक अन्तिम आबली प्रमाण कालमें मिथ्यात्वकी उदीरणा नहीं होती वही मात्र उसका उदय होता है। एकन्द्रिय जाति द्वीन्द्रिय जाति त्रीन्द्रिय जाति चतुरिन्द्रियजाति आत्म स्थावर मज्ज अपर्याप्त और साधारण इन नी प्रकृतियोंका मिथ्यात्व गुणस्थानमें ही उदय और उदीरणा होती है आग नहीं। अतन्तानबन्धी चतुष्पञ्चा प्रारम्भक दो गुणस्थानोंमें ही उदय और उदीरणा होती है आग नहीं। मय्यमिथ्यात्वका तीसर गुणस्थान ही उदय और उदीरणा होती है अन्यत्र नहीं। मय्यमपदान चार तरकगति त्वगति क्षत्रियिक परीर क्षत्रियिक श्रोत्रोपांग दुनग अनात्म्य और धमग तीनि त्त त्वागत् प्रकृतियोंका चौथ गुणस्थान तब ही उदय और उदीरणा जानी है आग नहीं। त्वकायु और त्वायुका चौथ गुणस्थान तब ही उदय और उदीरणा होती है आग नहीं। मात्र मय्यक







पूर्वोन्तितगुण्यादिबहुप्रकारोपाय ससारनिवृत्तये मुनिर्ध्यातुमहति कृतपरिकर्मा । तत्र द्रव्य  
 परमाणु भावपरमाणु वा ध्यायन्नाहितवितर्कसामध्य 'अथव्यञ्जने कायवचसी च पृथक्त्वेन  
 सक्रामता म'नेसाऽपर्याप्तबालोत्साहवदव्यवस्थितेनानिशितेनापि शस्त्रेण चिरात्तद् छिन्  
 श्रिव माहप्रकृतीरुपशमयन्क्षपयश्च पृथक्त्ववितकवीचारध्यानभागभवति । स एव  
 पुन समूलतूल मोहनीय निर्दिष्टक्षन्नन्तगुणर्विद्वुद्विभोगविशमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञाना  
 वरणसहायीभूतानां प्रकृतीनां वध निरुधन् स्थिति ह्लासक्षयौ च कुवन् श्रुतज्ञानोपयोगो  
 निवृत्ताद्यव्यञ्जनयागमक्रान्ति अविचलितमना क्षीणकषायो वद्भूमणिरिव निरुपलेपो  
 ध्यात्वा पुनन निवतत इत्युक्तमेकत्ववितकम् । एभमेकत्ववितकधुक्लध्यानवर्षानर  
 निदग्धवातिकर्मोघन प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमण्डलो मेषपञ्जरनिरोधनिगत इव भम  
 रश्मिर्वा भासमानो भगवांस्तीक्ष्ण इतरो वा केवली लोकेश्वराणामभिगमनीयोऽचनीयश्चो  
 ररुपेणायुष पूवकोटीं दशोना विहरति । स मवाञ्जतर्मुहूतशेषायुष्वस्तुल्यस्थितिवेधनाम  
 गोत्रश्च भवति तदा सव वाळ मनसयोग आदरकाययोग च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगालम्बन

आदि बहुत प्रकारक उपार्योस युक्त होनपर ससारका नाश करनक लिए जिसन भले प्रकारसे परिक्रमको  
 किया ह एसा मुनि ध्यान करनक योग्य होता ह । जिस प्रकार अपर्याप्त उत्साहस युक्त वालक अव्यव  
 स्थित और मोहर शस्त्रक द्वारा भी चिरबालमें बुझको छदता ह उसी प्रकार चित्तक सामर्थ्यको प्राप्त कर जो  
 द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणुका ध्यान कर रहा ह वह अर्थ और व्यञ्जन तथा काय और बचनमें पृथ  
 क्त्व रूपसे सक्रमण करनबाल मनक द्वारा मोहनीय कमकी प्रकृतियोंका उपशमन और क्षय करता हुआ  
 पृथक्त्ववितक बोधारध्यानको धारण करनबाला होता ह । पुन जो समूल मोहनीय कमका दाह करना  
 चाहता ह जो अमन्तगुणी विद्वुद्विधिपानको प्राप्त होकर बहुत प्रकारकी ज्ञानावरणकी सहायीभूत  
 प्रकृतियोंक बन्धको रोक रहा ह जो कमोंकी स्थितिको न्यून और नाश कर रहा ह जो भुतज्ञानके  
 उपागम युक्त ह जो अर्थ व्यञ्जन और योगकी सन्नतितसे रहित ह निदग्ध मनबासा ह क्षीण  
 कषाय ह और वद्भूमणिके समान निरुपसप ह वह ध्यान करने पुन नहीं कौन्ता ह । इस प्रकार  
 उनक एकत्ववितक ध्यान कहा गया ह । इस प्रकार एकत्ववितक पुष्कलध्यान रूपी अग्निके द्वारा जिसन  
 चार घातिया कमरपी इधमको जला दिया ह जिसक केवलज्ञानरूपी चिरणसमुवाय प्रकाशित हो  
 गया ह जो मधमबालका निरोध कर निकस हुए सूयके समान भासमान हो रहा ह एस भगवान तीर्थ कर,  
 बचली या सामाग्य बचली इन्द्रोंक द्वारा आदरणीय और पूजनीय होत हुए उत्कृष्ट रूपस कुछ कम पूज  
 कोटि बाल तक बिहार करत ह । यह जब आयुमें अन्तर्मुहूत काय घाप रहता ह तथा बचनीय माम और  
 गोत्र कमकी स्थिति आयुक्रमक वरावर घाप रहती ह तब सब प्रकारक बधनयोग मनोयोग और बाण

(१)—माध्याह्निक-मु । (२) जलना पर्याप्त-मु । (३) लभुमन्त्रं मु वि १ वि २ आ ।

(४)—मात्रियोग-मु । (५)—योध निवृत्ता-मु ।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानमास्वन्तुमहतीति । यदा पुनरन्तमूत्रतशेषायुष्मस्ततोऽधिक  
 स्थितिपनमत्रयो भवति सयागी तदाऽऽमापयागातिशयस्य मामाधिकमहायस्य विगिष्ट  
 करणस्य महामवरस्य लघुमपरिपाचनम्याशेषनमरेणुपग्निशातनशक्तिस्वाभाव्यादृण्डक  
 पाटप्रतर्ग्लोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसपणतश्चतुभि समय कृत्वा पुनरपि तावद्भूरेव  
 समय समुपहृतप्रदेशविसरण समीकृतस्थितिशेषनमचतुष्य पूर्वशरीरप्रमाणो भूत्वा २  
 सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान ध्यायति । ततस्तदनन्तर समुच्छिन्नत्रिया  
 निवर्तिध्यानमारमते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारमवकायवाह मनायागमधप्रदेशपरिस्व  
 न्त्रियाव्यापारस्वाम् समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते । तस्मिन्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि  
 ध्यान मध्वन्धास्रवनिरोधसवशेषकमनातनमामर्ध्योपपत्तेर्यागिकवलिन् सम्पूणयथा  
 स्यात्चारिप्रज्ञानदान सर्वमसारदु खजापग्निष्णुच्छेदजनन माक्षा मोक्षकारणमुप १  
 त्रापत । स पुनरयोगवेष्ठी भगवास्तदा ध्यानातिगामिनिदग्धमवमल्लवन् द्रव धनो  
 निरस्तभित्कृधातुपापाणजात्यननकवल्क्यधात्मा परिनिवर्ति । तदतद् द्विविध तपो  
 भिनवकर्मनिधनिरोधहेतुत्वात्सवरकारण प्राक्तननमरजोविधूनननिमित्तत्वाग्निजगहलु  
 रपि भवति ।

काययोगको त्यागकर तथा सूक्ष्म काययोगका अवलम्बन लकर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानका स्वीकार १२  
 करत ह परन्तु जब उन सयागी जिनत आयु अन्तमहृत तप रहती ह और तप तीन बर्षोंकी स्थिति  
 उमय अधिक तप रहती ह तब जिहें मानिगय आगमापयोग प्राप्त ह जिहें मामाधिकका अवलम्बन  
 ह जा विगिष्ट करणम युक्त ह जो बर्षोंका महागवर कर रह ह और जिनत स्वल्पमात्रमें बर्षोंपा  
 परिगापन हू रहा ह तप व अत आत्मप्रणात फलनम कमरजका परिगापन कर्नकी शक्तिवा  
 लक बगत् प्रर और लोकपूरण समुद्पातकी चार समवाक द्वाराकरक अन्तर प्रणात विगतका ०  
 गकाय करक तथा तप चार बर्षोंकी स्थितिको समान करक अपन पूव परीरप्रमाण हारर गुधम काय  
 योगक द्वारा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानका स्वीकार करत ह । तब ब्राह्मणोय समच्छिन्न त्रियानिवर्ति  
 ध्यानको आरम्भ करत ह । तम प्राणानान प्रचारणत्रियारा तथा मर प्रकारक काययोग यननयोग  
 और मनावागद राग तनबाला आत्मप्रणा परिगन्द रूप त्रियाका उच्छेद हू जानम तम समुच्छिन्न  
 क्रियानिवर्ति ध्यान कहत ह । तम समच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यानम मर प्ररागक कथयन्पर भायवका ५  
 निरोपहू जानत तथा बारात तप मर बर्षोंका ताप कर्नता शक्तिर उन्नत हो जानम भयागिकबन्धाक  
 मवाक मर प्रराग टुगबालक मयथा उच्छेद परतवाग मयूपा यथाप्यातगारिग जान और  
 तानन मा तनु मा तत काय उन्नत पात ह । य रवागिककी भगवान् तम समय ध्यानातिगय  
 कर स्थित द्वारा मर प्रराग मल्लवल्क्यधनता जगार और तित् धातु क पायातना नागा  
 गत तम मानक समान अत आगमात प्राण कर परिनिर्वाता प्राप्त हात ५ ।

इम प्रकार पर ताना प्ररागका तप नृपन बर्षोंक भायवक निराय का हत जानम मवगता काय

पृथक्त्ववितकमेकत्ववितक सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति व्युपरतक्रियानिर्वति चेति चतुर्विध  
शुक्लध्यानम् । वक्ष्यमाण उक्षण मपेक्ष्य सर्वेषामन्वयस्वभावसयम् ।

तस्यालम्बनविशेषनिर्घाणायमाह—

उपेक्ष्ययोगकाययोगायोगानाम् ॥४०॥

४ योग शब्दो व्यासपाताय नायबाह्मनकम योग इत्यत्र । उक्तश्चतुर्भि शुक्ल-  
ध्यानविकल्पस्त्रियोगानीना चतुर्णा यथामरूपेनामिसम्बन्धो वेदितव्य । त्रियोगस्य पृथक्त्व  
वितकम्, त्रिषु योगव्येकयोगस्यैकत्ववितकम् काययोगस्य सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति अयोगस्य  
व्युपरतक्रियानिर्वर्तति ।

तत्राद्यथाविशेषप्रतिपत्त्ययमिदमुच्यते—

१ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वं ॥४१॥

एक आश्रयो ययोस्ते एकाश्रय । उभयपि परिप्राप्तश्रुतज्ञाननिष्ठेनारभ्येते इत्यथ ।  
वितकश्च वीचारश्च वितकवीचारी मह वितकवीचारार्थ्या वसते इति सवितन  
वीचार । पूर्वं पृथक्त्ववितकं इत्यथ ।

तत्र यथासंख्यप्रसंगेऽनिष्टनिवृत्त्ययमिदमुच्यते—

११ पृथक्त्ववितर्क एकत्ववितर्क सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रियानिर्वति य चार शुक्लध्यान  
ह । आग कह जानवाए लक्षणकी अपक्षा सबका सार्थक नाम जानना चाहिए ।

अब उक्त आत्म्यन विषयका निदचय करनक सिण आगका सूत्र कहत हैं—

य चार ध्यान क्रमसे तीन योगवाले एक योगवाले, काययोगवाले और अयोगके होते हैं ॥४०॥

‘नामवाह मतकम योग’ इस सूत्रमें योग शब्दका व्याख्यान कर आए ह । पूर्वमें कह गय शुक्ल-

२ ध्यानक चार शरीर साथ त्रियोग आदि चार पदोंका क्रमस गम्बन्ध जान सना चाहिए । तीन योगवास  
क पृथक्त्ववितन होता ह । तीन योगोंमें म एक योगवालेके एकत्ववितक होता ह । नाययोगवालेक  
सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता ह और अयोगीक व्युपरतक्रियानिर्वति ध्यान होता ह ।

अब इस चार मोंमें आदिक दो शरीर सम्बन्धमें विषय ज्ञान करनक सिण आगका सूत्र  
कहत ह—

२२ पहलेके दो ध्यान एक आश्रयवाले, सवितर्क और मवीचार होते हैं ॥ ४१ ॥

जिन दो ध्यानका एक आश्रय होता ह क एक आश्रयवाले कहलात ह । जिनन सम्पूर्ण श्रुतज्ञान  
प्राप्त कर दिया ह उनका हाग ही य दो ध्यान आरम्भ त्रिय जान ह । यह उक्त कथनका तात्पर्य ह ।  
जो वितक और वीचारका साथ रहत ह य सवितकवीचार ध्यान कहलात ह । सूत्रमें आए हुए पूव पदम  
पृथक्त्ववितन और एकत्ववितन य दो ध्यान सिण गए ह ।

३ पूव गत्रम यथामरूपता प्रसंगेऽनिष्टनिवृत्ति करनक सिण आगका सूत्र कहत ह—

(१)—नामवाह मतकम । (२)—यथासंख्य-म । (३) उक्तप्रतिपाति वि १ वि २ म ।

## अवीचार द्वितीयम् ॥४२॥

पूर्वयोपद् द्वितीय तदवीचार प्रत्येतव्यम् । एतदुक्त भवति—आद्य सवितक सवीचार  
च भवति । द्वितीय सवितकमवीचार घेति

अथ वितकवीचारयो क प्रतिविशेष इत्यत्रोच्यते—

वितक श्रुतम् ॥४३॥

विशेषण तरुणमूहन वितक श्रुतज्ञानमियय ।

अथ का वीचार ?

## वीचारोऽर्धव्यञ्जनयोगसंक्रान्ति ॥४४॥

अर्धो ध्येयो द्रव्य पर्यायो वा । व्यञ्जन वचनम् । योग कायवाङ्मन कमलक्षण ।  
संक्रान्ति परिवर्तनम् । द्रव्य विहाय पर्यायमुपति पर्याय त्यक्त्वा द्रव्यमित्ययसंक्रान्ति ।  
एक श्रुतवचनमुपादाय वचनान्तरमालम्बते तदपि विहायान्यदिति व्यञ्जनसंक्रान्ति ।  
काययोग त्यक्त्वा योगान्तर गृह्णाति योगान्तर च त्यक्त्वा काययोगमिति योगसंक्रान्ति ।  
एव परिवर्तन वीचार इत्युच्यते । तदेतन्नामायविशेषनिदिष्ट षतुविध धर्म्य शुक्ल च

## दूसरा ध्यान अवीचार है ॥ ४२ ॥

पहिलक दो ध्यानमें जो दूसरा ध्यान है वह अवीचार जानना चाहिए । अमिप्राय यह है कि पहिला  
ध्यान ध्यान सवितक और सवीचार होता है तथा दूसरा शुक्लध्यान सवितक और अवीचार  
है।

अब वितक और वीचारमें क्या भव है यह दिखाने के लिए आगेका सूत्र कहत है—

वितर्कका अर्थ श्रुत है ॥ ४३ ॥

विशेष रूपस लक्षणा करना अर्थात् ऊहा करना वितक अर्थात् श्रुतज्ञान कहलाता है ।

अब वीचार किस कहत हैं यह बात अगल सूत्र द्वारा कहत है—

अर्थ, व्यञ्जन और योगकी संक्रान्ति वीचार है ॥ ४४ ॥

अर्थ ध्येयको कहत है । इससे द्रव्य और पर्याय लिए जात हैं । व्यञ्जनका अर्थ वचन है तथा काय  
वचन और मनकी क्रियाको योग कहत है । संक्रान्तिका अर्थ परिवर्तन है । द्रव्यको छोड़कर पर्यायको  
प्राप्त होता है और पर्यायको छोड़कर द्रव्यको प्राप्त होता है । यह अर्थ-संक्रान्ति है । एक श्रुतवचनका  
आलम्बन लकर दूसर वचनका आलम्बन लता है और उस भी त्यागकर अन्य वचनका आलम्बन लता  
है । यह व्यञ्जन-संक्रान्ति है । काययोगको छोड़कर दूसर योगको स्वीकार करता है और दूसर योगको  
छोड़कर काययोगको स्वीकार करता है । यह योग-संक्रान्ति है । इस प्रकारके परिवर्तनको वीचार कहत  
है । आत्म्य और विषय रूपस कह गए इस धार प्रकारके धर्म्य ध्यान और शुक्ल ध्यानको पूर्वोक्त गुण्ति

(१)—यथा त्यक्त्वा नू । (२) इत्युच्यते । संक्रान्ती मय्या कच ध्यानमिति च ध्यानमन्तानमिति  
ध्यानवृत्तय इति च शेष । तदेतन्नामाय-नू वि १ वि २ आ ।

पूर्वोन्तिगुण्यादिवद्द्रव्यप्रकारोपाय ससारनिवृत्तये मुनिर्घ्यातुमहति कृतपरिक्वर्मा । तत्र द्रव्य  
परमाणु भावपरमाणु वा ध्यायन्नाहितवितकसामम्य 'अथव्यञ्जने कायवचसी च पृथक्त्वेन  
मन्त्रामता मनेमा पर्याप्तवालात्साहचर्यव्यवस्थितेनानिश्चितेनापि क्षम्येण धिरात्तर छिन्द  
प्रिव माहृप्रकृतीरुपशमयन्क्षपयश्च पृथक्त्ववितकधीचारध्यानमाग्भवति । स एव  
पुन समूलतूल माहृतीय निर्दिष्टक्षन्नन्तगुणविशुद्धियोगविशेषमाश्रित्य बहुतराणां ज्ञाना  
वरणमहायीभूतानां प्रकृतीनां वच निरुधन् स्थितिं ह्यामक्षयी च कुवन् श्रुतज्ञानोपयोगो  
निवृत्ताथव्यञ्जनयोगमन्त्रान्ति अविचलितमना क्षीणकषायो वैद्वर्ममणिरिव निरुपलेपो  
ध्यायवा पुनन निवसत इत्युक्तमनेकरववितकम् । एवमकत्ववितकशुक्लध्यानवस्थानर  
निदग्धवातिकमेष्वन प्रज्वलितकेवलज्ञानगभस्तिमण्डलो मधपञ्जरनिराधनिगत इव घम  
रश्मिर्वा भासमानो भगवांस्तीक्ष्णकर इतरा वा कवली लोकेद्वराणामभिगमनीयोऽधनीयश्चो  
र्येणायुष पूवकाटी वशोना विहरति । स यान्तमहूतशोपायुक्तस्तत्पुण्यस्थितिवेधनाम  
गाथश्च भवति तदा मय वाङ् मनसयोग वात्सरकाययोग च परिहाप्य सूक्ष्मकाययोगालम्बन

आदि बहुत प्रकारक उपायोंम युक्त होनेपर ससारका नाश करनेक किए जिसन मरु प्रकारसे परिक्रमको  
क्रिया हु एसा मुनि ध्यान करनेक योग्य होता हु । जिस प्रकार अपमोक्ष उत्साहस मुक्त धारक अथव  
स्मित और मोघर दास्त्रक द्वारा भा शिरकारमें वृद्धाको छवता हु उसी प्रकार धितक सामम्यको प्राप्त कर जो  
द्रव्यपरमाणु और भावपरमाणुका ध्यान कर रहा हु वह अथ और व्यञ्जन तथा काय और वचनमें पृथ  
क्त्व रूपस सत्रमज करनेवाल मनके द्वारा मोहनीय कमको प्रकृतियोंको उपशमन और क्षय करता हुआ  
पृथक्त्ववितक वाचारध्यानको धारण करमवाला होता हु । पुन जो समूल मोहनीय कमका दाह करना  
चाहता हु जो मनलग्नी बिदुद्धिबिदायको प्राप्त होकर बहुत प्रकारको ज्ञानावरणकी सहायीभूत  
प्रतियोगक वचको रोक रहा हु जो कर्मोंकी स्थितिको न्यून और नाश कर रहा हु जो श्रुतज्ञानक  
उपयोगम युक्त हु जो अथ व्यञ्जन और यागकी सक्रान्तिम रहित हु निदग्ध मनवाला हु क्षीण  
कषय हु और अथमणिक समान निरुपलप हु वह ध्यान करक पुन नहीं कोरता हु । इस प्रकार  
उनक एकव्यवस्थित ध्यान कहा गया हु । इस प्रकार एकव्यवितक शुक्लध्यान कपी अनिक द्वारा जिनने  
का धारिता कमनी इतको जन्म लिया हु जिनर ककलजानतयो निश्चयममुदाय प्रकाशित हो  
गया हु जो मधमण्डला निरोध कर निकल हुए मूयक समान भागमान हो रहा हु एसा मयवान तीर्थ कर,  
कवली वा मामाथ कवली इत्रिक द्वारा आरणीय और पूजनीय होत हुए उन्मुक्त मय कुछ कम पूर्व  
कोति वास कर बिहार करत हु । यह जब आयुमें अल्पमृत्न काल पाए रहता हु तथा धरनीय माय और  
गात्र कमरी स्थिति धायरमा बराबर पाए रहती हु तब मय प्रान्तक बचनयोग मनोयोग और बाहर

(१)-सायध्या-च-बु । (२) कवला पर्याप्त-म । (३) समूलतूल बु वि १ वि १ अ ।

(४)-गांध्याल-च । (५)-योग निरुता-म ।

सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यानमास्कन्दितुमहतीति । यदा पुनरन्तर्मुहूतशेषायुष्कस्ततोऽधिक-  
स्थितिशेषकमत्रयो भवति सयोगी तदाऽऽत्मोपयोगातिशयस्य सामायिकसहायस्य विशिष्ट  
करणस्य महासवरस्य लघुकमपरिपाचनस्याशेषकमरेणुपरिशातनशक्तिस्थाभाव्यादृष्टक  
पाटप्रतरलोकपूरणानि स्वात्मप्रदेशविसपणतश्चतुर्भि समय कृत्वा पुनरपि तावद्भिरेव  
समय समुपहृतप्रदेशविसरण समीकृतस्थितिशेषकमचतुष्टय पूर्वगरीरप्रमाणो भूत्वा १  
सूक्ष्मकाययोगेन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान ध्यायति । ततस्तदनन्तर समुच्छिन्नक्रिया  
निवर्तिध्यानमारभते । समुच्छिन्नप्राणापानप्रचारसवकायवाह मनोयोगसवप्रदशपरिस्थ  
न्दक्रियाव्यापारत्वात् समुच्छिन्नक्रियानिवर्तीत्युच्यते । तस्मिन्समुच्छिन्नक्रियानिवर्तिनि  
ध्यान सवव घास्रवनिरोधसवशेषकमघातनसामर्थ्योपपत्तेर्योगिकेवलिन सम्पूणयथा  
स्थातचारित्रज्ञानदशन सवससारदु स्रजालपरिप्वञ्जोच्छेदजनन साक्षान्मोक्षकारणमुप १  
जायत । स पुनरयोगकेवली भगवांस्तदा ध्यानातिशयाग्निनिदग्धसर्वमलकलकुव घनो  
निरस्तकिट्टघातुपापाणजात्यफनकवल्लघ्वात्मा परिनिवर्ति । तदतद् द्विविध तपो  
प्रमिनवकर्मस्रवनिरोधहेतुत्वात्सवरकारण प्राक्तनकमरजोविधूनननिमित्तत्वादिभिराहेतु  
रपि भवति ।

काययोगको त्यागकर तथा सूक्ष्म काययोगका अबलम्बन लेकर सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानको स्वीकार १५  
कृत ह परन्तु अब उन संयोगी जिनके आयु अन्तमुहूत शेष रहती ह और शेष तीन कर्मोंकी स्थिति  
उत्सव अधिक शेष रहती ह तब जिन्हें सातिशय आत्मोपयोग प्राप्त ह जिन्हें सामायिकता अबलम्बन  
ह जो विशिष्ट करणस मुक्त ह जो कर्मोंका महामबर कर रह ह और जिनके स्वल्पमात्रमें कर्मोंका  
परिपाचन हो रहा ह एस व अपन आत्मप्रदेशोके फलनस कमरजको परिशातन करनेकी शक्तिवास्त  
वश कपाट प्रतर और लोकपूरण समुद्धान्तको चार समयोंक द्वारा करके अनन्तर प्रदशोंक विसपणता २  
सकोष करके तथा शेष चार कर्मोंकी स्थितिको समान करके अपन पूब शरीरप्रमाण होकर सूक्ष्म काय  
योगके द्वारा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यानको स्वीकार करत ह । इसका बाद चौथे समुच्छिन्न क्रियानिवर्ति  
ध्यानको आरम्भ करत ह । इसमें प्राणापानक प्रचाररूप क्रियाका तथा सब प्रकारक काययोग वचनयोग  
और मनोयोगके द्वारा होनवाली आत्मप्रदेश परिष्कृत रूप क्रियाका उच्छ्र हो जानस इस समुच्छिन्न  
क्रियानिवर्ति ध्यान कहत ह । इस समुच्छिन्नक्रियानिवर्ति ध्यानस सब प्रकारक कमवचन आश्रयका ३५  
निरोधहो जानस तथा वाकीक वच सब कर्मोंक नाश करनेकी शक्तिवश उत्पन्न हो जानस अयोगिकवन्दीक  
प्रकारक सब प्रकारक दु स्रजालक सम्बन्धना उच्छ्र करनेवाला सम्पूण यथाश्यातचारित्र ज्ञान और  
एतन्मय साक्षात् मोक्षका कारण उत्पन्नहोता ह । व अयोगिकवली भगवान् उम समय ध्यानातिशय  
के अन्तिक द्वारा सब प्रकारक मल-कलकव घनको जलाकर और निदृष्ट घातु व पापापणा नाशकर  
हुए मोनक समान अपन आत्माको प्राप्त कर परिनिर्वाणता प्राप्त हात ह ।

इस प्रकार यह दोना प्रकारका तप नूतन कर्मोंक आश्रयक निरोध वा हेतु हातस गयरका कारण

अथाह सम्यग्दृष्टय नि सर्वे समनिजरा आहाम्बित्तद्विचदस्ति प्रतिविद्यप इत्य  
श्रोच्यते-

सम्यग्दृष्टिश्चावकविरतामन्तवियोजकवक्षनमोहसपकोपशमकोपशान्त  
मोहसपकक्षीणमोहजिना क्रमगोऽस्तस्यैयगुणनिजरा ॥४५॥

त एत स्या सम्यग्दृष्ट्यास्य क्रमगोऽस्तस्यैयगुणनिजरा । तद्यथा—भव्य पञ्चवेन्द्रिय  
मन्त्री पर्याप्तक पूर्वोक्तकाललब्ध्यान्मिहाय परिणामविन्दुदद्या वधमान प्रमेणापूर्व  
वरणाग्निमापानपड कस्यास्त्वकवमानो यदुत्तरकमनिजरो भवति । स एव पुन प्रथमसम्यक्त्व  
प्राप्तिनिमित्तमग्निधान सति सम्यग्दृष्टिभवप्रसम्यैयगुणनिजरो भवति । स एव पुन  
द्वारिग्रमाहवमविकल्पाप्रत्याख्यानावरणक्षयापशमनिमित्तपरिणामप्राप्तिकाले विन्दुद्वि  
प्रपययागान् आवका भवन् ततोऽस्तस्यैयगुणनिजरो भवति । स एव पुन प्रत्याख्याना  
वरणक्षयापशमकारणपरिणामविन्दुद्विमोगाद् विरतव्यपदेशभाक् सन् ततोऽस्तस्यैय  
गुणनिजरा भवति । स एव पुनरन्तानुवर्धनाद्यमानमायालोभानां वियोजनपरो भवति  
यत्ना स्या परिणामविन्दुद्विप्रपययागान्ततोऽस्तस्यैयगुणनिजरा भवति । स एव पुनरान  
माहप्रवृत्तिप्रयत्नानिचम निदिधक्षन् परिणामविन्दुद्वपतिगयमागाहसनमोहसपकव्यपदेश

१२ ह ओर प्राक्त्न कमरपी रजक नास करनका हतु हानम निजराका मा हतु ह ।  
यहां कहन ह नि मक सम्यग्दृष्टि क्या समान निजराका हानह या कुछ बिद्यपता ह यह बलपानक  
निए भागका मूत्र कहन ह—

सम्यग्दृष्टि, भावक, विरत, अनन्तानुवर्धवियोदक, दर्शनमोहसपक, उपशमक, उपशान्तमोह,  
क्षपक, क्षाणमाह आर जिनि य क्रमस असस्यैयगुण निर्जरायासु होत है ॥४५॥

सम्यग्दृष्टि भाति य स्या प्रथम अस्तस्यैयगुण निजरायासु हासु ह । यथा—जिम पूर्वोक्त वाक्य  
परिच प्रतिज्ञा मत्रापता मिता ह ओर जा परिणामोको विन्दुद्वि द्वाग बुद्धिना प्राप्त हो रहा ह एसा  
भव्य पञ्चवेन्द्रिय मज्ञा पर्याप्तक जीव प्रथम अपूर्वकल्प भाति गीतान परिपतर चहुडा हुआ बहुरक कर्मों  
का निजरा कालयाग होता ह । मत्रप्रथम कह हा प्रथम सम्यक्त्वरो प्राप्तिक निमित्त मित्रतर सम्य  
ग्दृष्टि जाता एसा प्रथमस्यैयगुण निजरायासु होता २ । पुन यह ही वाग्नि मोहनाय कमर एक भ  
अस्तस्यैयगुणनिजराय कमर क्षयात्तम निमित्तक परिणामोको प्राप्तिक समय विन्दुद्वि प्रपय हानम  
कारक होता हुआ उपम अस्तस्यैयगुण निजरायासु होता ह । पुन यह ही प्रत्याख्यानावरण कमर  
क्षयात्तम निमित्तक परिणामोको विन्दुद्वि प्रपय मिता मज्ञातो प्राप्त होता हुआ उपम अस्तस्यैयगुण  
निजरायासु होता ३ । पुन य वा अस्तस्यैयगुणनिजराय को मान माना ओर एसाही विद्योक्तता  
कहता ४५ परिणामोको विन्दुद्वि प्रपय उपम अस्तस्यैयगुण निजरायासु होता ह । पुन यह ही  
अस्तस्यैयगुणनिजराय को मान माना ओर एसाही विन्दुद्वि प्रपय मिता मज्ञातो प्राप्त होता हुआ उपम अस्तस्यैयगुण

माकं पूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति । एव स क्षायिकसम्यग्दृष्टिभूत्वा श्रेष्यारोहणा भिमुखश्चारित्रमोहोपशम प्रति व्याप्रियमाणो विशुद्धिप्रकषयोगादुपशमकव्यपदेशमनु भवन् पूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति । स एव पुनरशेषचारित्रमोहोपशमनिमित्त सश्रिताने परिप्राप्तोपशान्तकषायव्यपदेश पूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति । स एव पुनश्चारित्रमोहक्षपण प्रत्यभिमुख परिणामविशुद्ध्या यद्वमान क्षपव्यपदेशमनुभव न्यूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति । स यदा निशेषचारित्रमोहक्षपणकारणपरिणामा भिमुख क्षीणकषायव्यपदेशमास्कन्दन्पूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति । स एव द्वितीय शुक्लध्यानानलनिदग्घातिकमनिचय सन् जिनव्यपदेशमान पूर्वोक्तादसस्येयगुणनिजरो भवति ।

मोहक्षपकसज्ञाको प्राप्त होता हुआ पहलस असस्येयगुण निजरावाला होता है । इस प्रकार यह क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर श्रणिपर आरोहण करनेक समन्व होता हुआ तथा चारित्र मोहनीयक उपशम करनेक लिए प्रयत्न करता हुआ विशुद्धि प्रकषयक उपशमक सज्ञाको अनुभव करता हुआ पहिल कही गइ निजराग असस्येयगुण निजरावाला होता है । पुन वह ही समस्त चारित्रमोहनीयक उपशमक निमित्त मिलन पर उपशान्तकषाय सज्ञाको प्राप्त होता हुआ पहिल कही गइ निजराग अगस्येयगुण निजरा वाला होता है । पुन वह ही चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके लिए समुस हाता हुआ तथा परिणामोकी विशुद्धिस वृद्धिको प्राप्त होकर क्षपक सज्ञाको अनुभव करता हुआ पहिल कही गइ निजराग असस्येय गुण निजरावाला होता है । पुन वह ही समस्त चारित्रमोहनीयकी क्षपणाक कारणक प्राप्त हुए परि णामोके अभिमुख होकर क्षीणकषाय सज्ञाको प्राप्त करता हुआ पहिल कही गइ निजराग अगस्येय गण निजरावाला होता है । पुन वह ही द्वितीय शुक्लध्यान रूपी अग्निक द्वारा घातितक समुपवा नाद करक जिन सज्ञाको प्राप्त होता हुआ पहल कही गइ निजराग असस्येयगुण निजरावाला होता है ।

विद्यपार्वं—यहा मुख्य रूपस गुणधणि निजराक दस स्थानोका निर्देश किया गया है । अगस्येयान युगितक्रम श्रेणिरूपस बसोकी निजरा होना गुणधणिनिजरा है । यह गुणधणि निजरा गवता नही होनी किन्तु उपशमना और क्षपणाक कारणक परिणामोके द्वारा ही गुणधणि रचना हायक यह निजरा होनी है । गुणधणि रचना दो प्रकारकी होती है—एक ता गणितायणप गुणधणि रचना और दूसरी भवस्थित गुणधणि रचना । यह कही किम प्रकारकी होती है इग लघिगण क्षपणामाग्य जान मता चारित्र । यहा रचना ही विद्यप वक्तव्य है कि यहा जा ग्य स्थान यतकाग है उनक उमरोत्तर गुण धणिनिजराक लिए असम्यातगुणा इभ्य प्राप्त होता है किन्तु आग प्राग गुणधणिका बाल गस्यातगुणा हीन हीन है । अर्थात् सम्यग्दृष्टिका गुणधणि निजराके जा अन्तमु हुन बाल रचना है उमग श्रावणरो पख्यात गुणा हीन बाल रचना है पर सम्यग्दृष्टि गुणधणि प्राग जितन बसप्र गाता निजरा करता है रम्य श्रावक असम्यात गण बसपरमाणुआकी निजरा करता है । यही कारण गवत जानमा चारि ।



आह मम्यग्दानसन्निधानेऽपि यद्यसहयगुणनिबन्धत्वात्परस्परतो न साम्यमर्पा  
किं तर्हि श्रावकवर्गमी विरतादयो गुणभेदात्तन्निर्ग्रयतामहन्तीति ? उच्यते नतदेवम् ।  
कुत ? यस्माद् गुणभेदादन्याऽन्यविशेषेऽपि नगमादिनयव्यापारात्मकेऽपि हि भवन्ति—

पुलाकबकुशकुशीलनिग्रन्थस्नातका निग्रन्था ॥ ४६ ॥

उत्तरगुणभावनापेतमनसो व्रतेष्वपि न्वचित्कदाचित्परिपूणतामपरिप्राप्नुवन्तो  
ऽविशुद्धपुलाकसाद्दयात्पुलाका ह्युच्यन्ते । नग्रन्थ पति स्थिता अल्पवित्तव्रता शरीरोप  
करणविभूषानुवर्तिनोऽविविक्तपरिवारो मोहशयलमुक्ता वकुशा । शवलपर्यायवाची  
वकुशा । कुशीला द्विविधा—प्रतिसेवनाकुशीला नपायकुशीला इति । अविविक्त  
परिग्रहा परिपूर्णोभया कश्चिच्चदुत्तरगुणविराधिना प्रतिसेवनाकुशीला । वशीकृता  
न्यवपायोदया सञ्ज्वलनमात्रतया नपायकुशीला । उवक्वण्डरद्विवदनमिभ्यक्तोन्म  
कर्माणि ऊर्ध्व मूर्हतादुद्भिद्यमानकेवलज्ञानदधानभाजो निग्रन्था । प्रक्षीणघातिकर्माण  
केवलानां द्विविधा स्नातका । त एते पञ्चापि निग्रन्था । चारित्रपरिणामस्य प्रकर्षा

कहत ह मम्यग्दानका सान्निध्य होनेपर भी यदि असह्यगुण निबन्धक कारण य परस्परमें  
समान नहीं हैं तो श्रावकके समान य विरत आदिक भी कबल गुणभेदक कारण निग्रन्थपनको नहीं प्राप्त  
हो सकते हैं इसलिये कहत हैं कि यह जान एसा महो ह क्योंकि यत गुणभेदक कारण परस्पर भेद  
होनपर भी नगमानि नयकी अपक्षा व समी होत हैं—

पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं ॥ ४६ ॥

जिनका मन उत्तरगुणोंकी भावनास रहित ह जो कहीं पर और कदाचित् धर्मोंमें भी परिपूणताको  
नहीं प्राप्त होत हैं व अविशुद्धपुलाक (गुच्छ धान्य) के समान होनस पुलाक कहे जात हैं । जो निग्रन्थ  
होन ह वनोंका अलम्ब रूपस पालन करते हैं शरीर और उपकरणोंकी शोभा बढानमें लग रहत हैं  
परिवारसे घिरे रहत हैं और विविध प्रकारक मोहस मुक्त होत हैं वे वकुश कहलात ह । यहाँ पर  
वकुश शब्द 'वाकल (चित्र-विचित्र) शब्दका पर्यायवाची ह । कुशील दो प्रकारक होत हैं—  
प्रतिसेवनाकुशील और नपायकुशील । जो परिग्रहम विर रहत हैं जो मूल और उत्तरगुणोंमें परिपूण हैं  
एकिन कमी-कमी उत्तरगुणोंकी विराधना करत हैं व प्रतिसेवनाकुशील कहलात ह । जिन्होंने  
अन्य नपायोके उदयको जीन लिया ह और जो कबल सञ्ज्वलन नपायोके अधीन हैं व नपायकुशील  
कहलात ह । जिन प्रकार अममें लकड़ीस की गई रक्षा अग्रकट रहती ह उसी प्रकार जिनक कमीका उदय  
अग्रकट हो और जो अन्तर्मूर्तके बाह्य अग्रकट होनवाले कवचज्ञान और कवचवर्धनको प्राप्त करत ह  
व निग्रन्थ कहलात ह । जिन्होंने चार घातिया कमीका नाश कर लिया ह एम दोनों प्रकारक कवची  
स्नातक कहलात हैं । य पाँचों ही निग्रन्थ होन ह । इनमें चारित्ररूप परिणामोंकी न्यूनाधिकताक

(१)—भाष्यनेत-मु । (२) पञ्चा पुलाक-य । (३)—जात मोहददयव-जा, वि १।-भारत  
मोहयव-वि २। (४)—विशेषित य ।

प्रकपमदे सत्यपि नगमसग्रहादिनयापेक्षया सर्वेऽपि ते निग्रन्था इत्युच्यन्ते ।

तेषां पुलाकादीनां भूयोऽपि विशेषप्रतिपत्त्यथमाह—

सयमश्रुतप्रतिसेवनातीवलिङ्गलेऽप्योपवावस्थानविकल्पत साध्या ॥ ४७ ॥

त एते पुलाकादयः सयमादिभिरष्टभिरनुवाग साध्या व्याख्येया । तद्यथा—पुलाकवक्रुशप्रतिसेवनाकुशीला द्वयोः सयमयो सामायिकच्छेदोपस्थापनयोश्चतन्ते । कपायकुशीला द्वयोः सयमयो परिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराययोः पूर्वयोश्च । निग्रन्थस्नातका एकस्मिन्नेव यथाख्यातसयमे मन्ति ।

श्रुत—पुलाकवक्रुशप्रतिसवनाकुशीला उत्कर्षेणाभिप्राक्षरदशपूर्वधरा । कपायकुशीला निग्रयाश्चतुदशपूर्वधरा । अधन्येन पुलाकस्य श्रुतमाचारवस्तु । वक्रुशानुशीलनिग्रधाना श्रुतमर्ष्टा प्रवचनमातर । स्नातका अपगतश्रुता वैवलिन ।

प्रतिसेवना—यश्चाना मूलगुणानां रात्रिभोजनवजनस्य च पराभियोगाद् यलादन्यतम प्रतिसेवमान पुलाको भवति । वक्रुशो द्विविध—उपकरणवक्रुश शरीरवक्रुश इति । तत्रोपकरणवक्रुशो बहुविधोपयुक्तापकरणाकांक्षी । शरीरमस्कारसेवी शरीरवक्रुश । प्रतिसेवनाकुशीलो मूलगुणानविराधयन्नुत्तरगुणेषु काश्चिद्विगधनां प्रतिसेवते ।

कारण भव होनपर भी नगम और सग्रह आदि नयोकी अपक्षा व सय निग्रन्थ बहुलात हे ।

अत्र उन पुलाक आदिक सम्बन्धमें पुनरपि ज्ञान प्राप्त करानक लिए आगका मृत्र कहत हैं—

सयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ लिङ्ग, लेदपा, उपपाद और स्थानके भेदसे इन निर्ग्रयोका व्याख्यान करना चाहिए ॥ ४७ ॥

य पुलाक आनि सयम आनि आठ अनुयोगोंक द्वारा साध्या ह् अर्थात् व्याख्यान करन योग्य ह् । यथा—पुलाक वक्रुश और प्रतिसवना कुशील सामायिक और छनोपस्थापना इन दो सयमोंमें रहत ह् । कपायकुशील पूर्वोक्त दो सयमोंक नाम परिहारविशुद्धि और मृत्रसाम्पराय इन सयमोंमें रहत ह् । निग्रन्थ और स्नातक एक मात्र यथाख्यात सयममें रहत ह् ।

श्रुत—पुलाक वक्रुश और प्रतिसवनाकुशील उत्कृष्ट रूपम अभिप्राक्षर दश पूर्वधर हान ह् । कपायकुशील और निग्रन्थ कीन्ह पूर्वधर होत ह् । अधन्य रूपम पुलाकका श्रुत आचार वस्तुप्रमाण होता ह् । वक्रुश कुशील और निग्रधाना धन आठ प्रवचनमातका प्रमाण होता ह् । स्नातक श्रुतज्ञानम रहित बवन्ती होत ह् ।

प्रतिसेवना—दूरतोंक दयाकरका उबर्गन्थीम पीन मूलगुण और रात्रिभोजन वजन प्रतमें म रिमी एकरी प्रतिसेवना करनवाला पुलाक होता ह् । वक्रुश का प्रकारक होत ह् उपकरणवक्रुश और शरीरवक्रुश । उतमम अतक प्रकारकी विद्यपताओंको निग्र ज्ञान उपकरणोंका व्याख्यानका उपकरण वक्रुश होता ह् तथा शरीरका संस्कार करनवाला शरीरवक्रुश होता ह् । प्रतिसेवना कुशील मूलगुणोंकी

## अथ दशमोऽध्याय

आह अन्ते निर्दिष्टस्य मोक्षस्येदानीं स्वरूपाभिधानं प्राप्तकालमिति ? सत्यमवम् ।  
मोक्षप्राप्तिं कवलज्ञानावाप्तिपूर्विकतिं कवलज्ञानोत्पत्तिकारणमुच्यते—

मोहक्षयाग्ज्ञानवशनावरणान्तरामक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

इह वृत्तिकरणं याम्यम् । कुत ? लघुत्वात् । कथम् ? एकस्य 'क्षय' शब्दस्याकरणाद्  
विभक्त्यन्तरनिर्देशस्य चाभावात् 'च' शब्दस्य चाप्रयोगाल्लघु सूत्रं भवति 'मोहज्ञानदशना  
वरणान्तरामक्षयात्केवलम्' इति ? सम्यमतत् 'क्षय'प्रतिपादनार्थो वाक्यभेदेन निर्देश  
त्रियते । प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयान्तमूहृत क्षीणकषायव्यपदेशमवाप्य ततो युगपज्ज्ञान  
वशनावरणान्तरामाणा क्षयं कृत्वा केवलमवाप्नोति इति । तत्क्षयो हेतुः केवलोत्पत्तिरिति  
हेतुसंज्ञणो विभक्तिनिर्देशः कृतः । कथं प्रागेव मोहं क्षयमुपनीयते इति चदुच्यते—मव्य

## दशमोऽध्याय

कहत ह कि अन्तमें कह गये मोक्षके स्वरूपके कथनका अब समय आ गया है । यह कहना सही है  
तथापि कवलज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिए पहले कवलज्ञानकी उत्पत्तिक  
कारणाका निर्देश करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

मोहका क्षय होनेसे तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका  
क्षय होनेसे केवलज्ञान प्रकट होता है ॥ १ ॥

इस सूत्रमें समाप्त करना उचित है क्योंकि इससे सूत्र स्पष्ट हो जाता है ।

पश्चात्—कथम् ?

प्रतिपत्ति—ज्याकि एसा करतम एत क्षयगत नहो दना पडता है और दूसरी विभक्ति क  
निर्देशना समाप्त हत जानत 'च' शब्दका प्रयोग नही करना पडता है इसलिए सूत्र लघु हो जाता है ।

पश्चात्—'मोहज्ञानवशनावरणान्तरामक्षयात्केवलम्' ।

प्रमाधान—यह कहना सही है तथापि शायद प्रथमा कथन करनेका लिए वाक्योंका भेद करना  
निश्चय किया है । पहिले ही मोहका क्षय करत और अन्तमूहृत कारणत धाणितपाय मज्ञानो प्राप्त  
होकर अन्तम्वरणावशनावरण दशनावरण और अन्तराय कर्मका एक साथ क्षय करत कवलज्ञानकी प्राप्ति  
होत है । 'च' कर्मोका क्षय कवलज्ञानकी उत्पत्तिता हेतु है एसा जानकर हेतुसंज्ञण विभक्तिना  
निश्चय किया है ।

पश्चात्—पहिले ही मोहका क्षयना कथन प्रारंभ होता है ?

(१)—आवापि आ । (२) कथम् ? क्षय-व । (३) तथापि केवलज्ञाननिर्देशना आ ।

सम्यग्दृष्टि परिणामविशुद्ध्या वधमानोऽन्यतसम्यग्दृष्टिसमयतामयत्तप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानेषु  
 कस्मिंश्चिन्मोहस्य सप्त प्रकृती क्षयमुपनीय क्षायिकसम्यग्दृष्टिभूत्वा क्षपकधेय्यारोह  
 गाभिमुखोऽध प्रवृत्तकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्यापूर्वकरणप्रयोगेणापूर्वकरणक्षपकगुणस्था  
 नस्यपदक्षमनुभूय तत्राभिनवशुभाभिसन्धितनूत्तपापप्रकृतिस्थित्यनुभागो विवर्धित  
 मूमकर्मानुभवोऽनिवृत्तिकरणप्राप्त्यानिवृत्तिवादरसाम्परायक्षपकगुणस्थानमविरह्य तत्र  
 कथायाप्टक नष्टं कृत्वा नपू सकवेदनाश समापाद्य स्त्रीवेदमु मूल्य नोक्षपायपटक पू वेदे  
 पक्षिप्य क्षपयित्वा पु वेद क्रोधसज्ज्वलने क्रोधसज्ज्वलन मानसज्ज्वलने मानसज्ज्वलन  
 मायासज्ज्वलने मायामज्ज्वलन च लोभसज्ज्वलन क्रमेण वादरकृष्टिविभागन विलयमुप  
 नीय लोभसज्ज्वलन तनूकृत्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वमनुभूय निरवशेष मोहनीय निर्मूल-  
 काय कपित्वा क्षीणकपायतामधिहृष्टावतारितमोहनीयभार उपान्त्यप्रथमे समये निद्रा  
 प्रचले प्रलयमुपनीय पञ्चानां ज्ञानावरणानां चतुणां दशनावरणानां पञ्चानामन्तरायानां  
 चान्तमन्ते समुपनीय तदनन्तर ज्ञानदशनस्वभाव केवलपर्यायमप्रतक्ष्यविभूतिविशेषमवा  
 प्नोति ।

आह कस्माद्देशीर्भोक्ष किलक्षणश्चेत्यत्रोच्यते—

समाधान—सम्यग्दृष्टि मध्य परिणामोक्ती विगुडिस वृद्धिको प्राप्त होता हुआ असयत्त सम्यग्दृष्टि  
 मयवासयत्त प्रमत्तसयत्त और अप्रमत्तसयत्त इन चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानमें मोहनीयकी  
 मात प्रकृतियोंका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि होकर क्षपकधेय्यपर आरोहण करनेके लिए सम्युत्त  
 होता हुआ अप्रमत्तसयत्त गुणस्थानमें अध प्रवृत्तकरणको प्राप्त होकर अपूर्वकरणक प्रयोग द्वारा अपूर्व  
 करण क्षपक गणस्थान सञ्जाका अनुभव करके और वही पर नूतन-परिणामोक्ती विगुडिबद्ध पापप्रकृतियों  
 को स्थिति और अनुभागको कृष्ट करके तथा मूमकर्मान् अनुभागकी वृद्धि करके अनिवृत्तिकरणकी  
 प्राप्ति द्वारा अनिवृत्तिबाधरसाम्पराय क्षपकगुणस्थान पर आरोहण करके तथा वही आर कथायोंका  
 नाश करके तथा नपुंसकवद और स्त्रीवदका क्रमसे नाश करके छह नोक्षपायका पुरपक्वमें सक्तमण  
 द्वारा नाश करके तथा पुण्यवदका क्रोध सज्ज्वलनमें श्रांभ सज्ज्वलनका मानसज्ज्वलनमें मानसज्ज्वलनका  
 मायामज्ज्वलनमें और मायासज्ज्वलनका लोभसज्ज्वलनमें क्रमसे वादरकृष्टिविभागक द्वारा सक्तमण  
 करके तथा लोभसज्ज्वलनको कृष्ट करके सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकत्वका अनुभव करके समस्त मोहनीयका  
 निर्मूल नाश करके क्षीणकपाय गुणस्थानपर आरोहण करके मोहनीयक भारको उन्तारकर क्षीण  
 कपाय गणस्थानक उपान्त्य समयमें निद्रा और प्रचलाका नाश करके तथा अन्तिम समयमें पाँच ज्ञाना  
 वरण चार अनावरण और पाँच अन्तराय कर्मोंका अन्त करके तदनन्तर ज्ञानस्थानस्वभावका पर्यवेक्षण  
 पर्यायो प्राप्त होता है ।

कहते हैं कि किस कारणसे योग प्राप्त होता है और उसका स्थापन क्या है यह बतलाने के लिए  
 भागका मूल कहते हैं—

(१) -ग्न नाभ-वृ । (२) -यागापत्त-प । (३) मयगणस्य तद-म तत् ।

कपायकुशीलनिग्रयस्नानपानां प्रतिगयना नास्ति ।

तीर्थमिति सर्वे सर्वेषां तीर्थवर्गणा तीर्थेषु भवन्ति ।

लिङ्ग द्विविध—द्रव्यलिङ्ग भावलिङ्ग भवति । भावलिङ्ग प्रतीत्य सर्वे पञ्च निग्रया  
लिङ्गिता भवन्ति । द्रव्यलिङ्ग प्रतीत्य भाग्या ।

५ लक्ष्या—पुत्रावस्थासंगमिष्य । अत्रुप्रतिगयनापुत्रालया पश्यि । कपायकुशा  
लस्य तत्रत्य उत्तरा । सम्भगाम्परायस्य निग्रयस्नानसकयोदक मुक्तक पेदला । अपोगा  
अलया ।

उपपाद—पुलाकस्पोतृष्ट उपपाद उरृष्टस्वितिवपु महस्वार । अत्रुप्रति  
मयनाकुशीलयाद्वीधगतिमागगावमस्वितिव आरणाचपुतात्ययो । कपायकुशीलनिग्र  
१ ययाम्प्रयस्त्रिगामागगोमस्वितिवु मर्वायमिद्धी । सर्वपामपि जपन्य शोधमकल्प  
द्विमागगावमस्वितिव । स्नातकस्य निर्वाणमिति ।

स्थानम्—अमस्ययानि मयमस्थानानि कपायनिमित्तानि भवन्ति । तत्र मयजय  
न्यानि लघिमस्थानानि पुलाककपायकुशीलयो । ती यूगपत्समस्ययानि स्थानानि गच्छन् ।  
तत्र पुलाको व्यच्छिद्यते । कपायकुशीलस्नानात्मकयानि स्थानानि गच्छस्यवाक्ती ।

१२ विगयना न कयता कृआ उत्तरगुणानी विगयनाकी प्रतिमवना कयनवाला होना ह । कपायकुशील  
निग्रय न्य और स्नातककौक प्रतिमवना महा होती ।

तीर्थ—य सब निग्रय न्य मय तीर्थकुशौक तीर्थोमें होत हें ।

लिङ्ग—लिङ्ग वा प्रकारका ह द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग । भावलिङ्गकी अपरात पीरों हा  
मावु निग्रय न्य लिङ्गवाण हात हें । द्रव्यलिङ्ग अर्मात् शरीरका उपाई रग न पीछी मानिकी अग्या  
९ उनमें भव ह ।

लक्ष्या—पुलाकक आपकी तीन लक्ष्याएँ होती ह । बहुम और प्रतिमवना कुशीलक छहों लक्ष्याएँ  
हाती ह । कपायकुशीलक अलकी चार लक्ष्याएँ होती हें । सुभसाम्पराय कपायकुशीलक तथा निग्रय न्य  
और स्नातकक कबल मुक्त लक्ष्या होनी ह और अपोगी लक्ष्यारहित होत हें ।

उपपाद—पुलाकका उत्कृष्ट उपपाद सहस्वार कल्पक उत्कृष्ट स्वितिवाल सर्वोमें होता ह । बहुम  
२४ और प्रतिमवना कुशीलका उत्कृष्ट उपपाद आरण और अच्युत कल्पमें वाइस सागरक स्वितिवाल  
सर्वोमें होता ह । कपायकुशील और निग्रयन्यका उत्कृष्ट उपपाद सर्वायसिद्धिमें तेतीस सागरकी स्विति  
वाल सर्वोमें होता ह । इन समीका नयय उपपाद शोधम कल्पमें दो सागरकी स्वितिवाले देवोमें होता  
ह । तथा स्नातक मोल जात हें ।

स्थान—कपायनिमित्तक असक्ष्यात समयस्थान होत हें । पुलाक और कपायकुशीलक सबस  
३ जपन्य लघिमस्थान होत हें । न दोनों असक्ष्यात स्थानांतक एक साथ आते हें । इसके बाद पुलाककी

(१) पश्यि । कुप्लेस्मादिभित्तव तयो कयमिति बहुवचने-नमोदयपरवाठित्तनमवावाउप्यत  
क्याकिस्ममवति आर्तस्थानत न हृप्यादिस्मादिभित्तव सम्भवतीति । कपाय-मु ।

ततः कपायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलवक्रुशा युगपदसख्येयानि स्थानानि गच्छन्ति । ततो वक्रुशो व्युच्छिद्यते । ततोऽप्यसख्येयानि स्थानानि गत्वा प्रतिसेवनाकुशीला व्युच्छिद्यते । ततोऽप्यसख्येयानि स्थानानि गत्वा कपायकुशीलो व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमकपायस्थानानि निग्रथ प्रतिपद्यते । सोऽप्यसख्येयानि स्थानानि गत्वा व्युच्छिद्यते । अत ऊर्ध्वमेकस्थानं गत्वा स्नातको निर्वाणं प्राप्नोतीत्येतेषां सयमलङ्घ्यन्तगुणा भवति ।

इति तत्त्वायवृत्तौ सर्वाथमिद्विमञ्चित्रकाया नवमोऽध्याय समाप्तः ।

व्युच्छिति हो जाती है । आग कपायकुशील असख्यात स्थानों तक अकला जाता है । इसमें आग कपाय कुशील प्रतिसेवना कुशील और वक्रुश असख्यात स्थानों तक एक साथ जाते हैं । यहाँ वक्रुश की व्युच्छिति हो जाती है । इसमें भी असख्यात स्थान आग जाकर प्रतिसेवना कुशील की व्युच्छिति हो जाती है । पुन इसमें भी असख्यात स्थान आग जाकर कपाय कुशील की व्युच्छिति हो जाती है । इसमें आग कपाय स्थान है जिन्हें निग्रथ प्राप्त होता है । उसकी भी असख्यातस्थान आग जाकर व्युच्छिति हो जाती है । इसमें आग एक स्थान जाकर स्नातक निर्वाणको प्राप्त होता है । इनकी सयमलङ्घ्य अनन्त सुभी होती है ।

इस प्रकार सर्वाथमिद्विमञ्चित्रनामक तत्त्वायवृत्तिमें नौवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

## अथ दशमोऽध्याय

आह अन्ते निर्दिष्टस्य मोक्षस्येदानीं स्वरूपाभिधानं प्राप्तकालमिति ? सत्यमेवम् ।  
मोक्षप्राप्तिं केवलज्ञानावाप्तिपूर्विकं किं केवलज्ञानोत्पत्तिकारणमुच्यते—

मोहक्षयाज्ज्ञानवदक्षनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम् ॥ १ ॥

इह वृत्तिहरणं न्याय्यम् । कुत ? लघुत्वात् । कथम् ? एकस्य क्षयशब्दस्याकरणाद्  
विभक्त्यन्तरनिर्देशस्य चाभावात् च शब्दस्य चाप्रयोगाल्लघुसूत्रं भवति 'मोहज्ञानदक्षना  
वरणान्तरायक्षयात्केवलम्' इति ? सत्यमेतत्, क्षयक्रमप्रतिपादनाभौ वाक्यभेदेन निर्देश  
क्रियते । प्रागेव मोहक्षयमुपनीयान्तर्मुहूतक्षीणकषायव्यपदेशमवाप्य ततो युगपज्ज्ञान  
दक्षनावरणान्तरायार्णाक्षयं कृत्वा केवलमवाप्नोति इति । तत्प्रथमो हेतुः केवलीत्यस्तिरिति  
हेतुलक्षणा विभक्तिनिर्देशादुच्यते । कथं प्रागेव मोहक्षयमुपनीयते इति च दुर्बलम्—अथ

## दशवाँ अध्याय

कहते हैं कि अन्तमें कहे गये मोक्षके स्वरूपके कथनका अब समय आ गया है । यह कहना सही है  
तथापि केवलज्ञानकी उत्पत्ति होनेपर ही मोक्षकी प्राप्ति होती है इसलिए पहले केवलज्ञानकी उत्पत्तिके  
कारणोंका निर्वेश करनके लिए आगका सूत्र कहते हैं—

मोहका क्षय होनेसे तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका  
क्षय होनेसे केवलज्ञान प्रकट होता है ॥ १ ॥

इस सूत्रमें समास करना उचित है क्योंकि इससे सूत्र लघु हो जाता है ।

शका—कस ?

प्रतिपादका—क्योंकि ऐसा करनेसे एक क्षयशब्द नहीं देना पड़ता है और दूसरी विभक्ति के  
निर्देशका अभाव हो जानसे 'च' शब्दका प्रयोग नहीं करना पड़ता है इसलिए सूत्र लघु हो जाता है ।  
यथा—मोहज्ञानदक्षनावरणान्तरायक्षयात्केवलम् ।

समाधान—यह कहना सही है तथापि कामके क्रमका कथन करनेके लिए भाष्योंका भेद करके  
निर्देश किया है । पहिले ही मोहका क्षय करके और अन्तर्मुहूत कालतक क्षीणकषाय सज्ञाको प्राप्त  
होकर अनन्तर ज्ञानावरण दर्शनावरण और अन्तराय कर्मका एक साथ क्षय करके केवलज्ञानको प्राप्त  
होता है । इन कर्मोंका क्षय केवलज्ञानकी उत्पत्तिका हेतु है ऐसा जानकर 'हेतुर्बुध' विभक्तिका  
निर्देश किया है ।

शका—पहिले ही मोहका क्षयको कैसे प्राप्त होता है ?

सम्पद्दृष्टि परिणामविशुद्ध्या वधमानाऽन्यतमस्यद्दृष्टिसुयतामयतप्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानपु  
 क्मिदित्तमोहस्य सप्त प्रवृत्ती क्षयमुपनीय क्षायिकसम्पद्दृष्टिभूत्वा क्षपकश्रेण्यारोह  
 गाभिमुखीष्व प्रवृत्तकरणमप्रमत्तस्थाने प्रतिपद्यापूवकरणप्रयोगेणापूवकरणक्षपकगुणस्थान  
 नव्यपशमनुभूय तत्राभिनवशुभाभिसघितनृत्तपापप्रवृत्तिस्थित्यनुभागो विवर्धित  
 गुणकर्मनिभवीऽनिवृत्तिकरणप्राप्त्यानिवृत्तिवादरसाम्परायक्षपकगुणस्थानमधिरुह्य तत्र  
 कषायाप्यक्त नष्ट भूत्वा नपु सकषेदेनाश समापाथ स्त्रीवेदमुन्मूल्य नोक्षपायपटक पु वेदे  
 प्रक्षिप्य क्षपयित्वा पु वेद क्रोधसज्वलन क्रोधसज्वलन मानसज्वलने मानसज्वलन  
 मायासज्वलने मायासज्वलन च लोभसज्वलने क्रमेण वादरदृष्टिविभागेन विलयमुप  
 नीय लोभसज्वलन तनुकृत्य सूक्ष्मसाम्परायक्षपकत्वमनुभूय निरवशेष मोहनीय निमूल  
 काप कषित्वा क्षीणकषायतामधिरुह्यावतागित्तमोहनीयभार उपात्त्यप्रथमे समये निद्रा  
 प्रथम प्रलयमुपनीय पञ्चाना ज्ञानावरणानां चतुणा दशनावरणानां पञ्चानामन्तरायाणां  
 चान्तमन्ते समुपनीये तदनन्तर ज्ञानदशनस्वभाव केवलपर्यायमप्रतक्षयविभूतिविशेषमवा  
 प्नोति ।

आह कस्मादेतोर्मोक्ष किलक्षणश्चत्यत्रोच्यते—

समाधान—सम्पद्दृष्टि भव्य परिणामोक्ती विद्विद्धि वृद्धिको प्राप्त होता हुआ असंयत सम्पद्दृष्टि  
 नयशास्यत प्रमत्तामयत और अप्रमत्तसयत इन चार गुणस्थानोंमेंसे किसी एक गुणस्थानमें मोहनीयकी  
 मात प्रवृत्तियोंका क्षय करके क्षायिक सम्पद्दृष्टि होकर क्षपकश्रेणियपर आरोहण करनेके लिए सम्पुग  
 होता हुआ अप्रमत्तामयत गुणस्थानमें अधःप्रवृत्तकरणको प्राप्त होकर अपूवकरणक प्रयोग द्वारा अपूव  
 करके क्षपक गुणस्थान सजाका अनुभव करके और वहाँ पर मूतन-परिणामोक्ती विद्विद्धि तथा पापप्रवृत्तियों  
 को स्थिति और अनुभागको वृथा करके तथा पुनःकर्मोंके अनुभागकी वृद्धि करके अनिवृत्तिकरणकी  
 प्राप्ति द्वारा अनिवृत्तिवादरसाम्पराय क्षपकगुणस्थान पर आरोहण करके तथा वहाँ आठ कषायाका  
 नाश करके तथा नर्पसकषेद और स्त्रीवधका क्रमसे नाश करके छह नोक्षपायका पुण्यवधमें सत्रमण  
 द्वारा नाश करके तथा पुण्यवधका श्रेष्ठ सज्वलनमें श्रेष्ठ सज्वलनका मानसज्वलनमें मानसज्वलनका  
 मायासज्वलनमें और मायासज्वलनका लोभसज्वलनमें क्रमसे वादरदृष्टिविभागेक द्वारा सत्रमण  
 करके तथा लोभसज्वलनको वृथा करके सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकत्वका अनुभव करके समस्त मोहनीयका  
 निमूल नाश करके क्षीणकषाय गुणस्थानपर आरोहण करके मोहनीयका भारको उपात्कर क्षीण  
 कषाय गुणस्थानक उपात्त्य समयमें निद्रा और प्रथमका नाश करके तथा अन्तिम समयमें पाँच ज्ञाना  
 करके चार दशनावरण और पाँच अन्तराय कर्मोंका अन्त करके सतन्त्र ज्ञानस्थानस्वभावका पद  
 पयिकको प्राप्त होता है ।

कहने है कि किस कारणसे मोह प्राप्त होता है और उसका स्रगण क्या है यह बतलानेके लिए  
 भाषका सूत्र कहते हैं—

(१)—अन भाष-मु । (२)—पाशापल-क । (३) सम्पुगमस्य ट-मु, ता ।



बन्धहेत्वभावनिजरास्यां कृत्स्नकमविप्रमोक्षो मोक्ष ॥ २ ॥

मिथ्यादशनादिहेत्वभावान्निवकर्मभावात् पूर्वोदितनिजराहेतुसन्निधाने चाजित  
कमनिरास । ताभ्यां बन्धहेत्वभावनिजराभ्यामिति हेतुलक्षणविभक्तिनिर्देश । ततो  
भवस्थितिहेतुसमाकृतशयकर्मविषयस्य 'युगपत्तात्यन्तिक कृत्स्नकमविप्रमोक्षो मोक्ष' प्रत्ये  
३ तस्य । कर्मभावो द्विविधः—यत्नसाध्योऽयत्नसाध्यश्च । तत्र चरमवेहस्य नारकतियद  
वायुपामभावात् न यत्नसाध्य असत्त्वात् । यत्नसाध्य इत ऊर्ध्वमुच्यते—असयतसम्म्यष्ट  
पट्यादिषु चतुषु गुणस्थानेषु कस्मिंश्चित्सप्तप्रकृतिकषय क्रियते । निद्रानिद्राप्रचलाप्रचला  
म्यानगुडिनरकगति तियगत्येकद्वित्रिचतुरिन्द्रियजातिनरकगति तिर्यग्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्या  
तपोद्योतस्यावरसूक्ष्मसाधारणसञ्ज्ञिकानां षोडशानां कमप्रकृतीनामनिवृत्तिवाटरसा  
१ म्परायम्याने युगपत्क्षय क्रियते । तत पर तत्रव कषयायाष्टक नष्ट क्रियते । नपु सचवे  
स्त्रीवेदश्च क्रमेण सत्रव क्षयमुपयाति । नोकषायर्षेदक च सहकेनव प्रहारेण विनिपातयति ।  
तत पु वेदसज्वलनक्रोधमानमाया क्रमेण तत्रवात्यन्तिक ध्वसमास्कन्दन्ति । लोमसज्व  
लन सूक्ष्मसाम्परायान्त यात्यन्तम् । निद्राप्रचले क्षीणकषायवीतरागच्छयस्थस्योपात्य

बन्धहेतुर्लोके अभाव और निजरासे सब कर्मोंका आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है ॥२॥

१२ मिथ्यादशनादिक हेतुर्लोका अभाव होनेसे नूतन कर्मोंका अभाव होता है और पहिले कही गई  
तिजयस्व हेतुक मिथ्यनपर अभिष कर्मोंका माद्य होता है । इन दोनोंमें 'बन्धहेत्वभावात्निजराभ्याम्' यह  
हेतुपरक विभक्तिका निर्देश है । जिसने भवस्थितिक हेतुमूल आयुक्रमक बराबर क्षय कर्मोंकी स्थितिको  
कर लिया है उसका उक्त कारणोंसे एक साथ समस्त कर्मोंका आत्यन्तिक विमोक्ष होना मोक्ष है ऐसा  
आत्मना चाहिए ।

२ कर्मोंका अभाव दो प्रकारका है—यत्नसाध्य और अयत्नसाध्य । इनमेंसे चरम वेहबालक नरकामु,  
तियञ्चामु और दवायुका अभाव यत्नसाध्य नहीं होता क्योंकि उसका उत्पन्न नही उपसम्भ  
होता । यत्नसाध्य अभाव इससे आग कहत है—असयतसम्म्यष्टि आदि चार गुणस्थानोंमेंसे किसी  
एक गुणस्थानमें साठ प्रकृतियोंका क्षय करता है । पुन निद्रानिद्रा प्रचलाप्रचला म्यानगुडि  
नरकगति तियञ्चगति एकेन्द्रियजाति द्वीन्द्रियजाति त्रीन्द्रियजाति चतुरिन्द्रियजाति नरकगति  
२५ प्रायोग्यानुपूर्वी तियञ्चगतिप्रायोग्यानुपूर्वी आठप उद्योत स्वावर, सूक्ष्म और साधारण नामवाली  
सोसह कमप्रकृतियोंका अनिवृत्तिबादरसाम्पराय गुणस्थानमें एक साथ क्षय करता है । इसके बाद  
उसी गुणस्थानमें आठ कषायोंका माद्य करता है । पुन बही पर नर्षुसकबव और स्त्रीवेदका क्रमसे क्षय  
करता है । तथा सह नोकषायोंको एक ही प्रहारक क्षय गिपा देता है । उपनन्तर पुरुषबव सज्वलनक्रोध  
सज्वलनमान और सज्वलनमाया बहों पर क्रमसे अत्यन्त क्षयको प्राप्त हात है । तथा लोम सज्वलन  
सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानक अन्तमें विनाशको प्राप्त होता है । निद्रा और प्रचला क्षीणकषाय वीत

(१)—वस्थितस्य मु । ता । (२)—वात्यतीहत्त—मु । (३)—वेदश्च तर्षेव मु । (४) नोकषायायष्ट  
च षडे—मु ।

समये प्रलयमुपपन्नजत । पञ्चाना ज्ञानावरणानां चतुणा दधानावरणानां पञ्चानामन्त  
 गयार्णा च नम्यवान्त्यसमये प्रक्षयो भवति । अन्यतरखेदनीयदेवगत्यादाग्निकवत्रियिका  
 हारकतजमकामणशरीरपञ्चव धनपञ्चमधातसम्यानपटकौदाग्निकवत्रियिकाहारकशरीरा  
 ङ्गोपाङ्गपटसहृननपञ्चप्रधमन्तवणपञ्चाप्रधमन्तवणग वद्वयपञ्चप्रधमन्तवणसपञ्चाप्रधमन्तवण  
 म्पाप्टकदेवगतिप्रायोग्यानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघाताच्छ्वासप्रधमन्ताप्रधमन्तविहायोगत्वप  
 र्माप्तकप्रत्येकशरीरस्थिरास्थिरगुभाद्युभद्रुभगमुस्वरदुस्वरानादेयायथा कीर्तिनिर्माणनामनी  
 चर्गाशास्या द्वासप्ततिप्रकृतयोऽयागकेवलिन उवान्यममय विनागमुपयान्ति । अन्यतरखे  
 नीयमनुप्यायुमनुप्यगतिपञ्चन्द्रियजातिमनुप्यगतिप्रायाग्यानुपूर्व्यत्रसवादरपर्याप्तकसुभगा  
 दययथाकीर्तितीथकरनामोच्चर्गात्रसन्निकानां त्रयाणां प्रकृतीनामयागकेवलिनदधरम  
 समय व्युच्छेदो भवति ।

रागछघम्य गुणम्यानक उवान्य ममयमें प्रत्येको प्राप्त होत ह । पाँच ज्ञानावरण चार दधानावरण  
 और पाँच अन्तराय कर्मोका उनी गुणम्यानक अन्तिम ममयमें क्षय होता ह । कोई एक वन्तीय स्वगति  
 भौगारिक शरीर वक्रियिक शरीर आहारक शरीर, तजसशरीर कामण शरीर पाँच वन्चन पाँच  
 यमान छह मस्यान औगारिक शरीर आङ्गापाङ्ग भक्रियिकशरीर आङ्गोपाङ्ग आहारक शरीर आङ्गो  
 पाङ्ग छह महृनन पाँच प्रधमन्तवण पाँच अप्रधमन्तवर्ण शो गन्ध पाँच प्रधमन्तरम पाँच अप्रधमन्तरम  
 वात्स्यग दवगति प्रायाग्यानुपूर्वी अगुरुलघु उपघात परघात उच्छ्वास प्रधमन्तविहायोगति मप्र  
 धमन्तविहायोगति अपर्याप्त प्रत्येक शरीर स्थिर अस्थिर द्रुम अद्रुम दुभग मुस्वर, दुस्वर अनावय  
 अयथा कीर्ति निर्माण और नीचगोत्र नामवाली बहतर प्रकृतियांको अयो कवली गुणम्यानक उवान्त्य  
 ममयमें विनष्ट करना ह तथा काइ एक वदनीय मनुप्य आयु, मनुप्यगति पञ्चन्द्रियजाति मनुप्यगति  
 प्रायाग्यानुपूर्वी चम वात्पर पर्याप्त सुभग आदय यथा कीर्ति लीषकर और उच्छगोत्र नामवाली  
 वरु प्रकृतियाका अयागकवली गुणम्यानक अन्तिम समयमें वियाग होता ह ।

विद्यापाम—कूल उत्तर प्रकृतियां १८८ हे । उनमें चरमशरीरी जीवक तरकायु त्रियञ्चायु  
 और मनुप्यायुका मन्त्र हाता ही नहीं । आहारकचतुष् और तीस चरका मत्स्र किसीक होता ह और  
 किसीक नहीं हाता । इनक मिवा यव प्रकृतियाका मत्स्र नियमम हाता ह । यह जीव गुणम्यान क्रमस  
 वन्धहनुनाका अभाव करता ह इसलिए क्रमस नूतन वन्धका अभाव हाता जाता ह और मत्तामें स्थित  
 प्राचीन प्रकृतियाका परिणाम-विग्रपस क्षय करता जाता ह इसलिए मत्तामें स्थित कर्मोका भी अभाव  
 होता जाता ह और इस प्रकार अन्तमें सब कर्मोका वियाग हो जानम यह जीव मुक्त होता ह । यहाँ  
 मोक्ष शब्दका प्रयोग कम लोकम और भावकमक वियाग अर्थमें किया गया ह । मनारी जीव बरु ह  
 बतणव वह परतत्र ह । उमक बधनक दूट जान पर बह मुक्त होता ह अर्थात् अपना स्वतन्त्रताको  
 प्राप्त करता ह । इस प्रकार मोक्ष क्या हे इसका निरर्थ किया ।

आह किमानां पौद्गलिकीनामेव द्रव्यनमप्रकृतीनां निरासा मोक्षोऽवसीयत उत  
मादकमणोऽतीत्यत्रोच्यते—

औपशमिकादिभ्यस्त्वानां च ॥ ३ ॥

किम् ? 'मोक्ष इत्यनुवतते । मय्यत्वग्रहणमन्यपारिणामिकनिवृत्त्ययम् । तेन पाणि  
पामिकेषु भ्यस्त्वस्योपशमिकादीनां च भावानामभावा मोक्षो भवतीत्यभ्युपगम्यते ।

आह यद्यपवर्गो भावोपरत प्रतिज्ञायते ननु औपशमिकादिभावनिवृत्तिवत्स्वक्षा  
यिकभावनिवृत्तिभ्यपदेशो मुक्तस्य प्राप्नोतीति ? स्यादेतदेव यदि विशेषो नोच्येत ।  
अस्त्यत्र विशेष इत्यपवादविधानायमिदमुच्यते—

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदशानसिद्धरवेभ्य ॥ ४ ॥

अन्यत्रशब्दापेक्षया 'का निर्देश । केवलसम्यक्त्वज्ञानदशानसिद्धत्वेभ्यो अयत्रान्य  
स्मिन्नय विधिरिति । यदि शब्दवार एवावशिष्यन्त अनन्तवीर्यादीना निवृत्ति प्राप्नोति ?  
नप तोप ज्ञानदशानाविनाभावित्वात्नन्तवीर्यादीनामविशेष अनन्तसामर्थ्यहीनस्यानन्ता  
ववोधवृत्त्यभावाज्ज्ञानमयैत्वाच्च सुखस्येति । अनाकारत्वा मुक्तानामभाव इति चेन्न

कहत ह कि क्या इन पौद्गलिक द्रव्यकम प्रकृतियोंक बियोगस ही मोक्ष मिळता ह या भावकमौक  
मी अभावस मोक्ष मिलता ह इस बातको बतलानक लिए आगका सूत्र कहत ह—

तथा औपशमिक आदि भावों और मय्यत्व भावके अभाव होनेसे मोक्ष होता है ॥ ३ ॥

क्या होता ह ? मोक्ष होता ह । यहाँ पर 'मोक्ष' इस पदकी अनिवृत्ति होती ह । अन्य पारिणामिक  
भावोंकी निवृत्ति करनक लिए सूत्रम मय्यत्व पदका ग्रहण किया ह । इसस पारिणामिक भावोंमें मय्यत्व  
का और औपशमिक आवि भावोंका अभाव होनस मोक्ष होगा ह यह ज्ञात होता ह ।

कहत ह यदि भावोंके अभाव होनेसे मोक्षकी प्रतिज्ञा करते हो तो औपशमिक आदि भावोंकी  
निवृत्तिक समान समस्त क्षायिक भावोंकी निवृत्ति मुक्त बीजक प्राप्त होती ह ? यह एसा होव यदि  
इसक सम्बन्धमें कोई बिधप बात न कही जाव तो । किन्तु इस सम्बन्धमें बिधपता है इसलिये अपवाद  
का विधान करनक लिए यह आगका सूत्र कहत ह—

पर केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व भावस्य अभाव नहीं होता ॥ ४ ॥

यहाँ पर अन्यत्र शब्दकी अपेक्षा पञ्चमो विभक्तिका निर्देश किया ह । कवक सम्यक्त्व कवस  
ज्ञान कवसदर्शन और सिद्धत्व इनक सिवा अन्य भावोंमें यह बिधि होती ह ।

पाका—सिद्धोंक यदि चार ही भाव सव रहत हें तो अनन्तवीर्य आविकी निवृत्ति प्राप्त होती है ।  
समाधान—यह कोई दोष नहीं ह क्योंकि ज्ञानार्थनक अविनाभावी अगन्तवीर्य आदिक भी सिद्धोंमें  
अवशिष्ट रहत हें । क्योंकि अनन्त सामर्थ्यसे हीन व्यक्तिक अनन्तज्ञानकी वृत्ति नहीं हो सकती  
और मुक्त ज्ञानमय होता ह ।

(१)—यत् कधीपु—यत्कधीपु—ता । (२) 'का पदान—अत्रेभ्य १ ४ ४१ । 'अपादाने कारके  
का विभक्तिर्मकति—वृत्ति । प्रतिपु 'को विशेष' इति पाठ । (३)—मय्यत्वत्वाच्च नु ता ।

अतीतानन्तरशरीरकारत्वात् ।

स्यामत यदि शरीरानुविधायी जीव तदभावात्स्वामाविक्रमोकाकारप्रदेयपरिमाणत्वात्तावद्विसपण प्राप्नोतीति ? नप दोष । कुत ? नारणाभावात् । नामकमसम्बन्धो हि सहर्णविमपणकारणम् । तदभावात्पुन सहर्णविमपणाभावः ।

यदि कारणाभावात् सहर्ण न विसपण सहि गमनकारणाभावादूर्ध्वगमनमपि न प्राप्नोति अघस्तिपगमनाभाववत् ततो यत्र मूत्रतस्तप्रधावम्यान प्राप्नोतीति ? अत्रोच्यते—

तदनन्तरमूर्ध्व गच्छत्या लोकात् ॥ ५ ॥

तस्यानन्तरम् । कम्य सर्वकमयिप्रमोक्षस्य । आरुभिविध्यय । ऊर्ध्व गच्छत्या लोकान्तात् ।

अनुपदिष्टहेतुकमिदमूर्ध्वगमन कथमध्यवसातु शक्यमित्यत्रोच्यते—

पूर्वप्रयोगात्सङ्ख्याद् अघच्छेदात्तपागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥

शका—अनाकार होनस मुक्त जीवोका अभाव प्राप्त होता है ।

समाधान—नहीं । क्योंकि उनके अनंत अनन्तर शरीरका आकार उपरुध्य होता है ।

शका—यदि जीव शरीरका आकारका अनुकरण करता है तो शरीरका अभाव होनस उसका स्वाम

विक लोकाकायक प्रत्येकोक बराबर होनक कारण जीव तत्प्रमाण प्राप्त होता है ।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि जीवके तत्प्रमाण होनेका कोई प्रमाण नहीं उपरुध्य होता । नामकमका सम्बन्ध जीवके सकोच और विस्तारका कारण है किन्तु उसका अभाव ही जानन कोचक प्रत्याका सकोच और विस्तार नहीं होता ।

यदि कारणका अभाव हो जानेसे जीवक प्रत्याका सकोच और विस्तार नहा होता तो गमनक कारणका अभाव ही जानन जिस प्रकार यह जीव तिरछा और सीधका अंग गमन नहा करता है उसा प्रकार उसका ऊर्ध्वगमन भी नहीं प्राप्त होता है । इसलिए जिस स्थानपर मुक्त हाता है उसा स्थानपर उसका अकस्यान प्राप्त होता है एसी प्रकार होनपर भागक मूत्र डाग उसका समाधान करण है ।

तदनन्तर मुक्त जीव लोकके अन्त तक ऊपर जाता है ॥ ५ ॥

उसक अनन्तर ।

शका—किसक ?

समाधान—सुय कर्मोंक वियोग शानक ।

मूत्रम माह पद अभिविधि अघम आया है । लोचक अन्त तक ऊपर जाता है ।

जीव ऊर्ध्वगमन क्यों करता है इसका कारण हैतु नहीं बतलाया इसलिये इसका निश्चय कम हाता है अत इसी बातका निश्चय करणक लिय आगका मूत्र कहन है—

पूर्वप्रयोगसे, संगका अभाव होनेसे, पचनक दृग्नेसे और वैसा गमन करना

स्वभाव होनेसे मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है ॥ ६ ॥

आह, हृत्त्वय पुष्कलापि दृष्टान्तसमयनमन्तरेणाभिप्रेतायसाधनाय नालमित्य शोचते—

आविद्धकुसालघक्रधव्यपगतलेपालासुवदेरञ्जवीजवग्मिशिसावञ्च ॥ ७ ॥

पूर्वमूत्र विहितानां हेतूनामश्रोक्तानां दृष्टान्तानां च यथासख्यमभिमन्व शो भवति ।

- x नद्यथा—कुसालप्रयोगापाग्नितहस्मणञ्चक्रमयोगपूर्वक भ्रमणम् । उपरखेऽपि तस्मिन्पूर्वप्रयोगात् सङ्कारधामाद् भ्रमति । एव भवम्यनात्मनाऽप्यवगप्राप्तय बहुशो यत्प्रणिधान तत्र भावपि तदावेशपूर्वक मुक्तस्य गमनमवसीयत । किं च असङ्गत्वात् । यथा मूर्तिबालेप जनितगौरवमलावुद्रव्य जलेऽप पतित जलकलदबिहिलिष्टमूर्तिबावधन एषु सद्रूध्रमय गच्छति तथा कमभाराप्रान्तिवशीकृत आत्मा तदावेशवशात्ससार अनिमगन गच्छति ।
- १ नम्यङ्गविमुक्ता नूपर्वेवापयाति । किं च वभच्छदात् । यथा बीजकादाव चच्छदादरण्य बीजस्य गनिदृष्टा तथा मनुष्यान्निभवप्रापकगतिजातिनामादिसकलमय यच्छेष्टान्मुक्तस्य ऊर्ध्वगतिरवमोयते । किं च तयागतिपरिणामात् । यथा तियकल्पवनस्वभावसमीरण मन्व्यप्रतिशम्बुका प्रदीपशिखा स्वभावावुत्पतति तथा मुक्तात्मापि नानागतिविकारकारकहत ह गुणस्य भी हनु दृष्टान्त द्वारा समपनक बिना अभिप्रत अपकी मिद्धि करनमे समय गही

१२ होत इमन्नि आगता मूत्र कहत हें—

धुमाय गये कुम्हारके चक्रक समान, छेपसे मुक्त हुई तूमड़ीक समान, परण्डके बीजके समान और अग्निफी शिखाके समान ॥ ७ ॥

- १ पिछक मूत्रमें पत्र गण मूत्राचा और म मूत्रमें कह गण दृष्टान्ताका प्रथम सम्बन्ध होता है । यथा—कुम्हारक प्रयोगम किया गया हाय ण्ड और कचका प्रयोगपूर्वक जो भ्रमण होता ह उसच उपरत
- २ एा जानवर भी पूर्व प्रयोगका सम्कारका धामहात तक चत्र घूमता रहता ह । इसी प्रकार ममारमें स्थित आत्मान मालती प्राणिक मित जो अनक बार प्रविधान किया ह उगका अभाव हामपर भी उमक नाका पुत्र मका बीयता गमन निश्चिन टाता ह । अमगत्यात्—त्रिम प्रकार मूर्तिबाक मयम तूमड़ीमें जो भागपत भा बागा उमग जकर मीत पडा ह तूमड़ी जलग मिट्टाक मीत हा जानक कारण बायतह विधित जानम पीध नी ऊपर ही जाता ह उनी प्रकार कमभारक आत्रमणम भाषात
- ३ आ आत्मा उमक भावका मगारम अनियमग गमन करता ह किन्तु उमक गमन मुक्ता जानवर ऊपर ही जाता । च यथा—त्रिम प्रकार बीजकाक मयमक त्रनम एण्ड बात्रका गनि दगी जानी ह उनी प्रकार मनु यति भवता प्राण करनवाक गतिनाम और जातिनाम आदि गमन समीत घपता ए जानम मका बावत । ऊर्ध्वगति जाना जाता ह । यथागतिपरिणामात्—त्रिम प्रकार नियमयन कदाएता एातह मययम रतिव प्रान्तिगत स्वभावन ऊपर का आत्र गमन करनी ह उनी प्रकार

(१) पूर्वप्रयोगाना—क । (२)—विश्वकपी मारवात—क । विषय विज्ञान—क । विज्ञान—क । विज्ञान—क ।

पक्रमनिवारणे सत्यूर्ध्वगतिस्वभावाद्दूर्ध्वमेवारोहति ।

आह यस्मिन् मुक्त ऊर्ध्वगतिस्वभावो लोकान्ताद्दूर्ध्वमपि कस्मान्नोत्पततीत्यत्रोच्यते—  
धर्मास्तिकायाभावात् ॥ ८ ॥

गत्युपग्रहकारणभूतो धर्मास्तिकायो नोपयस्तीत्यल्लोके गमनाभाव । तदभावे च  
लोकालोकविभागाभाव प्रसज्यते ।

आह अमी परिनिवृत्ता गतिजात्यादिभेदकारणाभावादतीतभेदव्यवहारा एवेति ?  
अस्ति कश्चिद् भेदोऽपि । कुत —

क्षेत्रकालगतिलिङ्ग गतीयचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहानान्तरसध्याल्पबहुत्व-  
साध्या ॥ ९ ॥

क्षेत्रादिभिर्द्वादिर्भिरनुयोग सिद्धा साध्या विकल्प्या इत्यथ प्रत्युत्पन्नभूतानुग्रह  
क्षेत्रनयद्वयविवक्षावशात् । तद्यथा—क्षेत्रेण सावस्कस्मिन् क्षेत्रे मिध्यन्ति ? प्रत्युत्पन्न  
प्राहिनयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे स्वप्रदेशे आनाशप्रवेशे वा सिद्धिभवति । भूतप्राहिनयापेक्षया  
चर्म्म प्रति पञ्चदशसु कमभूमिषु, सहरण प्रति मानुषक्षेत्रे सिद्धि । कालेन कस्मिन्काले

मुक्त आत्मा मी नानागति रूप विकारक कारणभूत कर्मका अभाव होनपर ऊर्ध्वगति स्वभाव होनस  
ऊपरकी ओर ही आरोहण करता ह ।

कहते ह कि यदि मुक्तजीव ऊर्ध्व गति स्वभाववाला ह तो लोकान्तस ऊपर मी किस कारणस नही  
गमन करता ह इसलिए आगका सूत्र कहते ह—

धर्मास्तिकायका अभाव होनेसे मुक्त जीव लोकान्तसे और ऊपर नहीं जाता ॥ ८ ॥

गतिरूप उपकारका कारणभूत धर्मान्तिक्ताय लोकान्तक ऊपर नही ह इसलिए अलोकमें गमन  
नही होता । और यदि अलोकमें गमन माना जाता ह तो लोकालोकक विभागका अभाव प्राप्त होता ह ।

कहते ह कि निर्वाणको प्राप्त हुए य जीव गति जाति आदि भयक कारणोंका अभाव होनेसे भव  
व्यवहारस रहित ही ह । फिर मी इनम कश्चिद् भन् भी ह क्योंकि—

क्षेत्र, काल गति लिङ्ग, तीर्थ, चरित्र, प्रत्येकबोधित बुद्धबोधित, ज्ञान अवगाहना

अन्तर सख्या और अल्पबहुत्व इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं ॥९॥

अत्रान्तिक्तरह अनुयोगिक द्वारा सिद्ध जीव साध्य ह अर्थात् विभाग करने योग्य ह और यह विभाग  
वर्तमान और भूतका अनुग्रह करनेवाले दो नयोंकी विषयतास किया गया ह । यथा—क्षेत्रकी अपक्षा किस  
क्षेत्रम सिद्ध होता ह ? वर्तमानको ग्रहण करनेवाले नयकी अपक्षा सिद्धि क्षेत्रमें अपन प्रवेशमें या आनाश  
प्रवेशम सिद्धि होती ह । अतीतको ग्रहण करनेवाले नयकी अपक्षा जन्मकी अपक्षा पन्त्रह कर्मभूमियों  
और अपहरणकी अपक्षा मानुष क्षेत्रमें सिद्धि होती ह ।

- सिद्धि ? प्रत्युत्पन्नयापेक्षया एकसमय सिद्धयन् सिद्धो भवति । मृतप्रज्ञापननयापेक्षया जन्मसोऽविशेषेणोत्सर्पिष्यवसर्पिष्योर्जात सिध्यति । विश्वेपेणावसर्पिष्या सुयमदुपमाया अन्त्ये भाग दुपमसुपमाया च जात सिध्यति । न तु दुपमाया जातो दुपमाया सिध्यति । अन्यदा नव सिध्यति । सहरणत' सवस्मिन्काले उत्सर्पिष्यामवसर्पिष्या च सिध्यति ।
२. गत्या कस्यां गतो सिद्धि ? सिद्धिगतौ मनुष्यगतौ वा । लिङ्गेन केन सिद्धि ? अवेदत्वेन त्रिम्यो वा वदभ्य सिद्धिर्भवितो न द्रव्यत' द्रव्यत' पुल्लिङ्गेनव । अथवा निम्न-य लिङ्गेन । मग्न-यलिङ्गेन वा सिद्धिर्भूतपूर्वनयापेक्षमा । तीर्थेन', तीर्थसिद्धि' द्रव्या तीर्थकरेतर विदत्प्रात् । इतर द्विविधो सति तीर्थकरे सिद्धा असति चेति । चारित्र्येण केन सिध्यति ? अव्यपदर्शनकचतु-पञ्चविकल्पचारित्र्येण वा सिद्धि । स्वशक्तिपरापेदेणनिमित्तज्ञानभेदात् ।
३. प्रत्यकबुद्ध-बोधितविकल्प । ज्ञानेन केन ? एकेन द्वित्रिचतुर्भिश्च ज्ञानविशेष' सिद्धि । आत्मप्रदशब्धापित्वमवगाहनम् । तद् द्विविधम् उत्कृष्टजघयभेदात् । तत्रोत्कृष्ट पञ्च

कास—कासकी अपेक्षा किस कालमें सिद्धि होती है ? वर्तमानप्राही नयकी अपेक्षा एक समयमें

मिद्ध होता हुआ सिद्ध होता है । अतीतप्राही नयकी अपेक्षा जन्मकी अपेक्षा सामान्यरूपमें उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीमें उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है । विशेष रूपस अवसर्पिणी काळमें सुपमा दुपमाक अन्य

१२. भागमें और दुपमा-सुपमामें उत्पन्न हुआ सिद्ध होता है । दुपमामें उत्पन्न हुआ दुपमामें सिद्ध नहीं होना । इस कारणको छोड़कर अन्यकाळमें सिद्ध नहीं होता है । सहरणकी अपेक्षा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणीक सब समयमें सिद्ध होता है ।

गति—गतिकी अपेक्षा किस गतिमें सिद्धि होती है ? सिद्धगतिमें या मनुष्यगतिमें सिद्धि होती है ।

लिङ्ग—किस लिङ्गस सिद्धि होती है ? अथेव भावस या तीर्थोवदोस सिद्धि होती है । यह कचन

२. भावकी अपेक्षा है द्रव्यकी अपेक्षा महा । द्रव्यकी अपेक्षा पुल्लिङ्गस ही सिद्धि होती है अपेक्षा निम्न-यलिङ्गस सिद्धि होती है । मृतपूर्वनयकी अपेक्षा मग्न-य लिङ्गस सिद्धि होती है ।

तीर्थ—तीर्थसिद्धि दो प्रकारकी है—तीर्थङ्करसिद्ध और इतरसिद्ध । इतर दो प्रकारक है कितन ही जीव तीर्थङ्करने रहत हुए सिद्ध होत है और कितन ही जीव तीर्थङ्करन अभावमें मिद्ध होत है ।

चारित्र्य—किस चारित्र्यस सिद्धि होती है ? नामरहित चारित्र्यस सिद्धि होती है या एव चार

१३. और पाँच प्रकारक चारित्र्यस सिद्धि होती है ।

प्रत्यकबुद्ध-बोधितबुद्ध—अपनी शक्ति रूप निमित्तस होनबाल ज्ञानक भवस प्रत्यकबुद्ध हात है और परोपपन्न रूप निमित्तसे होनबाल ज्ञानक भवस बोधितबुद्ध होत है इन प्रकारसे दो प्रकारके हैं ।

ज्ञान—किस ज्ञानस सिद्धि होती है । एक दो तीन और चार प्रकारक ज्ञानविशेषोंस सिद्धि होती है ।

३. अवगाहना—आत्मप्रदशब्दमें व्याप्त करक रहता इसका नाम अवगाहना है । यह दो प्रकारकी है—

(१) तीर्थन केन तीर्थन सिद्धि न ।

घनु स्रतानि पञ्चविंशत्युत्तराणि । जघयमघचतुर्थारस्नयो देशोना । मध्ये विकल्पाः ।  
 एकस्मिन्नवगाहे सिध्यति । किमन्तरम् ? सिध्यतां सिद्धानामनन्तर जघन्येन द्वौ समयौ  
 उत्कर्षेणाष्टौ । अन्तर जघन्येनैक समय उत्कर्षेण पण्मासाः । सस्या जघन्येन एकसमये  
 एक सिध्यति । उत्कर्षेणाष्टोत्तरशतसस्याः । क्षेत्रादिभेदभिन्नानां परस्परत सस्या  
 विशेषोऽल्पबहुत्वम् । तद्यथा—प्रत्युत्पन्नयापेक्षया सिद्धिक्षेत्रे सिध्यन्तीति नास्त्यल्प  
 बहुत्वम् । भूतपूर्वनयापेक्षया तु चिन्त्यते क्षेत्रसिद्धा द्विविधा—जमठ सहरणतश्च ।  
 तत्राल्पे सहरणसिद्धा । जन्मसिद्धा सस्येयगुणाः । क्षेत्राणा विभाग कमभूमिरकमभूमि  
 समुद्रो द्वीप ऊर्ध्वमघस्तिरगिति । तत्र स्तोका ऊर्ध्वलोकसिद्धाः । अधोलोकसिद्धा सस्येय  
 गुणा । तियग्लोकसिद्धा सस्येयगुणा । सर्वैत स्तोका समुद्रसिद्धा । द्वीपसिद्धा म्रुक्ष्येय-  
 गुणा । एव तावदविशेषेण । सर्वैत स्तोका लवणोदसिद्धा । बालोदसिद्धा सस्येयगुणा ।  
 जम्बूद्वीपसिद्धा सस्येयगुणा । घातकीलण्डसिद्धा सस्येयगुणा । पुष्करद्वीपोधसिद्धा  
 सस्येयगुणा इति । एव कालादिभिर्भागेऽपि यथागममल्पबहुत्व घेदितव्यम् ॥ १० ॥

जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्ट अवगाहना पाँच सौ पञ्चीस घनुप ह और जघन्य अवगाहना कुछ कम  
 साढ़े तीन अरस्ति है । घीचके भेद अनक है । किसी एक अवगाहनामें सिद्धि होती है ।

अन्तर—क्या अन्तर है ? सिद्धिको प्राप्त होनेवाले सिद्धोंका जघन्य अनन्तर दो समय है और  
 उत्कृष्ट अनन्तर आठ समय है । जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है ।

सस्या—जघन्य रूपस एक समयमें एक जीव सिद्ध होता है और उत्कृष्ट रूपस एक समयमें एक  
 सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं ।

अल्पबहुत्व—क्षेत्रादि भदोंकी अपक्षा भदको प्राप्त हुए जीवोंकी परस्पर सस्याका विषय प्राप्त  
 करना अल्पबहुत्व है । यथा—वर्तमान नयकी अपक्षा सिद्धिक्षेत्रमें सिद्ध होनेवाले जीवोंका अल्पबहुत्व  
 नहीं है । भूतपूर्व नयकी अपक्षा विचार करत है—क्षेत्रसिद्ध जीव दो प्रकारके हैं—जमसिद्ध और  
 सहरणसिद्ध । इनमेंसे सहरणसिद्ध जीव सबसे अल्प हैं । इनसे जमसिद्ध जीव सस्यातगुण हैं । क्षेत्रोंका  
 विभाग इस प्रकार है—कमभूमि अकर्मभूमि समुद्र द्वीप ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तियग्लोक ।  
 इनमेंसे ऊर्ध्वलोकसिद्ध सबसे स्तोका हैं । इनसे अधोलोक सिद्ध सस्यातगुण हैं इनसे तियग्लोकसिद्ध  
 सस्यातगुण हैं ।

समुद्रसिद्ध सबसे स्तोका है । इनसे द्वीपसिद्ध सस्यातगुण है । यह सामान्य रूपस कहा है । विषय  
 रूपस विचार करनपर लक्षण समुद्रसिद्ध सबसे स्तोका हैं । इनसे बालोदसिद्ध सस्यातगुणे हैं । इनमें  
 जम्बूद्वीपसिद्ध सस्यातगुणे हैं । इनसे घातकीलण्डसिद्ध सस्यातगुण हैं । इनमें पुष्करद्वीपसिद्ध  
 सस्यातगुण हैं । इसी प्रकार बालादिका विभाग करनपर भी आगमक अनुमार अल्पबहुत्व जान रना  
 चाहिए ।



स्वर्गापवर्गसुखमाप्नुमनोभिरार्यै

ज्जमेन्द्रज्ञासनबराभूतसारभूता ।

सर्वार्थसिद्धिरिति सद्भिस्त्वरूपात्तनामा

तत्त्वाथवृत्तिरनिश मनसा प्रथार्या ॥ १ ॥

तत्त्वाथवृत्तिमुदितां विवितायतत्त्वा-

शृण्वन्ति ये परिपठन्ति च धमभक्त्या ।

हृस्ते ह्यन्त परमसिद्धिसुखामृत त-

र्मर्त्यामरेश्वरसुखेषु किमस्ति वाच्यम् ॥ २ ॥

येनेवमप्रतिहृत सकलार्थतत्त्व-

मुद्घोतित विमलकेवललोघनेन ।

भक्त्या तमद्भुतगुण प्रणमामि वीर-

मारान्नरामरगजाघितपादपीठम् ॥ ३ ॥

इति तत्त्वाथवृत्तौ सर्वार्थसिद्धिसङ्ग्रहानां दशमोऽध्यायः समाप्तः ।

शुभं भवतु सर्वेषाम् ॥

स्वर्ग और अपवर्गके सुखको चाहनवाले आर्य पुरुषोंने इस तत्त्वार्थवृत्तिका सर्वार्थसिद्धि यह नाम रखा है । यह जिनन्द्रदेवके शासनरूपी अमृतका सार है अतः मन-पूर्वक इसे निरन्तर धारण करना चाहिए ॥१॥ सब तत्त्वोंके ज्ञानकार जो इस तत्त्वाथवृत्तिको धर्मभक्तिसे सुनते हैं और पढ़ते हैं मानो उन्होंने परम सिद्धिसुखामृतको अपने हाथमें ही कर लिया है फिर चक्रवर्ती और देवैन्द्रके सुखके विषयमें तो कहना ही क्या है ॥२॥ जिन्होंने अपने विमल केवल-ज्ञानरूपी मनके द्वारा इस निबिवाद सकल तत्त्वार्थका प्रकाश किया है मनुष्यों और देवोंके द्वारा पूजित अद्भुतगुणवाले उन वीर भगवानको भक्तिपूर्वक प्रणाम करना है ॥३॥

इस प्रकार सर्वार्थसिद्धि नामक तत्त्वार्थवृत्तिमें दसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।



रूपिष्ववधेः ।	१३४
तद्वनस्तभागे मनःपयैवस्य <sup>१</sup> ।	१३५
सर्वैरूपपयायपु केवलस्य ।	१३६
पञ्चदीनि भाष्यानि युगपदेष्टस्मिन्नाशुभ्यः ।	१३६
मतिभूतावधया <sup>२</sup> विपर्ययम् ।	१३७
सर्वमतोरविशेषात्पञ्चोपलब्धेः कर्मवत् ।	१३८
नैगमसमहव्ययहारजुसूत्रशब्द <sup>३</sup> सममित्येवैवभूता नया <sup>४</sup> ।	१४०
इति प्रथमोऽध्यायः ।	

## दूसरा अध्याय

श्रीपशमिकृद्वायिकौ भाष्यौ मिश्र्य जीवस्य स्वतन्त्रमौदयिकपारिणामिकौ च ।	१४८
द्विनवाद्याशुशैर्कविशक्तिभिर्वा यथाक्रमम् ।	१५१
सम्पत्त्वचारित्र्य ।	१५२
ज्ञानदर्शनज्ञानज्ञानमोगोपमोगवीयाणि च ।	१५४
ज्ञानाज्ञानवृक्षन <sup>१</sup> सध्ययज्ञानुक्तित्रिपञ्चमेवा <sup>२</sup> सम्पत्त्वचारित्र्यसंयमासंयमाद्य ।	१५६
गतिरुपायसिद्धमिध्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्ध लेख्याद्युत्पत्तुस्त्रैकेकेकेरुपद्मेवा <sup>३</sup> ।	१५८
जीवसम्पत्त्वाम्पत्त्वानि च ।	१६०
उपयोगो लक्षणम् ।	१६१
स <sup>४</sup> द्विविधोऽष्टतुमेव ।	१६१
संसारिणा मुक्त्या च ।	१६४
ममनस्काभनन्दाः ।	१७०
संसारिणास्त्रमस्वावराः ।	१७०
पृथिव्यपञ्चजाबायुवनस्पतयः स्वावराः । <sup>५</sup>	१७१
<sup>६</sup> द्वीन्द्रियादयन्त्रताः ।	१७२
पञ्च मित्र्याणि ।	१७४
द्विविधानि ।	१७४
निरुत्पुपञ्चल श्रुत्यन्त्रियम् ।	१७५
संशुपयोगी भाषन्त्रियम् ।	१७६

१ मनःपयायस्य च मा । २ भुक्तिमिच्छा विप-शरि मा । ३-युक्तशब्दा मयाः । च मा ।  
 ४ च म मे ज्ञाद्यद्यप्ये द्विविधेति ॥१५॥ परं तु च अपि च है । ५ ज्ञानादिलम्बव-त मा ।  
 ६ त मा मे 'बन्धाकमम् इत्याद्युत्पत्तुस्त्रैकेकेकेरुपद्मेवा' । ७ निदल-त मा । ८ मन्त्र्यादीनि-त मा ।  
 ९ त पाठ नदी हे वि दू पा । १ 'पृथिव्यपञ्चकल्पतया रणावरा' च मा ।  
 ११ तेजस्य द्वीन्द्रियादयश्च ज्ञयः च मा ।

१ स्वशैनेरसनप्राणचक्षुःभात्राणि ।	
स्वशरभगन्धयणश्रवणास्त्रिधाः । <sup>२</sup>	१७७
मृतमनिन्द्रियस्य ।	१७८
१ वनस्पत्यं तानामेकम् ।	१७९
हृदिपिपीलिक्त्रभ्रमरमनुष्यावानामेकैक्युद्धानि ।	१८०
संश्लिप्तः समनस्काः ।	१८०
विप्रहृगतौ कर्मयोगः ।	१८१
अनुभेयि गतिः ।	१८२
अविप्रहा जीवस्य ।	१८३
विप्रहृवती च संसारिणः प्राक् क्षतुर्म्यैः ।	१८४
एकसमयाऽविप्रहा <sup>३</sup> ।	१८५
एकं द्वौ श्रीस्वाप्नाहारकः ।	१८६
सम्सृष्टनगमोपपादा <sup>४</sup> जन्म ।	१८७
सचिच्छरीतसंवृता <sup>५</sup> सेतुरा मिभारचैक्यास्तद्योनयः ।	१८७
जरायुजाण्ड जपोतानां गर्भः ।	१८८
देशनारकायामुपपादः ।	१८९
शोषाणां सम्सृष्टनम् ।	१९०
द्यौदारिच्यैक्रियिका <sup>६</sup> हारकतैजसकर्मणानि क्षरीराणि ।	१९१
परं परं सूक्ष्मम् ।	१९१
प्रदेशतोऽनेक्ययगुणं प्राक् तैजसात् ।	१९२
अनन्तरगुणं परे ।	१९३
अमतीघात <sup>७</sup> ।	१९३
अनादिनन्दने च ।	१९४
सर्वस्य ।	१९४
तदातीनि भाग्यानि युगपदेकस्मिन्ना <sup>८</sup> क्षतुर्म्यैः ।	१९५
निरुपभोगमन्त्यम् ।	१९५
गमसम्सृष्टनजमाद्यम् ।	१९६
भाषपादिकं धीक्रियिकम् <sup>९</sup> ।	१९७
लब्धिप्रत्ययं च ।	१९७
तद्वसमपि <sup>१०</sup> ।	१९७
द्युर्न विशुद्धमभ्यापाति स्वाहात्कं <sup>११</sup> प्रमत्तमयतस्य च ।	१९८

१ स्वर्गनखत इत्यादि श्लोके पूर्वं उपयोगः स्वर्गारिषु ॥ ११ ॥ परं च त मा मे क्रयिक  
 है । २ शरभगन्धयणमर्षाः । त मा । ३ वाक्पत्रनामकम् त मा । ४ एकसमयोऽविप्रहाः  
 त मा । ५ द्वौ स्वाप्नाहारकः त मा । ६ -गमोपपादा त मा । ७ जरायुजाण्डयनशान्ति  
 त मा । ८ नारकेशानामुपपादः त मा । ९ -क्रियिका । त मा । १० अमतीघातः ।  
 त मा । ११ युगपदकम्पा । १२ धीक्रियमीत्यधिकम् । त मा । १३ त मा मे परं  
 सूक्ष्मं नदी है । १४ अतुरारपूर्वपरत्वं । त मा मे इत्या पाठ क्रयिक है ।





पूर्वयोर्दीर्घाः <sup>१</sup> ।	२४०
अथप्रवीचारा आ ऽज्ञानात् ।	२४१
क्षयाः स्वशरीरपञ्चमनःप्रवीचाराः <sup>२</sup> ।	२४१
परेऽप्रवीचाराः ।	२४२
भजनवासिनाऽसुरनागविधुस्तुपण्याभिवातन्तनितोऽधिप्रीपदिक्कुमाराः ।	२४३
अन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरग <sup>३</sup> गन्धर्षैवशुभ्राक्षसभूतपिशाचाः ।	२४३
स्मात्किन्नःसूया <sup>४</sup> चन्द्रमसौ महानक्षत्रमर्कायोक्त <sup>५</sup> तारकप्रभ ।	२४४
मेरुवृक्षिणः नित्यगठयो नृलाके ।	२४५
तच्छुभः अलविभागः ।	२४६
वहिरधम्बिता ।	२४७
धैमानिका ।	४८
कम्पापन्नाः कस्तातीराऽथ ।	२४८
उपसुपरि ।	२४८
मौषर्म्मिशानसानलुमारमहेन्द्र <sup>६</sup> प्रहजकोत्तरलान्तवकापिच्छुक्रमहाशुक्रमशतारम्हस्तारैप्वानत	
प्राणतयारारणाऽयुतमानैवसु धनयकेषु विजयवैजयन्तखयन्तापराशित्तु सयमैसिद्धा <sup>७</sup> ।	२४८
स्वितिप्रभावसुऽयु तिलेस्याभिष्णुद्रीन्त्रियावधिबिपमतोऽधिकः ।	२४९
गनिक्षरिपरिम्हामिमानतो हीना <sup>८</sup> ।	२४९
पीतपद्मस्तुल्यथा द्विविधेषु ।	२५३
प्राग्भैवेवकम्प्यः कस्याः ।	२५४
प्रहजकोत्तरला सौकरितिकाः <sup>९</sup> ।	२५५
सारस्वतादिस्वयम्हस्तुगदतायतुपिताभ्यावापा <sup>१०</sup> रिष्टम् ।	२५५
विद्ययाविधु द्विपरनाः ।	२५६
श्रीपवापिक <sup>११</sup> मनुष्येभ्य शोपास्त्रिग्योनयः ।	२५७
<sup>१</sup> स्थितिरसुरनागसुपण्याद्विपक्षयाणां सागरोपमत्रिपत्योपमार्द्धहीनमिताः ।	२५८
<sup>२</sup> मौषर्म्मिशानथाः सागरोपमऽधिके ।	२५८
<sup>३</sup> सानलुमारमहेन्द्रयोः मम ।	२५९
<sup>४</sup> त्रिसप्तनैकादशत्रयोद्दशपञ्चदशभिरधिकानि तु ।	२५९

१ त मा मे इव छत्र के आगे पीतान्तकीरयाः छत्र अधिक है । २ त मा मे इयोर्दीर्घो इत्या पाठ अधिक है । ३ -गान्धर्व-त मा । ४ स्वर्गमकमतो । त मा । ५ -प्रवीचर्य-द्वयकाश्च । त मा । ६ -प्रहजकोत्तरलान्तवकापिच्छुक्रमहाशुक्रमशतारम्हस्तारैप्वानत-त मा । ७ सर्वाधिकारे च त मा । ८ पीतपद्म-पद्ममित्र शुभहोरया द्विविधस्तुल्यः शोषेण इति त मा । ९ साकरितिकाः त मा । १० -सायणमरुतोऽपिशाच । त मा । ११ श्रीपवतिक- त मा । १२ इव एक छत्र के स्थान पर त मा मे चार छत्र हैं । वे इव प्रकण हैं—स्मितिः ॥ २९ ॥ मन्वेयु इदियाधर्षिपतीनां फलापममन्वर्षम् ॥ ३ ॥ शोपायां पाशोने ॥ १ ॥ असुरेजतोः सागरोपमधिकं च ॥ ३२ ॥ २३ त मा मे इव एक छत्र के स्थान पर शीपमर्षिषु यथा क्रमम् ॥ ३३ ॥ सागरोपमे ॥ ३४ ॥ अधिके ॥ ३५ ॥ परं हीन छत्रं है । ३६ त मा मे नव सानलुमारो देखा छत्र है । ३७ त मा मे किरीपविकस्यारौक्षरस्यपञ्चदशभिरधिकानि च देखा छत्र है ।

आरण्यान्मुतादूर्ध्वमेकेकेन नवमु प्रैवेयकेषु यिज्यादिषु म ( १५ )	०६०
अपरा पत्न्योपममधिकम् १ ।	०६१
परतः परतः पूर्वा पूर्वा नन्तरा ।	११
नारपनणा च द्वितीयादिषु ।	०६०
वृक्षपर्यस्तद्वस्त्राणि प्रथमायाम् ।	०६०
मघनपु च ।	०६३
व्यन्तराणां च ।	०६३
परापत्न्योपममधिकम् ।	६३
स्म्योतिष्करणां च ।	०६३
तन्त्रमागाऽपरा ।	०६४
स्त्रीकान्तिव्रजनामघ्नौ सागरोपमाणि मर्येयाम् ।	६४

इति चतुर्थोऽध्यायः ।

## पाचवौ अध्याय

अर्जीपत्राया धमाधमाकारपुत्रगला ।	०६५
द्रव्याणि ।	०६६
जीपाम् ।	०६८
नित्याश्चिन्विताम्यरूपाणि ।	०६०
मपिणः पुद्गलाः ।	०६१
आ आकाशाद्वक्त्रव्याणि ।	०६०
निष्क्रियाणि च ।	१
असंनयया प्रदत्ता धमाधमैकवर्जितानाम् १ ।	७५
आकाशात्मानन्ताः ।	०७५
संनययासंनययात्र पुद्गलानाम् ।	१
नागाः ।	७६

१ सवायविदे च त मा । २ -मधिके च त मा ।

३ त मा मे इत गृह क पूर्व दो गृह घोर पप ज्ञत इ । प इत प्रका रं —सागरम ॥ ४ ॥ अधिक च ॥ ५ ॥ ४ यत्किञ्चाद्यामधिकम् त मा ।

४ इत गृह क स्थान पर त मा मे निम्ननिमित्त गृह इ —

प्रदाणामकम् ॥ ४६ ॥ नदत्राणामर्षम् ॥ ५ ॥ सागराणां चतुर्थां ॥ ५१ ॥

अपन्ता इन्द्रमय ॥ ५२ ॥ चतुर्थां सागराणां ॥ ५२ ॥ ५ त मा मे पर गृह गरी इ ।

५ त मा मे इन्द्राणि जीपाम् एतदा गृहा क स्थान पर एक गृह दे ।

८ त मा मे 'आकाशाद्वक्त्राणि गृह दे ।

९ इत गृह क स्थान पर त मा मे रा गृह इ - इन्द्राणां प्रदत्ता धमाधमनाम् ॥ ७ ॥ इन्द्राणां ॥ ७ ॥





## छठवाँ अध्याय

कथयाह्मनःकर्म योगः ।	३१८
स आसवाः ।	२१६
शुभं पुण्यस्याशुभः पापस्य <sup>१</sup> ।	३१६
सकृदायाकृपायसो माम्परायिकेयापयसा ।	३
<sup>१</sup> न्द्रियकथायाप्रतक्रियाः पञ्चानुःपञ्चरञ्जयित्तिसंख्या पूयस्य भद्राः ।	३०१
तीप्रमन्द्वातप्रातमायाधिकरणवीर्येयिद्रोपेभ्य <sup>२</sup> स्तद्विद्रोपः ।	२३
अधिकरणं जीवाजीवाः ।	३०४
मार्गं संरम्भममारम्भरम्भयागहनकारितानुमतकृपाययिमेपन्त्रिभुवुभ्रुःकर्मः ।	२४
निवर्तनानि कृपमयागनिम्गा द्विषुमुर्द्धिशिववा परम् ।	३२६
तत्प्रवोपनिष्कृषमात्सयान्तरान्यामाहनापयासा ज्ञानवर्धनावरणयाः ।	३०७
दुःखं शाकृतापाक्रन्दनवधपरिद्वषनान्यात्मपराभयस्यान्यमद्रुणस्य ।	८
भूतप्रत्यनुकम्पादानमरागमंभमादियाग <sup>३</sup> ज्ञान्तिः शौचमिति मद्रुणस्य ।	२३०
कृत्रलिभूतमंपभर्मन्वावणयादा व्रजनमाहस्य ।	३३१
कृपायादयाचीप्रपरिखाम <sup>४</sup> भारिप्रमाहस्य ।	२३०
यद्धारम्भपरिषहत्वं <sup>५</sup> नारकम्यायुष ।	३३३
माया तंयग्यानस्य ।	३३४
असारात्मपरिषहत्वं मालुपस्य ।	३३४
म्यमायमादर्थं च ।	३३४
निःश्रीलप्रतत्यं च सर्भयाम ।	३३५
मरागमंपमर्मयमामंभमाकामनिजरात्रालतपानि द्वैयस्य ।	२२५
मस्यकृत्यं च ।	२३६
यागयकृता यिमंयादनं चाशुभस्य नाम्न ।	३३६
मद्विपरीतं शुभस्य ।	३२७
व्रजनयिगुद्विर्धनयमस्यप्रता श्रीलप्रतधननीचाराऽभीष्टण <sup>६</sup> ज्ञानापयागमंभगा गणितमस्यागतपमी	
<sup>१</sup> माधुममाधिर्षयात्पृथ्वरगुमाहवाचायपटुभूतप्रधचनभक्तिरायद्वयकारिद्वाणिगामममायना	
प्रधचनवत्समत्यमिति तीर्थंकरस्यस्य <sup>७</sup> ।	३३८
परत्समनिन्द्राप्रपीप मद्रुमद्रुगुणा <sup>८</sup> क्वादान्नापन च नीचगोत्रस्य ।	३३६

१ इत्ये ग्यान पर त मा मे ह्य सूत्र ६—शुभः पुण्य ॥ ३ ॥ अशुभ पाप ॥ ४ ॥

२ आत्मज्ञानार्थीन्द्रियक्रियाः । त मा ।

३—जातामातमावर्षीयाधिकरणविशेषस्यस्तद्विद्रोप । त मा ।

४ भूतस्त्रनुकम्पा हानं मरागमंभमादि यागः । त मा ।

५ कृपायादयाचीप्रपरिखान—त मा । ६—परिभ्रमणं च त मा ।

७ १० १८ नं क सूत्रीक ग्यान पर त मा मे त्क सूत्र ६।—प्रत्यागम्यर्द्धमद्वैतं स्वभावा  
मार्दंवावर्धं च मानुष्य । ८ त मा मे पर सूत्र मदी ६ ।

८—अभीष्टणं मनोरथयोग—त मा । ९ संपन्नपुत्रनाधिर्षिताशुभ—त मा ।

११ तीर्थंकरस्य । त मा । १२—गुणाद्वाद—त मा ।

तद्विषयया<sup>१</sup> नीष दृश्यनुस्मरा पात्ररम्य ।

३४

शिवतरणमन्त्रायम्य ।

३४०

इति पत्राऽथाय ।

—३—

### सातवां अध्याय

सिमानुभक्तयाम्परिष्कार्या धिरविप्रतम ।

३४२

दामयता जुमहती ।

३४४

काम्ययाध भाषना पत्र पत्र<sup>३</sup> ।

३४४

पादमनागुनीयादाननिष्पण्णममित्यानाशितपानमापनानि पत्र ।

३४६

प्राथयाम्भीन्वहाम्यप्रत्यायानान्यनुर्षापिभाषणुं च पत्र ।

३४८

अन्यागारविष्माशितपामरागपराभाकरणमद्युद्विस्वमापिर्मसादाः पत्र ।

३४९

स्त्रीरागपत्राप्रपणुं मना राहनिरीशणुपूरकानुस्मरणुप्यष्टरमम्बअरीरमम्बरस्यागा पत्र ।

३५१

मनाशामनाशन्त्रियपियरागद्वयप्रतनानि पत्र ।

३५१

दिमां शिवगमुना<sup>१</sup>पायायणदानम् ।

३५३

दुःखमय वा ।

३५८

श्रीश्रीशमादाशरण्यमायम्भानि च<sup>१</sup> मन्वयगुणाशिरनि<sup>१</sup>यमानाशिवगु ।

३५८

इगन्थायपभाषा वा ८ संवगपराग्याधम् ।

३६०

प्रमत्तयागापनागुप्यरराणुं शिमा ।

३६१

अमदभिमानमृतम् ।

३६२

अदभादानं म्पयम् ।

३६२

मधुनयप्रद्य ।

३६३

मूला वशिष्ठा ।

३६४

नि इत्या प्रभा ।

३६६

अगापनगाम्भ ।

३६७

अन्वप्रभागार्गी ।

३६८

शिवानुभक्तयाम्परिष्कार्या धिरविप्रतम भावरागाप्रभापरिष्कार्याशिवभातिविर्गविभागप्र-  
मत्तम् ।

३६९

अन्यागारविष्माशितपामरागपराभाकरणमद्युद्विस्वमापिर्मसादाः पत्र ।

३६९

स्त्रीरागपत्राप्रपणुं मना राहनिरीशणुपूरकानुस्मरणुप्यष्टरमम्बअरीरमम्बरस्यागा पत्र ।

३६९

मनाशामनाशन्त्रियपियरागद्वयप्रतनानि पत्र ।

३६९

दिमां शिवगमुना<sup>१</sup>पायायणदानम् ।

३६९

दुःखमय वा ।

३६९



नारकनर्यग्यानमातुपदैवानि ।	३८८
गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणश्चनमंवातसंस्थानमह्ननस्पशरमग भवणानुपूर्व्या <sup>१</sup> गुरु- लक्षपमातपरमाततपाद्यातोच्छ्रयाम्बिहायागतयः प्रत्यकशरीरप्रसमुभगमुन्वरधुमसूक्ष्म- पयामिस्थिरादेव <sup>२</sup> यदाःकीर्त्तितेतराणि तीर्थंकरस्य <sup>३</sup> च ।	३८८
वन्धैनीचैरश्च ।	३८३
<sup>४</sup> शतनाभभागापभागाधीयात्थाम् ।	३८४
आवृत्तस्तिष्ठणामन्तरायस्य च त्रिंशत्समागारापमकानीकान्यः परा स्थितिः ।	३८५
सप्तविमोहनीयस्य ।	३८६
त्रिंशतिनामगात्रया <sup>५</sup> ।	३८६
अयन्त्रिशत्सागरोपमाण्यामुपः <sup>६</sup> ।	३८६
अपरा द्वात्रिंश मुहूर्ता वेदनीयस्य ।	३८७
नामगात्रयोरगौ ।	३८७
अपण्यामन्तमु हृता ।	३८६
विपाकाऽनुभवः ।	३८८
म यवानाम् ।	३८९
तत्तत्र नित्ररा ।	३८८
नामप्रत्यया सर्वतो वागविशीयात्सुस्मैककृप्रायगा <sup>७</sup> स्थिताः सर्वात्मप्रवेशोपनन्तानन्तप्रदंष्ट्राः ।	४११
सद्भवद्भुमायुनामगोत्राणि <sup>८</sup> पुण्यम् ।	४०४
अतोऽप्यस्वापम् <sup>९</sup> ।	४०४

इत्यम्माध्यायः ।

## नौवाँ अध्याय

आकृष्यन्तिरायः संहरः ।	४०६
म गुप्तिमभितिवमानुप्रहापरीपद्भयचारित्रैः ।	४०६
तपसा निर्हरा च ।	४१
सम्पन्मोगनिर्घ्ना गुप्तिः ।	४११
ईर्ष्यामयीफणावाननिर्घ्नीत्स्नाः समितया ।	४११
<sup>१०</sup> तत्तममामामावृवात्रैवसत्यशौचसंयमतपस्यस्ताकिञ्चन्यत्रद्वयपर्याणि धर्मः ।	४१२

- १—पूर्वगुरु—त मा । २—वशासि सेव्यसि त मा । ३—तीर्थंकरस्य च त मा ।  
 ४—शुनारीनाम् त मा । ५—नामगोत्रनोर्बिद्यति त मा । ६—वाण्यानुष्ण्य त मा ।  
 ७—सत्सुहृताम् त मा । ८—नुमाका त मा । ९—व्यप्यस्थिताः त मा ।  
 १०—सद्भवद्भुमायुनामगोत्राणि त मा ।  
 ११—त मा मे यद् एव नही है । १२—तत्तम—वमा—त मा ।



तद्विरतवेष्टविरतप्रमत्तसंयतानाम् ।	४४७
हिंसानृतस्तमविषयमरुणभ्या रौद्रमविरतवेष्टविरतयाः ।	४४८
आशापात्ययिपाकसंस्थानविषयाय 'धर्म्यम् ।	४४९
हुक्ते पापे पूर्वविद् ।	४५०
परे केष्वसिनः ।	४५१
पुत्रकत्वैकत्वमितकैसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातित्युपरतक्रियानिवर्तनि ।	४५२
श्रेयक'यागद्वयभागायागानाम् ।	४५३
एकामय सधितकैवीचारे 'पूर्वे ।	४५४
अवीचारे 'द्वितीयम् ।	४५५
वितर्कः धृतम् ।	४५६
वीचाराऽर्थव्यञ्जनयागसंप्रतिः ।	४५७
सम्यग्दृष्टिभावकविरतानन्तवियोजकप्रश्नमाहृष्टपकोपशमकोपशान्तसोहृष्टपकस्त्रीयमाहृजिनाः क्रमशाऽसंस्वययुगान्तिर्राः ।	४५८
पुत्राकृतसुखीलनिर्मम्यस्नातकाः निर्मम्याः ।	४५९
संगमभूतप्रतिसंभनातीवलिङ्गलेश्यापपाहस्यान विकल्पतः साभ्याः ।	४६०
इति नभमाऽभ्यायः ।	४६१

## दसवाँ अध्याय

माहृष्टमाहृष्टान्दर्शनाधरस्थान्तरायकृपाय कथलम् ।	४६४
धन्वहेत्वभावनिर्जराभ्या कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षा मोक्षः ।	४६५
औपशमिकाविभक्त्यानां च ।	४६६
अन्यत्र कथलमम्मक्तव्यज्ञान्दर्शनसिद्धत्वम्भ्यः ।	४६७
तद्वनन्तरमूर्ध्वं गच्छन्त्या लोकान्ताम् ।	४६८
पूर्वप्रयोगावसङ्गत्वाद् धन्वच्छेदात्तथागतिपरिग्रामाच्च ।	४६९
'आविष्टकृत्वापचक्रवृत्त्यपगतश्रेयालामुपवेरणवीजवदभिक्षिताम् ।	४७०
धर्मास्तिकायामात्रात् ।	४७१
क्षेत्रकानगतिलिङ्गनीचैवारितप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहान्तरसंख्यास्यवस्तुत्वताः साभ्याः ।	४७२
इति दशमाऽभ्यायः ।	

- १ धर्मप्रमत्तकृत्य त मा । २ इत एव के पूर्व त मा में उपरान्तहीयकभावबोध  
देसा एक एव और है । ३ निवृत्ति त मा ।  
४ त् श्रीकृष्णकौगा-त मा । ५ कथिले पूर्व त मा । ६ अविचार त मा ।  
७ -श्रेयोपपाकस्थान-त मा ।  
८ त मा में कथहरमाधनिर्जराभ्याम् ॥२॥ कृत्स्नकर्मव्यो मोक्षः ॥३॥ इत प्रकारके दो एव हैं ।  
९ त मा में तीसरे वीधे एवक स्थान पर औपशमिकाविभक्त्यामावाच्यान्यत्र केवलतम्भ्य  
अनदर्शनसिद्धत्वम् । धर्मा एक एव है ।  
१० 'द्रीशामाचक्र कथयतिः त मा । ११ त मा में छाठवें और छाठवें नभ्र के दो एव नहीं हैं ।





वनं च प्राणा		१४८
न दुःखं न सुखं यद्दुःखं		१५
न दुःखं न सुखं यद्दुःखं		११
नान्यमावादिनां किंवा		४४६
ननु वेत्याः	[ब्रिनेत्र ३, ८, ८०]	२०
पुङ्गुमुपाति नर्दं	[पंचमहा १, ३८]	११८
पुराण एतेर्दं सर्वम्		१
पुण्डस्तु दुःखिमायां	[अम्बुहीपप्रसक्ति १३, १२]	१२६
दृष्टिमादिब्यादिभिः परमावावः		१३६
दृष्टिमादिब्यादिभिः परमावावः		१३
दृष्टिमादिब्यादिभिः परमावावः		१३
प्रथमं प्रमायात परिचयित्किरोपावर्षावर्षावर्षं नयः		२
प्रत्यक्षतेः प्रधानं कनीय		१३
प्रदीपनिर्वाहाकल्पमात्मनिर्वाहाम्		२
बुद्ध्यानिर्वाहोपिक्युबोप्येद पुराणम् माह		२
यत्तं वदति एतत्		१३२
मरुतु व किमदु व भीयो	[प्रवचन १७]	१३१
यगादीशमद्युष्य		१३१
लोमागासपर्वते	[गो श्री ७ ४८८ इत्यर्थं २२]	१३३
बभ्रवाभ्रवात्का पला	[दिलो व १ २४ अथ प १३, ३६]	२३४
विद्यानाति न विज्ञान-	[ति का १ २४]	१५
किमोभयति चासुभिर्न च	[सिद्ध द्या ३ १६]	३५१
विरोध्या विरोध्यामन्वे		१६
विरोध्या विरोध्यामन्वे	[ब्रिनेत्र १ ३, ४८]	२६५
एकतादेयः प्रमायाधीनो किञ्चिदादेयो मन्वाधीनः	[	०
सद्यःप्रत्यक्षगुणत्वकर्मादि एतन्म		३
सधिकर्याः प्रमायाम्		६३
सद्यमि लोमलेते	[अथ अद्युपेक्षा १३]	१६३
सन्ना पत्रकिङ्किपीभो	[अथ अद्युपेक्षा २६]	१६६
सन्ने चि वोमला अद्यु	[अथ अद्युपेक्षा २५]	१६५
धावाः अथ तपन्मुते		२८२
विद्य विधियारम्भमाद्यो निवमार्थ		११३-१६६
स्वयमेवावमनाऽप्रमानं		३३३



अनुभवेय	१०३	अमत्यासनाभिक्षा	३२३	अलातक	२००
अनुभवेयिगति	१०४	अमत्यासनाभरण	३०३	अलामपरीपू विजय	४०५
अनुत	३५२	अमाप्यभारि	११८	अलोत्प	१३
अनुत्सृष्टिवगन्धहार	४०८	अपरा	३३	अल्पकुल	२८ ४०१
अनुक्तिप्रार्थना	२३	अपि	३३	अल्पावमह	११३
अनेकान्त	१३१	अशुक्तिपूर्वा ( निर्भय )	४१०	अकगाह	२१३ २०३
अन्तकृष्ट	१२३	अशय	३५४	अकगाहन्त	४०१
अन्तर	१७१	अमम	१४८, १३१, ३८२	अकमह	१११
अन्तर्गुह्य	४४४	अममल	१३१	अकपर्षाद	३३१
अन्तराव	४३३	अन्नापालक	८८५	अकष	३४०
अन्वयननिरोध	३३३	अग्निनिरोध	१३	अकषि	८४
अन्व	१८५	अग्निमय	२८८	अकषिदर्शनावस्था	३३८
अन्वयौक्य	१८५	अग्निमान	२५२	अकमोदसंतप	४१८
अन्वयस्योक्त	२८५	अग्निपय	३७१	अकखर्षिणी	१३३, २१२, २२३, २३४
अन्व अनुभवेया	४१५	अग्नीकृष्टानोपयोग	३३८	अकखिप	२०१
अन्वयविश्रमार्थ	३३४	अन्वन्तयोपधित्यागस्तुसर्ग	४०३	अकखिप ( अकषि )	१८८
अन्वयविश्रमार्थ	३	अन्वर्हित	७, १३३	अकख	१११
अपस्थान	३३	अमनस्क	१०	अकषिप्रह	१८४
अपस्थातिनाम	३८२	अमन्ये	३४३	अकषिप्रहप्रति	१८३
अपत्या	२१८	अमनोरुतग्रयोग ( अर्धजान )	४४५	अकिनागावी	२८४
अपत्य	२८२	अमिज्याति	२४	अकिनेय	३४८
अपय ( रिपति )	३८०	अमितवाहन	२४	अकिपाकस्य ( निर्भय )	३८८
अपर शित	२४८	अमूर्त	१३२ ३१३	अकिप	४४०
अपरग	४३८	अमृतवरीय	१८	अकिरति	३०४
अपस्यायुप	२१	अयकल्प ( अर्मावाक )	४६३	अक्य	३५
अपान	२८८	अयपाकल	२१	अक्याचाति	१८८
अपय	३४०	अयरात्रीर्तिनाम	३८२	अक्याचाच	२५३
अपयविषय	४५	अयोग	४५४	अक्या	३२१
अपुनकरण	३०	अयोक्तेमती	३	अशरवातुमेवा	४१४
अप्रतिपत्त	१३१	अरति	३८५	अशुभित्वातुमेवा	४१३
अप्रतिक्रम	१४	अरतिवरीयह कव	४३१	अशुभअयथाग	३१८
अप्रतीपात	१८३	अरति	२५२	अशुभनाम	३८२
अप्रतीवार	२४२	अरि	२५३	अशुभनोयोग	३१८
अप्रमत्तसंत	३	अरि	२५५	अशुभयोग	३०
अप्रत्यक्षितनितोपधित्या	३२०	अरि	२११	अशुभनामयोग	३१८
अप्रत्यक्षितप्रमाकिश्वरान	३७१	अरि	२११	अशुभमुति	३३
अप्रत्यक्षितप्रमाकिश्वरान	३०	अरि	२०१	अश	२५६



उच्छ्रयप्रह	१११	उपनावच्छेद	१८३	एकभोग	५१५
उच्छ्रयगोत्र	११४	उपश्रवस्त्रम	१९	एकविधावप्रह	११३
उच्छ्रयदान	१४	उपभोग	१९५, १९१	एकान्त	१६१
उच्छ्रयसाधनाम	१११	उपभोगपरिमोगानर्षक्य	३७	एकान्तमिभ्यदर्शन	१७५
उच्छ्रयसाधनःप्रवाहप्रणय	१७२	उभयभोगपरिमोगपरिमाद्य	१५९	एकत्रिभुजातिनाम	३८९
उच्छ्रय	११३		१९१	एकत्रिभुजा	५७०
उच्छ्रयसिद्धि	११५	उपभोगान्तराय	१९५	एकभूत	१५९
उच्छ्रयकुरु	२१२	उपभोग	१६१ १७१	एकस्यासम्पत्ति	५११
उच्छ्रयकर्मनुष्य	१११	उपरिमर्षैक्य	१६१		दे
उच्छ्रयगुणानिर्घटन	११७	उपवास	१६१	प्रयच्छतर्वा	२१५
उच्छ्रयप्रहृषति	१६९	उपशम	१७७	देशानकश्य	२४९
उच्छ्रय	१	उपशमक	७५८		भा
उच्छ्रयपूर्व	१२३	उपशान्तकथाव	१११	श्रीशक्ति	१४९
उच्छ्रय	१ १	उपशान्तकथयत्रीतगगच्छयम	१	श्रीशक्तिशरीर	१९१
उच्छ्रयसंज्ञन	५५५	उपशान्तमोह	५५९	श्रीशक्तिशरीरनाम	१८९
उच्छ्रय	१११	उपशान्तीभूत	१ १	श्रीशक्तिशरीरज्ञापान्नाम	१८९
उच्छ्रयकुमार	१४१	उपस्थापना	५५	श्रीपरिधि	१९७
उच्छ्रय	१९१	उपस्था	१८८ १९१	श्रीपरिधिनाम	१९९
उच्छ्रयप्रह	२१५	उपस्थानाम	१९०	श्रीपरिधिपरिधि	१५१
उच्छ्रयकना	१५	उपस्थपरिपहसहन	५२१	श्रीपरिधिपरिधिनाम	१५१
उच्छ्रय	२१६	उपस्थमोनि	१८९	श्रीपरिधिपरिधि	५६८
उच्छ्रयान्तम	१९१			श्रीपरिधि	१६१
उच्छ्रयसिद्धि	५११				
उच्छ्रयपिपी	१९७ १२१	उच्छ्रयशोच	१५१		सं
	२२१ २१५	उच्छ्रयशक्तिम	१९९	श्रीपरिधि	१११
				श्रीपरिधि	१२१
उच्छ्रय	१ ७			श्रीपरिधिनाम	१८९
उच्छ्रय	१७५ १९१	श्रीपरिधि	१८६	श्रीपरिधि	१९
उच्छ्रयप्रवाहसंग्रहप्रतिकरवा	११७	श्रीपरिधिनाम	१५१	श्रीपरिधि	१९
उच्छ्रय	१८२	श्रीपरिधि	१५५	श्रीपरिधि	१८९
उच्छ्रय	१८१	श्रीपरिधि	१५२	श्रीपरिधि	१५१
उच्छ्रयप्रतिभार	१७१	श्रीपरिधि	१ ९	श्रीपरिधि	१९
उच्छ्रय	१ ८	श्रीपरिधि	१९	श्रीपरिधि	१८१
उच्छ्रयान्तम	१९१			श्रीपरिधि	१९
उच्छ्रयपरिधि	५५१			श्रीपरिधि	१६७ २११
उच्छ्रय	१५५				
उच्छ्रय	५५२				
उच्छ्रयप्रधकना	१२१				
उच्छ्रय	१८७, ५९१				
		एकभोगनाम	५ १		क
		एकभक्ति	५५१	कनुकनाम	१९
		एकभक्ति	५५१	कनुकनाम	२११
		एकभक्ति	५१५	कनुकनाम	२११

कवचिदम्	३०२	कवचमार्गशा	३०	केवल	६४	४६८
कर्कशनाम	३६	काचयोग	३१८	केरलदर्शनापरण		३८३
कर्म	१८३, ३१८	काचस्वभाव	३५	केरलि अक्षर्याचद		३३२
कर्मद्वयपरिकर्तन	३६५	काचरियति	३२४	केशिन्	३३१,	४६३
कर्मनो कर्मकथ	१६५	कायिकीक्रिया	३२०	केशरिन्		२१६
कर्मबाह	३२३	कायविक्रियास	३३६	कायकोपी		३६५
कर्मभूमि	२३१	कायित	३२५	कोष		११०
कर्मभूमिन् मन्त्र	२३१	कायम्प	३४६	कोषमरणाभ्यान्		३४५
कर्मरियति	२३४	कायकारणमावकन्तति	३६४	कौमुद्य		३००
कर्मां	२३	काय { २६, २४, २४४, २६१		कर्ण		३६६
कान्त	२०३, १३८, १५४	{ ३३३ ३३२, ४०१		कणक		४६६
कान्तरीत	२४८	कालनियम	१८४	कमा		६१२
कान्तोक्तम्	२३८, २४८	कालपरमाणु	१९६	कप	११०	४४६
कान्तानामपेय	१२३	कालपरिवर्तन	२१६	कपायसम		२१७
कायम् १५६, ३२, ३०३	३७४	कालगमिन्वार	२४३	कपायसमनिमित्तक अक्षयि		१६५,
कायमनुशील	४६	काललक्षि	२५			१२६
कायभ्याम्	३६	कासकमार	१६६	कान्ति		१९३
कायभ्यान्शा	३८	कासादिप्रम	३०	कायिक		१४६
कायवरत्न	१६३	कालो	२११	कायिकउपमाग		२५४
कायवेदनीय	१५२, ३८६	कियर	२४	कायिकज्ञान		
कायपाप्यवशापयान	२६०	कियुदा		कायिकभ्यान्		
कासा	३५४	किल्पिपिक		कायिकज्ञान		
कापोलानरवा	२३७	किया	२०२, ६०	कायिकभाग		
कापोलीनरवा	१०	कियादिसाल		कायिकनाम		
कारिद	२४६	किरमान		कायिकरीय		
कासबाह	२४६	कीर्ति		कायिकसम्पत्त		३३४
कासर्षीमार्गनियस	३१८	कीर्तिकार्येदननाम		कायिकनिक		१६६
कासर्षीकाययोग्य	१०२	कुचसंघाननाम		कायिकनिकनामि		१४७
कासकुर्यात्	३०३ १६३	कुच		कायिकनिकमाह		१४७
कासकुर्यात्प्रम	३०३ १६३	कुच		कायिकनिकनमस्त		१४७
काय	१०५ ९५	कुचनल		कायिकनिकसंघनाम		
कायभूमि	४११	कुचनयुक्ता (निरुग)		किम्प		१६२
कायकृतम्	१२८	कुशील		कीर्तनाय	१३१	१६६
कायक	३१	कुशीलनिक		कीर्तनायवर्तिकायकृतम्		३
कायकुशीलपान	३०	कुशील		कीर्तनाय		१८८
कायिकन्यायिकरत्न	३०	कुशील		कीर्तनायवर्तिकायकृतम्		३
कायिकरावा	४१	कुशील		कीर्तनाय		२११
कायिकरत्न	३०	कुशील		कीर्तनाय		११

सुप्रमन	१६५	पनाहुल	१६६, ४ ३	खेद	१६६, ४४
सुप्रसिमवान्	१६३	पनोदविषय	२०४	खेदोपरमापनाचारिण	४१६
सुप्र	२१८, ३६८, ४०१	वृत्तकलीप	२११	ख	
सुप्रपरिभर्तन	१६५	वृत्तवस्तु	२१	खनस्वमन्त्र	३५
सुप्रपुमि	३६६	माया	१७८	खन्यगुण	३ ५
सुप्रसंसार	१६६	मायप्राय	१७३	खपन्था (रिपति)	३६६
सुप्रार्थ	२३			खन	१८८
सुप्रद्वार	२२६	ख		खन्वीप	२११
		खनुयु	१७८	खन्वीप	२११, २२७
सुप्रद्व	२६६	खनुयुनाकरवा	३८३	खयस्य	२४६
		खनुयुप्राय	१७३	खययु	१८६
गङ्गा	३१३ २१८	खनुयुप्राय	२३७	खययुव	१६
गङ्गा	४४२	खनुयु-खनुयु	३५८	खनखन्त	२४
गङ्गा	१५६ १५२ २८१	खनुयुमळ	२२५	खनमम	
गङ्गा	१	खनुयुस	२६६	खनुयु	३८६
गङ्गा	१७८ २६४	खनुयुसादि	२११	खनुयुस्य	२३
गङ्गा	३६	खनुयुसिन्धु	१७३	खनुयुस्य	४१६, ४३६
गङ्गा	२४३	खनुयुसिन्धुबादिनाम	१८६	खनुयु	१४, १७३, ३७७
गङ्गा	१५६	खनुयुस्य	२५६	खनुयु	१६१
गङ्गा	१८७	खनुयुस्य	२४	खनुयुस्य	३
गङ्गा	१५४	खनुयुस्य	२ १	खनुयुस्य	३१५
गङ्गा	३१६, ३ ६, ३१६	खनुयुस्य	२ १	खनुयुस्य	२८६
गङ्गा	१६२	खनुयुस्य	४१३	खनुयुस्य	३७२
गङ्गा	३	खनुयुस्य	२६६	खनुयुस्य	३८६
गङ्गा	३६६	खनुयुस्य	२२५	खनुयुस्य	३२३
गङ्गा	४ ६ ४११	खनुयुस्य	४ ४ ६ ४०१	खनुयुस्य	३, १६३ ४०१ ४१८
गङ्गा	२६३	खनुयुस्य	४३३	खनुयुस्य	१२३
गङ्गा	३६	खनुयुस्य	४४२	खनुयुस्य	४३
गङ्गा	३६४	खनुयुस्य	२३	खनुयुस्य	४४२
गङ्गा	२४६	खनुयुस्य	१८७	खनुयुस्य	३८, ४१२
गङ्गा	३८१	खनुयुस्य	१ ६	खनुयुस्य	१८
गङ्गा	३	खनुयुस्य	२६६	खनुयुस्य	१६३
गङ्गा	१२३	खनुयुस्य	१२३	खनुयुस्य	२६५
गङ्गा	४४२	खनुयुस्य	१६३	खनुयुस्य	८, १६
गङ्गा	५६५	खनुयुस्य	४१८	खनुयुस्य	६
गङ्गा	२ ४	खनुयुस्य	३६६	खनुयुस्य	१६
गङ्गा		खनुयुस्य	३६६	खनुयुस्य	४६६

उन्मूलितरिक्तबीज	१८	५	देशनिपम	१८५	
उषाहवाशन	३३७	दशपेक्षक	१२५	देशप्रत्यक्ष	१२५
उमुम ( प्रायश्चित्त )	५५	दशन	६, १११, १६३, ५६८	देशविल	५४७
उनुवातबलय	२ ५	दशनक्रिया	३२२	देशविरति	१५६
उन्मनोदयान्निरीक्षणाख्याग	३५६	दशनमार्गशा	६०	देशपातिग्यर्षक	१५७
उप	३३६ ५१२	दशनमोद	५३३	देशप्रत्यक्ष	२०५
उपःप्रायश्चित्त	५५	दशनमोदकपक	५५८	दशामु	३८८
उपरिबन्	५५२	दशनविनय	५५२	देशमशकनरीपरहचमा	५०२
उमस	२८३, २६६	दशनविशुद्धि	३६८	धुति	२५१
उमाप्रमा	२ ३	दशनार्थ	२३	दश	१७, १६, २६६, ३, ३ ६
उप	३ ६	दशनादरथा	८	दशकर्म	५६८
उरिक्त	२६३	दशानोपवाग	१६३	दशप्रथम	१८
उरिक्तनाम	३६	दशानुविद्या	१०२	दशप्रथम	२६६
उरिगिम्बु	१६	दशन	३७३	दशप्रथम	५५६
उरिगदिष्टम	३६६	दशान्तगप	३६५	दशप्रथम	१६५
उरिगमति	३८६	दश	३६८	दशप्रथम	१७, २६६, २८७
उरिगमतिप्रायोग्यनुपुष्पनाम	७६१	दशमी	३६८	दशप्रथम	३८६
उरिग्योनि	२ ५, २५७	दशकुमार	२५३	दशप्रथम	३८६
उरिग्योनिब	२-५	दशान्तवित	२५६	दशप्रथम	१०३
उरिग्योनि	२५	दशान्तवित	५६	दशप्रथम	५६५
उरिग्योनि	५६२, ५५१	दशान्तवित	२६६	दशप्रथम	१५६
उरिग्योनि	१२	दशान्तवित	३८८, ३८८, ३८८	दशप्रथम	६६
उरिग्योनि	३६०	दशान्तवित	६१	दशप्रथम	२१
उरिग्योनि	३०३	दशान्तवित	३०१	दशप्रथम	३१५
उरिग्योनि	२५६	दशान्तवित	३०१	दशप्रथम	३०१
उरिग्योनि	५२६	दशान्तवित	२२३	दशप्रथम	३०१
उरिग्योनि	३५८	दशान्तवित	३	दशप्रथम	३०१
उरिग्योनि	८६	दशान्तवित	६१	दशप्रथम	२५६, ५१
उरिग्योनि	८८	दशान्तवित	१३	दशप्रथम	२५६
उरिग्योनि	२१६	दशान्तवित	२३६ ३११	दशप्रथम	३५८
उरिग्योनि	३८ ५१३	दशान्तवित	३८६	दशप्रथम	३०३
उरिग्योनि	१६१	दशान्तवित	३६१	दशप्रथम	३८६
उरिग्योनि	६१	दशान्तवित	२५६	दशप्रथम	२११
उरिग्योनि	६६	दशान्तवित	३३२	दशप्रथम	६३
उरिग्योनि	२ ६	दशान्तवित	१८	दशप्रथम	७२
उरिग्योनि	५५६	दशान्तवित	३ ६ २ ७	दशप्रथम	३५६
उरिग्योनि	१०३	दशान्तवित	३६७ ३१६	दशप्रथम	३६८
उरिग्योनि	८३	दशान्तवित		दशप्रथम	३६८



	२२५	नारकमाष	१५६	निकुटक्षेत्र	१०५
पर्यु	२४	नारकसु	१०८	निष्कृत	२०३
धर्म	४६५, १११, ४६	नारकचक्रनननाम	११६	निष्कृत	१२०
धर्मशास्त्रात्मकानुपदेश	४१६	निष्कृत	२३३	नीचैर्गोत्र	१६५
धर्मशास्त्र	४४५	निष्कृत	१२५	नीचैर्गोत्रि	१४
धर्मशास्त्राचार	११२	निष्कृत	२८	नील	२१५, २६५
धर्मशास्त्राचार	२०४, ४०१	निष्कृत	११२	नीलशास्त्रनाम	१६
धर्मशास्त्राचार	४४१	निष्कृत	४६	नीलाक्षरना	१०, २१०
धर्मशास्त्राचार	११५	निष्कृत	१४, १६६, ४१	दुलोक	२००
धर्मशास्त्राचार	११५	निष्कृत	११७	नैगमनाम	१६१
धर्मशास्त्राचार	११५	नित्य	२६, १२	नैर्गुणिक ( मिथ्यादर्शन )	१०५
धर्मशास्त्राचार	२२०	निष्कृत	१११	नैर्गुणिक ( सम्मिश्रण )	१२
धर्मशास्त्राचार	४१६, ४४५	निष्कृत	१५६, १०२	नोभ्रागमशास्त्र	१८
धर्मशास्त्राचार	०, १	निष्कृत ( आर्षनाम )	४४०	नोभ्रागमशास्त्र	१८
धर्मशास्त्राचार	२१८	निष्कृत	११६	नोभ्रागमशास्त्र	१८
धर्मशास्त्राचार	११२	न	१०३	नोभ्रागमशास्त्र	१५५
धर्मशास्त्राचार	११५	निष्कृत	१०३	नोभ्रागमशास्त्र	१५२
धर्मशास्त्राचार	१	निष्कृत	२२	नोभ्रागमशास्त्र	१६
		निष्कृत	१११	नोभ्रागमशास्त्र	१६६
		निष्कृत	१०६		
नदी		निष्कृत	१५६	पञ्चम	२१
नदीशास्त्राचार	१११	निष्कृत ( सामाजिक )	४१६	पञ्चम ( अष्टम )	१५६
नदीशास्त्राचार	१११	निष्कृत	११५	पञ्चमशास्त्रनाम	१०६
नदीशास्त्राचार	१६६,	निष्कृत	१६५	पञ्च	२१६
नदीशास्त्राचार	१०६	निष्कृत	१६५	पञ्चशास्त्र	२५६
नदीशास्त्राचार	०, १५	निष्कृत	१६२	पर	१६६
नदीशास्त्राचार	२५	निष्कृत	१६६	परशास्त्रनाम	१६६
नदीशास्त्राचार	१०६	निष्कृत	१६६	परश	२६६
नदीशास्त्राचार	१६६	निष्कृत	१००	परशस्त्रनाम	२०३
नदीशास्त्राचार	१६६	निष्कृत	१०५	परशस्त्रनाम	२६६
नदीशास्त्राचार	०५	निष्कृत	११५	परशस्त्रनाम	१६०
नदीशास्त्राचार	०५१	निष्कृत	११५	परशस्त्रनाम	१०६
नदीशास्त्राचार	४६६	निष्कृत	१२६	परश ( शक्ति )	१६५
नदीशास्त्राचार	१०६	निष्कृत	१२२	परश ( प्रमाण )	१
नदीशास्त्राचार	१०	निष्कृत	१११	परशस्त्र	१२१
नदीशास्त्राचार	१०	निष्कृत	१११	परशस्त्र	२५०, १११, १५५
नदीशास्त्राचार	४०	निष्कृत	११५	परशस्त्रनाम	१०, १६, ११०
नदीशास्त्राचार	१६६, २५	निष्कृत	४२१	परशस्त्र	१८

परिमोग	३३१	पुत्रल	१३५, २७५	प्रतिपाठ	१८८
परिमण्डल	२६३	पुत्रलक्षेप	३६६	प्रतिपाठ	१३
परिकर्तन	१३४	पुत्रलस्कन्ध	४ ३	प्रतिरूप	२४
परिवारपत्र	२१८	पुमान्	२	प्रतिक्रम्यवहार	३३७
परिणद्		पुरुषमभिचार	१४३	प्रतिप्रय	३६२
परिषत्क	२१८	पुलाक	४३	प्रतिषेवना	४३१
परिषद्	४ ६	पुष्कर	२१७	प्रतिषेवनाकुरीत	४६
परिहार ( प्रायश्चित्त )	४४	पुष्करवल्लीप	२११	प्रतीपाठ	१६३
परिहारविशुद्धिचारित्र	४३६	पुष्करवल्गुप्र	२११	प्रयमत्तम्बक	१५३
परिधानन्त	२७५	पुष्करार्थ	२२३	प्रयमानुयोग	१२३
परिहार	४१६	पुष्पप्रकीर्णक	२४८	प्रदेश १६२, २७४, ३७६	४ ३
पर्येच	१ १	पुषिद	३८६	प्रदेशप्रथम	३१२
पर्येकार	३७२	पुर्ण	२४	प्रदेशकथ	४ ३
प्लोप्लेशनिमित्तक ( मिथ्या )	३७५	पुर्णान्ते	२४	प्रदेशपत्र	१३१
प्लोप्लोभाकरय	३७५	पुर्ण	२१६	प्रदेशसंख्यानविष्कम्भ	२१२
प्लोतिनाम	३६२	पुर्ण	२२६	प्रदोष	३२७
प्लय	१४१, ३ ६	पुर्णोदरी	२२५	प्रमञ्जन	२४
प्लयार्थिकनय	२१	पुर्णगत	१२३	प्रमथ	२४१
प्लय	२३३	पुर्णगा	११६	प्रमथ	१५१
प्लयोरम	१६२ २२४	पुर्णप्रयोग	४६६	प्रमत्तस्यत	३ ४७७
प्लयान्द्रोष	३७३	पुर्णप्रनुस्मरणस्वाग	३४३	प्रमात्रित	३७
प्लय	३२, ४ १	पुर्णिक	४४३	प्रान्त	५, ६८
प्लय ( कथ )	४ ३	पुष्पस्यपितृकेश्वरामाह	४५३	प्रान्तनिर्माणा	३८६
प्लोदेश	३३	पुष्पस्यपितृकेश्वरामाह	४५३	प्रान्तपत्र	६७
प्लोर्महर्षि क्रिया	३२३	पुष्पिणी	१७२	प्रान्तशास्त्र	२३३
प्लोस्थानिक	१४६ ३ ७	पुष्पिणीप्रय	१७२	प्रमाद	३५१, ३७४
प्लोस्थानिकमाय	१६	पुष्पिणीप्रयिक	१७२	प्रमादाचारित	३६
प्लो वारिष्ठी क्रिया	३२५	पुष्पिणीशीव	१७२	प्रमोह	३४६
प्लोपरिद्	२३६	पोत	१६	प्रत्यक्ष	१ ३
प्लोत	२६४	प्रकीर्णक	२३६	प्रत्यभिज्ञान	३ २
प्लोलेखना	२५३	प्रकृति	३७८	प्रत्येदश	३७
प्लो ( लेखना )	२३७	प्रकृतिरूपविकल्प	३६५	प्रत्याख्यानदूरी	१२३
प्लोसाधन	४२१	प्रचला	३८३	प्रत्याख्यानानरण	३८३
प्लोसाध	२४३	प्रचलाप्रचला	३८३	प्रत्येकबुद्धवर्षित	४७१
प्लोनीक	२१६	प्रध्वना	४४३	प्रत्येकशरीरनाम	३६१
प्लोप्य	३२ ४ ४	प्रहापरिणहय	४२७	प्रयोगक्रिया	३२१
प्लोप्य ( कथ )	४ ३	प्रतर	१६६	प्रचननचञ्चलत्व	३३६
		प्रतिप्रमथा	४४	प्रचारिन्	२८३

१	१०१	१०२	१०३	१०४	१०५	१०६	१०७	१०८	१०९
२	११०	१११	११२	११३	११४	११५	११६	११७	११८
३	११९	१२०	१२१	१२२	१२३	१२४	१२५	१२६	१२७
४	१२८	१२९	१३०	१३१	१३२	१३३	१३४	१३५	१३६
५	१३७	१३८	१३९	१४०	१४१	१४२	१४३	१४४	१४५
६	१४६	१४७	१४८	१४९	१५०	१५१	१५२	१५३	१५४
७	१५५	१५६	१५७	१५८	१५९	१६०	१६१	१६२	१६३
८	१६४	१६५	१६६	१६७	१६८	१६९	१७०	१७१	१७२
९	१७३	१७४	१७५	१७६	१७७	१७८	१७९	१८०	१८१
१०	१८२	१८३	१८४	१८५	१८६	१८७	१८८	१८९	१९०
११	१९१	१९२	१९३	१९४	१९५	१९६	१९७	१९८	१९९
१२	२००	२०१	२०२	२०३	२०४	२०५	२०६	२०७	२०८
१३	२०९	२१०	२११	२१२	२१३	२१४	२१५	२१६	२१७
१४	२१८	२१९	२२०	२२१	२२२	२२३	२२४	२२५	२२६
१५	२२७	२२८	२२९	२३०	२३१	२३२	२३३	२३४	२३५
१६	२३६	२३७	२३८	२३९	२४०	२४१	२४२	२४३	२४४
१७	२४५	२४६	२४७	२४८	२४९	२५०	२५१	२५२	२५३
१८	२५४	२५५	२५६	२५७	२५८	२५९	२६०	२६१	२६२
१९	२६३	२६४	२६५	२६६	२६७	२६८	२६९	२७०	२७१
२०	२७२	२७३	२७४	२७५	२७६	२७७	२७८	२७९	२८०
२१	२८१	२८२	२८३	२८४	२८५	२८६	२८७	२८८	२८९
२२	२९०	२९१	२९२	२९३	२९४	२९५	२९६	२९७	२९८
२३	२९९	३००	३०१	३०२	३०३	३०४	३०५	३०६	३०७
२४	३०८	३०९	३१०	३११	३१२	३१३	३१४	३१५	३१६
२५	३१७	३१८	३१९	३२०	३२१	३२२	३२३	३२४	३२५
२६	३२६	३२७	३२८	३२९	३३०	३३१	३३२	३३३	३३४
२७	३३५	३३६	३३७	३३८	३३९	३४०	३४१	३४२	३४३
२८	३४४	३४५	३४६	३४७	३४८	३४९	३५०	३५१	३५२
२९	३५३	३५४	३५५	३५६	३५७	३५८	३५९	३६०	३६१
३०	३६२	३६३	३६४	३६५	३६६	३६७	३६८	३६९	३७०
३१	३७१	३७२	३७३	३७४	३७५	३७६	३७७	३७८	३७९
३२	३८०	३८१	३८२	३८३	३८४	३८५	३८६	३८७	३८८
३३	३८९	३९०	३९१	३९२	३९३	३९४	३९५	३९६	३९७
३४	३९८	३९९	४००	४०१	४०२	४०३	४०४	४०५	४०६
३५	४०७	४०८	४०९	४१०	४११	४१२	४१३	४१४	४१५
३६	४१६	४१७	४१८	४१९	४२०	४२१	४२२	४२३	४२४
३७	४२५	४२६	४२७	४२८	४२९	४३०	४३१	४३२	४३३
३८	४३४	४३५	४३६	४३७	४३८	४३९	४४०	४४१	४४२
३९	४४३	४४४	४४५	४४६	४४७	४४८	४४९	४५०	४५१
४०	४५२	४५३	४५४	४५५	४५६	४५७	४५८	४५९	४६०
४१	४६१	४६२	४६३	४६४	४६५	४६६	४६७	४६८	४६९
४२	४७०	४७१	४७२	४७३	४७४	४७५	४७६	४७७	४७८
४३	४७९	४८०	४८१	४८२	४८३	४८४	४८५	४८६	४८७
४४	४८८	४८९	४९०	४९१	४९२	४९३	४९४	४९५	४९६
४५	४९७	४९८	४९९	५००	५०१	५०२	५०३	५०४	५०५
४६	५०६	५०७	५०८	५०९	५१०	५११	५१२	५१३	५१४
४७	५१५	५१६	५१७	५१८	५१९	५२०	५२१	५२२	५२३
४८	५२४	५२५	५२६	५२७	५२८	५२९	५३०	५३१	५३२
४९	५३३	५३४	५३५	५३६	५३७	५३८	५३९	५४०	५४१
५०	५४२	५४३	५४४	५४५	५४६	५४७	५४८	५४९	५५०
५१	५५१	५५२	५५३	५५४	५५५	५५६	५५७	५५८	५५९
५२	५६०	५६१	५६२	५६३	५६४	५६५	५६६	५६७	५६८
५३	५६९	५७०	५७१	५७२	५७३	५७४	५७५	५७६	५७७
५४	५७८	५७९	५८०	५८१	५८२	५८३	५८४	५८५	५८६
५५	५८७	५८८	५८९	५९०	५९१	५९२	५९३	५९४	५९५
५६	५९६	५९७	५९८	५९९	६००	६०१	६०२	६०३	६०४
५७	६०५	६०६	६०७	६०८	६०९	६१०	६११	६१२	६१३
५८	६१५	६१६	६१७	६१८	६१९	६२०	६२१	६२२	६२३
५९	६२४	६२५	६२६	६२७	६२८	६२९	६३०	६३१	६३२
६०	६३३	६३४	६३५	६३६	६३७	६३८	६३९	६४०	६४१
६१	६४२	६४३	६४४	६४५	६४६	६४७	६४८	६४९	६५०
६२	६५१	६५२	६५३	६५४	६५५	६५६	६५७	६५८	६५९
६३	६६०	६६१	६६२	६६३	६६४	६६५	६६६	६६७	६६८
६४	६६९	६७०	६७१	६७२	६७३	६७४	६७५	६७६	६७७
६५	६७८	६७९	६८०	६८१	६८२	६८३	६८४	६८५	६८६
६६	६८७	६८८	६८९	६९०	६९१	६९२	६९३	६९४	६९५
६७	६९६	६९७	६९८	६९९	७००	७०१	७०२	७०३	७०४
६८	७०५	७०६	७०७	७०८	७०९	७१०	७११	७१२	७१३
६९	७१५	७१६	७१७	७१८	७१९	७२०	७२१	७२२	७२३
७०	७२४	७२५	७२६	७२७	७२८	७२९	७३०	७३१	७३२
७१	७३३	७३४	७३५	७३६	७३७	७३८	७३९	७४०	७४१
७२	७४२	७४३	७४४	७४५	७४६	७४७	७४८	७४९	७५०
७३	७५१	७५२	७५३	७५४	७५५	७५६	७५७	७५८	७५९
७४	७६०	७६१	७६२	७६३	७६४	७६५	७६६	७६७	७६८
७५	७६९	७७०	७७१	७७२	७७३	७७४	७७५	७७६	७७७
७६	७७८	७७९	७८०	७८१	७८२	७८३	७८४	७८५	७८६
७७	७८७	७८८	७८९	७९०	७९१	७९२	७९३	७९४	७९५
७८	७९६	७९७	७९८	७९९	८००	८०१	८०२	८०३	८०४
७९	८०५	८०६	८०७	८०८	८०९	८१०	८११	८१२	८१३
८०	८१५	८१६	८१७	८१८	८१९	८२०	८२१	८२२	८२३
८१	८२४	८२५	८२६	८२७	८२८	८२९	८३०	८३१	८३२
८२	८३३	८३४	८३५	८३६	८३७	८३८	८३९	८४०	८४१
८३	८४२	८४३	८४४	८४५	८४६	८४७	८४८	८४९	८५०
८४	८५१	८५२	८५३	८५४	८५५	८५६	८५७	८५८	८५९
८५	८६०	८६१	८६२	८६३	८६४	८६५	८६६	८६७	८६८
८६	८६९	८७०	८७१	८७२	८७३	८७४	८७५	८७६	८७७
८७	८७८	८७९	८८०	८८१	८८२	८८३	८८४	८८५	८८६
८८	८८७	८८८	८८९	८९०	८९१	८९२	८९३	८९४	८९५
८९	८९६	८९७	८९८	८९९	९००	९०१	९०२	९०३	९०४
९०	९०५	९०६	९०७	९०८	९०९	९१०	९११	९१२	९१३
९१	९१५	९१६	९१७	९१८	९१९	९२०	९२१	९२२	९२३
९२	९२४	९२५	९२६	९२७	९२८	९२९	९३०	९३१	९३२
९३	९३३	९३४	९३५	९३६	९३७	९३८	९३९	९४०	९४१
९४	९४२	९४३	९४४	९४५	९४६	९४७	९४८	९४९	९५०
९५	९५१	९५२	९५३	९५४	९५५	९५६	९५७	९५८	९५९
९६	९६०	९६१	९६२	९६३	९६४	९६५	९६६	९६७	९६८
९७	९६९	९७०	९७१	९७२	९७३	९७४	९७५	९७६	९७७
९८	९७८	९७९	९८०	९८१	९८२	९८३	९८४	९८५	९८६
९९	९८७	९८८	९८९	९९०	९९१				

मरुद्	२५३	मिथ्यादृष्टि	३, ४ ६	योगविरोध	४०२
मलपीडाखन	४७३	मिथ्योपदेश	३३६	योगस्थान	१३८
महाश्रम	२४	मिथ ( मय )	१४६	योगिप्रत्यक्ष	१०४
महाभल	२४०	मिथ ( योनि )	१८८, १८९	योगिन	२१३
महाभोज	२४	मुक्त	१३४ १३६	योनि	१८८
महात्मधममा	२ ३	मुष्मन्त्र	१४४, ३१५		
महापद्य	२१३	मूर्च्छा	३५४	रक्तवर्णनाम	३६
महापुण्डरीक	२१३	मूर्त्त	१६२	रक्ता	२१४
महापुरुष	१४०	मूर्त्ति	२०१	रक्तेश	२१४
महाभ्रम	२४०	मूर्त्तिमत्त्व	१८८	रक्तप्रमा	२ ३
महामन्थर	१५	मूलगुचानिर्गन्त	३२७	रक्ति	३८५
महाभ्रत	३४४	मूलप्रवृत्ति	१३६	रक्तवर्ण	२१४
महाशुक्र	२४९	मूय	२६२	रस	१०८, २६३
महारक्त्य	२६५	मूयुनाम	३६	रसन ( इन्द्रिय )	१०८
महाशिवभानु	२१३	मूय	२१२	रसनाम	३६
श्लेष्य	२३	मेघपुलिङ्ग	२५१	रसनाया	१०३
नरेन्द्र	१५	मेघनामि	२१२	रसपरिधाय	४३८
महोरग	२४३	मैत्री	३४९	रसोऽभ्यास्यन	३३३
मात्स्य	३२७ ३०२	मैयुन	३५३	राक्षस	२४३
मार्गशास्थान	३	मोच	२ ७ १४, ४३३	राग	३४३
मार्गमाभाना	३३६	मोचमार्ग	५, ७	राकिमन्	२१४
मशिमद्र	१४	मोचद्वैत	१५	रुच	२६३, ३ ४
मार्दव	३३४, ४१२	मोक्षनीय	३८	रुचनाम	३६
माध्यय	३४९	मोक्षर्ष	३०	रुम	२०१
मानुषयुव	३८८			रुमप्रतीचार	१४१
मानुषोत्तरशैल	२२८	य		रुमानुपाठ	३३६
माया	३३४ ३५६	यद्य	२४३	रुपिन्	२७१
मायाकिरा	३२३	यज्ञलाप्य ( कर्माभाव )	४३६	रोगपरिपहणन	४२५
मातृशान्तिनी	३३३	यवाफल	२ १	रौप्यनाम	४४५
माहेश्वरन्दन	२५	यमाकषयचारित्र	४३६		
निष्ठातुपग	३०८	यश श्रीरिनाम	३६२	लक्ष्य	३ १
निष्पुन	३५३	यज्ञनापरीपहणन	४२५	लक्ष्मी	२१८
निष्पाल	३८५	युक्तानन्त	२०५	लक्ष्य	३ १
निष्पारनक्रिया	३२१	योग	१८३ ३३२ ३७४	लक्ष्मण	३ १
निष्पारार्शन	१२६ ३५३ ३७४	योगदुःप्रविधान	३०	लघु	६३
निष्पारार्शनक्रिया	३२३	योगनिर्गम	४११	लघुनाम	३६
		योगमार्गशा	३	लम्बि	१०३ १६७
		योगकला	३३६	लम्बिप्रत्यय	१६७

शबरोद	२११	शाम्भुति	१०५, ४११	शिवकविचय	४५
शान्तव	२४८, २५	शाम्भुप्रशिक्षण	१७	शिवकवच	१२३
शामान्तरय	१६४	शामिष्ठाधिकरण	१०७	शिवुत्तमामिन पर्यम	१२६
शिव १५६, २०	४६२, ४७१	शाम्योग	११८	शिवगणान	१४
शिव चमिचार	१४३	शाचना	४४३	शिवान	२४८
शेरवा	१, १४६, १६	शातकुमार	४४३	शिवोचितवाक	१४५
	२१७, २४१, ६६२	शापी	२१८	शिव	४५८
शेरवाशिशुद्धि	२४१	शामनकेस्थाननाम	१६	शिवशिव	१४६
शोक	१६६ २७५	शाक्यीकक्षीय	२११	शिव	१४२
शोकहेतु	१६६	शाक्यीशरकुमुद	२११	शिवशरणाधिक्रम	१६७
शोकपाप	२१६	शाकुलाममा	२ ३	शिवशरणाध्यायनतप	४३८
शोकपूर्व ( समुद्रात )	२७४	शालु	१६८	शिवत	१८८
शोकशिवुत्तर	१२३	शक्तिदेश		शिवयोगिनि	१८६
शोकशक्राद्य	२७४ २७६	शक्तिवा	१६१	शिवेक	४४
शोमानुभेदा	४१८	शिवह	१८२	शिशुद्धि	११, ११२
शोकानुभोग	२ ३ २४१	शिवहृत्पति	१८२	शिशोप	३ ३ ३५५
शोमप्रत्याख्यान	१०५	शिव	१४१	शिशोप ( संख )	२६६
शोदित	२६४	शिविचिस्त्रा	१६४	शिशोपर्यया	३ ३
शोधान्तिक	२४५	शिवन	२४६	शिशोशिवगति	१८४
		शिवपर्य	२१३	शिरन	२४६
शुद्ध	४६	शिवर्ष	४५५	शिवपतिकन्य	११४
शुद्धनायकसंहननाम	१६	शिवर्ष	२६३	शिवपर्ययास्मृतिसमाप्ताहार	४४८
शुद्ध	१७८, २६४	शिवत	११२	शिवराम	२११
शुद्धनाम	३६	शिवरथाक्रिया	११२	शिवर्ष	१८१
शुद्धना	२६१	शिवेह	११३	शिवनाहन	३३७
शुद्धनाम	३२६	शिवेहकन	२७४	शिवानेम्यतिमान	१६१
शुद्ध	३२६, ३६६	शिवानुप्रचार	१२३	शौचार	४५५
शुद्धपरिग्रहमा	४२४	शिवान	२२६	शौचगणसम्पत्त	१
शुद्धमान ( शकधि )	१२८	शिवकुमार	२४३	शौचा	१२६
शुद्धशक्ति	१८	शिवान ( अनुभेगाहार )	२२	शौच	३२४
शुद्धि	२४३	शिवि	१७३	शौचानुप्रचार	१२३
शुद्धशक्ति	१२८	शिविचिरोप	१७३	शुच	१६६
शुद्धशक्ति	२२१	शिवन ( तप )	४१६	शुचिपरिस्तम्भान	४३८
शुद्धि	२४	शिवनसम्पत्त	११८	शुद्धि	२२२
शुद्ध	२४६	शिवपर्य	११७	शुद्ध	२४६
शुद्ध	२२३	शिवरीत ( शिष्यपर्यन )	१७५	शुद्धदेव	१४
शुद्धशक्ति	१७३	शिवक	१६८	शुद्धापी	२४
		शिवकन्य ( निर्वाच )	१६६		



समवाय	१२३	सर्वाधिकार	१५७	१८	सुखत	३२५
सम्बन्ध	३७१	सर्वप्रत्यक्ष		१७५	सुपमा	२४९
सम्मिलनसुद्धि	३४९	सर्वरहित		२५५	सुसर्वाङ्गुमार	२४३
सम्बन्ध चारित्र	५	सर्वाधिकार		१४९	सुसंगनाम	३९१
सम्बन्ध	३३६, ४६८	सर्वानिदोषाधिकार		३६७	सुसंगि	१९४
सम्बन्धविषय	३२१	सर्वस		२१२	सुसंगिनाम	३९
सम्बन्धप्रकृति	३८५	सर्वकार		२४९	सुखा	३६८
सम्बन्ध-आधिकार	१७	सर्वकार		३३३	सुपमा	२२३
सम्बन्ध निर्देश	२०	सर्वकारप्रभवे		३६६	सुसंगुष्मा	२२३
सम्बन्ध मार्गदर्श	३	सर्वगोप्य	१५३	२३४	सुखनाम	३९१
सम्बन्ध विधान	२८	सर्वगोप्यकोटीकोटी		२५३	सुख	३८
सम्बन्ध साधन	२३	सर्वसम्बन्ध		३९४	सुखक्रियाप्रतिपात	४५३, ४५७
सम्बन्ध स्थिति	२७	साधन		२२	सुखनाम	३९२
सम्बन्ध स्वामित्व	२२	साधनसम्बन्ध		१४३	सुखनिगोदधीन	३३५
सम्बन्ध	५	साधारणसाधन		१६१	सुखसाधन	४२८
सम्बन्धदर्शन	८ ९	साधारण शरीर		१८	सुखसाधन चारित्र	४३३
सम्बन्ध	४५८	साधारणशरीरनाम		३९२	सुखमेकदेशाङ्गाङ्ग	४२
सम्बन्धमिथ्यात्व	३८५	सुख		४४२	सुख	२२३
सम्बन्धमिथ्या	३	सुख		६३	सुख ( शरीर )	३२३
सम्बन्ध	३२१	सानकुमार		२४३	सुखी	३५३
समाधानक्रिया	३२१	साधना		३६४	सुख	३९५
समाधि	३३९	सामान्य		३३	सुख	२४९
समाप्त	३२५	सामानिक	२१८, २३९	२३९	सुख	३९५
समिति	४ ९	सामानिक		२६३	सुख	२९७
सम्मिश्र	३७१	सामानिक		३३	सुख	२४३
सम्बन्धनक्रियानिर्देश	४५७	सामानिक ( शिवालय )		३६	सुख	३३
सम्बन्ध	२२२	सामानिक चारित्र		३३३	सुख	३३७
सम्बन्ध	१८७	सामानिक		३५९	सुख	३३२
सम्बन्ध	१९	सामानिक		३२१	सुख	४५८
सम्बन्ध	१९९	सामानिक		३५	सुख	२
समाप्त	१	सामानिक		२५५	सुख	४२२
समाप्त	३३२, ३३५	सामानिक		३	सुख	३५३
समाप्त	३३८	सामानिक		४५८	सुख	३८३
समाप्त	३३३	सामानिक		२५३	सुख	३८२
समाप्त	३४४	सामानिक		३७२	सुख	३८
समाप्त	३२३, ३८३	सामानिक		२४	सुख	३८





# ज्ञानपीठके सांस्कृतिक प्रकाशन

[ प्राकृत, संस्कृत ग्रन्थ ]

१ महायन्त्र [ महाभवन विज्ञान शास्त्र ]—प्रथम भाग हिन्दी अनुवाद सहित	१२)
महायन्त्र—[ महाभवन विज्ञानशास्त्र ]—द्वितीय भाग	१३)
३ कर्त्तव्यपत्र [ सामुद्रिक शास्त्र ]—इन्द्रेक्षा विज्ञानका नवीन ग्रन्थ [ स्वयं समाप्त ]	१)
४ मन्त्रपरिचय [ मायातन्त्र तथा ७८ वृत्तकी विस्तृत प्रस्तावना ]	८)
५ ब्रह्मसाम्प्रदायिक तांत्रिकीय ग्रन्थसूची	११)
६ न्यायविनिश्चयविषयक [ प्रथम भाग ]	१२)
७ न्यायविनिश्चयविषयक [ द्वितीय भाग ]	१५)
८ तन्त्राधुनिक [ भुक्तव्यगर विरचित टीका ] हिन्दी चार खंडित	१६)
९ भास्त्रिपुराण [ भाग १ ] भगवान् शिवमदेवका पुत्र चरित्र	१)
१० भास्त्रिपुराण [ भाग २ ] भगवान् शिवमदेवका पुत्र चरित्र	१)
११ नाममात्रा समाप्य [ अष्टक ]	१११)
१२ केवलज्ञानप्रज्ञासूत्रात्मिका [ अष्टविंशति ]	४)
१३ समाप्तरत्नमञ्जूषा [ अष्टाध्याय ]	१)
१४ समयसार—[ श्रीश्रेणी ]	८)
१५ धिक्कुरल—तमिल भाषाका पद्यमय [ तमिल लिपि ]	४)
१६ वसुधैव कुटुम्बकम्	१)
१७ तस्यायथार्थिक [ यथार्थिक ] भाग १ [ हिन्दी चार खंडित ]	१२)
१८ जातक [ प्रथम भाग ]	१)
१९ जिनसङ्घनाम	४)
२० सर्वाथसिद्धि	१२)

[ हिन्दी ग्रन्थ ]

२१ आधुनिक जैन कवि [ परिचय एवं अधिष्ठान ]	१११)
जैनशासन [ जैनधर्मका परिचय तथा जिनका कले-शली सुन्दर रचना ]	१)
कुम्भकुम्भदासायके लीला रत्न [ अष्टाध्यायका अद्भुत ग्रन्थ ]	१)
२४ हिन्दी जैन साहित्यका संक्षिप्त इतिहास	२३१)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, बनारस ५

